दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 17 अंक : 1 ❑ जनवरी–फरवरी, 2025

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–I, दिल्ली–110091
फोन : 011–22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com

©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

आयात शुल्क में चयनात्मक वृद्धि का समय

आज जब चीन के साथ व्यापार घाटा 85 अरब डॉलर के असहनीय स्तर पर पहुंच गया है, जिसका असर हमारे उद्योग और रोजगार पर भी पड़ रहा है, तो हमें इस घाटे को कम करने की दिशा में प्रयास करने की जरूरत है। सबसे पहले, जब 2018-19 के बजट में प्रधानमंत्री मोदी की 'मेक इन इंडिया' नीति के तहत इलेक्ट्रॉनिक्स और टेलीकॉम उत्पादों पर आयात शुल्क 10% से बढ़ाकर 20% करने का निर्णय लिया गया और फिर उसी वर्ष कपड़ा और परिधान और फिर अन्य गैर-जरूरी आयातों पर आयात शुल्क 10% से बढ़ाकर 20% करने का निर्णय लिया गया। परिणामस्वरूप, वर्ष 2018-19 में चीन के साथ व्यापार घाटा केवल 53.6 अरब डॉलर रह गया, जबकि यह 2017-18 में 63 अरब डॉलर था। गौरतलब है कि उस समय कई अर्थशास्त्रियों ने इन आयात शुल्कों में वृद्धि का विरोध करते हुए कहा था कि इससे देश में संरक्षणवाद को बढ़ावा मिलेगा और अकुशलता बढ़ेगी। यह समझना होगा कि 2018-19 में आयात शुल्क में वृद्धि ने देश में इलेक्ट्रॉनिक्स और दूरसंचार उत्पादों के विनिर्माण को बढ़ावा दिया। देश मोबाइल फोन का शुद्ध निर्यातक बन गया और वर्ष 2023-24 तक मोबाइल फोन का निर्यात 14.4 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया। इसी तरह, कई अन्य वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात में भी वृद्धि देखी गई।

यह पहली बार नहीं था, जब हमें उच्च टैरिफ का लाभ मिला। देश में कुल मैन्युफैक्चरिंग में लगभग 50 प्रतिशत का योगदान देने वाला ऑटोमोबाइल सेक्टर उच्च टैरिफ के कारण ही आगे बढ़ सका। भारत में ऑटोमोबाइल उत्पादों पर 40 हजार डॉलर से अधिक मूल्य की कारों पर 100 प्रतिशत और 40 हजार डॉलर से कम मूल्य की कारों पर 60 प्रतिशत टैरिफ लगता है। आज भारत ऑटोमोबाइल, विशेष रूप से कारों में एक वैश्विक नेता है और कई भारतीय और विदेशी कंपनियां देश में कार और अन्य ऑटोमोबाइल का निर्माण कर रही हैं और उन्हें भारी मात्रा में निर्यात भी कर रही हैं; और 2023-24 में भारत से 45 लाख से अधिक वाहन निर्यात किए गए।

ऐतिहासिक रूप से देखें तो, भारत में औसत भारित टैरिफ वर्ष 2004 में लगभग 24 प्रतिशत था, जब यूपीए ने सत्ता संभाली थी। लेकिन टैरिफ में नाटकीय रूप से कमी की गई और वर्ष 2006 तक औसत भारित टैरिफ मुश्किल से 6 प्रतिशत रह गया। इससे हमारे विनिर्माण क्षेत्र में तबाही मच गई और आयात पर हमारी निर्भरता कई गुना बढ़ गई।

कम टैरिफ के समर्थक

ऐसे अर्थशास्त्रियों की कोई कमी नहीं है जो टैरिफ कम करने की वकालत करते हैं। टैरिफ कम करने के उनके तर्क कई प्रस्तावों पर आधारित हैं:

सबसे पहले, ऐतिहासिक रूप से, उच्च टैरिफ दीवारों ने उत्पादन में अकुशलता को कायम रखा है, क्योंकि उच्च टैरिफ दक्षता में सुधार के लिए पहल को खत्म कर देता है। उनका तर्क है कि नेहरूवादी काल के दौरान आत्मनिर्भरता के नाम पर उच्च टैरिफ ने प्रतिस्पर्धा को खत्म कर दिया और परिणामस्वरूप अकुशलताएँ पैदा हुईं। इससे हमारी प्रतिस्पर्धात्मकता खत्म हो गई और परिणामस्वरूप निर्यात में भी गिरावट आई।

दूसरा, अगर भारत टैरिफ बढ़ाता है, तो दूसरे व्यापार भागीदारों को भी टैरिफ बढ़ाने का मौका मिलेगा और इससे हमारे निर्यात भी अवरुद्ध होंगे। इस प्रतिस्पर्धी दुनिया में, अगर हर देश यही तरीका अपनाता है, तो वैश्विक स्तर पर व्यापार पर प्रतिकूल असर पड़ेगा।

तीसरा, इन अर्थशास्त्रियों का एक बहुत ही प्रमुख तर्क यह है कि, कम टैरिफ उपभोक्ताओं को वस्तुओं की सस्ती उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं, जिससे उपभोक्ता अधिशेष और उपभोक्ता संतुष्टि में सुधार होता है।

मुक्त व्यापार का सिद्धांत

यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि ये अर्थशास्त्री रिकार्डो और अन्य शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों पर विश्वास करते हैं जिन्होंने लोगों के कल्याण को अधिकतम करने के लिए मुक्त व्यापार की वकालत की थी। लेकिन हमें यह समझने की जरूरत है कि बेहद कम टैरिफ विनिर्माण क्षमता के निर्माण में बाधा डालते हैं; और इस प्रकार आयात पर हमारी निर्भरता बढ़ जाती है, जिससे घरेलू उत्पादन बढ़ाने की संभावनाएँ और कम हो जाती हैं। नतीजतन, आयात पर लगातार बढ़ती निर्भरता का एक दुष्चक्र बन जाता है।

हमें यह भी समझना चाहिए कि रिकार्डो के अनुसार मुक्त व्यापार का सिद्धांत उत्पादों की पूर्ण गतिशीलता, उत्पादन के कारकों की पूर्ण गतिहीनता और स्थिर राज्य अर्थव्यवस्था की मान्यताओं के तहत काम करता है; जिनमें से कोई भी आज की दुनिया में पूरा नहीं होता है। मुक्त व्यापार का लाभ तभी है जब अन्य देश भी मुक्त और निष्पक्ष व्यापार का पालन करें, लेकिन अगर कोई देश डंपिंग करके नियमों को तोड़ रहा है; या टैरिफ दीवारें बढ़ा रहा है, तो अन्य देश/देश मुक्त व्यापार के रुख को जारी नहीं रख सकते हैं। आज, अमेरिका सहित कई देश अपने उद्योगों की रक्षा के नाम पर टैरिफ दीवारें बढ़ा रहे हैं; परिणामस्वरूप, हमारा देश पहले की तरह खुला नहीं रह सकता है।

टैरिफ में चुनिंदा वृद्धि का समय

अगर हम देखें तो दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से आयात में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है; खास तौर पर चीन से। आयात में इस बढ़ोतरी का मुख्य कारण घरेलू उद्योग के लिए खास तौर पर चीन से इंटरमीडिएट उत्पादों का भारी आयात है। इन आयातित इंटरमीडिएट उत्पादों से बने उत्पादों का एक हिस्सा निर्यात किया जाता है; हालांकि, इसका एक बड़ा हिस्सा घरेलू बाजार में ही समा जाता है। दिलचस्प बात यह है कि 2020 में जब से भारत सरकार ने आत्मनिर्भर भारत नीति की घोषणा की है, तब से इन इंटरमीडिएट उत्पादों के आयात में कई गुना वृद्धि हुई है। खास तौर पर इस आत्मनिर्भर भारत नीति में कई क्षेत्रों की पहचान की गई है। इन क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना है। इनमें सक्रिय दवा सामग्री (API), इलेक्ट्रॉनिक्स, दूरसंचार, खिलौने, सौर उपकरण, अर्धचालक, कपड़ा, रसायन आदि शामिल हैं। इन क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए एक विशेष उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन (PLI) योजना शुरू की गई है, जिसके लिए सरकार ने तीन लाख करोड़ रुपये से अधिक का प्रावधान किया है। लेकिन चप्प योजना और आत्मनिर्भर भारत की दिशा में प्रयासों के बावजूद, हमें इंटरमीडिएट के आयात में बहुत कमी नहीं दिख रही है। हम इन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण मात्रा में घरेलू निवेश भी पाते हैं, हालाँकि चीन द्वारा डंपिंग ने पीएलआई योजनाओं की सफलता को प्रभावित किया है। इसके अलावा, इन मध्यवर्ती उत्पादों के उपयोगकर्ता उद्योग दक्षता और वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता के नाम पर अपने उत्पादन को जारी रखने के लिए इन मध्यवर्ती उत्पादों पर आयात शुल्क में और कमी की मांग कर रहे हैं। लेकिन अगर हम इन मध्यवर्ती उत्पादों पर टैरिफ कम करना जारी रखते हैं, तो हम चीनी आयात पर निर्भर रह सकते हैं।

दूसरी ओर, जो लोग रासायनिक, एपीआई, इलेक्ट्रॉनिक्स, दूरसंचार घटक उद्योगों में निवेश कर रहे हैं, वे टैरिफ बढ़ाकर चीनी डंपिंग और अन्य अनैतिक प्रथाओं से सुरक्षा चाहते हैं। निवेशकों की मुख्य आशंका यह है कि अगर चीनी डंपिंग को नहीं रोका गया, तो उनके उद्योग को एक बार फिर बंद होने का सामना करना पड़ेगा। इसलिए, हम कह सकते हैं कि 20 जनवरी, 2024 को डोनाल्ड ट्रंप दूसरी बार अमेरिका के राष्ट्रपति पद की शपथ लेंगे। विभिन्न देशों पर टैरिफ लगाने की उनकी लगातार चेतावनी से अन्य देशों की ओर से जवाबी टैरिफ लगाए जाने की आशंका है। जैसा कि हम जानते हैं, अमेरिका के पास यह लाभ है कि वह देश विशेष पर टैरिफ लगा सकता है, जो अन्य देश नहीं लगा सकते। अमेरिकी टैरिफ वृद्धि के खिलाफ जवाबी कार्रवाई करते हुए, देशों को अपने सभी व्यापार भागीदारों के खिलाफ टैरिफ बढ़ाना होगा। ऐसे में, उन भागीदारों को भी आयात शुल्क बढ़ाने के लिए मजबूर होना पड़ेगा; इसलिए भारत इस आयात शुल्क प्रतिस्पर्धा से अछूता नहीं रह सकता।

इसके अलावा, उपभोक्ताओं को लाभ पहुंचाने के लिए सस्ते आयात का तर्क अल्पकालिक घटना है; क्योंकि चीनी आयात पर निर्भरता बढ़ने से चीनी द्वारा शोषण को बढ़ावा मिलेगा। उदाहरण के लिए, एपीआई के मामले में, जैसे ही देश की चीनी एपीआई पर निर्भरता बढ़ी, चीन ने एपीआई की कीमतों में कई गुना वृद्धि करके भारतीय कंपनियों का शोषण करना शुरू कर दिया।

यदि हम अपने व्यापार भागीदारों पर टैरिफ बढ़ाने का फैसला करते हैं, तो कई देशों के साथ थ्न होने के कारण एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिसके तहत हम शून्य या बहुत कम टैरिफ पर अधिकांश आयात की अनुमति देने के लिए प्रतिबद्ध हैं। ऐसे मामले में, चीन या अन्य देश जिन पर टैरिफ लगाए गए हैं, वे इन देशों के माध्यम से अपने निर्यात को रूट करने का प्रयास कर सकते हैं, जिनके साथ हमारे FTA हैं। हमें बेहद सतर्क रहना होगा और मूल प्रतिबंधों के सख्त नियम लागू करने होंगे।

संपादक

इस अंक में

पूर्वोत्तर भारत केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में समाज और संस्कृति–प्रो० रसाल सिंह; कल्पना कुशवाहा 1

हर्षकालीन उत्तर भारत में बौद्ध धर्म की स्थिति: एक अध्ययन–डॉ० अवध नारायण 4

भारत में महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता–डॉ० शम्मी कुमारी 7

वाल्मीकि कबीर एवं तुलसी की समसामयिक सामाजिक अवधारणा–डॉ० पूजा सिन्हा 10

माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण-अधिगम प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–श्रीमती रीता गुप्ता; डॉ० सोनिया पोपली 15

हरियाणवी सांगो में राष्ट्रीयता की भावना–सुमेधा शर्मा; डॉ० बाबू राम 18

जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन–सुनीता प्रधान; डॉ० ऋचा यादव 23

''गांधी का सर्वोदयी दर्शन: आज की आवश्यकता"–चन्द्रभान सिंह 28

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की समीक्षा–पुष्पा कुमारी 33

सुभद्रा जी के साहित्य में राष्ट्रीय संवेदना का ओज–रीना कुमारी 36

परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन –श्रीमती कांता चंद्रा; डॉ० सोनिया पोपल 39

छत्तीसगढ़ राज्य में जिला प्रशासन: एक मूल्यांकन (बलौदाबाजार-भाठापारा जिले के विशेष संदर्भ में) –डॉ० अशोक कुमार उपाध्याय; आलोक उपाध्याय 42

कामकाजी महिलाएँ और महिला सशक्तिकरण की स्थिति–डॉ० राम नरेश टण्डन; श्रीमती चित्रमाला भिमटे 46

बेरोजगारी एक सामाजिक समस्या व समाधान–डॉ० दिनेश कुमार गायकवाड़ 49

पंचायती राज संस्थाओं के उद्‌भव एवं विकास के मूल आधार–डॉ० रामकृष्ण साहू 52

महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति व राजनैतिक सशक्तिकरण–डॉ० संध्या चौधरी 56

भारतीय राजनीति में जातिवाद की भूमिका–डॉ० प्रदीप जाम्बुलकर 60

बाल श्रम का सामाजिक समस्या व समाधन–डॉ० राम नरेश ठण्डन 62

स्व-सहायता समूह व महिला सशक्तिकरण–डॉ० सोनल सुर्यवंशी 68

योग शिक्षा दर्शन के सन्दर्भ में स्वामी रामदेव के विचारों का अध्ययन–अखिलेश चंद्र यादव; डॉ० विभा सिंह 70

वित्तीय समावेशन में डिजिटल भुगतान की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन –अजय कुमार राजा; राजेश्वरी सोनी; मनबोध चौहान; मनीषा प्रधान; परवीन नजीब हक 75

'यमदीप' उपन्यास में स्त्रियों की भूमिका–पूजा विश्वकर्मा 82

बिहार में उच्च शिक्षा के सामने समस्याएँ और चुनौतियाँ: एक अनुभवात्मक अध्ययन–डॉ० नीलम कुमारी 85

कृषि आधुनिकीकरण का किसानों पर आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव: राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में–सुभाष ईशरवाल; डॉ० कान्ता चौधरी 89

राजस्थान के बुनियादी ढांचे का विकास और एफडीआई–गोपाल लाल जाट 94

आधुनिक परिवारो में रसोई उघान के प्रति अभिवृत्तियाँ ज्ञान एवं व्यवहार का अध्ययन–प्रो० (डॉ.) शबनम तिवारी; कुमारी अनुपमा 97

स्वतन्त्र भारत में संगीत का स्वरूप–डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय 101

कालीन भाषिक तत्त्व और रामदरश मिश्र का काव्य–कविता अप्रेती 103

मुण्डारी भाषा का विकास: एक ऐतिहासिक अध्ययन (झारखण्ड के संदर्भ में)–ब्युला भेंगरा 107

पेरिस जलवायु समझौता और भारतीय हितों की चिंताएं: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० बिन्ध्याचल साह 112

बाल-अपराध: समस्या एवं समाधान–डॉ० हेमेंद्र कुमार सेन 118

'मानवाधिकार' वैश्विक चेतना के रूप में विकास–अभिषेक कुमार 121

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना'–डॉ० सीमा रानी प्रधान; श्रीमती प्रतिमा चंद्राकर 125
प्रवासी हिंदी काव्य में गिरमिटिया मजदूर वर्ग का जीवन संघर्ष–डॉ० माजिद पटेल 127
भारत-बांग्लादेश सम्बन्ध: एक विश्लेषण–जय कान्त यादव 130
वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की भूमिका: एक समीक्षा–नवल किशोर बैठा 134
नागरिक अवज्ञा आंदोलन में महात्मा गाँधी का योगदान–डॉ० अदिती लाल 138
आश्रम व्यवस्था का महत्त्व - वर्त्तमान समय के संदर्भ में–डॉ० प्रियंका कुमारी 142
विद्यालयीय अनुभव कार्यक्रम के दौरान बी. एड. के विद्यार्थियों की स्कूल नेतृत्व के प्रति समझ–साधना यादव 145
गांधीवादी मूल्य स्थापना में नंदकिशोर आचार्य के नाटकों का योगदान–मीनू मीणा 149
तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण
–डॉ० ओम सिंह[1]; प्रो० (डॉ०) रतन कुमार भारद्वाज[2] 152
लोक संस्कृति के हस्तांतरण में मातृ भाषा कुमाऊँनी की आवश्यकता: एक अध्ययन–डॉ० सुमिता गड़कोटी 157
अंग महाजनपद की विदूषी महिला–डॉ० अनामिका कुमारी 163
नर्मदा की संवेदनशील यात्रा: अमृतलाल वेगड़–अल्का स्वामी 165
घराना परंपरा के प्रचार-प्रसार में महिला संगीतकारों की भूमिका–डॉ० उषा 168
भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन और महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता: एक अवलोकन–किशोर कुमार पासवान 172
प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण, भारत में किफायती आवास का उभरता हुआ परिदृश्य: रोहतक मण्डल के संदर्भ में–डॉ० मंजीत कुमार; दीपिका 176
विजयदान देथा (बिज्जी) की कथाओं में सामन्ती चेतना–गोविन्द गौरव सिंह 185
ग्रामीण राजनीति के बदलते आयाम: एक अध्ययन बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में–विकाश कुमार 'विधाता' 188
उषा किरण सोनी का यात्रा साहित्य एक विवेचनात्मक अध्ययन–बजरंग लाल सैनी 191
वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की कहानियों में आदिवासी समाज एवं समस्याओं का यथार्थ चित्रण–रीता देवी; डॉ० पिंकी पारीक 196
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दौर और बाल साहित्य–प्रियंका महावर 199
वैदिक काल में जीव-जन्तु संरक्षण की अवधारणा–डॉ० हिमांशु शेखर; आशीष कुमार सिंह 202
छत्तीसगढ़ में शहरी परिवर्तन और स्थानीय पहचान: एक सैद्धांतिक अन्वेषण–डॉ० अनुराग भगत 206
फोटोग्राफी के बदलते स्वरूप का विज्ञापनों पर प्रभाव–अंकित सिंह 212
प्राचीन बिहार में सामाजिक और राजनीतिक पुनर्जागरण: एक अवलोकन–मो० परबेज कुरैशी 215
धर्मवीर भारती के निबंधों में मानव मूल्य–मनीष कुमार 218
संगीत शिक्षण में विभिन्न आयामों की भूमिका–डॉ० सौरभ वर्मा 220
औपनिवेशिककाल में राष्ट्रीयता की भावना: विशेष संदर्भ 'सोजेवतन'–प्रीति सिंह 223
भारतीय अर्थव्यवस्था में बैंकिंग क्षेत्र की भूमिका : भारतीय स्टेट बैंक के विशेष सन्दर्भ में–डॉ० मनोज कुमार अग्रवाल 226
वैश्वीकरण के दौर में सिकुड़ती हिन्दी की बोलियाँ–प्रतिमा सिंह 229
पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों के पात्रों का चारित्रिक यथार्थ–किशोर कुमार शर्मा; प्रो० (डॉ०) अशोक कुमार गुप्ता 231
21वीं सदी में भारत-अमेरिका संबंध: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–पवन कुमार 235
સમયસંકલના અને કથનકેન્દ્રની કલાત્મક ગૂંથણીઃ 'તાકુંઃ બાપદાદા વારીનું'–આશકા દેવમુરારી 240
दिल्ली के प्रमुख तन्त्री वाद्य निर्माता–डॉ० सुरेन्द्र कुमार 243
अठाहरवीं शताब्दी की किशनगढ़ चित्रकला: 'बनी-ठनी' का सौन्दर्यात्मक अध्ययन–प्रवीन कुमार 246
कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के युग में पुस्तकालयों की शाश्वत प्रासंगिकता: एक समीक्षा–डॉ० अंजनी सराफ 249
"21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य एवं पर्यावरण चेतना: एक अध्ययन"–डॉ० बबलू सिंह 253
"आधुनिक कविता में यथार्थ बोध"–डॉ० शिव कुमार व्यास 259
परिवार का बच्चों के विकास पर प्रभाव–सोनी कुमारी 264
नारी अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में महादेवी वर्मा का साहित्य–डॉ० रावेन्द्र कुमार साहू 268

बंगाल का गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय–रजनी सोनी; डॉ० ब्रजलता शर्मा 272
विभेदीकृत विकास एवं पर्यावरण जनजातीय अस्मिता का एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन–डॉ० कान्ता मीणा 275
रेत समाधि: स्त्री विमर्श के विशेष संदर्भ में–सरदार जाट 278
गुप्तकाल में चकित्सिा विज्ञान का विकास–पंकज कुमार 280
कृष्णा सोबती का पुरुष जाति के प्रति दृष्टिकोण–डॉ० अरविन्द कुमार सिंह; राधा सिंह 283
सामाजिक न्याय में पंचायतीराज की भूमिका–चन्दन प्रकाश 285
उत्तराखण्ड में स्वतंत्रता संग्राम : सविनय अवज्ञा से भारत छोड़ो आंदोलन तक (अल्मोड़ा के सौला-सिलोर के सम्बन्ध में) –ललित प्रसाद; डॉ० पंकज प्रियदर्शी 289
नवजागरण और गांधीवाद–डॉ० चंद्रकांत बापूराव जोगदंड 292
राम काव्यक विकासमे 'राम सुयश सागर'क उपादेयता–डॉ० अमिताभ चक्रवर्ती 295
पूर्वोत्तर भारत का विकास: चुनौतियां एवं सम्भावनाएँ–सुशील कुमार; डॉ० शशि भूषण कुमार 300
स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं का योगदान–डॉ० राजेश कुमार कहार 304
"प्रेम की सार्वभौमिकता और हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य: एक आलोचनात्मक विवेचन"–डॉ० किरण वट्टी 307
"वैश्विक संकट और गाँधी का सर्वोदय: 21वीं सदी में राजनीतिक प्रासंगिकता"–डॉ० रश्मि बुनकर 311
21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य एवं पर्यावरण चेतना: एक अध्ययन–डॉ० बबलू सिंह 315
संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का राजनीतिक संस्कृति पर प्रभाव–डॉ० ममता कुमारी 321
सरकारी एवं गैर सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालय के सामान्य एवं अपवादात्मक विद्यार्थियो के अधिगम शैली का तुलनात्मक विश्लेषण –रतनेश कुमार; डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय 326
"भारतीय परिप्रेक्ष्य में समानता, न्याय और लोकतांत्रिक पुनरुत्थान: डॉ. भीमराव अंबेडकर के विशेष संदर्भ में"–डॉ० अजीत सिंह 332
शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग: संभावनाएँ चुनौतियाँ एवं शैक्षिक प्रभाव–डॉ० श्याम लाल निराला 336
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित 'भारत दुर्दशा' नाटक का विश्लेषण–डॉ० रीना देवी 341
भारतीय संस्कृति एवं विरासत–डॉ० पी०एम० भुमरे 344
प्रवासी लेखिकाओं के कथा साहित्य में ब्रिटेन का सामाजिक परिदृश्य–डॉ० गायत्री 346
पंचायतीराज व्यवस्था का आर्थिक विकास में मूल्यांकन–डॉ० प्रमोद कुमार यादव 353
गांधी का पर्यावरणीय नैतिक दर्शन: जलवायु संकट के संदर्भ में एक अध्ययन–एन राजेन्द्र सिंह; डॉ. सुचित्रा डागर 356
हिंदी उपन्यास और मार्क्सवादी आलोचना–अंशु कुमारी 360

पूर्वोत्तर भारत केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में समाज और संस्कृति

प्रो० रसाल सिंह

प्राचार्य, रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

कल्पना कुशवाहा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पूर्वोत्तर भारत से आशय भारत के उन सात पूर्वी राज्यों से है, जिन्हें श्सात बहनोंश के नाम से जाना जाता है। हालाँकि अब सिक्किम सहित आठ राज्य हैं। जिसमें- अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, सिक्किम राज्य शामिल हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र अपनी बनावट और बुनावट के कारण भारत की विविधता का सबसे बड़ा द्योतक और बहुआयामी संस्कृति का प्रतीक है। अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण भारत की समृद्धि में इस प्रान्त की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। पूर्वोत्रार भारत की भौगोलिक स्थिति, भाषाई विविधता, सांस्कृतिक पहलू और प्राकृतिक सौन्दर्य सदा से ही आकर्षण का केन्द्र रहे हैं।

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का सर्वाधिक विविधता वाला क्षेत्र है। देश के लगभग दो प्रतिशत क्षेत्र पर लगभग एक सौ पचास से अधिक अलग-अलग जनजातियाँ निवास करती हैं। इन जनजातियों की अपनी विशिष्ट और विविध संस्कृतियाँ हैं। ये जनजातियाँ एक निश्चित भू-भाग में अपनी विशिष्ट बोली-बोलते हैं तथा संगठित रहते हैं। बहुत सी जनजाति जंगलों में,पहाड़ों में और दुर्गम प्रदेशों में रहकर कबीलाई जीवन शैली अपनाए हुए हैं। सदियों से सभ्यता एवं संस्कृति से दूर होने के कारण ये पिछड़े हुए हैं। उन्हें हमारे यहाँ की समाज व्यवस्था ने हाशिये पर रखकर आज भी आदिम रूप में जंगलों में रहने के लिए बाध्य किया है। उन तक मूलभूत सुविधाओं को नहीं पहुँचने दिया गया। इसी संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं, "कभी-कभी सडकों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध-सुर्खियों में दिखाई देनेवाले कंजर, साँसी, नट, मदारी, सँपेरे, पारदी, हाबूडे, बनजारे, बावरिया, कबूतरे न जाने कितनी जनजातियाँ हैं जो सभ्य समाज के हाशिये पर डेरा लगाए सदियों गुजार देती हैं- हमारा उनसे चौकना संबंध सिर्फ काम चलाऊ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं 'कज्जा' और 'दिकू' यानी सभ्य सम्भ्रांत 'परदेसी' उनका इस्तमाल करनेवाले शोषक, उनके अपराधों से डरते हुए मगर अपराधी बनाये रखने के आग्रही।"[1] पूर्वोत्तर भारत केंद्रित उपन्यासों का सूक्ष्म अध्ययन व विश्लेषण करने के पश्चात कई तथ्य सामने आते हैं। इन उपन्यासों में अलगाववाद, उग्रवाद, पिछड़ापन, स्त्रियों का उत्पीड़न, नशे की समस्या, पक्षपात और राजनीति, भाषाई और सांस्कृतिक वर्चस्ववाद की विसंगतियां, अवैध विदेशी घुसपैठ और रोजमर्रा की जरूरत के सामानों तथा नशीले पदार्थों की तस्करी आदि समस्याओं को प्रमुखता से उठाया गया है। किन्तु इस आधार पर यह कहना उचित नहीं होगा कि ये सभी उपन्यास सिर्फ समस्याओं का चित्रण करने के लिए ही रचे गए हैं। इन उपन्यासों में पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न समुदायों की सांस्कृति, लोकजीवन, वैविध्यपूर्ण अप्रतिम प्राकृतिक सौंदर्य एवं जनजीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न पहलुओं को गहनता, सूक्ष्मता और संजीदगी के साथ दिखाया गया है।

पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य का सटीक वर्णन श्रीप्रकाश मिश्र के उपन्यास 'रूपतिल्ली की कथा' में देखने को मिलता है। मिश्र जी ने मेघालय की जनजातियों की संस्कृति, परम्परा और संघर्ष का वर्णन किया है। उपन्यास की कथा मुख्यत: नरबली की घटना के इर्द-गिर्द घूमती है। इसी क्रम में खासी समुदाय में व्याप्त जादू-टोना तथा अन्य मान्यताओं का विवरण देखने को मिलता है। मान्यता है कि जब तक "डिगडेह का देववृक्ष रूपतिल्ली की पहाड़ियों के माथे खड़ा रहेगा। तब तक यह जाति नष्ट नहीं"।[2] इसी प्रकार की अनेक मान्यताओं, कथाओं, रीति-रिवाज, कर्मकांड, लोक कथाओं और मिथकों के माध्यम से लेखक ने खासी जन-जाति के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आधार को अभिव्यक्ति दी है। इसके साथ ही पूर्वोत्तर केन्द्रित लगभग सभी उपन्यासों में भारतीय संस्कृति और प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रचुर वर्णन भी देखने को मिलता है।

पूर्वोत्तर भारत केंद्रित उपन्यासों में अलगाववाद और उग्रवाद प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरकर सामने आए हैं। ये दोनों समस्याएं आपस में जुड़ी हुई हैं और एक दूसरे को पोषित करती हैं। इन उपन्यासों के पात्र इस बात को रेखांकित करते हैं कि पूर्वोत्तर निवासियों के लिये बाहर के लोग आउटसाइडर हैं चाहे वे भारतवासी हों या किसी और देश के। असम में उत्तर भारत के लोगों को कई बार 'इंडियन' कहते हैं, मिजोरम में 'वाई', मणिपुर में 'मयांग' कहा जाता है। मूलत: इन सभी शब्दों का अर्थ 'बाहरी' या 'आउटसाइडर' ही होता है। इससे यह स्पष्ट है कि पूर्वोत्तर राज्यों के बहुसंख्य निवासियों के लिए दूसरी स्थान से आकर वहां निवास करने वाले लोग बाहरी हैं चाहे वे बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश या भारत के अन्य किसी राज्य के हों या अन्य देश बांग्लादेश, म्यांमार इत्यादि के निवासी हों। अलगाव की यह भावना पूर्वोत्तर निवासियों के मन में बहुत गहरे तौर पर विद्यमान दिखाई पड़ती है। लालबादुर वर्मा का 'उत्तर-पूर्व'

उपन्यास मणिपुर के अनुभवों को आधार बनाकर लिखा गया है। उपन्यास के केंद्र में मणिपुर का इतिहास, सामाजिक जीवन, संस्कृति, और संघर्ष है। इस क्रम में मणिपुरी, मैते, और भारतीय होने की त्रिविधा से जूझ रहे वहाँ के लोगों की मानसिक लड़ाई और उनपर थोपी जा रही भारतीयता आदि को वहाँ लोग कैसे झेलते और नकारते हैं, लेखक ने बड़ी सूझबूझ के साथ दिखाया है। इस त्रिविधा से गुजरते हुए इबोहल सोचता है कि "न तो उन्हें विदेशी समझा जाता है, न परदेशी-न अपने देश का होने वाला अपनापन और सहजता, न विदेशियों के प्रति दिखने वाला विशिष्ट भाव ।"[3] यह सिर्फ इबोहल के मनोभाव नहीं, बल्कि लगभग सभी मणिपुरियों या कहें तो पूर्वोत्तर भारत के लोगों के मनोभाव हैं। यही कारण है कि लोग भारत को अलग देश मानते हैं। उपन्यास में आइडेंटिटी और एक्जिस्टेंस का सवाल भी सामने आता है। उपन्यास में एक पात्र इबोइल कहता है- "वह पहली बार मणिपुर से दिल्ली आ रहा था। दीमापुर तक उसे खास परेशानी नहीं हुई। हाँ, बस की थोड़ी-थोड़ी दूर पर रोककर जब तलाश ली जाती तो उसे फौजी श्इंडियनश लगते, जो उनसे इस तरह का व्यवहार करते जैसे वे थोड़े कम इंसान हो या अपराधी हों ...।"[4] उसे अपनी दिल्ली यात्रा अंतहीन लगने लगी। वह सोचता है कि "इतने बड़े देश में बेगानों की तरह कैसे रह पाएगा। उसके मैत्रेयी और मणिपुरी पहचान की क्या हैसियत है, महान इंडिया में तो क्या वह आइडेंटिटी की बात भूल जाय? क्या इन्सान होना पर्याप्त नहीं? पर उसे लगा छोटी इकाईयों के लिए आइडेंटिटी का सवाल 'एक्जिस्टेंस' का सवाल है, आक्सीजन का सवाल है- अस्मिता के बगैर अस्तित्व ही बेमानी है।"[5] उग्रवाद, इस अलगाव भावना की स्वाभाविक परिणति है। जब लोगों में यह विचार प्रबलता से उपजता है कि उनके संसाधनों पर बाहरी लोगों का कब्जा है जिन पर वहाँ के क्षेत्रीय लोगों का स्वाभाविक अधिकार होना चाहिए, तब यह मानसिकता उग्रवाद को जन्म देती है। यही विचार संगठित होकर हिंसक गतिविधियों को बढ़ावा देता है। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये हिंसक गतिविधियां और इनकी प्रतिक्रिया में उठाए जाने वाले कदम, दोनों के दुष्प्रभाव न चाहते हुए भी वहाँ के क्षेत्रीय लोगों को भुगतने पड़ते हैं। ये सभी पक्ष विश्लेषित उपन्यासों में बहुत ही बारीकी और संवेदनशीलता के साथ उठाए गए हैं।

पूर्वोत्रार भारत केन्द्री उपन्यासों में विभाजन की समस्या को प्रमुखता से उठाता है। विभाजन ने हिंदू-मुसलमान के आपसी विश्वास को खंडित कर दिया था, वही विश्वास जो विध्वंस की कई-कई परतें मिटाकर सृजन की कहानी लिखता है। महेंद्रनाथ दुबे के उपन्यास श्मुक्तिश में स्वतंत्रता के पश्चात हुए विभाजन और उससे उपजी त्रासदी का सटीक वर्णन है। बँटवारे के समय अधिकांश लोग क्या सोच रहे थे, इसका चित्रण सुक्तादेवी साँवरी के संवाद में द्रष्टव्य है- "पागल हुई हो। बँटवारा देश का हुआ है न कि आदमियों का। अपनी धरती जमीन, घर- बार, बाग-बगीचा किसे प्यारा नहीं... हिंदू होने भर से हिंदुस्तान वाले हिंदुओं को अपनी छाती में नहीं बसा लेंगे और मुसलमान होने भर से ही पाकिस्तान वाले किसी मुसलमान को सिर माथे नहीं चढ़ाएंगे।... संघर्षों से भागने पर मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति मिलेगी संघर्षो का सामना करने से।"[6]

पूर्वोत्तर केंद्रित उपन्यासों में विभिन्न राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता और नेताओं की स्वार्थ सिद्धि को भी प्रमुखता से दिखाया गया है। यह राजनीतिक अवसरवादिता अनेक विसंगतियों, अलगाव और हिंसा का रास्ता खोलती है। नौकरियों और अवसरों की उपलब्धता में बेलगाम घूसखोरी और क्षेत्रवाद का बोलबाला भी इन उपन्यासों की विषय-वस्तु का प्रमुख अंग रहा है। जो लोग विकास की प्रक्रिया में पीछे छूट गए हैं, वे अपनी व्यक्तिगत कुंठाओं को जीवन और समाज से जोड़कर अराजकता का वातावरण बनाने में सहज ही जुड़ जाते हैं। अराजकता की इस दौड़ में शामिल हो चुके लोग उसी भ्रष्ट और उत्पीड़नकारी तंत्र का हिस्सा बनकर इस खाई को और अधिक बढ़ा रहे हैं। राजनीति और प्रशासन में शामिल लोग दबे-ढके तौर पर उग्रवादी संगठनों को प्रश्रय देते हैं और सार्वजनिक तौर पर उनके सफाए की बात भी करते हैं। देश भीतर देश उपन्यास में प्रदीप सौरभ प्रशासन और उग्रवादी संगठन के संदर्भ में लिखते है कि "ये सुल्फा सरकार के मेहमान हैं। ये वो लोग हैं जिन्होंने उल्फा छोड़ कर हथियारों के साथ सरेंडर कर दिया है और अब खुलेआम गुंडागर्दी करते घूमते हैं। सुल्फा माने सरेंडर यूनाइटेड लिब्रेशन फ्रंट आफ असम। इनकी दादागिरी तो ऐसी है कि बिहार के माफिया भी शरमा जायें। हर ठेके से लेकर हर धंधे में इन्होंने अपना दखल बना लिया है। मुख्यमंत्री प्रफुल्ल कुमार महंत से लेकर गृहमंत्री भृगु कुमार फूकन तक इनकी पहुँच है।"[7] इसी प्रकार 'लोहित', 'उफ्फ' और 'देश भीतर देश', 'उत्तर पूर्व' और 'आहुति' उपन्यासों के माध्यम से इन बिंदुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

पूर्वोत्तर भारत के राज्य राष्ट्रीय राजनीतिक इकाई के रूप में छोटे हैं। इसके साथ ही ये राज्य राष्ट्रीय राजनीति के फलक पर एकजुट भी नहीं हैं। यह प्रमुख वजह है कि राष्ट्रीय राजनीति के स्तर पर पूर्वोत्तर भारत एक लंबे समय तक राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आकृष्ट नहीं कर पाये। पूर्वोत्तर भारत रणनीतिक, प्राकृतिक सौंदर्य और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भारत का सशक्त हिस्सा रहा है। बावजूद इसके 'कनेक्टिविटी' पूर्वोत्तर राज्यों की एक बड़ी समस्या है। कनेक्टिविटी के दो पक्ष हैं पहला पूर्वोत्तर भारत का भारत के शेष हिस्सों से और दूसरा पूर्वोत्तर के आठों राज्यों की आंतरिक कनेक्टिविटी। रचनाकारों ने इसे बेहतर ढंग से रेखांकित किया है कि कनेक्टिविटी की कमी और भौगोलिक उच्चावच की विविधता यहाँ के निवासियों के विकास और समृद्धि में बाधक है। साथ ही वहां के छोटे छोटे समुदायों की एकांतिकता (Separation) भी प्रमुख वजह है। जिसके कारण पूर्वोत्तर भारत लंबे समय तक समुचित पॉलिटिकल वेटेज से वंचित रहा है।

सामान्यतः पूर्वोत्तर भारत की स्त्रियों की स्थिति, भारत के अन्य हिस्सों की तुलना में सशक्त और सक्षम मानी जाती है। इस विषय की व्यवहारिक स्थितियों और सैद्धांतिक नीतियों का विस्तार से आकलन और चित्रण उपन्यासों में किया गया हैं। 'मुक्तावली' उपन्यास में स्त्री स्वतंत्रता के संदर्भ में बलभद्र ठाकुर लिखते है- "मणिपुर की महिलाएँ भारत के अन्य प्रांतों की महिलाओं से सामाजिक रूप से काफी आगे दीखीं। भारत के अन्य प्रांतों की तरह यहाँ की ऊँची जाति की महिलाएँ बलात् वैधव्य की क्रूरता की कड़ियों में जकड़ी नहीं जाती। उन्हें तलाक तक देने का अधिकार है। पुनर्विवाह का भी। पर्दे की पाखण्डमय मर्यादा भी नहीं है। जीविका के लिए नृत्य-संगीत का पेशा अपना कर भी वे समाज द्वारा अकुलीनता या वेश्यात्व के कलंक से लांछित नहीं की जाती। इन उन्मुक्तताओं के रहते भी उनके आचार में असंयम नहीं। अमर्यादा नहीं।"8 आमतौर पर पूर्वोत्तर भारत में स्त्रियों की भागीदारी बड़े पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन और विपणन जैसी गतिविधियों में होती है। यह भागीदारी उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाती है और सामाजिक रूप से सशक्त भी। यह स्थिति काफी हद तक स्त्रियों के पक्ष में मानी जा सकती है लेकिन बावजूद इसके उपन्यासकारों ने यह रेखांकित किया हैं कि स्थिति चाहे जो भी हो, सामाजिक और पारिवारिक संरचना में निर्णय लेने का अधिकार अमूमन पुरुषों के हाथ में ही होता है। इससे स्त्रियों के बेवजह शोषण और उत्पीड़न जैसी अप्रिय परिस्थितियां निर्मित होती हैं। इन क्षेत्रों में सेना को उग्रवादी संगठनों से निबटने के लिए अतिरिक्त अधिकार दिए जाते हैं। जिसकी वजह से सेना के जवान तलाशी के नाम पर स्थानीय

स्त्रियों से बदसलूकी करते पाए जाते हैं। इन सभी बातों के संकेत और संदर्भ 'देश भीतर देश', 'लोहित', 'उत्तर पूर्व', 'आहुति' और 'जहां बांस फूलते हैं' उपन्यासों में चित्रित हैं।

'अवैध घुसपैठ' पूर्वोत्तर भारत की प्रमुख समस्या है। बांग्लादेश और म्यांमार (बर्मा) जैसे पड़ोसी देशों से अवैध घुसपैठ करने और कराने वालों पर रचनाकारों ने पैनी दृष्टि रखी है। श्जय आई असमश तथा अन्य उपन्यासों के अवलोकन से स्पष्ट है कि रचनाकारों ने अपनी सुविधा की दृष्टि से ही सरकारी या रणनीतिक नजरिए से नहीं देखा है बल्कि इस विषय के मानवीय पहलू को भी रेखांकित किया है। उपन्यासकारों ने सीमा पार के लोगों की मुफलिसी और बेरोजगारी को संजीदगी से उठाया है। साथ ही वे इस बात को भी नजरअंदाज नहीं करते कि घुसपैठियों का यहां के क्षेत्रीय निवासियों के साथ कैसा व्यवहार रहता है। अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों ही दृष्टि से घुसपैठियों के द्वारा किए जाने वाले आपराधिक व्यवहारों, तस्करी और पॉलीटिकल इन्फ्लुएंस की हरकतों को भी प्रमुखता से रेखांकित करते हैं। अवैध हथियारों और नशीले ड्रग्स तथा उसके दुष्प्रभावों को भी 'लोहित' तथा श्देश भीतर देशश उपन्यास में प्रमुखता के साथ उद्घाटित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वोत्तर राज्यों के गरीब परिवारों की युवा लड़कियों को बहला-फुसलाकर उनकी तस्करी का मुद्दा भी उठाया गया है। इन समस्याओं के अलावा पूर्वोत्तर केंद्रित उपन्यासों में पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न हिस्सों के निवासियों के रहन-सहन, परिधान, पर्व-त्योहार, सामाजिक-सांस्कृतिक, रीति-रिवाज, ऐतिहासिक और मिथकीय मानस, राजनीतिक चेतना आदि को भी पर्याप्त स्थान दिया है।

पूर्वोत्तर भारत सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं संपन्न है। इस छोटे से क्षेत्र में इन मूल्यों के वैविध्य को देखकर कोई भी आश्चर्यचकित हो सकता है। पूर्वोत्तर भारत का यही वैविध्य इसे अद्वितीय बनाता है। एक ही क्षेत्र में निवास करने वाली दो भिन्न जनजातियों के मूल्यों में इतनी भिन्नता होती है कि आसानी से इन्हें चिह्नित किया जा सकता है। पूर्वोत्तर भारत की जनजातियों के जो परंपरागत मूल्य थे उनमें समय के साथ परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है। बाह्य सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के दबाव के कारण इनके जनजातीय मूल्यों में परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन भाषा, रहन-सहन, धार्मिक विश्वास, खानपान-वेशभूषा, त्यौहार आदि में परिलक्षित होता है। पूर्वोत्तर भारत को केंद्र में रखकर लिखी जा रही साहित्यिक रचनाएँ पूर्वोत्तर विमर्श की रचना करती हैं। इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषताएँ, परंपराएँ और समस्याएँ अन्य हाशिए के समाज से भिन्न हैं। इनकी ज्ञान-परंपरा और सभ्यता के विकास के सोपान भी भिन्न हैं। इन भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र को एक विमर्श के रूप में खड़े होने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची:

1. मैत्रेयी पुष्पा; अल्मा कबूतरी; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1- बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; सं. 2000; पृ. कबर पेज
2. श्री प्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. सं.35
3. लालबहादुर वर्मा, उत्तर पूर्व, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण-2004, पृ. सं.54
4. वही, पृ. सं. 68
5. वही, पृ. सं. 72
6. डॉ. महेंद्र नाथ दुबे, मुक्ति, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. सं.2
7. प्रदीप सौरभ, 'देश भीतर देश', पृ. सं. 66
8. बलभद्र ठाकुर, मुक्तावली, पृ. सं. 129

हर्षकालीन उत्तर भारत में बौद्ध धर्म की स्थितिः एक अध्ययन

डॉ० अवध नारायण

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहित अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

सारांश

हर्ष काल में अन्य धर्मों की तरह बौद्ध धर्म दूसरे धर्म के प्रतिपक्षी धर्म में रूप में प्रचलित हुआ।[1] बौद्ध धर्म के आदि प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे जिन्होनें ईसा पूर्व छठी सदी में प्रवर्तन किया था। बुद्ध ने अपने धर्म द्वारा जिन आदर्शों व सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया वे वर्तमान समय में भी अपने अस्तित्व को बनाये हुए है। भारत ने बौद्ध धर्म के प्रतीक को अपने राजवृक्ष के रूप में स्वीकार किया है जो कि शान्ति तथा सह अस्तित्व के सिद्धान्तों का आधार है। भारत के प्रमुख सिद्धान्त पंचशील का सिद्धान्त भी इसी धर्म का अंश है। यदि बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को अपनाते है तो शान्ति तथा सद्भाव स्थापित होने में कोई सन्देह नहीं है।

मूल शब्दः हर्षकालीन उत्तर भारत, बौद्ध धर्म, बुद्ध, उपदेश, अंहिसा, सहिष्णुता

प्रस्तावना

बौद्ध धर्म के द्वारा अंहिसा तथा सहिष्णुता का पाठ पठाया गया। इस धर्म नें लोगों के जीवन के नैतिक स्तर को ऊपर उठाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा जनजीवन में सदाचार एवं सच्चरित्रता की भावनाओं का विकास हुआ। इस धर्म में नैतिकता को ज्ञान से ऊँचा स्थान दिया गया। बौद्ध धर्म ने न केवल भारत बल्कि विश्व के कोने-कोने में अपना नैतिक आधिपत्य स्थापित किया। यह धर्म मानव जाति के लिए समानता का आदर्श प्रस्तुत करता है। जीवों पर दया, अंहिसा, करूणा आदि का विकास बौद्ध धर्म की ही देन है।[2]

बौद्ध धर्म का जन्म तात्कालिक धर्म हिन्दू धर्म अर्थात वैदिक धर्म में प्रचलित विभिन्न आडम्बरों के आगमन के कारण हुआ। इस समय वैदिक धर्म में अनेक कर्मकाण्ड तथा अन्धविश्वास प्रचलित हो गये थे जिसके फलस्वरूप महात्मा बुद्ध ने एक ऐसे धर्म का प्रसार किया जो पूरी तरह से आड़म्बर रहित था। गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के द्वारा अपने समय में समाज को धर्म तथा जाति व्यवस्था के अन्तर्गत आये हुए दोषों को दूर करना चाहते थे। इस धर्म के अन्तर्गत मनुष्य के नैतिक तथा सामाजिक गुणों का विकास किया जाता है। बुद्ध की धार्मिक दृष्टि बहुत ही उदार थी। उन्होंने समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों को जैसे शकुन, अपशकुन, भविष्यवाणी नदियों के जल की पवित्रता, जादूगरी, स्वपन चमत्कार आदि का खण्डन करते हुए उन्हें ग्रहण नहीं करने योग्य बताया।

महात्मा बुद्ध अपने शरीर को कष्ट पहुँचाना, घोर तपस्या में लीन रहना तथा समस्त संसार को त्याग देना इन सभी बातों को अस्वीकार करते थे किन्तु अपने कुछ विशेष मतानुयायिओं को वे भिक्षा माँगकर जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहित करते थे क्योंकि वे निर्वाण प्राप्त करने में सांसारिक सुखों को बाधक मानते थे।

सामान्य मनुष्य के लिए बुद्ध ने अलग धर्म का उल्लेख किया था जो कि भिक्षु धर्म से अलग था। इस धर्म को उपासक धर्म कहा जाता है। इस धर्म को गृहस्थ व्यक्तियों का धर्म कहा गया है। इस धर्म के अन्तर्गत गृहस्थों के लिए कुछ आचरणों का उल्लेख किया है - अंहिसा, प्राणियों पर दया, सत्य भाषण, माता-पिता की सेवा, गुरूजनों का सम्मान तथा श्रमणों को दान देना, तथा मित्रों व परिचितों आदि के साथ अच्छा बर्ताव करना।

महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म के अन्तर्गत जो उपदेश दिये थे उन उपदेशों का प्रमुख उद्देश्य मनुष्यों को उनके दुःखों से छुटकारा दिलवाना था। महात्मा बुद्ध के उपदेशों में सरलता एवं व्यवहारिकता दिखाई देती है। बुद्ध का झुकाव ज्ञान तथा बुद्धि की ओर था न कि किसी कर्मकाण्ड की तरफ था। बुद्ध ने हिन्दू धर्म के अन्तर्गत आये हुये यज्ञों के कर्मकाण्ड तथा पशुबली का जमकर विरोध किया था साथ ही उन्होनें वैदिक धर्म के अन्तर्गत होने वाले अनुष्ठानों का भी विरोध किया था। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत समानता को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। क्योंकि उसका मानना था कि किसी भी मनुष्य के उसके भेदभाव उसके जन्म के आधार पर नहीं वरन् उसके गुणों तथा कर्मों के आधार पर होता है। छुआछूत तथा जांति-पांति का भेदभाव उनकी दृष्टि में नहीं था इसीलिए उनका धर्म सभी जाति के लिए समान था।[3]

महात्मा बुद्ध ने सभी प्रकार के ढ़ोंग को हटाकर बुद्धि, विवेक, दया तथा प्रेम के आधार पर सरल-पवित्र जीवन जीने का उपदेश दिया था। बौद्ध धर्म का सर्वाधिक विकास इसकी कला तथा स्थापत्य में दिखाई देता है। इस धर्म से प्रेरणा लेकर शासकों तथा अनेक श्रद्धालुओं ने विभिन्न स्थानों पर स्तूप, विहार,

चौत्यगृह, गुहाएँ, मूर्तियाँ आदि निर्मित की गई। सांची, सारनाथ, भरहुत आदि के स्तूप, अजन्ता की गुफाएँ एवं उनकी चित्रकारियाँ अनेक स्थानों से प्राप्त एवं संग्रहालयों में सुरक्षित बुद्ध तथा बौद्धिसत्वों की मूर्तियाँ आदि बौद्ध धर्म की भारतीय संस्कृति को अनुपम देन है।

बौद्ध धर्म जिसे प्रथम विश्वधर्म की संज्ञा दी गई है जो मनुष्य मात्र के लिए था। भारत का सास्कृंतिक सम्पर्क विश्व के अन्य देशों के साथ बौद्ध धर्म के कारण ही हुआ था। भारत के बौद्ध भिक्षुओं ने विश्व के विभिन्न भागों में जाकर अपने उपदेशों का प्रचार किया। इसकी शिक्षा से प्रभावित होकर कई विदेशी जातियों जैसे कि शक, कुषाण, पार्थियन आदि सम्मिलित थी, बौद्ध धर्म को ग्रहण किया था तथा अनेक विदेशी यात्री बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर अध्ययन करने के लिए भारत आये थे। इनमें प्रमुख यात्री फाहियान, ह्वेनसाँग, तथा इत्सिंग भारत आये थे तथा कई वर्षों तक निवास कर बौद्ध धर्म का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया।

बुद्ध के पिता, उनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी तथा उनकी पत्नी, पुत्र ने भी इस धर्म को ग्रहण किया था। शाक्य गणराज्य के राजा भद्रिक उसके सहयोगी आनन्द, अनुरूध, उपाली तथा देवदत्त ने भी बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। महान सम्राट अशोक के समय बौद्ध भिक्षुओं के जत्थे सीरिया, श्याम, मिश्र, मकदूनिया गये तथा वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उस समय इन देशों पर यूनान का अधिपत्य था परन्तु इन साधुओं का इतना अधिक प्रभाव था कि सभी बौद्ध धर्म को ग्रहण करने लगे। वैसे तो महात्मा बुद्ध ने अपने जीवनकाल में ही बौद्ध धर्म का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु वे बिहार और काशी के आसपास ही जीवन भर धूमते रहे और प्रचार करते रहे।

विदेशों में बौद्ध धर्म को प्रचार करने का श्रेय सम्राट अशोक को जाता है। उसने गांधार, कश्मीर, मिश्र, राजपूतानें, पश्चिमी पंजाब, यूनान, वेक्टेरिया, हिमालय के प्रान्तों में, वर्मा और लंका आदि देशों में बौद्ध धर्म के उपदेशकों को भेजा। अशोक की आज्ञाओं का पालन चोल, पांडय, केरल, लंका, सीरिया के यूनानी राज एन्टीओकस के राज्यों में भी किया जाता था। अशोक के धर्मलेखों से पता चलता है कि उसने ईजिप्ट, मेसेडेन, ऐपेरस तथा सीरिया में भी अपने दूत भेजे थे जिस समय अशोक भारत पर राज्य कर रहा था। उसी समय लंका पर तिष्य नामक राजा राज्य कर रहा था। उसन अशोक महान के धर्म से प्रभावित होकर मित्रता का प्रस्ताव भेजा और अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को लंका भेजा जिन्होंने सम्पूर्ण लंका को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया।[4]

हर्ष द्वारा बौद्ध धर्म को राज्यश्रय

सम्राट हर्ष अपने शासन को प्रारम्भ करने से पहले शैव धर्म के अनुयायी थे। हर्ष ने परम महेश्वर की उपाधि ग्रहण की थी। हर्ष की मुद्रा पर शिव के वाहन नंदी का चिन्ह अंकित है। हर्ष ने रत्नावली नाटिका का प्रारम्भ भी शिव तथा पार्वती की पूजा से ही किया था। हर्ष एक धार्मिक सहिष्णुता का पालन करता था। ह्वेनसाँग के उल्लेखों से सम्राट हर्षवर्धन का बौद्ध धर्मानुयायी होने का प्रमाण मिलता है। नागानन्द तथा ह्वेनसाँग के उल्लेखों में हर्ष द्वारा बौद्ध धर्म को स्वीकार किये जाने का प्रमाण तो प्राप्त हो जाता है परन्तु हर्ष ने कब और क्यों धर्म परिवर्तन किया था इस बात के प्रमाण प्राप्त नहीं होते है।[5]

बाण के अनुसार विध्यावटी में निवास करने वाला बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र की ख्याति से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार किया था तथा राज्यश्री की खोज में भी दिवाकर मित्र द्वारा सहयोग करने से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म ग्रहण किया। बाण के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्ष ने बौद्ध धर्म की दीक्षा दिवाकर मित्र से ग्रहण की थी लेकिन हर्ष इससे पहले भी बौद्ध धर्म के प्रति अनुराग रखता था जैसे दिवाकर मित्र से मिलने का विचार एवं राज्यवर्धन का बौद्ध धर्मानुयायी होना आदि। हर्ष के धर्म परिवर्तन का शिलान्यास करने का श्रेय राज्यवर्धन को ही जाता है। हर्ष ने अशोक की भांति युद्ध में घायलों की सिसकीयों से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म को स्वीकार नहीं किया था बल्कि अपने भाई के विचारों तथा दिवाकर मित्र के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर किया था।

कन्नौज में बौद्ध धर्म की स्थिति हर्ष के प्रोत्साहन के कारण सुधर गई थी किन्तु बौद्ध धर्म की यह स्थिति हर्ष के ह्वेनसाँग से मिलने के बाद सुधरी थी। हर्षकालीन उत्तरी भारत में महायान मत अधिक प्रचलन में था। सम्राट हर्ष ने अपने शासन के प्रारम्भ में हीनयान धर्म को स्वीकार किया था किन्तु जब वह ह्वेनसाँग से मिला था तब से उसकी आस्था भी महायान धर्म में हो गई थी।

सम्राट हर्षवर्धन ने ह्वेनसाँग[6] द्वारा दिये गये सिद्धान्तों से प्रभावित होकर महान सम्राट अशोक तथा कनिष्क की तरह ही बौद्ध धर्म को राज्याश्रय दिया। इसके संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य किये। हर्षवर्धन द्वारा आदेश निकलवा कर पशु बली पर रोक लगवाई थी तथा किसी व्यक्ति के द्वारा माँस भक्षण को निषेध किया तथा उसके लिए कठोर दण्ड का विधान प्रस्तुत किया। हर्ष ने उन मठों की मरम्मत करवाई जो कि पहले से जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थे। इसके बाद हर्ष ने अनेक नये बौद्ध विहारों, मठों तथा स्तूपों का निर्माण करवाया। हर्ष ब्राह्मणों के साथ-साथ बौद्ध भिक्षुओं को अपने राजकोश से खूब दान देता था। सम्राट हर्षवर्धन द्वारा प्रत्येक वर्ष एक सभा का आयोजन किया जाता था जिसमें वह अच्छे आचरण वाले बौद्ध भिक्षुओं को तो अच्छे ईनाम प्रदान करता था तथा जो बौद्ध भिक्षु दोषी पाये जाते थे उन्हे दण्ड देता था। हर्षवर्धन की धार्मिक सहिष्णुता का ही परिणाम था कि जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण सभी भिक्षु एक साथ रहते थे।

हर्ष ने अपनी शक्ति के बल पर कश्मीर के राजा से बुद्ध के दाँत को प्राप्त किया तथा उस दाँत को उन्होने कन्नौज के पश्चिम दिशा में स्तूप का निर्माण करवाकर उस स्तूप में उसे स्थापित कर दिया था।

ऐसे ही हर्ष ने अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया। सम्राट हर्ष ने ही नालन्दा विहार का निर्माण करवाया। हर्ष ने बौद्ध धर्म के महायान मत के संरक्षक के रूप में उसके प्रचार के लिए अनेक कार्य किये थे। जिनमें सबसे प्रमुख कार्य कन्नौज की धर्मसभा का आयोजन था।[7] इस सभा का प्रारम्भ हर्ष ने बुद्ध की पूजा से किया इस सभा के अन्तर्गत हर्ष ने बौद्ध धर्म के दोनों मत हीनयान तथा महायान, जैन भिक्षु, ब्राह्मणों का भी आमंत्रित किया था तथा उनमें वाद-विवाद करवाया था ताकि वह महायान मत को अन्य धर्मों से सर्वश्रेष्ठ बना सके।

इसी कड़ी में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रयाग मे भी हर्ष द्वारा महामोक्ष सम्मेलन का आयोजन किया जाता था जो कि प्रत्येक पाँच वर्षों से आयोजित किया जाता था। जिसका प्रारम्भ भी वह बुद्ध की पूजा के साथ करता था। सम्राट हर्ष नालन्दा[8] विश्वविद्यालय के भी संरक्षक थे। नालन्दा विश्वविद्यालय उस

समय विद्या का केन्द्र था। इस विश्वविद्यालय में कई सहस्त्र छात्र विद्योपार्जन करते थे। बहुत से छात्र तो अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने आते थे। ह्वेनसाँग ने भी अपनी बौद्ध धर्म सम्बन्धी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए इस विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था। हर्षवर्धन भी इस विश्वविद्यालय को अपने कोष से सहायता प्रदान करते थे।

निष्कर्ष

हर्षवर्धन जिन्हें हर्ष भी कहा जाता है, प्राचीन भारत (590-647 ई.) में एक राजा थे जिन्होंने उत्तरी भारत में 606 ई से 647 ई तक राज किया। वह अंतिम बौद्ध सम्राट् था जिसने पंजाब छोड़कर शेष समस्त उत्तरी भारत पर राज्य किया।

हर्षवर्धन बौद्ध धर्म के महान संरक्षक थे, जिन्होंने अपने साम्राज्य में बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय को बढ़ावा दिया, कन्नौज और प्रयाग में बौद्ध सभाओं का आयोजन किया और बौद्ध भिक्षुओं के लिए स्तूप और यात्री विश्रामगृह बनवाए[9]।

अत: हम कह सकते हैं कि, हर्ष ने सम्राट अशोक तथा कनिष्क[10] की भांति ही बौद्ध धर्म को राज धर्म घोषित किया था तथा इसका प्रचार-प्रसार किया था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास
2. सिन्हा जे.बी., महात्मा बुद्ध तथा भारत के बौद्ध तीर्थ
3. आचार्य चतुरसेन, बुद्ध और बौद्ध धर्म
4. ह्वेनसाँग, अनुवादक शर्मा, ठाकुर प्रसाद, ह्वेनसाँग की भारत यात्रा
5. शर्मा कृष्णगोपाल, जैन हुकमचन्द, शर्मा मुरारीलाल, भारत का इतिहास
6. बाण, अनुवादक, पाठक जगन्नाथ, हर्षचरितम्
7. क्लोस्टरमाइर, क्लॉस (1999)। बौद्ध धर्म: एक संक्षिप्त परिचय। वनवर्ल्ड प्रकाशन। आईएसबीएन 978-1-85168-186-0.
8. लैमोटे, ई. (1976). भारतीय बौद्ध धर्म का इतिहास . लौवेन: पीटर्स प्रेस.
9. ओबर, डगलस. डस्ट ऑन द थ्रोन: द सर्च फॉर बुद्धिज्म इन मॉडर्न इंडिया (स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2023)
10. अकीरा हीराकावा, पॉल ग्रोनर, भारतीय बौद्ध धर्म का इतिहास: शाक्यमुनि से लेकर प्रारंभिक महायान तक । मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन द्वारा पुनर्मुद्रण, 1993

भारत में महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता

डॉ० शम्मी कुमारी

कॉन्ट्रैक्चुअल असिस्टेंट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ इकोनॉमिक्स, डोरंडा कॉलेज, रांची यूनिवर्सिटी, रांची, झारखण्ड

Abstract: महिला सशक्तिकरण से जुडे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मुद्दे पर संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किया जाता है। महिलाएँ अपने जीवन और पेशे के बारे में निर्णय लेने और अपनी पूरी क्षमता का एहसास करने के लिए तेजी से सक्त हो रही है । महिला सशक्तिकरण महिलाओं को संसाधनों, परिसंपतियों और आय पर नियंत्रण और लाभ उठाने की अनुमति देता है।

Key Word: सशक्तिकरण, लौगिक समानता, गार्गी, मैत्रेयी, प्राचीन भारत, विदेशी विजय, गरीबी, अशिक्षा, राजनीतिक, समाजिक, आर्थिक, योजना, कुपोशण, लिग अनुपात, विकसित भारत

परिचय: महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओं को प्रगति और निर्णय लेने का प्रक्रियाओं में शामिल करना। उन्हें समाज में विकास और तरक्की के लिए समान अवसर प्रदान करना और लौगिक आसमानता को अस्वीकार करना।

प्राचीन भारतीय काल खण्ड में महिलाओं को पुरूशों के बराबर माना जाता था और लिंग के आधार पर कोई भेद भाव नहीं था। उस समय समाज महिलाओं को जननी अर्थात माँ मानता था। वे अपनी मूल अधिकारों का आनंद लेती थी, जहाँ वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र थी। उस समय ऋशियों की पतिनयां अपने पतियों के साथ आध्यत्मिक और राजनितिक गतिविधियों के भाग लेने के लिए तैयार थी। गार्गी, मैत्रेयी, सीता, द्रौपदी और अलापा की उपलब्यिां प्राचीन भारत की विदुशी महिलाएँ थी।

मध्यकालीन काल में भारत में महिला संशक्तिकरण गिरावट की तरह बढ़ने लगी। विदेशी विजय उस युग में महिलाओं की स्थिति में गिरावट का मुख्य कारण है। महिलाओं को पर्दा धारण करना पड़ा, जिससे उनकी आजादी पर असर पड़ा। समाज में कई बुराईयों को जन्म दिया, जिसमें सती प्रथा, जौहरख् लड़कियों को शिक्षा न मिलना, बाल विवाह।

आजादी के बाद भारत में महिला सशक्तिकरण पर जोर दिया जाने लगा। 1970 के दशक के पश्चात् भारत में महिला सशक्तिकरण और लौगिक समानता आन्दोलन का नवीनीकरण हुआ। वर्त्तमान समय में भारत में महिला सशक्तिकरण 21वीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण चिंताओं में से एक बन गया है।

भारत में महिलाओं को आज सभी क्षेत्रों में वैधानिक रूप से समान अधिकार प्राप्त है लेकिन समाज में उन्हें आज भी इसके लिए संघर्श करना पड़ रहा है। हाल के वर्शों में महिला सशक्तिकरण पर सरकार नए सिरे से ध्यान केंद्रित करते हुए बहुत से क्रार्यकम प्रारंभ किऐ हैं-

उदाहरण स्वरूप:- उज्वला योजना, कामकाजी महिला छात्रवास योजना, वेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, महिला ई-हाट अदि।

महिला सशक्तिकरण महिलों को मोटे तौर पर तीन मुख्य आयामों मे विभाजित किया जाता है:-

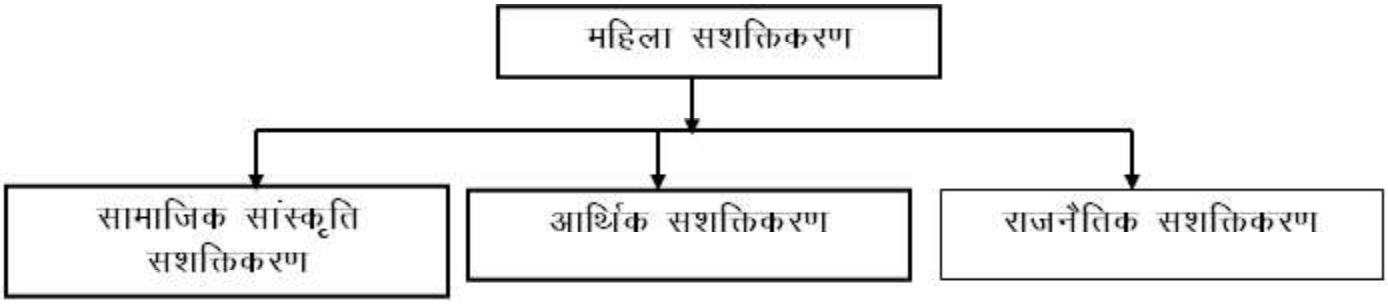

महिला शक्तिकरण के आयाम

सामाजिक-सांस्कृतिक सशक्तिकरण:

महिला सशक्तिकरण के सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम के अन्तर्गत समाज में कानून व सुरक्षा, महिला अपराधिकरण पर रोक महिर्ला उनपीडन को खत्म करना शिक्षा का अधिकार और सामाजिक भागीदारी शामिल।

आर्थिक सशक्तिकरण:

आर्थिक रूप से विकसित महिलाएं विकसित भारत का आधार है। आर्थिक सशक्तिकरण के अंतगर्त्त उन्हें काम का अवसर प्रदान करना और बाजार तक वेहतर पहुच प्रदान करना है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिलाएं शिक्षा और समाज को वेहतर स्थिति की तरफ ले जा सकती है। आर्थिक रूप से मजवूत महिलाओं में निर्णय लेने की मजवूत क्षमता पाई जाती है। आर्थिक रूप से सशक्त महिला ही देश को विकसित भारत 2047 तक ले जा सकती है।

राजनीतिक सशक्तिकरण:

दुनिया भर में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। राजनीतिक सशक्तिरण ऐसी नीतियों बनाने का समर्थन करता है जो सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों दोनों में महिलाओं के लिए लैगिक समानता का समर्दन करती है। भारत में हाल ही में नरी शक्ति बंदना अधिनियम विधायक पारित करने का ऐतिहासिक कदम उठाया जिसमें महिलाओं के राजनीतिक नेतृत्व के महत्व पर बल मिला।

भारत में महिला सशक्तिकरण और लैगिक समानता की अवधारण आपस में एक दूसरे से संबंधित है। वर्त्तमान में लैगिक समानता तथा महिला सशक्तिकरण की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण सुधार हुए है फिर भी भारत में गहराई से देखा जाए तो राजनीतिक असमानता, सामाजिक सांस्कृतिक असमानता और आर्थिक असमानता की जड़े गहराई तक अपनी जगह

भारत मे लैगिक असमानता के कुछ महत्वपूर्ण अंकडे निम्न हैं:-

- लिंग अनुपात 2011 के अनुसार 1000 लड़को पर 918 लड़किया
- Gender Cap report 2023- लौंगिक असमानता के मामले में 146 देशों by World Econome form (WEF) में भारत का स्थान 127वाँ है।
- National Family Health Survey 2019.21
- कुपोशण -15-49 वर्श 18.7 प्रतिशत महिलाएं कम वजन

15-49 वर्श 21.2 प्रतिशत अविकसित

15-49 वर्श 53: एनीमिया से पिडित

महिला सशक्तिकरण योजना-

भारत सरकार की योजना	उदेश्य
बेटी बचाव पढ़ाव योजना	• लागू हुआ 2015 • बलिकाओं के अस्तिाव एवं संरक्षण को सुनिष्चित • लागू हुआ 2016 • धुँआ रहित ग्रामीण भारत • महिलाओं की स्वस्थ सुरक्षा • महिलाओं की समय बचत
उज्जवल योजना	• लागू हुआ 2016, • धुंआ रहित ग्रामीण भारत • महिलाओं की स्वस्थ सुरक्षा • महिलाओं की समय बचत
प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना	• वर्ष 2017 • मातृत्व लाभ प्रदान करने • गर्भवती माताओं को प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण • माताओं को पोषण संबंधी आवष्कताओं को पूरा करने में मदद
सुकन्या समृद्धि– योजना	• लागू वर्ष 2015 • उदेष्य बालिकाओं की ष्िक्षा और विवाह का खर्च • आयु सीमा 10 वर्ष से कम • न्यूनतम निवेष रू. 250 से 1,50,000प्रति व्याज दर 8:
महिला ई–हाट	• ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफार्म • केन्द्र सरकार की Digital India Stand up India का हिस्सा। • उद्देष्य महिलाओ उधमियों की रचनात्मक को निरंतर समर्थन करके वित्तिय समावेष्ान को मजबूत बनाना।

शिक्षा:- साक्षरता दर (जनगणना 2011) के अनुसार

देश की साक्षरता - 74.04%

पुरूशो - 82.14%

महिलाओं - 65.46%

बाल विवाह - 20-24 वर्श की आयु की 23.3% महिलाओं का विवाह 18 वर्श की आयु से पहले अर्थात बाल विवाह हुआ।

आर्थिक विशमता:(Periodic Labour Force Survey)

2021-2022

ग्रामीण		*शहरी*		*कुल*	
पुरूष	*महिला*	*पुरूष*	*महिला*	*पुरूष*	*महिला*
78.21%	36.6%	74.7%	23.8%	77.2%	32.8%

राजनीतिक असमानता 2022-23

- संसद में 14.94: ही महिलाएँ
- राज्य विधान सभा में 13.9: महिला प्रधिनिधित्व
- स्थानिक पंचायतों में पंचायती राज मंत्रालय के अनुसार 46.94: पंचायत निर्वाचित महिलाएँ।

अतराष्ट्रीय श्रम संघ (ILO)

- भारत में महिलाओं का 81.8 रोजगार अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में केंन्दत है।

इन ऑकडों से पता चलता है कि भारत में हर क्षेत्र में लैंगिक असमानता का सामना करना पड़ता है। भारत में लैगिक भेदभाव गर्भ से ही शुरू हो जाता है।

भारत में लिग आसमानता के महत्वपूर्ण कारण है गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक रीति रिवाज, अशिक्षा, महिला विरोधी रवैया।

भारत एक मात्र ऐसा देश है जहाँ अधिक होती है भारत में तब तक पूरी तरह से विकसित नहीं हो सकता जबतक लड़कियों एवं लड़कों दोनों को अपनी पूरी क्षमता का पहुँचने के लिए समान रूप से सर्मथन न दिया जाए।

भारत में लैगिक समानता के प्रोत्साहन करने के समाधान:

शिक्षा कौशल खेल और कई अन्य क्षेत्रों में निवेश करके और उन्हे सशक्त बनाकर लड़कियों के लिए योजना के मूल्य को बढ़ाना महत्वपूर्ण है। लड़कियों को सक्षत बनाने के लिए योजना निवेश और सहयोग की आवशकयता है। इसमें शामिल है:-

स्वास्थ सेवा, पोशण के सुधार, शिक्षा बल संरक्षण सामाजिक नीति आदि।

निश्कर्श: भारत में लैगिक समानता लाकर महिला सशक्तिकरण को मजबूत किया जा सकता है। जो सोच महिलाओं को वस्तु मानती है उसे खत्म कर देनी चाहिए। हमारा देश जो 247 ई में विकसित भारत का लक्ष्य है उसे तभी सफलता मिलेगी जब हमारे देश में महिलओं के प्रत लैगिक असमानता समाप्त होगी। भारत में अगर 5 वी अर्थव्यवस्था से 3 वी अर्थव्यवस्था में लाना है अर्थात सशक्त भारत बनाना है तो महिलाओं को अर्थिक, राजनीतिक और समाजिक रूप से मजबूत बनाना होगा।

संदर्भ सूची

जनगणना 2011, Gender Gap Report NFHS, PlFS Report, NSO, RBI Report, NSSO, भारत सरकार महिला और बाल विकास मंत्रालय।

वाल्मीकि कबीर एवं तुलसी की समसामयिक सामाजिक अवधारणा

डॉ० पूजा सिन्हा

अतिथि प्राध्यापिका, स्नातकोत्तर, दर्शनशास्त्र विभाग, गणेशदत्त महाविद्यालय, बेगूसराय

सारांश-

वाल्मीकि, कबीर और तुलसी ने लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत होकर ही महाकाव्य रामायण की रचना की और उदात्त संस्कृति के साथ-साथ उसमें सामाजिक जीवन की व्यापक दृष्टि अपनायी। रामायण के नायक एवं उनके सेवक हनुमान् ने जन-जन के कष्ट निवारण हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। रामायण समाज का पथ-प्रदर्शक, लोकजीवन का काव्य, समता मूलक समाज का आदर्शमय रूप प्रस्तुत करती है। रामायण में सामाजिक न्याय तथा समानता का यथार्थ चित्रण है। इसमें सामाजिक विकास की समरसता का अद्‌भुत उदाहारण है। वर्तमान समसामयिका समाज में अशांति फैला हुआ है इस अशांति को दूर करने के लिए वाल्मीकि, कबीर एवं तुलसी के विचार का पुनः अनुसरण करके हम शांतिमय समाज की स्थापना कर सकते हैं।

कुंजी शब्दः- सामाजिक, लोकमंगल, संस्कृति, सर्वस्व, आदर्शमय, अद्‌भुत, शांतिमय, दृष्टि।

वाल्मीकि और तुलसी ने लोकमंगल की उदात्त भावना में परिचालित होकर ही महाकाव्य रामायण की सर्जना की है। फलतः रचना में उदात्त संस्कृति के साथ-साथ लोक-संस्कृति के तत्त्व अपने आप ही समाहित हो गये हैं। एक तरफ जहाँ उदात्त संस्कृति के अनुपम जीवन मूल्यों की स्थापना हुई है, वहीं दूसरी तरफ लोक संस्कृति जीवन की गहराई से समझने-परखने का आधार प्रदान हो सकी है। रामायण में सामाजिक जीवन की व्यापक दृष्टि अपनायी है। उनके नायक श्रीराम राजपुत्र होते हुए भी जनमानस के अन्तः में प्रविष्ट कर जाने वाले जन नेता हैं। श्रीराम के अनन्य श्री हनुमान् भी जनहित चिंतक अति कल्याणकारी, जन-जन का संकट मोचक, सर्व पाप-तापहारी एवं कष्ट निवारक हैं-

लोक-लोकप-कोक- कोका-नदशोक-हर,
हंस-हनुमान् कल्याणकर्ता।[1]
को नहिं जानत है जग में
कपि संकट मोचन नाम तिहारो।।[2]

हनुमान् के बारे में हम कह सकते हैं कि वे एक विशिष्ट सामाजिक व्यक्तित्त्व हैं। वे आधुनिक वंचक, धूर्त नेताओं के समान समाज कल्याण करने की शपथ लेकर स्वयं के कल्याण में तत्पर रहने वाले, जनता के पैसे पर वायुयान का सैर करने वाले तथा अपनी सुविधा और अपना वेतन बढ़ाकर आनन्द मनाने वाले नहीं हैं। वे तो दीन-दुखियों का दुख-दर्द दूर करने में ही जीवन समर्पित करने वाले हैं-

दीनार्त दानवदहनो वरदो वरेण्यः संकट मोचन विभुस्तनुतो शुभं नः।[3]

वे सत्ताधारी, शक्तिशाली बाली को सहयोग नहीं देकर वे समस्याग्रस्त, प्रताड़ित सुग्रीव का दुख- दर्द बाँटने और दूर करने में ही अपने जीवन को समर्पित करते दिखाई देते हैं। निर्बल के सहायक हनुमान् ने कमजोर सुग्रीव का संकट हरण किया। दुख-दर्द से युक्त श्रीराम का भी दुःख-दर्द छुड़ाया हनुमान् ने। वस्तुतः ये दुखहारी संकटमोचन हैं। शोक सन्तप्त सीता का शोक हरण किया हनुमान् ने ही। लक्ष्मण के प्राण की रक्षा की हनुमान् ने ही। भरत को भी प्राण त्यागने से बचाया हनुमान् ने ही-

दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृत रामवैभव स्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतोमूर्तिः।।[4]

सही मायने में अगर हम चिंतन करते हैं तो पाते हैं कि रामायण उच्चतम धरातल का महाकाव्य रहा है। यह उच्चतम भावबोध का महाकाव्य है। यह युग-मंगल का सारथी महाकाव्य रहा है। शिवम् का दिशा निर्देशक महाकाव्य है। "सुरसरि सम सब कह हित होई" एवं "सबहिं सुलभ सब दिन सब देश" का ऐसा महाकाव्य है, जो जन-जन की संस्कृति एवं चेतना का प्रतिपल रक्षण एवं सिंचन कर रहा है। महाकवि का स्वान्तः सुखाय लोक-हिताय, जन हिताय होकर जन-मन का रंजन करता हुआ उनकी चेतना का उदात्तीकरण कर रहा है। वस्तुतः वाल्मीकि, कबीर और तुलसी अपने ही युग के नहीं अपितु समसामयिक युग के जन नेता बन गये हैं तथा उनके महाकाव्य के महान् पात्र हनुमान् भी जननायक हो गये हैं और इनके पात्र का योगदान समसामयिक समाजिक अवधारणा के लिए अभी भी महत्वपूर्ण है।

उनके जननायक होने का मूल पक्ष है निर्बलों का सहायक होना। उनका संकटहारी रूप एवं बिना किसी भेदभाव के सबके लिए मंगलकारी एवं भवभयहारी है। उनके बारह नाम सभी तरह के संकटों का नाशक है-

हनुमान् अञ्जनी सूनर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः।
उदधिक्रमणश्चौव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवदर्पहा।।[5]

वाल्मीकीय रामायण के के जीवन में तीन शब्द मुख्य रूप से आते हैं- चरित्र, लीला और कथा। हनुमान् के जीवन की उदात्त विशेषताओं का चरित्र कहना समीचीन होगा। जबकि उनके द्वारा किये गये अभिनय को लीला कहा जायेगा तथा उनके जीवन मे घटित होने वाली घटनाओं के वर्णन क्रम को कथा कहा जायेगा। उनके द्वारा की जा रही लीलाओं को लोगों ने चरित्र समझकर भ्रम पाल लिया है और उन्हें निरा बन्दर मान बैठा है।

समाज का पथ प्रदर्शक महाकाव्य रामायण-

कवि के अन्तरात्मा की भावमयी अभिव्यक्ति का ही नाम काव्य है। महाकाव्य रामायण महर्ष वाल्मीकि की विशिष्टतम विशेषता का पावन पुंज स्वरूप है। वस्तुतः कवि या लेखक अपने राष्ट्र अथवा समाज के मस्तिष्क और मुख दोनों होते हैं। कवि समाज का दिव्य द्रष्टा एवं सशक्त स्रष्टा होता है। समाज एवं राष्ट्र के स्वरूप को सजाना-संवारना ही उसका मुख्य कर्तव्य होता हैं। इसी लिए कवि वाल्मीकि भारतीय समाज एवं राष्ट्र का उन्नायक एवं विमल विधायक बन गए हैं। वे पावन प्रजापति स्वरूप हैं। रामायण के माध्यम से भारतीय समाज को सजाना- सँवारना ही उनका लक्ष्य एवं उद्देश्य प्रतीत होता है। यह महाकाव्य भारतीय समाज के आचार-विचार, सभ्यता संस्कृति, धर्म-दर्शन एवं रीति-नीति का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत करता हुआ दीख पड़ता है।

लोक-जीवन का काव्य-

रामायण लोक-जीवन का काव्य है। इसके दिव्यतम नायक हैं- दिव्य चरित्र सम्पन्न, देश-वासियों के जीवन में रम्य- रसायन- सा रम जाने वाले रमणीय श्रीराम जिनकी चरित्र-ज्योति से यह महाकाव्य उद्भाषित है। यह महाकाव्य लोक जीवन में प्रिय है। सामान्य जनों, धनी- से- निर्धनों, स्त्री-पुरूषों तथा आबाल वृद्धों के बीच इसकी महत्त्वपूर्ण ख्याति है-

रामायणं नामपरं तु काव्यं पुण्यप्रदं वै शृणुत द्विजेन्द्राः।
यस्मिन् श्रुतेजन्म जशर्दि नाशो भवत्यदोषः सनरो उच्यतः स्यात्।।[6]

समतामूलक समाज का समदर्शी स्वरूप-

महर्षि वाल्मीकि का रामायण समाज के समतामूलक समदर्शी स्वरूप का आदर्शमय रूप प्रस्तुत करती है। रामायण के श्रीराम मानवता के महान् मानदण्ड हैं। उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण मानव-समाज एक समान है। वे सबको समान भाव से देखते एवं मिलते हैं। मानव के अन्तःकरण में ज्ञान की गंगा प्रवाहित कर उसमें समत्व का भाव जगा देने वाला अलौकिक जादू रामायण महाकाव्य में सन्निहित हैं-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।[7]

आज के भारतीय समाज में जहाँ जनता-नेता, सत्ताधारी-पदाधिकारी, शासित-शासक, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, गुरू-शिष्य, परिवार एवं समाज के प्रत्येक स्थल पर विचार-वैभिन्य एवं मत- मतान्तर हैं। ऐसे समय में महाकवि वाल्मीकि के रामायण में सन्निहित समदर्शिता मूलक दृश्यों एवं चरित्रों का समीक्षात्मक विश्लेषण अत्यन्त अपेक्षित है। वास्तव में महाकवि वाल्मीकि एक अति महान् उद्देश्य प्रेरित एवं अनुप्राणित प्रतिबद्ध कवि हैं। उनकी काव्यानुभूति तत्कालीन एवं वर्तमान समाज की चेतना के केन्द्र बिन्दु पर टिकी है। अति संवेदनशील महाकवि ने देश एवं समाज के स्वरूप को देखा एवं परखा कि समाज अपनी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रिय मूल धारा से काटकर अलग-थलग पड़ रहा था। वेदों में वर्णित उदात्त तथ्य एवं पुराणों की मणि-मंजूषा की कुंजी अज्ञानान्धकार में खोने लगी थी। अस्तु, टूटते हुए समाज के समक्ष महाकवि ने समदर्शिता समन्वित अति आदर्श समाजवादी उद्घोषणा के साथ प्रस्फुटित कर दिया आदि महाकाव्य रामायण।

रामायण का महत्त्व जितना आध्यात्मिक दृष्टि से है, उससे तनिक भी कम महत्त्व लौकिक एवं सामाजिक दृष्टि से नहीं है। समदर्शिता समन्वित समाज का जो आदर्श रूप उनकी मानसिक कल्पना में साकार था, उसका उपक्रम से उपसंहार तक विनियोग करते हुए रामराज्य की स्थापना के रूप में परिणति प्रस्तुत की है। महाकवि वाल्मीकि के राम राज्य की व्यवस्था में आपसी भेदभाव की स्थिति नहीं है समतामूलक समाज की स्थापना एवं सामाजिक न्याय का पूर्ण प्रतिफलन हो सका था राम राज्य में। श्रीराम ने पुत्र की भाँति प्रजा का पालन करते हुए दस हजार या ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य- शासन किया-

औरसानिव रामोपि जुगोप पितृवत्प्रजाः।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः।।
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमुपास्त सः।।[8]

वाल्मीकि के राम ऐसे सर्व सुलभ, सर्व हितकारी, समदर्शी हैं, जिन्हें हम अपने जीवन में जिस रूप में पाना चाहे, ले आना चाहें, हम ला सकते हैं, पा सकते हैं। महाकवि की दृष्टि में श्रीराम जो महाकाव्य के नायक हैं। सर्वसुगम, सर्वसुलभ, परम पावनी गंगा के समान पावन हैं।

सामाजिक न्याय की प्राप्ति-

वाल्मीकीय रामायण के महानायक श्रीराम के राज्य में सामाजिक न्याय मात्र नारा ही नहीं था वरन् समाज के कमजोर से कमजोर व्यक्ति को भी समानता के साथ सामाजिक न्याय प्राप्त होता था। जनता के बीच किसी भी प्रकार का वैर-विरोध नहीं था और न उच्च-नीच का भाव ही था।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण महानायक श्रीराम, आनुवांशिक परम्परा के सम्राट होते हुए भी, राजतन्त्रीय राजा होते हुए भी जनता के हृदय के हार हैं। प्रतीत होता है कि वे आधुनिक प्रजातन्त्र के चुने गये जनमान्य नेता हैं। पंचों की राय लेकर राजा दशरथ ने उन्हें राजा बनाना चाहा लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि मन्थरा और कैकेयी इसका विरोध कर रही थीं। जब तक राज्य में एक भी व्यक्ति विरोध करता रहेगा, तब तक वे राजा बनना नहीं चाहेंगे। यही उनका जीवन- दर्शन है। जीवन का उत्तमोत्तम आदर्श है। आधुनिक प्रजातन्त्रीय व्यवस्था की भाँति वे बहुमत के नेता न होकर सामाजिक न्याय प्रणाली के सर्वमान्य नेता हैं।

वस्तुतः महर्षि वाल्मीकि की रामायण में सामाजिक समरसता का जो उदात्त यथार्थ चित्रण वर्णित है, वह विश्व के किसी अन्य स्थलों पर प्राप्त नहीं होता। आज आवश्कता है कि विश्व के जन-जन के कण्ठ-कण्ठ में इसका रसास्वादन कराया जाय तभी आतंकवाद, नस्लवाद आदि को समाप्त कर प्रेमभावना को भरा जा सकता है।

तुलसीदास सगुण शाखा के भक्तकवि हैं। उनके आराध्य मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम हैं। अवधी भाषा में लिखा गया "रामचरितमानस" तुलसी की कीर्ति का मूल आधार स्तम्भ हैं।[9] यह सुप्रसिद्ध महाकाव्य है, जिसमें राम-कथा सात काण्डों में विभक्त हैं। वि.सं. 1631 में रामनवमी के दिन तुलसीने "रामचरितमानस" की रचना प्रारंभ की।[10] दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिनों में ग्रंथ की समाप्ति हुई। वि.सं. 1633 में मार्गशीर्ष शुक्कलक्ष में राम विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। तुलसी न सिर्फ अनन्य रामभक्त थे, परंतु अपने समय के जागरूक लोकनायक भी थे। वे शील, सौंदर्य और शक्ति के उपासक थे। तुलसी की भक्तिभावना में लोक-मंगल की प्रबल भावना है। उनके आराध्य राम शील, सौंदर्य और शक्ति, तीनों के गुण सागर हैं। तुलसी के उस भक्ति भावना की आवश्यकता वर्तमान समाज में भी है क्योंकि इसी से समसामयिक सामाजिक अवधारणा स्थापित करने में बल मिलेगा और समाज में शांति का माहौल बनेगा।

सामाजिक अवधारण के विषय पर चर्चा करने के पूर्व हमें कबीर और तुलसी के विचार को समझना होगा। कबीर के राम और तुलसी के राम अलग-अलग हैं। कबीर के राम निर्गुण ईश्वर हैं, निराकार ब्रह्म हैं। वे न तो दिखायी देते है, न रूप, रंग, आकार सम्पन्न हैं। वे न तो मूर्तिपूजा के रूप में विद्यमान हैं, और न कहीं अवतार धारण करते हैं। वे तो सर्वव्यापी हैं, अणु अणु में बसे हुए निर्गुण, निराकार परब्रह्म है, जिन्हें कबीर राम कहकर पुकारते है, जब कि तुलसीदास के राम सगुण ईश्वर है; साकार भगवान हैं, जिन्होंने राजा दशरथ के घर अवतार धारण किया हैं। तुलसी के राम राजा के पुत्र है, जो श्रेष्ठ मानव है। शील, सौंदर्य और शक्ति से सम्पन्न राम तुलसी के आराध्य जो मर्यादापुरूषोत्तम राम हैं। तुलसी ने अपने महाकाव्य में राम के विभिन्न रूप जैसे कि आदर्श मानव, आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श वीर, आदर्श पिता को चित्रित किया हैं। तुलसी के "रामचरितमानस" और राम का प्रभाव मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" और राम पर पड़ा है। तुलसी के राम परब्रह्म, विष्णु के अवतार और मर्यादा पुरूषोत्तम है। गुप्तजी ने कहा है कि "रामचरित मानस" के राम "साकेत" में नायकों के भी नायक और सबके शिक्षक अथवा शासक के रूप में प्रतिष्ठित है।[11]

आदिकवि वाल्मीकि के राम भगवान न होकर महापुरूष हैं, जबकि तुलसीने ईश्वर का महिमा मंडित रूप प्रदान कर राम को हमेशा के लिए जीवन और साहित्य का अनिवार्य अंग बना दिया है। तुलसीदास "मानस" में कहतें हैं "एक अनीह अरूप अनामा। जब सच्चिदानंद परधामा। ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। ते हिं धरि देह चरित कृत नाना।"[12]

"मानस" के राम सीता या लक्ष्मण से हास्य विनोद नहीं करते, परंतु "सांकेत" में मानवीय पक्षों और संवेदनशीलता को अधिक स्थान मिला हैं। "मानस" में ईश्वर की महानता का प्रदर्शन हैं, गुप्तजी के काव्य में मानव के ईश्वरत्व का प्रदर्शन हैं।[13] "रामचरति मानस" के पात्रों के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन सही हैं कि "किसी पात्र में उसे शील रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए कई अवसरों पर उसकी अभिव्यक्ति दिखानी पडती है। "रामचरित मानस" के भीतर राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ और रावण ये कई पात्र ऐसे हैं जिनके स्वभाव और मानसिक प्रवृत्ति की विशेषता गोस्वामीजी ने कई अवसरों पर प्रदर्शित भावों और आचरणों की एकरूपता दिखाकर प्रत्यक्ष की हैं।"

राम "रामचरित मानस" महाकाव्य का प्रधान पात्र हैं। मुख्य पात्र होने के कारण भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उनका जीवन दिखाया गया है।[14] उनकी मानसिक स्थिति को झकझोरनेवाले, उभारनेवाले कई प्रसंग उनके सामने आये हैं। लक्ष्मण भी हर परिस्थिति में उनके साथ रहे, अतः उनके सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। कविने राम-लक्ष्मण के चरित्रों का चित्रण अधिक व्यापकता के साथ पूर्ण किया है। भरत के चरित्र का चित्रण संक्षिप्त हैं, किन्तु जितना अंकित है, उतना सब से उज्जवल, निर्मल और निर्दोष है। जिस परिस्थिति में भरत का चित्रण हुआ है, उससे बढ़कर शील की कसौटी और क्या हो सकती है?[15]

वीरता के साथ-साथ धीरता, गंभीरता और कोमलता राम का गुण है। यही उनका "रामत्व" है। बाल्यावस्था में जिस प्रसन्नता के साथ राम और लक्ष्मणने घर छोडा और विश्वामित्र के साथ बाहर रहकर अस्त्रशिक्षा प्राप्त की तथा विध्नकारी विकटराक्षसों के साथ अपना बल आजमाया यह उनके उल्लासपूर्ण साहस का सूचक है जिसे "उत्साह" कहते है। बाल्य अवस्था में ही उन्होंने विकट प्रवास किये थे। चौदह वर्ष वन में रहकर अनेक कष्टों का सामना करते हुए, जगत को क्षुब्ध करनेवाले कुंभकर्ण और रावण जैसे राक्षसो को मारा। "मानस" के द्वारा हम राम और लक्ष्मण जैसे दो अद्वितीय वीरो को पृथ्वी पर पाते है।[16] वीरता की दृष्टि से देखें तो हम इन दो पात्रों में कोई भेद नहीं कर सकते। पर सीता स्वयंवर प्रसंग में दोनों भाइयों के स्वभाव में काफी फर्क दिखायी देता है जो अंत तक दिखायी देता है।

राम-वनगमन-प्रसंग में राम की महत्तमता अथवा पुरूषोत्तमता प्रशांत-गहन स्वरूप प्राप्त करती है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। पितृभक्ति के इतिहास में राम का स्थान श्रवण कुमार या भीष्म के साथ साथ सर्वश्रेष्ठ है। यहां पर वे एक सच्चे आज्ञाकारी पुत्र के रूप में सामने आते है। तुलसी के शब्दो में

"मन मुसुकाइ भानुकुलभानू। राम सहज आनंदनिधान।।
सुनु जननी, सोइ सुत बड़भागी, जो पितु-मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु-पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि, सकल संसारा।।"

तुलसीदास तन, मन, जीवन, सभी दृष्टियो से राममय है। राम का चरित और चरित्र इतना अधिक महान और विशद है कि उनसे सम्बन्ध कथानक ग्रहण कर कोई भी कवि महाकाव्य या मुक्तक काव्य की सृष्टि कर डालता है।

कबीर की वाणी संग्रह

कबीर की वाणी का संग्रह श्बीजकश के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं- रमैनी, सबद और साखी यह पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है। कबीर परमात्मा को मित्र, माता, पिता और पति के रूप में देखते हैं। यही तो मनुष्य के सर्वाधिक निकट रहते हैं। वे कभी कहते हैं-

हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया तो कभी कहते हैं; हरि जननी मैं बालक तोरा।
और कभी बडा हुआ तो क्या हुआ जैसै[17]

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुँच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

कबीर की राम बनाम् निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी।
रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।[18]

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढाँचे (फ्रेम) में बँध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे, जिनकी चर्चा हम इस लेख में आगे करेंगे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालाँकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि श्नाम रूप से बढ़कर है, लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खाँचे में बाँधे जाने से रोकने की कोशिश की।[19] कबीर के राम निर्गुण- सगुण के भेद से परे हैं। दरअसल उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग कियादृश्निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की जरूरत नहीं। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने श्रमता रामश नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं।

कबीरदास ने जनसमुदाय को एक आशा की किरण एवं भय से मुक्ति देकर भाव-भक्ति की आत्मीय शांति में जीवन को गतिशीलता प्रदान कर सुरक्षा का शक्तिशाली कवच पहनाया। बाह्य जगत के अनेक झंझावातों के विपरीत आन्तरिक जगत की यात्रा में मानवीय मूल्यों की शाश्वतता को स्थापित करने के प्रयास में ही कबीर ने भक्ति की शक्ति को समर्थन दिया था।[20]

कबीर के राम विषयक अवधारणा के पीछे हमें तत्कालीन मध्य युगीन समाज के बारे में कुछ विशिष्ट तथ्यों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना होगा और इसके साथ ही यह भी अवगत करना होगा कि आखिर कबीर के समक्ष ऐसी कौन ही चुनौतियाँ थीं जो उन्हें राम विषयक विवेचना में प्रखर नहीं होने दिया। दरअसल कबीर एक युग दृष्टा कवि ही नहीं थे बल्कि आपके व्यक्तित्व में एक धर्मनिष्ठ साधक और कर्मनिष्ठ समाज सुधारक भी वर्तमान था। इसलिए कबीर ने तत्कालीन सामाजिक गतियों की निस्सारता को समझा और निर्गुणोपासना की स्थापना में आत्मदान दिया।

कबीर के समकालीन समाज में मूर्ति पूजक हिन्दुओं और मूर्ति भंजक मुस्लिमों के बीच परस्पर वैमनस्यता की ऊँची दीवारें खड़ी थीं और यही वह उचित समय था जब निर्गुणोपासना के द्वारा कबीर अवतारवादी, धारणाओं, मूर्ति पूजा, आस्थाओं, बहुदेववादी दृष्टियों पर भी व्यंग्य कर सकते थे। कबीर की इस निर्गुणोपासना के द्वारा ही अद्वैतवादी दर्शन, एकेश्वरवादी मत और मुस्लिम आस्था में समानता लाई जा सकती थी। यही कारण है कि कबीर भक्ति में रूपाकार को कोई महत्व नहीं है। तुलसी और सूर जैसे सगुण भक्तों के विपरीत कबीर ने निर्गुणराम नाम के स्मरण को ही निर्गुण भक्ति का आधार माना है।

निष्कर्षः-

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वाल्मीकि, तुलसी एवं कबीर के राम विषयक उपर्युक्त विवेचना जहाँ एक ओर उनके व्यक्तिगत चिंतन का आधार हो सकती है तो वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समय में व्याप्त अशांति और बुराई को दूर कर शांति व्यवस्था कायम करने में सक्षम है और आध्यात्मिक चेतना की प्रेरणास्रोत भी, क्योंकि वाल्मीकि, तुलसी एवं कबीर के राम के परमतत्व सम्बन्धी व्याख्या की गहराई में यदि हम जाते हैं तो देखते हैं कि तीनों का विचार अलग-अलग है लेकिन तीनों ने समाज के लोक कल्याण के लिए अपना विचार दिए है। निर्गुण-सगुण या द्वैत-अद्वैत से परे 'समतत्व' के रूप में लक्षित करने वाली बात नाथयोगियों के दर्शन में स्पष्टतया दिखती है। इसमें कोई बड़ी बात नहीं कि कबीर ने तत्कालीन समय में यह द्वैत-अद्वैत (निर्गुण-सगुण) सम्बन्धी विवाद यही से ग्रहण किया हो। रामचंद्र तिवारी जी के शब्दों में कहें तो "परमतत्व को द्वैत-अद्वैत से परे निर्दिष्ट करने का अर्थ था सारे विवादों से ऊपर उठ जाना। यही कबीर का अभीष्ट था।" स्पष्ट है कि कबीर के राम जैसे हैं ठीक उन्हें वैसे ही रूप में वे नहीं जाने जा सकते हैं क्योंकि राम विषयक अपनी अवधारणा में तत्वदर्शियों और पण्डितों के विवाद से ऊपर उठने के लिए कबीर ने परम तत्व को द्वैत-अद्वैत से परे बताकर हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक-साम्प्रदायिक विवादों को मिटाने के लिए ही एक जगदीश का नारा दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. विनय पत्रिका 26,
2. हनुमानाष्टक
3. शिवदत्त मिश्रकृत हनुमद् रहस्यम्- संकटमोचनस्तोत्रम्
4. शंकराचार्य कृत श्री हनुमत् पंचरत्न स्तोत्र मन्त्र-4,
5. आनन्द रामायण 85.13.58,
6. वाल्मीकीय रामायण में हनुमत् तत्त्व विवेचन पृ. 63,
7. ऋग्वेद 10.191.2,
8. अध्यात्म रा०, यु.का., सर्ग 16.33-34
9. तुलसी मानस संदर्भ, सं.डॉ. रामस्वरूप आर्य, पृ.४०१
10. तुलसीदास, "रामचरित मानस", पृ.१/१३/२
11. गोस्वामी तुलसीदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ.९३
12. दे. तुलसीदास, "रामचरित मानस"
13. दे. तुलसीदास, "रामचरित मानस"
14. तुलसीदास, "रामचरित मानस" पृ.१/२३३/२-७
15. तुलसी साहित्य के सर्वोत्तम अंश डॉ. रामप्रसाद मिश्र,, पृ.३८
16. "रामचरित मानस" पृ.२/४०/५, ७-८
17. तुलसी काव्य मीमांसा: डॉ० उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय सस्करण, 1965
18. सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण: डॉ0 मनमोहन सहगल, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, 1965
19. गोस्वामी तुलसीदास: आचार्य शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, अष्टम् संस्करण, संवत् 2010
20. तुलसीदास: डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद, प्रकाशन प्रयाग वि० वि0 प्रयाग, चतुर्थ संस्करण, 1965

माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण-अधिगम प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती रीता गुप्ता

शोधार्थी, हेमचंद यादव यूनिवर्सिटी, दुर्ग

डॉ० सोनिया पोपली

शोध निर्देशक, सेंट थॉमस कॉलेज, भिलाई

शोध सारांश:

इस शोध में शोधार्थी ने माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण अधिगम प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। न्यादर्श में दुर्ग जिले के तीन सौ- तीन सौ महिला एवं पुरुष अध्यापकों को शामिल किया गया। प्रस्तुत शोध में शिक्षकों की शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति के मापन हेतु लोधी एवं सुबुही (2018) द्वारा निर्मित 'शिक्षकों की शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति' मापनी का उपयोग किया गया। इस शोध से पता चलता है की मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 79.61 है, जबकि महिला शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 75.21 है। स्पष्ट है की मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति, महिला शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति से तुलनात्मक रूप से अधिक धनात्मक है। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है की माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक भिन्नता विद्यमान है।

कीवर्ड: मिश्रित शिक्षण-अधिगम प्रणाली, शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति

प्रस्तावना:

वर्तमान अध्ययन में शोधार्थी का उद्देश्य का माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण अधिगम प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना है। मिश्रित शिक्षण अधिगम एक शैक्षिक दृष्टिकोण है जो ऑनलाइन शिक्षण गतिविधियों के साथ पारंपरिक कक्षा निर्देश को जोड़ती है। इसे हाइब्रिड लर्निंग या मिक्स्ड-मोड लर्निंग के रूप में भी जाना जाता है।

चर:

स्वतंत्र चर- लिंग: महिला एवं पुरुष शिक्षक

परतंत्र चर- शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति

उद्देश्य:

माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण-अधिगम प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:

'माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण-अधिगम प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों में सार्थक अंतर नही पाया जाएगा'

उपकरण:

प्रस्तुत शोध में शिक्षकों की शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति के मापन हेतु लोधी एवं सुबुही (2018) द्वारा निर्मित 'शिक्षकों की शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति' मापनी का उपयोग किया गया। इस मापनी द्वारा माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत शिक्षक का शैक्षिक मीडिया के प्रति धनात्मक अथवा ऋणात्मक अभिवृत्ति का मापन किया जा सकता है। इस मापनी की विषय-वस्तु वैधता उच्च-स्तर की है तथा इसकी अर्ध-विभाजित विश्वसनीयता गुणांक 0.72 है, जो 0.01 स्तर पर सार्थक है।

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोध में चयनित न्यादर्श का आलेख तालिका 1 में दर्शाया गया है।

Table 1: Type of School and Gender-wise distribution of teachers in Sample

विद्यालय के प्रकार	सरकारी माध्यमिक विद्यालय						गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालय						कुल
शिक्षण अनुभव	१-५ साल		६-१० साल		११-१५ साल		१-५ साल		६-१० साल		११-१५ साल		
लिंग	पु.	म.	पु.	म.	पु.	म.	पु.	म.	पु.	म.	पु.	म.	
शिक्षक संख्या	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	६००
कुल	१००		१००		१००		१००		१००		१००		६००

आंकड़ो का संकलन:

न्यादर्श में चयनित शिक्षकों की शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति के मापन के लिए, प्रत्येक शिक्षक को 'शिक्षकों की शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति' मापनी के प्रश्न-उत्तर की एक-एक प्रति दी गयी। शोधार्थी ने शिक्षकों को उनकी अनुक्रिया दर्शाने की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक समझाया। तत्पश्चात, शोधार्थी ने शिक्षकों को शैक्षिक मीडिया के प्रति अभिवृत्ति मापनी में अपनी अनुक्रिया पूर्ण करने के लिए २ दिन का समय दिया गया, जिसके पश्चात् उनसे मापनी वापस ली गयी।

सांखिकीय विश्लेषण:

इस उदेश्य से सम्बंधित संकलित प्रदतों के विश्लेषण के लिए शोधार्थी द्वारा One&Way ANOVA सांखिकीय तकनीक का उपयोग किया गया। इस विश्लेषण के परिणाम को तालिका क्रमांक 2 में दर्शाया जा रहा है।

Table 2: Summary of One-Way ANOVA for Teacher's Attitude towards Educational Media

Sources of Variance	df	Sum of Squares	Mean Square	F
Between Groups	**1**	2895.207	2895.207	11.03**
Within Groups	**598**	156955.933	156955.933	
Total	**599**	159851.140		

****-Significant at 0-01 level**

तालिका 2 में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है की महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति के लिए F-अंसनम का मान 11.03 पाया गया। यह मान 0.01 समअमस तथा df = 1/599, पर सार्थक पाया गया, जिसका यह अर्थ है की मिश्रित प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं

पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक भिन्नता है। अत: शोधार्थी द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना की 'माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक भिन्नता नही पाई जाएगी' को स्वीकृत नही किया जा सकता। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है की माध्यमिक विद्यालयों में मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत महिला एवं पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक भिन्नता विद्यमान है।

अत: यह पता लगाने के लिए की महिला अथवा पुरुष में से किसकी शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति अधिक धनात्मक है, लिंग अनुसार शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं प्रमाप त्रुटी की गणना की गयी, जिन्हें तालिका क्रमांक 3 में दर्शाया गया है।

Table 3: Gender-wise N, Mean, SD & SE of Teacher's Attitude towards Educational Media

Gender	N	Mean	SD	SE
Male	300	79.61	16.21	.94
Female	300	75.21	16.19	.93
Total				

परिणाम:

मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 79.61 है, जबकि महिला शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान 75.21 है। स्पष्ट है की मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति, महिला शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति से तुलनात्मक रूप से अधिक धनात्मक है।

निष्कर्ष:

इस विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है की मिश्रित शिक्षण प्रणाली से अध्यापनरत पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति, महिला शिक्षकों की शैक्षिक मिडिया के प्रति अभिवृत्ति से तुलनात्मक रूप से अधिक धनात्मक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

- Cunningham, Diane(2021). A Case Study of Teachers' Experiences of Blended Teaching and Learning. *Journal of Online Learning Research*, v7 n1 p57-83 2021.
- Dangwal, K. L. (2017). Blended learning: An innovative approach. *Universal Journal of Educational Research*, *5*(1), 129-136.
- Hashemi, Aminuddin; Si Na, Kew.(2020). *Online Submission*, The Eurasia Proceedings of Educational & Social Sciences v18 p173-179 2020.
- Martin-Martinez, L., Sainz, V., & Rodríguez-Legendre, F. (2020). Evaluation of a blended learning model for pre-service teachers. *Knowledge Management & E-Learning,* 12(2), 147–164. https://doi.org/10.34105/j.kmel.2020.12.008
- Shand, K., & Farrelly, S. G. (2017). Using blended teaching to teach blended learning: Lessons learned from pre-service teachers in an instructional methods course. *Journal of Online Learning Research*, *3*(1), 5-30.

हरियाणवी सांगो में राष्ट्रीयता की भावना

सुमेधा शर्मा

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० बाबू राम

शोध निर्देशक, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

हरियाणवी लोक साहित्य में सांगों की भूमिका सर्वोपरि है। सांगो को हरियाणा के लोक जीवन का प्राण कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। खेती जैसे कठिन कार्य में सारे दिन के थके-हारे ग्रामीण जब सायंकाल को किसी चौपाल या बैठक में हुक्के के कश लगाते हुए ढोलक, खड़ताल व घड़वे की संगति में लोक गायकों द्वारा प्रस्तुत सांग कथा का श्रवण करते थे तो रोम-रोम पुलकित हो उठता था, थकान कोसों दूर भाग जाती थी और जीवन में नई स्फूर्ति आ जाती थी। इतना ही नहीं सांग की कथा में वर्णित राजा हरिश्चन्द्र व राजा नल की विपत्तियाँ, सेठ ताराचन्द की दानशीलता, नरसी का भात व मीरा की भक्ति भावना, सावित्री व सोमवती के पति परायणता के आदर्शों का सहारा लेकर हरियाणावासी जीवन के कठिन दौर में भी घबराते या मुरझाते नहीं थे अपितु दुगने उत्साह से आगे बढ़ते रहते थे।

हरियाणा प्रदेश प्राचीन काल से ही साहित्य एवं शौर्य की संगम-स्थली रहा है। यहीं पर वेद-उपनिषदों की रचना हुई, भगवान श्री कृष्ण ने गीता का ज्ञान यहीं पर दिया, बाण भट्ट और सूरदास जैसे महाकवि भी यहीं पर हुए। शूरवीरता में भी इस धरती का कोई सानी नहीं। यहाँ पर महाभारत का युद्ध हुआ, पानीपत में तीन, लडाइयाँ लड़ी गई, तरावड़ी में युद्ध हुआ, रोहतक के योधेय गणों ने सदैव दिल्ली के तानाशाह शासकों के नाक में नकेल डाल कर रखी। आज भी यहाँ के नौजवान फौज में भर्ती होकर देश की रक्षा कर रहे हैं।

हरियाणा के सांगियों में पं० दीपचन्द, कविसूर्य, पं० लखमीचन्द, बाजेभगत, पं० मांगेराम, पं० रामकिशन व्यास, धनपत सांगी का नाम सभी जानते हैं। अन्य भी बहुत से सांग-रचनाकार हुए, जिन्होंने सांग तो नहीं किए पर सांगो की रचना प्रचुर मात्रा में की।

कुछ समय पहले तक हरियाणवी सांगियों पर यह आरोप लगते रहे कि इनमें राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। जब देश आजादी की लड़ाई लड़ रहा था तो ये कवि लीलो-चमन, पद्मावत और नौटंकी जैसी श्रृंगारिक रचनाओं से लोगों का मनोरंजन कर रहे थे। देश के नवयुवकों के बलिदानों की तरफ इनका ध्यान क्यों नहीं गया?

आजकल लोकसाहित्य विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बन रहा है। अनेक अल्पज्ञात तथा अज्ञात कवियों की रचनाएँ प्रकाश में आ रही हैं। उन रचनाओं के प्रकाश में आने से हरियाणवी लोककवियों पर लगे राष्ट्रीय भावना की उपेक्षा के आरोप धुल चुके हैं। स्वतन्त्रता सेनानी फौजी मेहर सिंह, शूरवीर कृष्ण चन्द्र 'नादान' तथा दयाचन्द जैसे कवियों का तो पूरा जीवन ही राष्ट्र को समर्पित रहा। उनकी कलम से निकले राष्ट्र-भक्ति के गीत श्रोताओं के रोंगटे खड़े कर देते हैं। अन्य कवियों की रचनाओं में भी राष्ट्रीय-भावना विविध रूपों में प्रकट हुई है।

राष्ट्र भक्त लोक कवियों में सबसे पहला नाम बरोणा निवासी फौजी मेहर सिंह का आता है। ये भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी योद्धा सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज के सेनानी रहे। देश की आजादी के लिए लड़ते रहे और देशहित में फौज में ही प्राणों का त्याग किया। इनके रक्त के कण-कण में सुभाषचन्द्र बोस की प्रेरणा का सागर ठाठे मारता रहा। इन्होंने सुभाष चन्द्र बोस का सांग लिखा और गाया तथा अन्य देशभक्ति के गीत लिखे।

'सुभाष चन्द्र बोस' के सांग में फौजी मेहर सिंह ने कल्पना की है कि भारत माता विष्णुलोक से कलकत्ते में आकर सुभाष बोस को जगाती है-

दिए कई बोल, लिए आँख खोल, कर होश बोस बलदाई।
विष्णुपुरी तै भारत माता कलकत्ते म्हं आई।।
यो भारत देश पड्या सोवै सै तनै जागणा होगा
मात-पिता और कुटम्ब कबीला, घरबार त्यागणा होगा
प्यारा हिन्दुस्तान छोड़ कै, बाहर भागणा होगा
तेरे बिना इसी खून की होली, खेल फाग ना होगा
मांगे तै ना राज मिलै तनै करणी पड़ै लड़ाई।
बिष्णु पुरी तै भारत माता कलकत्ते म्हं आई।।[1]

सुभाष चन्द्र बोस भारत छोड़ कर जर्मन की राजधानी बर्लिन में जाकर हिटलर से मिलते हैं। दोनों के मिलन का कवि ने रोमांचकारी चित्रण किया है–

घड़ी ना बीती, ना पल गुजर्या, एक उत्तर्या जहाज शिखर तै।
बरसण लागे फूल बोस पै, हाथ मिल्या हिटलर तै।।
जर्मन आले लोग बोस नै ठा-ठा देखैं ऐडी
खुशी मनावैं मंगल गावैं फूल बगावें लेडी
जर्मन आली बीरां के म्हां अदा नजाकत टेढ़ी
पतली-पतली लाम्बी-लाम्बी जणुं हरे बांस की पेडी
कोए पन्द्रहा कोए बीस बरस की कोए ढलरी मेम उमर तै।
बरसण लोगे फूल बोस पै, हाथ मिल्या हिटलर तै।।[2]

फौजी मेहर सिंह का देहान्त बर्मा में हुआ। जीवन के अन्तिम समय में भी कवि अपने देश को याद करता है–

साथ रहणिया संग के साथी, दया मेरे पै फेर दियो।
देश के ऊपर जान झोंक दी, लिख चिट्ठी में गेर दियो।।
सब तै पहलम मेरे मात-पिता नै चरणां मैं प्रणाम लिखो
चाचा-ताऊ बड़े-बड्यां नै मेरी दुआ सलाम लिखो
साथ रहणिया संग के साथी सब को राम-राम लिखो
माँ के जाये भाइयां नै मेरा, एक जरूरी काम लिखो
जिस रस्ते मेरी अर्थी जावै, उस रस्ते फूल बखेर दियो।
देश के ऊपर जान झोंक दी, लिख चिट्ठी में गेर दियो।।[3]

पं० कृष्ण चन्द्र 'नादान' सिसाणा वाले भी आजाद हिन्द फौज में फौजी मेहर सिंह के साथी थे। वे फौजी मेहर सिंह को अपना भाई मानते थे। वे निडर सैनिक होने के साथ-साथ सहृदय कवि भी थे। उन्होंने फौजी मेहर सिंह को ही अपना काव्य-गुरु माना और उनकी तर्ज पर ही 'सुभाष चन्द्र बोस' का सांग लिखा। 'नादान' जी की रचनाओं पर फौजी मेहर सिंह का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। यथा–

बैठ जहाज म्हं नेताजी, जब पहुंच गए जर्मन म्हं।
हिटलर सेती हाथ मिले, जब सीलक होगी तन म्हं।।
जितने फौजी अफसर थे, उड़ै कट्ठे होगे सारे
दूर-दूर तै बोस नै, देखण खातर आ रहे
भाई माला घालैं, फूल बगावैं भारी खुशी मना हें
जय बोलैं बोस बंगाली की, बड़े दर्शन हुए तुम्हारे
गूँज रहे जय हिन्द के नारे, शोर मच्या बर्लिन म्हं।
हिटलर सेती हाथ मिले, जब सीलक होगी तन म्हं।।[4]

पं० कृष्ण चन्द्र 'नादान' ने सुभाष चन्द्र बोस के आजाद हिन्द फौज के गठन के संकल्प का सजीव चित्रण किया है–

फेर नेता नै भारत को आजाद करण की सोची
खून के बदले ल्यूँ आजादी, नींव धरण की सोची
मैं कुर्बानी का सबक पढ़ा दूँ, इन भारत माँ के छोहर्या नै
फेर बणा दूँ शेर के बच्चे, कायर और कमजोरां नै
इब हरगिज भी ओटैं कोन्या, उनके नाज डठोरां नै
मैं जा कै कह दूँ चर्चिल ते, इब आँख दिखाइये औरां नै
कै तै मारूँ गोर्या नै, ना तै आप मरण की सोची।
खून के बदले ल्यूं आजादी, नींव धरण की सोची।।[5]

मायना गाँव निवासी दयाचन्द भी आजाद हिन्द फौज में सैनिक थे। उन्होने भी सुभाषचन्द्र बोस का सांग बनाया। उनकी रचना भी फौजी मेहर सिंह की रचनाओं से हू-ब-हू मिलती है कई राष्ट्र भक्ति गीतों में तो प्रामाणिकता का निर्णय कर पाना भी कठिन दिखाई देता है।

15 अगस्त, 1947 को आजादी तो मिल गई पर देश भारत और पाकिस्तान दो हिस्सों में बँट गया। बँटवारे में भारी मारकाट हुई। देश के इस दुर्भाग्य का पं० मांगेराम ने दिल हिला देने वाला चित्रण किया है–

जमाने माया अपरम्पार।
इधर-उधर कै फिरै भागते कर कै हा-हाकार।।
भाई जी को छोड़ भाई भाग-भाग जाणे लगे
मोटर रेल तांगे बग्गी, गाड़ियों में आणे लगे
भूखे मरते घास-पत्ते तोड़-तोड़ खाणे लगे
बाप कहीं, बेटा कहीं, बेटियों का बेरा नहीं
सिर के ऊपर गोली चाल्लैं ल्हुकणे को अंधेरा नहीं
गुण्डो नै मचाई लूट, गौरमैन्ट का घेरा नहीं
फेर घबरागी सरकार।
जमाने माया अपरम्पार।।[6]

आगे चल कर पं० मांगेराम ने जब भारत-चीन की लड़ाई देखी तो भारतीय नारियों को भी फौज में भर्ती का समर्थन किया-

बरछी, तीर, कटारी ल्यादे पैने मुँह की सेल।
ले चलो साजन हम नै भी फौज में गेल।।
चीनी दुश्मन खड्या पहाड़ पै धन लूटै
बीर-मरद हो साथ मोरचा जब टूटै
आठ बजे दिल्ली तै छुट्टै कलकत्ते की रेल।
ले चलो साजन हम नै भी फौज में गेल।।[7]

जांड़ली गाँव निवासी मुन्शीराम ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का कितना सजीव चित्रण किया है -

सेल, टबुके, वर्छी, भाले, चमकण लागे चमाचम
गामां ऊपर गाम चढ़गे, गोली चाल्लैं दमादम
तोपा की घर्राट उठैं, लाश पड़ै गमागम।।[8]

आजादी प्राप्ति का उल्लास भी उनकी रचनाओं में दर्शनीय है-

लटकेदार आजादी हिन्द में आई देखी के?
झंडा चढ्या किले पै, खुशी मनाई देखी के?
जोशीले नित रोज करे प्रचार बंगाली नै
दुश्मन करे देश तै बाहर, बंगाली नै
रास बिहारी बोस, लक्ष्मीबाई देखी के?
झंडा चढ्या किले पै खुशी मनाई देखी के?[9]

हरियाणा के अन्य लोक कवियों ने भी जहाँ आजादी के स्वागत में रचनाएँ की वहीं मिल-जुल कर रहने का सन्देश भी दिया। देश में व्याप्त महंगाई, भ्रष्टाचार व सामाजिक कुरीतियों पर भी चिन्ता व्यक्त की है। ग्राम अलीपुर खालसा के निवासी पं० भोला राम ने कितनी सुन्दर सीख दी है-

भारतवासी सारे भाई मिलजुल के रह्या करो।
हिन्द मुल्क को मिली आजादी जयहिन्द, जय हिन्द कह्या करो।।
चोरी जारी झूठ बोलणा यह सब दिल से दूर करो
इल्म पढ़ा कै बच्चों को तुम विद्या से भरपूर करो
पटाबाजी परेड़ सिखाओ, ये भी काम जरूर करो
ऐसे तरीके से भारत का सतयुग जैसा नूर करो
मेरा कहण मंजूर करो तुम सन्त गउ पै दया करो।
हिन्द मुल्क को मिली आजादी जय हिन्द, जय हिन्द कह्या करो।।[10]

हाट वाली खेड़ी गाँव के पं० सूरत सिंह कहते हैं-

करो एकता भारतवासी ना तै फेर पछताओगे।
आजादी में बरबादी के कर कै काम दिखाओगे।।
बागडोर आजादी की मुश्किल हाथां आई से

जो राखै मतभेद आज भी उसकी मूर्खताई सै
हिन्दु, मुस्लिम और सिक्ख में, दे कुणसा फर्क दिखाई सै
जात-पात उस ईश्वर नै इन सबकी एक बणाई सै
कोन्या फेर भलाई सै जो जाति सवाल उठाओगे।
करो एकता भारतवासी ना तै फेर पछताओगे।।[11]

पं० जगदीश चन्द्र 'वत्स' एँचरे वाले देश के बिगड़ते हालात से चिन्तित हैं-

मेरे या चिन्ता रहती दिल में।
कौण बचावै, गिरते-गिरते जा लिया देश रसातल में।।
राजा-प्रजा स्वार्थी होगे, प्रेम ना भाई-भाई में
पूँजीपति उभरगे, मरगे गरीब लोग बिन आई में
हर वस्तु की कीमत चढ़गी कसर नहीं महंगाई में
खुदगर्जों ने गोदाम भर लिए, बेचौं लूट मचाई में
छिकते नहीं कमाई में, भरी रग-रग, झूठ कपट छल में।
कौण बचावै, गिरते-गिरते जा लिया देश रसातल में।।[12]

आज भी अनेक कवि राष्ट्र की उन्नति के लिए उत्तम रचनाएँ कर रहे हैं। सोथ गाँव के डॉ० चतुरभुज बंसल सोच-विचार कर वोट का सदुपयोग करने की सलाह दे रहे हैं-

इब मौका से मेरे भाइयो सब, काढ देश का खोट दियो।
सिर के ऊपर बाज रही आज, सोच-समझ के वोट दियो।।
सब तैं पहल्यां आच्छी ढालां, माणस की पड़ताल करो
नशेबाज कोई बेली हो तै, उसकी बिल्कुल टाल करो
सब तरीयां तै ठीक मिलै जो, मतना और सवाल करो
जोर लगा के बणा दियो, कदे जात-पात का ख्याल करो
छाँट-छाँट के भले नरां की, मिला जोट-में-जोट दियो।
सिर के ऊपर बाज रही आज, सोच-समझ कै वोट दियो।।[13]

डॉ० बालकिशन शर्मा ने भी अपनी पुस्तक 'हर्या-भर्या हरियाणा' में कश्मीर समस्या से पीड़ित भारत माँ के दुख का अहसास किया है-

छाती टुकड़े-टूक हुई, आज हिया उझल कै आवै।
मेरा पूत कश्मीर बिछड़ रह्या, भारत माँ पछतावै।।
बेटा खोटा, दुख हो मोटा, सारा जन्म जलेवा हो
घर में टोटा, जबर भरोटा, कैसे सुख का देवा हो
टूटी आशा, हाथ निराशा, के सेवा, के मेवा हो
पूत कपूत, हों घणे ऊत, कौण नाव का खेवा हो
बिना खिवैया, डूबै नैय्या, आकै कोण बचावै।
मेरा पूत कश्मीर बिछड़ रह्या, भारत माँ पछतावै।।[14]

आतंकवादियों द्वारा प्रतिदिन किए जा रहे बम-विस्फोटों से घायल हो कर भारत माँ पुकार रही है-

कितने बम और फूटैंगे, अग-अंग हुआ लाल मेरा।
दुखड़ा रोऊँ किसके आगै, कोई सुणै ना हाल मेरा।।
कदे सोने की चिड़िया थी, आज भी हूँ, अर फेर रहूँगी
नहीं डरी, ना कदे डरूँगी, फेर भी अपणी बात कहूँगी
मैं गान्धी की सच्ची बेटी, कर ल्यों अत्याचार सहूँगी
थ्हारे भरोसे रही आज तक, इब थ्हारे ही हाथ मरूँगी
झाड़-झाड़ मेरा बैरी हो रह्या, जीणा हुया मुहाल मेरा।
दुखदा रोऊँ किसके आगै, कोई सुणै ना हाल मेरा।।

आजाद-भगत भी मेरे थे, जिन्नै सिर की बोली लाई थी
उनकी भगति और शक्ति नै, मेरी लाज बचाई थी
सुभाषबोस ने जोश, होश तै, दुश्मन पै करी चढ़ाई थी
बाल किशन की कलम सुनहरी, जिसनै गाथा गाई थी
चले गए मेरे पूत लाडले, आज दुश्मन बणगे काल मेरा।
दुखड़ा रोऊँ किसके आगै, कोई सुणै ना हाल मेरा।।[15]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हरियाणा के लोककवि राष्ट्र भक्ति के प्रति सदैव सजग रहे हैं, आज भी सजग है और भविष्य में भी सजग रहेंगे। इनके हृदय में विद्यमान राष्ट्रीयता की भावना का संकल्प जन-जन को प्रेरित एवं उत्साहित करता रहेगा।

संदर्भ-सूची

1. रामफल सिंह चहल, स्वतन्त्रता सेनानी एवं कवि फौजी मेहर सिंह (किस्सा सुभाष चन्द्र बोस), पृ० 12
2. रामफल सिंह चहल, स्वतन्त्रता सेनानी एवं कवि फौजी मेहर सिंह (किस्सा सुभाष चन्द्र बोस), पृ० 16
3. रामफल सिंह चहल, स्वतन्त्रता सेनानी एवं कवि फौजी मेहर सिंह (किस्सा सुभाष चन्द्र बोस), पृ० 16
4. पंडित श्रीकिशन कौशिक, लोककवि पं० कृष्ण चन्द्र 'नादान', पृ० 275
5. पंडित श्रीकिशन कौशिक, लोककवि पं० कृष्ण चन्द्र 'नादान', पृ० 268
6. डॉ० पूर्णचन्द शर्मा, पण्डित मांगेराम ग्रंथावली, पृ० 40
7. डॉ० पूर्णचन्द शर्मा, पण्डित मांगेराम ग्रंथावली, पृ० 47
8. मुंशीराम (जांडली निवासी), मुक्तक भजन
9. मुंशीराम (जांडली निवासी), मुक्तक भजन
10. रीता रानी, पण्डित भोलाराम: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ०-56
11. हरिओम फुलिया, हरियाणवी लोकनाट्य परम्परा में पं० सूरत सिंह का योगदान, पृ० 32
12. बनारसी दास शर्मा, ज्ञान-सागर, (प्रथम खण्ड) पृ०-459
13. डॉ चतुर्भज बसल सोथ गाँव निवासी, मुक्तक भजन
14. डॉ. बालकिशन शर्मा, हर्या-भर्या हरियाणा, पृ०-32
15. डॉ. बालकिशन शर्मा, हर्या-भर्या हरियाणा, 36, 37

जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

सुनीता प्रधान

पी-एच.डी. (समाजशास्त्र) सामाजिक विज्ञान विभाग (समाज कार्य) डॉ. सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० ऋचा यादव

शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान विभाग (समाज कार्य) डॉ. सी.व्ही. रमन विश्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश:- जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन इस क्षेत्र के श्रमिकों की सामाजिक संरचना, जीवनशैली, आर्थिक स्थिति, शिक्षा, स्वास्थ्य और पारिवारिक परिवेश का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि कृषि श्रमिकों का जीवन कठिन परिस्थितियों से घिरा हुआ है, जिसमें अस्थिर रोजगार, कम मजदूरी, ऋणग्रस्तता और सामाजिक असमानता प्रमुख चुनौतियाँ हैं। अधिकांश श्रमिक निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग से आते हैं, जिनमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग का बड़ा हिस्सा शामिल है। शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत कम होने के कारण श्रमिकों को अन्य रोजगार के अवसर सीमित रूप से उपलब्ध होते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं हो पाती। इसके अलावा, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, पोषण की समस्या और महिला श्रमिकों के प्रति भेदभाव जैसे मुद्दे भी देखे गए हैं। पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ और सामुदायिक संबंध श्रमिकों के जीवन को प्रभावित करते हैं, लेकिन जागरूकता और सरकारी योजनाओं का प्रभाव धीरे-धीरे देखने को मिल रहा है। यह अध्ययन कृषि श्रमिकों की समस्याओं को उजागर करने के साथ-साथ उनके सामाजिक उत्थान के लिए संभावित समाधान और नीतिगत सुझावों पर भी केंद्रित है।

मुख्य शब्द- सामाजिक परिदृश्य, अस्थिर रोजगार, कम मजदूरी, ऋणग्रस्तता, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक असमानता, जागरूकता और सरकारी योजनाओं।

प्रस्तावना:-

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि श्रमिकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। छत्तीसगढ़ के जांजगीर-चांपा जिले में कृषि कार्य मुख्य रूप से श्रमिकों पर ही निर्भर करता है, लेकिन उनकी सामाजिक स्थिति और जीवनशैली कई चुनौतियों से घिरी हुई है। यह अध्ययन जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें उनके जीवन स्तर, पारिवारिक ढांचे, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आर्थिक असमानता, तथा सामाजिक गतिशीलता का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है।

आज भी कृषि श्रमिक निम्न आर्थिक स्थिति, अस्थिर रोजगार, कम मजदूरी, ऋणग्रस्तता और सामाजिक भेदभाव जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ, जाति व्यवस्था और सामुदायिक संबंध उनकी स्थिति को प्रभावित करते हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, विशेष रूप से महिला श्रमिकों के प्रति भेदभाव और मजदूरी असमानता, इस क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं में शामिल हैं। हालाँकि, सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न योजनाओं और नीतियों का प्रभाव धीरे-धीरे इस वर्ग पर देखा जा रहा है, लेकिन उनका समुचित लाभ सभी को नहीं मिल पाता।

इस अध्ययन का उद्देश्य कृषि श्रमिकों की सामाजिक स्थिति को समझना, उनके जीवन में आने वाली चुनौतियों की पहचान करना, और उनके जीवन स्तर को सुधारने के लिए संभावित समाधान सुझाना है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह विश्लेषण न केवल उनकी समस्याओं को उजागर करता है, बल्कि समाज और नीति निर्माताओं को उनके कल्याण के लिए आवश्यक कदम उठाने हेतु प्रेरित भी करता है।

शोध विषय के चयन के कारण-

कृषि श्रमिक किसी भी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं, लेकिन उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन से जुड़े मुद्दों पर अपेक्षाकृत कम शोध कार्य किए गए हैं। जांजगीर-चांपा जिला, जो छत्तीसगढ़ का एक महत्वपूर्ण कृषि क्षेत्र है, यहाँ के कृषि श्रमिकों को विभिन्न सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस शोध का चयन करने का मुख्य उद्देश्य इन श्रमिकों की वास्तविक सामाजिक स्थिति को समझना और उनके जीवन में मौजूद समस्याओं तथा उनके समाधान के संभावित उपायों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है।

इस जिले के कृषि श्रमिकों की प्रमुख समस्याओं में अस्थिर रोजगार, न्यूनतम मजदूरी, ऋणग्रस्तता, अशिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और सामाजिक असमानता शामिल हैं। विशेष रूप से, महिला कृषि श्रमिकों के साथ भेदभाव, बाल श्रम, और पारंपरिक जातिगत संरचनाओं के कारण उनके जीवन में आने वाली चुनौतियाँ इस अध्ययन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसके अलावा, सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का इन श्रमिकों पर प्रभाव कितना पड़ रहा है, इसे समझना भी आवश्यक है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इस विषय का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक असमानता, ग्रामीण श्रमिकों की जीवनशैली और उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करेगा। यह शोध न केवल उनकी समस्याओं को उजागर करेगा, बल्कि नीति निर्माताओं को उनके कल्याण के लिए उपयुक्त रणनीतियाँ बनाने में सहायक सिद्ध होगा। इस विषय का चयन इसलिए किया गया है ताकि जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य को गहराई से समझा जा सके और उनके जीवन स्तर को सुधारने की दिशा में सार्थक प्रयास किए जा सकें।

अध्ययन का उद्देश्य:

इस शोध का मुख्य उद्देश्य जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है। इस अध्ययन के अंतर्गत निम्नलिखित बिंदुओं को केंद्र में रखा गया है-

1. यह अध्ययन कृषि श्रमिकों की जातिगत, पारिवारिक, और सामुदायिक संरचना को समझने का प्रयास करेगा।
2. कृषि श्रमिकों एवं उनके परिवारों में शिक्षा की स्थिति और इसके प्रभावों को समझना।
3. श्रमिकों की स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच, पोषण स्तर और जीवनशैली के पैटर्न को विश्लेषित करना।

शोध की परिकल्पनाएँ:

शोध अध्ययन को एक निश्चित दिशा देने तथा संकल्प को सीमित करने के निमित्त कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है। अध्ययन के विभिन्न पक्षों से संबंधित प्रमुख परिकल्पनाएँ अग्रलिखित है-

1. कृषि श्रमिक, विकास हेतु बनाये गये सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने में असक्षम होंगे।
2. कृषि श्रमिकों का परिवार शिक्षा के प्रति पर्याप्त जागरूक नहीं होते हैं।
3. कृषि श्रमिकों के आवासीय स्थिति ठीक नहीं होगी।

अध्ययन हेतु शोध प्रविधि:

किसी भी शोध को पूर्ण करने, सत्य तक पहुँचने और क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयुक्त शोध प्रविधियों का चयन आवश्यक होता है। शैक्षिक अनुसंधान विधि केवल तथ्यों या आंकड़ों की सूची भर नहीं होती, बल्कि यह किसी समस्या के संबंध में सुनियोजित और वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित अध्ययन का अभिलेख होती है। शोध की समस्त प्रक्रिया के सफल विश्लेषण के लिए एक स्पष्ट योजना और उपयुक्त प्रविधियों का निर्धारण अनिवार्य होता है। इस अध्ययन में सर्वेक्षण विधि को प्रमुख शोध प्रविधि के रूप में अपनाया जाएगा, क्योंकि यह कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य को प्रत्यक्ष रूप से समझने में सहायक होगी। इसके अतिरिक्त, न्यादर्श प्रविधि के अंतर्गत जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों का एक प्रतिनिधि नमूना चयनित किया जाएगा, जिससे निष्कर्षों की व्यापकता सुनिश्चित हो सके। निर्दर्शन प्रविधि के माध्यम से कृषि श्रमिकों के सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक पहलुओं का प्रत्यक्ष अवलोकन किया जाएगा, जिससे उनके जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को समझा जा सके। एकत्रित आँकड़ों को सारणीकरण द्वारा व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाएगा, ताकि उनका स्पष्ट विश्लेषण किया जा सके। अंतत:, सांख्यिकीय विश्लेषण की सहायता से प्राप्त आँकड़ों का वैज्ञानिक विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला जाएगा। इन सभी प्रविधियों के माध्यम से यह अध्ययन जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य की गहरी पड़ताल करेगा और उनके जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को उजागर करने का प्रयास करेगा।

न्यादर्श:

जब हम समग्र में से कुछ तथ्वों का चयन समग्र के संबंध में सूचना विशेष प्राप्त करने के लिए करते हैं तब तत्वों के इस समूह को न्यादर्श कहते हैं। सामाजिक विषयों में शोध कार्यो न्यादर्श का विशेष महत्व होता है। इसके बिना शोध कार्यो को पूरा नहीं किया जा सकता है। इकाईयों का चयन करके न्यादर्श बनाया जाता है। शोधकर्ता द्वारा जांजगीर चांपा जिले के पांच विकासखण्ड के प्रत्येक विकासखण्ड से 500 कृषि श्रमिको से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से साक्षात्कार लिया गया है। अध्ययन क्षेत्र में उद्देश्य पूर्ण निदर्शन के लिए दैव निदर्शन के आधार पर उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। असंभावित में से आवश्यकतानुसार प्रति चयन एवं लाटरी पद्धति का प्रयोग करते हुए समग्र में से 500 उत्तरदाताओं का न्यादर्श चयन किया गया है। कृषि श्रमिकों के सामाजिक आर्थिक परिदृश्य को जानने के लिए अध्ययन क्षेत्र में सरल दैव निदर्शन का प्रयोग किया गया है।

(अ) प्राथमिक स्त्रोत: इस स्त्रोत के तहत् साक्षात्कार पद्धति को लिया गया है।

(ब) द्वितीयक स्त्रोत: इस स्त्रोत के तहत् सरकारी दस्तावेज, आंकड़े, जनगणना, पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र, कृषि श्रमिकों से संबंधित प्रकाशित पुस्तकें आदि शामिल किया गया है।

शोध के अध्ययन क्षेत्र का चयनः

जिला जांजगीर-चांपा की स्थापना 25 मई 1998 को हुई थी। जिला जांजगीर-चांपा छत्तीसगढ़ राज्य के मध्य में स्थित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ राज्य के हृदय के रूप में माना जाता है। जिला जांजगीर-चांपा छत्तीसगढ़ राज्य के प्रमुख उत्पादकों में से एक है। इस परियोजना के तहत् जिले के तीन चौथाई क्षेत्र को सिंचित किया जा रहा है। जांजगीर-चांपा जिला छत्तीसगढ़ राज्य की राजधानी से 175 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। जांजगीर-चांपा जिले 5 विकास खंड नवागढ़, पामगढ़, अकलतरा, बलौदा एवं बम्हनीडीह है। विकासखण्ड से भौगोलिक दूरी एवं निकटता के आधार पर गांवों में निवासरत् 500 कृषि श्रमिक परिवारों की स्थिति पर षोध किया जाना है।

आंकड़ों का संकलन एवं विश्लेषणः-

क्र.	विवरण	Observed	Expected	O-E	$(O-E)^2$	$(O-E)^2/E$
1	कृषि श्रमिकों को सरकारी योजनाओं की जानकारी की कमी के कारण उनका लाभ नहीं मिल पाता।	290	294	-4	16	0.054
2	प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की सुविधाओं से लाभान्वित	282	294	-1	1	0.003
3	सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रशासनिक लापरवाही और भ्रष्टाचार के कारण कृषि श्रमिक असक्षम रहते हैं।	278	294	-16	256	0.871
4	सरकारी योजनाओं की जटिल प्रक्रियाएँ और दस्तावेज़ी औपचारिकताएँ कृषि श्रमिकों को इनका लाभ उठाने से रोकती हैं।	312	294	18	324	1.102
5	कृषि श्रमिकों की गरीबी और संसाधनों की कमी उन्हें सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने में असक्षम बनाती है।	276	294	-18	324	1.102
6	ग्राम पंचायतों और स्थानीय प्रशासन द्वारा उचित मार्गदर्शन और सहायता की कमी कृषि श्रमिकों को योजनाओं से दूर रखती है।	320	294	26	676	2.299
7	डिजिटल तकनीक और ऑनलाइन आवेदन प्रणाली की जटिलता कृषि श्रमिकों को सरकारी योजनाओं से वंचित रखती है।	315	294	21	441	1.500
8	सरकारी योजनाओं के प्रति अविश्वास और पूर्व अनुभव कृषि श्रमिकों को इन योजनाओं का लाभ उठाने से हतोत्साहित करता है।	268	294	-26	676	2.299
		2352	**2352**	**0**	**0**	**9.231**

स्त्रोत- शोधार्थी के गणनानुसार

काई वर्ग का परिकलित मान x2= 9.231

सार्थकता स्तर = 0.05

स्वतंत्रता अंश (df) = 8-1 = 7

स्वतंत्रता अंश 7 एवं सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणी मान = 14.067

x2 = 14.067 > 9.231

उपरोक्त सारणी के अनुसार कृषि श्रमिकों द्वारा विकास हेतु बनाई गई सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने की असक्षमता को परखने के लिए किए गए काई वर्ग परीक्षण (Chi-Square Test) में प्राप्त गणना किया गया मान (x^2) = 9.231 है। स्वतंत्रता अंश (df) 5 होने पर 0.05 के सार्थकता स्तर पर सारणी मान 14.067 प्राप्त होता है। चूंकि गणना किया गया काई वर्ग मान (9.231) सारणी मान (14.067) से कम है, इसलिए प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि कृषि श्रमिक निश्चित रूप से सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने में असक्षम हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि परिकल्पना को स्वीकृत होती है। इससे कहा जा सकता है कि सरकारी योजनाओं की जानकारी की कमी, अशिक्षा, जटिल प्रक्रियाएँ, प्रशासनिक लापरवाही, डिजिटल कठिनाइयों आदि के कारण कृषि श्रमिकों को इन योजनाओं का लाभ उठाने में कठिनाइयाँ होती हैं, किंतु सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर यह कहना उचित नहीं होगा कि वे पूरी तरह असक्षम हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यदि सरकारी योजनाओं की सुलभता और जागरूकता बढ़ाने के उपाय किए जाएँ, तो कृषि श्रमिकों की भागीदारी में सुधार संभव हो सकता है, जिससे वे सरकारी योजनाओं से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

परिकल्पना- 3 कृषि श्रमिकों का परिवार शिक्षा के प्रति पर्याप्त जागरूक नहीं होते हैं।

क्र.	विवरण	Observed	Expected	O-E	$(O-E)^2$	$(O-E)^2/E$
1	परिवार में बच्चों की शिक्षा को लेकर जागरूकता में कमी है।	243	274	-31	961	3.507
2	परिवार के सभी बच्चे स्कूल जाते है।	267	274	-7	49	0.179
3	परिवार के लोग शिक्षा को आवश्यक मानते हैं।	325	274	51	2601	9.493
4	बच्चों की शिक्षा में मुख्य बाधा शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है।	231	274	-43	1849	6.748
5	परिवार में वयस्कों की शिक्षा का प्रभाव बच्चों की शिक्षा पर पड़ता है।	316	274	42	1764	6.438
6	परिवार को सरकार द्वारा चलाई जा रही शिक्षा योजनाओं की जानकारी है।	318	274	44	1936	7.066
7	सरकार बच्चों की शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता की जानकारी है।	278	274	4	16	0.058
8	परिवार में शिक्षा को रोजगार से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।	214	274	-60	3600	13.139
		2192	**2192**	**0**	**0**	**46.628**

स्त्रोत- शोधार्थी के गणनानुसार

काई वर्ग का परिकलित मान x2= 46.628

सार्थकता स्तर = 0.05

स्वतंत्रता अंश (df) = 8-1 = 7

स्वतंत्रता अंश 5 एवं सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणी मान = 14.067

x2 =14.067 < 46.628

उपरोक्त सारणी के अनुसार कृषि श्रमिकों के परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूकता की स्थिति को परखने के लिए किए गए काई-वर्ग परीक्षण के अनुसार परिकलित मान (x^2) = 46.628 प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता अंश (df) = 7 और सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणी मान 14.067 है। चूँकि परिकलित काई-वर्ग मान (46.628) सारणी मान (14.067) से अधिक है, इसलिए यह परिकल्पना सांख्यिकीय रूप से अस्वीकृत होती है। कृषि श्रमिकों के परिवार शिक्षा के प्रति पर्याप्त रूप से जागरूक हैं। इन आँकड़ों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृषि श्रमिकों के परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूक है जिसके कारण उनके बच्चों की शिक्षा प्रभावित नहीं हो रही है। यदि शिक्षा संबंधी सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूकता को प्रोत्साहित किया जाए और आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान की जाए, तो अधिकतर परिवारों में शिक्षा की स्थिति में सुधार किया जा सकता है। शिक्षा को प्राथमिकता देने से बच्चों का भविष्य बेहतर बन सकता है और उनके जीवन स्तर में सकारात्मक बदलाव आ सकता है।

परिकल्पना- 5 कृषि श्रमिकों के आवासीय स्थिति ठीक नहीं होगी।

क्र.	विवरण	Observed	Expected	O-E	$(O-E)^2$	$(O-E)^2/E$
1	आपका निवास स्थान अर्ध–पक्का मकान है।	216	239	-23	529	2.213
2	आपका घर बारिश और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित है।	234	239	-5	25	0.105
3	घर में शौचालय की सुविधा उपलब्ध है।	262	239	23	529	2.213
4	आपके घर में बिजली की आपूर्ति है।	212	239	-27	729	3.050
5	घर में पीने के पानी की सुविधा है।	236	239	-3	9	0.038
6	आपको अपने आवास की स्थिति से संतोष है।	264	239	25	625	2.615
7	आपको सरकारी आवास योजनाओं का लाभ मिला है।	256	239	17	289	1.209
8	आपके गली में नाली की पर्याप्त सुविधा है।	232	239	-7	49	0.205
		1912	**1912**	**0**	**0**	**11.649**

स्त्रोत- शोधार्थी के गणनानुसार

काई वर्ग का परिकलित मान x2= 11.649

सार्थकता स्तर = 0.05

स्वतंत्रता अंश (df) = 8-1 = 7

स्वतंत्रता अंश 5 एवं सार्थकता स्तर 0.05 पर सारणी मान = 14.067

x2 = 14.067 > 11.649

उपरोक्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि कृषि श्रमिकों की आवासीय स्थिति का मूल्यांकन काई वर्ग (x^2) परीक्षण के माध्यम से किया गया। परिकलित काई वर्ग मान 11.649 प्राप्त हुआ, जो सारणीबद्ध काई वर्ग मान 14.067 से कम है। सांख्यिकीय रूप से, यदि परिकलित काई वर्ग मान सारणी मान से कम होता है, तो मूल परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता। विश्लेषण से यह पता चलता है कि कई कृषि श्रमिकों के पास अधपक्के मकान हैं, कुछ के घर प्राकृतिक आपदाओं के लिए सुरक्षित नहीं हैं, और कई को बिजली, पानी तथा शौचालय सुविधाओं में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके बावजूद, कुछ कृषि श्रमिक अपने आवास से संतुष्ट भी दिखाई देते हैं, और कुछ को सरकारी आवास योजनाओं का लाभ भी मिला है। चूँकि सांख्यिकीय परीक्षण में परिकल्पना को ठोस रूप से स्वीकार करने के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं मिले, यह कहा जा सकता है कि सभी कृषि श्रमिकों की आवासीय स्थिति खराब नहीं है, बल्कि इसमें मिश्रित परिणाम सामने आए हैं। इसलिए, इस विषय पर अधिक गहन अध्ययन और व्यापक डेटा संग्रह की आवश्यकता है ताकि अधिक सटीक निष्कर्ष निकाला जा सके।

मुख्य निष्कर्ष

- सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने की असक्षमतारू सांख्यिकीय विश्लेषण के अनुसार, कृषि श्रमिक निश्चित रूप से सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने में असक्षम नहीं हैं। हालांकि, जानकारी की कमी, अशिक्षा, जटिल प्रक्रियाएँ, प्रशासनिक लापरवाही एवं डिजिटल कठिनाइयाँ बाधा उत्पन्न करती हैं। यदि योजनाओं की सुलभता और जागरूकता बढ़ाई जाए, तो कृषि श्रमिक अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।
- शिक्षा के प्रति जागरूकता हेतु निष्कर्ष निकला कि कृषि श्रमिकों के परिवार शिक्षा के प्रति पर्याप्त रूप से जागरूक हैं। यदि शिक्षा संबंधी सरकारी योजनाओं की जानकारी और आर्थिक सहायता बढ़ाई जाए, तो बच्चों की शिक्षा और जीवन स्तर में सुधार संभव है।
- कृषि श्रमिकों की आवासीय स्थिति को लेकर मिले परिणाम मिश्रित हैं। कुछ श्रमिकों को सरकारी योजनाओं का लाभ मिला है, जबकि अन्य को बुनियादी सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए, इस विषय पर अधिक गहन अध्ययन और व्यापक डेटा संग्रह की आवश्यकता है।

सुझाव-

जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, उनके जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं-

- कृषि श्रमिकों और उनके परिवारों को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा विशेष कार्यक्रम चलाए जाएं।
- वयस्क शिक्षा एवं कौशल विकास प्रशिक्षण के माध्यम से उन्हें सशक्त बनाया जाए।
- कृषि श्रमिकों में श्रम कानूनों, सामाजिक योजनाओं और अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाए।
- कृषि श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की बेहतर व्यवस्था की जाए, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या बढ़ाई जाए।
- बीमा योजनाओं और पेंशन जैसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ सुनिश्चित किया जाए।
- कार्यस्थलों पर सुरक्षा मानकों का पालन कर श्रमिकों को सुरक्षित कार्य वातावरण प्रदान किया जाए।
- श्रमिकों की समस्याओं के निवारण हेतु ग्राम स्तर पर श्रमिक संघों की स्थापना की जाए।

उपसंहार-

जांजगीर-चांपा जिले के कृषि श्रमिकों के सामाजिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ये श्रमिक विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। सरकारी योजनाओं की जानकारी का अभाव, जटिल प्रशासनिक प्रक्रियाएँ, डिजिटल साक्षरता की कमी और आर्थिक अस्थिरता उनके विकास में बाधा बन रही हैं। शिक्षा के प्रति जागरूकता के संकेत मिलते हैं, जिससे उनके परिवारों में सकारात्मक परिवर्तन की संभावना है। आवासीय स्थिति को लेकर मिश्रित परिणाम सामने आए हैं- कुछ श्रमिक सरकारी योजनाओं का लाभ उठा पाए हैं, जबकि अन्य को बुनियादी सुविधाओं की कमी से जूझना पड़ रहा है। इन निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृषि श्रमिकों की सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए सरकारी योजनाओं की सुलभता बढ़ाने, प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल करने, जागरूकता अभियान चलाने और बुनियादी सुविधाओं को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। यदि इन पहलुओं पर ध्यान दिया जाए, तो कृषि श्रमिकों के जीवन स्तर में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है, जिससे वे समाज की मुख्यधारा से बेहतर रूप से जुड़ सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

- अग्रवाल, पी.सी. एण्ड मोहम्मद सिद्दीकी इन पाण्डे, एस. एम. (1976), "रूरल लेबर इन इण्डिया'', श्री राम सेन्टर फार इण्डस्ट्रीयल रिलेशन्स, नई दिल्ली,।
- अजीज अब्दुल, (1983) ''द रूरल पुअर प्रॉब्लम्स एण्ड प्रास्पेक्ट्स, एशिया पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- कोसरे, एस. (2008). कृषि क्षेत्र में कार्यरत भूमिहीन कृषकों का आर्थिक एवं सामाजिक विश्लेषण (अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबंध)।
- गुप्ता, डॉ. अंकिता (2019) "कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता'' शोध प्रबंध, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ। पृ. 3
- जैन, डॉ. लोकेश (2019) भारतीय ग्रामीण परिवेश में विकास के परिप्रेक्ष्य में ऋण के अर्थशास्त्र की समझ की समीक्षात्मक अवलोकन, . VOL.11. ISSUE NO. 3 Page| 50
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम् के.पी. एम. (2007) भारतीय अर्थ व्यवस्था एस चन्द्र एवं कम्पनी लि, रामनगर नई दिल्ली, पृष्ठ 675-6841
- देवांगन, क. क. (2007). कृषि श्रमिकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन (अप्रकाशित पीएच.डी. थीसिस)।
- पाण्डेय, जे.एन. एवं कमलेश डॉ. एस. आर.(2001) ''कृषि भूगोल", वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर, उत्तर प्रदेश। पृ. 102

''गांधी का सर्वोदयी दर्शनः आज की आवश्यकता''

चन्द्रभान सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कालपी कॉलेज, कालपी, जालौन (उत्तर प्रदेश)

Abstract :

सर्वोदय से तात्पर्य समाज के सभी वर्गों एवं व्यक्तियों के कल्याण से है। सर्वोदय सभी का उत्थान करता है- अमीर का भी और गरीब का भी। यह गरीबों का भौतिक अर्थात आर्थिक रूप से और अमीरों का आध्यात्मिक अर्थात नैतिक रूप से उत्थान करता है। यह नवीन सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक मूल्यों को जन्म देता है। सर्वोदयी अवधारणा के अंतर्गत स्वतंत्रता व समानता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है, जो आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य के प्रमुख आधार हैं। आज जब एक ओर एक राष्ट्र के अंदर तथा राष्ट्रों के मध्य तुलनात्मक रूप से भी आर्थिक विषमता की खाई लगातार बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर समाज के अंदर नैतिकता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा आदि मूल्यों का दिन-प्रति-दिन क्षरण बढ़ता जा रहा है और व्यक्ति पूरी तरह से उपभोक्तावादी और स्वार्थी होता जा रहा है। आज 21वीं सदी के वैश्वीकरण के इस युग में युवाओं के सामने नई-नई चुनौतियां और समस्याएं जैसे- सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक और पारिस्थितिक उभर रही हैं। ऐसे में गांधीजी के सर्वोदयी दर्शन की आवश्यकता व महत्ता लगातार बढ़ती जा रही है।

Key Words : अंत्योदय, गांधीवाद, ग्राम-स्वराज, विकेंद्रीकरण, सर्वोदय, वैश्वीकरण, सत्याग्रह, अहिंसा

प्रस्तावना-

कुछ लोगों ने अपना समय बदल दिया,
एक आदमी ने हमेशा के लिए दुनिया बदल दी।

महात्मा गांधी, राष्ट्रपिता, बापू आदि पदनामों से अभिहित मोहनदास करमचंद गांधी स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख राजनैतिक नेता थे। वस्तुतः गांधीजी राजनीतिक विचारक से कहीं अधिक एक सच्चे कर्मयोगी थे। उनका जन्म 02 अक्टूबर, 1869 को पोरबंदर, गुजरात में तथा मृत्यु 30 जनवरी, 1948 को बिड़ला भवन, दिल्ली में हुई थी। उनके पिता का नाम करमचंद गांधी और माता का नाम पुतलीबाई था। अल्पायु में ही उनका विवाह कस्तूरबाई से कर दिया गया था। गांधी जी के जीवन में उनकी माता का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। इसके अलावा उनके जीवन में हिंदू सनातन धर्म, गीता, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म तथा चिंतकों में थोरो, रस्किन, टालस्टॉय आदि से प्रभावित थे। सत्याग्रह और अहिंसा के सिद्धांतों पर चलकर उन्होंने भारत को आजादी दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके इन सिद्धांतों ने पूरी दुनिया में लोगों को नागरिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता आंदोलन के लिए प्रेरित किया। गांधीजी का व्यक्तित्व, विचार, प्रभुत्व और प्रभाव के बारे में, वह चाहे समर्थन में हो या विरोध में, उनकी प्रशंसा में हो या निंदा में, बहुत-सी बातें होती रही हैं। जहाँ एक ओर आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक ने राजनीतिक इतिहास में गांधी जी की उपलब्धियों को अभूतपूर्व करार दिया था और कहा था कि, ''भावी पीढ़ियों के लिए यह विश्वास करना कठिन होगा कि हाड़-मांस का बना एक ऐसा आदमी भी कभी इस धरती पर विचरण करता था।''[1] तो दूसरी ओर विंस्टन चर्चिल जैसा राजनीतिज्ञ उन्हें 'नंगा फकीर'[2] कहकर मजाक उड़ाता था। भारत में ही जहाँ डॉ० अंबेडकर उन्हें संदेहास्पद और अविश्वसनीय बताते थे, तो कट्टर हिंदू और मुस्लिमवादी जमातों के लिए वे अपने दौर के सबसे बड़े शत्रु थे। फिर भी तमाम प्रशंसाओं और आलोचनाओं के बीच यह निर्विवाद है कि साम्राज्यवादियों की धन लिप्सा और विस्तार लिप्सा की दानवी प्रवृत्ति और इनकी सत्ता के उत्पीड़न की शिकार जनता को मुक्ति की राह दिखाने के लिए गांधीजी विश्वमंच पर एक 'महामानव'[3] के रूप में उभरे और उन्होंने स्वतंत्रतोन्मुखी जन संघर्षों को व्यापक रूप से प्रभावित किया। मार्टिन लूथर किंग से लेकर नेल्सन मंडेला और आंग सान सूकी तक अपनी-अपनी तरह से मुक्ति संघर्ष चलाने वाले राजनेताओं की कई पीढ़ियां उनसे प्रभावित हुई तथा सफल भी हुईं। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा अपने प्रेरणा स्रोत के रूप में मार्टिन लूथर किंग के साथ-साथ गांधीजी के विचारों को भी मानते थे।

गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को 'गांधीवाद'[4] (Gandhism) का नाम दिया जाता है। यद्यपि उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया कि 'गांधीवाद' नाम की किसी विचारधारा का अस्तित्व नहीं है। महात्मा गांधी प्लेटो आदि की भांति कोरे दार्शनिक नहीं, अपितु धार्मिक भावना से अनुप्राणित होकर जनकल्याण के लिए अनवरत कार्य करने वाले कर्मयोगी थे। उन्होंने प्लेटो, अरस्तू या मार्क्स की भांति क्रमबद्ध या व्यवस्थित रूप से अपने सिद्धांतों की विवेचना नहीं की, अपितु अपने सामने आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार ही चिंतन किया। 'सत्य' जिस-जिस रूप में उनके प्रति प्रकट होता चला, उसी के निश्चल प्रस्तुतीकरण से वे कभी पीछे नहीं हटे। फिर भी उन्होंने कुछ निश्चित सिद्धांत अवश्य विकसित किए। 'सत्य' और 'अहिंसा' के आदर्श उनके जीवन के मूलमंत्र थे,[5] जिनके आधार पर उन्होंने अपनी राजनीतिक कार्रवाई के तरीके विकसित किए। गांधीजी का पूरा का पूरा चिंतन उनके स्वयं के जीवन के अनुभव पर आधारित था। उनका जीवन-दर्शन इच्छाओं की उच्छृंखलता के विरुद्ध उन पर नियंत्रण तथा भौतिकता की पूजा करने के विरुद्ध आध्यात्मिक साधना है। उनका कहना था कि जो अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है, वही दुनिया पर विजय प्राप्त कर सकता है। हैरत की बात है कि

तीस-चालीस वर्षों तक भारत के स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व करते हुए और सक्रिय राजनीतिक जीवन बिताते हुए भी गांधीजी मूलत: एक नैतिक शिक्षक का कार्य करते रहे। हजारों लोगों ने गांधीजी के सत्य और अहिंसा के इस आदर्श को अपने व्यक्तिगत जीवन में उतारा। लाखों लोगों ने गांधीजी की इस सीख में अपना विश्वास प्रकट किया और करोड़ों लोग गांधीजी के भक्त और प्रशंसक बने। भारतीय इतिहास में तीन-चार दशकों की इस अवधि को 'गांधी युग'[6] (Gandhi Era) के नाम से दर्ज किया गया।

सर्वोदय की अवधारणा: गांधीय प्रतिमान-

सर्वोदय का अर्थ है- सार्वभौमिक उत्थान या सबका विकास। इसका लक्ष्य है- 'सर्वभूत हिते रत:'[7] अर्थात समाज के सभी वर्गों और व्यक्तियों का कल्याण। 'सर्वोदय' शब्द अंग्रेजी लेखक जॉन रस्किन की पुस्तक 'Unto this Last'[8] का गांधीजी द्वारा गुजराती में अनूदित एक पुस्तक के शीर्षक के रूप में गढ़ा गया था और गांधीजी ने इस शब्द का इस्तेमाल अपने राजनीतिक दर्शन के आदर्श के लिए किया।[9] Unto this Last का अर्थ है- 'The uplift of the last' अर्थात समाज के सबसे अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति का उन्नयन या विकास करना। इसी अवधारणा को 'अंत्योदय' का नाम दिया गया है। पं० दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपने 'एकात्म मानववादी दर्शन'[10] के अंतर्गत अंत्योदय की अवधारणा का उल्लेख किया है। सर्वोदय सभी का उत्थान करता है- अमीर का भी और गरीब का भी। वह गरीबों का भौतिक अर्थात आर्थिक रूप से और अमीरों का आध्यात्मिक अर्थात नैतिक रूप से उत्थान करता है। विनोबा भावे के अनुसार, ''सर्वोदय कुछ का या बहुतों का या अधिकतम का उत्थान नहीं करता। हम अधिकतम के अधिकतम सुख से भी संतुष्ट नहीं हो सकते। हम तो केवल एक की और सबकी, ऊंचे और नीचे की, सबल और निर्बल की, बुद्धिमान और बुद्धिहीन की भलाई से ही संतुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय शब्द एक उत्कृष्ट और सर्वव्यापक भावना को अभिव्यक्त करता है। इसका लक्ष्य सभी व्यक्तियों का भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार का कल्याण है।"[11] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सबके हित की कामना, सबके कल्याण की इच्छा, सबको सुखी देखने का सपना तथा सबके उत्थान, उन्नति और विकास का संकल्प ही सर्वोदय का आदर्श है।

यद्यपि सर्वोदय की अवधारणा भारतीय संस्कृति में कोई नई अवधारणा नहीं है। हमारी सनातन भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से ही सर्वोदय एक आदर्श रूप में दिखाई दे रहा है। 'वसुधैव कुटुंबकम'[12], 'सर्वेभवंतु सुखिन:, सर्वेसंतु निरामया'[13] 'सर्वखल्विदं ब्रह्म'[14] आदि हमारे पुरातन आदर्शों में 'सर्वोदय सिद्धांत' अंतर्निहित है। सर्वोदय के इस आदर्श को वैश्विक स्तर पर लाने एवं इसे आधुनिक संदर्भ प्रदान करने का कार्य गांधीजी ने ही किया है। 'सर्वोदय' शब्द भी नया नहीं है। जैन मुनि समंतभद्र कहते हैं- ''सर्वा पदामंतकर निरंतं सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव।"[15] सर्वोदय की गांधीवादी धारणा में जिस उदय की परिकल्पना की गई है। वह वस्तुत: भौतिक परिलब्धियों या संसाधनों की उपलब्धि की ओर नहीं अपितु भौतिक, नैतिक व आध्यात्मिक परिलब्धियों के निश्चयवाद न्यायसम्मत वितरण की आवश्यकता प्रतिपादित करती है। इस प्रकार सर्वोदय का आध्यात्मिक आदर्श जहाँ मानवमात्र द्वारा परमश्रेय की उपलब्धि से संबंधित है, वहीं उसका भौतिक संदर्भ समाज में वितरणात्मक न्याय की प्रस्थापना की अनिवार्यता को रेखांकित करता है।

गांधीजी का ध्येय एक ऐसी नवीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करना था जो सत्य और अहिंसा पर आधारित हो, जिसमें किसी भी रूप में मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो, जिसमें विषमता के स्थान पर सामानता, प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग और संघर्ष के स्थान पर सद्भावना और प्रेम का साम्राज्य हो। इसी परिपेक्ष्य में उन्होंने 'रामराज्य' की कल्पना की। गांधीजी का रामराज्य वही है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त होंगी, सब संतोषपूर्वक रहेंगे और परस्पर प्रेम-व्यवहार का जीवन व्यतीत करेंगे।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य नहिं काहुहि ब्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।[16]

अर्थात् गांधीजी के रामराज्य की कल्पना अनुभूतिमात्र न थी। वे इस आदर्श को व्यावहारिक रूप देना चाहते थे। अपने इसी आदर्श को प्राप्त करने के लिए उन्होंने 'सर्वोदय आंदोलन' का सूत्रपात किया।

गांधीजी के सर्वोदय की अवधारणा निम्नलिखित तीन बुनियादी सिद्धांतों[17] पर आधारित है-

(1) सबके कल्याण में अपना कल्याण अंतर्निहित है। इसका अर्थ है कि व्यक्तिगत और सामुदायिक हितों में कोई द्वंद्व नहीं है। जब मनुष्य सबके हितों की बात सोचेगा तो स्वयं का हित होना स्वाभाविक है। वास्तव में समाज कोई बाह्य तत्व नहीं है। व्यक्ति की सामाजिक चेतना उसे सामुदायिक हितों के प्रति संवेदनशील बनाती है। हितों के व्यक्तिगत व सामुदायिक चेतना में समन्वय रखना तथा व्यक्तिगत स्वार्थों एवं सामाजिक हितों का संश्लिष्ट रखना सर्वोदय का मुख्य आधार है। इसके बिना सर्वोदय संभव नहीं है।

(2) विभिन्न कार्यों के मध्य इस आधार पर हीनता अथवा श्रेष्ठता का भेद नहीं किया जा सकता कि उसमें शारीरिक श्रम विनियुक्त हुआ है या मानसिक अथवा बौद्धिक श्रम। वस्तुत: सभी समाज कार्य समान महत्व रखते हैं। अत: वकील व हज्जाम दोनों के कार्य का मूल्य एक-सा होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि समाज के हर व्यक्ति के कार्य को पर्याप्त आदर प्राप्त होना चाहिए। शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम जो समाज के लिए हो, उसे समान भाव से देखना चाहिए। ज्ञान और कर्म के बीच विभेद करना और इस आधार पर अपने को ऊंचा समझना और दूसरों को नीचा, यह सर्वोदय सिद्धांत के विपरीत है।

(3) श्रम प्रधान सरल जीवन ही सच्चा जीवन है। यह सिद्धांत वस्तुत: पूर्व सिद्धांत की ही निष्पत्ति है। सहयोग पर आधारित समाज में सरल और सादा जीवन को अपनाना पड़ेगा क्योंकि निर्बाध इच्छाओं की पूर्ति समाज में संभव नहीं है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्मसंयम अपनाना पड़ेगा तथा श्रम की नैतिकता का आत्मज्ञान कराना होगा।18

सर्वोदय सिद्धांत के आयाम-

सर्वोदय मानवीय नैतिकता के अद्वैतवादी अभिज्ञान की पराकाष्ठा है। इस संबंध में दादा धर्माधिकारी का कहना है कि सर्वोदय का आदर्श है- 'अद्वैत' और उसकी नीति है- 'समन्वय'। यह नवीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मूल्यों को जन्म देता है अर्थात सर्वोदय के विविध आयाम हैं जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक व सांस्कृतिक संदर्भ स्वत: समाविष्ट हैं।

सर्वोदय: एक सामाजिक व्यवस्था-

सर्वोदय सामाजिक परिवर्तन लाने का एक प्रमुख साधन है। यह सामाजिक-क्रांति का ठोस उपाय है। इस संबंध में दादा धर्माधिकारी का कहना है कि सर्वोदय एक ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषणविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन और अवसर मिलेंगे। यह क्रांति अहिंसा और सत्य द्वारा ही संभव है। सभी इस सामाजिक व्यवस्था में समान रूप से भागीदार होंगे, सभी अपने श्रम का प्रयोग करेंगे, सबल निर्बलों की रक्षा और उनके संरक्षक के रूप में तथा सबके कल्याण का कार्य करेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वोदय के अंतर्गत विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान और उन्नति की इच्छा की गई है। अन्य सामाजिक व राजनीतिक सिद्धांत शोषित, दलित तथा दुर्बल का ही उत्थान और कल्याण चाहते थे, जबकि सर्वोदयी नेता शोषित, दलित तथा दुर्बल के साथ-साथ धनिकों, सबलों, बुद्धिमानों तथा उच्चतर लोगों का भी उत्थान चाहते थे। शोषितों और दलित वर्ग के लोगों का जहाँ आर्थिक उत्थान अपेक्षित है, वहीं पर धनिकों और उच्च स्तरीय लोगों का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान अपेक्षित है। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के हितों का पूर्ण ध्यान सर्वोदयी विचारधारा में रखा गया है। स्पष्ट है कि सर्वोदयी विचारधारा का आधार सभी का उदय है। सर्वोदयी समाज एक ऐसा समाज होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता होगी और समाज में अधिक से अधिक समानता होगी, प्रत्येक व्यक्ति को विकास के अधिकाधिक अवसर प्राप्त होंगे। मनुष्य इस समाज का केंद्र होगा, लेकिन मनुष्य का निजी हित इस समाज का आधार नहीं होगा। ऐसे समाज में जीवन सामूहिक होगा ताकि साहित्य, कला और विज्ञान की अधिकतम उन्नति हो सके और मनुष्य के व्यक्तित्व का अधिक से अधिक विकास हो सके। ऐसे समाज में शोषण और अत्याचार के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

राजनीतिक व्यवस्था का सर्वोदयी दर्शन-

एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में सर्वोदय एक 'स्वराज्यवादी दर्शन' है। स्वराज्य का अर्थ है- दुनिया की किसी भी सत्ता को अपने ऊपर न चलने देना और दूसरे, किसी पर अपनी सत्ता न चलाना। सर्वोदय दर्शन अहितकारी राज्य, बहुमत प्रणाली, दलीय व्यवस्था तथा प्रचलित अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली के स्थान पर क्रमश: हितकारी राज्य या समाज, सर्वानुमति प्रणाली, दलविहीन लोकतंत्र तथा प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली का समर्थन करता है। सर्वोदयी विचारधारा 'अराजकतावादी' है। गांधीजी राज्य के विषय में 'दार्शनिक अराजकतावादी'[19] (Philosophical Anarchist) प्रतीत होते हैं। अर्थात सर्वोदय समाज एक 'राज्य-विहीन समाज' होगा। गांधी राज्य को हिंसा का प्रतीक मानते थे। उनका मानना था कि राज्य मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधक है और इसीलिए वह राज्य को न्यूनतम शक्ति प्रदान करने के पक्षपाती थे। इस संबंध में गांधीजी थोरो के उस मत के समर्थक थे, जिसके अनुसार ''वह सरकार सबसे उत्तम होती है जो सबसे कम शासन करती है।" फिर भी जैसा कि जय प्रकाश नारायण का कहना है कि आवश्यकता पड़ने पर राज्य का प्रयोग रेलगाड़ी के खतरे की जंजीर की तरह किया जा सकता है।

गांधी जी ने राजनीतिक व्यवस्था के आदर्श के रूप में 'राम-राज्य' की अवधारणा प्रस्तुत की थी। उन्होंने राम-राज्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''इस राम-राज्य का अनुवाद धार्मिक दृष्टि से पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य किया जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से इसका अनुवाद ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र है जिसमें संपत्ति, रंग, जाति, धर्म या लिंग के आधार पर खड़ी असमानताएं लुप्त हो जाती हैं, इसमें जनता ही भूमि और राज्य की आधिकारिणी होती है।"[20] गांधीजी के विचारों का मूलमंत्र है 'अहिंसा'। अत: उनकी दृष्टि में आदर्श समाज अथवा राज्य वही हो सकता है, जो अहिंसा पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में, अहिंसा के सिद्धांत की चरम परिणति ही आदर्श समाज की प्रमुख की विशेषता होगी।

अहिंसा पर आधारित राज्य के मुख्य लक्षण[21] होंगे- राज्य के प्रति सभी नागरिकों की अनन्य निष्ठा, अहिंसा के सिद्धांत पर चरित्र का उच्चतम विकास, स्थिति और अवसर की समानता, आवश्यकता पूर्ति और सुख के साधनों का समान वितरण, राज्य के नियंत्रण की अनावश्यकता, शक्ति का विकेंद्रीकरण, शाश्वत शांति, सौहार्द्र, सामंजस्य, युद्ध और प्रतियोगिता से मुक्ति तथा ऐसी अधिकतम वैयक्तिक स्वतंत्रता जो सामाजिक व्यवस्था के साथ निभ सकती हो। ऐसा राज्य आत्मनिर्भर ग्राम समुदायों का संघ होगा जिसमें ऐच्छिक सहकारिता, परस्पर सम्मान और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का आधार होगी। प्रत्येक व्यक्ति अध्यात्म तत्व के प्रति सजग होगा तथा सामाजिक सेवा की भावना से प्रेरित होकर सरल और संयमित जीवन व्यतीत करेगा। संपूर्ण सामाजिक जीवन विकेंद्रीकरण के आधार पर संगठित होगा ताकि व्यक्ति अथवा छोटे-छोटे समुदायों पर बाह्य नियंत्रण न्यूनतम हो और उनकी स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। सामाजिक समानता का सिद्धांत अपरिग्रह तथा शरीर श्रम के व्यवहार से सिद्ध होगा तथा आर्थिक दृष्टि से वह वर्गहीन समाज होगा। गांधीजी ने ऐसी व्यवस्था को ही 'सर्वोदय' की संज्ञा दी है।

गांधी जी विकेंद्रीकरण (Decentralçation) पर बहुत अधिक बल देते थे। फिर चाहे वह आर्थिक विकेंद्रीकरण हो या राजनीतिक। उनका मानना था कि अहिंसात्मक राज्य में सत्ता या शक्ति का 'अधिकतम विकेंद्रीकरण' होना चाहिए। गांधीजी के अनुसार 'राजनीतिक विकेंद्रीकरण' का अर्थ है कि ग्रामों को अपने मामलों का प्रबंध करने के लिए अधिक से अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। गांधी जी के समान विनोवा भावे भी 'आधारभूत प्रजातंत्र'[22] (Basic Democracy) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया तथा प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति का समर्थन किया है। उनके विचार से ग्राम ही सामाजिक जीवन की प्राथमिक इकाई है। उनके अनुसार सर्वसम्मति के आधार पर ग्राम पंचायतों का गठन करना चाहिए। ग्राम पंचायतें बाद में तहसील पंचायतों के सदस्यों का चुनाव करेंगी और तहसील पंचायतें जिला पंचायतों के सदस्यों को चुनेंगी। राज्य और केंद्रीय प्रशासन का गठन भी इसी प्रक्रिया के अनुसार पूरा होगा। इस ग्रामाधारित व्यवस्था की रूपरेखा देते हुए गांधीजी ने कहा कि इसकी रचना लंबरूपी नहीं होगी बल्कि क्षैतिज होगी, जिसमें कोई भी एक-दूसरे पर आश्रित नहीं होगा। जीवन ऐसे पिरामिड की भांति होगा जिसका केंद्र व्यक्ति होगा।

सर्वोदय: एक आर्थिक व्यवस्था-

गांधीजी केवल राजनीतिक विकेंद्रीकरण पर ही बल नहीं दिया अपितु आर्थिक विकेंद्रीकरण को भी अनिवार्य माना है। आर्थिक विकेंद्रीकरण का समर्थन करते हुए उन्होंने व अन्य सर्वोदयी विचारकों ने मशीन चालित भारी उद्योगों के स्थान पर कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बहुत बल दिया है। उनका मानना था कि 'प्रत्येक को काम' आर्थिक लोकतंत्र का मूलाधार है। गांधीजी के शब्दों में, ''मैं विशाल उत्पादन चाहता हूँ, पर विशाल जनसमूह के द्वारा।"[23] उनका मानना था कि हमारी अर्थव्यवस्था का आधार हमारे गांव तथा जनपद होने चाहिए। वह स्पष्ट कहते थे कि आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए 'स्वदेशी' और 'विकेंद्रित अर्थव्यवस्था' ही भारतीय परिस्थितियों में हमारे लिए उपादेय है। गांधीजी के अनुसार प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं को तो पूरा कर सकती है लेकिन उसकी इच्छाओं को पूरा करने में असमर्थ है। और इसलिए वे व्यक्ति की इच्छाओं के आत्म-नियंत्रण के हिमायती थे।

गांधीजी वर्तमान समाज की औद्योगिक सभ्यता को क्षति पहुंचाए बगैर उसे आदर्शोन्मुख रूप देने का प्रयत्न करते हैं। जब तक मनुष्य सारे यांत्रिक साधनों के बिना काम चलाने में अभ्यस्त नहीं हो जाते तब तक बड़े-बड़े उद्योगों, भारी मशीनों और बड़े-बड़े व्यापार-व्यवसायों को समाप्त नहीं किया जा सकता, यहाँ तक कि यथार्थ स्थिति को ध्यान में रखते हुए गांधीजी उनके निजी स्वामित्व को भी समाप्त नहीं करना चाहते। परंतु बड़े-बड़े उद्योग-धंधों का प्रयोग सार्वजनिक हित में ही हो सके, वे व्यक्तिगत स्वार्थ के साधन और 'हिंसा' के प्रतीक न बनें। इसके लिए गांधीजी पूंजीपतियों के 'हृदय-परिवर्तन' (Change of Heart) की अपेक्षा करते हैं ताकि पूंजीपति अपनी संपत्ति को अपनी न समझकर उपभोक्ताओं की धरोहर (Trust) समझें। अर्थात व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक संपत्ति को समाज हित में ही उपयोग करें और आवश्यकता से अधिक उस संपत्ति का व्यक्ति अपने को स्वामी न मानकर केवल 'ट्रस्टी' मानें। इसे ही गांधीजी का 'ट्रस्टीशिप' अथवा 'न्यास' का सिद्धांत[24] (Trusteeship Theory) कहा जाता है, जो अरस्तू के इस विचार से मिलता-जुलता है कि संपत्ति का स्वामित्व निजी होते हुए भी उसके स्वामी उसे सार्वजनिक उपयोग के लिए सुलभ बनाएं। ऑगस्त काम्टे[25] का यह विचार भी गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के बहुत निकट आता है कि जब आध्यात्मिक गुरुओं की छत्रछाया में सामान्य शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी तो पूंजीपतियों की क्रूरता का भय नहीं रहेगा क्योंकि वे अपने आप को सार्वजनिक पूंजी के नैतिक संरक्षक समझने लगेंगे।

सीमाएं (Limitations)-

सर्वोदयी आदर्श की इन विशेषताओं के बावजूद उसमें कुछ विसंगतियां या सीमाएं भी दृष्टिगत होती हैं, जो इस प्रकार हैं-

- सर्वोदय दर्शन की प्रथम सीमा या दोष यह है कि यह मानव स्वभाव के केवल अच्छे पक्ष को देखता है। मनुष्य को त्याग और परोपकार की मूर्ति मान लेता है, जबकि मनुष्य के स्वभाव में स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वैष आदि की भी प्रवृत्तियां होती हैं।
- सर्वोदय बहुत अधिक आदर्शवादी, काल्पनिक और आध्यात्मिक दर्शन है, इससे उसमें व्यावहारिकता का अभाव हो गया है। सत्य, अहिंसा, प्रेम के सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं, परंतु व्यवहार में उनका हर क्षेत्र में पालन कठिन है।
- राष्ट्र की शक्तियों को समाप्त कर ग्राम पंचायतों को सारे कार्य सौंपना व्यावहारिक नहीं है। आज हमारी विविध आवश्यकताओं एवं समस्याओं की वृद्धि के कारण इनकी पूर्ति एवं समाधान केवल एक ग्राम के द्वारा नहीं हो सकती।
- गांधी एवं विनोबा भावे द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय सिद्धांत की सफलता के लिए आवश्यक है कि सभी लोग शिक्षित, विवेकशील, त्याग की भावना रखने वाले और पूरी मानवता के हेतु एवं अपने कष्टों की चिंता न करने वाले हों। लेकिन ऐसा विचार तो वैदिक साहित्य में ही दृष्टिगत होता है। व्यवहार में एक साथ सभी या अधिकांश लोगों में उपर्युक्त सारे गुणों का आ जाना संभव नहीं है। अत: सर्वोदय समाज की स्थापना कठिन है।
- सर्वोदयी दर्शन में राज्य को केवल हिंसा और अत्याचार पर आधारित मानना एवं कल्याणकारी राज्य में शक्ति बढ़ने से व्यक्ति का अहित सोचना उचित नहीं है। राज्य वस्तुत: एक उपयोगी संस्था है जिसके बिना शांति, न्याय एवं सुरक्षा व्यवस्था बनाए रखने में कठिनाई होगी।

निष्कर्ष (Evaluation)-

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद सर्वोदय एक क्रांतिकारी एवं उपयोगी विचारधारा है। यह मानव जाति के सामने एक नवीन जीवन-पद्धति और नवीन सभ्यता को प्रस्तुत करती है। यह अपने उपासकों को स्वार्थ का परित्याग करने और अपने आप को समाज हित के लिए अर्पित करने का आह्वान करती है। यह इस विचार को लेकर चलती है कि व्यक्ति का भला तभी हो सकता है जबकि समाज के संपूर्ण सदस्यों का कल्याण हो। यह अवधारणा त्याग और आत्मसंयम के गुणों का विकास करती है और समाज के नैतिक उत्थान में योगदान देती है। आज जब विश्व परमाणु के ढेर पर बैठा है जो कभी भी एक धमाके के साथ उड़ सकता है। वर्तमान में चल रहे रूस-यूक्रेन युद्ध व अरब-इजरायल युद्ध इसके उदाहरण हैं। ऐसे में यह अवधारणा आशा की एक किरण है जो संपूर्ण विश्व के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम को पोषित करती है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण हो सके। वर्तमान 21वीं सदी की राष्ट्रीय व वैश्विक आवश्यकताओं व समस्याओं को देखते हुए सर्वोदय विचारधारा की आवश्यकता और प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। फिर चाहे वह राष्ट्रीय व वैश्विक गरीबी को दूर करने में हो या अमीर तथा गरीब के बीच विद्यमान आर्थिक विषमता की खाई को पाटने में हो, वैश्विक आतंकवाद या आंतरिक उग्रवाद से निपटने में हो, आज के उपभोक्तावादी आधुनिक युग में व्यक्ति व समाज के गिरते मूल्यों के उत्थान में हो, पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में हो, सभ्यताओं के संघर्ष (Clash of Civilçation) को रोकने में हो, लिंगीय समानता को स्थापित करने में हो, राजनीति में गिरते मूल्यों को रोकने में हो या फिर चाहे स्वतंत्रता, समानता व विश्व-बंधुत्व को स्थापित करने में हो। इस प्रकार वर्तमान में व्याप्त सभी समस्याओं चाहे वह राजनीतिक, समाजिक या आर्थिक हो, का समाधान इस विचारधारा के आधार पर किया जा सकता है। अंतत: हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान विश्व जिस 'सच्चे लोकतंत्र' की तलाश में है, वह सर्वोदय समाज में ही संभव हो सकता है।

References :

1. मेहता, जीवन ; भारतीय राजनीतिक चिंतक, एस०बी०पी०डी० पब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृष्ठ 194
2. https://www.indiatoday.in/india/story/mahatma-gandhi-fakir-winston-churchill-kingsley-hall-london- 240933-2015-02-18
3. सोनी, ललित कुमार और स्वामी, रजनीश कुमार ; वर्तमान युग में गांधीवादी विचारों की प्रासंगिकता, ग्लोबल जर्नल फॉर रिसर्च एनालिसिस, वॉल्यूम-7, इश्यू-3, मार्च 2018, ISSN No.: 2277-8160, पृष्ठ 37
4. फड़िया, डॉ० बी०एल० और फड़िया, कुलदीप ; राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 1999, पृष्ठ 283
5. गाबा, ओम प्रकाश; राजनीति चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स पब्लिकेशन्स, 2001, पृष्ठ 410
6. https://www.geeksforgeeks.org/gandhian-era/
7. श्रीमद्भागवत गीता
8. https://en.wikipedia.org/wiki/Unto_This_Last
9. बांडुरेंट, जॉन; हिंसा पर विजय: संघर्ष का गांधीवादी दर्शन, प्रिंसटन, 1958, पृष्ठ 156
10. उपाध्याय, दीनदयाल; एकात्म मानववाद, प्रभात पेपरबैक्स पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 7
11. अवस्थी, डॉ० ए०पी०; भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा, 2017, पृष्ठ 238-39
12. महाउपनिषद्
13. बृहदारण्यक उपनिषद्
14. छांदोग्य उपनिषद्- सामवेद
15. अवस्थी, डॉ० ए०पी० ; भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा, 2017, पृष्ठ 238
16. उत्तरकांड, रामचरितमानस
17. Soni, Dr. Jitendra Kumar ; Concept of Sarvodaya : Gandhian Paradigm, Research Hub International Multidisciplinary Research Journal, e-ISSN : 2349-7637, Vol.-09, Issue-03, March 2022, p. 9-10
18. सिंह, रामजी ; गांधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृष्ठ 38
19. गाबा, ओम प्रकाश ; राजनीति चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स पब्लिकेशन्स, 2001, पृष्ठ 417
20 Soni, Dr. Jitendra Kumar ; Concept of Sarvodaya : Gandhian Paradigm, Research Hub International Multidisciplinary Research Journal, e-ISSN : 2349-7637, Vol.-09, Issue-03, March
21. गाबा, ओम प्रकाश; राजनीति चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स पब्लिकेशन्स, 2001, पृष्ठ 419
22. शर्मा, डॉ० प्रभूदत्त; अर्वाचीन राजनीतिक दर्शन (मार्क्स से अब तक), कॉलेज बुक डिपो पब्लिकेशंस, जयपुर, पृष्ठ 268
23. पोखरियाल, डॉ० रमेश 'निशंक' ; एकात्म मानववाद के प्रणेता: पं० दीनदयाल उपाध्याय, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा०) लि० पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 247
24. अवस्थी, डॉ० ए० और अवस्थी, डॉ० आर०के०; भारतीय राजनीतिक चिंतन, रिसर्च पब्लिकेशंस, जयपुर, 1989, पृष्ठ 306
25. गाबा, ओम प्रकाश; राजनीति चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स पब्लिकेशन्स, 2001, पृष्ठ 420

प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की समीक्षा

पुष्पा कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध-गया

सार:-

विश्व के हर देश में लोगों को इतिहास की समझ एक समान समय पर नहीं मिली है, बल्कि यह ज्ञान विभिन्न समयों में विकसित हुआ है। किसी भी देश का अपना एक विशिष्ट इतिहास होता है, जिसके बारे में जानकारी हमें समकालीन विद्वानों द्वारा लिखित साहित्य से प्राप्त होती है। हालांकि, यह निर्धारित करना कि इस प्रकार के साहित्य में कौन सी सामग्री इतिहास लेखन में सहायक सिद्ध होगी, एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इतिहास लेखन या इतिहासिकी का शाब्दिक अर्थ है इतिहास लिखने की कला। विभिन्न जन समुदायों और कालों में अतीत के प्रति जिज्ञासा और ऐतिहासिक बोध एक समान नहीं रहा है। प्राचीन यूनान, रोम, यहूदी और इसाई धर्मों ने यूरोप में एक समृद्ध ऐतिहासिक धरोहर का निर्माण किया है, जबकि प्राचीन भारत में इतिहास बोध के संदर्भ में विद्वानों के बीच विभिन्न दृष्टिकोण पाए जाते हैं। एक बड़े विद्वान वर्ग का मानना है कि प्राचीन भारत में भारतीयों को इतिहास लेखन की अवधारणा का ज्ञान नहीं था। इस विचारधारा का समर्थन करने वाले विद्वानों में विन्टर निट्ज और मैक्समूलर जैसे नाम प्रमुख हैं। इसके विपरीत, कुछ विद्वान जैसे डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, डा. विश्वम्भर शरण पाठक और नीलकंठ शास्त्री ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारतीय इतिहास लेखन की कला से भलीभांति परिचित थे।

इस शोध पत्र के माध्यम से प्राचीन भारत में इतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टिकोणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द - प्राचीन, भारत, इतिहास, लेखन, समकालीन समीक्षा आदि।

प्रस्तावना -

प्रत्येक देश का एक विशिष्ट इतिहास होता है, जिसके बारे में जानकारी हमें समकालीन विद्वानों द्वारा रचित साहित्य से प्राप्त होती है। हालांकि, यह निर्धारित करना कि इनमें से कौन सी सामग्री इतिहास लेखन में सहायक होगी, एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इतिहास लेखन या इतिहासिकी का शाब्दिक अर्थ है इतिहास लिखने की कला। यह इतिहास का इतिहास या इतिहास लेखन का इतिहास है। इतिहास लेखन ऐतिहासिक लेखन के विकास की कहानी प्रस्तुत करता है। इसमें इतिहास लेखन से संबंधित बदलते विचार, तकनीकें और स्वयं इतिहास के प्रति बदलते दृष्टिकोण शामिल हैं। इसलिए, यह मानव के अतीत के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। विभिन्न युगों और विभिन्न समुदायों के ऐतिहासिक साहित्य की प्रकृति, गुणवत्ता और मात्रा में भिन्नता होती है। ये भिन्नताएँ सामाजिक जीवन, मान्यताओं और इतिहास बोध की उपस्थिति या अनुपस्थिति को दर्शाती हैं। इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले विद्वानों में ए.बी. कीथ, विसेन्ट स्मिथ, लोएस डिकिन्सन, विन्टर निट्ज, प्रो. कावेल, और मैक्समूलर जैसे नाम प्रमुख हैं।[1] इन सभी विद्वानों ने समकालीन विष्व के संदर्भ में इस प्रकार का विचार प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, प्राचीन भारतीयों के बौद्धिक जीवन की सबसे बड़ी कमी यह थी कि उनकी सभ्यता का विस्तृत इतिहास और विकसित चरित्र होने के बावजूद, उनके इतिहास बोध और विभिन्न घटनाओं को कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति का पूर्ण अभाव था। इस संदर्भ में बी.ए. कीथ ने उल्लेख किया है कि ''भारत का साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने के बावजूद, इतिहास का निरूपण इतना विचारणीय है कि संस्कृत साहित्य के समस्त महान काल में एक भी लेखक नहीं है जिसे गंभीरता से आलोचनात्मक इतिहासकार के रूप में मान्यता दी जा सके।''[2]

प्राचीन भारतीय समाज में इतिहास के प्रति जागरूकता और घटनाओं को कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का अभाव था। विसेण्ट स्मिथ के अनुसार, अधिकांश संस्कृत ग्रंथों की रचना ब्राह्मणों द्वारा की गई थी, जिनमें इतिहास लेखन के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी, बल्कि उनकी रुचि अन्य विषयों में थी। किसी व्यक्ति को एक सक्षम इतिहासकार बनाने में उसके परिवेश और घटनाक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हालांकि, प्राचीन भारत में निरंतर विदेशी आक्रमण जैसी घटनाएँ होती रहीं, लेकिन इनका भारतीय समाज पर शायद ही कोई प्रभाव पड़ा। भारतीय साहित्य में इन आक्रमणों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। इसके विपरीत, होमर और हेरोडोटस जैसे इतिहासकारों को ऐसी घटनाओं ने गहराई से प्रभावित किया, जिससे उन्होंने अपनी लेखनी को उठाया और अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। इतिहास के प्रति जागरूकता का होना अनिवार्य है।

प्राचीन भारत में जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण प्रबल था। यह महत्वपूर्ण है कि ऐतिहासिक अनुसंधान में संलग्न होने के लिए, अर्थात् अतीत का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से, वर्तमान और भविष्य की समस्याओं में रुचि होना आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीयों में यह रुचि उस स्तर तक नहीं थी, जिस स्तर तक यह अन्य मानव समुदायों में देखी जाती है। भारतीयों का मानना था कि वर्तमान जीवन और इसके सभी तत्व नश्वर और अस्थायी हैं, और ये जन्मों और पुनर्जन्मों की अनंत श्रृंखला का एक हिस्सा हैं। उन्होंने जीवन चक्र से मुक्ति को अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना। विभिन्न भौतिक वस्तुओं और घटनाओं की क्षणिकता या नश्वरता में विश्वास ने एक गहन निराशावादी दृष्टिकोण को जन्म दिया। इस प्रकार मानव ने अपने भौतिक जीवन

को नष्वर मानना प्रारंभ किया और इस अस्थायी जीवन के ज्ञान की तुलना में शाश्वत आध्यात्मिक ज्ञान, जिसे ब्रह्मविद्या कहा जाता है, को सर्वोच्च ज्ञान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। यह दृष्टिकोण लोगों के मन में गहराई से समाहित था, और ऐसी किसी भी धारणा को महत्वपूर्ण माना गया जो शाश्वत जीवन के ज्ञान में वृद्धि करती थी। इसलिए, इतिहास, जिसकी प्रवृत्ति भौतिक थी, केवल ऐसे वातावरण में विकसित हो सकता था जहाँ जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विद्यमान हो। इस प्रकार, पारलौकिक चिंतन में विष्वास इतिहास के विपरीत प्रवृत्तियों का निर्माण करता है। इसके अतिरिक्त, भारतीय इतिहास की एक और चुनौती कालक्रम निर्धारण की है। कालक्रम व्यवस्था की चेतना के अभाव के कारण प्राचीन इतिहास की घटनाओं की तिथियों का सही निर्धारण करना कठिन हो जाता है।

इतिहास का महत्व तभी स्पष्ट होता है जब किसी घटना की तिथि का उल्लेख किया जाता है। भारत में कालक्रम निर्धारण से संबंधित यह समस्या दो प्रकार की है। पहली समस्या तब उत्पन्न होती है जब तिथि का उल्लेख बिल्कुल नहीं होता, जबकि दूसरी समस्या तब होती है जब तिथि का उल्लेख किया गया हो, लेकिन वह ईसाई या हिज्री संवत जैसे सामान्यतः प्रचलित संवतों के अनुसार नहीं होता। इसके बजाय, प्राचीन भारत में विक्रम, शक, गुप्त आदि संवतों का उपयोग किया गया है, जिससे इन तिथियों की वैष्विक स्तर पर प्रचलित तिथियों के साथ तुलना करना कठिन हो जाता है। प्राचीन भारत में तिथियों के संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि धार्मिक और रीति-रिवाजों के पालन के लिए हिन्दू समय के प्रति जो सतर्कता बरती जाती है, वह इतिहास के संदर्भ में काल चेतना से पूरी तरह भिन्न है। मापदंड के एक सिरे पर कालक्रम की गणना यम, नादिक, विनादिक, मुहूर्त आदि जैसे सूक्ष्म मानकों के आधार पर की जाती है। इस मान्यता के विपरीत, कुछ विद्वानों का एक समूह, जैसे कि डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, डॉ. विष्वम्भर शरण पाठक, डॉ. एस.पी. सेन, नीलकण्ठ शास्त्री, ए.के. बार्डर, और आर.सी. मजूमदार, ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारतीय इतिहास लेखन की कला से वे भली-भांति परिचित थे।[3] इन विद्वानों के अनुसार, भारतीय इतिहास शास्त्र की एक विशिष्ट परंपरा रही है, जिसे आधुनिक दृष्टिकोण से देखकर एकतरफा निष्कर्ष निकाला गया है। इतिहास शब्द का पहला उल्लेख वैदिक वाड्मय में हुआ है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसकी एक परंपरा विद्यमान थी। वेदों के अर्थ को समझने के लिए निरुक्त की परंपरा रही है, और वैदिक अर्थों को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत करने वाले को निरुक्त में 'इत्याख्यानम' और 'इत्यैतिहासिका' कहा गया है। निरुक्तकार ने स्वयं इस बात को लिखा है -

"तत्कोवृत मेघ इति नैरूक्ताः त्वाष्ट्रो असुर इत्यैतिहासिकाः (निरूक्त 2/16)[4]

इसके अतिरिक्त, कई स्थानों पर निरूक्त कार केवल 'तैर्त्रेतिहास' माच्क्षते इत्याख्यानम का उल्लेख करते हुए ऐतिहासिक पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। डॉ. विष्वम्भर शरण पाठक के अनुसार, भारत में प्राचीनतम ऐतिहासिक साहित्य के रूप में कुछ बिखरे हुए मंत्र हैं, जो तत्कालीन राजाओं के सैन्य अभियानों की प्रशंसा में लिखे गए हैं। ऋगवेद के सूक्तों में कुछ मंत्र ऐसे हैं जिन्हें दानस्तुति कहा जाता है। इन दान स्तुतियों में ऋग्वैदिक काल के राजाओं के प्रशस्त दान की स्तुति की गई है, और इनमें ऐतिहासिकता समाहित है। इसके अतिरिक्त, ऋगवेद के मंडलों के ऐतिहासिक अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक मंडल का संबंध किसी ऋषि या उनके वैशजों से है। इसलिए, वंश मंडल के आधार पर ऋषि और वंश की ऐतिहासिक वंश परंपरा का ज्ञान प्राप्त होता है। वैदिक इतिहास शास्त्र के विकास में गाथा परंपरा का महत्वपूर्ण योगदान है।[5] ऋगवेद में गाथा (9/99/4), गाथा (8/71/14), गाथानी (1/43/4), और ऋजुगाथ (8/92/2) जैसे विभिन्न रूपों में इसका उल्लेख मिलता है, और गाथा अवेस्ता का भी एक प्राचीनतम अंश मानी जाती है। गाथा का अर्थ वीरों के गुणगान से है, और इसे अनुष्ठान आदि के अवसरों पर गाया जाता था। ऋगवेद में गाथा (10/85/6), नाराशंसी, और रैंभी का एक साथ उल्लेख किया गया है। डॉ. बलदेव उपाध्याय इसे वैदिक काल की लौकिक धारा का ऐतिहासिक तत्व मानते हैं, जिसमें लोक में प्रसिद्ध महान व्यक्तियों और उनके वृत्तांतों का वर्णन किया गया है। उत्तर वैदिक काल में और उसके पश्चात आख्यान, इतिवृत्त, वंश, वंशानुचरित, पुराण, और इतिहास जैसे अन्य रूपों का उदय हुआ, जिनसे कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। उत्तर वैदिक काल में राजकीय अधिकारियों का एक महत्वपूर्ण वर्ग सूत था, जो प्रमुखता से कार्यरत था।

राष्ट्रवादी विचारकों की एक अन्य धारणा यह है कि प्राचीन भारत का समृद्ध इतिहास पुराणों के माध्यम से व्यक्त होता है। पुराण का अर्थ है प्राचीन जनश्रुति, और ऐसा प्रतीत होता है कि वाचिक परंपरा के प्रारंभिक रूपों जैसे गाथा, नाराशंसी, आरव्यान, इतिवृत्त और वंशानुचरित को पुराणों में समाहित किया गया है। पुराण के विषय में ष्नामलिंगअनुशासनम्ष् में उल्लेख किया गया है -

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि चा ।
वंशानुचरितम चौव पुराणम पंचलक्ष्णम।।[6]

अर्थात् ब्रह्मांड की सृष्टि, प्रत्येक कल्प के अंत में ब्रह्मांड का क्रमिक विकास और पुनर्निर्माण, देवताओं और ऋषियों की वंशावलियाँ, युगों के चक्र जिसमें मानवता का पुनः सृजन होता है, और प्राचीन काल से शासन कर रहे व्यक्तियों की वंशावलियाँ, ये सभी पुराण के पांच लक्षण हैं। इसलिए इसे इतिहास की श्रेणी में रखा जा सकता है।[7]

निष्कर्ष -

इस प्रकार, यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में इतिहास बोध के संदर्भ में विद्वानों के दो प्रमुख वर्ग मौजूद हैं। एक वर्ग भारतीयों के ऐतिहासिक बोध पर संदेह व्यक्त करता है, जबकि दूसरा वर्ग प्राचीन भारत के लोगों की ऐतिहासिक चेतना को मान्यता देता है। हालांकि, यदि इन दोनों दृष्टिकोणों की गहन समीक्षा की जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक काल में निर्धारित इतिहास के मानकों के अनुसार, प्राचीन भारत की अधिकांश कृतियों को इतिहास

की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। फिर भी, प्राचीन भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री अवश्य उपलब्ध है, किंतु उनका सही उपयोग करने के लिए विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बटरफील्ड, ''हिस्टोरियोग्राफी इन डिक्सनरी आफ हिस्ट्री आफ आइडियाज'', खंड - 2, पृष्ठ - 464
2. ई. श्रीधरन, ''इतिहास - लेख'', पृष्ठ - 2
3. कीथ, ''हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर'', पृष्ठ - 144
4. स्मिथ, ''आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया'', पृष्ठ - गपपप
5. ई. श्रीधरन, ''इतिहास लेख'', पृष्ठ - 279
6. कुँवर बहादुर कौशिक, ''इतिहास दर्शन एवं प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन'', पृष्ठ - 98-99
7. पं. रविशंकर मिश्र, ''वैदिक इतिहासार्थ निर्णय'', पृष्ठ - 124

सुभद्रा जी के साहित्य में राष्ट्रीय संवेदना का ओज

रीना कुमारी

शोध छात्रा, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। कवयित्री सुभद्रा जी के हृदय में अपने देश के प्रति असीम लगाव था। देश की स्वाधीनता काल में उनके साहित्यों में ओज और शौर्य पूर्ण स्वर विद्यमान है। सचमुच में ये स्वाधीनता संग्राम की सक्रिय योद्धा रही है। देश की राष्ट्रीय चेतना में वे स्त्रियों को भागीदारी की अनुपम उदाहरण है। इन्होंने देश को स्वतंत्र कराने में सक्रिय रूप से भाग लिया। इनकी रचनाओं में प्राय: ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ती है।

सुभद्रा कुमारी चौहान आधुनिक साहित्य की एक ऐसी लोकप्रिय कवयित्री थी, जिनकी कविता ने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदुस्तानियों के होठों का गीत बनकर गांव-गांव और गली-गली में स्वाधीनता का अलख जगाया। उनकी कविता जीवन की उष्मा से संपूर्ण के कारण लोक मानस की अंग बन गई।

सुभद्रा जी की देशभक्ति को देख गजानन माधव मुक्तिबोध में कहा: "स्वाधीनता कल में जिन कवि की वाणियों ने जनता का जोश, प्रेम और देशभक्ति के आवेग तथा आह्लाद में सराबोर कर दिया, उसमें सुभद्रा कुमारी चौहान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।"

सुभद्रा कुमारी चौहान भारतीय संस्कृति की अनन्य भक्त थी। उन्हें भारतीय संस्कृति से बहुत लगाव था क्योंकि भारतीय संस्कृति में धार्मिक सहिष्णुता है एवं सभी धर्मों में समान रूप से स्नेह रहा है। वे सभी प्राणियों में आपसी सद्भाव बनाए रखने के उद्देश्य से प्रयासरत थी जैसा कि इनकी पंक्तियों में दृष्टव्य है:

"है बुद्ध सुखी उसमें अपने ही परम धर्म का ज्ञान देख,
है ईशा खुश बलिदान देख, पैगंबर खुश ईमान देख"।

भारत में गौरवपूर्ण इतिहास का जन-जन तक पहुंचाने के लिए, देश में युवकों में उत्साह, वीरता एवं स्वतंत्रता के प्रति संवेदना जगाने के लिए श्री कृष्ण को राखी भेजने के बहाने अपने संवेदनाओं को व्यक्त करती है :- है भैया कृष्णा आज मैं तुम्हें राखी भेज रही हूं तुम इसकी कीमत चुकाना, एक बार भारत में राजपुताने की शान दिखा देना जिस प्रकार दुष्ट पापियों से द्रौपदी की लाज बचाई थी, वैसे ही तुम्हें इस देश की लाज को बचाना है।

"यदि हां तो यह लो मेरी इस राखी को स्वीकार करो
आकर भैया बहन सुभद्रा के कष्टों का भार हरो"।

संवेदना से भरा हुआ साहित्यकार अपने राष्ट्र के धर्म पर अडिग रहता है और जब उन्हें लगता है कि उनके धर्म पर आघात किया जा रहा है, बर्बाद करने का प्रयास हो रहा है तब वह सजग होकर राष्ट्रधर्म संरक्षण हेतु उपाय करता हैं।

इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्रहित के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता आवश्यक है किन्तु यह एकता न सम्मान बेचकर खरीदी जा सकती है, और ना ही भीख मांगकर प्राप्त की जा सकती है। सुभद्रा कुमारी चौहान के राष्ट्रीय संवेदना के ओज उनके समाज प्रेम से भी व्यक्त होता है जैसे कि उनके साहित्य में उल्लेख है। अंग्रेजों द्वारा य अन्य वर्ग द्वारा निम्न वर्गों पर पुरुष द्वारा स्त्री पर होते अत्याचारों को लेखिका का हृदय सह ना सका और अपनी लेखनी द्वारा इसके विरुद्ध स्वर बुलन्द किये। उनकी सामाजिक संवेदना का उदाहरण उनकी अंतिम कविता ष्प्रभु तुम मेरे मन की जानोष् में समाज के शोषित वर्ग बालिका के हृदय का मार्मिक चित्रण है, जो समाज के निम्न वर्ग की मनोदशा का सजीव चित्रण करती है:

तुम सबके भगवान, कहो मंदिर में भेदभाव कैसा
हे मेरे पाषाण पसीजो बोलो क्यों होता ऐसा
मैं गरीबिनी किसी तरह से पूजा का सामान जुटाती
बड़ी साध से तुझे पुजने मंदिर के द्वारे तक आती।।

इनकी कविताओं में जो राष्ट्रीय चेतना परिलक्षित हुई है उसकी छवि उनकी कहानियों में भी दिखाई देता है। राष्ट्रीय चेतना और स्त्रियों की दशा का वर्णन 'बिखरे मोती' में संकलित कहानी 'एकादशी' हमारी धार्मिक परंपराओं और रूढ़ियों पर आघात करती है तथा जातीयता की बात करती है। ये हिंदू-मुस्लिम सद्भाव की निश्चित रूप से प्रबल समर्थक है। इसका प्रमाण ष्हींगवालष् कहानी में पा सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सुभद्रा जी की राष्ट्रीय चेतना अपनी जातीय गौरव की पक्षधर थी। उनमें ऐसी संकीर्ण भावना का समावेश नहीं था,जो दूसरों को गिराकर स्वयं ऊपर उठाना चाहे। वह सभी का सामान देखना चाहती थी। इस संबंध में आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने लिखा है:- "मानवता प्रेम के पुजारी में जातीय संकीर्णता नहीं हुआ करती, किंतु अपनी जाति की अवनति के कारणों का निर्मूल करना अपनी जाति के विश्वहित की दृष्टि से सशक्त एवं संगठित करना बे मानवता का प्रेम ही है, संकीर्णता कदापि नहीं। इसी दृष्टि

से हिंदू जाति के संगठन का समर्थन उन्होंने "एकादशी" कहानी में किया है। "पापी पेट" नामक कहानी में सुभद्रा जी ने थानेदार का चरित्र को दिखाया है जो सरकारी आदेश को मानने के लिए बाध्य है। इन कहानियों के माध्यम से अपनी राष्ट्रीय चेतना की विचारधारा को प्रतिस्थापित करने में सफल हुई है। "तांगेवाला" कहानी स्वाभिमान को जागृत करने वाली कहानी है। यह कहानी राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने में सहायक है जिसमें तांगेवाला विदेशियों की चाकरी से मिले धन से अधिक श्रेयस्कर अपने परिश्रम से कमाए स्वल्पधन को समझता है"।

कला के रूप में लेखक या कवि का सामाजिक व्यवहार ही अभिव्यक्त होता है। इस दृष्टि से देखने पर कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की कृतियां तत्कालीन समाज की राजनीतिक व सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों है। राष्ट्रीय जागरण नव जागरण का यह समय सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता कहानियां में मुखरित है। इसके साथ ही स्त्री का सामाजिक आर्थिक स्थिति के प्रति असंतोष का भाव अत: सलिला की तरह उनके गध-पध में व्याप्त हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान (1904-1948) का समय भारत में ब्रिटिश औपनिवेशीकरण का समय है, जहां लेखक और रचनाकार साम्राजिय व्यवस्था के अंतर्गत सामंती व्यवस्था को ढो रहे हैं और ठीक ऐसा ही समय में नवजागरण की लहर ने पूरा सामाजिक- सांस्कृतिक परिदृश्य को बदलने का बीड़ा उठा लिया है।

राष्ट्रीय चेतना से भरपूर इनकी कहानी "अमराई" मानवीय संवेदना को चित्रित करनेवाली एक मार्मिक कहानी है। इसमें ठाकुर साहब एक मजिस्ट्रेट है, उनकी अमराई में कुछ बच्चे खेल रहे हैं और खेल ही खेल में एक बच्चा गा उठा:

'झंडा ऊंचा रहे हमारा'

बस देखते ही देखते सब यही पंक्ति जोश के साथ दोहराने लगे। बात सरकारी महकमे पहुँच गई और ठाकुर साहब आहत हो इस्तीफा दे देते हैं:- इस कहानी के द्वारा जनमानस में यही चेतना जगती है कि हमें शासन पर आँख बन्द करके भरोसा नहीं करना चाहिए। "गुलाब सिंह" कहानी द्वारा दमन, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा करने की पृष्ठभूमि उजागर हुई है। सुभद्रा जी का जीवन एक कवयित्री से भी अधिक स्वतंत्रता सेनानी का जीवन था। उन्होंन स्वतंत्रता योद्धा के रुप में जितने कष्ट सहे, उतने कष्ट सहने वाली महिलाएं समूचे देश में उंगलियों पर ही गिनी जा सकती है। स्वतंत्रता के प्रति उनका यह उत्सर्ग भाव उनकी बाल कविताओं में भी कूट-कूट कर भरा दिखाई देता है। उनकी बाल कविताओं को पढ़कर ऐसा अनुभव होता है कि मानो वे अपने बच्चों को भी राष्ट्रभक्ति का संस्कार देकर अपनी ही तरह का राष्ट्रभक्त बनाने को प्रयासरत थी। यही कारण है कि उनकी लगभग सभी प्रमुख बाल कविताओं का स्वर राष्ट्रीयता से ओत प्रति है। उनको प्रमुख बाल रचनाओं में "पानी और धूप" "खिलौने वाला", "बाँसुरीवाला" तथा "सभा का खेल" विशेष रूप से बच्चों में राष्ट्रीयता का भाव जगाने वाली कविताएँ है।

"खुश होकर तब बिजली देगी, मुझे चमकती सी तलवार,
तब माँ कोई कर न सकेगा, अपने ऊपर अत्याचार"

एक बच्चे में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष के भावों का बीजारोपण करने का विचार सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी जुझारु और योद्धा के गुणों से युक्त किसी वीर कवयित्री के ही मन में जाग सकता था। इसी तरह "खिलौने वाला" कविता में खिलौने वाले के सब खिलौने छोड़ बच्चे के मन में राम बनने के लिए तीर, तलवार और धनुष-बाण खरीदने की इच्छा जगती है तो यह भी सुभद्रा जी की संकल्प का अभिव्यक्ति है, जो देश के बच्चों में राष्ट्रीयता और आत्मोत्सर्ग के भाव जागरण हेतु समर्पित है।

मैं तलवार खरीदूंगा माँ, या मैं लूँगा तीर कमान
जंगल में जा किसी ताड़का, को मरूंगा राम समान।
तापसी यज्ञ करेंगे, असुरों को मैं मार भगाऊँगा
यों ही कुछ दिन करते-करते, रामचंद्र बन जाऊँगा

सुभद्रा जी की "बाँसुरी वाला" कविता में भी बालक के मन में राष्ट्रीयता से ओत प्रोत का भाव है। कृष्ण की बाल लीलाओं में सबसे बड़ी बात यह है कि नन्हें से कृष्ण जन्मते ही असूरों का संहार शुरु कर देते हैं। कृष्ण की प्रत्येक लीला बालक में सहज ही वीरता और निडरता का भाव जगाने में सहायक होती है। राम और कृष्ण लीला बालकों में विकास की दृष्टि से सदैव प्रासंगिक है। स्वतंत्रता-संघर्ष के समय तो उसकी उपयोगिता कुछ अधिक ही बढ़ गयी थी, जिसका अत्यंत प्रभावी प्रयोग सुभद्राजी ने अपने बाल कविताओं में किया।

उनकी कविताओं में बच्चों का खेल 'सभा का खेल' हुआ करता था। उसमें कोई बच्चे गाँधीजी तो कोई नेहरूजी तो कोई सरोजिनी बनते थे।

सभा सभा का खेल आज हम, खेलेंगे जीजी आओ
मैं गाँधीजी, छोटे नेहरू, तुम सरोजिनी बन जाओ।

इस कविता के माध्यम से बच्चों में आदर्श और महान व्यक्तियों के चरित्र को अपनाने हेतु प्रेरणा देती है। इस तरह, वात्सल्य के साथ आरोपित संस्कार संपूर्ण आयु के संस्कार निरुपित कर देते हैं। इस तथ्य को सुभद्रा जी भली भाँति समझती थी। इसलिए बच्चों की बड़ी सहजता और कोमलता से अपनी कथनी और करनी द्वारा राष्ट्रभक्ति के प्रति अग्रसर करती रही।

इनका साहित्य राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रेरक रहा है और साथ ही यह समाज का स्पष्ट दर्पण भी था। राष्ट्र के लिए उनका सम्पूर्ण जीवन समर्पित था। साहित्य और राष्ट्र दोनों क्षेत्रों में उनके योगदान के विषय में अमृत राय ने उचित ही काश है: हिन्दी में सुभद्राजी की जैसी राष्ट्रीय कवयित्री अधिक न होने का एक सीधा सा कारण है, अधिकांश तथाकथित राष्ट्रीय कवियों के पास उस दिशा में वैसी साधना नहीं। राष्ट्रीय संग्राम के लिए उन्होंने वैसा कोई उत्सर्ग नही किया है। इसलिए उनके पास अपनी सहज भावनाओं का बल नहीं है।

जब आपकी भावनाएं सच्ची है, तो जो आपके हृदय में है वही आपकी कलम में है तभी पाठक को रचनायें को हृदयग्राही लगती हैं। सुभद्रा जी की कविताओं में जो ओज था वह स्वयं उनके भीतर की संवेदना का उत्स था।

शैल शर्मा के शब्दों में सुभद्रा जी राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर कविता के स्वर में अपना देश राग गाया है, जिससे उन्होंने भारत का गौरवशाली इतिहास दुहराया है। ऐसा इतिहास जो पराक्रम और पुरुषार्थ, त्याग और बलिदान से भरा हुआ है। मानव के लिए उनके हृदय में अपार करुणा, सहानुभूति और ममता थी। उनके काव्य में मानवता और संवेदना मुखरित हुई है।

सुभद्राजी का साहित्य मूलतः मातृभूमि की करुणापूर्ण दयनीय दशा से द्रवित हो उद्‌भूत ओजस्वी स्वरों में उदघोषित मातृरक्षा की पुकार है। गहरी संवेदना पूर्ण देशभक्ति, गहरी मानवनिष्ठा उनका संदेश है।

निर्धन हो धनवान, परिश्रम उनका धन हो
निर्बल हो बलवान, सत्यमय उनका मन हो
हो स्वाधीन गुलाम हृदय में अपनापन हो।

सन्दर्भ सूची

1. डा0 शीला मित्र प्रभात पृ० सं० 58
2. गजानन माधव मुक्ति बोध पृ० सं० 59
3. वही (राखी) पृ० सं० 77
4. सुभद्रा कु० चौहान, वही (स्वदेश के प्रति) पृ० सं० 104
5. विष्णुकान्त शास्त्री पृ० सं० 95
6. प्रभु तुम मेरे मन की जानो पृ० सं० 174
7. सुभद्रा कु चौहान (मातृ मंदिर में) पृ० सं० 84
8. सुभद्रा कु चौहान सुभद्रा समग्र पापी पेट पृ० सं० 16
9. डॉ गरिमा श्रीवास्तव (राष्ट्रभक्त कवि सुभद्र कु चौहान) पृ० सं० 116
10. वही (पानी और धूप) पृ० सं० 180
11. वही खिलौने वाला) पृ० सं० 183
12. वही, सभा का खेल पृ० सं० 195
13. अमृत राय इतिहास में अंकित सुभद्रा की स्मृतियों पृ० सं० 223
14. सुभद्रा कु चौहान, सुभद्रा समग्र (मेरी टेक) पृ० सं० 94

परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती कांता चंद्रा

शोधार्थी, हेमचंद यादव विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

डॉ० सोनिया पोपल

सहायक प्रोफेसर, सेंट थॉमस कॉलेज, भिलाई, छत्तीसगढ़

शोध सारांश :

वर्तमान शोधपत्र में परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना है। छत्तीसगढ़ के सक्ती जिले में कुल 64 माध्यमिक अशासकीय शालाएं हैं, जिनमें से दस अशासकीय विद्यालयों का चयन चिट द्वारा किया गया। इन अशासकीय माध्यमिक शालाओं में अध्ययनरत सभी विद्यार्थियों को न्यादर्श में शामिल किया गया। शोध में विद्यार्थियों की तर्क-शक्ति सम्बंधित आंकड़ो का संकलन किया गया। विद्यार्थियों की तर्क-शक्ति के मापन हेतु शोधार्थी द्वारा दुबे, एल. एन. (2015) में निर्मित तर्क-शक्ति परिक्षण (टेस्ट) का उपयोग किया गया। परिमाण बताते है, की अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की तर्क शक्ति, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की तर्क शक्ति से सार्थक रूप से अधिक है।

कीवर्ड: तर्क-शक्ति, अशासकीय विद्यालयों, लिंग

प्रस्तावना :

तर्क शक्ति मानव की एक महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक क्षमता है, जिसमें किसी विशिष्ट उद्देश्य की ओर निर्देशित व्यवस्थित सोच शामिल होती है। इसके लिए अमूर्त विचारों के निर्माण और सूचित निर्णय लेने की क्षमता की आवश्यकता होती है। इस उच्च मानसिक प्रक्रिया में मौलिक सिद्धांतों में निहित तर्क और समस्या समाधान तकनीकों का उपयोग शामिल है। नतीजतन, इसे संज्ञानात्मक विचार का शिखर माना जाता है, क्योंकि इसका अंतिम लक्ष्य एक निश्चित निर्णय या समाधान पर पहुंचना है। यह एक गहन प्रतीकात्मक कार्य है, जो विभिन्न प्रतीकों की व्याख्या और नई अवधारणाओं के निर्माण की अनुमति देता है। इसके अलावा, तर्क हमारे चारों ओर मौजूद कारण और प्रभाव संबंधों के जटिल जाल को सुलझाने के साधन के रूप में कार्य करता है। तर्क-शक्ति के महत्त्व को समझते हुए, शोधार्थी ने इस चर पर शोध करने का निर्णय लिया।

चर :

स्वतंत्र चर : लिंग

निर्भर चर : तर्क-शक्ति

उद्देश्य :

परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना :

परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति के मध्यमानों के मध्य सार्थक अंतर नही पाया जाएगा।

शोध विधि :

वर्तमान शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया।

न्यादर्श :

छत्तीसगढ़ के सक्ती जिले में कुल 64 माध्यमिक अशासकीय शालाएं हैं, जिनमें से दस अशासकीय विद्यालयों का चयन चिट द्वारा किया गया। इन अशासकीय माध्यमिक शालाओं में अध्ययनरत सभी विद्यार्थियों को न्यादर्श में शामिल किया गया। अशासकीय माध्यमिक शालाओं के नामों को भी प्रत्यक्ष ना करके, उन्हें क्रम 1 से 10 प्रदान करके, विद्यार्थियों की संख्या को लिंगवार तालिका क्रमांक 1 में दर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक 1: अशासकीय माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों की शालेय एवं लिंगवार संख्या

क्रमांक	*छात्रों की संख्या*	*छात्राओं की संख्या*	*कुल*
1	44	51	95
2	11	14	25
3	25	22	47
4	17	20	37
5	16	10	26
6	20	15	35
7	18	18	36
8	40	33	73
9	10	19	29
10	20	11	31
Total	221	213	434

उपकरण :

वर्तमान शोध में विद्यार्थियों की तर्क-शक्ति सम्बंधित आंकड़ो का संकलन किया गयाद्य विद्यार्थियों की तर्क-शक्ति के मापन हेतु शोधार्थी द्वारा दुबे, एल. एन. (2015) में निर्मित तर्क-शक्ति परिक्षण (टेस्ट) का उपयोग किया गया। इस परिक्षण की विभाक्तार्थ विश्वसनीयता गुणांक 0.91 है, तथा वैधता गुणांक 0.83 है। यह दोनों ही उच्च सीमा के हैं, अतः शोधार्थी द्वारा वर्तमान शोध में तर्क-शक्ति के आंकलन हेतु इस परिक्षण का चयन एवं उपयोग किया गया।

सांखिकीय विश्लेषण एवं विवेचना :

उपरोक्त उद्देश्य से संबंधित संकलित आंकड़ों को One-Way ANOVA सांखिकीय परीक्षण द्वारा विश्लेषित किया गया। जिसके परिणाम को तालिका 2 में प्रस्तुत किया गया है।

Table 2: Summary of One-Way ANOVA for Reasoning

Sources of Variance	*df*	*SS*	*MSS*	*F*
Between Groups	1	1750.08	1750.08	5.15*
Within Groups	198	67350.54	340.16	
Total	199	68420.58		

*- Significant at 0.05 level

उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 में यह स्पष्ट दिखाई देता है, की परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति के लिए F-value 5.15 पाई गयी जो df 1/198, तथा 0.05 स्तर पर सार्थक है। इससे यह प्रमाणित होता है, की परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति के मध्यमानो में सार्थक अंतर है। इस आधार पर, शोधार्थी द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना 'परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति के मध्यमानो में सार्थक अंतर नहीं होगा'। को निरस्त किया जाता है। परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं की तर्क शक्ति के मध्यमानो की गणना की गयी, जिसे तालिका 3 में प्रदान किया गया है।

Table 3: Gender-wise N, M, SD & SE

Gender	*N*	*M*	*SD*	*SE*
Male	100	65.84	17.17	1.76
Female	100	63.23	21.42	2.14

परिणाम :

परंपरागत शिक्षण प्रणाली से अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की तर्क शक्ति का मध्यमान 65.84 एवं छात्राओं की तर्क शक्ति का मध्यमान 63.23 पाया गया। इसका तात्पर्य यह है, की अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की तर्क शक्ति, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की तर्क शक्ति से सार्थक रूप से अधिक है।

निष्कर्ष :

इस विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है, की अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की तर्क शक्ति, अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की तर्क शक्ति की तुलना में उच्च-स्तरीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Ahmad, M., Shah, M. A. U. H., & Raheem, M. A. (2020). Scientific reasoning ability and academic achievement of secondary school students. *Global Regional Review*, *5*(1), 356-363.
2. Ayuningtyas, W., & Pramudya, I. (2019). Analysis of student's geometry reasoning ability at senior high school. *Journal of Physics: Conference Series* 1188(1), 12-39
3. Barrigas, C., & Fragoso, I. (2012). Obesity, academic performance and reasoning ability in Portuguese students between 6 and 12 years old. *Journal of biosocial science*, *44*(2), 165-179.
4. Kadarisma, G., Nurjaman, A., Sari, I. P., & Amelia, R. (2019). Gender and mathematical reasoning ability. In *Journal of Physics: Conference Series* 1157(4), 4-21
5. Nambikkai, C. D., &Veliappan, A. (2016). Relation between emotional intelligence and reasoning ability of higher secondary students. *International journal of research Granthaalayah, 4 (5)*, *104*.
6. Ningsih, Y. L. (2020). Statistical reasoning of prospective teachers through blended learning. In *Journal of Physics: Conference Series* 1480(1), 6-12
7. Olani, A., Harskamp, E., Hoekstra, R., & van der Werf, G. (2010). The roles of self-efficacy and perceived teacher support in the acquisition of statistical reasoning abilities: A path analysis. *Educational Research and Evaluation*, *16*(6), 517-528.

छत्तीसगढ़ राज्य में जिला प्रशासनः एक मूल्यांकन (बलौदाबाजार-भाठापारा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ० अशोक कुमार उपाध्याय

निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभागध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय दाऊ कल्याण कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलौदा बाजार (छ.ग.)

आलोक उपाध्याय

शोधार्थी, शासकीय दाऊ कल्याण कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलौदा बाजार (छ.ग.)

प्रस्तावनाः-

भारत में स्वतंत्रता के बाद सबसे बड़ी चुनौती कृषि प्रधान देश को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना था। प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने सर्वप्रथम कहा था कि मुझे देश के विकास के लिए इंजीनियर और डॉक्टर की आवश्यकता है चूंकि भारत की आत्मा गाँव में है क्योंकि भारत एक ग्रामीण प्रधान देश है। इसके लिए महात्मा गांधी ने पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा राम राज्य की कल्पना की थी। भारतीय संसदीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण और स्थानीय नागरिकों का विकास, स्थानीय नागरिकों के द्वारा करना सबसे बेहतर व्यवस्था मानी गई है जिसमें नौकरशाही की भूमिका रीढ़ की हड्डी के समान होती है इस संबंध में ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री जोसेफ चेम्बरलेन ने लोक सेवकों को संबोधित करते हुए कहा था कि "यह आश्चर्य की बात है कि हम लोग आप लोगों के बिना कार्य नहीं कर सकते जबकि आप लोग हमारे बिना कार्य कर सकते हैं" यह बात भारत के परिप्रेक्ष्य में भी लागू होती है क्योंकि ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था के समान ही भारत में भी संसदीय व्यवस्था लागू की गई है, जिसमें निर्वाचित जनप्रतिनिधि एवं नौकरशाह (अधिकारीगण) मिलकर विकास की गति को आगे बढ़ाते हैं।

अतः किसी भी जिले का विकास दो पहियों पर आधारित होता है एक जनप्रतिनिधि, दूसरा नौकरशाह। अध्ययन क्षेत्र बलौदाबाजार-भाठापारा जिले का विकास भी इसी कड़ी का एक भाग है। अविभाजित मध्यप्रदेश के समय यह क्षेत्र रायपुर जिले की एक तहसील के रूप मे जानी जाती थी।

1 नवंबर 2000 को छत्तीसगढ़ 16 जिलों के साथ मध्यप्रदेश राज्य से अलग हुआ और देश के 26 वें राज्य के रूप में उभर कर सामने आया वर्तमान में छत्तीसगढ़ में जिलों की संख्या 16 से बढकर 27 व वर्तमान में 33 जिला हो गई है, जिसमें बलौदाबाजार-भाठापारा जिला का निर्माण जनवरी 2022 में किया गया है।

जिले का गठन कोई ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सामाजिक आधार पर ना होकर राज्य शासन द्वारा विकास हेतु लिये गये निर्णय के आधार पर इसका गठन हुआ है। सरकार ने जिला प्रशासन की सुविधा को देखकर बलौदाबाजार-भाठापारा जिले का गठन किया गया है। बलौदाबाजार-भाठापारा जिले का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विकास करने में सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में शिक्षा, स्वास्थ्य, आधुनिक कृषि, परिवहन, विद्युत, पेयजल व्यवस्था व विज्ञान और टेक्नोलॉजी की ओर विस्तार आवश्यक तत्व है। जब लोगों को आधुनिकता की ओर बढ़ने की इच्छा होती है, तभी विकास की ओर अग्रसर होते हैं, क्योंकि गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास जैसे दोषों को दूर करने के लिए शहरों और दूसरे विकसित क्षेत्रों की तरह विज्ञान और टेक्नोलॉजी का उपयोग कर विकास के लिए लोगों में नैतिक बल उत्पन्न करने की आवश्यकता है तभी वे आत्मनिर्भर हो सकते हैं। इसमें सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण होनी चाहिए। इसके लिए सम्पूर्ण साक्षारता का कार्यक्रम जो बलौदाबाजार-भाठापारा जिले में चलाया गया, जिससे नागरिकों में जन-जागृति आई और शिक्षित बने और अपने बच्चों को भी शिक्षित बनाया। जिले की कार्य प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि विकास एवं सामुदायिक विकास के दौरान क्षेत्र का विकास निम्न से उच्च स्तर की ओर होनी चाहिए। बलौदाबाजार-भाठापारा में जिला प्रशासन में शासकीय-योजनाओं को लागू करने में अग्रणी भूमिका अदा की और ऐसा करते हुए उन्होंने लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को दूर कर शहर और ग्रामीण क्षेत्रों में शासकीय योजनाओं को लागू कर जिले को विकास की ओर अग्रसर किया है।

अध्ययन का राजनीतिक महत्वः-

राज्य निर्माण के बाद अध्ययन क्षेत्र में सम्रग विकास हेतु, जिसमें सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक विकास को ध्यान में रखकर जिला प्रशासन द्वारा नई योजनाओं को प्रारंभ किया गया है, जिसमें केन्द्र व राज्य दोनों की योजनाएं जो पंचायत के माध्यम से क्रियान्वित हो रही है, जिसका पूरा नियंत्रण जिला प्रशासन का होता है, जिसमें अधिकारी वर्ग के रूप में जिलाधीश से लेकर पटवारी तक सम्मिलित है और जनप्रतिनिधि के रूप में सांसद,

विधायक, मंत्री एवं सरपंच सभी सम्मिलित है। बलौदाबाजार-भाठापारा जिले में प्रशासन के माध्यम से राज्य व केन्द्र सरकार की अनेक जनकल्याणकारी योजनाएं संचालित की जा रही है, जिसमें सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना, गृह लक्ष्मी योंजना, ग्राम उत्कर्ष योजना आदि प्रमुख है। राज्य सरकार द्वारा राज्य के समस्त गरीब परिवारों के लिए मुख्यमंत्री खाद्यान्न सहायता योजना के अन्तर्गत चावल उपलब्ध करा रही है। इससे जिले के गरीब परिवारों को लाभ मिल रहा है। जिले में जहां शासन द्वारा हितग्राहियों के लाभार्थ के लिए अनेक योजना संचालित की जा रही है। वहीं दूसरी ओर जनप्रतिनिधि निचले स्तर के शासकीय कर्मचारियों द्वारा योजनाओं के संचालन में गड़बड़ी की जा रही है परन्तु शीर्ष स्तर के अधिकारियों द्वारा समय पर निरक्षण कर इसमें अंकुश लगाने का प्रयास किया जा रहा है। ग्रामीण बुनयादी ढ़ाचें को विकसित करने हेतु पूर्व में संचालित योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों और योजनाओं को जन कल्याणकारी बनाने के लिए इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है, कि इन योजनाओं में ग्रामीण ढांचागत सुविधाओं के लिए सामान गुणवत्ता वाले मानकों का निर्धारण करता है या नहीं। जिले में केन्द्र और राज्य सरकार की लागू सभी योजनाएँ जिला प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है, परन्तु इन योजनाओं की सार्थकता तब तक सिद्ध नहीं हो सकती, जब तक उसके वास्ताविक हितग्राहियों को शत-प्रतिशत लाभ नहीं मिल जाता है।

जिले में समग्र विकास के लिए यह आवश्यक है कि बिना किसी भेद भाव के विकास को परिलक्षित करना है, तो शासन के विभिन्न योजनाओं को जिले के प्रत्येक विकासखंड में सामान रूप से संचालित करना होगा तभी जिले का संपूर्ण विकास संभव है।

अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक परिचयः-

छत्तीसगढ़ राज्य का गठन 01 नवम्बर 2000 को हुआ का और भारत का 26 वाँ राज्य बना। पूर्व में इस क्षेत्र में 36 गढ़ थे इसलिए इसका नाम छत्तीसगढ़ पड़ा। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ का क्षेत्रफल 1,35,191 वर्ग किलोमीटर है। इसकी सीमाएँ 6 राज्यों को स्पर्श करती है म.प्र., महाराष्ट्र, उड़ीसा, तेलगाना, उ.प्र,. झारखण्ड। अध्ययन का क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य की 33 जिलो में एक बलौदाबाजार -भाटापारा जिला है जो प्रशासनिक, राजनीतिक, औधौगिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से न केवल प्रांत बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अपना अलग स्थान है। जिले में चुना पत्थर ही प्रमुख खनिज संपदा के कारण इसका और भी महत्व बढ़ गया है। यह छत्तीसगढ़ के मध्य भाग में स्थित है। इसके दक्षिण व उत्तर पश्चिम भाग के पहाड़ी व बसाहट क्षेत्र के कटिबंध है। जिसमें खनिज, वन, बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं यह जिला 54 उत्तरी अक्षांश तथा 82 पूर्वी देशान्तर के मध्य समुद्र तल से 270 किमी. ऊचाई पर स्थित है। रायपुर संभाग में स्थित बलौदाबाजार जिले की सीमा बेमेतरा, मुंगेली, बिलासपुर, जांजगीर, सारंगढ़ ,महासमुंद्र व रायपुर, जिलों को स्पर्श करती है। बलौदा बाजार का नाम प्रचलित किवदंती अनुसार पूर्व में मध्य गुजरात महाराष्ट्र, उड़ीसा, बरार आदि प्रांतों के व्यापारी बैल, बोंदा (बोदा) का क्रय-विक्रय करने नगर के भैंसा पारा में एकत्र होते थे जिसके फलस्वरूप इसका नाम बोंदाबाजार तथा कालांतर में बलौदाबाजार के रूप प्रचलित हुआ।

बलौदाबाजार में वर्ष 1957 मे द्विसदस्यीय बलौदाबाजार लोकसभा सीट पर विद्याचरण शुक्ल व मिनीमाता को निर्वाचित घोषित किया गया। पश्चात रायपुर लोकसभा अंतर्गत शामिल कर लिया गया। 1973 में बलौदाबाजार की नगर पालिका का दर्जा दिया गया।

बलौदाबाजार जिले के नाम की उत्पति बैल- भैंस (बोदा) का क्रय विक्रय के नाम पर पड़ा बलौदाबाजार जिले में मुख्यनदी महानदी, शिवनाथ, जोंक, है तथा यह प्रमुख नदी है। बलौदाबाजार जिले में 6 तहसील है। बलौदाबाजार की कुल जनसंख्या वर्तमान में लगभग 13 लाख है जिसमें ब्राम्हण, वैश्य, कुर्मी ,साहू, सतनामी, महार, कबीरपंथी, यादव, स्वर्णकार, कलार, मुस्लिम, सिख, सिधी, आदि है इसमें पिछड़ी जाति व जनजाति की संख्या अधिक है जिले की जनसंख्या का लगभग 10% भाग जनजाति का प्रमुख है, गोंड़, हल्बा आदि है। जिले के विधानसभा क्षेत्र बिलाईगढ़, बलौदाबाजार-भाटापारा व कसडोल है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार वर्तमान में बलौदाबाजार की जनसंख्या 13,05,343 है जिसमें महिला 6,53,869 तथा पुरूष 6,51,474 है। इसका जिला मुख्यालय बलौदाबाजार है।

इसकी स्थापना 1903 में अंग्रेज अधिकारियों के द्वारा सिमगा स्थित तहसील को मुख्यालय को बलौदाबाजार में स्थानांतरित कर इसे जिला का दर्ज दिया गया था। उस वक्त से ही इसमें विकासखण्ड सिमगा भाटापारा, बलौदाबाजार शामिल थे।

शोध साहित्य का पुनरावलोकनः-

प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य में जिला प्रषासनः एक मूल्यांकन (बलौदाबाजार-भाठापारा जिले के विषेष संदर्भ में) से संबंधित हैं ऐसे में उन संदर्भित अध्ययनों की समीक्षा की गई हैं जो अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है वे निम्नानुसार हैः-

1. बर्थवाल सी.पी. (2014) ने अपने अध्ययन में जिला प्रशासन की स्थिति प्राचीन और आधुनिक भारत का तुलात्मक अध्ययन में बताया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में आंतरिक प्रशासनिक व्यवस्था के संचालन हेतु ब्रिटेन की संसदीय कार्य प्रणाली का अनुसरण किया गया वही स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान के अनुरूप संघसूची, राज्यसूची, समवर्ती सूची के आधार पर अलग कार्य क्षेत्रों का विभाजन किया गया ताकि केन्द्र व राज्य सरकार एक दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप न कर सके।
2. शर्मा रेखा (2014) ग्रामीण महिलाये एवं पंचायतीराज - उन्होने ने अपने अध्ययन में बताया कि किसी भी देश के विकास मे उस देश की महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती हैं। चाहे व ग्रामीण व शहरी निकाय क्यों न हो, शासन के हर क्षेत्र में महिला पुरूषों के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। लेकिन आज भी पंचरायतीराज व्यवस्था में महिलाओं को समानता का दर्जा दिया गया है स्थानीय समान व्यवस्था में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।
3. धीवर डॉ. जयप्रकाश (2013) ने अपने अध्ययन महिला सशक्तिकरण में ग्रामीण विकास योजनाओं की भूमिका का विश्लेषण में स्पष्ट किया कि महिलाओं के सशक्तिकरण में ग्रामीण विकास योजनाओं से उनकी सामाजिक स्थिति उच्च हुई है, तथा उनकी जागरूकता में वृद्धि हुई है, जिससे वो ग्रामीण विकास की दिशा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

अध्ययन का उद्देश्य -

प्रस्तावित विषय के अध्ययन के लिए निम्नानुसार प्रमुख उदेद्श्य निर्धारित किया गया हैं, जिन्हें आधार मानकर अध्ययन किया गया है।

1. जिला प्रशासन के प्रयास से ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों को होने वाले लाभ का अध्ययन किया जाएगा।
2. नवगठित जिले में विकास कार्यों का अध्ययन किया जाएगा।
3. जिला प्रशासन द्वारा शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में संचालित की जाने वाली योजनाओं का अध्ययन किया जाएगा।

शोध की परिकल्पना -

किसी भी शोध कार्य प्रारंभ करने के पूर्व शोधकर्ता को समस्या के संबंध में कार्य कारण संबंध प्रतिमान के आधार पर पूर्व चिन्तन कर लेना होता है, इस प्रकार उपकल्पना एवं तीक्ष्ण अनुमान है, जिसका प्रतिपादन अस्थायी, स्वीकरण, अवलोकित तथ्यों अथवा दशाओं की व्याख्या करने तथा शोध कार्य को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है, किसी भी शोध में हम उपकल्पना के बिना एक कदम भी आगे नही बढ़ सकते हैं। शोध परिकल्पना एक कार्यकारी आधार होता हैं जो कि शोधार्थी को एक दिशा प्रदान करता हैं। शोध उपकल्पना को एक ऐसी कल्पना कहा जाता है, जिसका परीक्षण शोध कार्य के दौरान किया जाता हैं। मेरे द्वारा चयनित इस शोध विषय में मेरी पूर्व कल्पना निम्नानुसार हैं।

1. जिले के बेरोजगार युवकों को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराने में सफलता मिल सकेगा।
2. नव गठित जिले की ग्रामों में पिछड़ापन व गरीबी दूर हो सकेगा।
3. नव गठित जिले में जिला प्रशासन की सक्रियता से नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार हो सकेगा।

अध्ययन की पद्धतिः-

प्रस्तावित शोध की विधितंत्र को निम्नांकित भागों में विभक्त किया गया हैं।

1. अध्ययन क्षेत्र का चुनाव -विकास की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के रूप में नवगठित बलौदाबाजार-भाटापारा जिले को लिया गया है। जहाँ विकास कार्यो में जिला प्रशासन की भूमिका का अध्ययन किया जाएगा।
2. अध्ययनगत इकाई -प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनगत इकाई के रूप में सिमगा भाटापारा, बलौदाबाजार जिले के शहरी/ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में किये गये कार्यों का अध्ययन किया जाएगा।
3. उत्तरदाताओं का चुनाव -प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र बलौदाबाजार-भाटापारा जिले के ग्राम पंचायत जिला पंचायत व जिला प्रशासन व नागरिक के उत्तरदाता का चुनाव बहुस्तरीय निर्देशन के द्वारा किया जाएगा, जिसके अंतर्गत उन्ही 3 तहसीलों से प्रत्येक तहसील से 100 उत्तरदाताओं का चयन कर उद्देश्यपूर्ण निर्देशन के माध्यम से कुल 300 उत्तरदाताओं से अभिमत प्राप्त कर विश्लेषण किया जाएगा।
4. तथ्य संकलन पध्दति, प्रविधि एवं उपकरण-प्रस्तुत शोधकार्य हेतु तथ्यों का संकलन दो प्रकार से किया जाएगाः-

   1. प्राथमिक स्त्रोत 2. द्वितीयक स्त्रोत

1. प्राथमिक स्त्रोत- इसके अंतर्गत निम्नलिखित आधार पर शोध सामग्री हेतु अध्ययन व विश्लेषण किया जाएगा।

अ. प्रश्नावली/साक्षात्कारः उत्तरदाताओं से साक्षात्कार दैव निदर्शन के आधार पर प्रश्नावली के माध्यम से लिया किया जाएगा।

ब. अवलोकनः बलौदाबाजार-भाटापारा जिले के 3 तहसील सिमगा भाटापारा, बलौदाबाजार के अंतर्गत प्रत्येक तहसील से 100-100 उत्तरदाताओं का चयन कर कुल 300 उत्तरदाताओं का चयन कर अवलोकन किया जाएगा, जिसमें प्रमुख ग्रामों का भ्रमण कर, पंचों, सरपंचों, जनपद सदस्यों, ग्रामीणों एवं योजना से जुड़े हुए अधिकारियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त उत्तर का सत्यापन किया जाएगा।

स. दैव निदर्शनः समग्र में दैव निदर्शन वृहत इकाई का लघु स्वरूप होता है, जिसमें से कुछ इकाईयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप में चुनना निदर्शन कहलाता है। निदर्शन बहुत बड़े समूह का एक छोटा प्रतिनिधित्व होता है, जिसमें समूह के समस्त लक्षण विद्यमान होते हैं। अध्ययन क्षेत्र बलौदाबाजार-भाटापारा जिले के अंतर्गत 3 तहसील सिमगा भाटापारा, बलौदाबाजार से शोध के लिए लगभग 300 उत्तरदाताओं का चयन किया जाएगा,जिसमें बलौदा बाजार-भाटापारा जिले के सभी तहसीलों से 10-10 ग्राम एवं प्रत्येक ग्राम से 10-10 लोगों का अभिमत लिया गया हैं इस प्रकार शोध प्रबंध में 300 उत्तरदाताओं का अभिमत लिया किया जाएगा, जिसका विवरण निम्नानुसार है:-

क्र.	बलौदाबाजार	भाटापारा	सिमगा	कुल 3 तहसील
	1	2	3	4
1	चयनित 10ग्राम ⇩	चयनित 10ग्राम ⇩	चयनित 10ग्राम ⇩	कुल 30 गाम
2	एक ग्राम से 10 ⇩ उत्तरदाता 10 ग्राम से कुल 100उत्तरदाता	एक ग्राम से 10 ⇩ उत्तरदाता 10 ग्राम से कुल 100 उत्तरदाता	एक ग्राम से 10 ⇩ उत्तरदाता 10ग्राम से कुल 100 उत्तरदाता	कुल 300 उत्तरदाता

उपरोक्तानुसार अध्ययन क्षेत्र बलौदाबाजार-भाटापारा जिले के चयनति 3 तहसीलों में प्रत्येक तहसील से 10 ग्राम एवं प्रत्येक ग्राम से 10 उत्तरदाताओं का चयन करके अध्ययन क्षेत्र में निवासरत समस्त श्रेणियों के नागरिकों का समावेष किया गया हैं।

उत्तरदाताओं के चयन का आधार

1. शहर के नजदीक का ग्राम,
2. शहर के दूरस्थ ग्राम
3. जनसंख्या के अनुपात में बड़े ग्राम,
4. जनसंख्या के अनुपात में छोटे ग्राम,
5. शिक्षित ग्राम एवं कम शिक्षित ग्राम को लिया जाएगा।

द. सर्वेक्षण: बलौदाबाजार-भाटापारा जिले के तीन तहसीलों सिमगा भाटापारा, बलौदाबाजार के अंतर्गत निवासरत सभी श्रेणी के परिवारों का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सर्वेक्षण कर अध्ययन किया जाएगा।

2. द्वितीयक स्त्रोत:- इसके अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र में जिला प्रशासन व शासन के नीति व विकास कार्यों से संबंधित विभिन्न शोध प्रबंध एवं पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित तथ्य एवं इंटरनेट द्वारा प्राप्त सामग्री को शामिल किया किया जाएगा, जिसमें बलौदाबाजार-भाटापारा जिलाधीश कार्यालय, बलौदाबाजार-भाटापारा जिला पंचायत, बलौदाबाजार-भाटापारा नगर पालिका कार्यालय के अधिकारी/कर्मचारियों के कार्यप्रणाली व सुझाव सम्मिलित किया जाएगा।

तथ्यों का संकलन:-

उत्तरदाताओं के प्रकृति के आधार पर जिला प्रशासन व विकास से संबंधित साक्षात्कार चयनित उत्तरदाताओं से किया गया हैं, साथ ही शोध कार्य के दौरान अध्ययन क्षेत्र के लोगों से समूह वार्ता व अवलोकन तकनीक के द्वारा भी तथ्यों का संकलन किया जाएगा।

निष्कर्ष-

परिवर्तन और निरंतरता की शाश्वत गतिमान धारा के अनुसार हाल की शताब्दियों में भारतीय गाँवों के स्वरूप एवं संरचना में क्रमिक परिवर्तन हुए है। यह निर्विवादित रूप से सत्य है जिस देश की 70 प्रतिशत् जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, उस देश में ग्रामीण विकास की अनदेखी कर विकास की चरम सीमा को प्राप्त करना कोरी कल्पना होगीं। हमारे देश में भी लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या गाँवों में निवास करते हुए राष्ट्रीय आय में लगभग 40 प्रतिशत् का योगदान कर रही है। ऐसी दशा में गाँवों के चहुंमुखी विकास में ही सम्पूर्ण भारत का विकास निहित हैं।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ग्रामीणों की जीवन-दशा को सुधारने और विकास के लिए कई कार्यक्रमों एवं योजनाओं को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से क्रियान्वित किया गया है। इससे एक निश्चित सीमा तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हुआ है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि नियोजन के कई दशक के बाद भारत विकसित देशों की दौड़ में शामिल हो गया है। पिछले कुछ दशकों में जो विकासात्मक कदम उठाए गए है, उससे भारतीयों का जीवन स्तर पूर्व के स्तर से बेहतर हुआ है। यह सोचना कि ग्रामीण क्षेत्र का पलक झपकते ही कायापलट हो जाएगा - ऐसा कदापि संभव नहीं है, किन्तु जिस दिशा को ओर भारत विशेष रूप से प्रवृत्त हो रहा है, वह देश के आर्थिक एवं सामाजिक सृढ़ीकरण का प्रतीक हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. ए.पी. अवस्थी, 2000 "विकास प्रशासन" लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, पृष्ठ क्रमांक 1-33, आगरा
2. जी.आर.मदन, 2009 "विकास का समाजशास्त्र" विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर, पृष्ठ क्रमांक 6, दिल्ली
3. अलेन बालू, 2012 "आधुनिक राजनीति और शासन" मैकमिलन पब्लिशिंग, पृष्ठ क्रमांक 107, दिल्ली
4. भोलानाथ घोष, 1996 "लीडरशिप एण्ड डेवलपमेंट" मोहित पब्लिकेशन नई पृष्ठ क्रमांक 36, दिल्ली
7. बी.एल.फाड़िया, 2008 "तुलनात्मक राजनीति" साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृष्ठ क्रमांक 36, आगरा
8. आनंद प्रकाश सिंह, 1989 "ग्रामीण शक्ति संरचना क बदले प्रतिमान" डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस,, पृष्ठ 82, दिल्ली
9. पुखराज जैन, 2008 "तुलनात्मक राजनीति एवं शासन" साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृष्ठ क्रमांक 86, आगरा
10. प्रीता जोशी, 1996, विकास प्रशासन, आर.बी.एस.ए, पब्लिशर्स, पृ. 37-38, जयपुर
11. डॉ.एस.आर.महेश्वरी, 2000 "प्रशासनिक सुधार आयोग" लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, पृष्ठ क्रमांक 40, आगरा
12 योजना, वर्ष 2019, अंक 64, फरवरी, पृ.15 नई दिल्ली,
13 कुरूक्षेत्र, 2019, अंक 61, फरवरी, पृ.18 नई दिल्ली,
14 जनसत्ता, 2018, छत्तीसगढ़ शासन, पृ. 35 रायपुर

कामकाजी महिलाएँ और महिला सशक्तिकरण की स्थिति

डॉ० राम नरेश टण्डन

शोध निर्देशक, सहा.प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय नागरिक कल्याण, महाविद्यालय, नंदिनीनगर, अहिवारा, जिला-दुर्ग (छ.ग.)

श्रीमती चित्रमाला भिमटे

शोधार्थी (समाजशास्त्र) शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर, स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

प्रस्तावना

कामकाजी महिलाओं में एक बड़ी संख्या किशोरियों की है, ये किशोरियाँ आत्मविश्वासी एवं उच्च शिक्षित है, लेकिन भारतीय पितृसत्तात्मक समाज जो कि आज भी स्त्रियों के प्रति मामूली सोच से ग्रसित हो, उन्हें समस्यामुक्तहोकर कार्य करने की आज्ञा नहीं देता, यह विडम्बना है कि ये आत्मनिर्भर किशोरियाँ अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय अपनी इच्छा से नहीं ले सकती। विवाह पूर्व पिता व भाई के और विवाह पश्चात पति के थोपे निर्णय स्वीकार करना इनकी नियति है। ये किशोरियाँ नौकरी करते हुए भी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं हो पाती उनके वेतन पर परिवार के सदस्यों की गिद्ध दृष्टि होती है। इन किशोरियों की नौकरी को दहेज के विकल्प के रुप में स्वीकार किया जाता है और इनका वेतन मासिक किश्तों के रुप में प्राप्त होने वाला दहेज माना जाता है। इन किशोरियों के कंधो पर दोहरी जिम्मेदारियों का भार होता है घर की और कार्यक्षेत्र की। उन्हें पारिवारिक सदस्यों से अपेक्षानुसार सहयोग प्राप्त नहीं होता शक, टीका-टिप्पणी, अविश्वास अधिकांश कामकाजी किशोरियों की समस्या है। अविश्वास के ये बढ़ते दायरे इन किशोरियों के चरित्र, व्यक्तित्व और व्यवहार पर लोग ऐसे प्रश्न चिन्ह है, जो पुरुष मानसिकता के पूर्वाग्रह तो है ही साथ ही अपनों द्वारा व्यक्त किया गया अविश्वास भी है। अपने कार्यक्षेत्र में इनकी योगदान को सीमति कर देता है।

कामकाजी महिलाएँ और महिला सशक्तिकरण

आर्थिक विकास के बिना बाकी सभी विकास नगण्य से प्रतीत होते हैं और आर्थिक विकास हेतु शिक्षा बेहद आवश्यक है, इसलिए हमारे यहां 12वीं तक की शिक्षा बालिकाओं के लिए मुफ्त है। गरीब, दलित व पिछड़े वर्ग की बालिकाओं हेतु छात्रवृत्ति की व्यवस्था है ताकि शिक्षा में किसी तरह का व्यवधान ना हो, वे समर्थ होकर देश के विकास में अपना योगदान दे सकें। शिक्षा साध्य व वांछनीय लक्ष्यों की पूर्ति का साधन दोनों ही है। शिक्षा से बुद्धि का विकास, व्यक्तित्व निर्माण व सांस्कृतिक समझ विकसित होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है, समाज में गतिशीलता आती है। यह ऐसा सशक्त उपकरण है जो नवीन सामाजिक व्यवस्था का सृजन संचालन करने के लिए महिलाओं को सक्षम बनाता है। हमारे वेदों में महिला शिक्षा का विशद् वर्णन है। वैदिककाल में महिलायें समाज में विशेष स्थान पर प्रतिष्ठित थीं, उनकी शिक्षा की उत्तम व्यवस्था भी ऋग्वेद के अनुसार थी। महिलाओं पर ही जीवन आधारित है और वे ही समाज के अन्य वर्गों को शिक्षा प्रदान करती है व समाज की महत्त्वपूर्ण संरचना इकाई परिवार की धुरी होती है

ब्रिटिशकाल के दौरान भी महिलाओं की शिक्षा तथा उनके सेवायोजन का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। लॉर्ड कर्जन ने महिला शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया जिसके फलस्वरूप 1913 में शिक्षा नीति का सरकारी प्रस्ताव आया। सन् 1916 में मुम्बई में देश के पहले महिला विष्विद्यालय (वर्तमान में नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला विष्वविद्यालय) की स्थापना हुई। इस काल में बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि हुई।

महात्मा गाँधी द्वारा संचालित स्वतंत्रता आन्दोलन में लड़कियों को लड़कों के समान ही समझने की भावना का विकास हुआ और आजादी के बाद महिला शिक्षा में गुणात्मक सुधार हुआ। महिला शिक्षा के प्रति लोगों का व्यवहार व दृष्टिकोण दोनों बदल रहे हैं, इससे जीवन की आम समस्याओं के निराकरण व आर्थिक स्वावलम्बन मानकर लड़कियों को भी उच्च शिक्षा प्रदान की जा रही है और आज विवाह हेतु जीवन-साथी के चयन में 'कामकाजी वधू' को प्राथमिकता दी जाती है ताकि वह परिवार को आर्थिक मजबूती प्रदान कर सकें, पारिवारिक सदस्यों व बच्चों का भविष्य बेहतर बना सकें। कामकाजी महिलाओं/नौकरीपेशा महिलाओं को विकास का प्रतीक माना जाता है। कहा जाता है कि "कोई भी समाज जितना सुसभ्य व सुसंस्कृत होगा, महिलाओं की स्थिति वहाँ उतनी ही श्रेष्ठ होगी।'

वर्तमान में महिलाओं ने घर की चार दिवारी लाँघकर पुरुषों के साथ अनेकों व्यवसायों में सहभागिता कर ली है और अपने कैरियर व पदोन्नति के लिए प्रयत्नशील भी है। परम्परागत भारतीय समाज में पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करने वाली महिलाएँ को ही आदर्श माना जाता था, यदि वह बच्चों की उपेक्षा कर घर से बाहर कार्य करती थी तो उसे अच्छा नहीं माना जाता था।

वर्तमान में महिलायें घर से बाहर जाकर आर्थिक कार्य तो करने लगी हैं, परन्तु परिवार में पूर्व आदर्श भूमिकाओं में बदलाव ना आने के कारण उन्हें दोहरी भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ रहा है। परिवार व पेशे के बीच तालमेल बैठाने में (क्योंकि दोनों की माँगें सर्वथा भिन्न होती है) काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उनकी कार्य करने की क्षमता, उपयोगिता, महत्त्व को भी सभी ने स्वीकार किया है, परन्तु इन महिलाओं को जिस पारिवारिक सहारे की जरूरत होती है, उससे अधिकतर महिलाओं को वंचित कर दिया जाता है। शिक्षा, नौकरी, शहरीकरण के कारण महिलायें संयुक्त परिवार को छोड़कर एकाकी परिवारों में रहने लगी है तब उन्हें प्रतिदिन ही कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। परिवार में अगर छोटे बच्चे हैं तो उनकी देखभाल व ऑफिस (कार्यस्थल) जाने के दौरान, पालन व पोषण, देखभाल की समस्या प्रमुखता से उभर कर आती है। छोटे कस्बों में जहाँ क्रेच (शिशुपालना घर) नहीं है, 'मेड' (बच्चों व घर की देखभाल करने वाली) आसानी से उपलब्ध नहीं होती वहाँ यह समस्या विकराल रूप कर लेती है।

उस समय इन महिलाओं की मानसिक परेशानी का अंदाजा लगाना भी मुश्किल है, उन्हें बार-बार दोनों भूमिकाओं को निभाने में द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है। घरेलू कार्य, बच्चों के प्रति जिम्मेदारी, सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखना व कार्यस्थल पर उत्कृष्ट प्रदर्शन करने की भी अपेक्षा की जाती है।

यह स्थिति किसी त्रासदी से कम नहीं है। घर और नौकरी की अलग-अलग माँगें जो अक्सर एक-दूसरे के विपरीत ही होती हैं, निभाने के दौरान या तो महिला को परम्परागत आदर्श महिला की छवि से अलग कर दिया जाता है या फिर कार्यस्थल पर उत्कृष्ट प्रदर्शन ना कर पाने के कारण क्षमता से हीन मान लिया जाता है जबकि महिलायें परिवार के बेहतर भविष्य हेतु ही बाहर जाकर कार्य करना स्वीकार करती हैं और कार्यस्थल पर भी वह अपने पुरूष सहकर्मियों के समान ही बेहतर कार्य प्रदर्शन कर सकती हैं, परन्तु इस समय उसकी क्षमताओं, इच्छा शक्ति, प्रदर्शन का परिवार व ऑफिस के मध्य विभाजन हो जाता है। भूमिका संघर्ष की स्थिति उभरकर आती है।

विवाहित कामकाजी महिलाओं की समस्याओं की बात करें तो एक सर्वे के अनुसार मात्र 40 प्रतिशत महिलायें ही अपनी इच्छा से कार्यशील होती हैं, लगभग 25 प्रतिशत को किसी आर्थिक मजबूरी के चलते काम करना पड़ता है तो 25 फीसदी महिलायें अपने पति की इच्छा के कारण ऐसा करती है।

यदि महिलायें अपने करियर पदोन्नति के प्रति अधिक सशक्त है और उन्हें परिवार का अपेक्षित सहयोग नहीं मिलता है, वहाँ पारिवारिक संघर्ष भी बढ़ता है। जैसे-जैसे महिलाओं में समानता की भावना आती जाती है वैसे-वैसे ही पारिवारिक सम्बन्धों तथा व्यवस्था व भूमिका निर्वाह में संघर्ष की स्थिति भी बढ़ती जा रही है। जिन परिवारों में पुरुष महिलाओं को काम करने के लिये प्रोत्साहन, समर्थन व वांछित सहयोग देते हैं, वहाँ संघर्ष की मात्रा कम है। महिलाओं की दोहरी भूमिका निर्वाह क्षमता पर डॉ. हरीदास रामजी शैण्डे सुदर्शन कहते हैं, ''दोहरी जिन्दगी जीते हुए नारी कभी-कभी खुद को असहाय एवं उपेक्षित पाती है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं की उसने कहीं हार स्वीकार कर ली है, वह निरन्तर परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करती हुई प्रगति पथ में अपने झंडे गाड़ रही है।"

सरकारी नीति के अनुसार यदि पति-पत्नी दोनों सरकारी नौकरी में हैं तो जहाँ तक सम्भव हो सकें दोनों को एक ही शहर में नियुक्ति दी जाय। परन्तु समस्या निजी क्षेत्रों में कार्य करने वाली महिलाओं की है। पति का स्थानान्तरण होने पर पत्नी को अपनी नौकरी छोड़नी ही पड़ती है। उनसे आशा भी यही की जाती है और महिलायें भी पारिवारिक कलह से बचने के लिए यह समझौता चुपचाप सहन कर लेती है। मानव विकास मंत्रालय के अनुसार 10 फीसदी महिलायें तो मात्र स्थानान्तरण से बचने के लिये ही पदोन्नती स्वीकार नहीं करती है। अस्मित नामक गैर सरकारी स्वैच्छिक संगठन का शोध बताता है कि उच्च परिवारों की अतिशिक्षित लगभग 13 प्रतिशत महिलायें पति द्वारा हाथापाई का शिकार होती हैं। यदि महिला उच्च पदस्थ है तथा उसका वेतन पति के वेतन से अधिक है तो पति हीनता की भावना से ग्रसित हो जाता है, अपनी कुंठा वह पत्नी को अन्य व्यक्तियों के समक्ष (पारिवारिक सदस्यों, मित्रों या उनके अलावा अन्य भी) नीचा दिखाने का प्रयास करता है, अशोभनीय व्यवहार कर अपने आपको श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास करता है। पुरुष की इस दिवालिया मानसिकता के कारण दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होता है, जो कभी-कभी तलाक तक का कारण बन जाता है और यदि महिला पुरुष की इस झूठी अहंवादी सोच से समझौता करती है तो उसे प्रतिदिन नई-नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शिक्षा आर्थिक स्वतंत्रता अपनी अस्मिता की पहचान, बड़े-बड़े पदों पर काम करने से उपजे आत्मविष्वास ने एक बिल्कुल नई स्त्री को जन्म दिया है। उनकी अपेक्षा पुरुषों में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। रात-दिन आधुनिकता का दंभ भरने वाले, बडे-बड़े भाषण फटकारने वाले, लेखों का अंबार लगा देने की वांछित तथा आधुनिक पुरुषों की चमड़ी की बस एक परत उतारिए कि आप पायेंगे वह सामंती संस्कारों वाला पति जो स्त्री पर शासन करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। राष्ट्रीय महिला आयोग का एक अध्ययन बताता है कि शिक्षित आधुनिक कामकाजी महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक शोषण का सामना करना पड़ता है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकडे भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। निम्न वर्ग की कामकाजी महिलाओं की स्थिति तो और भी बदतर है। योजना आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार, "निम्न वर्ग की ये महिलायें अल्पशिक्षित होती हैं और कार्य करना इनकी आर्थिक मजबूरी है। इन्हें इसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है। समान कार्य के बदले समान वेतन हमारा मौलिक अधिकार होने के बावजूद इन्हें दोयम दर्जे का व्यवहार सहन करना पड़ता है। वे भेदभाव का शिकार होती हैं। राष्ट्रीय लोक वित्त और नीति संस्थान के अनुसार, शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की मजदूरी, पुरुषों की औसत मजदूरी की लगभग 80 प्रतिशत होती है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिक महिलाओं को पुरुष श्रमिकों के मुकाबले मात्र 60 फीसदी पगार ही मिलती है।

कार्यस्थलों पर होने वाले महिलाओं के यौन शोषण के लिये सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1999 में ही दिशा निर्देश जारी किये जा चुके हैं। निदेशा का पालन किस तरह हो रहा है, अखबारों में हम आये दिन पढ़ सकते है। जब देश की राजधानी में महिलायें सरक्षित नहीं हैं तो दूर-दराज के. व्यवसायिक स्थलों/कार्यालयों में महिलाओं की सुरक्षा की बात बेमानी-सी लगती है। कि आज भी कार्यस्थलों पर महिलाओं का अपने ही सहकर्मी द्वारा शोषण जाता है। महिलाओं द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। जो यह दर्शाता कि वे कितनी विपरीत परिस्थितिया में जीवनयापन कर रही हैं, आत्म हत्या करने वाली महिलायें समाज के सभी वर्गों से हैं जो दर्शाता है कि असन्तोष प्रत्येक स्तर पर है।

किसी भी राष्ट्र के निर्माण व विकास की प्रगति में महिलाअसें का योगदान महत्त्वपूर्ण है। आधी आबादी की उपेक्षा करके राष्ट्र के नवनिर्माण की कल्पना करना व्यर्थ ही प्रतीत होती है। यह तभी संभव हो सकता जब महिलाओं को सम्मान व शिक्षा प्रदान की जाए, उनकी शक्ति को राष्ट्र के लाभ हेतु और स्वयं

स्त्रियों का दर्जा ऊँचा उठाने के लिये प्रयोग में ली जाये। "राष्ट्र के रूप में हमारी क्षमता का उपयोग तभी हो सकता है जब महिलायें, जो हमारी आबादी का लगभग आधा हिस्सा है, अपनी पूरी क्षमता का सदुपयोग कर सकें। एक रथ की भाँति पुरुष के ही समान महिला शक्ति का सदुपयोग हमें मजबूत बनाता है।"

मार्क्स ने कहा है कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से सामाजिक प्रगति को ठीक-ठाक मापा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के 50 वर्षों में महिलाओं की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। आज महिलायें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक दासता से निकलकर स्वतंत्र जीवन का विकास करने की सभी सुविधाएँ प्राप्त कर रही हैं।

''जीवन के सभी क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं की संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। उच्च स्तर की प्रशासनिक और पुलिस सेवाओं में चिकित्सा एवं सलाहकार सेवाओं में उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। उद्यमिता के क्षेत्र में स्त्रियों का सफलतापूर्वक प्रवेश करना सभी के लिये सुखद आश्चर्य है। आज स्त्रियाँ बड़े-बड़े उद्योगों का संचालन कर रही हैं। ''लेकिन ऐसी स्त्रियों का प्रतिशत बहुत कम है। रमणिका गुप्ता के अनुसार, ''गणनात्मक विकास में आज भी हमारे देश बहुत पीछे हैं, क्योंकि आबादी के अनुपात में लड़कियों की शिक्षा में देश पिछड़ा है।"

शहरों में भी कामकाजी महिलाओं की स्थिति व संख्या दोनों में लगातार वृद्धि हो रही है। सभी शिक्षित महिलायें किसी न किसी रोजगार में लग रही हैं, जिसके कारण उनकी आर्थिक व सामाजिक प्रस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आया है। वे अपने अधिकारों व सम्मान के प्रति जागरूक हुई हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति में सहयोग देने के कारण पत्नी ने सेविका के स्थान से सहयोगिनी व मित्र की स्थिति प्राप्त कर ली है। पुरुषों के रुख व सोच में भी अब सकारात्मक बदलाव आया है। वर्तमान समय में नौकरी पेशा/कामकाजी महिलाओं की दिक्कतों, समस्याओं को समझकर उन्हें सहयोग प्रदान करने व उनकी घरेलू जिम्मेदारियों को सीमित किये जाने की आवश्यकता है। अब बदलाव की बयार चलने लगी है, हालांकि उसकी गति अभी बहुत धीमी है।

निष्कर्ष

महिलाओं के लिए विकास और सशक्ति दोनों ही बेहद जरूरी है। सशक्तिकरण ही वह माध्यम है, जिससे महिलाओं को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। उन्हें वे साधन उपलब्ध करवाये जा सकते हैं, जिससे यह आवा दनिया उन्नति कर सकती है। इस दष्टि से महिलाओं में शिक्षा व जागरूकता की नितान्त आवश्यकता है। केवल यही वे साधन हैं जिससे माहिला सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता सुभाषचंद्र "कार्यशील महिलाएं एवं भारतीय समाज'', अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली 2010 पृ. 44,
2. मीनाक्षी निशांत सिंह, "महिला सशक्तिकरण का अर्थ, ओमेगा प्रकाशन दिल्ली 2011, पृ. 20, 44,
3. स्वप्निल सारस्वत, "महिला विकास एवं परिदृश्य, नमन प्रकाशन 2007 दिल्ली, पृ.सं. 54,
4. डॉ. इन्दु शर्मा, डॉ. शिवाली अग्रवाल, "महिला सशक्तिकरण के नवीन आयाम (सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिप्रेक्ष्य में), राधा प्रकाशन 2011 प्रथम संस्करण, पृ.सं. 187, 188, 189
5. जड़िया प्रभावती (2010): "हिन्दू नारी कार्यशीलता के बदलत आयाम'', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. डा. मंजू जौहरी: आधी आबादी का यथार्थ: भारतीय नारी, राधा प्रकाशन 2010, पृ. 182, 183, 187,
7. दैनिक जागरण, 7 मार्च 2009 में दिये गये राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल के वाक्यांश के अनुसार।
8. डॉ. हरिदास रामजी शैण्डे सुदर्शन 2005 नारी सशक्तिकरण, ग्रन्थ विकास, पृ. 44
9. डॉ0 चित्रौड़ा निर्मला "भारत के कामकाजी महिलाओं की स्थिति'' नमन पब्लिकेशन 2016 पृ 32
10. लता शर्मा 2008 औरत अपने लिए, सामयिक प्रकाशन, पृ. 24
11. ए.के. सिंह, भारतीय नारी: वर्तमान समस्याएँ एवं भावी समाधान पृ. 32
12. जी.के. अग्रवाल: भारत में समाज, पृ. 123

बेरोजगारी एक सामाजिक समस्या व समाधान

डॉ० दिनेश कुमार गायकवाड़

सहायक प्राध्यापक समाज शास्त्र, लक्ष्मण प्रसाद बैद्य शासकीय कन्या महाविद्यालय, बेमेतरा (छत्तीसगढ़)

सारांश

भारत में बेरोजगारी एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जहां लाखों शिक्षित और कुशल लोग नौकरी की तलाश में हैं, लेकिन उपलब्ध रोजगार के अवसर सीमित हैं। इसका मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि, तकनीकी प्रगति, और शिक्षा प्रणाली में व्यावहारिक कौशल की कमी है। बेरोजगारी के चलते आर्थिक असमानता, गरीबी और मानसिक तनाव बढ़ते जा रहे हैं। इस चुनौती से निपटने के लिए सरकार मनरेगा, प्रधानमंत्री रोजगार प्रोत्साहन योजना जैसे कार्यक्रम चला रही है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकें। इसके अलावा, स्वरोजगार, डिजिटल इंडिया और स्टार्टअप को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ लागू की जा रही हैं।

प्रस्तावना:-

बेरोजगारी एक गंभीर सामाजिक और आर्थिक समस्या है, जो किसी भी देश की प्रगति में बाधा बन सकती है। जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता और इच्छा के बावजूद रोजगार प्राप्त नहीं कर पाता, तो यह न केवल उसके जीवन को प्रभावित करता है, बल्कि समाज और राष्ट्र की समृद्धि को भी बाधित करता है। बेरोजगारी युवाओं में अधिक देखने को मिलती है, जिससे सामाजिक अस्थिरता, गरीबी और अपराध दर में वृद्धि होती है। भारत में यह समस्या जनसंख्या वृद्धि, शिक्षा प्रणाली की खामियों, आर्थिक अस्थिरता और तकनीकी परिवर्तन के कारण बढ़ रही है।

बेरोजगारी के प्रमुख कारण:-

भारत में बेरोजगारी के कई कारण हैं, जिनमें तेजी से बढ़ती जनसंख्या प्रमुख भूमिका निभाती है। अधिक लोग रोजगार बाजार में प्रवेश कर रहे हैं, जिससे प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। शिक्षा प्रणाली में तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण की कमी भी एक गंभीर समस्या है। कई छात्र डिग्री तो प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुरूप कौशल विकसित नहीं कर पाते, जिससे वे रोजगार से वंचित रह जाते हैं। आर्थिक मंदी और औद्योगीकरण की धीमी गति भी बेरोजगारी को बढ़ावा देती है। जब अर्थव्यवस्था कमजोर होती है, तो कंपनियाँ नई नौकरियाँ देने से बचती हैं। वहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर अत्यधिक निर्भरता भी एक बड़ी समस्या है, क्योंकि यह क्षेत्र पूरे वर्ष रोजगार प्रदान नहीं कर पाता।

बेरोजगारी सिर्फ एक आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह समाज की प्रगति और स्थिरता को भी प्रभावित करती है। जब शिक्षित और कुशल युवा नौकरी पाने में असफल रहते हैं, तो यह न केवल उनके आत्मविश्वास को ठेस पहुंचाता है बल्कि देश की अर्थव्यवस्था पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। बेरोजगारी की वजह से गरीबी, अपराध, मानसिक तनाव और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएं बढ़ती हैं, जिससे संपूर्ण राष्ट्र का विकास बाधित होता है।

भारत में बेरोजगारी एक गंभीर समस्या है, जिससे लाखों लोग प्रभावित हैं। यह तब होती है जब कोई व्यक्ति काम करने के लिए तैयार और योग्य होता है, लेकिन उसे उपयुक्त रोजगार नहीं मिलता। बेरोजगारी के कारण गरीबी, आर्थिक असमानता और सामाजिक अशांति जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण रोजगार के अवसरों की कमी है। यह समस्या धीमी आर्थिक वृद्धि, कुछ उद्योगों में निवेश की कमी और शिक्षा प्रणाली में व्यावहारिक प्रशिक्षण की अनुपस्थिति के कारण और अधिक जटिल हो जाती है। इसके अलावा, तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण नौकरी बाजार में प्रतिस्पर्धा भी बढ़ रही है, जिससे युवाओं को रोजगार मिलना कठिन हो गया है।

बेरोजगारी के कारण :-

आर्थिक कारण

- आर्थिक मंदी, आर्थिक मंदी के कारण कंपनियां बंद हो जाती हैं और लोग बेरोजगार हो जाते हैं।
- औद्योगिक विकास की धीमी गति, अगर उद्योग और व्यवसाय तेजी से नहीं बढ़ते हैं, तो रोजगार के अवसर कम हो जाते हैं।
- पूंजी की कमी: अगर देश में पर्याप्त पूंजी नहीं है, तो कंपनियां निवेश नहीं कर पाती हैं और रोजगार नहीं दे पाती हैं.

सामाजिक कारण

- जनसंख्या वृद्धि, तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण रोजगार के अवसरों की मांग बढ़ती है, लेकिन आपूर्ति नहीं।
- शिक्षा की कमी: अगर लोगों के पास पर्याप्त शिक्षा और कौशल नहीं है, तो वे रोजगार के लिए योग्य नहीं होते हैं।
- स्वास्थ्य की कमी: अगर लोगों का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो वे काम नहीं कर सकते हैं.

अन्य कारण

- तकनीकी बदलाव: नई तकनीकें पुरानी नौकरियों को खत्म कर सकती हैं और नई नौकरियों का सृजन कर सकती हैं।
- वैश्वीकरण: वैश्वीकरण के कारण कुछ देश दूसरे देशों में काम करने के लिए मजबूर हो सकते हैं, जिससे घरेलू रोजगार कम हो जाते हैं।
- बेरोजगारी का एक अन्य कारण लोगों के कौशल और उद्योगों की आवश्यकताओं के बीच असंतुलन है। कई लोगों को उपलब्ध नौकरियों के लिए आवश्यक दक्षताओं को विकसित करने की जरूरत होती है, लेकिन संसाधनों और उचित मार्गदर्शन के अभाव में वे पीछे रह जाते हैं। इस समस्या को हल करने के लिए भारत सरकार ने प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, रोजगार मेला, और स्टार्टअप इंडिया जैसी योजनाएं चलाई हैं, ताकि युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सके और उन्हें आत्मनिर्भर बनने के अवसर मिल सकें। इन प्रयासों के माध्यम से सरकार बेरोजगारी को कम करने की दिशा में लगातार काम कर रही है।

बेरोजगारी के समाज पर प्रभाव:-

आर्थिक प्रभाव

- आर्थिक विकास में बाधा:- बेरोजगारी आर्थिक विकास को धीमा कर देती है, क्योंकि लोगों के पास खर्च करने के लिए कम पैसे होते हैं, जिससे मांग घट जाती है और निवेश कम होता है।
- गरीबी में वृद्धि:- बेरोजगारी से लोगों की आय कम हो जाती है, जिससे गरीबी बढ़ती है और लोगों का जीवन स्तर गिरता है।
- सरकारी खर्च में वृद्धि:- बेरोजगारी से सरकार को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं और बेरोजगारी भत्ते पर अधिक खर्च करना पड़ता है.

सामाजिक प्रभाव:-

- सामाजिक तनाव और अशांति:- बेरोजगारी से लोगों में निराशा और असंतोष पैदा होता है, जिससे सामाजिक तनाव और अशांति बढ़ती है.
- अपराध में वृद्धि:- आर्थिक तंगी के कारण लोग अपराध करने के लिए मजबूर हो सकते हैं.
- मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं: बेरोजगारी से लोगों को मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं जैसे चिंता, अवसाद और तनाव हो सकता है.
- परिवारों पर प्रभाव:- बेरोजगारी से परिवारों पर आर्थिक और भावनात्मक रूप से बुरा असर पड़ता है.

व्यक्तिगत प्रभाव:-

- आत्मसम्मान में कमी:- बेरोजगारी से लोगों का आत्मसम्मान कम हो सकता है, क्योंकि वे खुद को उपयोगी नहीं समझते हैं.
- सामाजिक कलंक:- बेरोजगारी को समाज में कलंक के रूप में देखा जा सकता है, जिससे लोग शर्मिंदा महसूस कर सकते हैं.
- स्वास्थ्य पर प्रभाव:- बेरोजगारी से लोगों का स्वास्थ्य भी प्रभावित हो सकता है, क्योंकि वे तनाव और आर्थिक कठिनाइयों के कारण ठीक से भोजन नहीं कर पाते हैं.

बेरोजगारी के दुष्प्रभाव:-

बेरोजगारी समाज और देश के विकास में बाधा बनती है और कई गंभीर समस्याएँ उत्पन्न करती है। बड़ी संख्या में बेरोजगार लोगों के कारण आर्थिक अस्थिरता बढ़ती है। नौकरी न मिलने पर युवा गलत रास्तों की ओर बढ़ सकते हैं, जिससे चोरी, डकैती और अन्य अपराधों में वृद्धि हो सकती है। लंबे समय तक बेरोजगार रहने से मानसिक तनाव, आत्मविश्वास की कमी और आत्महत्या की घटनाएँ भी बढ़ सकती हैं। बेरोजगारी राजनीतिक अस्थिरता का कारण भी बन सकती है, क्योंकि नौकरी न मिलने से लोगों में असंतोष बढ़ता है, जिससे विरोध प्रदर्शन और आंदोलन होने लगते हैं। इसके अलावा, कार्यशक्ति का सही उपयोग न होने से देश की उत्पादकता प्रभावित होती है और मूल्यवान कौशल बर्बाद हो जाता है, जो राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालता है।

बेरोजगारी के समाधान:-

- आर्थिक विकास को बढ़ावा देना:- सरकार को आर्थिक विकास को बढ़ावा देना चाहिए, ताकि रोजगार के अवसर बढ़ें.
- शिक्षा और कौशल विकास पर ध्यान देना:-लोगों को शिक्षा और कौशल प्रदान करना चाहिए, ताकि वे रोजगार के लिए योग्य हो सकें.
- रोजगार सृजन के लिए प्रोत्साहन देना:-सरकार को रोजगार सृजन के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए, जैसे कि सब्सिडी और कर में छूट.
- सामाजिक सुरक्षा जाल को मजबूत करना:- सरकार को सामाजिक सुरक्षा जाल को मजबूत करना चाहिए, ताकि बेरोजगार लोगों को मदद मिल सके.
- बेरोजगारी भत्ते का विस्तार:-सरकार को बेरोजगारी भत्ते का विस्तार करना चाहिए, ताकि बेरोजगार लोगों को कुछ समय के लिए आर्थिक सहायता मिल सके.
- स्व-रोजगार को बढ़ावा देना:- सरकार को स्व-रोजगार को बढ़ावा देना चाहि,, ताकि लोग अपना खुद का व्यवसाय शुरू कर सकें-

बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार के प्रयास:-

सरकार बेरोजगारी को कम करने के लिए कई योजनाएँ चला रही है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत युवाओं को उद्योगों की जरूरत के अनुसार प्रशिक्षण दिया जाता है, जिससे वे बेहतर नौकरियाँ पा सकें। मुद्रा योजना के माध्यम से स्वरोजगार को बढ़ावा दिया जा रहा है, ताकि लोग खुद का व्यवसाय शुरू कर सकें। मेक इन इंडिया और स्टार्टअप इंडिया जैसी योजनाओं से नए उद्योगों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतम दिनों का रोजगार सुनिश्चित किया जाता है। इसके अलावा, राष्ट्रीय शिक्षुता प्रोत्साहन योजना, प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम और डिजिटल इंडिया जैसी पहलें भी बेरोजगारी को कम करने में सहायक हैं।

निष्कर्ष:-

बेरोजगारी भारत की प्रमुख समस्याओं में से एक है, जिसे नियंत्रित करना आवश्यक है। इसके समाधान के लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार, स्वरोजगार को बढ़ावा, औद्योगीकरण में तेजी और सरकारी योजनाओं को प्रभावी तरीके से लागू करने की जरूरत है। यदि सरकार और समाज मिलकर इस दिशा में प्रयास करें, तो बेरोजगारी की समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है। बढ़ती बेरोजगारी समाज के लिए एक गंभीर समस्या है, जो आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है, जिससे गरीबी, अपराध और सामाजिक तनाव बढ़ता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

01. आहूजा, राम: सामाजिक समस्याए, 2000 रावत पब्लिकेशन्स जयपुर पृ0 सं0- 230
02. चन्द्र, सुरेश: "बाल-श्रम के सामाजिक-आर्थिक आयामों का अध्ययन, पृ0 सं0- 28
03. गुप्ता, एम0 एल0 और शर्मा डी0 डी0: समाजशास्त्र 1999 पृ0 सं0 58
04. कुरूक्षेत्र: मई 2004, पृ0 सं0- 5
05. शर्मा, ओ0 पी0 और शर्मा डी0 के0: उजाले की तलाश में भटकता बाल-श्रम" प्रतियोगिता दर्पण अक्टूबर 2005, पृ0 सं0- 508
06. योजना: नवम्बर 2006, पृ0 सं0- 7
07. शर्मा, सुभाष: भारत में बेरोजगारी"1999 प्रकाशन विभाग नई दिल्ली पृ0 सं0- 22-32
08. शर्मा, सुभाष: वही, पृ0 सं0- 22-32
09. सक्सैना, एस0 पी0: "सामाजिक समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा" 1997 रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ पृ0 सं0- 8
10. टाइम्स आफ इण्डिया-23 जून 2013

पंचायती राज संस्थाओं के उद्‌भव एवं विकास के मूल आधार

डॉ० रामकृष्ण साहू

अतिथि व्याख्याता (राजनीति विज्ञान) नवीन शासकीय महाविद्यालय, भिंभौरी, जिला-बेमेतरा (छ.ग.)

प्रस्तावना

प्राचीन काल में पंचायती राज-प्राचीन काल में छोटे-छोटे राज्य जन या जनपद कहलाते थे। प्रत्येक जनपद में अनेक विश होते थें। जिनका मुखिया विशपति के नाम से जाना जाता था। ग्राम सबसे छोटी इकाई थी और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे और इनका मुखिया ग्रामजी कहलाता था। इसी प्रकार वैदिक युग में नगरों की अपेक्षा ग्रामीण शासन अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। ग्रामीण शासन प्रशासकीय एवं न्यायिक कार्यों का सम्पादन करता था। वैदिक युग में गणतंत्रात्मक शासन की परम्परा के कारण भी ग्रामों का महत्व अत्याधिक हो गया था। बैदिक युग में राजा का निर्वाचन जनता द्वारा किया जाता था एवं उसकी सारी शक्तियां प्रजा में निहित होती थी। अथर्ववेद में यहाँ तक उल्लेख है कि राजा का अस्तित्व नही वरन् राज्य संचालन के लिए ग्रहपति सभा, समिति, मंत्री मण्डल एवं पंचायत जैसी संस्था विद्यमान थी। रामायण एवं महाभारत काल में भी ग्राम शासन व्यवस्था के स्पष्ट उल्लेख मिलते है। स्मृति ग्रंथों में भी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। ऐसा ही उल्लेख मनु स्मृति में भी पाया गया है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में स्थानीय शासन का विस्तृत उल्लेख किया है।'

मौर्य युग में ग्रामीण प्रशासन मूलत: विकसित एवं राजनीतिक रूप से परिपक्व हुआ करता था इस व्यवस्था के अंतर्गत विकेन्द्रीयकरण को अपनाया गया था पंचायतों को विस्तृत न्यायिक अधिकार प्राप्त थे।

ग्रामसभाओं पंचायतों को सार्वजनिक हित की योजनाएँ बनाने का पूरा अधिकार था। यही नहीं मौर्य काल में ग्रामीण प्रशासन सार्वजनिक जीवन में अत्यंत प्रमुख एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

गुप्त काल में भी ग्रामीण प्रशासन मौर्य काल के समान ही था। इस काल में ग्राम सभा का मुख्य दायित्व ग्रामों की सुरक्षा विवादों का निपटारा सरकार के लिए राजस्व संग्रह जनउपयोगी कार्यो का संगठन एवं अल्प संख्यकों की सुरक्षा का कार्य था। आर-सी. मजूमदार का कंथन है कि इस युग में ग्रामसभा की सहायता से ही शाही अधिकारियों द्वारा न्याय सम्पन्न किया जाता था। कुछ मामलों में तो ग्राम सभा ही न्याय का कार्य सम्पादित करती थी एवं. सजा तक सुनाती थी।' ऐतिहासिक अनुसंधान से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन ब्रिटिश शासन एवं वर्तमान की अपेक्षा अधिक विस्तृत व्यवहारिक दक्ष एवं सफल हुआ करता था। प्राचीन भारत में विकेन्द्रीयकरण की अवधारणा एक महान सिद्धांत के रूप में सामाजिक एवं राजनीतिक आत्मसात थी।

सध्यकाल में पंचायती राज-मध्यकाल में ग्रामीण स्वशासन संस्थाओं के माध्यम से सामान्य जन की स्वतंत्रता के मूल्य की स्थापना होती थी। 10वीं शताब्दी में शुक्रनीति में ग्राम पंचायतों का प्रमुखता से वर्णन है। इसमें उललेखित है कि पंचायत सदस्य निर्वाचित होते थे और पंचायतें प्रशासकीय एवं न्यायिक शक्तियों से परिपूर्ण होती थी।' महान इतिहासकार बेनी प्रसाद वर्मा ने ऐसा पाया है कि उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में स्थानीय स्वशासन अधिक विकसित एवं स्थापित हुई। एलफिनस्टन ने भी इस बात का जिक्र किया है कि दक्षिण भारत में स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में गांव और कस्बों के बीच स्पष्ट विभाजन था।

ये इकाईयां अपने भीतर लघु रूप में राज्य के सभी तत्व रखती थी ए.एस. अल्टेकर ने भी अपने ग्रंथ में लिखा है कि चोल राजवंश (900 से 1300 ई.) के समय तमिल देश में ग्राम सभा और उसकी समितियों का कार्य क्षेत्र विस्तृत एवं महत्वपूर्ण होता था। दक्षिण भारत के शिलालेखों से प्राप्त साक्ष्य उत्तरी भारत से प्राप्त साक्ष्यों से कही अधिक और विस्तृत है।

मुगल शासन के दौरान ग्रामीण शासन की व्यवस्था पूर्णत: परिवर्तित नहीं हुई मुगल शासन व्यवस्था में मौर्यकाल का गुप्तकाल की स्थानीय स्वशासी निकाय व्यवस्था समानान्तर रूप से क्रियाशील रही।

ब्रिटिश काल में पंचायती राज-लार्ड हेली ने लिखा है कि सम्भव है कि छठी और नवी सदियों के बीच कुछ समय ऐसा रहा हो जब पंचायत एक जीवित संस्था थी और उसके ऊपर कुछ विशेष कार्यो का दायित्व था। किन्तु यह स्थिति भी देश के कुछ गिने चुने भागों में रही होगी। अन्यत्र सब स्थानों में पंचायत वयोवृद्ध लोगों की समिति के रूप में शेष रह गई थी। ग्रामों की स्वायत्ता तथा स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं की 18वीं शताब्दी के मध्य में आते-आते प्राय: समाप्त हो गई थी। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रारंभ में अंग्रेज शासकों ने पंचायतों की महत्ता को नकारा किन्तु समयान्तर में इन संस्थाओं के महत्व की अनुभूति होने पर स्वयं उन्होने इन संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया अंग्रेज शासकों ने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर अधिकारी तंत्र को प्रोत्साहित किया, जिसका प्रमुख उद्देश्य अपने शासकों को प्रसन्न रखकर भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण करना था।

न्यायिक मामलों में जैसा कि एस-वी. सामन्त का कथन है कि विधि द्वारा स्थापित नियमित न्यायालयों ने दूरस्थ गाँवों को भी प्रभावित किया। ब्रिटिश प्रशासक स्थानीय पंचायत न्यायालयों के निर्णयों को प्रवृत्त नही करते थे। फलतरू वैधानिक कानूनों ने सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं का स्थान ले लिया था।

सन् 1870 में भारत में प्रतिनिधियात्मक स्थानीय संस्थाओं का प्रारंभ हुआ जो स्थानीय शासन के विकास में एक महत्वपूर्ण लक्षण था। लार्ड मेयों के प्रस्ताव में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को विकसित करना था, किंतु मूल उद्देश्य राजस्व के स्थानीय सत्रोतों का उपयोग करना था।

सन 1907 में शाही आयोग ने जब लार्ड रिपिन के प्रस्तावों की असफलता की जाँच की तो इस निर्णय पर पहुँचा कि ग्राम पंचायतों से लेकर समस्त स्थानीय संस्थाओं के चुनाव कराने में पर्याप्त वित्तीय सहायता देने के शीघ्र कदम उठायेगी। शाही आयोग ने गाँव को पंचायत प्रशासन की प्राथमिक इकाई के रूप में स्थापित करने की सिफारिश की।

प्रथम महायुद्ध में अविस्मरणीय योगदान के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के लिए स्वशासी संस्थाओं का विकास किया एवं ब्रिटिश साम्राज्य के भाग के रूप में भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की। सन् 1919 के माण्टेग्ये-चौम्सफोर्ड के सुधार के बाद स्थानीय स्वशासन में एक नये युग का प्रारंभ हुआ। ब्रिटिश सरकार ने संयुक्त प्रान्त ग्राम पंयायत अधिनियम 1920 पारित किया। जो पूर्व संस्थाओं की छाया मात्र थी।'

मद्रास, बम्बई, बिहार व बंगाल प्रान्तों में भी पंचायतों की स्थापना संबंधी अधिनियम पारित किये गये। अनेक प्रान्तों में ग्राम पंचायत की स्थापना, न्यायिक प्राधिकरण के स्थान पर एक प्रतिनिध्यात्मक संस्था की स्थापना जो गाँव के निगम (कोरपोरेट) के विकास का प्रतीक थी।

1935 के भारत सरकार के अधिनियम के पारित होने के पश्चात प्रान्तीय स्वायत्तता को स्थापना हुई। स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था को पुर्नजीवित करने के लिए द्वारिका प्रसाद मिश्र ने एक यीजना प्रस्तुत की जिसमें प्रशासन के विकेन्द्रीयकरण पर मुख्य जोर था जिसमें प्रशासन की मुख्य इकाई जिले को बनाया गया और जिसमें शहारी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं व ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम पंचायतें गठित होनी थी। परंतु दुर्भाग्यवश 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ हो गया। और स्थानीय स्वशासन के इतिहास में 1939 में 1946 तक की अवधि को अंधकार का काल माना गया पंचायती राज का विचार स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए एक उपयोगी कारक के साथ-साथ एक रणनीत के रूप में बना रहा। इसके पीछे वास्तुविद महात्मा गांधी थे, जो स्वराज प्राप्ति के लिए लड़ते रहे।

स्वातंत्रेत्तर भारत में पंचायती राज-स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान के निर्माण के लिए संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया। इस संविधान निर्मात्री सभा की दो समितियाँ बनाई गई। संघीय एवं प्रान्तीय समिति परन्तु इनमें न तो पंचायतों का जिक्र था और न हो गांधीवादी दृष्टिकोण की झलक मिली। यहाँ तक कि अम्बेडकर जैसे विचारक के द्वारा पंचायतों का विरोध किया उनका मानना था कि ये पंचायतें स्थानीयता के भण्डार, अज्ञानता, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता से युक्त हैं, और मुझे प्रसन्नता हैं कि प्रारूप संविधान ने गाँवों को नकारा है। तथा इकाई के रूप में व्यक्ति को अपनाया अम्बेडकर के इन विचारों से अनेक सदस्यों ने निराशा व्यक्त की। सदस्यों की भावना का सम्मान करते हुए 22 नवम्बर 1948 को के.सन्थानम् के द्वारा प्रस्तुत संशोधन स्वीकार कर लिया गया। और स्वतंत्र भारत के संविधान में राज्य नीति निर्देशक तत्वों का अनुच्छेद 40 में प्रावधान किया गया राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा। हेनरी मेडिक ने लिखा है कि संविधान में पंचायतों के विकास के तीन मुख्य उद्देश्य थे, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पूरे राष्ट्र के व्यक्तियों की सहभागिता, गाँव के स्तर से होकर ऊपर तक के राष्ट्रीय विकास में ग्रामीणों की सहभागिता प्राप्त करना, विकेन्द्रीयकरण के माध्यम से राज्य प्रशासन के बोझ को कम करना।

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण के खंदर्भ में ठोस पहल-भारत सरकार के सामुदायिक विकास कार्यक्रम से प्रारंभ होती इस संदर्भ में भारत के योजना आयोग में ग्रामीण तथा नगरीय दोनो क्षेत्रों का समन्वित विकास. करना। सामुदायिक कार्यक्रमों का उद्देश्य भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, सांस्कृतिक अथवा नैतिक सभी समस्याओं का एक साथ निदान करना था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्देश्य अधिकतम लोगों के अधिकतम कल्याण का कार्य था। जिसमें कुछ कार्य निर्धारित किये गये-बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, कृषि उपकरणों की व्यवस्था, संचार साधनों का प्रबंध, लोक स्वास्थ्य संबंधी कार्यो की व्यवस्था, कुटीर उद्योग जैसे व्यवसायों को बढ़ावा देना, खेलकूद व सामुदायिक मनोरंजन की व्यवस्था आदि।

बलवंत राय मेहता समिति-सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में सफलता न मिलने पर एक समिति गठित की गई थी। जिसके अध्यक्ष बलवन्त राय जी गोपाल मेहता थे जिन्होंने अपने प्रतिवेदन में सरकार के समक्ष दो संस्तुतियों प्रस्तुत की-(1) पंचायत राज्य की द्विस्तरीय प्रणाली के स्थान पर त्रिस्तरीय प्रणाली प्रारंभ की जाये। (2) निर्वाचित स्थानीय निकायों की स्थापना करना और उनको आवश्यक संसाधन एवं अधिकार प्रदत्त करना।

अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट में यह मत दिया कि यदि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण के प्रयोग से अधिकतम परिणाम प्राप्त करने है तो इसके लिए कार्यक्रमों के तीनों स्तर ग्राम पंचायत समिति, एवं जिला परिषद् में एक साथ एक समय में कार्यक्रम संचालित किये जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के प्रारंभिक दो दशक के कार्यक्रमों का आंकलन से पंचायती राज का भविष्य उज्जवल था उसके पश्चात तो वे कार्यक्रम का कार्य ठण्डा सा पड़ गया और सन् 1969-77 का काल पंचायती राज संस्थाओं के पतन का काल रहा।

अशोक मेहता संमिति-अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में निम्नलिखित सुझाव दिये।

जिसमें विकेद्रित व्यवस्था, मण्डल पंचायतों की स्थापना, दलीय आधार पर निर्वाचन, राजनीति दलों का पंचायती राज के चुनावों में. प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने संबंधी समिति का सुझाव व्यवहारिक और और वांछनीय भी था। ग्रामीण एवं स्थानीय संस्थाओं के बीच संबंधों को अधिक स्पष्ट बनाया जाये, जिसमें किसी क्षेत्र के सभी शहरी और ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं का विलय हो।

73-74 संवैधानिक संशोधन-अशोक मेहता समिति ने भारत में पंचायती राज व्यवस्था को संरचना की दृष्टि से एक व्यवस्थित आकार एवं स्थायित्व प्रदान किया। दुर्भाग्य की बात यह है कि इस रिपोर्ट के क्रियान्वयन के बाद ही जनता सरकार का पतन हो गया। इसके तत्पश्चात् भारत में स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में 73वें एवं 74वें संवैधानिक संशोधन से एक क्रांति की शुरूआत हुई। ये दोनो संशोधन भारत में त्रणमूल लोकतंत्र की स्थापना एवं विस्तार का भव्य प्रतीक बने। इन संशोधनों के द्वारा लोकतंत्र को भारत के सामान्य नागरिक कौ दहलीज तक ले जाने का अत्यंत दुस्कर कार्य सम्पन्न हुआ।

ग्राम स्वराज की अवधारणा 73वें संवैधानिक संशोधन जो दिसम्बर 1992 में पारित हुआ से स्थापित हुई। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में निम्न है –

1. ग्राम स्तर पर एक शक्ति सम्पन्न ग्राम सभा, मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत एवं जिला स्तर पर पंचायत का तत संबंधित राज्य के विधान मण्डल द्वारा उपबंधित होना।
2. प्रत्येक स्तर की पंचायत में अनुसूचित जातियों एवं महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान।
3. पंचायत का कार्यकाल विघटन एवं नवीन पंचायत का सर्जन तीनों के संदर्भ में स्पष्ट विधिक उल्लेख 243 (द्व) (1) में है।
4. पंचायत सदस्यों की अर्हताओं के. स्थान पर निर्हरताओं का उल्लेख।
5. पंचायतों की शक्तियों का प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व का स्पष्ट उल्लेख जिसमें आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय प्रमख मुददे होंगे।
6. पंचायतों को कर अधिरोपित करने की विस्तृत शक्तियाँ।
7. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के पुर्नविलोकन के लिए वित्त आयोग के गठन का प्रावधान।
8. पंचायतों के लेखों की नियमित समपरीक्षा।
9. राज्य द्वारा स्थापित राज्य निर्वाचन आयोग के द्वारा सभी निर्वाचित पंचायतों का संचालन निर्देशन एवं नियंत्रण।
10. संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ी गई जिसमें पंचायतों से सम्बद्ध 29 विषयों का वर्णन है।

73वें संविधान संशोधन की कुछ खास बातें निम्नलिखित है –

1. त्रिस्तरीय प्रणाली इसके अंतर्गत पंचायती राज संस्थाएँ स्तर पर होगी। गाँव स्तर पर एक या अधिक गाँव मिलाकर ग्राम पंचायत। ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति। जिला स्तर पर जिला परिषद है।
2. महिलाओं को कुल एक तिहाई आरक्षण मिला इसमें पहले यह वर्ग निर्णय प्रक्रिया से बाहर रहता था।
3. 73वें संविधान संशोधन में यह निश्चित किया गया कि हर पाँच साल में पंचायत चुनाव करवाये जाये इसके लिए राज्य चुनाव आयोग की स्थापना भी की गई।
4. पंच, सरपंच व ब्लॉक एवं जिला परिषद् के सदस्यों के लोगो के द्वारा सीधा चुनाव होना इस संशोधन के द्वारा संभव हुआ।
5. 73वें संविधान संशोधन में एक महत्वपूर्ण प्रावधान किया गया वह है वित्त आयोग का गठन। यह आयोग राज्य एवं पंचायती राज संस्थाओं के बीच संसाधनों के बंटवारे इत्यादि पर सुझाव देगा।
6. पंचायतों द्वारा किये जाने वाले विकास कार्यो के बारे में निर्णय लेने में ग्रामसभा महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

मूल्यांकन–

आधुनिक भारत में दैसे तो पंचायती राज संस्याओं के वर्तमान स्वरूप के प्रणेता बलवंत राय मेहता और भारत सरकार द्वारा गठित बलवंत राय मेहता समिति को जाता है परन्तु यह भी निर्विवाद है कि इसकी एक अक्षुण परंपरा प्राचीन काल से भारतीय समाज एवं राजनीति में विद्यमान रही है।

73वें संवैधानिक संशोधन के बाद भारत में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को न केवल एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया बल्कि प्रकार्यात्मक दृष्टि से उन्हें स्थापित एवं पुष्ट किया गया जिस विकेन्द्रित ग्राम स्वराज की परिकल्पना महात्मा गांधी जी ने कि थी जो जिसे इसके पूर्व संविधान में मात्र नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 40 के रूप में स्थान प्राप्त था। उसे एक संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्तर प्रदान करके उन्हें हमारी संघीय संरचना के तृतीय स्तर के रूप में मान्यता प्रदान की गई। इसकी मूलभूत इकाई ग्राम सभा का ग्राम पंचायत पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष नियंत्रण भारत में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के सर्वाधिक निकट पहुँचने का एक सशक्त एवं अत्यंत सार्थक माध्यम है।

स्थानीय स्वशासन के मार्ग में सर्वाधिक बाधा लालफीता शाही द्वारा उपस्थित की जाती थी जिससे त्रणमूल लोकतंत्र की भावना आहत होती थी एवं स्थानीय विकास के मुद्दे हाशिये पर चले जाते थे। 73वें सवैंधानिक संशोधन के पश्चात् इन संस्थाओं का 5 वर्ष का कार्यकाल सुनिश्चित हो गया और यदि उनके भंग होने की मान्यता उपस्थित भी हुई तो 6 माह के भीतर पुन: चुनाव करने की बाध्यता लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की मूल भावना को अक्षुण रखती है। भारत में इसके पूर्व प्रत्येक राज्य का पंचायतों के संदर्भ् में अपना-अपना कानून और उसकी व्याख्या हुआ करती थी। 73वें संवैधानिक संशोधन के पश्चात् स्थानीय स्वशासन व्यवस्था में एक स्पष्टता एवं एकरूपता स्थापित हुई जिससे इस स्तर पर शासन में दक्षता एवं सारगर्भिता आयी। पंचायत संस्थाओं के अंकेक्षण की व्यवस्था कर स्थानीय स्तर पर सार्वजनिक संसाधनों के दुरूपयोग एवं भ्रष्टाचार समाप्त करने में सहायता मिली। पंचायत संस्थाओं के वित्तीय संसाधनों के विस्तार के लिए वित्त आयोग संबंधी प्रावधान अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्थानीय लोक प्रतिनिधित्व में समाज के कमजोर वर्गों को विशेष तौर पर महिलाओं को आरक्षण का लाभ देकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था संस्कृति एवं विकास की परिकल्पना में अमूलचूल परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया। इस संशोधन के सभी प्रावधान निर्मूल हो जाते यदि पंचायत चुनावों को निष्पक्ष एवं समयबद्ध तरीके से सम्पन्न करने के लिए एक राज्य स्तरीय निर्वाचन आयोग का प्रावधान न किया गया होता।

भारत में स्थानीय स्वशासन एवं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की स्थापना एवं विस्तार की दृष्टि से 73वां एवं 74वां संवैधानिक संशोधन मील का पत्थर सदृश्य है। हमारे संविधान निर्माताओं के द्वारा एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था अपनाकर जिस सामाजिक परिवर्तन की क्रांति की परिकल्पना की गई थी। आज उसको सर्वाधिक प्रभावशाली संस्था यही पंचायती राज संस्थ सिद्ध हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

- अवस्थी, डॉ. शैलेन्द्र कुमार "सिविल विधि संग्रह", लॉ हाउस प्रकाशन, जबलपुर, 1998. पृष्ठ क्र 12
- खन्ना, बी.एस. "पंचायती राज में भारत", दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली 1994. पृष्ठ क्र 6
- देसाई, बसंत, "पंचायती राज जनता को शक्ति", हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई , 1990. पृष्ठ क्र 15
- पटेल, अनुज कुमार, "छत्तीसगढ़ पंचायती राज अधिनियम 1993", छत्तीसगढ़ राज ग्रामीण विकास संस्थान, रायपुर, 2018. पृष्ठ क्र 46
- भार्गव, बी एस, "पंचायती राज सिस्टम एण्ड पॉलिटिक्स पार्टीज" आशीष पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1995. पृष्ठ क्र 96
- यादव, सुबह सिंह, "ग्रामीण विकास एवं अर्थव्यवस्था", नई दिल्ली रावत पब्लिशिंग, 1995. पृष्ठ क्र 68
- वाजपेयी, अशोक, "पंचायत राज एण्ड रूरल डेब्लपमेंट", साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992. पृष्ठ क्र 9
- शर्मा, आर.एस. "मध्यप्रदेश पंचायतीराज अधिनियम", खंडा पब्लिकेशन प्रा.लि. इंदौर, 1995
- कुमार, राज: अम्बेडकर एण्ड वुमन, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ क्र 96
- परवीन गजाला: इम्पॉवरमेण्ट ऑफ वुमन इन इंडिया, मानक पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2011 पृष्ठ-89
- सिंह, इन्दु प्रकाश: इंडियन वुमन द कैपचर्ड बींग, इन्टेलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ-21-29
- मजूमदार, वीना: इमरजेन्स ऑफ वुमन्स क्वेशचन एण्ड रोल ऑफ वुमन स्टडीज, नई दिल्ली, सेन्टर फॉर वुमन्स डेवलपमेण्ट स्टडीज, 1985, पृष्ठ-06

महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति व राजनैतिक सशक्तिकरण

डॉ० संध्या चौधरी

अतिथि व्याख्याता (राजनीति विज्ञान) शासकीय नागरिक कल्याण महाविद्यालय, नंदिनी नगर (अहिवारा), जिला- दुर्ग (छ.ग.)

सारांश

महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया से हैं जिसमें महिलाओं के लिए सर्वसम्पन्न और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वारा खुले नए विकल्प तैयार हों। महिलाएँ समाज के लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक सहभागिता लगभग नगण्य रही है। वर्तमान पंचायती राज सामाजिक समता और न्याय, आर्थिक विकास और व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित ग्रामीण जीवन को नया रूप देने का एक सामूहिक प्रयास है। इसी क्रम में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी महिला सशक्तिकरण के लिये हो रहे प्रयासों का प्रमुख घटक हैं। महिलाओं को प्रदत्त आरक्षण की व्यवस्था से समाज के विभिन्न वर्गों की महिलाओं को पंचायत राज संस्थाओं में स्थान प्राप्त हुआ है। महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका स्वतंत्रता के पश्चात से नगण्य रहने के कारण इन्हें पिछड़ें वर्गों में रखकर आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है संपूर्ण महिला वर्ग में भी वर्गों के आधार पर महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में अंतर है। राजनीति का क्षेत्र भी महिलाओं के प्रभाव से अछूता नहीं है। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है जिसमें जनता के द्वारा देश की संचालन व्यवस्था हेतु अपने मत में जनप्रतिनिधियों को चुना जाता है और इन्हीं जनप्रतिनिधियों के द्वारा सत्ता में पहुँच कर देश की नीतियों एवं दिशा निर्देशों को बनाया एवम् क्रियान्वित किया जाता है। देश की राजनीति में महिलाओं की भूमिका शुरूआत के दिनों में अशिक्षा, पर्दाप्रथा के कारण कम भी लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक कुरीतियॉ खत्म हो रही है महिलाओं की भूमिका राजनीति में मजबूत होती जा रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेलकूद, कानून, अभियांत्रिकी, प्रबंधन केसाथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाए आगे आ रही है और अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयास में लगी हुई है।

मूल शब्द - महिला सशक्तिकरण, राजनैतिक सशक्तिकरण, विकास।

प्रस्तावना -

यह सर्वविदित है कि हमारे देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाऐं हैं। जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है क्योंकि महिला एवं पुरूष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिए है। महिलायें राष्ट्र के विकास में उतना ही महत्व रखती हैं जितना कि पुरूष। अत: देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर संभव नहीं है। भारतीय महिलाओं ने देश दुनिया के विभिन्न क्षेत्र में अपना सम्मानित स्थान बनाया है। आज महिलाऐं बेहतर रोजगार के लिए दुनिया के किसी भी कोने में जाने के लिए तैयार है। आज ऐसा कोई क्षेत्र नही जहां महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न कराई हो। राष्ट्र के विकास की अग्रदूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नही वरन् विदेशों में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया है यह सब अथक प्रयासों के द्वारा धीरे-धीरे संभव हो पाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। वह शोषण तथा कुप्रथा जैसी विसंगतियों का शिकार थी। समाज में कई प्रकार की रूढ़िया, अंधविश्वास व्याप्त थे। महिलाओं के प्रतिरूढ़िवादी एवं परम्परागत सोच स्त्री को पिता, पति या पुत्र का आश्रित मानते हुए उसे मुख्य रूप से घर की चार दीवारी तक सीमित रखा गया। जिसका मुख्य कारण तात्कालिक सामाजिक विचार का पिछड़ापन तथा स्त्रियों का अज्ञानता के बंधन में जकड़ा होना था। स्वतंत्रता के बाद से ही नारी के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन आया है। जिस देश में नारी को घर की दहलीज से बाहर निकलने की आज्ञा नही थी, उसी देश में आज नारी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। वह घर की चार दीवारी से निकलकर अंतरिक्ष तक जा पहुंची है। जिस देश की नारी जागृत, शिक्षित तथा गुणवत्ती होती है वही देश संसार में सबसे अधिक उन्नति करता है इसी विचार धारा को ध्यान में रखकर हमारे यहां स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार प्रदान किये गयेऔर इनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी, तब किसी ने सोचा भी न था कि वह पिछड़ा हुआ नारी वर्ग पुरूषों से भी आगे निकल जायेगा। शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा महिलाओं की रोजगार तथा स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारा जा सकता है।

हमारा समाज मूल रूप से पुरूष प्रधान रहा है। पहले महिलाओं के पास किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता न होने केकारण उसकी सामाजिक व पारिवारिक स्थिति एक पराश्रित से अधिक नहीं थी। जिसे हर कदम पर एक पुरूषके सहारे की जरूरत होती थी। वैसे तो आजादी के बाद से ही महिला उत्थान के उद्देश्य से विभिन्न प्रयास कियेजाते रहें है। लेकिन पिछले कुछ वर्षो में महिला सशक्तिकरण की कार्य में तेजी आयी है। इन्हीं प्रयासों के परिणाम स्वरूप महिलाओं के आत्म विश्वास में बढ़ोत्तरी हुयी है। वे किसी भी चुनौती को स्वीकार करने के लिए खुद को तैयार करने लगी है। एक ओर जहॉ केन्द्र व राज्यों की सरकारें महिला उत्थान की नई-नई योजनायें बनाने लगीं है। वहीं कई गैर सरकारी संगठन भी उनके अधिकारों के लिये उनकी आवाज बुलन्द करने लगें है। महिला में ऐसी प्रबल भावना को उजागर करने का प्रयास भी किया जा रहा है। कि वह अपने अन्दर छिपी की ताकत को सामने लाकर बिना किसी सहारे के आने वाली हर चुनौती का सामना कर सकें।

सृष्टि की उत्पत्ति एवं सभ्यता के विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। पुराणों के अनुसार चाहे धर्म की रक्षा हो या उसकी पुर्नस्थापना इन सभी कार्यो को आदि शक्ति मॉ जगदम्बा ने ही पूर्ण किया है। सीता, सावित्री के धर्मपालन को आज भी आदर्श के रूप में समाज में माना जाता है। रानी लक्ष्मीबाई, मदरटेरेसा के वीरता बलिदान तथा सेवा की मिशालें आज भी हमारे जीवन को एक दिशा प्रदान करती है।

महिलाए कई रूपों में जीवन व्यतीत करते हुए एक सभ्य एवम् सुसंस्कृत समाज की निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह कभी बेटी के रूप में कभी बहन के रूप में तो कभी पत्नी एवम् प्रेमिका केरूप में कभी मॉ के रूप में समाज को विकसित एवं परिमार्जित करने का अथक प्रयास करती रहती है।

समाज की प्रत्येक आवश्यकताओं को पूरा करने में महिलाएँ पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलती है। समाज में विकास में सहभागिता का जो सम्मान उन्हें प्राप्त होना चाहिए या वह नही मिल पाया है। क्योंकि इस सभ्य समाज में पुरूष वर्ग का वर्चस्व विद्यमान है। पुरूष वर्ग हर क्षेत्र में महिलाओं के सहयोग से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते है लेकिन जब सम्मान एवं अधिकार की बात आती है तो महिलाएँ पुरूषों से कहीं पीछे छूट जाती है। महिलाओं को अपने अस्तित्व की बार-बार लड़ाई लड़नी पड़ती है लेकिन यह प्रकृति गवाह है कि जब भी समाज में कोई परिवर्तन या क्रांति हुई है महिलाओं ने उस पर अपना सर्वस्व अर्पण किया है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य तथा दिशा-निर्देशक सिद्धांतों में लैंगिक समानता के सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। संविधान न केवल महिलाओं की समानता को सुनिश्चित करता है, बल्कि राज्यों को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव का निर्देश देता है।

लोकतांत्रिक राजनीति के ढांचे में हमारे कानून, विकास नीतियां, योजनाएं तथा कार्यक्रम को विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान की ओर उन्मुख रखा गया है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-78) से महिला कल्याण से लेकर विकास तक के मुद्दे को उठाया जा रहा है। हाल के वर्षों में महिला सशक्तीकरण को महिला की दशा का एक केंद्रीय मुद्दा माना गया है। राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई है, जिसके तहत महिला के अधिकारों तथा कानूनी अशिकारों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। संविधान का 73वां तथा 74वां संशोधन (1993) में पंचायत तथा नगर निकाय के चुनावों में महिला को आरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया है, जिससे स्थानीय स्तरों पर उनकी भागीदारी का मार्ग प्रशस्त होता है।

भारत में सैद्धान्तिक रूप से आज, आदि और हमेशा से ही नारी की मर्यादा है कहा जाता है कि समाज में नारी का स्थान पुरूष के समान ही है न कम और न अधिक प्राचीन काल से आज तक महिलाओं की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति में काफी उतार चढ़ाव आए हैं आधी दुनिया को प्रतिष्ठा व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। तो कभी उन्हे दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता था। आजादी से पूर्व भारत में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नही थी। ब्रिटिश शासकों के जाने के पश्चात जब भारतवासियों को आजादी मिली तो हमारे नीति को आजादी मिली तो हमारे नीति निर्धारकों ने महिलाओ की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास करने प्रारम्भ कर दिए, क्योंकि आधी दुनिया के विकास की दौड़ में पीछे रह जाने पर कोई भी राष्ट्र अपने समग्र विकास का दावा नहीं कर सकता फलस्वरूप आजादी के बाद शुरू हुआ महिला सशक्तिकरण का आन्दोलन आज भी जारी है। इस दौरान इसे कुछ असफलताए मिलीं तो इसके खाते में बहुत सी सफलताए भी दर्ज हैं सरकार ने वर्ष 2001 में महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया है। जिसका उद्देश्य महिला अधिकारों और उससे संबंधित मुद्दो के बारे में व्यापक जागरूकता लाना है।

आज भी नारी सशक्तिकरण का नारा चारो ओर ध्वनित हो रहा है इसके पीछे यह भावना निहित है कि नारी को शक्ति सम्पन्न बनाना उसको अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना है। आज उसकी सोच का दायरा विस्तृत होता जा रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में वह सफलता चाहती है। महिला सशक्तिकरण के इस दौर में महिला, पुरूष जाति की सोच मेंपरिवर्तन को रह ढूढ रही है। सशक्तिकरण एवं शिक्षा के बीच संबंध महिला का विकास शिक्षित होने में ही निहित है। तभी वह आर्थिक तौर पर सशक्त बन सकेगी।

आधुनिकता की ओर अग्रसर करने में भी शिक्षा सहयोगी है। शिक्षा के द्वारा ही महिलाएँ प्राचीन समय की अच्छाइयों बुराइयों से लेकर नये समाज से संबंधित कुरीतियों, अंधविश्वास से हट कर नये समाज के निर्माण में सहयोग दे रही है, यही कारण है कि आज की नारी पुरानी परंपराओं से दूर होती जा रही है। आज गांवों में भी आधुनिकता दिखाई पड़ रही है। जिसके प्रभाव के कारण आज महिलाएँ स्कूल, कॉलेज, बैंक, अस्पताल, आफिस में स्वयं जाकर अपना कार्य कर रही है और आत्मनिर्भर होती जा रही है।

महिलाओं की राजनीतिक स्थिति को आज समाज की स्थिति के विकास के एक निर्धारक के रूप में स्वीकार किया जाता है। क्योंकि महिलाएं प्रत्यक्षत: तथा अप्रत्यक्षत: राजनीतिक क्रियाओं में योगदान देती है। वह समस्त पारिवारिक दायित्वों को बोझ उठाकर पुरूषों को केवल राजनीतिक क्रियाएं सम्पादित करने का पूरा समय व अवसर प्रदान करती हैं अथवा स्वय: भी पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के साथ-साथ पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर राजनीतिक क्रियाओं में संलग्न होती है। आज भागीदारी की दृष्टि से कृषि, पशु व्यवसाय, हैण्डलूम आदि में महिलाओं के अनुपात में काफी सीमा तक वृद्धि हुई है। पिछले दशक में महिलाओं की क्रियाओं से सम्बन्धित नये आयाम उभरकर सामने आये है। अब महिलायें इलेक्ट्रानिक्स, टेली कम्यूनिकेशन, उपभोक्ता उत्पादन, संगठित क्षेत्र के उद्योग, विधि, चिकित्सा, प्रशासनिक तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यवसायी में भाग ले रही है। महिलाओं के लिए कार्य शब्द का कोई अर्थ, परिभाषा व सीमा निर्धारित नहीं है। यद्यपि महिलाएँ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में 60-80 प्रतिशत तक योगदान देती हैं तथापि उनकी बहुत सारी क्रियाओं को सकल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्मलित नही किया जाता है। अनुमानों के आधार पर महिलाओ की अभुगतानिक श्रम की नकद वार्षिक कीमत लगभग 4 ट्रिलियन डॉलर होती है जो विश्व के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का एक तिहाई भाग है। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की आर्थिक क्रियाओं में संलग्नता विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण परिणाम

समाज का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सामाजिक परिवर्तन की गति निरन्तर है, जिसके कारण महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण क्या परिणाम होते हैं। समाज की किन-किन परिस्थितियां विभिन्न सामाजिक परिणामों को प्रोत्साहित करती है। फिर भी महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण कुछ सामान्य परिणाम होते हैं जो सभी समाजो में पाये जाते हैं ।

सामाजिक परिणाम

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण प्रमुख सामाजिक परिणाम निम्न है-

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण समाज से परम्परागत आधार टूट चुके है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से वृहद समाजों का जन्म हुआ है। जो महिलाओं के राजनीति में प्रवेश के कारण जहां एक ओर परम्परागत प्रदत्त पदों के महत्व में कमी होती है वहीं दूसरी ओर अर्जित पदों की संख्या बढ़ी है। आधुनिकीकरण प्राथमिक समूहों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उसके कारण उनका संगठन शिथिल हो जाता है। प्राथमिक सम्बन्ध छूटते जाते है जिसकें फलस्वरूप् द्वितीय संगठनों का निर्माण हुआ है।

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण आर्थिक परिणाम

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण आर्थिक क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है। महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण समाज में भी औद्योगिक इकाइयों का महत्व बढ़ता जा रहा है। परम्परागत उद्योगों के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण विकसित हो गया है। गृह-उद्योग समाप्त होते जा रहें है और उनके स्थान पर नवीन औद्योगिक संरचना का विकास हो गया है।

नगरीकरण ही आधुनिकीकरण का दूसरा परिणाम है।

शिक्षा, उद्योग आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों मेंवृद्धि के कारण नगरीकरण का विकास होता जा रहा है। विशेषीकरण आधुनिक औद्योगिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। औद्योगिक श्रमिकों को विशेष प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। और इस प्रशिक्षण के अनुसार उन्हें कार्य दिये जाते है। जो जिस कार्य का विशेषज्ञ होता था उसे वही कार्य सौपा जाता है ताकि उस कार्य को सफलता पूर्वक अंजाम दे सकें।

महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण राजनीतिक परिणाम

समाज में महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभाव पड़ा है। महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण समाज का परम्परागत राजनीतिक ढाँचा ही बदल गया हो। जमीदारीसमाप्त हो गयी है अब समाज में भी पूर्णत: प्रजातांत्रिक व्यवस्था संचालित है। पहले समाज में कानून व्यवस्था गॉव के मुखिया और पंचो के हाथ में थी लेकिन महिलाओं का राजनीति में प्रवेश के कारण यह व्यवस्था समाप्त हो गयी है। अब कानून व्यवस्था पुलिस और न्यायालय के हाथों में आ गई है।

सुझाव-

भारत के संदर्भ में यदि देखें तो महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय है उनकी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं -

- महिलाओं को अपनी मानसिक प्रवृत्ति में परिवर्तन लाना होगा जिससे उनमें आत्म विश्वास में वृद्धि होगी। सर्वप्रथम महिलाओं के राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करने होगे।
- महिला संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं को इस दिशा में प्रयास करने होगे।
- महिलाओं को इनके कानूनी अधिकारी की जानकारी, महिलाओं का यौन उत्पीड़न रोकने के लिए सुप्रीमकोर्ट द्वारा दिये गये निर्देशों का सख्ती से पालन, शोषण, उत्पीड़न सम्बन्धी मामलों का जल्दी निराकरण, महिला मामलों में पुलिस की पूरी सजगता एवं सक्रियता महिलाओं के लिए पृथक महिला थानों की स्थापना आदि महिलाओं का शोषण रोकने के लिए आवश्यक है।
- वर्तमान समय में लागू महिला सम्बन्धी कानूनों में व्याप्त विसंगतियों को दूर करना जिससे महिलाओंको राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान कानूनी और व्यावहारिक रूप में सभी मानवाधिकार हासिल हों।

निष्कर्ष

महिला समाज की धुरी है अगर धुरी टूट गई तो समाज भी टूट जायेगा। इतिहास गवाह है कि जिन समाजों ने महिलाओ को गुलाम बनाया वे खुद गुलाम बन गये, जिन समाजों ने महिलाओं को प्रगति का मौका दिया उन्हें सभ्यता के शिखर पर पहुंचने से कोई नही रोक सका। यद्यपि महिलाएँ तेजी से राजनीति के क्षेत्र में आ रही है, तथापि उन्हें राजनीति में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अशिक्षा, भ्रष्टाचार, शोषण, आर्थिक पराधीनता, राजनीतिक सोच का आभाव आदि ऐसी प्रमुख बाधाएं है जो राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने में रूकावट लाती है।

महिलाओं को राजनीति में आगे लाने के लिये उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाना होगा। अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा और अंधविश्वास को दूर कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने का दायित्व है। भ्रष्टाचार और शोषण से महिलाओं को मुक्त करके उन्हें राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ाया जा सकता है।

महिलाएं समाज का अनिवार्य अंग है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में उनकी अहम भूमिका है। जैसे-जैसे शहरों के साथ ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में राजनीति जागरूकता आ रही है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और बदलते सामाजिक परिवेश में राजनीति में महिलाएँ आगे आ रही है और केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय शासन में अपनी भागीदारी निभा रही है। इसलिये महिलाओ को सशक्त और सुदृढ़ बनाने पर ही समाज सुदृढ़ होगा। महिलाओं को सुदृढ़ करने के लिये उनका शिक्षित होना आवश्यक है ताकि अपने अधिकारों को समझ कर समाज एवं राष्ट्र का विकास कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. चक्रवर्ती, निवेदिता, भारतीय संविधान, 1954 आगरा प्रकाशन पृ. 47।
2. सईद एम.ए. भारतीय राजनीतिक प्रणाली, पृ. 345।
4. डॉ0 उमेश चन्द्र- पंचायती राज महिला से उपेक्षा है। योजना पृ. 18।
5. त्रिवेदी डॉ. आर.एन. राय, डॉ. एम.पी.- भारतीय सरकार और राज. कालेज बुक डिपो जयपुर पृ. .345-46,58,
6. शरदचन्द्र चक्रवती, विवेकानंद जी के संग में, प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली पृ. .45
7. आर.सी. मजुमदार, द हिस्ट्र एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पीपुल, प्रकाशित Vol. & 2nd edition 1991. P-31
8. ओम प्रकाश, हिंदू विवाह, चतुर्थ संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997,पृष्ठ 182
9. राजेन्द्र प्रसाद गुप्त, स्वामी विवेकानंद, व्यक्ति और विचार, प्रकाशक, दिल्ली 1971.
10. डॉ. रानी, आशु (1999) महिला विकास कार्यक्रम, ईनाश्री पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ सं. 19
11. डॉ. कुलश्रेष्ठ, लक्ष्मी रानी, कुरूक्षेत्र, अक्टूबर -नवम्बर 1997, पृष्ठ सं. 82
12. के.डी. ग्रोगेड, सेक्स डिस्क्रिमिनेशन इन इण्डिया ए क्रिटिक (प्रोस्टीट्यूशन इन इण्डिया), 1995, पृ. सं. 185
12. सिंह (सोनल) ज्ञान जगत स्वरूप संरचना एवं विकास, भोपाल म.प्र. ग्रंथ अकादमी 1998, पृष्ठ 4
13. सक्सेना (एल.एस.) पुस्तकालय एवं समाज, भोपाल, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2004, पृष्ठ 4-5

भारतीय राजनीति में जातिवाद की भूमिका

डॉ० प्रदीप जाम्बुलकर

सहा. प्राध्यापक, शास.नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोंगरगढ़ (छ.ग.)

सारांश

वर्तमान भारत के राजनीतिक संरचना की बात की जाए तो, भारत बहुदलीय लोकतंत्र वाला एक देश है। इसके अलावा यदि हम प्राकृतिक तथा सामाजिक तौर पर भी देखें तो भारत विभिन्न प्राकृतिक विभागों तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठनों वाला देश है। हमारे देश म्रे हर तरह से विविधता में एकता है। हम उत्तर से लेकर दक्षिण तक कई जाति, पंथ, समुदाय तथा समूहों में बटें हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह उभरकर सामने आती है कि भारत जैसे विशाल देश जिस प्रकार धर्म, संस्कृति, समूह, तथा सभ्यता के मामले में बहुरंगी है, उसी प्रकार राजनैतिक तौर पर भी भारत में व्यापक भिन्नतायें देखने को मिलती है। हम उत्तर से दक्षिण या पूरब से पश्चिम भारत में कहीं भी नजर उठा कर देखें तो हम पाते हैं कि भारत में हर क्षेत्र के व्यक्ति में राजनीति के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग है।

प्रस्तावना

भारत जैसा बहुदलीय राजनैतिक दल वाला देश उन सभी समूहों के लोगों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व करता है। भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में यह अवश्यंभावी हो जाता है कि यहां के राजनीतिक दल क्षेत्रीय मुद्दों के साथ-साथ उन मुद्दों का भी समावेश राजनीति में करें, जो मुद्दे ज्वलंत हैं तथा समाज से जुड़े हुए हैं। ऐसा ही एक मुद्दा जातिवाद है। भारतीय राजनीति में जातिवाद कोई नई परिकल्पना नहीं है, अपितु अंग्रेजी राज्य में भी 1931 ईस्वी में जब भारत में प्रथम बार जातिगत जनगणना कराई गई तो वहां भी अंग्रेजों की मनसा यही थी कि भारतीय राजनीति में जाति का समावेश किया जाए। यहां गौर करने वाली बात यह है उस दौर में अंग्रेजी शासन विदेशी शासन था तथा उनका मंतव्य भारत का शोषण करना था। 1909 के मार्ले - मिंटो सुधार के माध्यम से भारत में राजनीति के क्षेत्र में धर्म का समावेश कर ही चुके थे। जिसका असर 1920 ईस्वी के बाद दिखने लगा था। ऐसी परिस्थिति में उन्हें डर था कि केवल धर्म के आधार पर भारत को बांट कर उस पर शासन नहीं किया जा सकता है।

अत: राजनीतिक आकांक्षाओं को जगाकर उसमें जाति का समावेश करके ही भारत पर शासन किया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने भारत में जातिगत जनगणना करवायी। वह ऐसा करने में तत्काल सफल नहीं हो सकी क्योंकि उस दौर में कांग्रेस सहित सभी दलों में जातिवाद तो था, लेकिन उसका विरोध भी उसी प्रकार होता था। दूसरा कारण यह था कि एक तरफ जहां भीमराव अंबेडकर जी द्वारा जातिगत उत्थान की बाते की जा रही थीं तो दूसरी तरफ गांधी जी भी अपने प्रयास से निम्न जातियों के उत्थान में लगे हुए थे। अंग्रेजों की यह चाल सफल नहीं हो सकी । 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब से लेकर 1960 के दशक तक भारतीय राजनीति में जातिवाद प्रत्यक्ष होकर कभी उपस्थित नहीं रहा, क्योंकि भारतीय संविधान में जिस प्रकार आरक्षण दिया गया था उससे तत्काल जातिवाद का विकास संभव नहीं था। दूसरी तरफ उस दौर में राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व राजनीति में आधिक था। जिसके कारण जातिवाद विकसित नहीं हो सकता लेकिन धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में जातिवाद का विकास होने लगा। भारत में विद्यमान जातिवाद ने न केवल यहॉ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रवृत्तियों को ही प्रभावित किया अपितु राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है। जाति के आधार पर भेदभाव भारत में स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व भी था किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रजातन्त्र की स्थापना होने पर समझा गया कि जातिगत भेद मिट जाएगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ। राजनीतिक संस्थाएं भी इससे प्रभावित हुऐ बिना नहीं रह सकी परिणाम स्वरूप जाति का राजनीतिकरण हो गया।

जाति की भूमिका

भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केन्द्र ही नहीं राज्यस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए सबसे खतरनाक बात है क्योंकि राष्ट्रीय एकता एवं विकास मार्ग अवरूद्ध हो रहा है। भारतीय राजनीति में जातिवाद के समावेश में सबसे बड़ी भूमिका क्षेत्रीय दलों की है। क्योंकि हमारे देश में जितने भी क्षेत्रीय दल थे वह किसी न किसी रूप से अपने क्षेत्र में सत्ता को प्राप्त करना चाहते थे। उनकी परिकल्पना पूरी राष्ट्र के लिए नहीं थी। अत: वे यह मानकर चलते थे कि हम देश नहीं बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर आगे बढ़ सकते हैं। हर क्षेत्रीय नेता किसी न किसी समुदाय से आता था। इसीलिए प्रारंभ में उसने अपने समुदाय के विकास की बात को राजनीति के माध्यम से उठाना प्रारंभ कर दिया। बाद में इस मुद्दे में जाति जुड़ती चली गई। जिसका उदाहरण हम बिहार में राष्ट्रीय जनता दल, उत्तर प्रदेश में लोक दल, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी आदि के रूप में देख सकते हैं। वही दक्षिण भारत में राजनीति पर अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिए इन राजनीतिक दलों ने एक या एक से अधिक जातियों के समीकरण को अपने साथ जोड़ कर आगे बढ़ाना प्रारंभ किया। वह अक्सर जातिगत मुद्दे उठाकर भारतीय राजनीति को क्षेत्रीयता के भाव से प्रभावित करने में लगे रहे। राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव समय के साथ-साथ बढ़ रहा है लेकिन जाति व्यवस्था का रूप परिवर्तित होता रहता है। स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा है। अत: भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन निम्न अनुसार किया जा सकता है।

1. जाति एवं प्रशासन-भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं के अलावा प्रशासन में भी जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गई है अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़ेे वर्गों को भी आरक्षण दिया गया है।
2. जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास-राजनीति के अंतर्गत सफलता प्राप्त करने के लिए जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास हो रहा है। यह जनता की भावनाओं को उभार कर राजनीतिक लाभ उठाते हैं और उसी के आधार पर चुनाव जीतने का प्रयास करते
3. जाति के आधार पर चुनाव क्षेत्र में उम्मीदवारों का चयन करना।
4. निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका-जातिय संगठन अपने हितों के अनुसार निर्णय करने तथा अपने हितों के प्रतिकूल होने वाले निर्णयों को रोकने हेतु निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।
5. राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत आरक्षण के माध्यम से हितों को पूरा करने की होड़।
6. मंत्रिमंडल के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व जैसे ब्राहाम्ण, जाट, राजपूत, कायस्थ, दलित व पिछड़े आदि।
7. चुनाव प्रचार में जाति का सहारा-राजनीतिक दल एवं उम्मीदवार चुनाव प्रचार में जाति का खुलकर प्रयोग करते हैं चुनाव के समय जातीय समीकरण बैठाए जाते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल क्षेत्र विशेष में जिस जाति का बाहुल्य है उसमें उसी जाति के बड़े नेता का चुनाव प्रचार हेतु भेजने का प्रयत्न करते हैं।
8. जाति के आधार पर राजनीतिक अभिजनों का उदय जो लोग जातिय संगठनों में उच्च पदों पर पहुंच गए हैं वे ही राजनीति में भी अच्छे स्थान प्राप्त करने में सफल हुए हैं ऐसे लोग राजनीति में चाहे खुलकर जातिवाद का सहारा ना लें फिर भी यह अपनी पृष्ठभूमि को नहीं भूलते। वे अपने जातीय हितों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पैरवी करते रहते हैं। राजनीतिक दलों ने जब जनता को सम्मोहित करने में अपने आप को असमर्थ महसूस किया तब राजनीति का खेल खेलने के लिए नेताओं ने राजनीति में जातिवाद का सहारा लिया। दलित शोषित के उत्थान की आड़ में जातिवाद को राजनीति का अनिवार्य अंग बना दिया। जातिवाद के कारण जहां राज्य का उद्देश्य जनकल्याण का था उसको बदलकर रख दिया उसका वास्तविक उद्देश्य विभिन्न जातियों को संतुष्ट करने का रह गया। राजनीतिक दलों ने जातियों को वोट बै क के रूप में हमेशा प्रयुक्त किया है

निष्कर्ष:-

भारतीय राजनीति में जाति के प्रभाव की तीव्र आलोचना की जाती रही है और इसे राष्ट्रीयता के लिए घातक समझा जाता रहा है, लेकिन इसका एक अन्य पक्ष भी है। एक ओर तो जाति ने समाज को टुकड़ों में विभक्त करने वाले तत्व की भूमिका अदा की है, तो दूसरी ओर इसने संयुक्त करने वाले तत्व की भी भूमिका अदा की है। भारतीय समाज में जाति प्रभावपूर्ण सम्पर्क-सूत्र का कार्य और नेतृत्व और संगठन को आधार प्रदान करती है। यह उन व्यक्तियों को भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता प्रदान करती है जो निम्न जातियों के कहे जाते हैं। अत: राजनीति में समाज व्यवस्था के दोषों को बढ़ावा देकर उसे परस्पर जाति संघर्ष एवं वैमनस्यता की आग में डाल दिया जिस पर राजनेता अपने हाथ सेंकते रहे हैं। जातिवाद में लोकतंत्र की धारणा के विरूद्ध काम किया है। जाति व्यवस्था में राष्ट्र के एकीकृत स्वरूप के लिए संकट पैदा कर दिया है। फिर भी यह सत्य है कि जाति भारत के समाज की महत्वपूर्ण इकाई जिसकी उपेक्षा करना आसान नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि जाति के नकारात्मक स्वरूप के स्थान पर सकारात्मक स्वरूप की स्थापना की जाए। जाति का राजनीतिकरण भारत के आधुनिकीकरण के मार्ग में बहुत बड़ा बाधक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सद्भाव एवं समरसता का निर्माण करने हेतु आधार नहीं बनाया जा सकता। वैसे तो संविधान द्वारा अस्पृष्यता को लेकर अनेकों कानून बनाए गए, परन्तु जाति - विहीन समाज की स्थापना संविधान की अंतरात्मा नहीं बन पाई। अस्पृस्यता समाप्त कर दी गई परन्तु जाति व्यवस्था स्वयं बनी रही।

संदर्भ ग्रंथ

1. चौबे, कमल नयन; जातियों का राजनीतिकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 34.
2. आहुजा, राम; भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1995, पृ. 202.
3. कोठारी, रजनी, (संपादित), कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 1970 पृ. 36. ।
4. प्रताप, भानु मेहता, द बर्डेन ऑफ डेमोक्रेसी ढं बुक्स, लंदन 2003 पृ. 53.।
5. श्रीनिवासन, एम0एन0, भारत में जाति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 पृ. 44.।
6. गुहा, रामचंद्र, भारत, नेहरू के बाद, पेंग्विन बुक्स, लंदन, 2012 पृ. 54.
7. गुहा, रामचंद्र, मेकर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, पेंग्विन बुक्स, लंदन, 2012 पृ. 55.।

बाल श्रम का सामाजिक समस्या व समाधन

डॉ० राम नरेश ठण्डन

सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शास.नागरिक कल्याण महाविद्यालय, नंदिनी नगर (अहिवारा), दुर्ग (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

वर्तमान समय में गरीबी की विवशताए ही माँ-बाप को अपने ही बच्चों को श्रम करने के लिये मजबूर कर देती है और जिन नन्हे-नन्हे कोमल हाथों से देश की तकदीर लिखी जानी चाहिये, वही हाथ अपने और अपने परिवार की पेट की अग्नि को शान्त करने के लिये कही बीड़ी बनाने और कूड़ा बीनने में जुटे है तो कही 1400 डिग्री तक के तापमान में जलने को मजबूर है।

वस्तुत: सम्पूर्ण मानव समुदाय के लिये कलंक और प्रत्येक राष्ट्र के लिये सामाजिक-आर्थिक बुराई के रूप में बोझ बन चुकी 'बाल-श्रम प्रथा' बाल श्रमिकों को अभिशप्त जीवन जीने के लिये मजबूर कर रही है, बेशक अन्य समस्याओं की भांति इस अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का भी प्रभावी निदान अति आवश्यक है। आज बाल श्रम समस्या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल चुकी है जो एक ओर भारत जैसे जनाधिक्य वाले निर्धन और विकासशील राष्ट्रों में पीडाजनक दौर से गुजर रही है, वही दूसरी और विकसित राष्ट्रो में यह समस्या एक मानवीय अपराध तथा सामाजिक अभिशाप के रूप में अनेक बुराईयो को जन्म दे रही है। बाल श्रमिक के रूप में कार्य करते हुए बच्चे के अधिकार का उल्लघंन बहुत बेरहमी से होता है। उसके विकास, शिक्षा, चरित्र निर्माण आदि की बाते तो कल्पना ही लगती है। उसका पग-पग पर हर प्रकार का शोषण होता है। उसके अधिकारों की विवेचना करने से पूर्व हमें श्रम, बाल श्रमिक जैसे अवधारणाओं का अर्थ समझ लेना चाहिये।

शोध उदेशय:- समाज में बाल श्रम किसी न किसी रूप में अवश्य पाया जाता है। बाल श्रमिक विषम परिस्थितियों में कारखानों में कार्य करते हैं, लेकिन उन्हें वेतन, चिकित्सा, भोजन, आदि मूलभूत सुविधाओं से वंछित होना पड़ता है। यह उनके साथ इसलिए होता है कि वे एक निर्धन परिवार में जन्में हैं।उन्हें श्रम करके अपना तथा परिवार पोषण करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र में बाल श्रमिकों के बनने कारण तथा समस्या व उसको समाधन प्रस्तुत किया गया है।

श्रम का अर्थ.

आम बोलचाल की भाषा में श्रम का अभिप्राय: उस चेष्टा या परिश्रम से होता है जा कि किसी कार्य को करने हेतु किया जाता है। यह चेष्टा मनुष्य करे या पशु सदैव श्रम कहलाती है।

प्रो0 मार्शल के अनुसार - 'श्रम का अर्थ मनुष्य के आर्थिक कार्यो से है चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक।

उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि श्रम से तत्पर्य मनुष्य की उस प्रत्येक क्रिया से है जो परिणाम की दृष्टि से मानसिक या शारीरिक रूप से किया जाता है। श्रम समस्त का स्रोत है और प्रकृति के बाद यही उत्पादन के लिये सामग्री प्रदान करता है तथा उसे सम्पत्ति मे बदलता है। किसी देश की आर्थिक समृद्धि वहॉ के निवासियों के अथक श्रम मे निहित होती है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था चाहे कृषि प्रधान हो या उद्योग प्रधान, श्रम के महत्व को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

श्रम की विशेषताएं:-

श्रम के अन्तर्गत कुछ ऐसी विशेषताएं पायी जाती है जा उत्पत्ति के अन्य साधनों में नही होती है। इन विशेषताओं का श्रम समस्याओं के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। श्रम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है -

- 'श्रम' उत्पत्ति का साधन है - श्रम उत्पत्ति का एक सक्रिय साधन है। अन्य साघन स्वयं कार्य को आरम्भ नही कर सकते, वस्तुत: उनको श्रम द्वारा ही सक्रिय बनाया अथवा काम कर लगाया जाता है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान ने अनेक प्रकार के यंत्रो का आविष्कार किया है। परन्तु उन यन्त्रों को चलाने के लिये 'मानवीय श्रम' की ही आवश्यकता पड़ती है।
- श्रम व श्रमिक में कोई अन्तर नही है - उत्पत्ति के अन्य साधन अपने स्वामियों से पृथक अस्तित्व रखते है, परन्तु "श्रम" का श्रमिक से पृथक कोई सम्बन्ध नही होता है। पूँजी को पूँजीपति से अलग किया जा सकता है लेकिन श्रम को श्रमिक से अलग नही किया जा सकता।
- श्रम नाशवान है - विश्व में प्राय: प्रत्येक चीज का संचय किया जा सकता है किन्तु श्रम का संचय नही किया जा सकता है। श्रम नाशवान है इसीलिये श्रमिक सदैव अपने श्रम को बेचने का प्रयत्न करते है तथा उसके लिये अच्छी मजदूरी मिलने तक प्रतीक्षा करना संभव नही होता है श्रमिक की इस विशेषता कर अनुचित लाभ उठाते हुए सेवायोजक उसे न्यूनतम मजदूरी देने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार श्रमिक को अपनी सेवा का उचित पुरस्कार नही मिलता जिसका उसके जीवन स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

- श्रमिको की सौदा शक्ति दुर्बल होती है - श्रमिको की सौदा करने की शक्ति दुर्बल होती है। इसके अनेक कारण है जैसे अज्ञानता, आशिक्षा, अनुभवहीनता, दरिद्रता तथा श्रम संगठनों की शिथिलता आदि। श्रमिक की बेकारी भी उसकी सौदा शक्ति को कमजोर करती है।
- श्रम की पूर्ति बेलोचदार होती है - श्रम की पूर्ति ने परिवर्तन करने के लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है क्योंकि श्रम की पूर्ति दो तरीको से परिवर्तित की जा सकती है- 1. जनसंखया में परिवर्तन 2. श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि अथवा कमी के द्वारा परन्तु इन दोनों ही विधियो से श्रम की यात्रा में परिवर्तन धीरे-धीरे ही होता है।
- श्रमिक अपना श्रम बेचत है किन्तु स्वयं गुणों का स्वामी बना रहता है - श्रम का क्रेता श्रमिक को नही खरीदता है। श्रमिक स्वयं अपनी कार्य कुशलता का स्वामी बना रहता है। इसलिये सेवायोजक अपने श्रमिकों की शिक्षा-दीक्षा की ओर कम ध्यान देते है, क्योंकि उन्हें यह आशंका रहती है कि अधिक निपुण हो जाने पर श्रमिक अधिक मजदूरी मांगेगा अथवा काम छोड़कर चला जायेगा।
- श्रम में पूंजी का विनोयोग किया जाता है - जिस प्रकार उद्योग आय प्राप्त पूंजी का विनियोग करके अधिक उत्पादन किया जाता है या अधिक आय प्राप्त की जा सकती है उसी प्रकार कुशल शिक्षित और योग्य श्रमिकों के द्वारा अधिक उत्पादन किया जा सकता है। इसलिये श्रम को मानवीय पूंजी भी कहा जाता है। वस्तुओं, मशीनों, भवनों इत्यादि में लगायी गयी पूंजी इन वस्तुओं को बेचकर एक सीमा तक निकाली जा सकती है। जबकि श्रमिको में विनियोग की हुई मुद्रा या पूँजी इस तरह निकालना संभव नही है।
- श्रम का प्रतिफल श्रमपूर्ति को साधारण ढंग से प्रभावित नही करता - साधारणतया देखा गया है कि वस्तुओं की कीमतें बढने पर उनकी पूर्ति में वृद्धि हो जाती हैं, लेकिन श्रम के विषय में सदैव ऐसा नही होता है। एक सीमा के बाद यदि श्रमिकों के वेतन को बढ़ाया जाए तो वे अधिक आराम करना पसंद करेंगे और कम घंटे कार्य करेंगे? दूसरी ओर यदि श्रमिकों का वेतन एक सीम से अधिक क्रय कर लिया जाए तो अपना और अपने परिवार का लालन पालन ठीक से नहीं कर पायेगें तथा पर्याप्त आय कमाने की लालसा में अधिक घंटे कार्य करेगें श्रमिको की पूर्ति उनके वेतन में कमी के फलस्वरूप बढ़ जाती है।
- श्रम एक साधन भी है और साध्य भी - श्रम उत्पादन में सहयोग देता है इस दृष्टि से वह एक साधन में काम आता है। इस दृष्टि से वह साध्य भी।

बाल श्रमिक

बाल श्रमिक की अवधारणा और आयु के संदर्भ में आज भी एक सर्वमान्य परिभाषा का अभाव बना हुआ है समय-समय पर समाजशास्त्रियों, बुद्धिजीवियां, सरकारी एजेन्सियों, गैर-सरकरी संगठनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा बाल श्रम के सम्बन्ध में अलग-अलग मत पुस्तुत किये जाते रहे है -

संयुक्त राष्ट्र बाल श्रम आयोग के अध्यक्ष होमर फाक्स 10 ने बाल श्रम को परिभाषित करते हुए कहा है "बच्चों द्वारा किये जाने वाला कोई भी कार्य जिससे उनके पूर्ण शारीरिक विकास और न्यूनतम वांछित स्तर की शिक्षा के अवसरों या उनके लिए आवश्यक मनोरंजन में बाधा उत्पन्न होती है" इस परिभाषा के अनुसार बाल श्रम के कारण बच्चें के सर्वागीण विकास में बुरा प्रभाव पड़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार बाल श्रमिक का सम्बन्ध उन बच्चों से नही है जो पारिवारिक जमीन पर खेती मे मद्द करते है या घरेलू कार्यो में हाथ बॅटाते है बल्कि बाल श्रमिकों में वे बच्चे सम्मिलित है जो स्थायी रूप से वयस्क के रूप में जीवनयापन कर रहे है, वैसी स्थिति में कार्यरत है जो उनके स्वास्थ्य तथा शारीरिक व मानसिक विकास में हानि पहुँचा रही है, कम मजदूरी पर लम्बे घण्टों के लिये कार्यरत है, लगातार बुनियादी शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर से वंचित रहते है तथा कभी-कभी अपने परिवारों पृथक रहकर श्रम गतिविधियो में संलग्न रहते है। समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण से वे बच्चे बाल श्रमिक माने जाते है जो अपने निर्धन परिवार की आय बढ़ाने हेतु परिस्थितिवश खेतो, दुकानो, कारखानों और घरेलू कार्यो में संलग्न है तथा परिवार में एक आय उपार्जक सदस्य के रूप में रह रहे है। बुद्धिजीवियों और शोधकताओं के दृष्टिकोण से बच्चों के संदर्भ में श्रम तब एक बुराई का रूप धारण कर लेता है जब नियोक्ताओं द्वारा बच्चों से उनकी शारीरिक क्षमता के विपरित काम लिया जाता है तथा उनके काम के घण्टे निश्चित न हो और उनकी शिक्षा मनोंरजन व आराम का ख्याल नही रखा जाता हो तथा जब उन्हें ऐसे काम पर लगाया जाता हो जो उनके शरीर व स्वास्थ्य के लिये खतरनरक व हानिकारक सिद्ध होता हो। संयुक्त राष्ट्र संघ 11 के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिक को बाल श्रमिक माना गया है जबकि आई0 एल0 ओ0 के द्वारा 15 वर्ष या उससे कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रमिक की श्रेणी में रखा गया है।

संवैधानिक विभिन्नताओं के आधार पर बाल श्रमिक -

भारतीय संविधान के मुताबिक वे बच्चे जो 14 वर्ष या उससे कम आयु में ही रोजगार में संलग्न है या श्रम द्वारा पारिवारिक कर्ज चुकाते है तथा अपने विकास के लिये उपलब्ध सुविधाओं से वंचित है बाल श्रमिक कहलाते है, संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार भारत में 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को किसी कारखाने या खननकार्य या किसी अन्य खतरनाक रोजगार में नियोजित नही किया जा सकता इसी संदर्भ में बाल श्रम अधिनियम-1986 की अनुसूची के अन्तर्गत हमारे देश में 13 व्यवसायों और 57 खतरनाक प्रक्रियाओं में बच्चो के नियोजन पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।

उपरोक्त परिभाषों के आधार पर हम कह सकते है कि किसी भी समाज द्वारा निर्धारित आय का व्यक्ति जो बालक के अन्तर्गत आता है यदि वह अपनी जीविका, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एवं रचनात्मक प्रवृत्तियों के विकास के लिये कार्य करता है तो बाल श्रमिक कहलाता है। बाल श्रमिक का संबध उन बच्चों से नही है जो परिवारिक जमीन पर खेती मे मद्द करते है या घरेलू कार्य करते है। बल्कि बाल श्रमिक में वे बच्चे शामिल है जो-

1. स्थायी रूप से व्यस्क के अनुरूप जिन्दगी गुजर-बसर कर रहे है,
2. वैसी स्थिति में कार्यरत है जो उनके स्वास्थ्य, शारीरिक एवं मानसिक विकास में हानि पहुॅचा रही है,

3. कम मजदूरी पर लंबे घंटे के लिये कार्यरत है,
4. लगातार बुनियादी शिक्षा एवं प्रशिक्षण के अवसर से वंचित रहते है जो शायद केवल उसके लिये एक बेहतर भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सकता था, तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कनवेशन 1999 के अनुच्छेद-2 में "अति खराब दशा के बाल-श्रमिकों में निम्न बच्चों को सम्मिलित किया है-

1. बच्चों का क्रय-विक्रय, व्यापार बंधुआ बच्चे, बलात-श्रम एवं सैन्य संघर्ष के अनिवार्य रूप से भर्ती किये गये बच्चे,
2. वेश्यावृत्ति एवं अश्लील कार्य में लगे बच्चे,
3. गैर कानूनी कार्य विशेष रूप से ड्रग उत्पादन व व्यापार मे लगे बच्चे तथा4. वैसा कार्य परिवेश जिससे बच्चों के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं नैतिकता को नुकसान पहुँचता हो।

बाल श्रमिक

आर्थिक गतिविधियों मे बच्चों की संलिप्तता विश्व संदर्भ में कोई नई बात नही है। प्राचीन समय में जब मनुष्य खानाबदोशी या शिकारी जीवन व्यतीत करता था तब ये बच्चे अपने से बड़ो की सहायता करते थे। संयुक्त परिवार उस समय मुख्य सामाजिक संस्था थी तथा बच्चों को पूर्ण सुरक्षा दी जाती थी तथा दयाभाव का व्यवहार किया जाता था। संयुक्त परिवार के विखरने से बच्चों पर भी कार्य का बोझ आ गया और प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने के लिये कार्य करना आवश्यक हो गया।

भारत में गुलाम बच्चे भी गुलामी के जीवन यापन के लिये बाध्य रहते थे। यह बाध्यता तब तक बनी रहती थी जब तक उनके मालिक उन्हें गुलामी से मुक्त कर दें। समाज के अनाथ एवं पिछड़े वर्गो के लोगों को गुलाम के रूप में उपयोग करना एक प्रचलन था किन्तु 'आर्य बालको' का उपयोग प्रतिबन्धित था। कार्ल मार्क्स ने इस प्रथा की पुरजौर भर्त्सना की। मानव संसाधन प्रबन्ध के पितामह राबर्ट ओवेन तथा वैज्ञानिक क्रांति के जनक एफ0डब्लू0टेंलर ने बाल श्रमिक के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया था। पश्चिम मूं औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप बाल श्रम छूत की बीमारी की तरह से कम विकसित देशों में भी फैल गया तथा कुछ समाज ऐसा सोचने लगे कि "परिवार बच्चों की उन्नति के लिये नही है बल्कि परिवार के सहारे के लिये है"।

बाल श्रम के कारण -

जब तक आर्थिक कारणों से बाध्य नही हो जाये तब तक कोई भी माता-पिता सामान्यत: अपने बालकों को उद्योगों, कृषि क्षेत्र खान, चाय-बागानों, ढाबों या घरेलू नौकरों के रूप में काम पर नहीं भेजना चाहतें। परिस्थितियॉ उन्हें ऐसा करने के लिये बाध्य कर देती है। यहॉ देश मे 36 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहा है, ऐसे परिवारों के बच्चे यदि नही कमाये तो परिवार के लिये दो जन की रोटी की व्यवस्था करना भी मुश्किल हो जाये। यदि उन्हें कार्य पर नही लगाया जाये तो अनराध करने लगेंगे। समाज वैज्ञानिकों के अनुसार बाल श्रम के प्रमुख कारण निम्नलिखित है -

(क) गरीबी - बाल श्रम का मुख्य कारण विश्वव्यापी गरीबी है। भारत एक विकासशील देश है। इसमें गरीबी की शक्तियाँ माता-पिता को अपने बच्चों को रोजगार की तलाश में भेजने के लिये बाध्य करती है। निर्धनता उसे कहते है जिस समय अपनी मूलभूत आवश्यताओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है तथा समाज में रहते हुए वह किसी प्रकार अपना जीवन यापन कर पाता है। वैसे हमारा देश विश्व में अन्य देशों के मुकाबले बहुत निर्धन है। एक ऑकडे के अनुसार भारत वर्तमान में आर्थिक स्थिति तथा प्रतिव्यक्ति आय में 122वें स्थान पर है। सन् 2004-05 के अनुसार भारत की प्रतिव्यक्ति आय प्रतिवर्ष 23222 रुपये है। भारत मे अधिकतम आय तथा पूँजी बहुत ही कम लोगों पर है। एक अनुमान के अनुसार गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले बच्चों का प्रक्षेपण द्वारा जनसंख्या वृद्धि को देखने से ज्ञात होता है कि सन् 2001 तक गरीबी रेखा से नीचे 0-14 वर्ष के बच्चों की संख्या लगभग 195884000 थी।

इसी से ज्ञात होता है कि यह कितनी भयानक स्थिति है जो हमारे देश को गर्व में ले जा सकती है। इन्ही कारणों से हमारे नौनिहाल अपने स्वर्णिम समय को मिट्टी के मोल बेच देते है तथा अपने जीवन को चिर-अंधकार में विवरण के लिये छोड़ देते है साथ ही साथ समाज उन्हें उपहार स्वरूप देता है शोषण, कुपोषण, बीमारी तथा उपहास राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने 2004-05 में एक सर्वेक्षण किया जिसमें यह बताया गया था कि समस्त जनसंख्या का 27.5 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे रह रहे थे।

(ख) माता-पिता का अभिभावक की अपर्याप्त आय - बाल श्रमिक की समस्या का वयस्क श्रमित को मिलने वाली वर्तमान आय से घनिष्ट सम्बन्ध है। यह अपर्याप्तता बच्चों के माता-पिता को बाध्य करती है कि वे भी अपने बच्चों को कार्य पर भेंजे ताकि उसके बदले में कुछ प्राप्त किया जा सके और नियोक्ता अनेक प्रतिबन्धित अधिनियमों के बावजूद बच्चों की कमजोरी का फायदा उठाकर उनको कम वेतन देते है।[13] राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान द्वारा आयोजित सेमिनार में ऐसा देखा गया कि माता-पिता अपने बच्चों को कार्य करने के लिये बाध्य करते है क्योंकि उनकी स्वयं की आमदनी कम है। यदि उनकी आमदनी बढ़ा दी जाये तो शायद वे बच्चों को काम पर भेजना बन्द कर दें।

(ग) बेरोजगारी - लुम्बिकन और डगलस ने सही ही कहा है कि 2/5 बच्चे अपने परिवार के वयस्क सदस्यों की बेरोजगारी के कारण कार्य करते है। इनमें से दो तिहाई बच्चों के वयस्क कार्य करने वाले या तो बेकार होते है या अंशकालिक कार्य करते है तथा एक तिहाई बच्चों के काम करने का कारण उनके वयस्क सदस्यों के वेतन में भारी कटौती की गयी होती है। इसी सम्बन्ध में पदमिनी सेन गुप्ता कहती है "कृषि व्यवसाय में मजदूर औसतन 189 दिन कार्य कर सकता है गांव मे और भी कार्य करने को होते है परन्तु उनमें भी वर्ष में सौ दिन से ज्यादा दिन बेराजगार रहना पड़ता है।

(घ) परिवारिक भत्ता योजना की कमी - भारत में बाल श्रम का एक अन्य कारण पारिवारिक भत्ता योजना की कमी है जो कि इतना ही खतरनाक है जितनी कि गरीबी। इस प्रकार का कोई भी भत्ता परिवारों को नही दिया जाता है ताकि लोग अपना पर्याप्त स्तर रख सके तथा अपन बच्चों को श्रम

बाजार में भेजने के लिये बाध्य न करें। स्पष्ट है कि बाल श्रम का प्रमुख कारण आर्थिक जरूरत है। जब कोई परिवार भूखे रहने की स्थिति से ऊपर उठना चाहता है तभी वह अपने बच्चों को मजदूरी पर काम करने के लिये घर से बाहर भेजता है।

(ङ) बड़ा परिवार - बड़ा परिवार तुलनात्मक रूप से कम आमदनी मे खुश नही रह सकता है। गरीबी से पीड़ित व अशिक्षित माता-पिता यह सोचते है कि भगवान ने यदि तुम्हें जीवन दिया है तो वह खाने को अवश्य ही देगा। धीरे-धीरे वे यह भी सोचते है कि तीन और चार बच्चे एक बच्चे से अच्छे है उनके लिये ज्यादा बच्चे ज्यादा आमदनी का स्रोत होते है।

(च) सस्ती वस्तु - अधिकतर नियोक्ता बच्चों से अधिक से अधिक काम करवाने की सोचते है और बाल श्रमिक प्रौढ श्रमिक के मुकाबले सस्ते होते है। वास्तव में तो नियोक्ता कम खर्च करके अधिक अर्जित करते है। हमारे देश में बच्चे बहुत ही छोटी उम्र में घरों में कार्य करने लग जाते है। क्योंकि वे बहंत ही सस्ते होते है। मध्यम वर्ग के लोग 8 से 14 वर्ष के लड़के व लड़कियों के घर में नौकर के रूप् में रख लेते है जबकि उनकी यह उम्र खेलने व खाने की होती है।

(छ) अनिवार्य शिक्षा की कमी - एक निश्चित उम्र के बच्चों के लिये शिक्षा को अनिवार्य करने में आने वाली बाधाओं का नीचे दिये गये शब्दों में बहुत सही ढ़ग से वर्णन किया गया है। "यदि शिक्षा नि:शुल्क भी हो तो एक कारीगर अपने संरक्षित बच्चें को शिक्षा नही दे सकता। उसके लिये एक अशिक्षित बच्चा तो एक सम्पत्ति है। उसको शिक्षित करने की इच्छा उसके ऊपर दुगनी जिम्मेदारी लाती है।

(अ) यदि बच्चे कार्य नही करता है तो आय की कमी होती है।

(ब) बच्चे की शिक्षा पर होने वाला खर्च चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो कुछ न कुछ होता अवश्य ही है। अधिकतर बच्चों को स्कूल जाने वाली सुविधा उपलब्ध न होने की वजह से वे प्रारम्भिक अवस्था में ही किसी कार्य की तलाश में लग जाते है। परन्तु श्रम के ऊपर राष्ट्रीय कमीशन की रिर्पाट में एक स्थान पर कहा गया है "बाल श्रम सं सम्बन्धित कानूनों को अच्छी तरह से लागू किये जाने व शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् बाल श्रमिकों की संख्या में धीरे-धीरे कमी आई है जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है।

(ज) माता-पिता की अज्ञानता व अशिक्षा - भारत में जनसंख्या का निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग अशिक्षित है। वे केवल वर्तमान के बारे में सोचते है जो कि उनका एकमात्र उद्देश्य व चिन्ता है। वे कभी भी भविष्य के बारे में नही सोचते है। वे अपने बच्चों के शैक्षिक अवसरों के बारे में भी जानबूझ कर अंजान बने रहते है। बालश्रम बच्चों को सभी शैक्षिक अवसरों से वंचित करता है। यह उनके शरीर को भी प्रभावित करता है। वे अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिये निम्न आय के श्रमिक बनने पर बाध्य कर दिये जाते है। अपने बच्चों को स्कूल न भेजने की गलती की 'जुनेएडम' ने भी आलोचना करते हुए कहा है "आज के बाल श्रमिक कल के कंगाल होंगे। ये इस प्रकार के लड़के व लड़कियां होंगे जो कि किसी औपचारिक स्कूली शिक्षा या व्यापार के ज्ञान के बिना बड़े हो जायेंगे। धीरे-धीरे उनकी जवानी की शक्ति क्षीण होती जायेगी और वे मानसिक रूप से मन्द भाव रहित व साधन रहित हो जायेंगे।

स्पष्ट है कि अनुचित होते हुए भी बाल श्रम सामाजिक-आर्थिक कारणों से जारी है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि व्यस्क श्रमिक की कमाई का नीचा स्तर देश में राज्य द्वारा गयी किसी प्रभावकारी योजना का न होना जो गरीब माता-पिता को अपने बच्चों के लिये सही और संतुलित खुराकक व रहन-सहन की दशाएं उपलब्ध कराने में सहायक हो, सुरक्षा प्रदान करने वाले श्रम कानूनों का धीमा विकास तथा बहुत से धंधो का इनसे बचे रहना, मौजूदा कानूनों का पालन न करना तथा निरीक्षण व्यवस्था का कमजोर होना आदि बाल श्रम के लिये उत्तरदायी प्रमुख कारण है।

बाल श्रम समस्या के कारण -

विश्व के अन्य देशों की तरह भारत में भी बाल-श्रमिक पहले खेतों के कामों मे लगे रहते थे और अभी भी लगे रहते है, किन्तु औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रियाए बढने के साथ-साथ विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं एवं व्यवसायों में बाल-श्रमिको को बड़े पैमाने पर नियोजित किया जाने लगा है। बच्चों के औद्योगिक ईकाइयों में नियोजन के साथ शुरू होती है उनके साथ होने वाले विभिन्न प्रकार में अनेक प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ता है।

- बड़ा परिवार - बड़ा परिवार तुलनात्मक रूप से कम आमदनी मे खुश नही रह सकता है। गरीबी से पीड़ित व अशिक्षित माता-पिता यह सोचते है कि भगवान ने यदि तुम्हें जीवन दिया है तो वह खाने को अवश्य ही देगा। धीरे-धीरे वे यह भी सोचते है कि तीन और चार बच्चे एक बच्चे से अच्छे है उनके लिये ज्यादा बच्चे ज्यादा आमदनी का स्रोत होते है।
- सस्ती वस्तु -अधिकतर नियोक्ता बच्चों से अधिक से अधिक काम करवाने की सोचते है और बाल श्रमिक प्रौढ श्रमिक के मुकाबले सस्ते होते है। वास्तव में तो नियोक्ता कम खर्च करके अधिक अर्जित करते है। हमारे देश में बच्चे बहुत ही छोटी उम्र में घरों में कार्य करने लग जाते है। क्योंकि वे बहंत ही सस्ते होते है। मध्यम वर्ग के लोग 8 से 14 वर्ष के लड़के व लड़कियों के घर में नौकर के रूप में रख लेते है जबकि उनकी यह उम्र खेलने व खाने की होती है।
- अनिवार्य शिक्षा की कमी - एक निश्चित उम्र के बच्चों के लिये शिक्षा को अनिवार्य करने में आने वाली बाधाओं का नीचे दिये गये शब्दों में बहुत सही ढ़ग से वर्णन किया गया है। "यदि शिक्षा नि:शुल्क भी हो तो एक कारीगर अपने संरक्षित बच्चें को शिक्षा नही दे सकता। उसके लिये एक अशिक्षित बच्चा तो एक सम्पत्ति है। उसको शिक्षित करने की इच्छा उसके ऊपर दुगनी जिम्मेदारी लाती है।
- यदि बच्चे कार्य नही करता है तो आय की कमी होती है।
- बच्चे की शिक्षा पर होने वाला खर्च चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो कुछ न कुछ होता अवश्य ही है। अधिकतर बच्चों को स्कूल जाने वाली सुविधा उपलब्ध न होने की वजह से वे प्रारम्भिक अवस्था में ही किसी कार्य की तलाश में लग जाते है। परन्तु श्रम के ऊपर राष्ट्रीय कमीशन की रिर्पाट में एक स्थान पर कहा गया है "बाल श्रम सं सम्बन्धित कानूनों को अच्छी तरह से लागू किये जाने व शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् बाल श्रमिकों की संख्या में धीरे-धीरे कमी आई है जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है।

- माता-पिता की अज्ञानता व अशिक्षा - भारत में जनसंख्या का निम्न सामाजिक-आर्थिक वर्ग अशिक्षित है। वे केवल वर्तमान के बारे में सोचते है जो कि उनका एकमात्र उद्देश्य व चिन्ता है। वे कभी भी भविष्य के बारे में नही सोचते है। वे अपने बच्चों के शैक्षिक अवसरों के बारे में भी जानबूझ कर अंजान बने रहते है। बालश्रम बच्चों को सभी शैक्षिक अवसरों से वंचित करता है। यह उनके शरीर को भी प्रभावित करता है। वे अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिये निम्न आय के श्रमिक बनने पर बाध्य कर दिये जाते है।

बाल श्रम समस्या के दुष्परिणाम -

विश्व के अन्य देशों की तरह भारत में भी बाल-श्रमिक पहले खेतों के कामों मे लगे रहते थे और अभी भी लगे रहते है, किन्तु औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रियाए बढने के साथ-साथ विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं एवं व्यवसायों में बाल-श्रमिको को बड़े पैमाने पर नियोजित किया जाने लगा है। बच्चों के औद्योगिक ईकाइयों में नियोजन के साथ शुरू होती है उनके साथ होने वाले विभिन्न प्रकार में अनेक प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ता है। बच्चों के साथ विभिन्न प्रकार के शोषण के स्वरूप और प्रकार हो सकते है। कम मजदूरी पर भुगतान, घर से अलग, मालिक का कार्य-परिसर उत्पादन कार्य परिसर, नियोजन, संगठनात्मक, कार्य का जोखिम, मजदूरी भुगतान पद्धति, कार्य के अतिरिक्त, शारीरिक, मानसिक, यौन मालिको द्वारा बाल-श्रमिकों का विभिन्न प्रकार से शोषण किया जाता है।

बाल-श्रमिकों को अलग से कार्य करने की स्वतन्त्रता कम ही रहती है, जो मॉ-बाप मालिकों से ऋण लिए रहते है उसे साधनें के लिये बच्चों को बिना पारिश्रमिक कार्य करना पड़ता है और साथ की उलाहना भी सहनी पड़ती है। इतना ही नही बाल-श्रमिको को विभिन्न कानूनों के तहत निर्धारित कार्यविधित काफी अधिक कार्य करना पड़ता है।

बाल श्रम समस्या के निम्न गंभीर परिणाम होते है -

बाल-श्रमिकों को अलग से कार्य करने की स्वतन्त्रता कम ही रहती है, जो मॉ-बाप मालिकों से ऋण लिए रहते है उसे साधनें के लिये बच्चों को बिना पारिश्रमिक कार्य करना पड़ता है और साथ की उलाहना भी सहनी पड़ती है। इतना ही नही बाल-श्रमिको को विभिन्न कानूनों के तहत निर्धारित कार्यविधित काफी अधिक कार्य करना पड़ता है। बाल श्रम समस्या के निम्न गंभीर परिणाम होते है -

1. बाल यौन शोषण - यह अत्यन्त हृदय विदारक किन्तु सत्य है कि आज और बालिका श्रमिकों का यौन शोषण मालिकों, ठेकेदारों, एजेन्टों, सहकर्मियो, अपराधियो आदि द्वारा किया जाता है। इसका उद्देश्य यह भी होता है कि बच्चों में इतना डर पैदा कर दिया जाय कि वे शोषण के विरूद्व आवाज तक नही उठा सके। इसके कारण बच्चों का मॉल-एडजस्टमेन्ट हो जाता है। यह सर्वविदित है कि बाल-श्रमिक प्राय: परिवार की आर्थिक कठिनाईयों के कारण काम करने जाते है। ऐसे में उनका सामना यौन शोषण के कारण मानसिक एवं शारीरिक रूप से घोर अत्याचार के शिकार होते है। ऐसे बच्चों का विभिन्न प्रकार से यौन शोषण जैसे गोपनीय अंगो से छेड़-छाड़ अश्लील चित्रण, बलात्कार, वेश्यावृत्ति आदि के रूप में देखा जा सकता है।
2. शारीरक शोषण - बाल-श्रमिकों का शारीरिक शोषण व्यापक स्तर पर किया जाता है। ऐसे बच्चों को 1400 सेल्सियम के तापमान पर भी कार्य करना पड़ता है। खान कालीन उद्योगों में बच्चों का शरीर कठोर एवं जोखिम वाले कार्यो में उपयोग होने के बाद बहुत कमजोर पड जाता है। हीरा-कटाई में बच्चों की नेत्र ज्योति खराब हो जाती है। भारी-भरकम सामान उठाने के कारण उनकी छातियों अन्दर की ओर धंस जाती है और उनकी छाती का जाल पतला हो जाता है। ऐसा भी कई बार होता है कि जब उनके बदन में दर्द होता है दिमाग परेशान होता है उनके दिल रोते है, आत्मा रोती है उस समय भी बिना थकान के मालिक के आदेशों के अनुसार 15 घंटो तक लगातार कार्य करना पड़ता है। सिर पर बोझा ढोने, ज्वलनशील भट्टियों के पास कार्य करने, कोई चीज खीचनें के लिये अन्तिम दम तक जोर लगाने, गन्दे व बदबूदार कार्य को करने के आदि की बजह से बाल-श्रमिकों की अनुमानित आयु की एक तिहाई हो जाती है। बच्चों को फैफड़ों की बीमारियां अस्थमा, ब्रौन्काइटिस और कमर का दर्द होते है। कुछ आग की दुर्घटनाओं में जख्मी हो जाते है कई बीस वर्ष की आयु में अथवा अपंग हो जाते है तो उन्हें मालिकों द्वारा निर्दयता पूर्वक निकाल दिया जाता है।
3. आर्थिक शोषण- हानिकारक और जौखिम वाले कार्य जिनमें बच्चों की जान तक चली जाती है, बच्चों को मिलते है लगभग 500 रुपये तक, वह भी अभिभावकों को। कुछ बच्चों को 15-18 घण्टे कार्य करने के बाद एक-दो समय की झूठा भोजन ही मिलता है। कुछ बच्चों को तो उनके मॉ-बाप बंधुआ मजदूर ही बना देते है। ऐसे बच्चों का बचपन और जवानी अल्प भोजन व उतरन कपड़ो को पहनते हुए गुजर जाती है तथा साथ ही उलाहना मिलता है कि तुम्हारें मॉ-बाप ने अमुक धनराशि बदले में प्राप्त की है। ढाबे, रेस्ट्रॉरेन्ट आदि में काम करने वाले बच्चों अल्प भोजन व बहुत कम धनराशि ही पारिश्रमिक के रूप में ही जाती है।
4. बच्चे का विकास अवरूद्ध हो जाना - हमारे देश में बाल-श्रमिक गरीबी तथा अन्य कारणों से त्रस्त होकर आर्थिक क्रियाओं में संलग्न होते है। आर्थिक उपार्जन में लगे होने के कारण वे अनेक सुविधाओं, शिक्षण मनोरंजन तथा स्वस्थ पोषण आदि से वंचित हो जाते है। जब बालक 6 से 14 वर्ष की आयु में श्रमिक के रूप में कार्य करने के लिये बाध्य होते है तो उसकी उस स्तर अथवा उम्र की आवश्यकताओं की पूर्ति नही हो पाती और वे जीवन में अपना स्वस्थ्य विकास करने में असमर्थ रहता है। बालक का विकास समुचित ढंग से नही हो पाता जिससे वह अपने लिये बोझ तो बनता है और समाज पर भी बोझ स्वरूप बना रहता है।
5. शिक्षा का मूल्य समाप्त हो जाना - हमारे देश में बाल-श्रम को वही अपनाते है जो गरीब माता-पिता के घर जन्म लेते है, वे मुख्यत: कृषि से सम्बन्धिक श्रम, होटल एवं जलपान गृह तथा मरम्मत आदि मे श्रम करते है। इन बाल श्रमिकों का अत्यधिक शोषण होता है और वे परम्परागत रूप से ही जीवन जीने के लिये बाध्य हो जाते है। उनके लिये शिक्षा का महत्व नगण्य हो जाता है, यदि उन्हें समयानुकूल शिक्षा हो जाती तो वे शिक्षा के महत्व को समझकर देश के स्वस्थ्य नागरिक बनकर एवं राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देने में सक्षम हो सकते है।

6. श्रम का अपव्यय - बाल श्रमिक अपनी क्षमता से अधिक कार्य करते है। इससे उनका शरीर कमजोर हो जाता है। अत: भविष्य में देश को उपलब्ध श्रम शक्ति का एक भाग नष्ट हो जाता है।
7. अपराध भावना की वृद्धि - बाल-श्रमिक एक अपूर्ण व्यक्तित्व रखता है जिसे समाज ने केवल दिया है - बाल्यवस्था में श्रम करना, घृणा, उपेक्षा, शोषण एवं निर्धनता आदि। जब बाल श्रमिक इन व्यवहारों एवं श्रम करने से ऊब या थक जाता है तब वह विवश होकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये अपराधीकृत्य साथ ही सामाजिक संगठन को खोखला एवं कमजोर करने में अपनी अहम् भूमिका निभाता है तथा विकास में बाधक सिद्ध होता है।
8. सामाजिक समस्यायें - दुर्भाग्य से हमारे देश में शारीरिक श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाता है इसलिये बाल श्रमिकों को भी हेय समझा जाता है। सहानुभूति तथा समझने का प्रयास नही किया जाता है। जिससे बाल श्रमिक हीन भावना से ग्रस्त हो जाते है या कभी-कभी समाज से बगावत करके असामाजिक कार्यो में लीन हो जाते है। समूह में मालिकों साथियों आदि के द्वारा बच्चों को यौन जैसे अनैतिक कार्यो के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। बच्चों मे अशिक्षा की समस्या उत्पन्न होने लगती है। शिक्षा एवं प्रशिक्षता के अभाव में बच्चा कुशल-श्रमिक व नागरिक नही बन पाता। बच्चा व्यस्कों के मध्य कार्य करने व कुछ धन कमाने के कारण अपने आपको महत्वपूर्ण एवं स्वतन्त्र समझता है इससे उसकी भाषा में उग्रता एवं अभद्रता उत्पन्न हो जाती है। बाल श्रमिक धूमपान, जुआ आदि बुरी आदतें ग्रहण कर लेता है।

निष्कर्ष:-

बाल-श्रम बच्चों के साथ-साथ परिवार समाज सभी को प्रभावित करती है। बाल-श्रमिक के गंभीर दुष्परिणाम निकलते है जो देश के भावी नागरिकों पर पड़ते है। देश का भावी नागरिक ही अनेक रोगों से ग्रस्त हो तो फिर स्वस्थ्य राष्ट्र की कल्पना निरर्थक है। आज भी हमारे देश में 26.71 फीसदी जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है। अत: निर्धन वर्ग अपने बच्चों से कार्य कराने में कोई झिझक महसूस नही करता है और बाल-श्रमिकों के अधिकार या उनकी कार्य दशा उच्च होना समझना अपने को धोखा देना है। बाल श्रमिको का प्रत्येक प्रकार से शोषण किया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

01. योजना: जून 2007, पृ0 सं0- 44-45
02. आहूजा, राम: सामाजिक समस्याए, 2000 रावत पब्लिकेशन्स जयपुर पृ0 सं0- 230
03. चन्द्र, सुरेश: "बाल-श्रम के सामाजिक-आर्थिक आयामों का अध्ययन, पृ0 सं0- 28
04. गुप्ता, एम0 एल0 और शर्मा डी0 डी0: समाजशास्त्र 1999 पृ0 सं0 58
05. कुरूक्षेत्र: मई 2004, पृ0 सं0- 5
06. शर्मा, ओ0 पी0 और शर्मा डी0 के0: उजाले की तलाश में भटकता बाल-श्रम" प्रतियोगिता दर्पण अक्टूबर 2005, पृ0 सं0- 508
07. योजना: नवम्बर 2006, पृ0 सं0- 7
08. शर्मा, सुभाष: भारत में बाल मजदूर" 199 प्रकाशन विभाग नई दिल्ली पृ0 सं0- 22-32
09. शर्मा, सुभाष: वही, पृ0 सं0- 22-32
10. त्रिपाठी, जे0 एन0: "श्रम सामाजिक कल्याण और सुरक्षा" 1959 पृ0 सं0- 19
11. सक्सैना, एस0 पी0: "श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा" 1983-84 रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ पृ0 सं0-8

स्व-सहायता समूह व महिला सशक्तिकरण

डॉ० सोनल सुर्यवंशी

दुर्ग (छ.ग.)

स्व-सहायता समूह एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसकी सहायता से महिलाओं ने समाज में एक नई पहचान बनाई है। इसके साथ ही स्व-सहायता समूह ने समूह की महिलाओं को अन्य महिलाओं के साथ अपने सम्बन्धों को मजबूत करने तथा एक दूसरे की मदद करते हुए अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने मे विशेष योगदान दिया है। अब तक हुए विभिन्न प्रकार के अध्ययन इस बात को इंगित करते है कि समूह बनने के बाद तथा इसकी सदस्य बनने के बाद महिलाओं की सामाजिक पूंजी में वृद्वि हुई है। अत: प्रस्तुत शोध पत्र में स्व-सहायता बनने के बाद महिलाओं के जीवन मे आये बदलाव पर प्रकाश ड़ालने का प्रयास किया गया हैं।

प्रस्तावना-

भारत एक कृषि एवं ग्राम प्रधान देश है जहॉ लगभग 70 प्रतिशत लोग कृषि कार्यो से जुडेघ हैं। कृषि कार्यो के अतिरिक्त इनके पास अन्य कोई आय का साधन नहीं है। कृषि कार्य साल भर में इनको 3-4 महीने ही मिलता है, इसलिए शेष महीनों में पर्याप्त आय जुटाने के लिए इन्हें कई अन्य प्रयत्न करने पड़ते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें अपनी जमीनों और गहनों को गिरवी रखना पड़ता है, जिन्हें बाद में छुड़ाना इनके लिए अत्यधिक कठिन होता है। इस स्थिति में पुरुष वर्ग तो शहरों में मजदूरी करने लगता है किन्तु महिला के लिए यह एक संकट की घड़ी होती है, जिसमें न तो उसे खेतों पर काम मिलता है और न ही आजीविका चलाने के अन्य साधन।

इस दिशा में स्व-सहायता समूह महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वास्तव में स्व-सहायता समूह गॉव के माहिलाओं का एक ऐसा संगठन है जो अपनी इच्छा से संगठित होकर, नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी बचत कर सामूहिक निधि में जमा करते हैं तथा जिसका उपयोग सदस्यों की आकस्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है। इस प्रकार समूह के सदस्य हफ्ते अथवा महीने में एक बार बैठक कर विभिन्न विषयों पर चर्चा कर, एक दूसरे की समस्याओं का समाधान करते हैं, जिससे ये महिलायें गरीबी, बेरोजगारी तथा निरक्षरता के चक्रव्यूह से निकलकर सशक्तिकरण की दिशा में कदम बढ़ा रही हैं और न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक एवं राजनैतिक आयामों पर भी सशक्तिकरण की ओर अग्रसर हैं।

इस प्रकार प्रत्येक समूह अपने कार्यो को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ नियम बनाते हैं, जैसे-समूह की नियमित बैठक होना तथा प्रत्येक सदस्य का बैठक में उपस्थित होना। बैठक में अनुपस्थित होने अथवा समय से ऋण न जमा करने पर अनुपस्थित सदस्यों द्वारा आर्थिक दण्ड के रूप में जमा करना आदि। अत: नियमों के आधार पर समूह का सफलतापूर्वक संचालन किया जाता है और प्रत्येक सदस्य पर मासिक बचत के लिए सामूहिक दबाव के माध्यम से बचत को प्रोत्साहित किया जाता है, इसके अतिरिक्त अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये समूह किसी सरकारी अथवा गैर सरकारी संगठन से जुड़कर अपने व्यवसायिक क्रियाओं को आगे बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहते हैं। एक अन्य अध्ययन जिसमें पाया गया कि महिला स्वयं सहायता समूह को सहबैंक सम्बद्धता कार्यक्रम के तहत तीन लाख तक के ऋणों पर ब्याज सहायता देकर इन्हें सात प्रतिशत की वार्षिक दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है।

स्व-सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं के नेटवर्क में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। अभी तक जो महिलायें घर के कामों तक सीमित थीं, वो आज बाहर निकलकर सामूहिक स्तर पर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में संलग्न हैं। दुर्ग जिला के एक ग्राम पतोरा- जहॉ कई महिला स्वयं सहायता समूह में सक्रिय हैं, सामूहिक स्तर पर गोबर के राखी, कम्पोस्ट खाद, पापड़, अचार, मुरब्बा आदि का निर्माण कर बाजार में बेंचकर अतिरिक्त आय के सृजन का प्रयास किया और परिवार की आय में वृद्धि की और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाया, जो महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

इस प्रकार स्व-सहायता समूहों के निष्पादन से सम्बन्धित किये गये विभिन्न सर्वेक्षणों में यह तथ्य उभरकार सामने आया है कि स्व-सहायता समूहों को ऋण प्रदान करने से ग्रामीण महिलाओं की भौतिक गतिशीलता, निर्णय के अधिकारों में वृद्धि, सौदा शक्ति तथा विभिन्न स्तरों पर समस्या समाधान करने की शक्ति में वृद्धि होने के कारण ग्रामीण विकास प्रक्रिया में उनका योगदान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इसी को देखते हुए केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा इनके विकास के निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। सरकार के इस प्रयास की सार्थकता भी सामने आ रही है कि इसी गॉव की महिलायें घर के बाहर निकलकर बैंक, ब्लाक, हास्पिटल तथा बाजार के कार्यो को स्वयं कर रही हैं और विभिन्न व्यवसायों को कुशलता पूर्वक कर यह सिद्ध कर चुकी हैं कि मात्र वे घर के कायों में ही कुशल नहीं, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी विभिन्न आर्थिक क्रियाओं को करने में भी निपुण हैं। इस प्रकार महिलाओं द्वारा महिला सशक्तिकरण का यह प्रयास सराहनीय है।

स्व-सहायता समूह का उद्देश्य-

स्व-सहायता समूह का उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों, मुख्य रूप से महिलाओं को ऋण उपलब्ध कराना है तथा इसके साथ ही साथ बैंकिंग गतिविधियों के साथ जोड़कर बचत तथा महिलाओं में आपसी सहयोग को बढ़ावा देना है। इसके अतिरिक्त इसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं में समानता तथा सम्बद्धता को विकसित करना, आत्म विश्वास बढ़ाना, आत्म निर्भरता बढ़ाना तथा उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना है, जिससे वे व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त होने के साथ-साथ सामूहिक स्तर पर भी सशक्त हो सकें और अपने अधिकारों के लिए सामने आ सकें।

स्व-सहायता का संचालन-

स्व-सहायता समूह के सुचारु रूप से संचालन के लिए प्रत्येक समूह अपने सदस्यों में से ही तीन प्रतिनिधि-अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष तथा सचिव की नियुक्ति करता है, ताकि समूह क्रियाविधि, सुचारु रूप से संचालित हो सके। पदाधिकारियों को चुनने का आधार मुख्यत: शिक्षा तथा उनका आत्मविश्वास होता है, ताकि समूह में आय-व्यय का काम ये स्वयं कर सकें।

प्राय: सुविधादाता द्वारा कभी-कभी इनको समूह उचित संचालन के लिए प्रशिक्षण भी दिया जाता है। प्रत्येक महीने समूह की नियमित बैठक आयोजित होती है, जो कि किसी सार्वजनिक स्थान अथवा प्रत्येक सदस्य के घर बारी-बारी से होती है। समूह के प्रशिक्षण में प्रत्येक सदस्य का उपस्थित होना अनिवार्य होता है, अथवा अनुपस्थित होने की पूर्व सूचना सदस्य द्वारा समूह में उपलब्ध करायी जाती है, जिससे समूह के कार्यों का बेहतर नियोजन हो सके। कभी-कभी समूह के सदस्यों द्वारा अपने पड़ोसी से समूह में बचत का पैसा भेज दिया जाता है, जो कि यह इंगित करता है। समूह बनने के बाद महिलाओं का आपसी सामंजस्य व संबंध भी मजबूत हुआ है। प्रशिक्षण के दौरान प्राय: महिलाओं द्वारा आपस में विभिन्न विषयों पर चर्चा होती है, जैस- ऋण के लेन-देन, बचत, नये सदस्यों के शामिल होने की प्रक्रिया, ग्रामीण क्षेत्र की समस्या तथा समाधान, पर्यावरणीय समस्या, स्वास्थ्य समस्या, बच्चों की शिक्षा, राजनैतिक भागेदारी, ऋण का उपयोग तथा बचत के तरीके आदि। समूह के सदस्य इस बात के लिए एक दूसरे को प्रोत्साहित भी करते हैं कि वे किस प्रकार छोटी-छोटी बचत कर एक बड़ी राशि समूह से प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार यह पाया गया कि समूह नियमित मासिक बैठक के अतिरिक्त समूह कभी-कभी आकस्मिक बैठक भी करता है, जिसका प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को त्वरित ऋण उपलब्ध कराना है, जिसके लिए ये अपने बचत के पैसे से आपस में लेन-देन करती हैं। अतिरिक्त बचे हुए पैसे को समूह कार्यवाही रजिस्टर पर अंकित कर, नजदीक के किसी बैंक, जहॉ समूह का सामूहिक खाता होता है जमा किया जाता है और बैंक इन्हें इनकी बचत पर 02 प्रतिशत ब्याज भी देता है। इसके अतिरिक्त समूह की महिलाओं को किसी व्यवसाय को करने के लिए बैंक द्वारा सब्सिडी उपलब्ध कराई जाती है, जिस पर कोई ब्याज नहीं लिया जाता है। इस प्रकार महिलायें समूह में आपस में लेन-देन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, जो कि न केवल उनको आत्मनिर्भर बनाता है बल्कि साहूकारों के चंगुल से भी बचाता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि स्व-सहायता समूह की क्रियाओं में भाग लेकर महिलाएं विभिन्न कार्यों से जुड़कर विकास के नये आयाम से जुड़ गयी हैं तथा समूह के स्तर पर नेतृत्व करने के साथ-साथ परिवार एवं समुदाय के स्तर पर नेतृत्व करने की क्षमता भी उभरी है। महिला सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य ही यह है कि उनको अपने अधिकारों के प्रति सशक्त किया जाय और परिवार में निर्णय के स्तर पर ज्यादा से ज्यादा भागीदारी बढ़ाई जाये।

इस प्रकार ग्रमीण महिलाओं को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जिसके अन्तर्गत स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके तहत अब तक हजारों स्व-सहायता समूहों का गठन किया जा चुका है। विभिन्न तथ्यों से स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं, कि इन्हीं समूहों के माध्यम से महिलाओं पर किये गये घरेलू हिंसा तथा शोषण पर प्रभावशाली ढंग से रोक लगायी गई है, जिससे समाज में महिलाओं की स्थिति में कुछ हद तक सुधार भी आया है।

अत: स्व-सहायता समूह ने महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़कर उनके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सशक्तिकरण की दिशा की ओर उन्मुख किया है, जिससे ग्रामीण महिलाएँ अपनी एक विशेष पहचान तो बना ही रही हैं, साथ ही साथ गॉव के विकास में अहम भूमिका भी निभा रही हैं, जो कि सराहनीय है।

सन्दर्भ-

1. गुप्ता एवं एस0, स्वयं सहायता समूह के द्वारा ग्रामीण भारत का विकास, कुरुक्षेत्र,जुलाई-2013, पेज, 23-26
2. बुर्रा एन, देशमुख रानाडिव, जॉय एण्ड मुर्थी के0 माइक्रों क्रेडिट पावर्टी एण्ड इम्पावरमेन्ट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली-2005 पेज, 38
3. एम0 श्रीवास्तव, मुहम्मद युनुस का योगदान, योजना, 2008, पेज-20
4. यादव चन्द्रभान: महिलाओं की सफलता का सशक्त माध्यम स्वयं सहायता समूह, कुरुक्षेत्र-जुलाई, 2013 पेज, 36
5. पार्थसारथी एस0 के0 अवेयरनेस, ऐसेस, एजेन्सी: इक्सपीरियंसेस आफ स्वयं शिक्षण प्रयोग इन माइक्रो फाइनेन्स एण्ड वूमेन इम्पावरमेन्ट-2005 पेज, 25
6. एन0डी0 जार्ज, भारत में लघुवित्त, मुद्दे और रणनीतियॉ, योजना, जनवरी-2008, पेज, 17
7. लक्ष्मी रामचन्द्र एण्ड पार्टी: सेल्फ हेल्प ग्रुप इन बेलारी: माइक्रो फाइनेन्स एण्ड वूमेन इम्पावरमेन्ट, द जनरल आफ फैमिली वेलफेयर, वोल्यूम-55, नं0-2-2009
8. शर्मा, डी0, "शांति मैत्री मिशन संस्थान, ग्रामीण विकास का पुरोधा, कुरुक्षेत्र,जुलाई-2013 पेज, 58

योग शिक्षा दर्शन के सन्दर्भ में स्वामी रामदेव के विचारों का अध्ययन

अखिलेश चंद्र यादव

शोध छात्र, शिक्षा विभाग, राजा हरपाल सिंह पी० जी० कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर (वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)

डॉ० विभा सिंह

मार्गदर्शक, राजा हरपाल सिंह पी० जी० कॉलेज, सिंगरामऊ, जौनपुर

सारांश:

शोधकर्ता द्वारा चयनित शोध विषय 'योग शिक्षा दर्शन के सन्दर्भ में स्वामी रामदेव के विचारों का अध्ययन' है। योग को व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नत्ति के लिये अपनाया गया है। यह वह उच्चतम अवस्था है, जिसमें पांचों ज्ञानेन्द्रियां, मन की वृत्तियां और प्रज्ञा स्थितप्रज्ञ अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। महर्षि पतंजलि को योगदर्शन का जनक माना जाता है। भारतीय भूमि की विश्व को एक अमूल्य धरोहर के रूप में देन है- योग शिक्षा। प्राचीन भारतीय परंपरा में हमें योग शिक्षा दर्शन के जो भी चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं वे सभी कहीं न कहीं एक विशेष वर्ग तक ही सीमित दिखाई पड़ते हैं परन्तु आज हम देखते हैं कि शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो की योग शिक्षा दर्शन से परिचित न हो। योग के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के आसन, प्राणायाम, ध्यान, बन्ध तथा मुद्राएं इत्यादि ऐसी विधियाँ है जो शरीर और मन को स्वस्थ निरोगी, सुन्दर, नैतिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक इत्यादि का समन्वित विकास करने में सकारात्मक सिद्ध हुई है। 'स्वामी रामदेव से पहले की योग शिक्षा दर्शन' व 'स्वामी रामदेव के समय की योग शिक्षा दर्शन' जैसे संप्रत्ययों का जब हम विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि स्वामी रामदेव से पहले योग शिक्षा केवल आध्यात्मिक विषय के रूप में ही केवल कुछ गिने चुने योग आश्रमों एवं गुरुकुलों तक ही सीमित थी। स्वामी रामदेव जी ने एक मिशन मोड के रूप में योग शिक्षा दर्शन को आध्यात्मिक से व्यावहारिक रूप में बदलने का प्रयास किया जो योग से होते हुए वर्तमान योगा के रूप में हमारे सामने अवतरित हुआ। इस प्रकार स्वामी रामदेव जी ने योग शिक्षा दर्शन को उसके व्यावहारिक रूप में जन जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। आज हम देखते हैं कि शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो की योग शिक्षा दर्शन से परिचित न हो।

मुख्य शव्दावली: स्वामी रामदेव, योग, योग शिक्षा दर्शन,।

प्रस्तावना:

योग का शाब्दिक अर्थ है मिलना, जुड़ना आदि है। जिस विधि से साधक अपने प्रकृति जन्म विकारों के त्याग कर अपनी आत्मा के साथ जुड़ता है वही योग है। योग की अनेक विधियाँ है कोई किसी भी विधि का अवलम्बन करें अन्तिम परिणाम वही होगा। विधियों की भिन्नता के आधार पर योग के अनेक नाम हो गये हैं। जैसे राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, सन्यास योग, हठयोग, बुद्धियोग, ध्यान योग, क्रियायोग आदि किन्तु सबका एक ही ध्येय है। उस पुरूष (आत्मा) के साथ अभेद सम्बन्ध स्थापित करना। महर्षि पतंजलि का योग दर्शन इन सबसे श्रेष्ठ एवं ज्ञानोपलब्धि का विधिवत मार्ग बताता है जो शरीर, इन्द्रियों तथा मन को पूर्ण अनुशासित करके चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है। पतंजलि चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं। क्योंकि इनके पूर्ण निरोध से आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है। इस निरोध के लिए वे अष्टांग योग का मार्ग बताते हैं। जीवात्मा और परमात्मा के सम्मिलन के उपयुक्त और उत्कृष्ट मार्ग को योग कहते हैं, या यों कहें कि चित्त वृत्तियों को नियंत्रित करके एकाग्र करने के अभ्यास का नाम योग है। योग दर्शन में शिक्षा के संदर्भ में स्वतन्त्र रूप से कोई विचार नहीं किया गया है परन्तु उसकी तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा से शिक्षा सम्बन्धी अनेक तथ्यों की जानकारी होती है। मनुष्य के अन्त:करण (मन, अहंकार ओर बुद्धि) का वैज्ञानिक विश्लेषण योग दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है।

दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'दृश' से हुई है, जिसका अर्थ है दर्शन जिससे देखा जाए अर्थात जिससे देखा जाए वह दर्शन है। दर्शनशास्त्र में सभी तथ्यों के संपूर्ण गुप्त सत्य को सामान्य आँखों से नहीं बल्कि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार से इस शब्द का उपयोग मानव अपने ज्ञान के विकास में सरल से सरल और कठिन से कठिन, भैतिक तथा भैतिकता से परे सभी अर्थो में करता हैं। एक प्रकार से मानव की सभी ज्ञानन्द्रियों से हट के अनुभूतियों तथा अन्त:प्रज्ञा से ज्ञान प्राप्त होता है उसे दर्शन का नाम दिया जाता है।

योग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'युज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है युक्त करना, जोड़ना या मिलाना। योग शब्द का व्यवहार अनेक अर्थों में किया जाता है। साधारण रूप में इसका अर्थ है-क्रियाविधि, कभी-कभी योग का व्यवहार संयोजित करने के लिए किया जाता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार 'योग'

को समाधि कहते हैं। समाधि शुद्ध भावना के साथ आत्मा का और परमात्मा का एक मिलन है। अत: आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना अथवा किसी जीव का ईश्वर में मिल जाना योग कहलाता है। इस मिलन के लिए मानव को कामना, वासना, आसक्ति आदि सभी प्रकार के संस्कारों को छोड़ देना पड़ता है। ऐसा करने के बाद ही आत्मा को शुद्ध रूप से पहचाना जा सकता है। इसके दो रूप होते हैं:-(अ) पहले रूप में साधक अपने अस्तित्व को पूर्ण रूप से ईश्वर अथवा ब्रह्म में खो देता है। अपने को बिल्कुल ही खो देना उसी तरह से होता है जिस तरह एक नदी समुद्र में मिलकर केवल समुद्र ही बन जाती है। (ब) दूसरे प्रकार का श्योगश वह है जो ईश्वर और जीवन के बीच होता है। इसमें साधक पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व को साध्य अथवा आराध्य देव (ईश्वर) के भीतर बिल्कुल ही नहीं खो देता बल्कि कुछ अंश में वह अपने अस्तित्व को भी बचाये रखता है।

योग दर्शन में योग शब्द का अर्थ एक अलग और विशेष अर्थ में लगाया जाता हे। वहाँ पर योग को एक साधना के रूप में बताया जाता है। इस साधना में अपनी चित्तवृत्ति का निरोध कर आत्म-संयम के द्वारा चित्त को वृत्ति-शून्य कर देना ही श्योगश है। चित्त वृत्तियों और वासनाओं के निरोध के लिए कुछ उपाय भी हैं। उनके लिए योग अत्यन्त आवश्यक है। अत: दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शरीर और चित्त की क्रिया अथवा अभ्यास श्योगश है, जिसके करने से एक विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। पतंजलि कृत योगसूत्र में 'योग' का अर्थ श्जोड़नाश कभी नहीं लगाया जाता है, जिससे किसी एकत्व का निर्माण होगा। पतंजलि के अनुसार 'योग' का अर्थ केवल मात्र श्प्रयत्नश है। योग के शब्दों में योग का अर्थ पुरूष तथा प्रकृति के बीच एक वियोग है। यह वियोग एक प्रकार की विशेष खोज है, जिसके द्वारा 'अतीन्द्रिय अहम्' की पहचान होती है। अत: योग का अर्थ प्रयत्न और कठिन परिश्रम के साथ भी सम्बन्धित किया जाता है।

योग शब्द का प्रयोग इन्द्रियों तथा मन के निग्रह के लिए भी किया जाता है। उपनिषदों तथा गीता में कहा गया है कि सांसारिक दु:ख तथा पाप से छुटकारा पाने के लिए हमें आध्यात्मिक एकत्व प्राप्त करना चाहिए। इस एकत्व में दो की कोई भावना नहीं रह पाती। दो का अन्तिम रूप 'एक' हो जाता है। इस वास्तविकता की चेतना ही 'योग' है।

योग दर्शन के गुरू पतंजलि मुनि के अनुसार मानवीय प्रकृति के अलग-अलग तत्वों के नियंत्रण पूर्णता अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिए नियम के साथ किये जाने वाला अभ्यास अथवा विधिपूर्ण प्रयत्न ही 'योग' है। पतंजलि का कहना है कि भौतिक शरीर मनुष्य की वर्तमान में योग का अर्थ बहुत ही संकुचित सा कर दिया जाने लगा है तथा अधिकांष व्यक्ति योग का अर्थ आसन, प्राणायाम, तथा ध्यान ही समझते है जो सरासर अनुचित एवं तर्कहीन है। यद्यपि यह सत्य है कि आसन करने से शरीर बलिष्ठ बनता है तथा उसमें एक नई शक्ति का संचार होता है किन्तु योग का लक्ष्य तो इससे कही ऊपर है। योग का लक्ष्य तो यह है कि शरीर को स्वस्थ रखकर आत्म का या परम तत्व की प्राप्ति की जाये। योग के सम्बन्ध में एक और गलत भ्रम यह है कि कुछ लोग इसे शरीर को कष्ट देने वाली क्रिया ही मानते है किन्तु वास्तव में ऐसा नही है। योग एक ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर उसे आत्मिक संतुष्टि प्रदान करती है। इसके अलावा कुछ लोग योग को ध्यान व प्राणायाम तक ही सीमित रखते है। ऐसे लोगों के अनुसार ध्यान लगाकर कुछ सिद्धियां प्राप्त करना ही योग है। प्राणायाम भी हमें मन के परे जाने के लिये विवश करता हैं और ध्यान का लक्ष्य भी यही है कि हमारी चेतना शरीर और मन के पार हो जाए। यदि हम शरीर और मन में ही अटके रहे तो योग के वास्तविक लक्ष्य से हम भटक जायेगें। किन्तु योग हमारे सम्पूर्ण दु:खों की परम औशधि है। अत: यदि हम योग को उसके कारक अर्थो में ग्रहण करेगें, तभी हम योग के साथ व स्वयं के साथ न्याय कर सकेंगे।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा योग के विषय में दी गई परिभाषाओं से हम योग के वास्तविक अर्थ को समझ सकते है, ये परिभाषाएं निम्नलिखित है-

सम्पूर्णानन्द के अनुसार- 'आत्म-संस्कार का एक मात्र उपाय योग है।'

योगशास्त्र के अनुसार- 'सभी चिन्ताओं को परित्याग कर निश्चित हो जाना ही योग है।'

शोध साहित्य की समीक्षा:

1. शर्मा, डा० विदुषी (2018) ने पतंजलि योग शास्त्र: उद्भव, विकास और वर्तमान संदर्भ में इसकी उपयोगिता शीर्षक से प्रकाशित अपने शोध पत्र में बताया कि योग नन-शरीर-आत्मा तीनों के लिए आवश्यकता सत्य है। दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक, ज्ञान प्रदान करने का आधार है। वैश्विक शांति का द्योतक योग ही हो सकता है योग के द्वारा संभव हो सकता है। योग के ही माध्यम से हम अपने मूल्य, अपनी संस्कृति, अपने संस्कार, सत्य सनातन धर्म, अपनी परंपराएँ, इत्यादि को संरक्षित और सुरक्षित रख सकते हैं।
2. आचार्य बालकृष्ण (2020) ने इंटरनेशनल जर्नल बायोमेडिसिन फार्मोकोथेरेपी में प्रकाशित अपने शोधपत्र में अध्ययन के फलस्वरूप पाया कि आयुर्वेदिक दवाओं से न सिर्फ कोरोना पायरस का शत प्रतिशत इलाज संभव है, बल्कि इसके संक्रमण से बचने को इन दवाओं का बतौर वैक्सीन भी इस्तेमाल किया जा सकता है। बालकृष्ण के अनुसार अश्वगंधा, गिलोय, तुलसी और स्वासारि रस का निश्चित अनुपात में सेवन करने से कोरोना सक्रागत व्यक्ति को पूरा स्वस्थ किया जा सकता है।
3. पीर, डा० वरुण (12 जनवरी 2020) में जनसत्ता "ई दिल्ली से प्रकाशित समाचार पत्र के" योग दर्शन: योग के प्रभाव का लाभ उठाए भारत शीर्षक के अन्तर्गत बताया कि आज योग चिकित्सा पद्धति के रूप में भी विश्व के कई देशों में प्रचलित हो रही है। शरीर से सम्बन्धित अनेक प्रकार के रोग जैसे स्लिप डिस्का सर्वाइकल, शरीर के जोड़ों का दर्द, शरीर की अकडन-जकठन, हृदय से सम्बन्धित रोग, रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, अस्थमा, तनाव, अवसाद अनेक प्रकार के शारीरिक मानसिक रोगों में योग चिकित्सा अत्यंत लाभकारी है।
4. मुरारी, डा० कृष्ण (स्वामी जी) (2020) ने "नवोदय टाइम्स" नई दिल्ली से प्रकाशित समाचार पत्र के माध्यम से बताया कि कोरोना महामारी के इलाज के लिए भले ही अब तक कोई प्रभावकारी दवा अथया वैक्सीन नहीं बनी है, लेकिन परंपरागत आयुर्वेदिक दवाइयों एवं योग में इससे लड़ने की क्षमता है। अष्टांग योग के जानकार डा० कृष्ण मुरारी (स्वामी जी) का दावा है कि यम (सामाजिक आत्मसंयम) और नियम (व्यक्तिगत आत्मसंयम) न केवल कोरोना से बचाव के लिए रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है, बल्कि बीमार होने की स्थिति में ठीक करने में भी मददगार है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व :-

आज हमारे देश में, वर्तमान शिक्षा प्रणाली से प्रत्येक व्यक्ति आहत प्रतीत होता है। क्योंकि शिक्षा से विद्यार्थियों में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का विकास अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो पा रहा है। विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में विद्यालय की विशेष भूमिका होती है। शिक्षा में सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब विद्यार्थियों के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाये। इसके लिये आज विद्यालयों में योग को एक विषय के रूप सम्मिलित करने की महती आवश्यकता है। जैसा कि विदित है कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है' तथा 'पहला सुख निरोगी काया व स्वास्थ्य ही जीवन की सबसे बड़ी पूंजी है। ये सभी कहावतें स्वास्थ्य के महत्व को स्पष्ट करती है। वर्तमान समय में योग ही एक ऐसा (माध्यम) है, जो मनुष्य को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रख सकता है। आज शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। योग शिक्षा इस उद्देश्य प्रासंगिकता सिद्ध करना चाहता है।

अत: शोधार्थी का विचार है कि समकालीन जीवन शैली को पूर्णत्व की ओर अग्रसर करने के लिए हमें प्राचीन योग दर्शन से शिक्षा लेनी चाहिए। इस प्रकार समस्या का औचित्य सुस्पष्ट हो जाता है। योग शिक्षा की आज छात्र जीवन को सर्वाधिक आवश्यकता है चाहे वह शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र हो क्योंकि आज विश्व में समस्या अधिक गहरी और जटिल है। छात्रों का असंतुलन किसी एक विधा से संतुलित होना मुश्किल हो रहा है। योग शिक्षा दर्शन की सम्पूर्णता ही मानव को विकास, संतोष, शांति की सही परिभाषा दे सकती है।

समस्या कथन :-"योग शिक्षा दर्शन के सन्दर्भ में स्वामी रामदेव के विचारों का अध्ययन" है।

अध्ययन में प्रयुक्त पदों का परिभाषीकरण :-

योग शिक्षा दर्शन:- योग दर्शन भारतीय षटदर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त) में से एक है। इन दर्शनों पर ही मूल भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता आधारित है। योग भी अन्य वेदांगों की भाँति अत्यन्त विस्तृत, तार्किक, सारगर्भित एवं उत्कृष्ट चेतना का निचोड़ है। योग एक जीवन पद्धति है जिसका सम्बन्ध किसी धर्म सम्प्रदाय एवं मत से न होकर सम्पूर्ण मानवता से है। मनुष्य के कष्टों का निवारण एवं कल्याण केवल और केवल योग दर्शन से ही सम्भव है।

स्वामी रामदेव:- आज के वर्तमान युग में पतंजलि के अष्टांग योग को आम जनमानस तक पहुँचाने का श्रेय स्वामी रामदेव को जाता है। स्वामी रामदेव के अनुसार योग जीवन जीने की एक विधा है, योग एक वो परिकल्प है जिससे हम अपने अस्तित्व अपनी चेतना से गहरे जुड़ते हैं। योग प्रकृति से जुड़ी हुई वो सुन्दरतम विधा है जिससे व्यक्ति स्वस्थ रह सकता है स्वामी रामदेव पतंजलि पीठ हरिद्वार के संस्थापक है।

शोध के उद्देश्य :-

प्रस्तावित शोध अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्य है।

1. योग शिक्षा दर्शन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन
2. स्वामी रामदेव के जीवनवृत्त एवं जीवन दर्शन का अध्ययन
3. स्वामी रामदेव के योग शिक्षा दर्शन का अध्ययन

अनुसंधान अभिकल्प :-

प्रस्तावित शोध पत्र में उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक एवं दार्शनिक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तावित शोध पत्र में सूचना के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

स्वामी रामदेव के जीवनवृत्त एवं जीवन दर्शन:

योग ऋषि स्वामी रामदेव जी का जन्म हरियाणा के एक गांव में श्रीमती गुलाब देवी और श्री राम निवास के घर हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के ही एक स्कूल में हुई। 14 वर्ष की आयु में उन्हें कलवा (जींद, हरियाणा के पास) के गुरुकुल में भर्ती कराया गया, जहाँ उन्होंने संस्कृत और योग का अध्ययन किया। उन्होंने आचार्य श्री बलदेव जी के मार्गदर्शन में संस्कृत व्याकरण, योग, दर्शन, वेद और उपनिषद में विशेषज्ञता के साथ स्नातकोत्तर (आचार्य) की उपाधि प्राप्त की। बाद में स्वामी जी महर्षि दयानंद के जीवन और लेखन से प्रेरित हुए। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का गहन अध्ययन किया। योग के प्रतिपादक के रूप में महर्षि पतंजलि के आकर्षण के साथ-साथ स्वामी जी संस्कृत व्याकरण और आयुर्वेद से भी प्रभावित रहे।

स्वामी जी ने पतंजलि के योग को रहस्य से मुक्त करने और लोकप्रिय बनाने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली, जबकि आचार्य जी ने आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की प्रभावकारिता में लोगों का विश्वास बहाल करने के कार्य में खुद को समर्पित कर दिया। स्वामी जी का मुख्य ध्यान भारत के साथ-साथ दुनिया भर के लोगों को योग और आयुर्वेद को अपनी जीवनशैली के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित करना है। बीमारियों और विकारों के इलाज के लिए उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक, गैर-रूढ़िवादी और गैर-सांप्रदायिक है। स्वामी जी ने दो लोकप्रिय हिंदी पुस्तकों में योग के लाभों के बारे में बताया है:

1. योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य।
2. प्राणायाम रहस्य।

देश भर से हजारों प्रतिभागियों की भागीदारी वाले उनके योग शिविरों में, वह आठ प्राणायाम करने पर जोर देते हैं ।

1. भस्त्रिका 2. कपालभाति 3. बाह्य/अग्निसार 4. उज्जायी 5. अनुलोमाविलोमा 6. भ्रामरी 7. उद्गीथ 8. प्रणव

वे उक्ष्मा (हल्के) व्यायाम, विभिन्न बीमारियों के लिए विशिष्ट आसन, साथ ही सरल घरेलू उपचार और आयुर्वेदिक दवाओं पर भी जोर देते हैं। थोड़े से समय में ही योग और आयुर्वेदिक चिकित्सा के परिणाम उत्साहजनक और आश्चर्यजनक रहे हैं। लोगों ने बड़े पैमाने पर योग को अपनाया है; वे पतंजलि योगपीठ द्वारा प्रशिक्षित और प्रमाणित योग शिक्षकों के मार्गदर्शन में इसे कर रहे हैं। वे आस्था, जी टीवी, स्टार और सहारा जैसे भारतीय टीवी चौनलों पर इसे देख रहे हैं और उसका अनुसरण कर रहे हैं। वे पतंजलि योगपीठ द्वारा तैयार ऑडियो-वीडियो सामग्री की मदद से भी योग सीख रहे हैं। स्वामी जी ने अपनी पुस्तक योगदर्शन में पतंजलि के योगसूत्रों को सरल हिंदी में समझाया है।

स्वामी रामदेव का योग शिक्षा दर्शनः

स्वामी रामदेव केवल एक व्यक्तित्व नहीं, सिर्फ एक चरित्र नहीं, मात्र एक दिव्यात्मा नहीं, बल्कि ऐसा जान पड़ता है, मानों प्रकृति ने अपने रक्षार्थ अपने गर्भ से एक ऐसे ब्रह्ममशास्त्र का अवतरण किया है, जो वर्तमान युग की सारी नकारात्मक, संभावनाओं को न केवल शिव के विषपान की तरह निगल जाने को तैयार है, बल्कि अमृत सरीखे स्वर्णिम युग का बीजारोपण भी कर रहा है। प्रकृति ने इसके लिए स्थान भी कहां चुना है-वहीं भारत की पुण्य भूमि, जिसने युगों-युगों से सम्पूर्ण जगत को ब्रह्माण्ड के एकमात्र जीवित नक्षत्र पृथ्वी की जीवन्तता का अर्थ समझाया है। जिसने प्राणवान और विचारवान होने का उद्देष्य हमें बताया है। विष्णु और ब्रह्माण्ड के सारे लौकिक और अलौकिक गतिविधियों को समझने और उसके साथ एकाकार और एकात्म हो जाने का मार्ग हमें दिखाया है। दरअसल देखा जाए तो भारत वह देश है, जिसने समृद्धि और संस्कारों की पराकाष्ठा भी देखी है और पिछले सात सौ वर्षों के आर्थिक दोहन और संस्कारों में जहरों के बीजारोपण के बावजूद अपनी मूल आत्मा को कलुशित होने से बचाए रखा है। संभवतः एकमात्र भारत की ही भूमि इतनी उर्वरक थी, जहाँ परम श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी जैसे अस्तित्व के प्रकट होने की संभावना थी। पिछले एक दषक से धीरे-धीरे स्वामी रामदेव दुनिया के सामने आते हैं और सबसे पहले मनुष्य को स्वस्थ रहने का मार्ग बताते हैं। स्वस्थ रहने, दीर्घायु होने, दुनिया के ऐश्वर्य को भोगने की अभिलाशा ने पूरी मानव जाति को स्वामी रामदेव जी के आस-पास खड़ा कर दिया। क्योंकि स्वामी जी के बताए मार्ग को अपना कर लोगों ने एक ऐसे स्वस्थ जीवन का स्वाद चखा, जिसे उन्होंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं चखा था। कल्पना से परे का आनन्द मिला। बात जंगल में आग की तरह फैल गई और दुनिया स्वामी जी के आस-पास सिमट गई। बस फिर क्या था, यही तो चाहते थे स्वामी जी। एक दशक के अथक परिश्रम का परिणाम था कि क्या राजा क्या फकीर, सबके सब हो गए स्वामी रामदेव जी के मुरीदहै, अब तो कान पकड़कर भी, कड़वे शब्दों का घोल पिलाकर भी पूरी दुनिया को फूंक मरवाया जा सकता है। सही रास्ते पर लाया जा सकता है। विशेष कर, भारत को जो स्वयं स्वामी रामदेव जी की जन्म भूमि है, विश्वगुरू बनाया जा सकता है और स्वामी जी ने यही किया, स्वामीजी यही कर रहे हैं। एक-एक कर वे सारे आवरण खोल रहे हैं, जिसने सदियों से सत्य को दबा रखा है। स्वामी जी ने अपना स्वरूप बदल लिया है। योग ऋषि से युगपुरूष का रूप धारण कर लिया है। अब तो युग बदलेगा। चन्द स्वार्थी तत्वों, हिन्सक अपराधी, जिसने अन्धकार की चादर फैला रखी है हमारे देश पर और उनके आकाओं ने सारे विश्व पर। अब किसी की खैर नहीं है। बस देर है, अन्धेर नहीं है। सच तो यह है कि ऐसे लोग जो पूरे विश्व और विशेषकर हमारे देश की बर्बादी का कारण हैं, उन्हें खुद अपने बर्बाद होने की खबर नहीं है। उन्हें स्वामी रामदेव के सुनामी गति का अनुमान नहीं। उन्हें लगता है, एक अदना फकीर उनका क्या बिगाड़ लेगा। उन्हें अपनी व्यवस्था और ताकत पर इतना भरोसा सत्ता सौंप दी गई। इसीलिए स्वामी जी कहते हैं-गोरे अंग्रेज तो चले गए, उनकी जगह काले अंग्रेजों ने सत्ता संभाल ली। जब तक इस बुनियादी भूल पर चोट नहीं होगी, देश को किसी भी समस्या का स्थायी हल नहीं होगा। इस बात को अच्छी तरह समझते हुए स्वामी जी ने इसी वर्श 'भारत स्वाभिमान (ट्रस्ट)' की स्थापना की। अब जन-जन को जगाना है, एक नया भारत बनाना है। समूचे विश्व को संवारना है। स्वामी रामदेव जी के तरकश से निकला भारत स्वाभिमान का यह तीर अब पूरे भारत का और आगे चलकर पूरे संसार का एक नया इतिहास लिखने को निकल पड़ा है। एक संत का सतत् प्रयास, एक संत का पूर्ण विश्वास, पूरी तैयारी के साथ योजनाबद्ध नीति और सभी संकुचित मानसिकता से ऊपर उठकर देश की सारी सात्विक शक्तियों को एकजुट कर, देश के सोये स्वाभिमान को जगाकर एक-एक कदम का निर्धारण अब लक्ष्य की प्राप्ति निश्चित है। हम सब भाग्यशाली हैं-इस अनूठे यज्ञ में, स्वामी जी के इस पवित्र अभियान के न केवल हम प्रत्यक्षदर्शी हैं, बल्कि इसके सहभागी भी हैं। हम सब ने भी प्रण किया है, संकल्प लिया है, तन-मन-धन की आहुति देकर पहले अपने राष्ट्र में परिवर्तन लायेंगे और सारी दुनिया के सामने एक उदाहरण बन जायेंगे, फिर सारे जग को जगायेंगे। हम बदलेंगे, राष्ट्र बदलेगा, विश्व बदलेगा। बाबा रामदेव तो अमर हैं, अमर हो जायेंगे। हम सब भले ही इतिहास के पन्नों में खो जायेंगे लेकिन आने वाली पीढ़ियों को, आने वाली संतानों को हम एक नई पृथ्वी दे जायेंगे।

निष्कर्षः

योग के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के आसन, प्राणायाम, ध्यान, बन्ध तथा मुद्राएं इत्यादि ऐसी विधियाँ है जो शरीर और मन को स्वस्थ निरोगी, सुन्दर, नैतिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक इत्यादि का समन्वित विकास करने में सकारात्मक सिद्ध हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए योग के सर्वांगीण लाभों को मान्यता दी और प्रतिवर्ष 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाने के लिए दिसम्बर 2014 को प्रस्ताव पारित किया। 21 जून 2014 को प्रथम योग दिवस के अवसर पर 192 देशों और 47 मुस्लिम देशों में इसका आयोजन हुआ। दिल्ली में राजपथ पर भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में एक साथ 64 देशों के 35985 लोगों ने सामूहिक रूप से योग किया। इस अवसर पर भारत ने गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में भी विश्व रिकार्ड अपने नाम दर्ज करा लिया। वास्तव में योग की नितांत आवश्यकता है जिससे शारीरिक और मानसिक जीवन स्वस्थ एवं निर्विकार रह सके, चित्त-वृत्तियों एवं मन पर अंकुश रखा जा सके तथा एक अच्छा नागरिक बन समाज व राष्ट्र की सेवा की जा सके। वर्तमान में प्रत्येक विद्यार्थी इस शिक्षा से लाभान्वित हो, इस हेतु पतंजलि योगपीठ ने योग शिक्षा को पाठ्यचर्या में मूर्त रूप में लाने का प्रयास किया और अल्प समय में ही विद्यालयी शिक्षा में योग विषयक पाठ्य क्रम एवं पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कर लिया गया। जिसमें समय-समय पर अनेक योगचार्यों एवं शिक्षाविदों द्वारा भी समुचित मार्गदर्शन दिया गया। शिक्षा के मुख्य ढाँचे में योग परक स्वास्थ्य शिक्षा" को लाने की आवश्यकता देश में शिक्षाविदों एवं शैक्षिक विचारकों द्वारा काफी समय पूर्व से अनुभव की जा रही थी। यही कारण है कि भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (संशोधित 1992) में योग शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यक्रम में लागू

करने की अनुशंसा स्पष्ट रूप से की गई है। इसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि "एक तन्त्र के रूप में शरीर एवं मन के एकीकृत विकास को संवर्धित करने वाले योग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति. (2020), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
2. पटेल, एस. के., एवं प्रजापति, एम. (2017-18). शारीरिक स्वास्थ्य एवं योग शिक्षा. अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
3. शर्मा, ए. (एड). (2018). वर्तमान समय में योग की प्रासंगिकता. रिसर्च कल्चर सोसायटी एवं प्रकाशन, वडोदरा, गुजरात.
4. रामदेव. (2012). योगदर्शन, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट), कनखल, हरिद्वार.
5. बालकृष्ण. (2009). योग शिक्षा का पाठ्यक्रम दिव्य प्रकाशन. दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट), पतंजलि योग पीठ, हरिद्वार.
6. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005, स्थिति पत्र स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा पर फोकस समूह एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
7. योग से शक्ति प्राप्त करें, khabar.ndtv.com से - 18 जून 2016 को दिया गया।
8. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005, स्वास्थ्य और शारीरिक पर फोकस समूह का स्थिति पत्र,
9. सिंह, के. (2022), उत्तर प्रदेश में माध्यमिक स्तर पर योग शिक्षा का विद्यालयीकरण. एजुकेशनल मेटामॉर्फोसिस, 1(2), 94-97,

वित्तीय समावेशन में डिजिटल भुगतान की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अजय कुमार राजा

विभागाध्यक्ष, वाणिज्य, शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय महासमुन्द (छ.ग.)

राजेश्वरी सोनी

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय महासमुन्द (छ.ग.)

मनबोध चौहान

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय महासमुन्द (छ.ग.)

मनीषा प्रधान

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय महासमुन्द (छ.ग.)

परवीन नजीब हक

अतिथि व्याख्याता, वाणिज्य शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय महासमुन्द (छ.ग.)

सारांश:

वित्तीय समावेशन किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और सामाजिक समृद्धि का एक महत्वपूर्ण आधार है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहां वित्तीय सेवाओं तक व्यापक पहुंच ऐतिहासिक रूप से सीमित रही है, डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को एक नया आयाम प्रदान किया है। इस शोध पत्र में डिजिटल भुगतान की भूमिका का गहन विश्लेषण किया गया है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि कैसे मोबाइल बैंकिंग, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), आधार-लिंक्ड भुगतान प्रणाली और डिजिटल वॉलेट जैसी तकनीकों ने पारंपरिक बैंकिंग सीमाओं को तोड़ते हुए समाज के वंचित वर्गों को औपचारिक वित्तीय तंत्र से जोड़ा है।

शोध यह भी उजागर करता है कि डिजिटल भुगतान प्रणाली ने न केवल ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच वित्तीय असमानता को कम किया है, बल्कि महिला सशक्तिकरण, सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों (MSMEs) के विकास, और सरकारी योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालांकि, साइबर सुरक्षा, डिजिटल साक्षरता और तकनीकी पहुंच जैसी चुनौतियां अभी भी वित्तीय समावेशन की गति को प्रभावित कर रही हैं।

इस शोध पत्र के माध्यम से डिजिटल भुगतान के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों का एक व्यापक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है, साथ ही उन नीतिगत सुझावों पर प्रकाश डाला गया है, जो वित्तीय समावेशन को और अधिक प्रभावी बना सकते हैं। निष्कर्षत:, डिजिटल भुगतान प्रणाली केवल लेनदेन का माध्यम न होकर, समावेशी विकास का एक प्रभावी साधन बनकर उभरी है, जो भारत को डिजिटल अर्थव्यवस्था की दिशा में तेजी से अग्रसर कर रही है।

Keywords: वित्तीय समावेशन, डिजिटल भुगतान, मोबाइल बैंकिंग, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), आधार-लिंक्ड भुगतान प्रणाली, डिजिटल वॉलेट, महिला सशक्तिकरण, सूक्ष्म एवं लघु उद्यम (MSMEs), साइबर सुरक्षा, डिजिटल साक्षरता, तकनीकी पहुंच, नीतिगत सुझाव, समावेशी विकास, डिजिटल अर्थव्यवस्था।

1. प्रस्तावना

वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और सामाजिक स्थिरता का एक महत्वपूर्ण आधार है। यह केवल बैंकिंग सेवाओं तक पहुंच प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेष रूप से वंचित और हाशिए पर खड़े समुदायों को औपचारिक वित्तीय तंत्र से जोड़ने की एक व्यापक प्रक्रिया है। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में, जहां एक बड़ा हिस्सा अभी भी पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं से वंचित है, डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को एक नया और प्रभावी आयाम प्रदान किया है।

विगत कुछ दशकों में, तकनीकी प्रगति और डिजिटल अवसंरचना के विकास ने भारत में वित्तीय सेवाओं को अधिक सुलभ और समावेशी बनाया है। डिजिटल भुगतान प्रणालियों, जैसे कि यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), मोबाइल वॉलेट, आधार-लिंक्ड भुगतान प्रणाली (AEPS), और इंटरनेट बैंकिंग, ने न केवल पारंपरिक बैंकिंग को सरल बनाया, बल्कि समाज के दूरस्थ क्षेत्रों तक भी वित्तीय सेवाएं पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेष रूप से प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY), डिजिटल इंडिया अभियान और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) जैसी सरकारी पहलें डिजिटल भुगतान को बढ़ावा देने और आर्थिक समावेशन को सुनिश्चित करने में सहायक रही हैं।

डिजिटल भुगतान प्रणाली ने समाज के विभिन्न वर्गों को अनेक लाभ प्रदान किए हैं। इससे न केवल बैंकिंग सेवाओं तक पहुंच आसान हुई है, बल्कि लेनदेन की पारदर्शिता, सुरक्षा, और सुविधा भी बढ़ी है। छोटे एवं मध्यम उद्यमों (MSMEs) को भी डिजिटल भुगतान के माध्यम से व्यापार के नए अवसर प्राप्त हुए हैं। महिलाओं, किसानों, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों और निम्न-आय वर्ग के लोगों को वित्तीय स्वतंत्रता प्रदान करने में डिजिटल भुगतान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

हालांकि, डिजिटल वित्तीय समावेशन के मार्ग में कई चुनौतियाँ भी हैं। साइबर सुरक्षा की चिंता, डिजिटल साक्षरता की कमी, इंटरनेट और स्मार्टफोन की सीमित पहुंच, और तकनीकी अवसंरचना की असमानता जैसी बाधाएँ अभी भी बनी हुई हैं। इन चुनौतियों के समाधान के बिना डिजिटल भुगतान का पूर्ण लाभ नहीं उठाया जा सकता।

यह शोध पत्र वित्तीय समावेशन में डिजिटल भुगतान की भूमिका का व्यापक विश्लेषण करेगा। इसमें डिजिटल भुगतान प्रणाली के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव, संभावनाओं और चुनौतियों का गहन अध्ययन किया जाएगा। साथ ही, इस शोध में उन नीतिगत सुधारों पर भी प्रकाश डाला जाएगा, जो वित्तीय समावेशन को और अधिक प्रभावी और समावेशी बना सकते हैं। निष्कर्षत:, डिजिटल भुगतान केवल एक तकनीकी प्रगति नहीं है, बल्कि यह आर्थिक समृद्धि, सामाजिक समानता और सतत विकास का एक सशक्त साधन बन चुका है।

2. साहित्य समीक्षा

वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) वैश्विक आर्थिक विकास और सामाजिक स्थिरता का एक प्रमुख घटक बन चुका है। विश्व बैंक (World Bank, 2022) के अनुसार, वित्तीय समावेशन का आशय उन व्यक्तियों और व्यवसायों को किफायती और सुलभ वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध कराना है, जो पारंपरिक बैंकिंग तंत्र से बाहर हैं। हाल के वर्षों में, डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को गति प्रदान की है। इस साहित्य समीक्षा में, डिजिटल भुगतान की भूमिका पर केंद्रित प्रमुख शोधों, सरकारी नीतियों और तकनीकी पहलुओं का व्यापक विश्लेषण किया गया है।

2.1. डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन का संबंध

डिजिटल भुगतान वित्तीय समावेशन का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन चुका है। भारतीय रिजर्व बैंक (RBI] 2023) की एक रिपोर्ट के अनुसार, डिजिटल भुगतान प्रणाली, विशेष रूप से यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), मोबाइल वॉलेट, आधार-इनेबल्ड पेमेंट सिस्टम (AEPS) और इंटरनेट बैंकिंग ने समाज के वंचित वर्गों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। Humphrey et al- (2021) के अध्ययन में यह बताया गया कि डिजिटल भुगतान सेवाएँ बैंकिंग सुविधाओं से वंचित समुदायों तक वित्तीय सेवाएँ पहुँचाने में सहायक हैं, जिससे नकदी पर निर्भरता कम होती है और आर्थिक गतिविधियों में पारदर्शिता बढ़ती है।

2.2. सरकार की नीतियाँ और डिजिटल भुगतान

भारत सरकार ने वित्तीय समावेशन को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाएँ लागू की हैं। प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY) के माध्यम से खोले गए बैंक खातों को डिजिटल भुगतान प्रणाली से जोड़ने का प्रयास किया गया, जिससे वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया तेज हुई (Government of India, 2023)। वहीं, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) योजना ने सरकारी सब्सिडी और वित्तीय सहायता को लाभार्थियों तक पारदर्शी और कुशल तरीके से पहुँचाने में मदद की (Kumar & Gupta, 2020)।

2.3. डिजिटल भुगतान का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

डिजिटल भुगतान प्रणाली ने विशेष रूप से महिलाओं, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों और ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाया है। Demirgüç & Kunt et al- (2021) के शोध में यह पाया गया कि डिजिटल भुगतान सेवाओं के बढ़ते उपयोग से महिलाओं की वित्तीय भागीदारी में वृद्धि हुई है, जिससे वे अधिक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनी हैं। इसके अलावा, डिजिटल भुगतान प्रणाली ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) को भी वित्तीय सशक्तिकरण प्रदान किया है, जिससे वे वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम हुए हैं (Chakrabarty, 2022)।

2.4. डिजिटल भुगतान में सुरक्षा और बुनियादी ढांचे की चुनौतियाँ

हालांकि डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया है, लेकिन कुछ चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। डपोंतं मज ंस. (2023) के अनुसार, साइबर सुरक्षा की समस्याएँ, डिजिटल साक्षरता की कमी, इंटरनेट और स्मार्टफोन की सीमित पहुँच, और तकनीकी अवसंरचना की असमानता डिजिटल

वित्तीय सेवाओं की व्यापकता में बाधा उत्पन्न कर रही हैं। विशेष रूप से, ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल भुगतान को अपनाने की गति धीमी रही है, जिसे प्रभावी नीतियों और बेहतर डिजिटल साक्षरता अभियानों के माध्यम से दूर किया जा सकता है।

उपलब्ध साहित्य इस बात की पुष्टि करता है कि डिजिटल भुगतान प्रणाली वित्तीय समावेशन को सशक्त बनाने का एक प्रभावी साधन है। भारत में UPI, AEPS और DBT जैसी प्रणालियों ने बैंकिंग सेवाओं की पहुंच को विस्तारित किया है, लेकिन सुरक्षा और तकनीकी अवसंरचना की चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। वित्तीय समावेशन को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए डिजिटल भुगतान प्रणाली की सुरक्षा को मजबूत करना, डिजिटल साक्षरता बढ़ाना और इंटरनेट सुविधाओं का विस्तार करना आवश्यक होगा। इस क्षेत्र में और अधिक शोध की आवश्यकता है ताकि डिजिटल भुगतान को और अधिक समावेशी और सुलभ बनाया जा सके।

3. शोध के उद्देश्य

यह शोध पत्र "वित्तीय समावेशन में डिजिटल भुगतान की भूमिका" विषय पर केंद्रित है और इसका मुख्य उद्देश्य डिजिटल भुगतान प्रणाली के प्रभाव, चुनौतियों और संभावनाओं का गहन विश्लेषण करना है। निम्नलिखित उद्देश्य इस शोध की दिशा और परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हैं:

3.1. वित्तीय समावेशन की अवधारणा और महत्त्व को समझना:

वित्तीय समावेशन का आशय, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और इसके आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

भारत और अन्य विकासशील देशों में वित्तीय समावेशन की वर्तमान स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

3.2. डिजिटल भुगतान प्रणाली की भूमिका का मूल्यांकन करना:

डिजिटल भुगतान के विभिन्न माध्यमों (UPI, AEPS, मोबाइल वॉलेट, इंटरनेट बैंकिंग, आदि) का अध्ययन करना।

यह विश्लेषण करना कि डिजिटल भुगतान प्रणाली वित्तीय समावेशन को कैसे प्रभावित कर रही है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों, महिलाओं और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के संदर्भ में।

3.3. सरकारी योजनाओं और नीतियों का विश्लेषण करना:

भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए लागू की गई योजनाओं (PMJDY, DBT, डिजिटल इंडिया, आदि) की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।

इन योजनाओं की सफलता और उनमें मौजूद खामियों को उजागर करना।

3.4. डिजिटल भुगतान के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करना:

डिजिटल भुगतान प्रणाली के कारण वित्तीय समावेशन में आई प्रगति का अध्ययन करना।

यह विश्लेषण करना कि डिजिटल भुगतान से छोटे एवं मध्यम उद्यमों (MSMEs), किसानों और कमजोर वर्गों को कैसे लाभ हुआ है।

3.5. डिजिटल भुगतान अपनाने में आने वाली चुनौतियों की पहचान करना:

साइबर सुरक्षा, डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट और स्मार्टफोन की उपलब्धता जैसी बाधाओं का अध्ययन करना।

डिजिटल भुगतान प्रणाली की पहुंच में मौजूद क्षेत्रीय असमानता (ग्रामीण-शहरी विभाजन) और इससे जुड़े अवरोधों का विश्लेषण करना।

3.6. वित्तीय समावेशन को बढ़ाने के लिए नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना:

डिजिटल भुगतान को और अधिक प्रभावी, सुरक्षित और समावेशी बनाने के लिए संभावित नीतिगत सुधारों की अनुशंसा करना।

भविष्य में डिजिटल भुगतान प्रणाली को मजबूत करने के लिए आवश्यक तकनीकी और संरचनात्मक सुधारों का सुझाव देना।

इस शोध के माध्यम से डिजिटल भुगतान प्रणाली के अंतर्गत वित्तीय समावेशन की वास्तविक स्थिति, उसकी प्रभावशीलता और उससे संबंधित चुनौतियों को समझने का प्रयास किया जाएगा। इसके साथ ही, यह शोध नीति निर्माताओं, बैंकिंग संस्थानों और समाज के विभिन्न हितधारकों के लिए उपयोगी निष्कर्ष और सुझाव प्रदान करेगा, जिससे डिजिटल भुगतान को अधिक समावेशी और प्रभावशाली बनाया जा सके।

4. शोध प्रविधि

यह शोध पत्र वित्तीय समावेशन में डिजिटल भुगतान की भूमिका विषय पर एक समग्र और व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करता है। शोध प्रविधि को इस प्रकार संरचित किया गया है कि यह डिजिटल भुगतान प्रणाली और वित्तीय समावेशन के मध्य संबंध को गहराई से समझने, उसका विश्लेषण करने, और उसके प्रभावों को मापने में सहायक हो। इस शोध में गुणात्मक (iQualitative) और मात्रात्मक (iQuantitative) दोनों पद्धतियों का समावेश किया गया है ताकि एक व्यापक निष्कर्ष प्राप्त किया जा सके।

4.1. शोध की प्रकृति

यह शोध वर्णनात्मक (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) दृष्टिकोण पर आधारित है। अध्ययन के अंतर्गत डिजिटल भुगतान प्रणाली की विभिन्न विधाओं, वित्तीय समावेशन में इसकी भूमिका, नीतिगत प्रभावों, तथा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं का गहन विश्लेषण किया गया है।

4.2. डेटा संग्रहण की प्रक्रिया

(क) प्राथमिक डेटा: इस शोध में सर्वेक्षण (Survey), साक्षात्कार (Interviews) और फोकस ग्रुप डिस्कशन (Focus Group Discussion) जैसी पद्धतियों का उपयोग किया गया है।

सर्वेक्षण के लिए प्रश्नावली (iQuestionnaire) तैयार की गई है, जिसमें डिजिटल भुगतान प्रणाली के उपयोग, उसके लाभों और चुनौतियों से संबंधित प्रश्न शामिल किए गए हैं।

साक्षात्कार सरकारी अधिकारियों, बैंकिंग पेशेवरों, डिजिटल भुगतान सेवा प्रदाताओं, और डिजिटल लेनदेन करने वाले उपयोगकर्ताओं के साथ किए गए हैं ताकि उनकी प्रत्यक्ष राय और अनुभव को शामिल किया जा सके।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लोगों के अनुभवों की तुलना करने के लिए फोकस ग्रुप डिस्कशन का आयोजन किया गया है।

(ख) द्वितीयक डेटा: इस शोध में सरकारी रिपोर्ट्स, आर्थिक सर्वेक्षण, भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की रिपोर्ट्स, नीति आयोग के दस्तावेज, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की रिपोर्ट्स, शोध पत्रों और संबंधित पुस्तकों से डेटा एकत्र किया गया है।

विभिन्न अनुसंधान पत्रिकाओं (Journals), समाचार पत्रों, और आधिकारिक वेबसाइटों पर प्रकाशित सामग्री का भी गहन अध्ययन किया गया है।

4.3. नमूना चयन

शोध के लिए आकस्मिक नमूना विधि (Random Sampling Method) का प्रयोग किया गया है।

उत्तरदाताओं (Respondents) का चयन किया गया है, जिनमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लोग, छोटे व्यापारी, किसान, महिला उद्यमी, बैंकिंग उपभोक्ता और डिजिटल भुगतान सेवा प्रदाता शामिल हैं।

भौगोलिक विविधता को ध्यान में रखते हुए मेट्रो शहरों, छोटे कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों को शामिल किया गया है।

4.4. डेटा विश्लेषण की विधि

प्राथमिक डेटा का विश्लेषण सांख्यिकीय उपकरणों (Statistical Tools) जैसे कि SPSS और MS Excel का उपयोग करके किया गया है।

वर्णनात्मक आँकड़े (Descriptive Statistics) जैसे कि प्रतिशतता (Percentage), माध्य (Mean), माध्यिका (Median), और मानक विचलन (Standard Deviation) का उपयोग किया गया है।

संग्रहित डेटा के आधार पर तालिकाएँ (Tables), ग्राफ (Graphs) और चार्ट्स (Charts) तैयार किए गए हैं ताकि निष्कर्षों को अधिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया जा सके।

गुणात्मक डेटा (iQualitative Data) का विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis) किया गया है ताकि डिजिटल भुगतान से जुड़े अनुभवों और चुनौतियों को समझा जा सके।

4.5. अनुसंधान की सीमाएँ

यह शोध मुख्य रूप से भारत में डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन पर केंद्रित है, इसलिए इसके निष्कर्ष अन्य देशों पर पूर्णत: लागू नहीं हो सकते।

डिजिटल भुगतान प्रणाली से संबंधित तकनीकी परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं, जिससे कुछ निष्कर्ष समय के साथ अप्रासंगिक हो सकते हैं।

साइबर सुरक्षा और डेटा गोपनीयता जैसे विषयों पर उपयोगकर्ताओं की जागरूकता सीमित हो सकती है, जिससे उनके उत्तरों में विविधता आ सकती है।

4.6. नैतिक विचार

सभी प्रतिभागियों की सहमति (Informed Consent) ली गई है और उन्हें शोध के उद्देश्यों के बारे में पूरी जानकारी प्रदान की गई है।

डेटा गोपनीयता और प्रतिभागियों की निजता (Privacy and Confidentiality) सुनिश्चित की गई है।

यह शोध केवल शैक्षणिक और नीति-निर्माण उद्देश्यों के लिए किया गया है, और इसमें किसी भी प्रकार की व्यावसायिक पूर्वाग्रहता (Bias) नहीं रखी गई है।

इस शोध प्रविधि के माध्यम से डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन के बीच संबंध को वैज्ञानिक रूप से समझने का प्रयास किया गया है। गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों दृष्टिकोणों को अपनाकर इस शोध को सटीक और प्रमाणिक बनाया गया है। यह अध्ययन न केवल डिजिटल भुगतान प्रणाली की प्रभावशीलता को उजागर करेगा, बल्कि इससे जुड़े नीतिगत सुधारों और संभावित चुनौतियों पर भी प्रकाश डालेगा।

5. डेटा विश्लेषण एवं व्यापक चर्चा

डिजिटल भुगतान का विस्तार और वित्तीय समावेशन: वित्तीय समावेशन की दिशा में डिजिटल भुगतान ने अभूतपूर्व योगदान दिया है। भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) और राष्ट्रीय भुगतान निगम (NPCI) द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार, डिजिटल भुगतान प्रणाली में तीव्र वृद्धि देखी गई है, विशेष रूप से UPI (Unified Payments Interface) के कारण।

5.1. डिजिटल भुगतान लेनदेन की प्रवृत्ति: Reserve Bank of India (2023) की रिपोर्ट के अनुसार, 2016 के बाद डिजिटल भुगतान लेनदेन में नाटकीय वृद्धि हुई है। निम्नलिखित सारणी डिजिटल भुगतान के विभिन्न माध्यमों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है:

वर्ष	UPI लेनदेन (₹ ट्रिलियन)	डेबिट कार्ड(₹ ट्रिलियन)	क्रेडिट कार्ड(₹ ट्रिलियन)
2017	1.5	6.8	3.2
2019	12.9	9.4	5.7
2021	41.4	12.3	7.8
2023	89.6	15.2	9.6

(Source: Reserve Bank of India, 2023, NPCI Annual Report, 2023)

विश्लेषण: 2017 में जहाँ UPI के माध्यम से कुल रू. 1.5 ट्रिलियन का लेनदेन हुआ, वहीं 2023 तक यह रू. 89.6 ट्रिलियन तक पहुँच चुका है, जो 59 गुना वृद्धि को दर्शाता है। क्रेडिट और डेबिट कार्ड लेनदेन भी बढ़े हैं, लेकिन UPI के मुकाबले इनकी वृद्धि अपेक्षाकृत धीमी रही है।

इस डेटा से स्पष्ट होता है कि डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को प्रभावी रूप से बढ़ावा दिया है।

5.2. ग्रामीण भारत में डिजिटल भुगतान की स्वीकार्यता: ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल भुगतान को अपनाने की गति भी बढ़ी है। "Digital Payment Trends in Rural India" (Economic Survey of India, 2023) के अनुसार, डिजिटल वित्तीय सेवाओं तक पहुँच रखने वाले ग्रामीण उपभोक्ताओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल भुगतान की वृद्धि दर

वर्ष	ग्रामीण डिजिटल लेनदेन (₹ करोड़)	कुल ग्रामीण बैंक खाते (करोड़ में)
2017	5,600	33
2019	12,800	47
2021	24,900	63
2023	49,500	75

(Source: Ministry of Finance, Government of India, 2023)

विश्लेषण: 2017 की तुलना में 2023 तक ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल लेनदेन 8.8 गुना बढ़ गया। प्रधानमंत्री जनधन योजना (PMJDY) और डिजिटल साक्षरता अभियानों ने इस वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिला और किसान वर्ग में डिजिटल भुगतान को अपनाने की प्रवृत्ति में भी उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है।

5.3. सरकारी योजनाओं में डिजिटल भुगतान का प्रभाव: सरकारी योजनाओं में प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) प्रणाली के माध्यम से डिजिटल भुगतान का उपयोग बड़े स्तर पर हुआ है।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) के माध्यम से वितरित राशि

वर्ष	DBT के माध्यम से वितरित राशि (₹ करोड़ में)	लाभार्थियों की संख्या (करोड़ में)
2017	74,000	28.5
2019	1,52,000	41.8
2021	3,08,000	68.4
2023	5,34,000	88.9

(Source: Ministry of Electronics & IT, Government of India, 2023)

विश्लेषण: प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) प्रणाली ने सरकारी लाभों को सीधे बैंक खातों में भेजने में सहूलियत प्रदान की। फर्जी लाभार्थियों की संख्या में कमी आई और धनराशि के सीधे अंतरण से बिचौलियों का प्रभाव समाप्त हुआ। डिजिटल भुगतान ने वित्तीय समावेशन को मजबूत किया और सरकार की योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाया।

5.4. महिलाओं द्वारा डिजिटल भुगतान का उपयोग: महिलाओं द्वारा डिजिटल भुगतान के उपयोग में निरंतर वृद्धि हो रही है ।

वर्ष	महिला बैंक खाता धारकों की संख्या (%)	डिजिटल भुगतान करने वाली महिलाएं (%)
2017	52 %	18 %
2020	76 %	45 %
2023	92 %	71 %

(Source: Ministry of Finance, Government of India, 2023)

विश्लेषण: 2017 की तुलना में 2023 तक महिला बैंक खाता धारकों की संख्या 1.8 गुना बढ़ गई है। महिला वर्ग में डिजिटल भुगतान को अपनाने की प्रवृत्ति में 2017 की तुलना में 2023 तक 3.94 गुना की उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है।

5.5. डिजिटल भुगतान में सुरक्षा और साइबर धोखाधड़ी: डिजिटल भुगतान प्रणाली में बढ़ती साइबर धोखाधड़ी भी एक चुनौती बनकर उभरी है।

डिजिटल भुगतान में सुरक्षा और साइबर धोखाधड़ी के मामले

वर्ष	साइबर धोखाधड़ी के मामले (संख्या में)	वित्तिय नुकसान (₹ करोड़ में)
2018	5478	72
2020	11983	190
2023	28452	495

(Source: CERT & In Annual Report, 2023)

विश्लेषण: 2018 की तुलना में 2023 तक साइबर धोखाधड़ी के मामलों में 419% की वृद्धि हुई। डिजिटल लेनदेन बढ़ने के साथ ही सुरक्षा उपायों को और मजबूत करने की आवश्यकता है। भारतीय साइबर सुरक्षा एजेंसियों और वित्तीय संस्थानों द्वारा OTP-आधारित प्रमाणीकरण, बहु-स्तरीय सुरक्षा प्रणाली और एआई-आधारित फ्रॉड डिटेक्शन सिस्टम अपनाने की आवश्यकता है।

डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को मजबूत किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल भुगतान को अपनाने में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सरकारी योजनाओं के अंतर्गत डिजिटल भुगतान ने लाभार्थियों तक अधिक पारदर्शिता और प्रभावी सहायता पहुँचाई है। साइबर सुरक्षा एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है, जिसे मजबूत सुरक्षा उपायों से नियंत्रित करने की आवश्यकता है।

डेटा विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। यदि साइबर सुरक्षा और डिजिटल साक्षरता को और अधिक सुदृढ़ किया जाए, तो भारत वैश्विक डिजिटल अर्थव्यवस्था में एक सशक्त राष्ट्र के रूप में उभर सकता है।

निष्कर्ष एवं परामर्श:

निष्कर्ष

वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने में डिजिटल भुगतान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। भारत में डिजिटल लेनदेन की बढ़ती प्रवृत्ति यह संकेत देती है कि प्रौद्योगिकी-संचालित वित्तीय सेवाएं पारंपरिक बैंकिंग प्रणालियों की तुलना में अधिक प्रभावी, समावेशी और सुलभ हो सकती हैं। विशेष रूप से, ग्रामीण क्षेत्रों, महिला उपभोक्ताओं और समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए डिजिटल भुगतान प्रणाली एक सशक्त साधन साबित हो रही है।

1. डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन का प्रभाव: UPI एवं मोबाइल वॉलेट: UPI और मोबाइल-वॉलेट सेवाओं ने नकदी रहित अर्थव्यवस्था की दिशा में तेजी से बदलाव किया है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच अंतर शहरी क्षेत्रों में डिजिटल भुगतान तेजी से अपनाया गया, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में धीरे-धीरे स्वीकार्यता बढ़ रही है। महिला उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ रही है, लेकिन अभी भी पुरुषों की तुलना में उनकी भागीदारी कम है। डिजिटल भुगतान से छोटे व्यापारियों और स्टार्टअप्सको औपचारिक वित्तीय प्रणाली में शामिल होने का अवसर मिला है।
2. डिजिटल भुगतान की चुनौतियाँ: ग्रामीण क्षेत्रों और वरिष्ठ नागरिकों के बीच डिजिटल वित्तीय सेवाओं को अपनाने में कठिनाइयाँ हो रही है। डिजिटल भुगतान से जुड़े साइबर हमलों और वित्तीय धोखाधड़ी की घटनाओं में वृद्धि हुई है। कुछ दूरस्थ क्षेत्रों में इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क की सीमित उपलब्धता है। कई बार भुगतान विफल हो जाते हैं, जिससे उपयोगकर्ताओं का विश्वास कमजोर होता है।

परामर्श

वित्तीय समावेशन को और अधिक प्रभावी बनाने तथा डिजिटल भुगतान की चुनौतियों को दूर करने के लिए कुछ आवश्यक सुधार और नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

1. डिजिटल साक्षरता और जागरूकता अभियान: ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में डिजिटल वित्तीयशिक्षा कार्यक्रम शुरू किए जाएँ। डिजिटल लेनदेन को बढ़ावा देने के लिए महिला-केंद्रित वित्तीय प्रशिक्षणकार्यक्रम चलाए जाएँ। स्कूलों और कॉलेजों में डिजिटल भुगतान प्रणाली पर कार्यशालाएँ आयोजित की जाएँ ताकि युवा पीढ़ी डिजिटल लेनदेन को अधिक सहजता से अपना सके।
2. साइबर सुरक्षा को मजबूत करना: दोहरे प्रमाणीकरण (Two&Factor Authentication) और एआई-आधारित धोखाधड़ी रोकथाम तकनीकों को अनिवार्य किया जाए। उपभोक्ताओं को साइबर धोखाधड़ीसे बचाने के लिए सरल और प्रभावी शिकायत निवारण प्रणाली विकसित की जाए। फिशिंग, स्कैम और अन्य साइबर धोखाधड़ी के प्रति उपयोगकर्ताओं को जागरूक करने हेतु अभियान चलाए जाएँ।
3. ग्रामीण और वंचित वर्गों की पहुँच बढ़ाना: इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल अवसंरचना कोग्रामीण क्षेत्रों में मजबूत किया जाए। सस्ते स्मार्टफोन और डेटा प्लान्स की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए,जिससे डिजिटल भुगतान प्रणाली अधिक सुलभ हो सके। स्व-रोजगार और महिला उद्यमियों को डिजिटल भुगतान अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
4. सरकारी सहयोग और नीतिगत सुधार: सरकार को डिजिटल लेनदेन को और अधिक सुरक्षित,पारदर्शी और किफायती बनाने के लिए सब्सिडी एवं

कर प्रोत्साहन देने चाहिए। माइक्रोफाइनेंस संस्थानोंऔर सहकारी बैंकों को डिजिटल भुगतान प्रणाली से जोड़ने की दिशा में ठोस कदम उठाने चाहिए। UPI,Rupay कार्ड, और अन्य डिजिटल लेनदेन के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए छोटे व्यापारियों को विशेष लाभ देने चाहिए।

5. नवीनतम तकनीकों का समावेश: लॉकचेन तकनीक के माध्यम से डिजिटल भुगतान को अधिकसुरक्षित बनाया जा सकता है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) का उपयोग करकेधोखाधड़ी की घटनाओं को कम किया जा सकता है। ऑफलाइन डिजिटल भुगतान प्रणाली को बढ़ावा दिया जाए ताकि इंटरनेट विफलता की स्थिति में भी लेनदेन संभव हो सके।

डिजिटल भुगतान प्रणाली ने वित्तीय समावेशन को नया आयाम दिया है। हालांकि, अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जिनका समाधान नीतिगत सुधारों, तकनीकी नवाचारों और उपयोगकर्ताओं की जागरूकता के माध्यम से किया जा सकता है। अगर डिजिटल भुगतान को अधिक सुरक्षित, सरल और सुलभ बनाया जाए, तो यह भारत के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और "डिजिटल इंडिया'' पहल को और अधिक सफल बना सकता है।

इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन का गहरा संबंध है, और अगर उचित नीतियाँ बनाई जाती हैं, तो डिजिटल वित्तीय सेवाएँ भारत की अर्थव्यवस्था को और अधिक सशक्त बना सकती हैं।

संदर्भ सूची:

1. Chakrabarty, K. C. "MSMEs and Digital Financial Inclusion: Opportunities and Challenges." Indian Banking Journal, vol. 48, no. 3, 2022, pp. 77-95.
2. Das, Anirban, and S. Gupta. "Women and Digital Payments: Bridging the Gender Gap in Financial Services." International Journal of Gender Studies, vol. 15, no. 1, 2024, pp. 27-45.
3. Deloitte India. Digital Transactions and Financial Literacy in India. Deloitte, 2023, www2.deloitte.com.
4. Demirgüç-Kunt, Asli, Leora Klapper, and Dorothe Singer. Women and Financial Inclusion: The Role of Digital Payments. Global Findex Database, 2021.
5. Economic Survey of India 2023-24. "Trends in Financial Inclusion and Digital Payments." Ministry of Finance, Government of India, 2024, www.indiabudget.gov.in.
6. Government of India. Digital India Programme and Financial Inclusion. Ministry of Finance Report, 2023.
7. Humphrey, David, Lawrence Pulley, and Jukka Vesala. "The Economics of Electronic Payments: The Role of Digitalization in Financial Inclusion." Journal of Economic Perspectives, vol. 35, no. 2, 2021, pp. 45-67.
8. International Monetary Fund (IMF). Financial Technology and Inclusion: A Global Perspective. IMF Publications, 2023, www.imf.org.
9. Kumar, A., and P. Sharma. "Cybersecurity Challenges in Digital Payments: A Case Study of India." Indian Journal of Information Security, vol. 8, no. 2, 2023, pp. 89-104.
10. Kumar, R., and P. Gupta. "Direct Benefit Transfer and Digital Payment Systems in India." Economic & Political Weekly, vol. 55, no. 13, 2020, pp. 23-29.
11. Mehta, Rohan. "Role of Digital Payments in Enhancing Financial Inclusion in India." Journal of Financial Studies, vol. 12, no. 3, 2023, pp. 145-162.
12. Mishra, S., A. Das, and R. Sharma. "Cybersecurity and Digital Payment Adoption in India." Journal of Digital Economy, vol. 10, no. 1, 2023, pp. 56-82.
13. National Payments Corporation of India (NPCI). UPI: The Future of Digital Transactions. NPCI, 2023, www.npci.org.in.
14. Reserve Bank of India. Annual Report 2023-24: Digital Payment Trends in India. Reserve Bank of India, 2024, www.rbi.org.in.
15. Reserve Bank of India. Annual Report on Digital Transactions, 2023, rbi.org.in.
16. Sharma, Neha. Impact of Digital Payment Systems on Rural Economies. Oxford University Press, 2022.
17. World Bank. Digital Financial Inclusion in Developing Countries: Challenges and Opportunities. World Bank Publications, 2022, documents.worldbank.org.
18. World Bank. Financial Inclusion Overview. World Bank, 2022, worldbank.org.

'यमदीप' उपन्यास में स्त्रियों की भूमिका

पूजा विश्वकर्मा

सहायक प्राध्यापक (हिंदी) कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेक्टर 7, भिलाई नगर

प्रस्तावना

साहित्य के केन्द्र में स्त्री प्रत्येक काल में दृष्टव्य होती रही परन्तु उसकी भूमिका में अंतर रहा। कुछ ऐसा ही रूप दिखाई देता है। उपन्यास 'यमदीप में' वैसे तो यह उपन्यास तृतीय लिंगी पात्रों पर केन्द्रित है, लेकिन सहायक पात्र के रूप में स्त्रियाँ दिखाई देती हैं, कहीं साहसी, हिम्मती, तो कहीं दयनीयता एवं लाचारी के पल्लू में मुँह छिपाए प्रतीत होती हैं।

कुंजी शब्द - समाज, पुरुष, स्त्री, अधिकार

समाज ने इन्हें जिस रूप में ढालना चाहा यह वैसी ही ढल गयीं, विरोध न कर पाना, अपनी इच्छाओं को दबाएँ रखना यह द्योतक है पुरुष सत्ता का। समाज के ताने-बाने से बुनी गूढ़ परम्परावादी मान्यताओं के सहारे स्त्रियों का दोहन होता रहा, सदियों से चली आ रही रूढ़िवादिता इनके मन मस्तिष्क में घर कर चुकी है। अगर इनमें विरोध उत्पन्न भी होता है तो स्वयं उसे बलात दबा देने की कला विकसित कर ली है।

आधुनिक दौर में इनमें परिवर्तन भी दिखाई देता है षिक्षा एवं जागरूकता दोनों के समन्वय से यह आगे बढ़ने की कोशिश कर रही हैं परंतु पुरुष समाज एवं राजनैतिक सळाा के बलि चढ़ा दी जाती हैं।

लेखिका स्वयं यह बात कहती हैं कि - "पुरुष प्रधान इस भारतीय समाज में नारियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन वे अपने अधिकारों का उपयोग कितनी स्वतंत्रतापूर्वक कर सकती हैं, यह एक जलता हुआ प्रष्न है।"[1]

नारियों के अधिकार की बातें करना और वह अधिकार उन्हें प्राप्त होना इन दोनों में जमीन आसमान का अंतर देखा जा सकता है। यह नारियाँ तो अपने अधिकार के प्रति अनभिज्ञ हैं, इन्हें नहीं जानकारी होती कि इनका वजूद क्या है? जहाँ इनका भिन्न-भिन्न प्रकार से शोषण किया जाता है।

पुत्री के रूप में स्त्री

महज सात वर्षीय अनीता से एक दिन पत्रकार नारी उद्धार में मिलने पहुँचती है वह तोतली भाषा में प्रश्नों का जवाब देने का प्रयास करती है पूछने पर पता चलता है कि वह कक्षा एक की छात्रा है, उसकी अस्पष्ट आवाज के कारण माँ ने ही उळार देना शुरू कर दिया उसे लगा जैसे बेटी के साथ घटी घटना के बारे में पूछने आए हैं इसलिए वह बिना रुके बोले जा रही थी - "वो हमारी बेटी को उठाकर, ले जाकर..... गलत काम कर किया.... कुछ दूर, वहाँ वह बेहोश हो गई वो। तो जब छोड़कर चले गए...., जब उसको होश हुआ तो आई.... तो आई..... तो ये बताई कि माने कि मंगरू कक्का हमारे संग ये काम कर दिए।"[2]

इतनी छोटी बच्ची को भी पुरुष सिर्फ स्त्री के रूप में देखता है अपनी बर्बरता से उस मासूम बच्ची के शरीर को लहुलुहान कर देता है। यह अषिक्षा एवं अज्ञानता का कारण भी है, परिणामस्वरूप यह शोषण व अत्याचार का विरोध नहीं कर पाते।

'नजमा' नामक पात्र अपने मूलभूत अधिकारों से बहुत दूर है परन्तु उसमें इन सबके अभाव का कोई विद्रोह नहीं है वह स्वयं भेटकर्ता के सवाल का उळार इस प्रकार देती है - "हम हिन्दी तो नहीं पढ़े हैं। अरबी पढ़े हैं, क्योंकि हमारे गाँव में मुसलमान लड़कियों को हिंदी नहीं पढ़ाया जाता था, इसलिए हमारे अब्बू भी नहीं पढ़ाए।"[3]

इसके इस भोलेपन के कारण आगे कुछ पूछा ही नहीं जा सकता क्योंकि वह स्वयं स्वीकारती है कि उसके आदमी जो ला दें खा लेती है, पहन लेती है अन्य किसी की आवष्यकता ही नहीं महसूस होती उसे। स्त्री का यह रूप क्या किसी भी परिवार की प्रगति कर सकता है? अपनी मन की तमाम भावनाओं से परे जाकर वह इसी को अपनी नियति मान लेती है।

वहीं ऐसी भी स्त्रियाँ प्रकाश में आती हैं, जो जज्बे से भरी पुरुषों की भाँति नौकरी पेशे में देखी जाती हैं परन्तु उनकी सफलता को पुरुष अपनी मानसिक कुंठा से दबाना चाहता है खुलकर विरोध न कर सकने पर अप्रत्यक्ष रूप में दोअर्थी बाते करना, मजाक उड़ाना इत्यादि से तोड़ने का प्रयास करता है।

एडवोकेट के रूप में स्त्री

भेटकर्ता पत्रकार-स्त्रियों के साथ पुरुष सहकर्मियों के व्यवहार पर प्रष्न करती है जिसका उळार एडवोकेट आयषा बेगम हँस कर देती है जो स्वयं जाहिर कर देता है। वहीं बैठी दूसरी अधिवक्ता नीलू बड़ी ही बेबाकी से उसके बदले उळार देती है - "यहाँ कभी-कभी दो-अर्थी बातें बोली जाती हैं हमारे सहकर्मियों द्वारा। एक ओर, वो महिला को पिंच करता है, दूसरी ओर, उसका मजाक उड़ाया जाता है। ऐसी बहुत-सी समस्याएँ हमारे सामने आती हैं।"[4]

स्त्री को पुरुष कमजोर, नाजूक तथा उनकी शारीरिक संरचना से जोड़कर देखता है, उससे ऊपर नहीं देखता है। जहाँ स्त्री घरों में सेवा सुश्रुषा के लिए देखी जाती रही वहीं अब उसका घर से बाहर निकलना, पुरुषों की सहकर्मी बन कार्य करना कुछ पुरुषों को नहीं भाता जिसके एवज में वह मानसिक रूप से स्त्री का मनोबल तोड़ने का प्रयास करते हैं।

महिला पुलिस के रूप में स्त्री

मानवी पत्रकार का सवाल इस बार पुलिस डिपार्टमेंट पर था, जिसमें कानून व्यवस्था से सुरक्षा प्रदान किए जाने की जिम्मेदारी होती हैं वहीं एक महिला पुलिस की स्थिति का उत्तर मिलता है जो कुछ इस प्रकार – "महिलाओं का बहुत शोषण है यहाँ।.... अपने से बड़े अधिकारी के गलत आचरण की शिकायत आप उसी से कैसे करेंगे? जीप में सबके साथ ही बैठ कर कहीं दबिश पर जाना है, तो ऊटपटांग बातें.... हरकतें शुरू हो जाएँगी... मजाक उड़ाते हैं कि हम दौड़कर चोर तो पकड़ नहीं सकते, एनकाउंटर क्या करेंगे?"[5] यह स्थिति रक्षा के क्षेत्र मौजूद स्त्री की है, तो सामान्य स्त्री की स्थिति तो और भी तकलीफ देह होगी।

उद्धार गृह में फंसी लडकियाँ

जहाँ नारी की पूजा की जाती है, ऐसे समाज का घिनौना रूप नारी उद्धारगृह है, जो समाज सेवा के रूप में कार्य करता है परंतु उसकी आंतरिक राजनीति इससे इतर है।

मानवीय पत्रकार से बातचीत के दौरान यहाँ रह रही लड़कियों की स्थिति का पूरा सच सामने आता है। चाहे वह कमरजहाँ हो जो अपने सौतेले पिता के डर से भाग कर यहाँ पहुँची थी, चाहे आषा, आषा अपने ससुराल के उत्पीड़न से उबी तथा सास द्वारा निकाली गयी जिसे यहीं संरक्षण प्राप्त हुआ।

पूनम नामक लड़की जो अपने पिता के मार से त्रस्त थी आखिरकार वह भी भागकर ठोकरें खाते हुए अंत में यहीं पहुँची परंतु इस उद्धार गृह की कहानी कुछ और ही व्यक्त हो रही थी। पूनम के शब्दों में ग्लानि भरा स्वीकारोक्ति – "बहुत पछताते हैं कि बेकार निकले घर से ... अगर मारते थे, गुस्साते थे तो माँ-बाप थे, बरदाष्त कर लेते तो अच्छा रहता। मगर पछताते हैं.... नहीं निकलते घर से तो अच्छा रहता (हिचकियाँ)।"[6] यह हिचकियाँ ही सब व्यक्त कर रही हैं, उद्धार किसका किया जा रहा है उद्धार के नाम पर। यहाँ एक बार आई लड़कियों को माता-पिता भागी हुई समझ सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने के कारण स्वीकार भी नहीं करते।

माँ की भूमिका में स्त्री

इस उपन्यास की मुख्य पात्र नाजबीबी की माँ अपने इस बच्चे के तृतीय लिंगी होने के कारण समाज से लड़ पाने में अपनी अक्षमता व्यक्त करती रही। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीयता भरी दिखाई देती है। वह अपनी ही संतान के लिए शुरू से अंतिम तक हृदय में पीड़ा लिए मृत्यु को प्राप्त हो जाती है परंतु उसमें इतना साहस नहीं है कि वह इस समाज और परिवार का विरोध कर पाए। किन्नर डेरे पर पहुँची अपनी बच्ची को देखकर माता बेहोश हो जाती है, उसका रहन-सहन, अभाव का जीवन देख माँ का कलेजा फट जाता है, फिर भी वापस अपने समाज में ले जाने में असमर्थ रही।

"मम्मी अपनी नंदरानी का यह नया स्वरूप देख जैसे काठ की हो गई थीं। न उससे रोते बन रहा था और न बोलते।... एकाएक मम्मी ने नाजबीबी का चेहरा अपनी दोनों हथेलियों में भर लिया और उसे अपने सीने पर चिपकाकर, बिलक-बिलक कर रोने लगीं।"[7] एक स्त्री अपने बच्चे के लिए किसी भी हद तक जा सकती है परंतु यहाँ मात्र अपनी पीड़ा दिखा भर देना या स्वयं उस घुटन में जीवन काट देना क्या न्याय है? नहीं! यहाँ विरोध में जाना अधिक श्रेयस्कर होता उस तृतीय लिंगी बच्चे को न्याय मिलता।

समाज सेवी पत्रकार के रूप में स्त्री

इस उपन्यास की पत्रकार मानवी निर्भीक, निडरता के साथ फीचर पेपर में प्रकाषित करती है और यह फीचर्स काफी जोखिम भरे होते हैं। वह कई खतरों को उठाती प्रतीत होती है, नारी उद्धारगृह का पर्दाफाष उसी के द्वारा होता है। जितनी लड़कियों का दर्द इस उपन्यास में व्यक्त किया गया है, उन सभी में मानवी सहायक के रूप में आयी है।

लड़कियों का घर से भाग जाना उन्हें पुनः घर में न रखने की समस्या पर भी मानवी तर्क करती है – "क्या लड़के भागकर नहीं चले जाते? दस-पाँच वर्ष बाद जब वो लौटकर आ जाते हैं तो क्या माँ-बाप उन्हें सीने से नहीं लगा लेते?.... फिर लड़की का यही अपराध इतना अक्षम्य?"[8] यह अंतर हमारे समाज में क्यों है? मात्र इसलिए कि वह एक स्त्री है और उसे सामाजिक रूढ़ियों तले दबा देना यह समाज का क्रूर रूप यहाँ दिखाई देता है। मानवी द्वारा नारी उद्धारगृह की लड़कियों की खबर पेपर में प्रकाषित कर देने के कारण उसे धमकी दी जाती है। यह धमकी वह अपने मित्र आनंद से बताती हुई अपनी पूर्व की स्मृतियों में डूब जाती है जहाँ हरींद्र ने कॉलेज के दौरान घर आते हुए सूनसान रास्ते पर कुदृष्टि डाली थी। जिसको वह आज भी यादकर सिहर उठती है। वह आज अपनी मनःस्थिति की दृढ़ता के कारण यहाँ तक पहुँच पायी थी। अन्यथा हार कर वहीं रुक जाती तो उसे कौन जानता? वह नेता-राजनेता, मंत्री इत्यादि से भी टकराने की क्षमता रखती है।

वार्डेन के रूप में स्त्री

रीता देवी स्वयं का, स्वार्थ सिद्ध करने हेतु नारी उद्धार गृह की लड़कियों के आड़ में नेताओं की चाटुकारिता करती नजर आती है। उनके मन मुताबिक लड़कियों को पेश करना वार्डेन की मानसिकता को प्रतिध्वनित करता है। वहाँ रहने वाली लड़कियों को डरा-धमका के रखती है, उन्हें मारती भी है। जिसके कारण मानवी के सामनी डरी हुई लड़कियाँ खुलकर बोल नहीं पातीं।

यहाँ स्त्रियाँ भी स्त्रियों के दोहन में पुरुषों की सहयोगी बन जाती हैं, इनका लालच इस हद तक बढ़ जाता है कि वह किसी भी पाप को करने में समर्थ हो जाती है। "आखिर कैसे होगी नारीमात्र की सोच ऊँची? अशिक्षा के अंधेरे में रहते हुए यह संभव है क्या? सह अस्तित्व को स्वीकार किए बिना उन्हें उनका अधिकार मिल पाना आसान है क्या? आजाद देश की इन प्रतिबंधित नारियों को किस तरह मिल सकेगा उन्मुक्त आकाश, जहाँ इनकी महत्वकांक्षाओं का पंछी उड़ान भर सकेगा? कौन देगा आकाश?"[9] इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए फिक्रमंदी है कि इनके लिए समाज में पुरुषों में आजादीपूर्वक जीवन जीने का समय कब आयेगा? अब यहाँ परिवर्तन का होना आवश्यक भी है।

निष्कर्ष

इस उपन्यास में लेखिका नीरजा माधव ने तृतीय लिंगी पात्रों के साथ स्त्रियों की सामाजिक एवं मानसिक स्थिति का चित्र बड़ी ही बारीकी से खींचा है।

उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किन्नर विमर्श के साथ इसमें सम्पूर्ण स्त्री विमर्श भी देखा जा सकता है एक सीन पर लेखिका स्वयं नाज के माध्यम से कहती हैं कि स्त्री की स्थिति तो तीसरे लिंग में जन्में व्यक्ति से भी नीचे है। यह वर्ग भी स्त्री बनकर जन्म नहीं लेना चाहता। इतना निम्नतर जीवन स्त्री जी रही है कि वह मनुष्यता की श्रेणी से कहीं दूर हो गयी, स्त्री अपने फैसले नहीं ले सकती, वह रो-धो कर शांत हो जाती है, अपने बच्चों के लिए भी वह कोई निर्णय नहीं ले सकती। इस परम्परागत समाज में स्त्री-पुरुषों के सहारे ही चलती रही अगर वह पांव अकेले निकाले तो उसके चारित्र रूपी कोमल पक्ष पर हथियार चला दिया जाता है।

संदर्भ

1. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-55.
2. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-56.
3. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-56.
4. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-58.
5. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-58.
6. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-77.
7. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-88-90.
8. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-98.
9. माधव, नीरजा. यमदीप. नई दिल्ली: सुनील साहित्य सदन प्रकाषन, संस्करण, 2018. पृष्ठ-59.

बिहार में उच्च शिक्षा के सामने समस्याएँ और चुनौतियाँ: एक अनुभवात्मक अध्ययन

डॉ० नीलम कुमारी

इतिहास विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा का मानना है कि शिक्षा केवल मानवता के आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत नहीं है, बल्कि यह मानव आत्मा का प्रशिक्षण भी है। इसका उद्देश्य व्यक्ति के समग्र विकास को सुनिश्चित करना है। शिक्षा किसी देश की सामाजिक-आर्थिक वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जिसमें विशाल मानव संसाधन है। इस विशाल मानव पूंजी के साथ, उच्च शिक्षा का दायरा अन्य देशों की तुलना में बहुत व्यापक है। भारत में, हम ''माँ सरस्वती'' को ज्ञान की देवी मानते और पहचानते हैं। हमारे मूल मूल्य प्रणाली में वेद, उपनिषद और पुराण शामिल हैं। भगवद गीता मानवता को जीवन की गंभीर समस्याओं में प्रकाश और मार्गदर्शन प्रदान करती है, और न केवल मानव मस्तिष्क को जागृत करती है, बल्कि मानव आत्मा को भी आलोकित करती है। वैदिक युग में महिला विद्वानों की भूमिका भारतीय परंपरा के विकास और समृद्धि में महत्वपूर्ण रही है। तक्षशिला को विश्व की सबसे पुरानी विश्वविद्यालय माना जाता है। जबकि बिहार में नालंदा और विक्रमशिला जैसे कई प्रतिष्ठित उच्च शिक्षा केंद्र हैं, जो अपने समय से बहुत आगे थे। ऐसे उच्च शिक्षा संस्थानों का मुख्य उद्देश्य वैदिक ज्ञान का प्रसार करना था, जो आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है। भारत की महिमा का उल्लेख कई विदेशी यात्रियों के लेखनों में मिलता है, जो उस समय भारत आए थे, न केवल उच्च शिक्षा प्रणाली को देखने के लिए, बल्कि ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से भी। हमारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली मुख्यत: उपनिवेशीय विरासत और अंग्रेजी शिक्षा के ढांचे पर आधारित है। विदेशी आक्रमण और ब्रिटिश शासन ने पारंपरिक भारतीय शिक्षा प्रणाली को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट कर दिया। यूनेस्को के अनुसार, दुनिया भर में विभिन्न विश्वविद्यालयों में लगभग 235 मिलियन छात्र नामांकित हैं। यदि भारत भविष्य में एक महाशक्ति बनना चाहता है, तो यह केवल ज्ञान आधारित समाज के माध्यम से संभव होगा। इस लेख में हम बिहार में उच्च शिक्षा प्रणाली के सामने आने वाली समस्याओं और चुनौतियों पर चर्चा करेंगे। बिहार में 17 राज्य विश्वविद्यालय हैं, जिनमें प्रत्येक विश्वविद्यालय में मुख्यत: दो प्रकार के कॉलेज होते हैं- संविधानिक कॉलेज और संबद्ध कॉलेज। संविधानिक कॉलेज सरकारी कॉलेज के समान होते हैं, जबकि संबद्ध कॉलेज निजी कॉलेज के समान होते हैं। यह शोध मुख्य रूप से घटक कॉलेजों पर केंद्रित है। वर्तमान पत्र बिहार में उच्च शिक्षा प्रणाली के समक्ष विभिन्न मुद्दों और बाधाओं को उजागर करने का प्रयास करता है, जैसे कि निम्न सकल नामांकन अनुपात (GER), अपर्याप्त छात्र-शिक्षक अनुपात, सत्र में देरी, कॉलेज में छात्रों की खराब उपस्थिति, उचित प्रयोगशाला सुविधाओं की अनुपस्थिति, NAAC मान्यता, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का कार्यान्वयन आदि। यह एक अनुभवजन्य शोध है जो अवलोकनात्मक पद्धति पर आधारित है। उच्च शिक्षा ने समय के साथ संस्थानों और नामांकन के मामले में विस्तार किया है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं रहा है। वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली हमारे महान प्राचीन परंपरा से पूरी तरह से कट गई है। उच्च शिक्षा स्तर पर प्राथमिकता के आधार पर नवोन्मेषी और परिवर्तनकारी रणनीतियों को लागू करने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द:- उच्च शिक्षा, ज्ञान परंपरा, समस्याएँ, बाधाएँ।

परिचय

''शिक्षा मनुष्य में पहले से विद्यमान पूर्णता का प्रकट होना है।'' - स्वामी विवेकानंद।

भारतीय ज्ञान परंपरा का मानना है कि शिक्षा केवल मानवता के आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत नहीं है, बल्कि यह मानव आत्मा का प्रशिक्षण भी है। इसका उद्देश्य व्यक्ति का समग्र विकास करना है और यह मस्तिष्क, हृदय और मन के बीच संतुलन स्थापित करता है, जो आगे चलकर किसी की व्यक्तित्व को आकार देता है। शिक्षा किसी देश की आर्थिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जिसमें विशाल मानव संसाधन है; यह आने वाले वर्षों में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की उम्मीद है। इस विशाल मानव पूंजी के साथ, उच्च शिक्षा का दायरा अन्य देशों की तुलना में बहुत व्यापक है। इस परिप्रेक्ष्य में, हमें शिक्षा प्रणाली के सामने आने वाली बाधाओं को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 मौजूदा प्रणाली के कई मुद्दों को सुलझाने का प्रयास करती है। हालांकि, यह कहना कठिन है कि क्या यह अपने लक्ष्यों को पूरी तरह से प्राप्त करने में सफल होगी या नहीं।

भारत में, हम ''माँ सरस्वती'' को ज्ञान की देवी मानने और पहचानने की परंपरा रखते हैं। हमारे मूल मूल्य प्रणाली में वेद, उपनिषद और पुराण शामिल हैं। भगवद गीता मानवता को जीवन की गंभीर समस्याओं में प्रकाश और मार्गदर्शन प्रदान करती है, और न केवल मानव मस्तिष्क को जागृत करती है, बल्कि

मानव आत्मा को भी ताजगी देती है। वैदिक युग में महिला विद्वानों की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जिन्होंने भारतीय परंपरा को विकसित और समृद्ध किया। मैत्रेयी ने उपनिषदों की गहरी समझ रखी, जो आज भी विद्वानों को मार्गदर्शन करती है। यामी धर्म के सिद्धांत की पहली व्याख्याता थीं। लोपामुद्रा, जिन्हें कावेरी, कौशितिकी और वरप्रदा के नाम से भी जाना जाता है, प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य के अनुसार एक महान दार्शनिक मानी जाती थीं।[1] यह प्राचीन भारत में महिलाओं की शिक्षा और मुक्ति की मजबूत उपस्थिति को दर्शाता है।

भारत, एक ऐसा देश है जहाँ प्राचीन काल में शिक्षा के लिए पूरी दुनिया की नजरें थीं, और जो विश्व में तीसरे सबसे बड़े देश के रूप में जाना जाता है, इसके बावजूद इसके सामने कई चुनौतियाँ और समस्याएँ हैं। भारत का संविधान, 86वें संविधान संशोधन के द्वारा, ''शिक्षा का अधिकार'' को अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार के रूप में घोषित करता है। भारत सदियों से उच्च शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र रहा है।[2] शिक्षा एक राष्ट्र के विकास प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता है, और आर्थिक विकास भी शिक्षा पर निर्भर करता है। तक्षशिला को विश्व का सबसे पुराना विश्वविद्यालय माना जाता है। ''नालंदा महाविहार'', विक्रमशिला और कई बौद्ध मठ भारत में उच्च शिक्षा के विशिष्ट केंद्रों के उदाहरण हैं, जो अपने समय से बहुत आगे थे। ये संस्थान बिहार में स्थित थे और दूर-दूर के विदेशी शिक्षार्थियों और विद्वानों के लिए ज्ञान के एकमात्र केंद्र थे। इन उच्च शिक्षा संस्थानों का मुख्य उद्देश्य वेदों का ज्ञान प्रदान करना था, जो आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है। इस गौरव का उल्लेख कई विदेशी यात्रियों की रचनाओं में मिलता है, जिन्होंने उन समयों में भारत का दौरा किया ताकि वे वहां के उच्च शिक्षा प्रणाली को देख सकें और यह जान सकें कि उनकी शिक्षण प्रक्रिया कितनी सफल और संगठित थी।[3]

हमारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली मुख्यत: उपनिवेशीय विरासत और अंग्रेजी शिक्षा के ढांचे पर आधारित है। बिहार में सत्रह राज्य विश्वविद्यालय हैं। इस प्रणाली की अवधारणा का उद्देश्य भारत की सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण था। यूनेस्को के अनुसार, दुनिया भर में विभिन्न विश्वविद्यालयों में लगभग 235 मिलियन छात्र नामांकित हैं। ब्रिटिश काल के दौरान 1857 में मुख्यत: कलकत्ता, बंबई और मद्रास विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। इसके पूर्व, विदेशी आक्रमण और ब्रिटिश शासन ने पारंपरिक भारतीय शिक्षा प्रणाली को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट कर दिया। भारत सरकार अधिनियम 1935 को शिक्षा प्रणाली के भारतीयकरण की दिशा में एक कदम माना जा सकता है, क्योंकि इसने शारीरिक और व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया। स्वतंत्रता के बाद, कई चुनौतियों के बावजूद, उच्च शिक्षा प्रणाली को मजबूत आधार देने के लिए कई सकारात्मक कदम उठाए गए। सरकार ने भारत में उच्च शिक्षा के विकास की निगरानी के लिए विश्वविद्यालय शिक्षा प्रणाली की स्थापना की।[4] बदलते वैश्विक परिदृश्य और वैश्वीकरण की शुरुआत के साथ, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र को शामिल करने की दिशा में कदम बढ़ाया गया।

अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बिहार में उच्च शिक्षा के समक्ष प्रमुख मुद्दों को समझना है। यह बिहार के उच्च शिक्षा क्षेत्र पर भी प्रकाश डालेगा, जो वर्तमान में कई संरचनात्मक और कार्यात्मक परिवर्तनों से गुजर रहा है। यह अध्ययन राज्य में उच्च शिक्षा के वर्तमान परिदृश्य की पहचान और विश्लेषण भी करेगा।

परिकल्पना

बिहार की उच्च शिक्षा कठिन समय से गुजर रही है - इसके सामने कई मुद्दे और चुनौतियाँ हैं जिन्हें प्राथमिकता के आधार पर हल करने की आवश्यकता है।

विधि

यह एक अनुभवजन्य अनुसंधान है जो अवलोकनात्मक विधि पर आधारित है।

समस्याएँ और चुनौतियाँ

बिहार एक ऐसा राज्य है जिसकी जनसंख्या घनत्व सबसे अधिक है, लेकिन इसके पास भारत के अन्य राज्यों की तुलना में कॉलेजों की संख्या कम है। स्थिति अत्यंत चिंताजनक है क्योंकि कॉलेज अपनी क्षमता से अधिक छात्रों को सेवा प्रदान कर रहे हैं। राज्य में सत्रह राज्य विश्वविद्यालय हैं। विश्वविद्यालय में मुख्य रूप से संवैधानिक और संबद्ध कॉलेज शामिल हैं, जिन्हें क्रमश: सरकारी और निजी कॉलेज के रूप में देखा जा सकता है। भारत में सकल नामांकन अनुपात (GER) 27.3% है। अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE) के अनुसार, बिहार का GER(2020-21) 2020 में 14.5% से बढ़कर 19% हो गया है, जो फिर भी राष्ट्रीय औसत से कम है। भारत का जीईआर विकसित देशों की तुलना में कम है। बिहार में एक कॉलेज में औसत नामांकन 1858 है, जो दिल्ली, अरुणाचल प्रदेश और चंडीगढ़ के बाद तीसरा सबसे अधिक है। इस असमानता के अलावा, संस्थानों का आकार भी भिन्न है, क्योंकि कई कॉलेजों में हजारों छात्रों का नामांकन है, जबकि कुछ संस्थान छोटे आकार के हैं। उदाहरण के लिए, चार कॉलेजों में 10,000-16,000 छात्रों का नामांकन है, जबकि संस्कृत कॉलेजों में औसत नामांकन केवल 237 है। बिहार में उच्च शिक्षा क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संस्थानों की घनत्व को बढ़ाना आवश्यक है।

शिक्षक-छात्र अनुपात इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है, बिहार में शिक्षक-छात्र अनुपात बहुत कम है। संबंधित कॉलेजों में छात्रों की संख्या लगभग 23.55 लाख है। कई पद अभी भी खाली हैं, जिनके लिए शिक्षकों की आवश्यकता है। भर्ती प्रक्रिया या तो विलंबित है या किसी न किसी कारण से न्यायालय में है, जो कि असामान्यताओं के कारण है। यह बिहार में होने वाली किसी भी भर्ती के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय बन गया है, और इसकी प्रामाणिकता अक्सर सवालों के घेरे में रहती है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के अनुसार, स्नातकोत्तर स्तर पर मानक छात्र-शिक्षक अनुपात 10:1 है, जबकि स्नातक स्तर पर यह 25:1 है। 2009-10 में इस छात्र-शिक्षक अनुपात का राष्ट्रीय औसत 25:1 था, जबकि बिहार में यह 39:1 था। उपलब्ध जानकारी में शिक्षकों की संख्या की पर्याप्तता का उल्लेख है, लेकिन शिक्षकों की गुणवत्ता और प्रशिक्षण का मूल्यांकन करना कठिन है।[5]

राज्य में नामांकन की तुलना में, कक्षाओं की संख्या और आकार अपर्याप्त हैं। कई कॉलेज अभी भी तकनीकी रूप से सक्षम नहीं हैं, क्योंकि उनके पास स्मार्ट बोर्ड और ई-लाइब्रेरी जैसी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं हैं। यह आवश्यकता महामारी के दौरान भी स्पष्ट हुई, जब इन सुविधाओं की कमी के कारण शिक्षक ज्ञान प्रदान करने में असमर्थ रहे, जबकि उनकी उपस्थिति संस्थान में अनिवार्य थी। इस खराब पहुंच के परिणामस्वरूप न केवल शैक्षणिक हानि हुई, बल्कि सत्र में भी देरी हुई, और संस्थान अभी भी इससे उबरने में असमर्थ हैं। इस संदर्भ में एक और चिंता यह है कि छात्रों की अधिक संख्या के कारण परीक्षा का आयोजन अक्सर एक थकाऊ कार्य बन जाता है, जिसमें शिक्षकों की पूरी भागीदारी की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, यह कॉलेजों के सभी उपलब्ध कक्षाओं की भी मांग करता है। कई कॉलेजों पर अभी भी इंटरमीडिएट कक्षाओं का दबाव है। हाल ही में, कॉलेजों को हर महीने इंटरमीडिएट परीक्षाएं आयोजित करने के लिए कहा गया है, जिससे पूरी तरह से अराजकता उत्पन्न हो गई है। यह न केवल शैक्षणिक स्टाफ पर शारीरिक और मानसिक रूप से बोझ डालेगा, बल्कि यह उन शिक्षकों के शैक्षणिक कार्य में पूरी तरह से गिरावट का कारण बनेगा, जो मुख्य रूप से अंडरग्रेजुएट और पोस्टग्रेजुएट छात्रों को पढ़ाने के लिए हैं। यह संस्थानों की शैक्षणिक गति को बाधित कर रहा है, जो दशकों के बाद अब गति पकड़ रही है। राज्य में देरी से सत्र आयोजित करना एक सामान्य प्रथा बन गई है। एक स्नातक छात्र को पाठ्यक्रम पूरा करने में लगभग पांच वर्ष लगते हैं, जबकि एक स्नातकोत्तर छात्र को औसतन तीन वर्ष लगते हैं। महामारी ने इस स्थिति को और भी बढ़ा दिया है।

कॉलेज में खराब उपस्थिति एक अन्य चुनौती है जो मुख्य रूप से चिंता का विषय है। विशेष रूप से, कई विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए उचित योजना प्रक्रिया का अभाव है। कई छात्र दूरस्थ कॉलेजों में प्रवेश लेते हैं, जो उनके घरों से काफी दूर होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन की पहुंच तेज और सस्ती नहीं होती, बल्कि यह अक्सर महंगी और कठिन होती है। ऐसे क्षेत्रों के छात्र केवल डिग्री के लिए नामांकन कराते हैं और अपनी आजीविका के लिए कुछ न कुछ काम करते रहते हैं। यह स्थिति शिक्षा के बजाय डिग्री पर अधिक केंद्रित है। राज्य सरकार द्वारा दी जा रही राज्य वित्त पोषित मुफ्त योजनाएँ या उपहार शिक्षा प्रणाली को भविष्य में पूरी तरह से नष्ट कर सकती हैं, यदि समय पर इसका ध्यान नहीं दिया गया। विशेष रूप से लड़कियों की उपस्थिति भी कम है, जिसके पीछे के कारणों में जल्दी विवाह, पारिवारिक दबाव, पारंपरिक सोच और जागरूकता की कमी शामिल हो सकते हैं। इस संदर्भ में उचित प्रयोगशाला सुविधाएं एक प्रमुख चिंता का विषय हैं, क्योंकि कई प्रयोगशालाओं की खराब देखभाल विज्ञान संकाय के छात्रों के लिए समस्याएं उत्पन्न कर रही है। कई संस्थानों में प्रयोगशाला सहायक की कमी है। वास्तव में, कई कॉलेजों में सामाजिक विज्ञान और भाषा प्रयोगशालाओं की भी अनुपलब्धता है। बिहार के विश्वविद्यालयों में नई विकल्प-आधारित क्रेडिट प्रणाली (CBCS) को NEP 2020 के आधार पर लागू किया गया है, और यह विडंबना है कि विशाल नामांकन के बावजूद, यहां बहुत कम संकाय और विषय विशेषज्ञ हैं। कई नए पाठ्यक्रमों में भी विषय विशेषज्ञों की कमी है।

बिहार के महिला कॉलेजों को वित्तीय संकट का सामना करना पड़ रहा है, क्योंकि राज्य में लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा नि:शुल्क है। ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों की सामान्य मानसिकता केवल डिग्री प्राप्त करने की होती है, ज्ञान अर्जित करने की नहीं। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा का स्तर गिर रहा है, जो केवल डिग्री केंद्रित हो गया है। कई कॉलेजों को NAAC द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं है; 272 कॉलेजों में से केवल 38 कॉलेजों को छ।ब् मान्यता प्राप्त है। हाल ही में, राज्य सरकार और राज भवन के बीच जनर्ता युद्ध एक सामान्य घटना बन गई है। सभी कॉलेजों में से केवल दो कॉलेज, पटना महिला कॉलेज और सेंट जेवियर्स कॉलेज ऑफ एजुकेशन, स्वायत्त हैं और 'A' ग्रेड के साथ मान्यता प्राप्त हैं। वर्तमान में, कोई भी विश्वविद्यालय NAAC से ग्रेड। प्राप्त नहीं कर सका है। हाल ही में, ए एन कॉलेज, पटना को 'A+ ग्रेड दिया गया है।[6] बिहार के उच्च शिक्षा संस्थानों में विशेष रूप से विकलांग छात्रों के लिए उचित सुविधाओं की कमी है। कॉलेजों में विकलांग छात्रों के लिए आवश्यक आधारभूत संरचनात्मक समर्थन का अभाव है। यहां तक कि उनके लिए बुनियादी आवश्यकताओं जैसे उचित शौचालय और रैंप जैसी चीजों की भी कमी है, साथ ही कई वास्तु संबंधी बाधाएं भी मौजूद हैं। इस संदर्भ में, 2017 में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय महत्वपूर्ण है, जिसमें कहा गया था कि उच्च शिक्षा के संस्थान जो विकलांग व्यक्तियों के लिए सुविधाओं की कमी रखते हैं, वे भेदभाव के समान हैं।[7]

बिहार एक ऐसा राज्य है जहाँ मानव संसाधन की प्रचुरता है, लेकिन अवसरों और विकास की कमी के कारण मानव पूंजी राज्य छोड़ने के लिए मजबूर है। राज्य में बहुराष्ट्रीय कंपनियों, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) और स्टार्टअप संस्कृति की बहुत कमी है, जो राज्य के समग्र विकास और प्रगति में बाधा उत्पन्न करती है।

नई शिक्षा नीति 2020 का कार्यान्वयन उस राज्य में कठिनाई से संभव है, जो अत्यधिक बोझिल और संसाधनों की कमी का सामना कर रहा है, साथ ही राजभवन और राज्य सरकार के बीच खींचतान के कारण अस्थिरता का सामना कर रहा है। इस कठिन परिस्थिति में CBCS एक मजाक बनकर रह जाता है, जहां विषयवार नामांकन लगभग 500 है, जबकि केवल 2-3 संकाय उपलब्ध हैं। वास्तव में, यह एक समग्र प्रबंधन प्रणाली की तरह प्रतीत होता है। कॉलेज के बाद रोजगार की समस्या उच्च शिक्षा में भी एक चुनौती है, और राज्य सरकार को उच्च शिक्षा के लिए वित्त पोषण बढ़ाने के उपायों पर काम करना चाहिए।[8]

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में, हम यह कह सकते हैं कि जबकि उच्च शिक्षा के संस्थानों और नामांकन के मामले में समय के साथ विस्तार हुआ है, यह पर्याप्त नहीं है। वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली हमारी पारंपरिक ज्ञान परंपरा से पूरी तरह से अलग है। NEP 2020 के अनुसार विभिन्न सिफारिशें की गई हैं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। बिहार में उच्च शिक्षा स्तर पर नवाचार और परिवर्तन की रणनीतियों को लागू किया जाना चाहिए। आवश्यक बुनियादी ढांचे के विकास के लिए बिहार के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को अनुदान प्रदान किया जाना चाहिए। अंत में, एक मजबूत इच्छाशक्ति और प्रशासनिक तत्परता तथा प्रभावशीलता वर्तमान परिस्थितियों में राज्य में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है। एक जागरूक नेतृत्व जो दृष्टि रखता है, निश्चित रूप से इस क्षेत्र की प्रगति की दिशा में मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

संदर्भ

1. गर्ग, जी. आर. (1992). हिंदू विश्व की विश्वकोश, ISBN 978-81-7022-374-0।
2. भवन, आर. (2023). यूनेस्को. ORG.K governor.bih.nic.in, 3. बिहार, भारत वेबसाइट।
3. कुमार, एन. (2023). समग्र और बहुविषयक शिक्षा का अध्ययन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के विशेष दृष्टिकोण में इसके प्रमुख चुनौतियाँ। शोध साड़ी-एक अंतरराष्ट्रीय बहुविषयक पत्रिका, 02(01), 44-53।
4. संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन। (2023). ORGA
5. AISHE, शिक्षा मंत्रालय।
6. AISHE, रिपोर्ट 20-21। टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित, 12 मई, 2022।
7. हिंदुस्तान टाइम्स। (03 अगस्त, 2023)।
8. लायेक, पी. (2023). भारत में उच्च शिक्षा: अवसर, चुनौतियाँ और समाधान। शोध साड़ी-एक अंतरराष्ट्रीय बहुविषयक पत्रिका, 02(01), 54-60।

कृषि आधुनिकीकरण का किसानों पर आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव: राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में

सुभाष ईशरवाल

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ० कान्ता चौधरी

सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक, अर्थशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सारांश

अधिकांश सर्वेक्षणों के अनुसार, 2030 तक खाद्यान्न मांग में 25% की वृद्धि होने की उम्मीद है, जबकि 2050 तक इसके 70% तक बढ़ने की उम्मीद है।

आधुनिक खेती सभी की खाद्यान्न मांग को पूरा करने का सबसे अच्छा तरीका है। अधिकांश पिछड़े क्षेत्रों या ग्रामीण भारत में पारंपरिक खेती अभी भी प्रचलित है, जिन्हें आधुनिक कृषि, तकनीक, विज्ञान के बारे में पता नहीं है। इसके विपरीत, पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश आधुनिक खेती को प्राथमिकता देने वाले पहले राज्य थे और समय के साथ आधुनिक तकनीकों, प्रयोगों और विज्ञान का उपयोग बढ़ाते रहे हैं। राजस्थान में भी पिचले दशक से आधुनिक कृषि की तरफ रुझान बढ़ा है।

आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण एवं वैश्वीकरण से शिक्षा व तकनीकी ज्ञान का प्रसार हुआ है और किसानों के जीवन में आशातीत परिवर्तन हुआ है। विकास व परिवर्तन के संबंध में प्रमुख पहलू

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक है। जहां परंपरागत खेती के तरीकों में परिवर्तन व विकास की गति तीव्र है वहीं सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक पहलुओं में विकास और परिवर्तनकी गति धीमी है।

कृषि में आधुनिकीकरण से स्थानीय कृषकों की सामाजिक एवं आर्थिक हालात में सुधार हुआ है। पॉली कृषि, ग्रीन हाऊस कृषि आदि से बेमौसम में भी फसलों का उत्पादन संभव हुआ है। आधुनिकीकरण से व्यापारिक फसलों में वृद्धि तथा खाद्यान्न फसलों में कमी हुई है।

वर्तमान में राजस्थान में जल संकट और भूमि क्षरण जैसी चुनौतियाँ बढ़ने के कारण कृषि के आधुनिकीकरण का प्रभाव बड़े किसानों तक सीमित रह गया है।

मूल शब्दः कृषि, आधुनिकीकरण, डिजिटल खेती, ट्रैक्टर, मशीनीकरण, ट्यूबवेल, हाइब्रिड बीज, रासायनिक उर्वरक, किसान, आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव

प्रस्तावना

कृषि एक महत्वपूर्ण प्राथमिक क्रिया कलाप है। हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है यहाँ प्राचीन काल से ही कृषि संस्कृति विकासोन्नमुखी रही है।

वर्तमान में यहाँ कृषि का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। इस कृषि आधुनिकीकरण में नई तकनीकों रासायनिक उर्वरकों, मशीनों, उन्नत बीजों, कीटनाशक औषधियों का प्रयोग किया जाने लगा है। अतः कृषि के आधुनिकीकरण का अभिप्राय कृषि कार्यों में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों का समग्र उपयोग से है।

औद्योगिक क्रांति से पहले, अधिकांश लोग भोजन, कपड़े और आश्रय जैसी अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए खेती पर निर्भर थे। उन्हें वैश्विक बाजार की बहुत कम समझ थी और पारंपरिक खेती या जैविक खेती के तरीकों के इस्तेमाल के कारण वे अपेक्षाकृत कम उत्पादन करते थे। लेकिन तब से चीजें बदल गई हैं।

आधुनिक खेती

पुरानी व्यवस्थाओं में निहित अलगाव के विपरीत, आधुनिक कृषि सफलता को संसाधनों, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, निवेश, बाजारों और सरकारी नीतियों का समर्थन करने की पहुँच के संबंधों पर निर्भर मानती है।

मशीन शक्ति और प्रौद्योगिकी का उपयोग पौधों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक मिट्टी की स्थिति का उत्पादन करने के लिए किया जाता है, जबकि कम से कम व्यवधान और मिट्टी की हानि होती है। फसलों और पशुधन के लिए बेहतर आनुवंशिकी का उपयोग पैदावार, गुणवत्ता और विश्वसनीयता में सुधार करने के लिए और पर्यावरण की रक्षा के लिए आधुनिक आनुवंशिक और अन्य तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

आधुनिक कृषि की सफलता विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा को बढ़ाने के लिए कुशल, प्रभावी सिंचाई तक पहुँच के साथ-साथ नुकसान से बचने और प्रभावी ढंग से माल बेचने के लिए बेहतर कटाई, हैंडलिंग और भंडारण उपकरण और प्रक्रियाओं पर भी निर्भर करती है। बदले में, यह उत्पादन विपणन प्रणाली में प्रौद्योगिकी, उपकरण, सूचना और भौतिक सुविधाओं तक पहुँच प्रदान करने के लिए सार्वजनिक और निजी निवेश दोनों पर निर्भर है।

खेती के आधुनिक तरीके ऊपर सूचीबद्ध खेती तकनीकों के अलावा, भारत के विभिन्न हिस्सों में अतिरिक्त तरीकों का उपयोग किया जाता है। इनमें से कई भारत में पारंपरिक खेती के तरीकों के दायरे में नहीं आते हैं।

इसमें निम्नलिखित पद्धतियाँ शामिल हैं:

एरोपोनिक्स सिस्टम

एरोपोनिक्स मिट्टी की आवश्यकता के बिना हवा या धुंध में पौधों को उगाने की विधि है। यह हाइड्रोपोनिक्स का एक उपप्रकार है, जो पौधे की जड़ को हवा में निलंबित करके काम करता है। यदि किसान इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं, तो उनके पास पानी की मात्रा पर अधिक नियंत्रण होगा।

एक्वापोनिक्स

एक्वापोनिक्स एक बंद लूप प्रणाली है जो जलीय कृषि और कृषि के बीच सहजीवी संबंध से निषेचन पर बहुत अधिक निर्भर करती है। यह कृषि तकनीक पारंपरिक जलीय कृषि को हाइड्रोपोनिक्स के साथ जोड़ती है।

हाइड्रोपोनिक्स

हाइड्रोपोनिक्स विधि एक गंदगी रहित खेती का तरीका है जिसमें किसी भी तरह की मिट्टी का उपयोग नहीं किया जाता है। इस तकनीक में खनिज युक्त पानी जैसे पोषक तत्वों का उपयोग करके ठोस माध्यम की आवश्यकता के बिना स्वस्थ पौधे उगाना शामिल है।

मोनोकल्चर

इस दृष्टिकोण में एक निर्दिष्ट कृषि क्षेत्र में एक ही फसल की खेती शामिल है। हालाँकि, भारत जैसे देश में, मोनोकल्चर खेती का अभ्यास अक्सर इस्तेमाल नहीं किया जाता है। इनडोर खेती, जैसे औषधीय पौधे उगाना, मोनोकल्चर की श्रेणी में आता है। मोनोकल्चर एक आधुनिक कृषि पद्धति है जिसमें एक ही फसल या पौधे की खेती की जाती है।

आधुनिक कृषि का महत्व

आधुनिक प्रणालियों द्वारा आपूर्ति किए जाने वाले अधिक भोजन के कारण, करोड़ों व्यक्ति अपनी क्षमता का अधिक लाभ उठाने में सक्षम हुए हैं।

बेहतर जीवन की बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक उपलब्धता कार्यबल उत्पादकता को बढ़ाता है और मानव विकास तथा प्रगति को बढ़ावा देता है। भूख और कुपोषण के वर्तमान स्तर, जो एक अरब लोगों को प्रभावित करते हैं, अपर्याप्त नीतियों, कम उत्पादकता और कम आय का परिणाम हैं।

भौतिक पर्यावरणीय बाधाएँ, जो अधिक महत्वपूर्ण सार्वजनिक मुद्दे बन गए हैं, आधुनिक कृषि द्वारा काफी हद तक कम हो गई हैं, जिससे निम्न में कमी आई है:

1. भूमि क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता, कमजोर भूमि और वनाच्छादित क्षेत्रों में खेती करने के दबाव को कम करना। आधुनिक कृषि में जैव प्रौद्योगिकी जैसी सफल नई तकनीकों को शामिल किया गया है, जिससे पर्यावरणीय प्रभावों को कम करते हुए पैदावार में वृद्धि की अनुमति मिलती है। इससे प्रति इकाई पैदावार में इस्तेमाल होने वाली भूमि, उर्वरक और कीटनाशकों की मात्रा कम हो जाती है।
2. प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी और हैंडलिंग में प्रगति रोगजनकों में कमी और कटाई के बाद होने वाले नुकसान में महत्वपूर्ण कमी के माध्यम से खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है, जिससे खाद्य आपूर्ति में वृद्धि होती है।
3. उपभोक्ताओं को आधुनिक कृषि से आर्थिक और सामाजिक दोनों रूप से बहुत लाभ होता है।
4. खाद्य कीमतों में गिरावट के कारण जीवन की गुणवत्ता और जीवन स्तर में वृद्धि होती है। यह प्रभावी रूप से उपभोक्ता आय में सुधार करता है क्योंकि यह शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, अवकाश आदि जैसे अन्य उपभोक्ता उत्पादों के लिए अधिक क्रय शक्ति मुक्त करता है।
5. आधुनिक कृषि खाद्य उपलब्धता को बढ़ाकर, खाद्य गुणवत्ता में सुधार करके और इसे अधिक लोगों के लिए सुलभ बनाकर वैश्विक राजनीतिक स्थिरता में योगदान देती है।

आधुनिक कृषि के लाभ

इसमें उत्पादन समय को कम करके उत्पादों की कीमत और मात्रा में वृद्धि की क्षमता है। परिष्कृत खेती में आधुनिक भंडारण तकनीक का उपयोग किया जाता है, जिससे खाद्यान्न की बर्बादी कम होती है। इसका उपयोग फसलों को सुंदर ढंग से पानी देने के लिए किया जाता है। आधुनिक उपकरण किसानों के प्रयासों को कम कर सकते हैं। मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। फसल संरक्षण आधुनिक खेती का एक महत्वपूर्ण पहलू है। पर्यावरण पर बुरा प्रभाव कम पड़ता है। HYV बीजों के उपयोग ने उत्पादकता को बहुत बढ़ा दिया है।

भारत में आधुनिक कृषि

भारत की लगभग 69% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवासित है, जो मुख्यत: कृषि कार्यों में संलग्न है। भारतीय अर्थव्यवस्था में लगभग 14% का योगदान करने वाली कृषि, जीवन का प्रमुख आधार भी है। अत: हम कह सकते है कि कृषि की समृद्धि, विकास तथा उत्पादकता पर ही देश का विकास व सपन्नता निर्भर है। भारतीय कृषि की संरचना में गत दशकों में तीव्र परिवर्तन परिलक्षित हुए है। हमारे देश में जोतों का आकार लगातार छोटा होता जा रहा है। देश में लगभग 83.5% छोटे किसान है।

हमारे देश की बढ़ती जनसंख्या का पोषण हरित क्रांति के विकास ने बखूबी वहन किया है। देश में 1966-67 में हरित क्रांति का विकास हुआ। इसने खाद्यान्न उत्पादन में दोगुनी-तिगुनी वृद्धि ला दी। अब कृषि कार्य आधुनिक तकनीकों द्वारा संपादित होने लगा। यद्यपि हरित क्रांति ने कृषि उत्पादन कों तीव्र वृद्धि प्रदान कि परन्तु यह पूरे देश में समान रूप से लागू नहीं हो सकी। तथा यह कुछ चुनिंदा फसलों पर ही लागू हो पायी।

हालांकि हरित क्रांति से खाद्यान्नों में तीव्र वृद्धि हुई परन्तु जनसंख्या में वृद्धि उससे भी तीव्र गति से हुई जिससे देश में खाद्यान्न सकंट की स्थिति हो गयी।

राजस्थान में आधुनिक कृषि

भारतीय अर्थव्यवस्था के तर्ज पर ही राजस्थान राज्य की अर्थव्यवस्था में भी कृषि की प्रधानता है यहाँ पिछले कुछ दशकों से कृषि क्षेत्र में लगातार यंत्रीकरण, सिंचाई, कीटनाशक दवाईयों, तथा रासायनिक, खादों के उपयोग के साथ ही नवीन कृषि की पद्धति व तकनीकों में सुधार जारी है।

राज्य में नकदी फसलों के उत्पादन का अधिक महत्व दिया जाने लगा है यहाँ सरसो, प्याज, बागवानी तथा वर्तमान में पाली हाऊस में कृषि उत्पादन किया जा रहा है। राज्य सरकार द्वारा भी किसानों को सस्ते बीज, मशीने तथा फसल बीमा के साथ-न्यूनतम समर्थन मूल्य देकर प्रोत्साहित किया जा रहा है।

यहाँ के किसान आधुनिक तकनीकों का प्रयोग कर कृषि कर रहे है। यहा नई मशीनों के साथ नई किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक कीटनाशक औषधियों आदि बखूबी प्रयोग में लायी जा रही है।

वर्तमान में कृषि के आधुनिकीकरण के कारण जिले में कृषि भूमि का अवनयन हो रहा है जिससे मृदा उर्वरता में कमी तथा पर्यावरण लगातार प्रदूषित हो रहा है।

किसानों के सामाजिक जीवन पर आधुनिकीकरण का प्रभाव

भारतीय किसान परिवारों में संयुक्त परिवार प्रथा, मुखिया का परिवार पर सत्ताधिकार, परिवार का कृषि पर आधारित जीवन, परंपराओं की प्रधानता, धार्मिक विश्वासों और पूर्वजों की पूजा आदि इसकी प्रमुख विशेषता थी। आधुनिकीकरण के कारण किसान परिवारों में सबसे बड़ा सामाजिक परिवर्तन यह पड़ा कि, संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकाकी परिवार उभरकर सामने आने लगे है। परिवार के मुखिया की स्थिति कमजोर हुई है, अब युवा पीढ़ी भी खुद निर्णय लेने लगी हैं।

आधुनिकीकरण के प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार हैं-

i. संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकाकी परिवारों ने स्थान ले लिया है
ii. परिवार के मुखिया की स्थिति का ह्रास हुआ हैं, पहले परिवारों के विवादो का समाधान परिवार का मुखिया/वृद्ध व्यक्ति द्वारा ही किया जाता था। आज परिवारिक विवादों के समाधान का प्रमुख केंद्र न्यायालय है।
iii. परंपराओं, प्रथाओं, लोकाचारों एवं धार्मिक विश्वासों के बंधन ढीले पड़ते जा रहे हैं। आधुनिकीकरण के इन परिवर्तनों ने कुछ नवीन समस्याओं को जन्म देने के बावजूद भी किसान के जीवन को काफी हद तक प्रगतिशील बनाने में योगदान दिया है।

जाति पंचायतों में परिवर्तन

किसान समुदाय मे आधुनिकीकरण के कारण किसान समुदायों में जाति पंचायतों की संरचना में बहुत तेजी से विघटन हुआ है। आधुनिकीकरण एवं औद्योगिकरण के कारण विभिन्न जातियों और धर्मों के लोगों के बीच सामाजिक संपर्क बढ़ने लगे हैं। जिसके फलस्वरूप जाति पंचायतों केफैसले, जाति बहिष्कार और अन्य प्रकार के दंड का कोई व्यवहारिक प्रभाव नहीं रहा गया।

आधुनिकीकरण के कारण अब गांवो में स्वतंत्रता, समानता और धर्मनिरपेक्षता जैसे विशेषताओं का प्रसार हुआ है जिससे जाति पंचायतों का प्रभाव कम हुआ है।

आधुनिकीकरण के कारण धार्मिक कर्म-कांडों में परिवर्तन

किसानों का मुख्य व्यवसाय कृषि है और कृषि प्रकृति पर निर्भर है इसलिए प्राकृतिक शक्तियों मेंकिसानों का अटूट विश्वास है और किसान उनकी पूजा एव आराधना में ही अपना भला समझते हैं, किसान जब चारों ओर से निराश हो जाता है तो वह ईश्वर की शरण में आता है। धर्म वैज्ञानिकता और तर्क से भी लोगों को दूर करता है जिससे धर्म के नाम पर तनाव, संघर्ष, दंगे होते हैं।

आधुनिकीकरण के प्रभाव से किसानों के धार्मिक अंधविश्वास में कमी आ रही है। जन्म-मृत्यु, विवाह और जीवन के अन्य क्षेत्रों में आधुनिकीकरण व शिक्षा के कारण धार्मिक रूढ़ियों को किसान अब कम महत्व देने लगे हैं।

आधुनिकीकरण के कारण विवाह संबंधों और मनोरंजन में बदलाव

आधुनिकीकरण के कारण किसानों में विवाह संबंधों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है जिससे बाल विवाह मे कमी आई है। आधुनिकीकरण के कारण किसानों के मनोरंजन के साधनों में भी परिवर्तन आ गया है। अब वे नाटक या स्वांग देखने के बजाय सिनेमा देखना अधिक पसंद करते हैं। साथ ही कबड्डी, कुश्ती के स्थान पर क्रिकेट, वॉलीबॉल खेलना पसंद करते हैं।

आधुनिकीकरण द्वारा कृषि में परिवर्तन

हरित क्रांति, श्वेत क्रांति और नीली क्रांति आधुनिकरण के कारण आई है। किसानों द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक चीजों का प्रयोग निम्नलिखित रुप से किया जा रहा है-

i. किसानों द्वारा खेत जोतने के लिए, अब बैलों की जगह ट्रैक्टर का प्रयोग किया जा रहा है।
ii. आधुनिकीकरण से एक ही मौसम में कई फसलों को, वैज्ञानिक ढंग से उत्पन्न करना
iii. प्राचीन कृषि पद्धति की जगह नवीन वैज्ञानिक कृषि पद्धति को प्रोत्साहित करना
iv. फसल को कीड़ों-मकोड़ा से बचाने के लिए कीटनाशकों एवं औषधियों का प्रयोग करना
v. रसायनिक उर्वरकों का उपयोग- देश में हरित क्रांति लाने में उर्वरको का महत्वपूर्ण योगदान है।
vi. कृषि क्षेत्र में यंत्रीकरण - पहले किसान बैल, हल और कुएं के अलावा अन्य बातों से सामान्यत: अनभिज्ञ थे। आज विज्ञान और तकनीकी के विकास के कारण बहुत से कृषि यंत्रों का प्रयोग होने लगा है।
vii. सिंचाई क्षमता - आधुनिकीकरण के कारण सिंचाई सुविधाओं में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। अब क्यारी धोरों के स्थान पर स्प्रिंकलर सिस्टम, बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति, का उपयोग होने लगा है। साथ ही डिजिटल खेती के अंतर्गत ग्रीन-हाउस, नेट- हाउस, पॉलीहाउस आदि से कृषि क्षेत्र में काफी विकास हुआ है।

किसानों पर आधुनिकीकरण से सामाजिक ढांचे में विसंगतिया भी बढ़ रही है, जैसे- संयुक्त परिवार का टूटना। संयुक्त परिवार टूटने से खेत के भी टुकड़े हो जाते हैं। छोटे होते खेत जोत

किसानों के लिए कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न करते हैं। वृद्धों के प्रति अनादर की भावना बढ़ रही है और व्यक्तिवाद पनप रहा है।

खेती में अधिक फसल प्राप्त करने के लिए अत्यधिक मात्रा में भूमिगत जल, खाद, और कीटनाशकों का प्रयोग किया जा रहा है जिससे पर्यावरण संबंधित समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। भूमि का जल स्तर भी निरंतर गिरता जा रहा है, साथ ही यंत्रीकरण के उपयोग से कृषि श्रमिकों में बेरोजगारी जैसी समस्याओं उत्पन्न होती जा रही है।

किसानों पर पश्चिमीकरण का प्रभाव

किसानों के रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान, शिक्षा, रूचियो, पारिवारिक संगठन, धर्म, नैतिकता, परंपराओं, पर्दा प्रथा, रीति-रिवाज, सामाजिक व्यवस्था एवं जीवन पद्धति में आशातीत परिवर्तन आए हैं। किसानों के कपड़ों पर ही नहीं पश्चिमीकरण से विचारधाराओं और दर्शन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है।

युवा किसानों में धोती कुर्ते के स्थान पर पेंट कमीज का प्रचलन बढ़ गया है। परिवारों के सदस्यों के प्रति संबोधन में मां-बाप की जगह मम्मी-डैडी का प्रचलन बढ़ गया है। खान-पान से लेकर जीवनशैली सब पर पश्चिमीकरण का प्रभाव साफ दिखाई देता है।

किसानों पर वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण के कारण पहले अपने समुदाय से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृषि करने वाला भारतीय कृषक, अब अतिरिक्त लाभ के उद्देश्य से वस्तुओं का उत्पादन करता है।

वैश्वीकरण ने भारतीय 'कृषक' को 'किसान' बना दिया है। वैश्वीकरण ने मशीनीकरण, उन्नत तकनीक और हाइब्रिड बीजो, उर्वरको आदि की आसान पहुंच बना दी है। जिससे उत्पादकता और फसल की प्रगति पर भारी सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव भी है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया से पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता है और प्रतिस्पर्धा की वजह से राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुंचता है।

निष्कर्ष

आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, एवं वैश्वीकरण से किसानों पर सामाजिक व आर्थिक प्रभाव एवं परिवर्तन साफ दिखाई देता है। पहले से किसानो सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुधरी है।

परिवर्तन एवं विकास की गति के संबंध में मुख्य पहलू सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक है। जहां आधुनिकीकरण केपरिणामस्वरूप परम्पागत खेती के तरीकों में परिवर्तन एवं विकास की गति तीव्र है, वहीं सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पहलुओं में बहुत धीमी गति से परिवर्तन हो रहा है। अभी

भी किसान पूरी तरह से परंपराओं, अंधविश्वासों, झाड़-फूंक, जादू-टोना, पर्दा प्रथा, मृत्यु भोज, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह आदि कुरीतियों और बुराइयों से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सके हैं। आर्थिक परिवर्तन की गति तीव्र है, खेतों में नवाचारा, यंत्रीकरण, डिजिटल खेती एवं शिक्षा के कारण तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है।

आधुनिकीकरण के फलस्वरुप एकाकी परिवार की प्रवृत्ति बढ़ी है। व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिलने से खेतों के बंटवारे हो रहे हैं और खेत जोत छोटे होते जा रहे हैं।

हरित क्रांति के पश्चात खेतों में ट्रैक्टर, स्प्रिंकलर सिस्टम,ड्रिप इरीगेशन, सोलर पंप सेटो और रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का उपयोग बढ़ा है। आधुनिक खेती ने हमारे अनाज के गोदामों को तो भर दिया है ,परंतु पर्यावरण सम्बंधित समस्या भी उत्पन्न कर दी है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि यदि हमें अपने खेतों से लगातार उत्पादन करना है, तो परंपरागत खेती व आधुनिक खेती के बीच समन्वय स्थापित करना होगा।

किसानों, राजनेताओं, शिक्षाविदों और कृषि विस्तार संगठनों के बीच सहयोग स्थायी समाधानों को लागू करने और राजस्थान की पूरी कृषि क्षमता को साकार करने के लिए महत्वपूर्ण है। राजस्थान अपने कृषि उद्योग का आधुनिकीकरण कर सकता है। और इन मुद्दों को प्राथमिकता देते हुए उनके द्वारा लाई जाने वाली संभावनाओं का पता लगाकर एक स्थायी और समृद्ध भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

सन्दर्भ

1. लवानिया, एम. एम एव एवं जैन, शशि के., "ग्रामीण समाजशास्त्र", रिसर्च पब्लिकेशंस, जयपुर
2. पालीवाल, दीपक, (2020), "ग्रामीण समाजशास्त्र ख1", उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन, हल्द्वानी. https://www.uou.ac.in/sites/default/files/slm/MASO-504.pdf
3. शर्मा, वीरेंद्र प्रकाश (2004), "ग्रामीण समाजशास्त्र", पंचशील प्रकाशन, जयपुर जयपुर
4. राष्ट्रीय किसान नीति 2007, कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार. https://agricoop.nic.in/sites/default/files/npfhindi.pdf
5. शेखावत, धीर सिंह (2018), "कृषि का आधुनिकीकरण - आलोचनात्मक अध्ययन", JMME
6. कुलदीप अरविंद कुमार (2019), "कोटपूतली तहसील में कृषि आधुनिकीकरण के पर्यावरण पर प्रभाव का भौगोलिक अध्ययन", जर्नल ऑफ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्चस इन एलाइड एजुकेशन.
7. राजस्थान एग्रीकल्चरल स्टैटिक्स एट ए ग्लांस 2017-18, डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर, गवर्नमेंट ऑफ राजस्थान https://agriculture.rajasthan.gov.in/content/dam/agriculture/Agriculture%20Department/agriculturalstatistics/rajasthan%20agriculture%20statistics%20at%20a%20glance%202017-18-merged.pdf
8. एग्रीकल्चरल स्टैटिक्स 2018-19, डायरेक्टरेट आफ इकोनॉमिक्स एंड स्टैटिक्स, डिपार्टमेंट ऑफ प्लानिंग, जयपुर, राजस्थान
9. Hooda, S. M. (2017). Rajasthan Water Assessment.
10. Sharma, H., Burark, S. S., & Meena, G. L. (2015). Land degradation and sustainable agriculture in Rajasthan, India. J Indus Pollut Control, 31(1).
11. Sharma, S. K., Sharma, D. P., Sharma, M. K., Gaur, K., & Manohar, P. (2021). Trend Analysis of Temperature and Rainfall of Rajasthan, India. Journal of Probability and Statistics, 2021.
12. Singh, R. B., & Kumar, A. J. A. Y. (2016). Agriculture Dynamics in Response to Climate Change in Rajasthan. Delhi Univ. J. Hum. Soc. Sci, 3, 115-138.

राजस्थान के बुनियादी ढांचे का विकास और एफडीआई

गोपाल लाल जाट

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सार

अच्छी तरह से विकसित बुनियादी ढांचे की उपस्थिति के बिना, अर्थव्यवस्था का विकास असंभव है। स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय निवेश के लिए लंबे समय में सफल होने के लिए पर्याप्त बुनियादी ढांचा आवश्यक है। यह शोध पत्र राजस्थान में बुनियादी ढांचे के विस्तार में एफडीआई की उपयोगिता की जांच करता है। एफडीआई न केवल पूंजी का प्रवाह है, बल्कि प्रौद्योगिकी, सूचना, निपुणता और दक्षता का भी प्रवाह है। यह एक राष्ट्र के आर्थिक विस्तार के लिए गैर-ऋण राजकोषीय संसाधनों का सबसे प्रमुख स्रोत है। एफडीआई आमतौर पर ऐसे देश में होता है, जिसका विस्तार का दृष्टिकोण होता है और इसके अलावा एक प्रशिक्षित श्रम शक्ति होती है। भौतिक बुनियादी ढांचे के चर में, इंटरनेट सुविधाएं, सड़कें, रेल दक्षता और ENEINVST प्रभावित एफडीआई पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं और इस प्रकार बुनियादी ढांचे का विकास होता है। मानव विकास चर, जैसे मजदूरी दरें भी एफडीआई प्रवाह को प्रभावित करती हैं और राजस्थान में एफडीआई और इस प्रकार बुनियादी ढांचे के विकास पर पर्याप्त प्रभाव डालती हैं।

मूल शब्द: प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, राज्य सकल घरेलू उत्पाद, बुनियादी ढांचा और शुद्ध मूल्य वर्धन, विकास, सड़क, रेल, ऊर्जा

प्रस्तावना

राजस्थान एक संभावना वाला राज्य है, जिसने 2019-20 में 1549.10 करोड़ एफडीआई प्रवाह और 2022-23 में 6259.48 करोड़ प्राप्त किए हैं, जो पिछले चार वर्षों में एफडीआई प्रवाह में लगभग 304 प्रतिशत की वृद्धि है। भारत में उदारीकरण के बाद की अवधि में राजस्थान में एफडीआई प्रवाह 33.23 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर सीएजीआर से बढ़ा है। जबकि राज्य अधिक एफडीआई प्रवाह को आकर्षित करने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, निवेशक शिखर सम्मेलन आयोजित करते हैं और अपने क्षेत्र में निवेश के अवसरों को सुविधाजनक बनाने के लिए नीति सुधार शुरू करते हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य राजस्थान राज्य में एफडीआई प्रवाह के निर्धारकों का विश्लेषण करना है, जो प्राकृतिक संसाधनों और कुशल जनशक्ति की प्रचुरता वाला एक स्थलबद्ध राज्य है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एफडीआई एक गैर-ऋण-निर्माण पूंजी प्रवाह है जो रोजगार सृजन को प्रोत्साहित करता है और घरेलू बचत और निवेश के बीच के अंतर को भरता है। यह पाया गया है कि एफडीआई प्रवाह और मेजबान राज्य के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि के बीच सीधा संबंध है। यह एक वैश्विक घटना है कि एफडीआई प्रवाह अंतर और अंत:-क्षेत्रीय असंतुलन पैदा करता है। सांख्यिकीय रूप से राजस्थान एफडीआई प्रवाह प्राप्त करने के मामले में पिछड़े राज्यों में आता है, जो देश के कुल एफडीआई प्रवाह का लगभग 1 प्रतिशत प्राप्त करता है। हालांकि राजस्थान को भारत के बीमारू राज्यों में अधिकतम एफडीआई प्रवाह प्राप्त होता है।

उदारीकरण, निजीकरण और अंतर्राष्ट्रीयकरण के मौजूदा दौर में राष्ट्रों के बीच व्यापार और निवेश की अपार संभावनाएं हैं। भारत जैसे उभरते देश, जिनके पास एक विशाल स्थानीय बाजार और एक विशाल श्रम पूल है, इस प्रवृत्ति के कारण निवेश गंतव्यों के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। विकास और संक्रमण देशों को 2010 में अंतर्राष्ट्रीय एफडीआई प्रवाह का 1/2 से अधिक प्राप्त हुआ (यूएनसीटीएडी, 2011), जिससे अतिरिक्त आय पैदा करके और अविकसित अर्थव्यवस्थाओं को उन्नति की दहलीज पर लाकर अंतर्राष्ट्रीय असमानताओं को कम किया जा सका।

भारत के सबसे बड़े राज्य के रूप में, राजस्थान 342,239 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है।

भारत का पाँचवाँ सबसे बड़ा राज्य - हरियाणा; उत्तर प्रदेश; मध्य प्रदेश; और गुजरात - इसकी सीमाएँ साझा करते हैं। राजस्थान की रणनीतिक स्थिति और बेहतर बाजार पहुँच इस तथ्य से और मजबूत होती है कि राज्य का 8,380 वर्ग किलोमीटर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) का हिस्सा है। इसका सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) 5.7 ट्रिलियन रुपये होने का अनुमान है, जिसकी वार्षिक वृद्धि दर 11% है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में, यह देश का सातवाँ सबसे बड़ा योगदानकर्ता है। राज्य का जीएसडीपी औद्योगिक उत्पादन द्वारा 26.8% 1 से बना है।

राजस्थान भारत में सबसे बड़ा औद्योगिक उत्पादक है। धातु के सामान, गैर-धातु खनिज उत्पाद, खाद्य पदार्थ, वस्त्र और रासायनिक उत्पाद उत्पादन के मामले में राज्य के सबसे महत्वपूर्ण उद्योग हैं। बुनियादी ढांचे में निवेश करना और अधिक विदेशी निवेश आकर्षित करना राजस्थान सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है।

एफडीआई निर्धारण के लिए सैद्धांतिक रूपरेखा

जब प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की बात आती है, तो तीन चीजें बहुत मायने रखती हैं: किसी कंपनी के अंदर स्वामित्व-विशिष्ट प्रतिस्पर्धी लाभ (O), स्थानिक लाभ (L), और बेहतर वाणिज्यिक लाभ (I), ये सभी डनिंग के OLI प्रतिमान के अनुसार हैं। अच्छी तरह से विकसित बुनियादी ढांचागत सुविधाएँ उत्पादकता

को बढ़ाती हैं और दीर्घकालिक लाभप्रदता सुनिश्चित करती हैं। परिणामस्वरूप, देश के बुनियादी ढांचे की गुणवत्ता से "प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI)" को बढ़ावा मिलता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि प्रासंगिक बुनियादी ढांचागत सुविधाओं में परिवहन नेटवर्क शामिल हैं जो बिजली, गैसोलीन और पानी के लिए प्रसार प्रणालियों के अलावा उपयोग और संचार करने में आसान हैं। साहित्य में पाया गया है कि बेहतर परिवहन अवसंरचना (सड़क, रेल और हवाई नेटवर्क) एफडीआई को आकर्षित करती है। देश के परिवहन अवसंरचना में सुधार करके आयात और निर्यात व्यय को कम किया जा सकता है। दूरसंचार अवसंरचना और इंटरनेट पहुँच का FDI प्रवाह पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बहुराष्ट्रीय निगमों (MNC) द्वारा निवेश विकल्प मेजबान देश में दूरसंचार अवसंरचना की गुणवत्ता से काफी प्रभावित होते हैं।

श्रम की गुणवत्ता एफडीआई निर्णयों को प्रभावित करती है यदि श्रम की लागत राष्ट्रों के बीच बहुत भिन्न नहीं है। मानव पूंजी ज्ञान-आधारित सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीयकरण में एक प्रमुख कारक है।

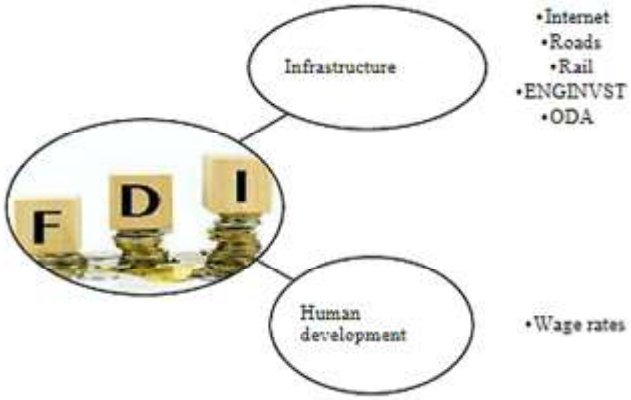

राजस्थान में एफडीआई का प्रभाव

राजस्थान में जैविक और अनुबंध खेती तथा कृषि अवसंरचना विकास में कई व्यावसायिक संभावनाएँ हैं। पूरे राज्य में 850 से अधिक खाद्य प्रसंस्करण सुविधाएँ पाई जा सकती हैं। "राजस्थान भारत के शीर्ष खनिज उत्पादक राज्यों में से एक है"। राज्य में 81 प्रकार के खनिज हैं, और उनमें से 57 का व्यावसायिक रूप से खनन किया जाता है। यह राज्य भारत का एकमात्र सीसा और जस्ता तथा सीमेंट-ग्रेड चूना पत्थर का उत्पादक है। भारत का पहला सफल जापानी औद्योगिक क्षेत्र नीमराना हर साल लगभग 54 मिलियन आगंतुकों को आकर्षित करता है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय पर्यटक भी शामिल हैं। इसलिए, इच्छुक निवेशक राजस्थान में आकर्षक निवेश संभावनाओं का लाभ उठा सकते हैं। राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है (क्षेत्र के हिसाब से)। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात इसकी सीमाएँ साझा करते हैं। राज्य के पूरे एनसीआर (13,447 वर्ग किमी) का 24.5 प्रतिशत से अधिक हिस्सा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में स्थित है। राज्य में 142 गीगावाट की सौर क्षमता है, जो भारतीय राज्यों में सबसे अधिक है, और 1, 27,750 मेगावाट की पवन क्षमता है। बिजली उत्पादन क्षमता 25,740 मेगावाट (MW) है। व्यवसायी समुदाय राजस्थान में निवेश करने के इस अवसर का लाभ उठा सकते हैं और अपने पास उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करके लाभ उठा सकते हैं। निर्यात तैयारी सूचकांक 2020 ने राजस्थान को भूमि से घिरे राज्यों की श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ तैयार राज्य का दर्जा दिया है। अपनी व्यापक राष्ट्रीय सड़कों और रेलमार्गों के साथ, यह गुजरात और महाराष्ट्र और शेष भारत के प्रमुख शहरों और बंदरगाहों से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है राज्य की राजधानी जयपुर में एक अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा और एक एयर-कार्गो कॉम्प्लेक्स और सात अंतर्देशीय कंटेनर टर्मिनल हैं। वित्त वर्ष 20 के पहले नौ महीनों (जुलाई से सितंबर) में 3.32 बिलियन अमेरिकी डॉलर का व्यापारिक निर्यात किया गया। "उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (DPIIT)" के अनुसार, अप्रैल 2000 से राजस्थान में विदेशी निवेश कुल 1.98 बिलियन डॉलर रहा है। "उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (DPIIT) के अनुसार, अक्टूबर 2019 और मार्च 2021 के बीच राज्य में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) प्रवाह 461.40 मिलियन अमेरिकी डॉलर था।"

तालिका 1: राजस्थान में थ्क्य् प्रवाह (मिलियन अमेरिकी डॉलर)

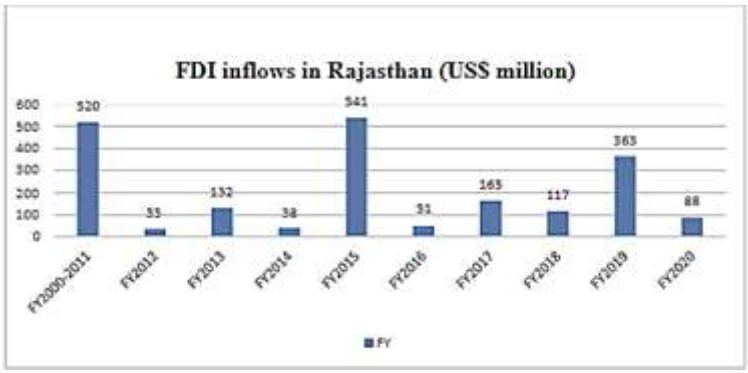

Source: https://www.ibef.org/states/rajasthan-presentation

राज्य के उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग (DPIIT) के अनुसार अप्रैल 2000 से राजस्थान में विदेशी निवेश कुल 2.048 बिलियन डॉलर रहा है।

- 2019 में राज्य में कुल 10,108 करोड़ रुपये (+ 1.45 बिलियन) की 100 निवेश योजनाएँ पंजीकृत की गई।
- वेदांता लिमिटेड ने अक्टूबर 2018 तक अपने राजस्थान बाड़मेर ब्लॉक के तेल उत्पादन पर 4.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च करने की योजना बनाई है।

निष्कर्ष

1991 में, भारत सरकार ने अधिक अंतर्राष्ट्रीय निवेश को आकर्षित करने के प्रयास में, नीतियों के उदारीकरण और विदेशी निवेश के लिए अधिकांश उद्योगों के विनियमन पर जोर देते हुए व्यापक नीति और नियामक परिवर्तनों का प्रस्ताव रखा। प्रगति वर्तमान में निर्बाध रूप से चल रही है, जो इस जानकारी से स्पष्ट है कि इस समय अधिकृत एफडीआई व्यावहारिक रूप से पाँच क्षेत्रों को छोड़कर लगभग सभी उद्योगों (मल्टी ब्रांड रिटेल कॉमर्स, लॉटरी उद्योग, गेमिंग और सट्टेबाजी, परमाणु ऊर्जा और रियल एस्टेट) में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश है। वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय का औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग" अब भारत में निवेश करने के इच्छुक अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों के लिए संपर्क का एकल बिंदु है, जो पूंजी के निर्बाध प्रवाह के लिए नौकरशाही बाध ाओं को दूर करता है। अनेक विधायी और विनियामक उपायों के अतिरिक्त, एक उपयुक्त भौतिक और मानवीय अवसंरचना विदेशी निवेश के लिए एक सहायक वातावरण प्रदान करती है।

यह कहा जा सकता है कि इंटरनेट पहुँच, सड़क और रेल अवसंरचना दक्षता और वेतन जैसे कारकों ने थ्क्प् को प्रभावित किया और राजस्थान के अवसंरचना विकास पर प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप यह तर्क दिया जा सकता है कि, "अवसंरचना को मजबूत करना, ऊर्जा में निवेश करना और अनुसंध ान और विकास पर ध्यान केंद्रित करना अधिक अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों को आकर्षित करने में मदद करेगा।"

राज्य/देश में शैक्षिक मानकों को बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम को अद्यतन करना, उद्योग-अकादमिक संबंध विकसित करना और नई शिक्षण विधियों को लागू करना भी आवश्यक है।

मैक्रोइकॉनॉमिक्स के संदर्भ में, FDI प्रवाह के विकास-प्रचार प्रभावों से लाभ उठाने की राजस्थान की क्षमता उपयुक्त अवसंरचना की उपस्थिति से बढ़ जाती है। हमने राज्य स्तर पर FDI इनपुट का विश्लेषण किया, हालाँकि क्षेत्रीय FDI प्रवाह के संदर्भ में काफी अंतर है। सड़क और रेल जैसे भौतिक अवसंरचना सेवा उद्योग की तुलना में औद्योगिक क्षेत्र के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं। आम धारणा के विपरीत, मानव संसाधनों की गुणवत्ता और संचार की आसानी का सेवा उद्योग, जैसे कि आईटी में उनके निवेश विकल्पों पर अधिक प्रभाव पड़ सकता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के संबंध में, चिंताएं हैं। कम से कम सैद्धांतिक रूप से, एफडीआई प्रवाह से बुनियादी ढांचे के विकास को लाभ हो सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, अधिक एफडीआई का मतलब है बेहतर बुनियादी ढांचा।

सन्दर्भ

1) Kaur, M., Yadav, S. S., & Gautam, V. (2013). A bivariate causality link between FDI and economic growth: Evidence from India. Journal of International Trade and Law and Policy, 12(1), 68-79.
2) Khadaroo, J. and B. Seetanah (2007), The role of transport infrastructure in international tourism development: A gravity model approach, Tourism Management, Vol. 29 (2), pp. 831-840
3) Aleksandra, Riedl (2010), Location factors of FDI and the growing services economy, The Economics of Transition, The European Bank for Reconstruction and Development, 18(4), 741-761.
4) Adams, K., Debrah, Y., Williams, K., &Mmieh, F. (2014). Causes of financial FDI inflows into sub-Saharan Africa (SSA): Evidence from Ghana. Thunderbird International Business Review, 56, 439-459.
5) Adjasi, C., Abor, J., Osei, K. A., &Nyavor-Foli, E. E. (2012). FDI and economic activity in Africa: The role of local financial markets. Thunderbird International Business Review, 54, 429-439.
6) Bellak, C. & M. Leibrecht& R. Stehrer (2010), The role of public policy in closing foreign direct investment gaps: an empirical analysis, Empirica, Springer, 37(1), 19-46.
7) Buckley, P. J., & Casson, M. (1976). The future of the multinational enterprise (1st ed.). London, England: Macmillan.
8) DIPP (2011), Fact Sheet on FDI, FDI Statistics 2011, Government of India, New Delhi. Des-Department. (n.d.). Retrieved February 7, 2022, from https://statistics.rajasthan.gov.in/content/planning-portal/en/des.html
9) Department for Promotion of Industry and Internal Trade: Moci: GOI. Department for Promotion of Industry and Internal Trade | MoCI | GoI | Ministry of Commerce and Industry GOI. (n.d.). Retrieved February 10, 2022, from https://dpiit.gov.in/
10) Dhingra, N and Sidhu, H.S (2011), Determinants of Foreign Direct Investment Inflows to India, European Journal of Social Sciences, Vol. 25 (1).
11) Demirhan, E. and Masca, M. (2008), Determinants of foreign direct investment flows to developing countries: a cross-sectional analysis, Prague Economic Papers, 4, pp 356-359.
12) Ezeoha, A. E., &Cattaneo, N. (2012). FDI flows to sub-Saharan Africa: The impact of finance, institutions, and natural resource endowment. Comparative Economic Studies, 54, 597-632
13) Heckscher, E. (1919). The effect of foreign trade on the distribution of income. Economic Tidskrift, 21, 497-512.
14) Hymer, S. H. (1960). The international operations of national firms: A study of direct foreign investment. PhD Dissertation. Published posthumously. Cambridge, MA: MIT Press.
15) Jain, N. K., Kundu, S. K., &Newburry, W. (2015). Efficiency-seeking emerging market firms: Resources and location choices. Thunderbird International Business Review, 57, 33-50.

आधुनिक परिवारो में रसोई उघान के प्रति अभिवृत्तियाँ ज्ञान एवं व्यवहार का अध्ययन

प्रो० (डॉ.) शबनम तिवारी

शोध-निर्देशिका, गृह विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

कुमारी अनुपमा

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न उत्पादन की पर्याप्तता के बावजूद, हमारे देश में कुपोषण एक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या बनी हुई है। भारत सब्जियों के उत्पादन में अग्रणी देशों में से एक है, लेकिन ग्रामीण households में कुपोषण, विशेष रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, एक सामान्य समस्या है। इसके पीछे के कारणों में जागरूकता की कमी, अशिक्षा, सब्जियों और फलों की अपर्याप्त उपलब्धता और परिवारों की कम क्रय शक्ति शामिल हो सकते हैं। अनुशंसित आहार मानों के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जियों का सेवन करना चाहिए, जिसमें जड़ें, कंद, हरी पत्तेदार सब्जियाँ और अन्य सब्जियाँ शामिल हैं। मुख्य उद्देश्य परिवार स्तर पर सब्जियों की उपलब्धता और पोषण सेवन में सुधार करना और ग्रामीण महिलाओं को रसोई बागवानी के विभिन्न तकनीकी पहलुओं और इसके महत्व के बारे में जागरूक करना था। प्रदर्शनों के लिए 4-6 सदस्यों वाले परिवारों का चयन किया गया। प्रत्येक परिवार के लिए 250 मीटर^2 क्षेत्र में रसोई बागवानी स्थापित की गई। प्रतिभागियों के रसोई बागवानी के विभिन्न पहलुओं के बारे में पूर्व और पश्चात प्रशिक्षण ज्ञान का आकलन करने के लिए एक प्रश्नावली का उपयोग किया गया। अध्ययन के परिणामों ने यह दर्शाया कि परिवार और व्यक्तिगत स्तर पर सब्जियों की उपलब्धता में सुधार हुआ है। प्रति व्यक्ति सब्जियों की औसत उपलब्धता 172 से बढ़कर 278 ग्राम/दिन हो गई। प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से लाभार्थियों का ज्ञान स्तर भी सुधरा है।

मुख्य शब्द- रसोई बागवानी, सब्जियाँ, प्रति व्यक्ति उपलब्धता, आरडीए

प्रस्तावना

भारत देश में वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण एक विकट समस्या हैं। जिसके सुधार में गृह वाटिका का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता हैं। घनी वस्तियों तथा औद्योगिक क्षेत्रों में भी गृहवाटिका की विशेष भूमिका हैं।[1] यदि घर के सामने पेड़ पौधे लगे हों तो घर के अंदर धूलमिट्टी नहीं आती तथा स्वच्छ हवा का आवागमन बना रहता है। इसमें घर की रसोई से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थो का उपयोग खाद के रूप में किया जा सकता है। यह एक छोटी उत्पादन इकाई के रूप में भी हो सकती है। इन्ही तत्थ्यों को ध्यान में रखकर गृहवाटिका एक प्रयोगशाला प्रतीत होती है, जहां व्यक्ति उद्यानषास्त्री न होते हुए भी राष्ट्रीय विकास एवं पर्यावरण सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।[2]

भारत जैसे कृषि प्रधान देष में सब्जियों की खेती करना कोई नई बात नहीं है। देश में खाद्य समस्या के समाधान के रूप में गृह वाटिका एक प्रवल व प्रभावी चरण है। गृहवाटिका से सभी वर्गो के लोगो को ,चाहे वे निर्धन हो या संपन्न ताजी व स्वच्छ विभिन्नतायुक्त तथा निरंतर सब्जियाँ प्राप्त होती रहती है। गृहवाटिका से तात्पर्य एक ऐसी वाटिका से है जहां निवास स्थान के समीप ही उपलब्ध भूमि पर स्वयं की आवश्यकता अनुसार फल व सब्जियों का उत्पादन किया जाये।[3]

गृहवाटिका विज्ञान की गंगा, कला की यमुना और आध्यात्म की गुप्त सरस्वती का संगम है। जहाँ पर जैविक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव है। यह एक ऐसा स्थल है जो गृह के समीप होता है। और स्वयं की आवश्यकता तथा रूचि के अनुसार फल सब्जियाँ एवं पुष्पों का उत्पादन किया जाता है।[4] इस प्रकार के उत्पादन का उद्देष्य व्यवसायिक न होकर आत्मसंतुष्टि होता है।

AsaduzZaman (2011)- किये गये अध्ययन के परिणामो से ज्ञात हुआ है कि रसोई उद्यान परिवार के अच्छे स्वास्थ के लिये महत्वपूर्ण है। रसोई उद्यान के द्वारा ताजी सब्जियां व फल प्राप्त किये जा सकते है। घर के खाली स्थान को उपयोगी, उपजाउ बनाने संबंधी सुंझाव भी अध्ययन में प्रस्तुत किये गये, इसके अलावा खाद, खरपतवार नियंत्रण संयंत्र स्वास्थ्य देखभाल कीट और रोग नियंत्रण संबंधी अनकक उपाय सुंझाये गये।[5]

Berg(2011)- द्वारा किये गये अध्ययन के निष्कर्ष बताते है कि उद्यान के द्वारा न केवल खाद्य पदार्थो का उत्पादन किया जा सकता है। अपितु यह एक विशेष थैरिपी व व्यायाम भी है, जिसके व्यक्ति को मानसिक तनाव को कम करने में मदद मिलती है। उद्यानिकी में व्यक्ति स्वच्छ बातावरण एवं पर्यावरण में रहता है जिससे उसे मानसिक षांति की अनुभूति होती है। हमारे पोषण विशेषज्ञ खनिज, और फाइवर इत्यादि को भोजन में शामिल करने की सलाह देते है। फल एवं सब्जियाँ ताजे रूप में पोषक तत्वों से परिपूर्ण तथा स्वादिष्ट होती है, और बाजार से खरीदने की तुलना में सस्ती भी होती है।[6]

गृहवाटिका अवकाश के समय का सदुपयोग मनोरंजन का साधन एवं परिवार के लिये लाभदायक व्यायाम के रूप में उपयोगी है। वर्तमान समय में वातावरण में दिन प्रतिदिन प्रदूषण की मात्रा अत्यधिक होती जा रही है तथा खाद्य सामग्री में अत्यधिक रासायनिक उर्वरको को उपयोग किया जा रहा है जिसके कारण खाद्य सामग्री का उपयोग करने से हमारे स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव सामने आ रहे है। उर्वरक युक्त फल एवं सब्जियों के अधिक सेवन से पेट संबंधी तथा हृदय संबंधी रोगो का खतरा अधिक हो जाता है। अत: आवश्यक है कि रासायनिक प्रक्रिया से उगाये जाने वाले फल एवं सब्जियों का उपयोग न किया जायें।[7] इस हेतु घर में ही उपलब्ध खाली स्थान का उपयोग कर सब्जियों को उगाया जा सकता है। इन्ही समस्त बिन्दुओ को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक परिवारो में गृहवाटिका के प्रति लोगों की अभिवृतियाँ ज्ञान एवं व्यवहार का अध्ययन विषय पर षोध कार्य किया गया जिसमें वर्तमान आधुनिक परिवारो के रसोई उद्यान संबंधी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।[8]

उद्देश्य

1. आधुनिक परिवारो में पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने हेतु किये गये प्रयासों का अध्ययन करना।
2. रसोई उद्यान की उपयोगिता संबंधी जागरूकता का अध्ययन करना
3. आधुनिक परिवार के सदस्यो की रसोई उद्यान के प्रति अभिवृत्तियां एवं जानकारी का अध्ययन करना
4. अवशिष्ट पदार्थो के प्रबंध संबंधी जानकारी प्राप्त करना।

शोध पद्धति

प्रस्तावित शोध कार्य बृहत् सारण जिला में निवास करने वाले आधुनिक परिवारों पर किया गया। जिसमें 250 परिवारो को दैव निर्दषन विधि द्वारा चुनकर अध्ययन में सम्मिलित किया गया। निर्दशन के प्रथम चरण में 05 आवासीय क्षेत्रों का चुनाव किया गया। तत्पश्चात द्वितीय चरण में उन पांच आवासीय क्षेत्रो से दैव निर्दशन विधि द्वारा 250 परिवारो का चयन किया गया। स्वनिर्मित प्रश्नावली का निमार्ण कर साक्षात्कार द्वारा विभिन्न शैक्षणिक स्तर के स्त्री, पुरूष, घरेलू एवं कामकाजी महिलाओं से तथ्यों का संकलन किया गया। एकत्रित आंकडों का विश्लेषण कर परिणामो को प्राप्त करने का प्रयास किया गया विभिन्न सांख्यकीय विधियो द्वारा विश्लेषण करके निष्कर्ष प्राप्त किए गए। जो निम्न तालिकाओ में प्रस्तुत हैं।

इस शोध कार्य में शिक्षित उत्तरदाताओ की संख्या सर्वाधिक पाई गई जिनका प्रतिशत 41.2 हैं। अध्ययन मे संम्मिलित उत्तरदाताओ की आयु (41.50) सर्वाधिक पाई गई। महिलाओ की तुलना मे पुरुषों की संख्या का प्रतिशत कम पाया गया। सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों को निम्न तालिकाओं में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका- 1: स्वच्छ पर्यावरण की आवष्यकता सम्बधी दृष्टिकोण

क्रमांक	स्वच्छ पर्यावरण की आवश्यकता संबंधी दृष्टिकोण	उत्तरदाताओं का प्रतिशत					
		C-1 N-50	C-2 N-50	C-3 N-50	C-4 N-50	C-5 N-50	Total N-50
1.	आत्मसंतोष	88	76	84	78	82	82
2.	मानसिक आत्मसंतोष	85	91	85	93	87	89
3.	स्वच्छ परिवेष	98	99	95	96	96	93
4.	स्वच्छ वातावरण	99	95	98	90	93	96
5.	उत्तम स्वास्थ्य	100	100	100	100	100	100

तालिका- 2: रसोई उधान की तकनीकी जागरुकता

क्रमांक	जागरूकता	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	उद्यान की स्थापना	150	60
2.	बगीचे में अपशिष्ट जल का प्रयोग	115	46
3.	हरी सब्जियाँ का उत्पादन	175	70
4.	खाद का प्रयोग	110	44
5.	बागवानी की नई विधि	150	60

तालिका- 3: रसोई उद्यान के प्रतिजन अभिवृत्तियॉ

क्रमांक	अभिवृत्तियाँ	उत्तरदाताओं का प्रतिशत					
		C-1 N-50	C-2 N-50	C-3 N-50	C-4 N-50	C-5 N-50	Total N-50
1.	खाली समय का सदुपयोग	71	75	68	70	67	69
2.	परिवेश के सौंदर्य में वृद्धि	75	83	79	75	78	78
3.	स्वास्थ्य के खतरों को रोकता है	83	87	81	79	87	82
4.	आत्मसंतोष	85	89	90	83	89	89
5.	परिवार के सदस्य के स्वास्थ्य में सुधार	91	95	91	93	94	93
6.	धन बचाना	97	99	94	96	95	97
7.	ताजा साग सब्जियों की प्राप्ति	100	100	100	100	100	100
8.	पर्यावरण प्रदूषण कम कर देता है	100	100	100	100	100	100
9.	स्वच्छ परिवेश	100	100	100	100	100	100
10.	टपशिष्ट पदार्थों से खाद की उपलब्धता	100	100	100	100	100	100

तालिका- 4: घरेलू अवशिष्ट पदार्थों का प्रबं

क्रमांक	घरेलू अवशिष्ट पदार्थों का प्रबंध	उत्तरदाताओं का प्रतिशत					
		C-1 N-50	C-2 N-50	C-3 N-50	C-4 N-50	C-5 N-50	Total N-50
1.	कृमि खाद में परिवर्तित	7	5	6	5	7	30
2.	घर की खाद में परिवर्तित	5	4	4	3	2	18
3.	जलाना	9	8	5	7	7	36
4.	खाली प्लोटों में फेंकना	6	11	16	11	11	55
5.	सड़क के किनारे फेंकना	8	6	4	8	5	31
	शासकीय कूड़ेदान का उपयोग	15	16	15	16	18	80
	कुल योग	50	50	50	50	50	250

निष्कर्ष

पर्यावरण स्वच्छता के संदर्भ में 82 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जीवन में संतोष प्राप्ति एवं 89 प्रतिशत उत्तरदाताओ में मानसिक संतोष संबंधी अभिव्यत्तियां प्रदर्षित की, जबकि 98 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मत है कि रसोई उद्यान से घर एव ं आसपास का वातारण शुद्ध रहता है। साथ ही शतप्रतिशत (100 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का यह मानना है कि स्वच्छ पर्यावरण से स्वास्थ्य भी उत्तम रहता है।

रसोई उद्यान के संदर्भ में 60 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जिन्हे रसोई उद्यान स्थापित करने तथा नई तकनीकों के प्रति व रसोई घर से निकलने वाले अपशिष्टो के उपयोग की जानकारी है।

इस अध्ययन में शतप्रतिशत उत्तरदाताओ का मत है कि रसोई उद्यान ताजा साग एवं सब्जियां प्रदान कर बातावरण को स्वच्छ कर बीमारियों की रोकथाम में सहायक होता है। घरेलू अवशिष्ट पदार्थो के प्रबंध के हेतु अधिकांश परिवार शासकीय कूडेदान का उपयोग करते है अवशिष्ट पदार्थो से खाद बनाने की तकनीक संबंधी जानकारी न्यूनतम पायी गई जबकि खाली स्थान पर कचरा फेकने की प्रवृती अधिकांशत: परिवारों में पायी गई इस संबंध मे प्रचार कर परिवारों को जागरूक करने की आवश्यकता हैं।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता कि रसोई उद्यान न केवल हमें ताजे फल एवं सब्जियां प्रदान करता है साथ ही घर के आसपास के बातावरण को स्चच्छ करने, धन की बचत करने, तथा परिवार के स्वास्थ में सुधार करके बीमारियों की रोकथाम में भी सहायक होता है। यह पर्यावरण प्रदूषण को कम करके उससे होने वाली बीमारियो से मानव की रक्षा करता है।

सुझाव

पर्यावरण स्वच्छता संबंधी जागरूकता एवं अनुसंधानों में और अधिक वृद्धि की आवश्यकता है।

रसोई उद्यान के महत्व को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर उद्यान से संबंधित प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए।

संदर्भ-सूची

1. Sen ,Sandhya.Madhyamik Vigyan ke Tatava.Ram Prasad andsons.p 81-82
2. Patini,Manju andsharma .Lalita.Grah prabandh.Star Publiction Agra.p
3. Srivastava,Syam Sundar(2005) .Udhyan vigyan.Central Book house Jaipur.p186-187.
4. Alaimo, K. P. (2008). Food and Vegetable Intake among Urban Community Gardeners. Journal of Nutrition Education and Behavior, VOL40 , 94-101.
5. Alexandratos, B. (2012). World agriculture towards 2030/2050. Rome: FAO.
6. Berg, A. a. (2011). Gardening Promotes Neuroendocrine and Affective Restoration from Stress. Journal of Health Psychology .
7. Thomas. (2010). Food Deserts and the Sociology of Space. International Journal of Human andsocial Sciences .
8. Wikipaedia Free Encycropaedai. (2013). Retrieved from http://en.wikipedia.org/wiki/Robert_F._Kennedy

स्वतन्त्र भारत में संगीत का स्वरूप

डॉ० ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार:-

15 अगस्त सन् 1947 ई. को भारत आजाद हुआ। विदेशियों के शासनकाल में हमारी सांस्कृतिक धरोहर का खूब शोषण किया गया। भारत के स्वतंत्र होते ही भारतीय संगीत ने भी एक नवीन करवट ली। अब तक भारतीय संगीत रियासती राजाओं के संरक्षण में पनप रहा था, किन्तु रियासतों के विलीनीकरण के उपरान्त राष्ट्रीय सरकार ने भारतीय संगीत को संरक्षण दिया, क्योंकि राष्ट्र के नव-निर्माण में जितनी आवश्यकता राजनीति पर ध्यान देने की होती है, उतनी ही कला, साहित्य और संस्कृति के विकास पर भी। स्वतन्त्र भारत की सरकार ने इस सिद्धान्त का बड़ी तत्परता से पालन किया है। जब से भारत स्वतन्त्र हुआ है, तब से कला और संस्कृति के क्षेत्रों में भी प्रगति हुई है। आज संगीत एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के द्वारा नवजागरण एवं मैत्री भावना का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। विभिन्न विशिष्ट मण्डलों द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य सरकार कर रही है।

बीज शब्द:- शास्त्र-पक्ष, शिक्षण पक्ष, विकास के स्रोत, सामाजिक स्तर

भूमिका:-

15 अगस्त सन् 1947 को भारत आजाद हुआ, तो भारतीयों ने अनेक क्षेत्रों के साथ-साथ अपनी संस्कृति एवं संगीत को एक स्थिरता प्रदान की। स्वतन्त्र भारत में संगीत एवं संस्कृति का विकास बड़ी तेजी से चला और व्यक्तिगत कार्यों के साथ-साथ भारत सरकार ने भी इसके उत्थान के लिए व्यापक कदम उठाए। परिणामस्वरूप वर्तमान समय में भारत एवं भारतीय संगीत एवं संस्कृति विश्व की प्रमुख महान संस्कृतियों में अग्रणीय है।

वर्तमान काल में संगीत का स्वरूप:-

संगीत एवं संस्कृति का जो स्वरूप आज हमारे सामने प्रस्तुत है, वह हजारों वर्षों के विकास क्रम का सार्थक परिणाम है। सम्पूर्ण इतिहास का सूक्ष्मता से अवलोकन करने के पश्चात् यह कहना गलत न होगा कि वर्तमान काल में संगीत जिस स्थिति में है, उससे अच्छी स्थिति इतिहास के क्रम में कई बार आई है। वैदिककाल के संगीत का स्थान किसी भी काल के संगीत से सर्वथा उच्च है। इस काल में संगीत का एक ही प्रयोजन 'भगवतोपासना' था। संगीत को ईश्वर का रूप एवं संगीत साधक को ईश्वर के अंश, भक्त अथवा ईश्वर को प्राप्त करवाने वाले श्रेष्ठ माध्यम के रूप में जाना जाता था। वर्तमान में जो संगीत प्रचार में है, उसका भगवदोपासना से बहुत अधिक सरोकार नहीं देखा जाता। शास्त्रीय संगीत के कुछ विद्वानों, साधकों अथवा भक्तों को छोड़कर यह मनोरंजन एवं जीविकोपार्जन का साधन मात्र बन गया है। वैदिककाल के संगीत का यथार्थ स्वरूप वैसे तो शुद्ध रूप में किसी अन्य काल के संगीत में नहीं पाया जाता, परन्तु वर्तमान काल में अगर देखें तो उसके किन्चित मात्र दर्शन भी दुर्लभ एवं असंभव ही दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान काल में संगीत का जिस प्रकार से विकास हो रहा है, वह नि:सदेह प्रशंसनीय है, किन्तु यह विकास अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से न होकर मनोरंजन एवं वैज्ञानिक दृष्टि से ही हो रहा है।[1]

शास्त्रीय संगीत:-

प्रोङ्क मधुबाला सक्सेना और प्रो. राकेश बाला सक्सेना के अनुसार- ''बीसवीं शताब्दी के गायकों द्वारा किए गए योगदान का यदि विश्लेषण किया जाए तो बड़ी सन्देहास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि एक ओर यह प्रतीत होता है कि प्राचीन गायिकी में निहित शास्त्रीय आधार और उसके अध्यात्मिक तत्त्वों के प्रति सचेत रहने में कमी आती जा रही है और दूसरी ओर ऐसा भी लगता. है कि गायिकी में लालित्य, आकर्षण, सौन्दर्य, चमत्कार व गायन वैचित्य बढ़ता जा रहा है। एक ओर यह भी प्रतीत होता है कि संगीत का स्तर पहले से कुछ कम हुआ है, तो दूसरी ओर यह भी लगता है कि सुविधाएं बढ़ जाने के कारण संगीत का शिक्षण, संगीत का प्रचार-प्रसार तथा उसकी उपयोगिता में वृद्धि हुई है।'' वर्तमान समय में शास्त्रीय संगीत एक वर्ग मात्र तक सीमित है। साधारण और ग्रामीण जनता के लिए आज भी यह अंजान अथवा सही अर्थों में शोर से अधिक कुछ भी नहीं है। चिंतन का विषय तो यह है कि शास्त्रीय संगीत के कई वरिष्ठ विद्वान इसको भी शास्त्रीय संगीत का एक गुण मानते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस वस्तु की समाज एवं संस्कृति में व्यवहार एवं उपयोगिता होती है, वहीं वस्तु समाज एवं संस्कृति में उच्च स्थान प्राप्त कर सकी है।[2]

संगीत का शास्त्र-पक्ष:-

संगीत का शास्त्र पक्ष वर्तमान समय में उपेक्षणीय दिखाई पड़ता है। कुछ विद्वानों के अनुसार तो संगीत केवल प्रायोगिक विषय है, इसका शास्त्र पक्ष तो व्यर्थ है। शास्त्र के नाम पर कुछ पुरानी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद या मूल रूप से कुछ गिनी-चुनी पुस्तकें जरूर प्रकाशित हो रही हैं, परन्तु जिन विषयों

पर शोध कार्य सही मायने में होना चाहिए, उन विषयों पर कार्य नाममात्र ही हो रहा। कुछ संस्थाएं संगीत सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन कर रही है और कुछ संस्थाओं का निर्माण सरकार की तरफ से भी हुआ है। वर्तमान समय में संगीत सम्बन्धी जो पत्र एवं पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, उनमें सबसे प्रमुख नाम 'संगीत कलाविहार', 'मिरज' एवं संगीत कार्यालय हाथरस की 'संगीत' का है। मिरज से इस पत्रिका का प्रकाशन काफी प्राचीन समय से किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद के साथ-साथ नई पुस्तकों का प्रकाशन भी यहाँ से हो रहा है। संगीत नाटक अकादमी संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर जो काम कर रही है, वह प्रशंसा की अपेक्षा रखता है। म्यूजिकॉलोजी सोसाईटी ऑफ बड़ौदा से प्रकाशित जर्नल आदि से भी विद्वान अपने विचारों को साधारण जन-मानस तक पहुंचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त संगीत एवं संस्कृति से सम्बन्धित अनेकों संस्थाएं राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत है।[3]

संगीत का शिक्षण-पक्षः-

वर्तमान समय में संगीत का शिक्षण पक्ष शास्त्रीय संगीत की एक महान उपलब्धि मानी जाती है। संगीत के शिक्षण पक्ष की परम्परा का सूक्ष्मता से अवलोकन किया जाए तो ज्ञात होता है कि आज से लगभग सौ वर्ष पहले संगीत विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में प्रविष्ट हो चुका था। इन सौ वर्षों में जो विकास शिक्षण पक्ष में हुआ, निसंदेह यह एक महान उपलब्धि है, किन्तु यह कहना गलत न होगा कि जितना विकास इन सौ वर्षों में होना चाहिए था, उतना नहीं हो पाया है। संगीत से सम्बन्धित कुछ विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में वृद्धि तो अवश्य हुई है, परन्तु आज भी अनेकों ऐसे विद्यालय एवं विश्वविद्यालय है, जिनमें इस विषय का प्रवेष नहीं हो पाया है। ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्धित विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में तो इनकी संख्या बिल्कुल ही कम अथवा नाममात्र ही है।[4]

संगीत के विकास के स्रोतः-

संगीत को उन्नत करने और जन-जन तक पहुंचाने में आकाशवाणी का योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आकाशवाणी के मुख्य उद्देश्य मनोरंजन, सूचना और शिक्षा है। टेलीविजन और सिनेमा ने भी संगीत की उन्नति में प्रमुख योगदान किया है। इसके अतिरिक्त टेप, डिस्क, वीडियो, सी.डी. आदि का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न प्रकार के विद्युत वाद्य-यन्त्रों यथा-पियानों, कीबोर्ड तथा विद्युत तानपूरे आदि का निर्माण हो चुका है, जिनके कारण संगीत में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। आधुनिक युग में तो मोबाईल फोन में भी रेडियो और एफ. एम. के कनैक्शन पाए जाते हैं। कम्प्यूटर संगीत तथा टैक्नोम्यूजिक पर इस युग में अनेक प्रयोग हो रहे हैं। अतः तकनीकी क्षेत्र का संगीत में योगदान सराहनीय है।

वर्तमान समय में संगीत का सामाजिक स्तरः-

पं. भातखण्डे को एक बार एक मुसलमान संगीतज्ञ ने एक बहुत बड़ी और पते की बात कही थी कि- ''पहले कद्रदान हमारे गुलाम हुआ करते थे और अब हम नाकद्रों के गुलाम हैं।'' ऐसी टिप्पणियां सांगीतिक समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाती हैं। आज की संगीत के प्रति लोगों की रुचि को देखने से पता चलता है कि संगीत की प्राचीन परम्परा एवं संगीत के आध्यात्मिक रूप का कद्रदान कोई-कोई ही बचा है। डॉ. सुशील कुमार चौबे के अनुसार- ''जहाँ तक संगीतज्ञों के सामाजिक स्तर की बात है, ऐसा कहने पर हम बाध्य है कि कुछ विशेष ऊंचे कलाकारों को छोड़कर जिन्हें यश और धन दोनों प्राप्त हैं, बहुतायत ऐसे भी हैं, जिनका संगीत का पेशा है परन्तु जिनका समाज में कोई निश्चित स्थान नहीं है। ऐसे कलाकारों का दोष केवल यही है कि उन्होंने बाजारू एवं भावुक संगीत का तिरस्कार करके प्राचीन संगीत को ही अपनाया और उसे सीखा।''[6]

निष्कर्षः-

संगीत का समाज के एक हिस्से में ही कुछ मान-सम्मान है और समाज का वह भाग संगीत के साथ जुड़ा हुआ है। शास्त्रीय संगीत के राज्य, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों व विद्वानों को भी कुछ ही लोग जानते हैं, परन्तु सुगम एवं लोक संगीत के कलाकारों की ख्याति इतनी बढ़ती जा रही है कि विशिष्ट राज्य एवं प्रान्त के कलाकारों को भी राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त हो चुकी है। अगर साधारण समाज में संगीत का स्थान कुछ सम्मानजनक है भी तो वह सुगम और लोक संगीत पर ही आधारित है। इसका दायरा भी समाज के युवा वर्ग तक ही सीमित कहा जाए तो गलत न होगा। सुगम संगीत में नवीनता के नाम पर अत्यधिक अनुचित व अप्रिय शब्दों को व्यवहार में लाने के कारण शिक्षित, सभ्य एवं वरिष्ठ समाज इससे परहेज ही करता है। समाज में संगीत की स्थिति को सुधारने के लिए पहले संगीतज्ञों को अपने व्यक्तित्त्व को पारदर्शी एवं चरित्रवान बनाना होगा, उसके बाद संगीत के व्यावहारिक पक्ष का स्वरूप आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सभ्य समाज के अनुकूल बनाना होगा। तभी हम समाज में संगीत एवं संगीत से सम्बन्धित लोगों को सम्मानित स्थान दिलाने में सफल हो पाएंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. चौधरी, डॉ. सुभद्रा, आधुनिक युग में संगीत के पुररूद्धार के प्रयत्न, संगीत, 1970, जून-अंक, पृ. 10
2. चौबे, डॉ. सुशील कुमार, हमारा आधुनिक संगीत, उळार प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1975, पृ. 28
3. सक्सेना, प्रो. मधुबाला, सक्सेना, प्रो. राकेशबाला, संगीत मधुबन, (निबन्ध संग्रह), अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़, पृ0 85
4. शास्त्री, के. वासुदेव, संगीत शास्त्र, हिन्दी समिति, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उळार प्रदेश लखनऊ 1958, पृ. 57
5. 'वीर', राम अवतार, भारतीय संगीत, वीर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1986, पृ. 93
6. दूबे, डॉ. श्याम चरण, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण-1972, पृ. 122

समकालीन भाषिक तत्त्व और रामदरश मिश्र का काव्य

कविता अप्रेती

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

सर्वप्रथम भाषा के विषय में सोचते ही हमारे मस्तिष्क में जो पहला विचार आता है वह है- संप्रेषण। किसी भी भाषा की शक्ति उसके संप्रेषण में है। समय के साथ हर किसी को बदलना होता है तभी उसका विकास भी संभव है प्रकृति का नियम भी यही है। जो चीजें वक्त के साथ नहीं बदलती उन्हें पीछे छूट जाना होता है, ये नियम भाषा पर भी लागू होता हैं। भाषा तब अधिक सार्थक मानी जाती है जब उसमें लचीलापन होता है और इसी से वह सही संप्रेषण को माध्यम बन पाती है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में भाषा का अलग-2 रूप देखने को मिलता है। कहीं पर सामान्य बोलचाल की भाषा है तो कहीं पर संस्कृत की परिनिष्ठित शब्दावली लिए हुए भाषा का रूप सामने आता है। कविता की भाषा की बात की जाए तो वो सामान्य बोलचाल की भाषा से अलग मानी जाती रही है परंतु समकालीन परिवेश में कविता का विषय बदला तो उसे अभिव्यक्त करने का माध्यम यानि भाषा भी बदली आज कवि सामान्य भाषा मे अपनी रखने में सहज महसूस करता है वह समाज के हर तबके से जुड़ना चाहता है। आज किसी दरबार में रहकर किसी राजा को प्रसन्न नहीं करना है बल्कि आज तो समाज के बीच में रहकर उसके समाज के लिए लिखना है। इस विषय में अज्ञेय की कुछ पंक्तियां दृष्टवय है:-

''भाषा की शक्ति
यह नहीं कि उसके सहारे
संप्रेषण होता रहे।
शक्ति इसमें है कि उसके सहारे
पहचान का वह संबंध बनता है जिसमें
संप्रेषण सार्थक होता है।''

कवि और पाठक जिस बिंदु पर आकर एक साथ मिल जाते हैं वही बिंदु उस कविता की सार्थकता व सफलता कहलाता है। कवि और पाठक को किस बिंदु तक समानांतर चलना है इसका निर्णय कविता ही करती है। इसी बिंदु पर कविता स्वयं को सिद्व करती है। कवि सामान्य व्यक्ति से इस अर्थों में भिन्न होता है क्योंकि वह सामान्य तौर पर कहीं गई बात को रचनात्मक रूप से ऐसे रखता है जो सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता शायद इसलिए भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं कि:-

''जिस तरह हम बोलते है उस तरह तू लिख और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।''

समकालीन समय में प्रत्येक कवि की अपनी एक अलग भाषा है। राजेश जोशी का कथन दृष्टव्य है:-

''हर एक कवि अपनी रचना के लिए एक मौलिक व जादुई भाषा पाना चाहता है। जीवन, प्रकृति और भाषा की पूर्व परंपरा से या जहां से मिले उस स्रोत से वह उसके लिए ईट-गारा चुनता है।''

परंतु कभी-2 भाषा से अत्यधिक छेड़छाड़ भाषा को या तो बहुत बिगाड़ देती है या फिर उसे एक नया रूप मिलता है और एक नई काव्य भाषा का जन्म होता है। भाषा के साथ की गई ज्यादा छेडछाड़ उसके संप्रेषण में बाधा उत्पन्न करती है। इसलिए भाषा के साथ की गई अत्यधिक छेडछाड़ के विषय में राजेश जोशी का निम्न कथन सटीक मालूम होता है:-

''लेकिन कभी -2 संतुलन गड़बड़ा जाता है और उसके अति रंजित प्रयास भाषा को एक करतब में बदल डालते है। ये प्रयोग एक आतिशबाजी की तरह होते है। ये चुंधियाते है। चौकते हैं लेकिन जल्दी ही बुझ जाते है।''

समकालीन कविता मे रामदरश मिश्र एक ऐसे कवि हैं जो नयी पीढ़ी के साथ काव्य सृजन में संलग्न हैं। मिश्र जी ने काव्य सृजन की शुरूआत उस समय की जब कविता पर विभिन्न ''वादों '' का प्रभाव अधिक पड़ रहा था। उनकी प्रारंभिक कविताओं में छायावादी प्रभाव देखने को मिलता है।

परंतु वे इससे बाहर निकले और बदलते समय के साथ उनकी रचनाओं में बदलाव देखने को मिला। उनकी कविता की भाषा भी बदली उसमें ग्रामीण व शहरी दोनों परिवेशों की झलक साफ-2 दिखने को मिलती है। उनकी निम्न कविता द्वारा भाषा के विषय में उनके विचार स्पष्ट हो जाते है:-

''दरअसल भाषा एक ही है
लेकिन उसे विविध अर्थ देते रहते हैं
समय -संदर्भ
और हाथों के निजी स्पर्श

ये पहले हमारे अनुभव में उतरते हैं
फिर समा जाते हैं भाषा में
अर्थ बनकर।''

समकालीन समय में विषय वस्तु बदली, तो भाषा ने भी अपना रूप बदला सरल सहज शब्दों मे अपनी बात रखना कवि को अधिक सहज लगने लगा ताकि संप्रेषण हर तबके तक संभव हो सके। प्राचीन आचार्यों ने भाव को भाषा से अधिक महत्व दिया क्योंकि भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का मात्र एक साधन थी परंतु आधुनिक युग में भाषा का महत्व बढ़ गया है क्योंकि अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रभावशाली होना अनिवार्य है इस पर बच्चन सिह का कथन उल्लेखनीय है:-

"पूजीवादी व्यवस्था, मास, मीडिया-रेडियो, टेलीविजन,समाचार पत्र सिनेमा आदि ने भाषा में एक प्रकार की यंत्र गतिकता ला दी है और उनसे लोगों की दिमागी भावना मे विचित्र सपाटता आ गई हैं। लेखन हटकर जब हटकर अपने अनुभव को सटीक रंग से व्यक्त करना चाहता है घिसी हुई भाषा का काजी और पिटे शब्द अपर्याप्त मालूम पड़ते है। यहीं पर उसे नई भाषा तलाशनी पड़ती हैं।

काव्य सृजन में पहला एवं सार्थक तत्व शब्द प्रयोग है। एक-2शब्द मोती के समान जुड़कर वाक्य रूपी माला का निर्माण करता है। समकालीन कविता मे शब्दों के कई प्रकार देखने को मिलते हैं इसमें भरपूर मात्रा में वैविध्य है। मिश्र जी ग्रामीण एवं शहरी दोनों परिवेश से जुड़े हैं इसलिए शब्द-भंडार में काफी धनी हैं। उनकी कविताओं में ग्रामीण एवं शहरी दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है।

लोकजीवन की शब्दावली:-

''झपटीदार घनी बारिश''
''फटी-पुरानी गुदड़ी''

विदेशी शब्दों का प्रयोग होने के बावजूद भी उनकी कविता में संप्रेषणीयता बनी रहती है:-

''लैटर बॉक्स में पड़ी हुई चिट्ठियां''
अनंत सुख-दुख वाली अनंत चिट्ठियां।''

उर्दू, फारसी के शब्दों का भी सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है । इस प्रकार स्पष्ट है कवि ने शब्दों के चयन में किसी प्रकार की कंजूसी नहीं की है जो शब्द संप्रेषण को सार्थक बना सके उन्हें प्रयोग करने में वे झिझके नहीं।

समकालीन कविता मे वाक्य रचना एक नए ढ़ग से देखने को मिलती है। यहां वाक्य बंधा हुआ महसूस नहीं होता कवि स्वयं भी विचारों को स्वतंत्र होकर व्यक्त करता है उस पर कोई बंधन नहीं चाहता। राजेश जोशी इस विषय में कहते है:-

''जीवन की ओर देखने वाले लेखक में वाक्य ज्यादा प्रमुख होता है। वाक्य ही आगे जाकर मुहावरे का रूप लेता हैं जीवन की ओर देखने वाली रचना में मुहावरे अधिक होते है''

मिश्र जी कविताओं में भी वाक्यों के सुंदर व सहज ग्राध्य रूप देखने को मिलते हैं जहां वे स्वतंत्र होकर कविता कर रहें है:-

''मैं छोटा सा गाँव हूं
भला शहरों से शहरों की ओर भागती
इन गर्वित गाड़ियों के लिए
मेरी औकात क्या है।

समकालीन कविता में छंदमुक्तता के साथ -2 रूप मुक्तता काव्य भी है। इसलिए समकालिन कविता भावों एवं विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति है। मिश्र जी की कविताओं में भी यह सुख देखने को मिलता है।

कोई पानी लाया
कोई चाय लाया
कोई गाने लगा
कोई हंसाने लगा
लेकिन दिन तो नहीं उतरता था
नही उतरा
वह भारी शाम में बदलता गया।''

समकालीन कविता में' गद्य कविता' भी एक प्रमुख विशेषता रही जैसे मिश्र जी वार्तालाप शैली में लिखी कविता दृष्टव्य है:-

''यह कौन सा रास्ता है?
पता नहीं।
हम कहां जा रहे हैं ?
पता नहीं।''

किसी बात को सरल व सपाट तरीके से कह देने से कविता में वो बात नहीं रहती जो व्यंग्य की धार से आती है। व्यंग्य के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार दृष्टव्य है:- ''व्यंग्य वह है जहां कहने वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।''

दूसरी तरफ हरिशंकर परसाई व्यंग्य की सही पहचान कराते हुए कहते है:-

''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्या चारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।''

व्यंग्य की सबसे बड़ी शक्ति है बिना आक्रोश या आवेश में आए कवि पूरी ताकत से समाज की विद्रूपताओं पर करारा प्रहार करता है। मिश्र जी ने भी व्यंग्य की धार या अपनी कविताओं में सहज प्रयोग किया है जैसे -राजनीति की दल-बदल नीति पर व्यंग्य करते हुए मिश्र जी कहते है:-

अरे,
अभी ये उधर जा रहे थे
अब इधर आ रहे हैं।
नहीं
आप इन वृद्ध शिशुओं को कुछ न कहें
बेचारे दिन वो रास्ता भूल गये थे
शाम को अपने घर आ रहे हैं।''

समाज की कुरूपता पर व्यंग्य करते हुए मिश्र जी मां-बाप को कुछ इस प्रकार नसीहत देते हैं:-

"काश ये मां -बाप
लकड़ी को भी थोड़ा सा
यही प्यार दे पाते
डसे ढाल बनने के साथ
हथियार बनने का भी संस्कार दे पाते।"

मिश्र जी ने नौकरशाही पर करारा व्यंग्य किया है। आम जनता के लिए सरकार योजनाएं बनाती हैं लेकिन सरकारी नौकर उन योजनाओं को बीच में खोल देते हैं और वे जनता ते पहुच नहीं पाती:-

"हमेशा आकाश से झरती है एक नदी
धरती प्यासी की प्यासी रहती है
और कहने को आकाश से से नदी बहती है।"

समाज में दुष्ट एंव निदर्य लोग किस प्रकार एक गरीब और सामान्य व्यक्ति को उजाड़ दिया करते हैं इसका चित्रण मिश्र जी एक चिडिया के माध्यम से कुछ इस प्रकार करते हैं:-

"चिड़िया उड़ती हुई कहीं से आयी
बहुत देर तक इधर -उधर भटकती हुई
अपना घोंसला खोजती रही
फिर थक कर एक जली हुई डाल पर बैठ गई
और सोचने लगी-
आज जंगल में कोई आदमी आया था।"

इस प्रकार मिश्र जी ने व्यंग्य के सहारे समाज राजनीति, धर्म आदि अनेक नियमों पर करारी चोट की है जो उन्हें एक सजग व जागरूक कवि के रूप में सामने लाती है।

समकालीन कविता में प्रतीको का प्रयोग बहुत विस्तृत रूप में हुआ। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है -चिन्ह जिस अर्थ को कवि रखना चाहता है उसे सांकेतिक ढंग से पाठक तक पहुंचाना। इसे रचनात्मकता भी कहा जा सकता है जिसमें प्रतीकों द्वारा सामान्य बात को विशेष बनाया जाता है। प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराना ही प्रतीक है। इन्हीं प्रतीको के द्वारा आज के कवि समाज के विभिन्न पक्षों को सामने रखते हैं।समकालीन कवि सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए सृजन करते हैं। प्रतीक समाज व सामाजिक जीवन को सुन्दर चित्रण का सशक्त माध्यम है।

मिश्र जी की कविताओं में भी प्रतीको का सुंदर व सश्सक्त प्रयोग देखने को मिलता है। मिश्र जी की कविताओं व शसक्त प्रयोग देखने को मिलता है। मिश्र जी जी की कविताओं में प्रतीक बहुत सरलता व सहजता से पकड़ में आ जाते हैं । प्रकुति के विभिन्न रूपों के माध्यम से मिश्र जी समाज के प्रति अपनी संवेदना को व्यक्त करते हैं जहां बसंत समाज के एक तबके के लिए खुशी और हर्षो उल्लास का प्रतीक है वही समाज का एक तबका ऐसा भी है जिसके लिए वह रोजी- रोटी का साधन है:-

"बसंत का दिन था
खिलखिलाता हुआ उद्यान
अरे भाई माली
इन फूलों को इतनी बेदर्दी से क्यों तोड़ रहे हो ?
वह एक क्षण ठिठका, और फिर बोला
मेरे लिए हर फूल एक रोटी है बाबू
और मुझे केवल शाम को जलने वाले
अपने चूल्हे की आंच दिखाई पड़ती है।"

इसी प्रकार हवा को मिश्र जी नेताओं के वायदों का प्रतीक बताते हुए कहते हैं कि:-

"पक्की सड़क देने के वादे में
वे मेरे घर के सामने की कच्ची सड़क
रौंद कर चले गये
हाये वे क्या कर गये
कि अब मैं हवा से डरने लगा हूँ।"

आगे इसी प्रकार आगे मिश्र जी अपनी एक कविता में 'सरकंडे' की कलम' को आम आदमी की अनुभूतियों का प्रतीक बताते हुए कहते हैं कि:-

''हमारे हाथ में सोने की नहीं
सरकंडे की कलम है।"

इस प्रकार मिश्र जी ने प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक मूल्यों को उद्घाटित किया है। ये प्रतीक कवि की संवेदना को उत्कृष्ट अवस्था तक ले जाते हैं। मिश्र जी के प्रतीक समय के अनुरूप हैं जैसा समय हो वैसे प्रतीकों का चुनाव एक जागरूक कवि ही कर सकता है। मिश्र जी की कविताओं मे शहर, चूहा, कुर्सी चाकू आदि प्रमुख प्रतीक की भूमिका निभाते हैं।

संपूर्ण रूप में देखे तो मिश्र जी की कविताओं की भाषा समय के साथ बदलती रहती है और इसी बदलाव के कारण उनकी यह भाषा समकालीन कविता के सभी तत्त्वों को समावेशित करती है। मिश्र जी ने समय की मांग को पहचाना और उसी मांग या संप्रेषण को सरल बनाने के लिए उन्होंने भाषा को सरल व सहज रखा ताकि उनकी कविता किसी एक खास तबके तक ही सीमित न रहे बल्कि समाज का हर वर्ग उससे जुड़ सके। उनकी कविता की भाषा किसी सीमा मे बँधी नहीं है,'भाषा बहता नीर' उक्ति को उन्होंने पूर्णत: सार्थक किया है।

मिश्र जी की भाषा के रूप गूढ़ और उलझे हुए नही हैं बल्कि बदलती हुई परिस्थितियां के अनुरूप हैं। उन्होंने अपनी रचानात्मक ऊर्जा द्वारा सामान्य भाषा को भी चमत्कृत किया है,तथा व्यंग्य विधान से उस भाषा में धार लाकर उसे तेज करते हैं जो कि अधिक से अधिक संप्रेषण करने में सक्षम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एक कवि की नोटबुक, जोशी, राजेश
2. ऐसे में जब कभी, मिश्र रामदरश
3. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, सिंह बच्चन
4. जुलूस कहाँ जा रहा है, मिश्र रामदरश
5. बारिश में भीगते बच्चे, मिश्र रामदरश
6. दिन एक नदी बन गया, मिश्र रामदरश
7. आम के पत्ते, मिश्र रामदरश
8. आम कुछ नहीं बोलती, मिश्र रामदरश
9. समकालीन हिन्दी कविता, श्रीवास्तव परमानंद

मुण्डारी भाषा का विकासः एक ऐतिहासिक अध्ययन (झारखण्ड के संदर्भ में)

ब्युला भेंगरा

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

"होड़ जगर मिद मुनुआते होड़ोको चि मुण्डाको गे जगर आउ केद् जगर तनअः।"[1] अर्थात् मुण्डारी भाषा आरंभ से मुण्डा जनजाति के लोग ही बोलते आए हैं। मुण्डा जनजाति भारत में मुख्यतः झारखण्ड, उड़ीसा, असम, मध्य प्रदेश, अण्डमान निकोबार में भी पाई जाती है। मानव जाति के अंतर्गत मुण्डा प्रोटो-आस्ट्रोलायर्ड ग्रुप में आते हैं और भाषा तत्व की दृष्टि से ऑस्ट्रिक के आस्ट्रोएशियाटिक भाषा परिवार में।[2]

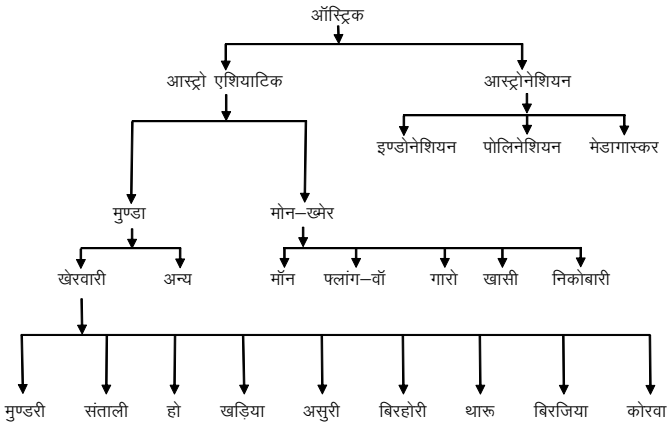

पी0 डब्ल्यू श्मिट द्वारा लिखित पुस्तक 1906 में प्रकाशित हुई थी, जिसमें गहन शोध और अध्ययन के पश्चात् "आस्ट्रिक भाषा परिवार" के अस्तित्व की व्याख्या करते हुए उन्होंने इसकी व्युत्पति एवं भौगोलिकता को प्रतिपादित किया था। मुण्डा भाषा तथा जाति का अध्ययन अन्य विद्वानों द्वारा भी किया गया जिनमें प्रमुख हॉग्सन हैं जिन्होंने जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, खण्ड 16 में हिमालयवर्ती मातृभाषाओं का तुलनात्मक शब्द समूह प्रकाशित किया था। इसी के पश्चात् हंटर, मैक्समूलर एवं रोबर्ट कस्ट के शोध कार्य प्रकाशित हुए। ग्रियर्सन महोदय ने मुण्डा भाषा के 14 मातृभाषाओं का तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसके अलावा कई ऐसे भाषाविद् के कार्यों का अध्ययन कर इस निष्कर्ष को सही माना गया कि यदि इन प्रतिष्ठित विद्वानों के विचारों से अलग अनुमान लगाने की बात हो तो मुण्डारी भाषा से सम्बद्ध भाषाएँ बोलने वाले अधिकांश कबीले एक ही प्रारंभिक कुटुम्ब से उत्पन्न हुए होंगे और ये सारे कबीलों के सामूहिक पूर्वज भारत के आदि निवासी थे। शरत चंद्र राय ने मुण्डाज एण्ड देयर कंट्री में कहते हैं कि मुण्डाओं का भारत में प्रवेश के बाद उनका आरंभिक निवास स्थान अरावली पर्वतों से लेकर पूर्व में विंध्य और कैमूर पर्वत श्रेणियों की ओर जाने वाली पहाड़ी क्षेत्रों में आधुनिक सरगुजा प्रदेश और छोटानागपुर के दक्षिण पूर्व जिलों तक फैला हुआ था। भारत के इन्हीं भागों में सर्वप्राचीन मानुषिक बसावटों के अवशेष पाए गए हैं। मुण्डा दंत कथाओं में इन क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है। आज भी भारत के उत्तरी तथा उत्तर पश्चिम में छिटपुर मुण्डा पाए जातें हैं। वहीं भाषाशास्त्री डब्लू श्मिट मुण्डाओं के भारत में प्रवेश के दक्षिण पूर्वी मार्ग के पक्ष में हैं। वास्तव में मुण्डाओं के आरंभिक निवास स्थान की गुत्थी सुलझाना अभी बाकी है।

मुण्डा आदिवासी आग्नेय प्रजाति परिवार की एक विशिष्ट जाति है। झारखण्ड में मुण्डा आदिवासी छोटानागपुर तथा उसके आस-पास के भू-भाग में निवास करती है। विद्वानों की अधिक संख्या यह मानती है कि मुण्डा सबसे पहले भारत के उत्तर पश्चिमी भाग से होते हए कालान्तर में आर्यों द्वारा मुण्डाओं को पूर्व की ओर खदेड़ दिए जाने पर वे उत्तर के आजमगढ़ जिले में जा बसे।[3]

वहाँ से भी खदेड़े जाने पर उत्तर भारत के दक्षिण भाग से बुंदेलखण्ड होते हुए मध्य भारत की ओर बढ़े और वर्त्तमान रोहेल खण्ड अवध और रोहतासगढ़ होते हुए वर्त्तमान झारखण्ड राज्य के छोटानागपुर प्रमंडल में आकर बस गए। मुण्डाओं द्वारा छोटानागपुर में प्रवेश से पूर्व कई अन्य जातियों से उनका सम्पर्क हुआ जिनमें मुख्य नाम आर्यों का लिया जाता है। इसके फलस्वरूप भाषाई आदान प्रदान में एक दूसरे का प्रभाव भी पड़। आगे यह प्रमाणित किया जाएगा

कि कैसे मुण्डारी कविताओं में आर्य भाषा को शामिल किया गया है। मुण्डा उन गैर हिन्दु लोगें में से एक थे जिनको आर्य अप्रवासियों ने भारत की धरती पर पहला कदम रखने के समय पूरे क्षेत्र पर सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिपत्य जमाए हुए पाया था।[4]

इस लेख में मुण्डा भाषा का सबसे शुद्ध रूप क्या है तथा वर्त्तमान में किस क्षेत्र के लोगों द्वारा बोला जाता है और शुद्ध मुण्डा भाषा का विकास कैसे तथा किस रूप में हुआ इसपर प्रकाश डाला जाएगा।

"Some tradition of theirs show that their "Haram horoko" (ancestors) used to live on the banks of the Ganges, whence they were driven away by the invading Aryans, the Hindus, pushed off by them further and further they finally settled in the mountains of chotanagpur, leaving on their way in other mountains some groups of their own, as for intance the korku near Jabalpur in the central provinces.

For centuries they defended their new abodes in the forest covered mountains of chotanagpur against the pursuing enemies, and even after they were conquered by them, they retained their own language and customs with grate pertinacity till the present day"[5]

छोटानागपुर में आरंभ से ही शुद्ध मुण्डारी बोला जाता था वह वर्त्तमान में भी अपने शुद्ध रूप में पायी जाती है जिसे फा0 नोत्तरोत्त ने भी ग्रामर ऑफ कोल लेंग्वेज में बताया है जिसे हसादअ: मुण्डारी के नाम से जाना जाता है, इस शुद्ध रूप का अन्य रूप में बदलने का कारण मुण्डाओं के मध्य अन्य जाति और भाषा संस्कृति के लोगों का आगमन कहा जाता है। "In the other parts of Chota Nagpur the Mundas are mixed with the Hindu to such an extent that their language has been considerably influenced by Hindi"[6]

मुण्डा भाषा को आरंभ से 'होड़ो जगर' या 'होड़ो कजि' कहा गया है क्योंकि मुण्डा अपने आपको 'होड़ो होनको' कहते हैं, इसे फा0 जोन बापतिस्त हॉफमैन अपनी पुस्तक' इनसाइक्लोपीडिया मुण्डारिका में लिखा है- "The munda call themselves Horoko." मुण्डा जाति ही अपने आपको होड़ो होनको अर्थात् मानव का पुत्र कहते है, और मुण्डा भाषा या होड़ो जगर को ही मुण्डारी भी कहा जाता है।

यह चार प्रकार से बोला जाता है:-

i. हसादअ: "हसादअ: होड़ो जगर रे मियद खंटि जगरो हिसाबो: तना।"[7] यह हसादअ: क्षेत्र में बोली जाती है। हसा का अर्थ होता है- मिट्टी और द: का अर्थ है- पानी। मिट्टी से निकला हुआ पानी साफ रहता है। हसादअ: मुण्डारी में अन्य बोलियों का कम प्रभाव पड़ा है।[8] "Purest Hasada dialect is spoken in siripati _around Maranghada and soeko¼ and this is admitted by the other Hasada people."[9] हसादअ: क्षेत्र राँची से चाईबासा मार्ग के पूर्व की ओर है, परंतु इस क्षेत्र में भी कहीं-कहीं नागुरी मुण्डा बोली जाती है। मुख्य रूप से खूँटी, मुंडू प्रखण्ड, बंदगाँव, अंड़की, खिजरी प्रखण्ड में रहने वाले मुण्डा लोग हसादअ: मुण्डा बोलते हैं यह मुण्डा भाषा का शुद्ध रूप है।

ii. नागुरी: राँची चाईबासा मार्ग के पश्चिमी क्षेत्र में नागुरी मुण्डा बोली जाती है। इन्हें 'नागुरी मुण्डाको' भी कहा जाता है। इस मुण्डा भाषा में हिन्दी और सादरी मिलावट है। फा0 हॉफमैन कहते हैं- "The Language In this dialect is moreover largely spoiled by the admixture of many hindi and sadani words."[10] फा0 पी0 पोनेट अपनी किताब 'The Munda world.' में लिखते हैं- "It is true that naguri munda is more ffaected by Hindi and Sadri words and Constructions, where as Hasada munda and Ho are more pure munda languages" मुण्डाओं के मध्य अन्य जाति, भाषा भाषियों के आगमन तथा प्रभाव के करण इस रूप में देखने को मिलता है। नागुरी मुण्डा मुख्य रूप से खूँटी तथा मुरहू प्रखण्ड के पश्चिमी क्षेत्रों में जैसे- तोरपा, कर्रा, गोविन्दपुर, रनियाँ, बानो, कोलेबिरा और बसिया प्रखण्ड में बोली जाती है।

iii. केरअ: मुण्डा: केरअ: मुण्डा राँची सदर और उसके उत्तर पश्चिम ओर सटे गाँव के उरांव मुण्डा लोगों द्वारा बोली जाती है। इस केरअ: मुण्डा को ही 'होड़ोलिया जगर' भी कहते हैं। इसे पहचानना आसान है ये बोलने के क्रम में 'केदा' के स्थान पर 'केरा' का प्रयोग करते हैं, जैसे- मांडी दोम जोम केदा (खाना खा लिये?) के स्थान पर 'मांडी दोम जोम केरा' कहते हैं। केरअ: मुण्डा जगर राँची सदर, खिजरी, अनगड़ा, कांके, ओरमांझी और रातू प्रखण्ड में अब भी बोली जाती है। उरांव जाति कैसे मुण्डा बोलने लगी यह अब भी शोध और खोज का विषय बना हुआ है।

iv. लतर दिसुम मुण्डा जगर: मुण्डा भाषा भाषीयों की बड़ी शाखा के मुण्डा लोगों की ही एक भाषा 'लतर दिसुम मुण्डा जगर' कहलाती है, और इस भाषा को बोलने वाले मुण्डाओं को 'लतर दिसुम मुण्डाको' कहा जाता है। इसे ही कुछ लोग 'तमड़िया मुण्डा जगर' भी कहते हैं। यह भाषा क्षेत्र हसादअ: क्षेत्र के पूर्व की ओर है इन क्षेत्रों में बुण्डू, तमाड, सोनाहातु, सिल्ली और राहे प्रखण्ड आते हैं।

मुण्डा भाषा की उत्पत्ति का सिद्धांत

मुण्डा भाषा की उत्पति कैसे हुइ यह अभी भी अंधेरे में है, डॉ० मनसिद्ध बड़ायुद्ध अपनी पुस्तक 'होड़ो जगर सइति ओड़ो: सइति ओलहरियाको' में कहते हैं कई ऐसे भाषाविद् हैं जो भाषा की उत्पत्ति का अलग-अलग सिद्धांत की खोज की है, ऐसे कई सिद्धांत भाषा विज्ञान के पुस्तक में देखे जा सकते हैं उन्हीं सिद्धांतों में से दो सिद्धांतों का जिक्र अपनी किताब में करते हैं जिनमें पहला सिद्धांत- 'दैवी उत्पत्ति का सिद्धांत है जिसमें यह माना गया है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर के द्वारा की गई है। दूसरा सिद्धांत- 'विकासवादी सिद्धांत' है इसमें यह माना गया है कि भाषा का विकास धीरे-धीरे हुआ है। डॉ०एस०ए०बी०डी० हंस अपनी किताब 'होड़ो जगर रेअ: एते हइसि नङगम ओड़ो: हरा रनाकब' में इस प्रकार इस सिद्धांत की व्यख्या करते हैं - "ओते दिसुम रेअ: जान जेतान जगरको लेकागे अबुअ: होड़ो जगरओ नेका जाअ: एटे: लो मेनेअ: बारि केटे: अन गे दोबु कजि दड़ितना एंगाअ: कोयोङ रे होनताए ए होबाजन चि आद् दुडुमआतेए एओनजन चि हुड़िङ हुड़िङ मोचाताए तेए रअ: ककला एटे: केदा एंगाते एना रनअ: ककला सड़ा अयुम केअते अए ओ अएअ: मोचा ताए ते जान जेतान सड़ा उड़ङ केअद् होन ए अइुम इचि कि: अ इनकिन होन होपोन जनव सोबेन इमतङ नेकागेकिङ रिकाएअ। होबओ: होबओ: लो: तयोमते जान जान मोचा रेअ: दो मुटन बइजना मोद् रोकोम मोचासड़ा मिअद् जनअ:ए उदुब एटे: केदा: नेआ सड़ा एनाते हेवाजन लेका रिकाजना टुङको मंड़ि-मंड़ि ते सोतो: एटे: जना।"[11] अर्थात् पृथ्वी में अगर भाषा की उत्पत्ति हुई है तो शायद इसी प्रकार से हुआ होगा और मुण्डारी भाषा का विकास भी ऐसा हुआ होगा, जब एक माँ अपने बच्चे को जन्म दी। बच्चा जब रोने चिल्लाने लगा तब माँ भी अपने बच्चे को प्यार से आवाज देने लगी। हर वक्त माँ और बच्चा ऐसा ही

करते और एक दूसरे की आवाज पहचानते और ऐसा होते होते शब्दों का निर्माण होता गया, आदत बनती गई, इस प्रकार इन्हीं शब्दों से आवश्यकता के अनुसार वाक्यों का निर्माण होता चला गया होगा।

मुण्डा भाषा का क्षेत्र विस्तार

डा० श्याम सुन्दर दास की किताब 'भाषा विज्ञान' पृ०सं० 87 और डॉ० मनसिद्ध बड़ायुद्ध ने अपनी पुस्तक 'होड़ो जगर सइति ओड़ो: सइति ओलहरियाको' में आरंभ में मुण्डा कहाँ-कहाँ बोली जाती थी और यह ऑस्ट्रिक भाषा परिवार से संबंधित है। इसके क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए बताते हैं- "होड़ो जगर सिंगी तुरो: सअ: ते सिंगी हुसर सअ: मेन लेरे मदागासकर दोरेया ते प्रशांत मरंग दोरेया रेअ: ईस्टर नुतुमाकन टयद् जकेद् ओड़ो: बोओ: जमबड़ा ते कटा जमबड़ा सअ: मेन लेरे पंजाब दिसुम आते न्यूजीलैंड रअ: दोरेया जकेद् पसरावाकना।"[12] अर्थात् मुण्डा भाषा पूर्व से लेकर पश्चिम में मेडागास्कर सागर क्षेत्र से लेकर प्रशांत महासागर के ईस्टर नामक स्थान तथा उत्तर से दक्षिण यानि पंजाब देश से न्यूजीलैंड के सागर तक फैला हुआ था।

मुण्डारी भाषा को व्याकरणिक दृष्टि से देखा जाए तो इसकी प्राचीनता में कोई संदेह नहीं। भाषा विद्वानों के द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो मुण्डारी योगात्मक भाषा है। योगात्मक भाषाओं के संबंध तत्व और अर्थ तत्व दोनों में योग हो जाता है, अर्थात् दोनों मिले जुले होते हैं। क्लिष्ट ध्वनियों की तरह मुण्डारी में विशेष प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं, जिन्हें अर्द्धव्यंजना की संज्ञा दी जा सकती है। मुण्डारी में प्रत्यय लगाकर बहुत से शब्द बना लिये गए हैं। मुण्डारी भाषा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. मुण्डारी भाषा में लिंग तथा वचन हिन्दी की तरह नहीं बदलता है जैसे-

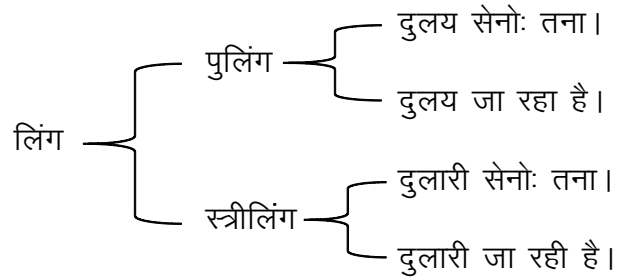

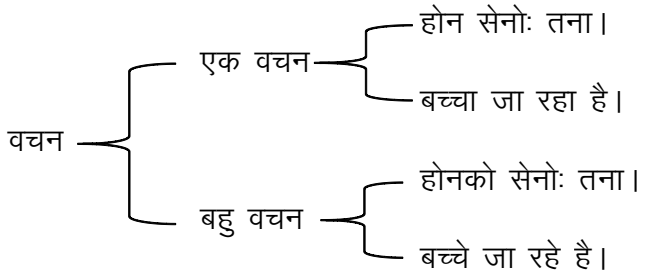

2. मुण्डारी में एक क्रिया के लिए कहीं-कहीं एक शब्द नहीं होता, बल्कि उसकी विविध क्रियाओं के लिए अनेक शब्द होते हैं। जैसे काटना के लिये कोई एक शब्द नहीं परन्तु अनेक शब्द होते हैं, जैसे-

मअ: - कुल्हाड़ी या दाऊली से काटना।
ईर - हँसुआ से काटना।
हद् - छूरी से काटना।
गेद - मांस काटना।
लटब - कैंची से काटना।
हेसे गिड़ी - वृक्ष की सभी शाखाओं को काटना।

3. एक शब्द में प्रत्यय लगाकर शब्दों की संख्या बढ़ती चली गई है जैसे -

आरंभ की प्रत्यय	**बीच में प्रत्यय**
अ + जोम - अजोम	म + प + अ - मपअ:
से + सेन - सेसेन	द + न + ल - दनल

4. संस्कृत की तरह तीन वचन मुण्डारी में भी होते हैं जैसे-

	एक वचन (मिद् सकम)	द्विवचन (बर सकम)	बहुवचन (असु सकम)
उत्तम पुरूष -	अइञ् (मैं)	अलङ/अलिङ (हम दोनों)	अले, अबु (हम लोग)
मध्यम पुरूष -	अम (तुम)	अबेन (तुम दोनो)	अपे (तुम लोग)
अन्य पुरूष -	अए: (वह)	अकिन (वे दोनों)	अको (वे लोग)

5. मुण्डा भाषा की अपनी कोई लिपि नहीं है। यह देवनागरी लिपि में ही लिपिबद्ध की गई है। मुण्डारी बोलियों में शब्दावली के स्तर पर जो अनेक समनताएँ मिलती है, उनमें से एक भारतीय परिदृश्य को प्रभावित करने वाली संस्कृत से लेकर अंग्रेजी भाषा तक के शब्दों के अस्तित्व, संस्कृत से लेकर आधुनिक आर्य भाषाओं तक मुण्डारी भाषा का प्रभाव पड़ा है और वह प्रभाव इनकी प्रकृति का स्थायी अंग बन गया है। यदि मुण्डा परिवार की केवल मुण्डारी की शब्दावली का भी अध्ययन किया जाय तो उससे यह संकेत मिलेगा कि इसकी नियति अन्य भारतीय भाषाओं से भिन्न नहीं रही है। संसार की प्राचीनतम भाषाओं में से एक संस्कृत पर मुण्डारी भाषाओं का उल्लेख अनेक विद्वानों द्वारा हुआ है। इस प्रसंग में काल्डवैल, गुंडर्ट, प्रिजिलुस्की, कायपर, बरो आदि के नामों का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। इन्होंने भारतीय आर्य परिवार की अन्य भाषाओं से संस्कृत की तुलना द्वारा यह स्पष्ट किया है कि इस भाषा की मूर्धन्य ध्वनियाँ मुण्डारी और द्रविड़ भाषाओं से आगत है।[13]

होड़ो जगर रेअ: चिमिन टुङको संस्कृत रेओ लेल हाड़िओ: अ।[14] यह कहना असत्य नहीं होगा कि यह भाषा संस्कृत से भी पुरानी है और भारत की जितनी भी भाषाएँ है उनमें संस्कृत ही एक भाषा है जो मुण्डारी भाषा से उच्चारण एवं व्याकरण में मिलती जुलती है।[15] मुण्डारी भाषा में देवनागरी लिपि से लिखने पर विसर्ग, हलन्त, अङ (अं) तथा अम् का प्रयोग प्रचुर रूप से होते हैं। इसी प्रकार संस्कृत में भी इनका प्रयोग प्रचुर रूप से होता है जैसे:-

1. विसर्ग (:) का प्रयोग:-

मुण्डारी में	**संस्कृत में**
अमअ: (तुम्हारा)	अन्त:
इनिअ: (उसका)	गज:
तअ: (के पास)	नाग:

2. हलन्त (_ _) का प्रयोग:-

उब् (बाल)	जगत्
गेद् (मांस काटना)	ततू
मेद् (आँख)	वाक्

3. अङ (अं) का प्रयोग:-

तेतङ (प्यास)	अहं
अलङ (हम दोनों)	जलं
एतङ (पतला)	एवं

4. 'अम' का प्रयोग:-

अम दुबाकनम् (तुम बैठे हुए हो)	सुजलम् सुकलम् शीतलम्
असि तनम् (मांगते हो)	गन्तव्यम्[16]

मुण्डारी के तीनों पुरूषों में तीन तीन वचन हैं ठीक इसी प्रकार संस्कृत में भी तीनों पुरूष में तीन-तीन वचन हैं जो शायद भारत के अन्य किसी भाषा में नहीं पाए जाते हैं। इन वचनों का प्रयोग में भी मुण्डारी भाषा संस्कृत से एक कदम आगे बढ़ी हुई है एवं मुण्डारी व्याकरण की श्रेष्ठता बताती है वह यही कि मुण्डारी के उत्तम पुरूष के द्विवचन और बहुवचन में दो व्यक्ति तथा अधिक व्यक्तियों की जिस स्पष्टता का बोध होता है यह स्पष्टता संस्कृत में नहीं है जैसे:-

1. मुण्डारी में

	एक वचन	*द्वि वचन*	*बहु वचन*
उ० पु०	अइङ (मैं)	अलङ (हम दोनों	अबु (हम लोग- सुनने वाला यानि मैं और तुम) भी शामिल है)
म० पु०	अम (तुम)	अबेन (तुम दोनो)	अपे (तुम लोग)
अन्य पु०	इनिअ: (वह)	इनकिन (वे दोनो)	इनकु (वे सब)

2. संस्कृत में

उ० पु०	अहं (मैं)	अवम् (हम दोनों)	वयम् (हम लोग)
म० पु०	त्वं (तू)	युवम् (तुम दोनो)	युयम् (तुम लोग)
अन्य पु०	स: (वह)	तौ (वे दोनो)	ते (वे सब)

मुण्डाओं के विषय कई विद्वानों का कहना है कि ये लोग आस्ट्रोनेशिन दल के हैं और कुछ लोगें का कहना है कि ये मंगोलियन दल के लोग हैं। समय के परिवर्तन के साथ मुण्डा जाति का विभाजन तीन मुख्य शाखाओं में हुआ- 1. संतल मुण्डा 2. हो मुण्डा 3. होड़ो मुण्डा। ये सभी लोग आज भी अपनी मातृभाषा बोलते हैं। सूक्ष्म अध्ययन से यह पता चलता है कि इनकी भाषा मुण्डारी ही है हलांकि शब्दों के उच्चारण एवं वाक्यों के प्रयोग में कुछ भिन्नताएँ हैं किन्तु शब्द रूप एवं धातृ रूप का अध्ययन करने से करीब 80-90 प्रतीशत मुण्डारी शब्द उपर्युक्त तीनों दलों द्वारा बोल-चाल में व्यवहार की जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. डॉ० मनसिद्ध बड़ायुद्ध, नवा होड़ो जगर मुंडि, (नवीन मुण्डारी व्याकरण), 2005, पृ० सं० (III)
2. सम्पा० रणेन्द्र, झारखण्ड इनसाइक्लोपीडिया (खण्ड-4) मांदर की धमक और गुलईची की खुशबू, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ० सं० - 186
3. वही, पृ० सं० - 69
4. एस०सी० राय, मुण्डाज एण्ड देयर कंट्री, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, झारखण्ड, 2004, पृ० सं० - 11
5. अल्फ्रेड नोतरोत्त, ए०जी०एफ० फिटजेराल्ड, ग्रामर ऑफ कोल लेंग्वेज, जी०ई०एल०, मिशन प्रेस, राँची, 1905, पृ० सं० - 01
6. वही, पृ० सं० - 04
7. डॉ० मनसिद्ध बड़ायुद्ध, नवा होड़ो जगर मुंडि, (नवीन मुण्डारी व्याकरण), 2005, पृ० सं० (III)
8. सम्पा० रणेन्द्र, झारखण्ड इनसाइक्लोपीडिया (खण्ड-4) मांदर की धमक और गुलईची की खुशबू, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ० सं० - 186
9. फॉ० जॉन बाप्तिस्त हॉफमैन, इनसाइक्लोपीडिया मुण्डारिका, खण्ड-H पृ० सं० -1819
10. वही, खण्ड-N, पृ० सं० - 2911
11. डॉ० एस०बी०डी० हंस, 'होड़ो जगर रेअ एते: हइसि नङगम ओड़ो: हरा रनाकब', 1989, पृ० सं० - 01
12. डॉ० मनसिद्ध बड़ायुद्ध, 'होड़ो जगर सइति ओडो: सइति ओलहरियाको, जेवियर पब्लिकेशन, राँची, 2018, पृ० सं० - 07
13. डॉ० जिन्दर सिंह मुण्डा, हिंदी और मुण्डारी भाषा के व्याकरण का तुलनात्मक विवेचन, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ० सं० - 59
14. डॉ० मनसिध बड़ायुद, 'होड़ो जगर सइति ओडो: सइति ओलहरियाको, जेवियर पब्लिकेशन, राँची, 2018, पृ० सं० - 10
15. डॉ० मन मसीह मुण्डू, मुण्डारी टुङकोढारी (मुण्डारी शब्दकोष), कैथोलिक प्रेस, राँची, 1994, पृ० सं० - XXX
16. वही, पृ० सं० - XXXI

पेरिस जलवायु समझौता और भारतीय हितों की चिंताएं: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० बिन्ध्याचल साह

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, बलिराम भगत महाविद्यालय समस्तीपुर, बिहार

सारांश: जलवायु परिवर्तन आज की दौर की सबसे गंभीर वैश्विक समस्या है। पूरा विश्व इसके प्रभावों से त्रस्त है। चाहे चक्रवात की बारंबारता हो, आग लगने की घटनाएं हो, ग्लेशियर का पिघलना हो, अथवा वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा हो, इसके संयुक्त प्रभाव से सभी देश पीड़ित हैं। विशेषकर गरीब और विकासशील देश इसके प्रभावों से सबसे अधिक पीड़ित हैं। इससे निपटने के लिए वैश्विक स्तर पर विभिन्न प्रयास किए गए हैं। इन्हीं प्रयासों में से एक है वर्ष 2015 में किया गया पेरिस जलवायु समझौता। इस समझौते ने विश्व को बचाने के लिए हस्ताक्षरकर्ता देशों द्वारा सामूहिक प्रयास करने के महत्व को रेखांकित करते हुए उनकी प्रतिबद्धताओं को व्यक्त किया है, साथ ही एक कानूनी रूप से बाध्यकारी जिम्मेवारी भी दे डाली है। वैश्विक तापमान को पूर्व औद्योगिक स्तर से 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करना, प्रत्येक 5 वर्ष पर द्वारा कार्बन उत्सर्जन की प्रतिबद्धताओं का आकलन करना और विकासशील देशों को इससे लड़ने के लिए बुनियादी ढांचे को विकसित करने के लिए वित्त और तकनीकी मदद उपलब्ध कराना इस समझौते का मुख्य लक्ष्य और विशेषताएं हैं। लेकिन समय के साथ विकसित देश अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में पीछे हट रहे हैं और वह वित्तीय और तकनीकी सहायता देने में ना टाल-मटोल कर रहे हैं। विकसित देश जलवायु परिवर्तन के लिए भारत और चीन जैसे विकासशील देशों को जिम्मेवार मानते हैं, जबकि विकासशील देश जलवायु परिवर्तन के लिए विकसित देशों को। इस मतभेद ने पेरिस जलवायु समझौते के लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन बना दिया है। इसी बीच अमेरिका (ट्रंप सरकार) पेरिस जलवायु समझौते से अपने आप को अलग कर रहा है। इससे और गंभीर समस्या पैदा होने वाली है, क्योंकि वह एक अग्रणी देश के साथ इस मुहिम का सबसे बड़ा अंश दाता देश भी है। भारत एक तेजी से बढ़ता हुआ विशाल अर्थव्यवस्था वाला विकासशील देश है। उसे विकसित बनने के लिए बहुत से विकास कार्य करने हैं, जिसमें ऊर्जा जरूरतों की बहुत बड़ी भूमिका है। भारत अचानक में अपने ऊर्जा जरूरतों को रोक नहीं सकता है और न हीं रातों-रात परंपरागत ऊर्जा स्रोतों को नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में बदल सकता है। साथ हीं, ऐसा करने के लिए भी उसे बहुत सारी वित्तीय और नवीनतम तकनीकी मदद की आवश्यकता है, जिसे देने में विकसित देश पीछे हट रहे हैं।इससे भारत जैसे विकासशील देशों को बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। वह न तो अपने हितों की अनदेखी कर सकता है और न हीं पर्यावरण को नुकसान होते देख सकता है। प्रस्तुत शोध आलेख इसी का विश्लेषण करते हुए राह तलाशने की एक गंभीर कोशिश है।

शब्द कुंजी: जलवायु परिवर्तन, पेरिस जलवायु समझौता, हरित ईंधन, ग्रीन हाउस गैस, कार्बन उत्सर्जन, नवीकरणीय ऊर्जा, सतत् विकास इत्यादि।

परिचय: मनुष्य ने अपना विकास करने के लिए पर्यावरण और पारिस्थितिकी को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचा है। अंधाधुंध विकास की दौड़ में उसने प्राकृतिक संसाधनों का जबरदस्त दोहन किया है। इसके परिणामस्वरूप पूरा इकोसिस्टम प्रभावित हो गया है। आज पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन के गंभीर परिणामों का सामना कर रही है। विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों ने अपने को मजबूत और धनवान बनने के लिए पर्यावरण का बहुत ज्यादा दोहन और अतिक्रमण किया है। इन्होंने विकसित बनने के लिए ऐतिहासिक रूप से सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन किया है, जिसका परिणाम अब वैश्विक स्तर पर चारो ओर दिखने लगा है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्र का जलस्तर दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है, प्रति वर्ष तापमान रिकॉर्ड तोड़ रहा है, बढ़ती गर्मी के कारण जंगलों में आग लगने की घटनाएं बढ़ती जा रही है, चक्रवातों और तूफानों की निरंतरता और तीव्रता बढ़ती जा रहा है, फिर भी विकसित देश यह मानने को तैयार नहीं है कि उनके ऐतिहासिक गलती ने पूरे विश्व को समाप्त होने के मुहाने पर ला छोड़ा है। यदि वर्तमान में पूरी ईमानदारी के साथ पर्यावरण को संरक्षित नहीं किया गया और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को रोकने के लिए बनाए गए समझौते को पूर्णत: लागू नहीं किया गया, तो फिर बहुत देर हो जाएगी। हम विकास करते-करते विनाश के गर्त मेंपहुंच जाएंगे।

हालांकि बढ़ती पर्यावरण चुनौतियों से निपटने के लिए वैश्विक स्तर पर बहुत सारे प्रयास किए गए हैं, लेकिन अभी भी इनमें नैतिक रूप से गंभीरता का अभाव दिख रहा है। वर्ष 1992 का रियो डी जेनेरियो सम्मेलन जिसे पृथ्वी सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है, जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए सर्वप्रथम अंतरराष्ट्रीय आम सहमति का एक प्रतिबिंब था। इसी सम्मेलन के दौरान जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन बनाया गया था, जिस पर शुरू में 166 देश ने हस्ताक्षर किए थे। आज तक 197 देशों ने इसकी पुष्टि की है। वर्ष 1997 में क्योटो प्रोटोकॉल लागू हुआ जिसमें ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए पहली बार वैश्विक प्रतिबद्धता व्यक्त की गई थी और जलवायु परिवर्तन पर भविष्य के अंतरराष्ट्रीय समझौतों के लिए आधार तैयार किया गया था। इसके बाद 12 दिसंबर, 2015 को पेरिस समझौता हुआ। इसमें वर्ष 2050 तक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को शून्य तक कम करने की प्रतिबद्धता को बनाए रखा गया और वैश्विक तापमान वृद्धि के स्तर को 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे और अधिमानत: 1.5 डिग्री सेल्सियस से नीचे सीमित करने का प्रस्ताव रखा गया। पेरिस जलवायु समझौते में ही यह सहमति भी बनी कि विकसित देश विकासशील एवं कमजोर देशों को वित्तीय और तकनीकी मदद उपलब्ध

कराएंगे, जिससे वह अपने देश में नवीकरणीय ऊर्जा की बुनियाद तैयार करेंगे। लेकिन अभी तक विकसित देशों ने अपनी इस प्रतिबद्धता को पूरा नहीं किया है। इससे यह समझौता भी मात्र एक कागज का टुकड़ा बनकर रह गया है। कोढ़ पर खाज यह कि अमेरिकी ट्रंप सरकार इस समझौते को मानने से इनकार कर रही है और खुद को इससे अलग करने की तैयारी भी कर रही है। इसका मतलब है कि अमेरिका एक ओर तो अपना निर्धारित अंशदान नहीं देगा, दूसरी ओर वह अपनी प्रतिबद्धताओं को भी नहीं मानेगा और विकास के नाम पर बड़ी मात्रा में कार्बन उत्सर्जन करेगा। इसका परिणाम पूरे विश्व विशेषकर विकासशील देशों पर और गंभीर रूप से पड़ेगा।

भारत की स्थिति बहुत ही जटिल है। एशिया में भारत और चीन वर्तमान में संयुक्त रूप से सर्वाधिक कार्बन उत्सर्जक देश हैं, क्योंकि दोनों एक विकासशील देश हैं, इसीलिए विकास करना उनकी मजबूरी है। जब विकास होगा तो कार्बन उत्सर्जन भी होगा, क्योंकि ये अभी भी ऊर्जा के लिए मुख्यत: परंपरागत स्रोतों कोयला, पेट्रोलियम आदि पर निर्भर हैं। कार्बन उत्सर्जन कम करने के लिए भारी मात्रा में पूंजी और नवीन तकनीक की आवश्यकता है, जिसे विकसित देश पर्याप्त मात्रा में और ससमय दे नहीं रहे हैं। भारत अपने विकास कार्यों को रोक नहीं सकता है। भारत ने वर्ष 2070 तक शून्य कार्बन उत्सर्जन का लक्ष्य निर्धारित किया है और इसके लिए तेजी से नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की स्थापना और विस्तार की ओर बढ़ रहा है। फिर चाहे वह सौर ऊर्जा हो, पवन ऊर्जा हो, हाइड्रोजन ईंधन हो अथवा यूरेनियम ईंधन हो; भारत प्राणी और पर्यावरण के अपने दायित्वों एवं प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए तेजी से और गंभीर प्रयास कर रहा है।साथ ही, उसे अपनी विशाल जनसंख्या और अर्थव्यवस्था को पोषित एवं समृद्ध करने के लिए तीव्र विकास की भी आवश्यकता है, लेकिन वित्त और तकनीक की कमी उसके उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को पूरा करने में अवरोध उत्पन्न कर रहा है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य:

1. पेरिस जलवायु समझौता के बारे में जानना।
2. पेरिस जलवायु समझौता की प्रतिबद्धताओं और विफलताओं को जानना।
3. भारत जैसे विकासशील देशों के हितों की चिंताओं को समझना और इसे दूर करने के उपाय तलाशना।

शोध परिकल्पना:

1. जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ता है।
2. पेरिस जलवायु समझौते के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को इसके ईमानदार अनुपालन द्वारा हीं प्राप्त किया जा सकता है।
3. जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए विकसित देशों को अधिक योगदान करना होगा।

शोध विधि: यह शोध लेखन पूर्ण रूप से द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों एवं आंकड़ों द्वारा किया गया है। प्रकाशित आलेखों, पत्र-पत्रिकाओं, विभिन्न संस्थानों द्वारा निर्गत आंकड़ों एवं तथ्यों और सोशल साइट्स आदि का उपयोग द्वितीयक स्रोत के रूप में किया गया है। शोध लेखन कार्य विश्लेषणात्मक रूप में किया गया है। शोध लेखन में आवश्यकतानुसार यथास्थान गणितीय चिन्हों का उपयोग किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण:

जलवायु परिवर्तन और इसके नकारात्मक प्रभावों से निपटने के लिए पेरिस में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (सीओपी:21) में 196 देशों के विश्व नेताओं ने 12 दिसंबर 2015 को एक ऐतिहासिक पेरिस जलवायु समझौता पर हस्ताक्षर किया। यह एक अंतरराष्ट्रीय संधि है जो अपने हस्ताक्षरकर्ता देशों को जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए कानूनी रूप से बाध्य करती है। वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कम से कम 55% योगदान देने वाले और कम से कम 55 देशों द्वारा अनुसमर्थन करने की शर्त पर पूरी होने के बाद यह समझौता 4 नवंबर 2016 को लागू हुआ। इसमें वैश्विक तापमान वृद्धि को सीमित करने के लिए एक कार्य-योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई। पेरिस जलवायु समझौते में वर्ष 2020 में क्योटो प्रोटोकॉल की समाप्ति के बाद जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए और वैश्विक रणनीति बनाने के लिए आवश्यक सभी तत्व शामिल हैं। यह एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी समझौता है, क्योंकि पहली बार विकसित और विकासशील दोनों देशों ने जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने की प्रतिबद्धता जताई है।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसी) जलवायु कार्रवाई पर मुख्य अंतरराष्ट्रीय समझौता है। वर्ष 2015 में यूएनएफसीसी के पक्षों की बैठक के दौरान ही देशों ने पेरिस समझौते को अपनाया था। यूएनएफसीसी उन तीन सम्मेलनों में से एक है, जिसे वर्ष 1992 में रियो डि जेनेरियो में पृथ्वी शिखर सम्मेलन में अपनाया गया था, जब अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने लोगों और पर्यावरण की रक्षा करने तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता को पहचाना था। विश्व के लगभग सभी देशों ने इसका अनुमोदन किया। वर्ष 1997 में यूएनएफसीसी के हस्ताक्षरकर्ताओं ने क्योटो प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए, जिसने विकसित देशों के लिए पहली बार कानूनी रूप से बाध्यकारी उत्सर्जन कटौती लक्ष्य पेश किया, जिसकी अवधि वर्ष 2020 में समाप्त हो गई। क्योटो प्रोटोकॉल में केवल विकसित देशों को उत्सर्जन कम करने की आवश्यकता थी, जबकि पेरिस जलवायु समझौते ने विकसित और विकासशील दोनों देशों को जलवायु परिवर्तन के लिए साझा समस्या और जिम्मेवार मानते हुए संयुक्त रूप से उत्सर्जन में कमी करने के लिए तैयार किया है।पेरिस जलवायु समझौते में सभी देशों को मार्गदर्शन देने के लिए एक दीर्घकालिक लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं, जो की मुख्य है:

1. तापमान को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करना: वैश्विक तापमान वृद्धि को पूर्व-औद्योगिक स्तरों से 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे रखना के लिए वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को पर्याप्त रूप से कम करना तथा इसे पूर्व-औद्योगिक स्तरों से 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के प्रयास जारी रखना, यह मानते हुए कि इससे जलवायु परिवर्तन के जोखिम और प्रभाव काफी कम हो जाएंगे।

2. प्रत्येक 5 वर्ष पर कार्बन उत्सर्जक देशों की प्रतिबद्धताओं का आकलन करना: इस समझौते के उद्देश्य और दीर्घकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में यह सामूहिक प्रगति का समय-समय पर आकलन और समीक्षा करना।
3. विकासशील देशों को विकसित देशों द्वारा वित्त एवं प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराना: जलवायु परिवर्तन को कम करने, लचीलेपन को मजबूत करने और जलवायु प्रभावों के अनुकूल होने की क्षमताओं को बढ़ाने के लिए विकासशील देशों को वित्त पोषण प्रदान करना।

पेरिस समझौते के मुख्य मुद्दे:

1. दीर्घकालिक लक्ष्य: सदी के अंत (वर्ष 2100) तक वैश्विक तापमान वृद्धि को पूर्व-औद्योगिक युग के स्तर की तुलना में 2 डिग्री सेल्सियस से कम तक सीमित रखने का लक्ष्य रखा गया है, जिससे इस लक्ष्य को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ाने का रास्ता खुला है।
2. राष्ट्रीय योगदान: यह सभी हस्ताक्षरकर्ता देशों को राष्ट्रीय जलवायु योगदान प्रस्तुत करने के लिए कार्य करता है, जिसे नियमित रूप से अद्यतन किया जा सके, ताकि उन्हें अधिक महत्वाकांक्षी बनाया जा सके और निर्धारित दीर्घकालिक लक्ष्य को पूरा किया जा सके।
3. देशों के बीच कार्बन उत्सर्जन में कमी का आदान-प्रदान करना और कार्बन डाइऑक्साइड की कीमत का संकेत: इस समझौते में उत्सर्जन विनिमय और कार्बन मूल्य निर्धारण योजनाओं के विकास में प्रगति के लिए दरवाजे खुले रखने का प्रावधान शामिल है। "सहकारी दृष्टिकोण" शीर्षक के तहत शमन परिणामों (अंतरराष्ट्रीय उत्सर्जन व्यापार) के अंतरराष्ट्रीय हस्तांतरण और शमन और सतत विकास तंत्र के निर्णय निर्माण की संभावना स्थापित की गई है।
4. वित्तीय सहायता: इस समझौते में विकसित देशों पर वित्त उपलब्ध कराने में अग्रणी बने रहने का दायित्व बरकरार रखा गया है, लेकिन पहली बार "अन्य पक्षों" से स्वैच्छिक वित्तीय सहायता देने का आह्वान किया गया है।
5. किए गए कार्यों की निगरानी, रिपोर्टिंग और सत्यापन की व्यवस्था: इसमें पारदर्शिता का एक ढांचा शामिल है जो दखलंदाजी या दंडात्मक से परे होगा। साथ ही, विभिन्न अग्रणी देशों के बीच विश्वास पैदा करेगा। यह व्यवस्था भी की गई है कि वर्ष 2023 से संयुक्त राष्ट्र प्रत्येक 5 वर्षों पर समझौते के कार्यान्वयन और की गई प्रगति पर एक रिपोर्ट तैयार करेगा, जिसमें जलवायु योगदान का प्रभाव, वित्तीय औ तकनीकी संसाधनों को जुटना, वैश्विक तापमान का पूर्वानुमान आदि शामिल होंगे।
6. प्रौद्योगिकी हस्तांतरण: इस समझौते में विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को तकनीकी हस्तांतरण में तेजी लाने की आवश्यकता को मान्यता दी गई है और उपलब्ध तकनीकी और वित्तीय तंत्र का उपयोग करने की प्रतिबद्धता दी गई है। साथ ही, मौजूदा तंत्र को मजबूत करने के उपायों की घोषणा भी की गई है।
7. अनुकूलन: सभी पक्षों से आग्रह किया गया है कि वे विकासशील देशों के मामले में इसकी पूर्ति के लिए वित्तीय और तकनीकी सहायता की आवश्यकता स्थापित करने के लिए पर्याप्त योजना बनाएं और उपायों को क्रियान्वित करें।

पेरिस जलवायु समझौते की मुख्य विशेषताएं:

1. दीर्घकालिक लक्ष्य: सदी के अंत तक वैश्विक औसत तापमान वृद्धि 1.5 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं होनी चाहिए।
2. पारदर्शिता: पारदर्शिता और निगरानी सुनिश्चित करने के लिए सभी देश एक-दूसरे को और अपनी जनता को रिपोर्ट देते हैं कि वह अपने लक्ष्यों तक पहुंचने में कितना अच्छा काम कर रहे हैं।
3. योगदान: देश अपने उत्सर्जन को कम करने के लिए जलवायु कार्रवाई योजनाएं प्रस्तुत करके जलवायु कार्रवाई के लिए प्रतिबद्ध हैं।
4. एकजुटता: जलवायु वित्त की आवश्यकता कमजोर देश को उत्सर्जन कम करने तथा जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन विकसित करने में मदद करने के लिए है।
5. महत्वाकांक्षा: सरकारें प्रत्येक 5 वर्ष पर अपनी कार्य योजनाएं बताती हैं। प्रत्येक योजना में अधिक महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

पेरिस जलवायु समझौते का महत्व:

1. इस समझौते में सभी देशों की ओर से अपने कार्बन उत्सर्जन को कम करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के अनुकूल होने के लिए मिलकर काम करने की प्रतिबद्धताएं शामिल हैं और देशों से समय के साथ अपनी प्रतिबद्धताओं को मजबूत करने का आह्वान किया गया है।
2. यह समझौता हमें नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग की ओर तेजी से बढ़ने के लिए प्रेरित और संकल्पित करता है।
3. यह समझौता विकसित देशों द्वारा विकासशील देश को उनके जलवायु शमन और अनुकूलन प्रयासों में सहायता करने का मार्ग और जिम्मेवारी प्रदान करता है।
4. यह सभी देशों के जलवायु लक्ष्यों की पारदर्शी निगरानी और रिपोर्टिंग के लिए एक रूपरेखा तैयार करता है।
5. पेरिस समझौता आने वाले दशकों के लिए वैश्विक प्रयासों का मार्गदर्शन करने वाला एक टिकाऊ ढांचा प्रदान करता है।
6. यह शुद्ध शून्य कार्बन उत्सर्जन वाली दुनिया की ओर बढ़ाने की शुरुआत का प्रतीक है।
7. सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी इस समझौते का कार्यान्वयन आवश्यक है।
8. पेरिस जलवायु समझौता हरित ईंधन, हरित विकास और हरित दुनिया की परिकल्पना करता है, जहां सभी जीव-जंतु, पेड़-पौधे और संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र समृद्ध एवं सुरक्षित रहे।

9. यह पूरी दुनिया को बचाने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और कानूनी रूप से बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय समझौता है।
10. इस समझौते का समयबद्ध और ईमानदारी पूर्वक अनुपालन करके प्राणी और पर्यावरण को बचाया जा सकता है।

पेरिस जलवायु समझौता के अनुपालन का तरीका:

- यह समझौता देशों द्वारा की जाने वाली तेजी से महत्वाकांक्षी जलवायु करवाई के 5 वर्ष के चक्र पर काम करता है। प्रति 5 वर्ष में प्रत्येक देश से एक अद्यतन राष्ट्रीय जलवायु करवाई योजना प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (एनबीसी) के रूप में जाना जाता है।
- अपने एनडीसी में, देश पेरिस समझौते के लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए अपने ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों के बारे में बताते हैं देश एनडीसी में उन कदमों के बारे में बताते हैं; जो वह बढ़ते तापमान के प्रभाव के अनुकूल होने के लिए लचीलापन बनाने के लिए उठाएंगे।
- वर्ष 2023 में पेरिस समझौते के तहत दुनिया के प्रयासों का पहला "वैश्विक स्टॉकटेक" (सीओपी: 28) में संपन्न हुआ, जिसमें वर्ष 2023 तक सभी क्षेत्र शमन, अनुकूलन और वित्त में कार्रवाई में तेजी लाने के तरीके पर निर्णय लिया गया, जिसमें सरकारों से जलवायु प्रतिबद्धताओं के अपने अगले दौर में जीवाश्म ईंधन से पवन और सौर ऊर्जा जैसे नवीकरणीय ऊर्जा में संक्रमण को गति देने का आह्वान भी शामिल है।
- दीर्घकालिक लक्ष्य की दिशा में प्रयासों को बेहतर ढंग से तैयार करने के लिए पेरिस समझौता देश का दीर्घकालिक रणनीति तैयार करता है और इसे प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित करता है। एनडीसी के विपरीत वे अनिवार्य नहीं हैं।
- पेरिस जलवायु समझौते की व्यवहारिक कार्यान्वयन के परिचालन विवरण पर दिसंबर 2018 में पोलैंड के कैटोविस में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (सीओपी: 24) में सहमति हुई थी, जिसे साधारण भाषा में "पेरिस नियम पुस्तिका" कहा जाता है और नवंबर 2021 में स्कॉटलैंड के ग्लासगो (सीओपी: 26) में इसे अंतिम रूप दिया गया।

जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेवार कौन?

यह बहुत ही गंभीर प्रश्न है, क्योंकि विकासशील देश, विकसित देशों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेवार मानते हैं और विकसित देश, विकासशील देशों को। विकासशील देशों का तर्क है कि विकसित देशों ने समय के साथ अधिक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन किया है, इसलिए इन्हें अधिक भार उठाना चाहिए, क्योंकि यह बिना किसी रोक-टोक के अपनी अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ाने में लग रहे। अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोपीय यूनियन आदि देशों ने विकसित होने के क्रम में सर्वाधिक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन किया है, जबकि विकसित देशों का मानना है कि विकासशील देशों जैसे चीन, भारत आदि ने अपने अधिक उत्सर्जन किया है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो वर्ष 1850 से अब तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जक शीर्ष पांच देश क्रमश: अमेरिका 641 बिलियन मीट्रिक टन, चीन 437 बिलीयन मीट्रिक टन, यूरोपीय यूनियन 418 बिलियन मीट्रिक टन, रूस 254 बिलियन मीट्रिक टन और भारत 172 बिलियन मीट्रिक टन हैं।वर्ष 2023 में ग्रीनहाउस गैसों के शीर्ष 5 उत्सर्जक देश क्रमश: चीन 14 बिलियन मेट्रिक टन अमेरिका 5.9 बिलियन मेट्रिक टन भारत 4.2 बिलियन मीट्रिक टन, यूरोपीय यूनियन 3.1 बिलियन मीट्रिक टन और रूस 2.7 बिलियन मीट्रिक टन रहे हैं। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारत ने अन्य शीर्ष उत्सर्जक देश की तुलना में विश्व की एक नंबर जनसंख्या और विकासशील देश होते हुए भी तुलनात्मक रूप से बहुत ही कम उत्सर्जन किया है और कर रहा है। दुनिया के अन्य विकासशील, गरीब और पिछड़े देश विकसित देशों के दबाव में अपनी विकास प्रक्रिया को अचानक से बाधित नहीं कर सकते हैं।

अमेरिका सहित विकसित देशों का रवैया और विकासशील देशों की चिंताएँ:

ट्रंप ने अपने दूसरे कार्यकाल में भी जलवायु परिवर्तन को धोखा करार देते हुए कहा है कि वह पेरिस जलवायु समझौते से अमेरिका को बाहर निकलेंगे।एक ओर जहां दुनिया गंभीर जलवायु संकट से गुजर रही है, वहीं दूसरी ओर, विकसित देश अपने दायित्व से मुकरते दिख रहे हैं। विकसित देश स्वयं सर्वाधिक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कर रहे हैं और जिम्मेदारी विकासशील देशों पर थोप रहे हैं। इससे जलवायु संकट दूर करने का संकल्प कमजोर होता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान जिस तरह से निरंतर बढ़ रहा है, वह केवल गरीब और विकासशील देशों तक हीं सीमित नहीं रहेगा, अपितु इसकी आंच विकसित देशों तक भी पहुंचेगी; यह बात वे समझ नहीं रहे हैं। अमेरिका में लगातार आते चक्रवात और आग की लगती घटनाएं इसका उदाहरण है। अभी हाल ही में अमेरिका के लॉज एंजेलिस में आग की भयावह घटना हुई है, फिर भी अमेरिका इसे हल्के में ले रहा है। पूरा यूरोप कड़ाके की ठंड से प्रभावित रहता है, ये सभी जलवायु परिवर्तन के हीं दुष्परिणाम हैं। इसके बावजूद बाकू, अजरबैजान में आयोजित कॉप: 29 शिखर सम्मेलन में कुछ ज्यादा हासिल नहीं किया जाना निराशा पैदा करता है। सभी जानते हैं की वित्त और प्रौद्योगिकी की मदद के बिना विकासशील और गरीब देश अपने बूते जलवायु संकट से नहीं निपट सकते। जिन देशों के पास सर्वाधिक क्षमता और संसाधन है, वे बेरुखी दिखा रहे हैं और न्याय संगत जिम्मेदारी लेने से पीछे हट रहे हैं। यह भारत जैसे विकासशील देशों के लिए निराशा और चिंता की बात है। कॉप: 29 जलवायु सम्मेलन कोई ठोस और नतीजा पूर्ण निष्कर्ष नहीं दे सका; जो विकसित और विकासशील देश के गहरे मतभेद को दर्शाता है। अब ट्रंप द्वारा अमेरिका को समझौते से बाहर निकलने का रुख गंभीर चिंता पैदा कर रहा है। एक ओर अमेरिका जैसे बड़े देश अपनी जिम्मेदारी से पीछे भाग रहे हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में मनमानी भी कर रहे हैं। इस स्थिति में विकासशील देशों के लिए यह संभव नहीं है कि वे अपने दम पर अपनी पीढ़ी को स्वच्छ और सुरक्षित दुनिया दे पाए। नवीकरणीय ऊर्जा के विकास, बुनियादी ढांचे के निर्माण और कृषि में लचीलापन लाने के लिए वित्त की केंद्रीय भूमिका है। यह ग्लोबल साउथ (विकासशील देश) के देशों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, जो जलवायु संकट का सबसे अधिक खमियाजा उठा रहे हैं, लेकिन उनके पास वित्त और प्रौद्योगिकी का अभाव है। विकासशील देश वैश्विक

कार्बन उत्सर्जन में कम योगदान देते हैं, लेकिन गंभीर जलवायु संकट का सबसे अधिक सामना वही करते हैं। नॉर्थ साउथ (विकसित देश) के देशों की बेरुखी और गैर-जिम्मेदार पूर्ण रवैये से जलवायु संकट के प्रति असुरक्षित देश तेजी से जलवायु खतरों के संपर्क में आते जा रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन से संबंधित भारत की चुनौतियां:

1. भारत में जलवायु परिवर्तन के कारण गर्म लहरें, बाढ़, अनियमित मानसून और घटते भूजल भंडार जैसी समस्याएं दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।
2. भारत में हीट वेव की आवृत्ति और तीव्रता लगातार बढ़ रही है।
3. भारत में सूखे की संख्या और इसकी गंभीरता में तेजी से वृद्धि हो रही है।
4. भारत में जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन पर प्रभाव पड़ रहा है।
5. जलवायु परिवर्तन का प्रभाव आम जन-जीवन, जीव-जंतुओं और पर्यावरण पर भी दिखाई देने लगा है।

वर्तमान जलवायु स्थिति:

जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (आईपीसीसी) जो की एक अंतरराष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन वार्ता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है के वर्तमान अध्यक्ष जिम स्की ने कहा है कि, "वैश्विक तापमान को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने की आकांक्षा अभी भी संभव है, लेकिन यह एक पतले धागे से लटकी हुई है।" वर्ष 2024 में विश्व और अस्थायी रूप से 1.5 डिग्री सेल्सियस तापमान वृद्धि को पार कर गया है, जिसमें जलवायु परिवर्तन के लिए सख्त कार्रवाई की तत्काल आवश्यकता पर जोर दिया गया है। वर्तमान रुझान संकेत दे रहे हैं कि अपर्याप्त उत्सर्जन कटौती, अपर्याप्त अनुकूलन उपायों और जलवायु वित्त में मंद प्रगति के कारण यह लक्ष्य (1.5 डिग्री सेल्सियस तक तापमान को सीमित करना) दूर होता जा रहा है।

पेरिस जलवायु समझौता और भारत की प्रगति:

भारत ने पेरिस समझौते के लक्ष्यों के अनुरूप अपने राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (एनडीसी) को संयुक्त राष्ट्र के समक्ष पेश करते हुए तीन अहम वादे किए और बताया कि देश कितना कार्बन उत्सर्जन होने देगा, इसमें कितनी कटौती करेगा और कैसे करेगा। ये तीन वादे निम्नलिखित है:

1. भारत ने वर्ष 2005 के स्तर के मुकाबले अपनी जीडीपी से होने वाले उत्सर्जन को वर्ष 2030 तक 45% तक काम करेगा।
2. वर्ष 2030 तक भारत अपने कुल बिजली उत्पादन का 50% तक स्वच्छ ऊर्जा से हासिल करेगा।
3. वर्ष 2030 तक भारत अतिरिक्त पेड़ और जंगल लगाकर 2.5 से 3.0 अरब टन अतिरिक्त कार्बन सोंखेगा।

उपरोक्त एनडीसी में किए गए वादे के अनुरूप भारत ने जलवायु परिवर्तन से निपटने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जोकि निम्नलिखित है:

1. दिसंबर 2024 में प्रस्तुत अपनी चौथी द्विवार्षिक अद्यतन रिपोर्ट (बीयूआर-4) में भारत ने 2005 और 2020 के बीच जीडीपी की उत्सर्जन तीव्रता में 36 प्रतिशत की कमी की सूचना दी है, जबकि वर्ष 2030 तक इसका एनडीसी लक्ष्य 45% है।
2. भारत की गैर-जीवाश्म ईंधन आधारित बिजली उत्पादन क्षमता दिसंबर 2024 में 47.10% तक पहुंच गई, जो वर्ष 2030 के लिए 50% लक्ष्य से सिर्फ थोड़ा ही कम है।
3. इसके अतिरिक्त, भारत ने अतिरिक्त वन क्षेत्र के माध्यम से 2.29 अरब टन कार्बन सोंखने का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, जो वर्ष 2030 तक 2. 5 से 3.0 अरब टन कार्बन सोंखने के लक्ष्य के बेहद करीब है।
4. भारत ने कार्बन बाजार के विकास का समर्थन करने के लिए वर्ष 2022 में ऊर्जा संरक्षण अधिनियम में संशोधन किया है। सीसीटीएस अनुपालन तंत्र में उपलब्धि और व्यापार योजना को शामिल किया गया है।
5. प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने ग्लासगो में हुए कॉप: 26 सम्मेलन में वर्ष 2070 तक नेट जीरो कार्बन उत्सर्जन हासिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा के अनुसार, नेट जीरो का मतलब है: ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को शून्य के बिल्कुल करीब ले जाना। यह तब हासिल होता है, जब हम जितना कार्बन उत्सर्जन करते हैं, उतना कार्बन पर्यावरण से सोंख लेते हैं। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए भारतीय रेलवे ने वर्ष 2030 तक नेट जीरो कार्बन उत्सर्जन हासिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। रेलवे प्रत्येक वर्ष अपने कार्बन उत्सर्जन में 6 करोड़ तन की कमी करना चाहता है। इसी के साथ भारत में एलईडी बल्ब को बढ़ावा देने का अभियान चलाया जा रहा है। इससे भी सालाना 4 करोड़ टन कार्बन उत्सर्जन कम हो रहा है।
6. यूएनपीए: 2024 में भारत ने मिशन लाइफ (पर्यावरण के लिए जीवन शैली) पहल को बढ़ावा देते हुए सतत जीवन शैली पर प्रस्ताव पेश किया है।

भारत सरकार अपने वादे एवं इरादे को पूरा करने के लिए निम्नलिखित प्रयास/कार्य कर रही है:

1. वन क्षेत्र का निरंतर विस्तार किया जा रहा है। जल-जीवन हरियाली योजना इसका अनुपम उदाहरण है।
2. ऊर्जा उत्पादन हेतु नवीकरणीय साधनों पर जोर दिया जा रहा है।
3. परिवहन साधनों यथा: ट्रेन, बस, कार, स्कूटर आदि में हरित ईंधन के उपयोग को बढ़ाया जा रहा है।
4. सरकार पेपरलेस की ओर धीरे-धीरे बढ़ रही है।
5. बिजली उत्पादन और उपभोग हेतु छतों, कार्यालयों, भवनों, सड़कों आदि पर सोलर पैनल लगाया जा रहा है।

6. एलईडी बल्ब का प्रयोग सभी जगह हो उत्पाद।
7. भूजल भंडारण और जल संग्रह की व्यवस्था विभिन्न योजनाओं के माध्यम से की जा रही है।
8. मोटे अनाज का उत्पादन एवं उपभोग बढ़ाने पर सरकार जोर दे रही है।
9. कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा दिया जा रहा है।
10. जलवायु लचीलापन का निर्माण हो रहा है।
11. टिकाऊ और जैविक कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।
12. आपदा प्रबंधन प्रणालियों को और सुदृढ़ किया जा रहा है।
13. पूर्व चेतावनी और पूर्वानुमान क्षमताओं में सुधार किया जा रहा है।

निष्कर्ष एवं सुझाव:

उपरोक्त विश्लेषण के उपरांत हम कह सकते हैं कि जलवायु हमारे जीवन का आधार है। जलवायु में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का बहुत ही गंभीर प्रभाव मनुष्य, पशु-पक्षी जीव-जंतु और पर्यावरण पर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से बचने के लिए वैश्विक स्तर पर देशों ने जो समझौते और प्रतिबद्धताएं किए हैं, उन्हें लागू करना बहुत ही जरूरी है। किसी भी प्रकार के टालमटोल अथवा दोषारोपण में समय बर्बाद करना सभी के लिए घातक होगा। विकसित और विकासशील देशों को एक साथ मिलकर जिम्मेदारी पूर्ण तरीके से काम करने होंगे। भारत अपनी प्रतिबद्धताओं और वादों को बहुत ही तेजी और अच्छे ढंग से पूरा कर रहा है।

यदि अमेरिका पेरिस समझौते से बाहर हो जाता है तो जलवायु वित्त को फिर से तैयार करने की आवश्यकता होगी। साथ ही, सार्वजनिक, निजी एवं परोपकारी पूंजी का उपयोग करके एक न्याय संगत एवं स्थिर इकोसिस्टम तैयार करना होगा। विकासशील देशों को अपने साझा हितों एवं चिंताओं को संयुक्त रूप से मिलकर देखना और प्रयास करना होगा। विकसित देशों पर दबाव बनाए रखना होगा और घरेलू स्तर पर निरंतर शून्य कार्बन उत्सर्जन की ओर बढ़ने के लिए अपनी मानवीय एवं प्राकृतिक जिम्मेवारी निभाना कायम रखना होगा।

पेरिस समझौते के सफल क्रियान्वयन के लिए निम्नलिखित कदम उठाया जा सकता है:

1. एनडीसी को सुदृढ़ और ठीक से लागू करना। इसकी समीक्षा को कानूनी रूप से बाध्यकारी बनाना।
2. विकसित देशों को अपने ऐतिहासिक उत्सर्जन एवं वित्तीय क्षमता को दर्शाते हुए उच्च शमन लक्ष्य को अपनाने के लिए दबाव बनाना।
3. जीवाश्म ईंधन को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने हेतु एक बाध्यकारी वैश्विक ढांचा स्थापित करना और स्वच्छ ऊर्जा परिवर्तन के लिए विकासशील देशों को वित्तीय एवं तकनीकी सहायता प्रदान करना। साथ हीं, जीवाश्म ईंधन पर सभी तरह की सब्सिडी समाप्त करना।
4. विकसित देशों को वर्ष 2035 तक 300 अरब डॉलर के वार्षिक जलवायु वित्त लक्ष्य को और अधिक बढ़ाना।
5. प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को बढ़ावा देना। प्रशिक्षण और अनुसंधान की व्यवस्था द्वारा क्षमता निर्माण करना।
6. अनुकूलन और जोखिम न्यूनीकरण पर ध्यान केंद्रित करना तथा लचीले बुनियादी ढांचे पर निवेश करना।
7. न्याय संगत कार्यान्वयन और जवाबदेहिता सुनिश्चित करना।
8. वैश्विक सहयोग में वृद्धि करना और बहुपक्षीय संस्थाओं को मजबूत करना।
9. गैर-अनुपालन हेतु जवाबदेहिता सुनिश्चित करने वाले मजबूत विधिक ढांचे की स्थापना करना।

यदि उपरोक्त सुझावों पर अमल किया जाए तो निश्चित रूप से हम पेरिस जलवायु समझौते को पूरा कर सकेंगे और इस धरती को बचा सकेंगे।

संदर्भ:

1. Climate Action. un.org/en/climatechange/
2. जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौता, consilium-europa-eu/en
3. वैश्विक जलवायु समझौते: सफलताएं एवं असफलताएं, Council on Foreign Relations- Translate by google. www-cfr-org date:21-01-2025.
4. जलवायु परिवर्तन पर अतरराष्ट्रीय समझौते, Iberdeola. www.iberdrola.com
5. पेरिस समझौते से अमेरिका बाहर, क्या नये अवसर खुलेंगे? Observer Research Foundation. www.orfonline.org date: 03-02-2025
6. BBC. www.bbc.com date: 06-11-2022.
7. पेरिस समझौते के नौ वर्ष. www-dristiias-com/hindi date: 16-12-2024

बाल-अपराधः समस्या एवं समाधान

डॉ० हेमेंद्र कुमार सेन

अतिथि व्याख्याता, (समाजशास्त्र विभाग), शासकीय रेवती रमण मिश्र पी०जी० कालेज, सूरजपूर (छ0ग0)

प्रस्तावना

बाल-अपराध एक विश्वव्यापी समस्या है जिसे प्रत्येक राष्ट्र और समाज में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। यह सत्य है कि प्रत्येक देश एवं काल की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं, इस कारण बाल-अपराध समस्या की प्रकृति में भी भिन्नता पायी जाती है। भारत वर्ष में बाल-अपराध के सम्बन्ध में जो भी आंकड़े प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि यह समस्या दिन-प्रतिदिन उग्र रूप धारण करती जा रही है। भारतवर्ष की तुलना में पाश्चात्य देशों में तो यह समस्या और भी अधिक गम्भीर बन चुकी है। इस प्रकार यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि हाइड्रोजन बम, हशीश एवं कम्प्यूटर की भांति बाल-अपराध भी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जन्मी एक विस्फोटक समस्या है जिसका दिन-प्रतिदिन विश्वव्यापी स्तर पर विस्तार होता जा रहा है।

यही कारण है कि वर्तमान समय में इस समस्या को विशेष महत्व दिया जा रहा है। जब एक बच्चे द्वारा कोई कानून विरोधी या असामाजिक कार्य किया जाता है, तो इसे बाल अपराध कहा जाता है। कानूनी दृष्टिकोण से, बाल अपराध 8 वर्ष से अधिक और 6 वर्ष से कम आयु के बच्चे द्वारा किया गया एक कानूनी विरोधी कार्य है, जिसे कानूनी कार्यवाही के लिए बाल न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। भारत में बाल न्याय अधिनियम। अनुच्छेद १९६६ (संशोधित २०००) के अनुसार, १६ वर्ष तक के लड़के और १८ वर्ष तक की लड़कियों को अपराध करने पर बाल अपराधियों की श्रेणी में शामिल किया जाता है। बाल अपराध के लिए अधिकतम आयु सीमा एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है। इस आधार पर, एक "राज्य" द्वारा निर्धारित आयु सीमा के भीतर एक बच्चे द्वारा किया गया एक कानूनी-विरोधी कार्य एक बाल अपराध है।[1]

बर्ट-"उस बालक को अपराधी कहते हैं, जिसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ इतनी गम्भीर हो जाती हैं कि उसके प्रति सरकारी कार्यवाही आवश्यक हो जाती है।

हीली- "वह बालक जो समाज द्वारा स्वीकृत आचरण का पालन नहीं करता, अपराधी कहलाता है।" जो कार्य जानबूझकर नहीं किया गया है उसे अपराधी नहीं कहते। केवल वही कार्य जो कानून द्वारा निषेध माने गए हैं, यदि वे किए जाते हैं तो अपराध माने जाते हैं।

बाल अपराध के प्रकार

हावर्ड बेकर (1966) ने चार प्रकार के बाल अपराध बताएँ है -

1 वैयक्तिक बाल अपराधः-

यह बाल अपराध एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति अकेले ही अपराध करता है। इसका मुख्य कारण उस व्यक्ति के भीतर ही होता है। मनोचिकित्सकों का मानना है कि खराब पारिवारिक संबंधों से मनोवैज्ञानिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जो अपराध की ओर ले जाती हैं। हीले और ब्रोनर की अध्ययन में देखा गया कि अपराधी किशोरों का घरेलू जीवन अनपराधी किशोरों की तुलना में काफी दुखद था। इन किशोरों ने परिवार से उपेक्षा, हीनता, या मानसिक तनाव के कारण अपराध को अपनाया। बन्दूरा और वाल्टर्म ने पाया कि अपराधियों के पिताओं के साथ संबंध अनपराधियों की तुलना में अलग थे, जिससे अपराधी किशोर नैतिक मूल्यों को नहीं समाहित कर सके।

2 समूह समर्थित बाल अपराधः-

इस प्रकार के अपराध में बाल अपराध अन्य बालकों के साथ में घटित होता है और इसका कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व या परिवार में नही मिलताए बल्कि उस व्यक्ति के परिवार व पड़ोस की संस्कृति में होता है। थ्रेशर शॉ और मैके के अध्ययन भी इसी प्रकार के बाल अपराध की बात करते हैंए मुख्य रूप से यह पाया गया कि युवक अपराधी इसलिऐ बना क्योंकि वह पहले से ही अपराधी व्यक्तियों की संगति में रहता था, बाद में सदरलैंड ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किये। जिसने विभिन्न संपर्क के सिद्धान्त का विकास किया।

3 संगठित बाल अपराधः-

इसमें वे अपराध सम्मिलित हैं जो औपचारिक रूप से संगठित गिरोहों द्वारा किये जाते हैंए इस प्रकार के अपराधों का विश्लेषण सन् 1950 के दशक में अमरीका में किया गया था तथा अपराधी उपसंस्कृति की अवधारणा का विकास किया गया था। यह अवधारणा उन मूल्यों और मानदण्डों की ओर संकेत करती है जो समूह के सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित करते हैं, अपराध करने के लिए इन्हें प्रोत्साहित करते हैं, इस प्रकार के कृत्यों पर उन्हें प्रस्थिति प्रदान करते हैं और उन व्यक्तियों के साथ उनके संबधो को स्पष्ट करते है जो समूह मानदण्डों से बाहर के समूह होते हैं।

4 स्थितिजन्य अपराधः-

स्थितिजन्य अपराध की मान्यता यह है कि अपराध गहरी जड़े नहीं रखता और अपराध के प्रकार और इसके नियंत्रित करने के साधन अपेक्षाकृत बहुत सरल होते हैं, एक युवक की अपराध के प्रति गहरी निष्ठा के बिना अपराधी कृत्य में संलग्न हो जाता हैए यह या तो कम विकसितए अन्तः नियंत्रण के कारण होता है या परिवार नियंत्रण में कमजोरी के कारण या इस विचार के कारण कि यदि वह पकड़ा भी जाता है तो भी उसकी अधिक हानि नहीं होगी। डेविड माटजा ने इसी प्रकार के अपराध का सदंर्भ दिया है।[2]

बाल अपराध के कारण

बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है, अतः इसके अधिकांश कारण भी समाज में ही विद्यमान हैं, इसके कारणों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

पारिवारिक कारण

परिवार बच्चों की प्रथम पाठशाला है, जहाँ वह अपने माता-पिता एवं भाई-बहनों के व्यवहारों से प्रभावित होता है। जब माता-पिता बच्चों के प्रति अपने दायित्वो का निर्वाह करने में असमर्थ रहते हैं, तो बच्चों से भी श्रेष्ठ नागरिक बनने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। परिवार से संबधित कई कारण बालक को अपराधी बनाने में उत्तरदायी है।

भौतिक वंशानुक्रमण -

बच्चों के शरीर और स्वास्थ्य का संबंध उसके वंशानुक्रमण से भी है जो कि उसकी शारीरिक और सामाजिक भूमिकाओं को प्रभावित करता हैए इटली के अपराधाशासी लोम्ब्रोसो ने तो अपराधी प्रवृति को व्यक्ति की शारीरिक विशेषताओं से जनित ही माना था। गोडाई, रिचार्ड डुग्डेल एवं इस्टा बुक ने कालिकाक और ज्यूक परिवारों का अध्ययन करके पाया कि ये परिवार शारीरिक दृष्टि से क्षत थे तथा इन परिवारों की सभी पीढ़ियां अपराधी थी। भारत में भूतपूर्व अपराधी जनजातियों को भी वंशानुक्रमण के आधार पर अपराधी घोषित किया गया थाए अपराधी को वंशानुक्रमण की देन मानने वाले विद्वान मेण्डल के वंशानुक्रमण के सिद्धान्त से प्रभावित थे। किन्तु वर्तमान में अपराध शास्त्र में इस अवधारणा का बहिष्कार किया गया। बर्ट ओर गिलिन ने अपने अध्ययनों मे बाल अपराध को वंशानुक्रमण से संबधित नहीं पाया।

अपराधी भाई-बहन -

बच्चे अनुकरणप्रिय होते हैंए वे हर अच्छे बुरे काम को बड़ो से अनुकरण के आधार पर सीखते हैंए यदि परिवार में बड़े भाई-बहिन अपराधी हैं और उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं तो बच्चों का व्यक्तित्व विकृत हो जाता हैए उनमें विद्रोही भावना के स्वर मुखरित हो जाते हैंए वे दुषित वातावरण से बाहर रहने लगते हैं और गलतसंस्कार प्राप्त कर अपराधी बन जाते हैं, अथवा माता पिता बच्चें को समान रूप से स्नेह नहीं देते तो ऐसी स्थिति में भी बच्चे अपने को परिवार से अलग कर लेते हैं और उनके मन मे अपराध की भावना जागृत हो जाती हैं।

माता-पिता द्वारा तिरस्कार -

माता-पिता द्वारा बच्चे के विकास और अन्तः करण पर सीधा प्रभाव डालते हैं। अंतविवेक की कमी होने के कारण शत्रुता की भावना के साथ मिलकर आक्रामकता को जन्म देती हैए ऐण्ड्री (1960) ने भी माना है कि बाल अपराधी अपराधियों की अपेक्षा माता-पिता का प्यार कम पाते हैं।

इसी प्रकार दोषपूर्ण अनुशासन भी बाल अपराध के लिए जिम्मेदार कारक हैए अनुशासन का प्रभुत्वपूर्ण दृष्टिकोण बच्चे के मित्र समूह सम्बन्धों को भी प्रभावित करता है क्योकि बच्चा अपने साथियों के साथ स्वतंत्रता से व्यवहार नहीं कर पायेगा दूसरी और नम्र अनुशासन बच्चे के व्यवहार को निर्देशित करने के लिए आवश्यक नियंत्रण प्रदान नहीं करेगा, अनुचित या पक्षपातपूर्ण अनुशासन बच्चे में यथेष्ट अन्तः भावना का विकास करने में असफल रहता है।

मनोवैज्ञानिक कारण

मनौवैज्ञानिकों ने मानसिक असमानताओं को भी बाल अपराध के लिए उत्तरदायी माना हैं, मानसिक कारणों में दो कारक महत्वपूर्ण हैं -

मानसिक आयोग्यता -

गोडार्डए हीले एवं ब्रोनर आदि ने अध्ययनो द्वारा यह पाया कि बाल अपराधी मानसिक रूप से पिछडे होते है, क्लेश एवं चासो ने कोलम्बिया विश्विद्यालय में सन् 1935 में अपना एक लेख श्शदी रिलेशन बिटविन मोरलिटी एण्ड इण्टलेक्ट प्रकाशित किया जिसमें दर्शाया कि कमजोर मस्तिष्क वाले परिवारों का झुकाव अपराध की ओर अधिक था, मानसिक पिछड़ेपन के कारण उनमें तर्क शक्ति का अभाव होता है।

भावात्मक अस्थिरता और मानसिक संघर्षः-

भावात्मक अस्थिरता के कारण भी बच्चे अपराधी हो जाते हैए सिरिल बर्टए हीले एवं ब्रोनर ने अध्ययनों में पाया कि प्रायः बाल अपराधी स्वयं को असुरक्षित अनुभव करते है एवं मानसिक संघर्ष से ग्रसित रहते हैं, इसी कारण वे अपराधों की ओर प्रवृत होते हैं।

सामुदायिक कारणः-

जिस समुदाय में बच्चा रहता है यदि उसका वातावरण अनुपयुक्त है तो वह बालक को अपराधी बना सकता है, सामुदायिक कारकों में से कुछ प्रमुख का हम यहाँ उल्लेख करेंगे।

पड़ोसः-

पड़ोस का प्रभाव नगरीय क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता हैए परिवार के अलावा बच्चा अपना अधिकतर समय पड़ोस के बच्चों के साथ व्यतीत करता है, पड़ोस अपराध में व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताओं में व्यवधानबनकरए संस्कृतिक संघर्ष करके तथा असामाजिक मूल्यों को पोषित करने में सहायक हो सकता है, भीड-भाड़ वाले तथा अपर्याप्त मनोरंजन की सुविधाओं वाले पड़ोस बच्चों की खेल की प्राकृतिक प्रेरणाओं की उपेक्षा करता है और अपराधी समूहों के निर्माण को प्रोत्साहित करता है, पड़ोस में गृह सस्ते होटलए आदि भी अपराधिक गतिविधियाँ के जन्म स्थल होते हैं।[3]

स्कूल -

विद्यालय के वातावरण का प्रभाव बच्चों पर अत्यधिक पड़ता है। अध्यापकों का व्यवहारए स्कूल के साथी छात्रों व अध्यापकों के साथ सम्बन्धए पाठ्यक्रमों की कठोरताए मनोरंजन का अभावए अयोग्य छात्रों की पदोन्नति आदि कुछ ऐसे कारण है जो बच्चों के कोमल मस्तिष्क को प्रभावित करे उसे अपराधी बना देते हैं। कम अंक प्राप्त करने या फेल होने पर बच्चों को स्कुल छुड़वा दिया जाता है या अध्यापकों द्वारा उनका उत्पीड़न किया जाता है या छात्रों द्वारा मजाक उड़ाया जाता है इससे वे हीनता की भावना से ग्रसित होते हैं और अपराध की ओर प्रवृत हो जाते है।

चलचित्र और अश्लील साहित्य -

अनैतिकताए मद्यपानए धूम्रपान से भरे चलचित्र और कामुक पुस्तकें बच्चों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़त हैं। कई बार वे अपराध के तरीके भी सीखते हैंए हमारे देश के कई भागों में चोरीए सेंधमारी और अपहरण आदि सिनेमा के तरीकों का प्रयोग करने के जुर्म में अनेक बालक पकड़े जाते हैं। वे दावा करते हैं कि उन्होंने सिनेमा से अपराध के तरीके सीखे थे। चलचित्र सरलता से धन प्राप्त करने की इच्छा जागृत करके, इन उपलब्धिया के लिय विधियाँ सुझाकर और साहस की भावना भरकर, यौन भावनाएँ भड़का कर और दिवास्वप्न दिखाकर भी बच्चों में अपराधी व्यवहार की अभिरूचि का विकास करते हैं।

बाल अपराध समस्या का सामाधान

बाल अपराध समस्या का सामाधान के लिए निम्न उपाय किए जा सकते है -

समुचित पालन पोषण -

किशोर अपराध को रोकने का मुख्य तरीका उन कारणों को खत्म करना है, जो बच्चों को अपराध की ओर ले जाते हैं। बच्चे का सही पालन-पोषण न होना इसका बड़ा कारण है। इसलिए, किशोर अपराध रोकने के लिए परिवारों को फिर से संगठित करना जरूरी है। माता-पिता को बच्चों की मनोविज्ञान और पालन-पोषण से संबंधित ज्ञान होना चाहिए। प्यार का महत्व बहुत ज्यादा है, लेकिन जरूरत से ज्यादा या कम प्यार दोनों ही समस्या पैदा करते हैं। घर का माहौल प्रेमपूर्ण होना चाहिए। बच्चों की जिज्ञासाओं के सवालों का सही और साफ जवाब देना चाहिए। माता-पिता को अपने व्यवहार में जिम्मेदारी रखनी चाहिए, क्योंकि वे बच्चों के आदर्श होते हैं। बच्चों में अच्छी आदतें डालना ही उन्हें अपराध से बचाने का सही तरीका है।

स्वस्थ मनोरंजन -

मनोरंजन का व्यक्ति के जीवन में बडा महत्वपूर्ण स्थान होता है स्वस्थ मनोरंजन के अभाव में बालक की अपराधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। अतः अपराधों को रोकने के लिए स्वस्थ तथा सुसंस्कृत मनोरंजन की सामग्रियों का उपलब्ध होना अत्यंत आवश्यक है।

समुचित शिक्षा -

विद्यालय का बच्चों पर बड़ा प्रभाव होता है, इसलिए किशोर अपराध रोकने के लिए सही शिक्षा जरूरी है। इसमें शिक्षक का व्यक्तित्व, पाठ्यक्रम और कार्यक्रम महत्वपूर्ण हैं। शिक्षकों को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए ताकि वे पाठ को दिलचस्प बना सकें। उनका व्यवहार सुधरा होना चाहिए क्योंकि बच्चों को उनसे सीखना चाहिए। शारीरिक दंड का कम से कम उपयोग करना चाहिए और कमजोर छात्रों पर ध्यान देना चाहिए। विद्यार्थियों को विषय चुनने और आपसी मामलों को सुलझाने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। खेल, नाटक और प्रतियोगिताओं से बच्चों की विभिन्न क्षमताएं विकसित होती हैं।[4]

निष्कर्ष

आज बाल अपराध की समस्या समाजशास्त्रियों, अपराधशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों के लिये गम्भीर विचार का प्रश्न बनी हुई है, क्योंकि बाल अपराध की निरन्तर वृद्धि ने वयस्क अपराध की समस्या को अधिक भयावह बना दिया है। यह माना जाता है कि बाल अपराध, अपराध का प्रवेश द्वार है। यही कारण है कि वर्तमान समय में बाल अपराध की समस्या की तरफ विशेष ध्यान दिया जा रहा है तथा बाल अपराध की ओर प्रवृत्त करने में उत्तरदायी कारकों की खोज तथा बाल अपराध निषेध के कार्यक्रमों का विश्लेषण किया जा रहा है। बाल अपराध प्रारम्भिक अवस्था में रोका जा सकता है यदि घर पर तथा विद्यालयों में उचित देख-रेख की जाय। अभिभावकों व शिक्षकों की बच्चों के स्वस्थ मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उन पर अपराधी का आक्षेप ने लगाकर उनमें सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सुधार के लिए गंभीरतापूर्वक कार्य किया जाना चाहिए।

संदर्भ

1ण आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली 2012।

2ण चक्रवती तरूण, अपने बच्चे को श्रेष्ठ कैसे बनाएं, डायमण्ड पोकेट बुक्स प्रा. लि., 2016।

3ण आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली 2012।

4ण चक्रवती तरूण, अपने बच्चे को श्रेष्ठ कैसे बनाएं, डायमण्ड पोकेट बुक्स प्रा. लि., 2016।

'मानवाधिकार' वैश्विक चेतना के रूप में विकास

अभिषेक कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

शोध सार

प्रस्तावित शोध लेख मानवाधिकार के सम्बंध में मानवीय चेतना की स्थिति का विवेचन करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भिक काल में मानव के अधिकारों की समस्या एक विश्व समस्या नहीं थी और न ही यह अध्ययन का अन्तर्राष्ट्रीय विषय था। यह मूलरूप से सम्प्रभु राज्यों के क्षेत्राधिकार का विषय था और किसी राज्य में रहने वाले नागरिक को राज्य द्वारा ही यह अधिकार प्राप्त था। लेकिन धीरे-धीरे मानव कल्याण के संघर्ष एवं उसके अधिकारों के प्रश्न ने इसे विश्वव्यापी स्वरूप प्रदान कर दिया। वस्तुतः यह शताब्दियों से मानव जाति द्वारा अपने अधिकारों के लिए किये गये संघर्ष का परिणाम है। जहाँ मनुष्य मात्र को अधिकार दिये जाने का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, वही बच्चों तथा स्त्रियों को जो शारीरिक दृष्टि से निर्बल होते हैं, सरंक्षण की अधिक आवश्यकता होती है। इनके लिए यह और भी महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध का विषय मानवीय चेतना के मानवाधिकार के सम्बंध में अध्ययन से सम्बंधित है। इसलिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथा सामयिक है।

मूल शब्दः- मानवाधिकार, चेतना, वैश्विक, अधिकार, स्वतंत्रता, समानता

प्रस्तावना

मानवाधिकार का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लोगों में ऐसी जागरूकता का बदलाव हो रहा है कि उन्हें एक ऐसी जीवन पद्धति चाहिये जो मानव गरिमा के अनुरूप हो। उनकी आकांक्षा और सम्भावना इस बात को लेकर है कि उनके लिए ऐसे जीवन पद्धति का जिम्मा लिया जाना चाहिये या ऐसी जीवन पद्धति सुनिश्चित की जानी चाहिए।

हैरोल्ड लास्की के अनुसार, ''अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ है जिनके वगैर सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।" मनुष्य के लिए जहाँ रोटी, कपड़ा और मकान अपरिहार्य है वहीं इसके साथ कतिपय ऐसी अन्य चीजें है जो आधुनिक मानव समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इसमें मानवाधिकार भी शामिल है। अतः मोटे तौर पर मानवाधिकार को हम वे अधिकार कह सकते हैं जो एक मानव को मानव होने के नाते मिलने चाहिये, वे अधिकार जो उसमें मानव होने के नाते अन्तर्निहित हैं, अधिकार जो एक मानव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। संक्षेप में वे अधिकार जो मानव को 'भय' और 'भूख' से मुक्ति दिलाने के लिए आवश्यक हैं, मानवाधिकार कहे जा सकते है।

मानव-अधिकारों का विकास

एक समय था जब मानव-अधिकारों की समस्या एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या नहीं थी। यह प्रत्येक राज्य के अनन्य क्षेत्राधिकार का विषय था। यह सदियों के विकास का परिणाम है। शताब्दियों से मानव-जाति अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बहुत पहले ही कई महत्त्वपूर्ण घोषणाओं में मानव-अधिकारों को मान्यता दी गयी थी। उदाहरणार्थ, 1215 के मैग्ना कार्टा, 1676 के बन्दी प्रतयक्षीकरण अधिनियम, 1689 के बिल ऑफ राइट्स, 1776 की अमरीका की स्वतंत्रता की घोषणा और 1789 की मानव-आधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा में मानव-अधिकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। बर्लिन कांग्रेस, ब्रुसेल्स सम्मेलन और दोनों हेग शांति सम्मेलनों में मानव के व्यक्तित्व को मान्यता देने के लिए बड़े कदम उठाये गये। इसी उद्देश्य हेतु 19 वीं सदी में अफ्रीकी दासों के क्रय-विक्रय की भतर्सना की गई और पश्चिमी एशिया में अल्पसंख्यकों के नर-संहार के विरूद्ध पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा आवश्यक कार्रवाई भी की गई। महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये दक्षिणी अफ्रीका की रंग-भेद नीति के विरूद्ध संघर्ष का आधार भी वस्तुतः मानव-अधिकारों की रक्षा ही था। द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य नाजी जर्मनी द्वारा अल्पंसख्यकों और विजित प्रदेशों की जनता पर किये गये अमानुशिक अत्याचारों ने तो विश्व को इन संगठित अत्याचारों के विरूद्ध सुनियोजित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और विधान बनाने के लिए बाध्य कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के एक अंधकारपूर्ण क्षेत्र में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटिस प्रधानमंत्री चर्चिल ने युद्धोत्तर विश्व के मानव के लिए एक घोषणा-पत्र का ऐलान किया। उसमें चार स्वतंत्रताओं को मान्यता दी गयी। जनवरी, 1942 को हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्रों की घोषणा में स्पष्ट कहा गया कि सभी राज्यों में मानवीय अधिकारों का संरक्षण उन अनेक परिणामों में से एक था, जिनकी प्राप्ति की आशा धुरी-राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने से की गयी थी। नवीन अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के आधार-रूप में प्रस्तुत डम्बार्टन-ओक्स प्रस्तावों ने यह प्रावधान किया कि प्रस्तावित संगठन को ''अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और अन्य मानवीय समस्याओं को सरलता से हल करना चाहिए तथा मानवीय अधिकारों एवं आधारभूत स्वतंत्रताओं का आदर करने में अभिवृद्धि करनी चाहिए।" सन् 1945 में मैक्सिकों नगर में युद्ध एवं शांति की समस्याओं पर विचारार्थ सम्मेलन ने मनुष्यों के मूलभूत अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण की व्यवस्था के लिए अमरीकी गणराज्यों का समर्थन घोषित किया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और मानव-अधिकार

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर को अन्तिम स्वरूप देने के लिए सन् 1934 में सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन में एकत्रित अनेक प्रतिनिधियों ने चार्टर में ही मानव-अधिकार सम्बंधी विस्तृत घोषणा तथा तत्सम्बंधी व्यवस्थाओं की माँग की। जनरल स्मट्स ने यह सुझाव दिया कि चार्टर के प्रारम्भ में और उसकी प्रस्तावना में मानव-अधिकारों की एक घोषणा रखनी चाहिए। परिणामस्वरूप चार्टर में मानव-अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है। हैन्स केल्सन ने लिखा है- ''संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में संभवत: किसी भी विषय का उतना अधिक उल्लेख नहीं हुआ जितना मानव-अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं का।" चार्टर की प्रस्तावना में ही मानव-अधिकारों, मानव के व्यक्तित्व के सम्मान एवं महत्त्व में" आस्था व्यक्त की गयी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों में, अनुच्छेद 1 के अन्तर्गत ''मानव-अधिकारों तथा सभी के लिए बिना जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म भेद-भाव के मौलिक स्वतंत्रताओं को उन्नत तथा प्रोत्साहित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त" करना भी है। इसी तरह के प्रावधान अनुच्छेद 56 और 76 में भी हैं जिनमें मानव-अधिकारों से सम्बंधित क्रमश: सामाजिक तथा आर्थिक सहयोग और ट्रस्टीशिप व्यवस्था की बात की गयी है। मानव को युद्ध का भय नहीं हो, अभाव से मुक्ति मिले, मानव की मर्यादा एवं गौरव सहज ढंग से उपलब्ध हो, जाति, धर्म, देश, राष्ट्र की दीवारों उनको बाँधें नहीं रखें- ये कुछ संकल्प हैं जो घोषणा-पत्र के हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों ने अपने समक्ष रखे हैं।

मानव-अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा

सभी को समान मानव-अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष प्रारम्भ से ही संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने ढंग से शुरू कर दिया। इस महान कार्य के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में मानव-अधिकार आयोग का गठन किया गया। दो वर्ष से अधिक के परिश्रम के फलस्वरूप आयोग ने मानव-अधिकार की घोषणा तैयार की। महासभा ने अपने 1948 ई0 के अधिवेशन मे इसे स्वीकृति प्रदान की। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने ढंग की यह पहली घोषणा थी। महासभा ने इस घोषणा को एक ऐसा आदेश-पत्र माना जिसके आधार पर सभी व्यक्ति और समाज इन अधिकारों एवं स्वतंत्राताओं को प्राप्त करने-कराने के लिए विभिन्न स्तरों पर समुचित प्रयास करेंगे। घोषणा के दो भाग है- पहले में राजनीतिक एवं नागरिक अधिकार तथा दूसरे में अपेक्षाकृत नवीनतम आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार एवं स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया गया है। वास्तव में मानव-अधिकारों की इस घोषणा को एक अन्तर्राष्ट्रीय मैग्नाकार्टा और मानव-अधिकारों का एक अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर कहना उचित है। 'जार्ज स्वर्जनबर्जर' ने ठीक ही कहा है ''संभवत: किसी भी आधुनिक संविधान में मानव-अधिकारों का इस प्रकार उत्तम उल्लेख हो, जैसा कि इसमें किया गया है और इस घोषणा में व्यक्ति के स्वतंत्रता के अधिकार को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है और इसमें यह भी दर्शाया गया है कि एक स्वतंत्र समाज में व्यक्ति के क्या अधिकार हैं। अन्त में यह घोषणा एक सेवा राज्य के आदर्शो को भी बतलाती है।"

घोषणा का महत्त्व

मानव-अधिकारों की घोषणा एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह एक महान् विकासवादी प्रक्रिया का पहला पग है। महासभा ने अधिकारों की इस घोषणा को 'सभी देशों और सभी व्यक्तियों के लिए सफलता का एक सामान्य मापदंड माना है। महासभा के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष कार्ल्स पी0 रोम्यूलो का मत है: ''यह सबसे व्यापक लेख्य है। यह इतिहास का प्रथम लेख्य है जिसमें समस्त विश्व के दृष्टिकोण से संसार के सब व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की परिभाषा की गयी है।" लेबनान के प्रति चार्ल्स मलिक, जिनका कि इस घोषणा का प्रारूप तैयार करने में काफी हाथ था, के मतानुसार ''यह प्रथम श्रेणी का लेख और एक अन्तर्राष्ट्रीय सफलता" है। उन्होंने आगे कहा: ''ईश्वर और राज्य से लेकर बच्चों एवं सामाजिक सुरक्षा तक मानव-जीवन की संभवत: ही कोई ऐसी समस्या हो, जिसका इसमें कोई उल्लेख नहीं किया गया है। यह घोषणा वर्तमान युग के उन मौलिक सिद्धांतों पर प्रकाश डालती है जो मनुष्य के महत्त्व और जन्मजात गौरव को दर्शाते हैं। यह लक्ष्य वास्तव में एक अन्तर्राष्ट्रीय उपज है जिसमें प्रथम बार मानव-अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के सिद्धांतों को अधिकारपूर्ण ढंग तथा विस्तार से बताया गया है।" मानव-अधिकार आयोग की अध्यक्षता श्रीमती एफ0 डी0 रूजवेल्ट ने कहा: ''मानव-अधिकारों की यह घोषणा सब मनुष्यों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मैग्नाकार्टा का स्वरूप ग्रहण कर सकती है।" भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह आशा प्रकट किये थे कि ''इस घोषणा के द्वारा समस्त विश्व के मनुष्यों के हृदय में विचार का पुनरूत्थान होगा कि जीवन में निश्चयात्मक कुछ ऐसे मूल्य हैं जिनका आदर सबको करना चाहिए। यदि जीवन को भंली भाँति व्यतीत करना है तो उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए।

साहित्य समिक्षा

डॉ0 अभय कुमार, (1988) ने अपने लेख ''भारत में बालश्रमिक" के अन्तर्गत लिखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 1979 के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में 15 वर्ष से कम आयु वाले 52 करोड़ बच्चे रोजी-रोटी से जुझ रहे हैं। इनमें 75 प्रतिशत बाल-श्रमिक तो केवल एशियाई देशों में है। भारत के बच्चों की मुख्य समस्याओं में से एक समस्या बाल श्रमिकों की है। भारत में बाल श्रमिकों का 80 प्रतिशत से अधिक भाग ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत है। गांवों में जहाँ ये श्रमिक खेती में काम करते हैं, वही शहरी क्षेत्रों में ये दुकानों, होटलों, साईकिल तथा मोटर साइकिल की मरम्मत, रेलवे स्टेशनों, प्रेस, कारखानों, आदि में काम करते देखे जा सकते हैं।

रमेश कनवर्गी, (1991), ने अपनी पुस्तक ''चाइल्ड लेबर इन द इण्डियंन सबकॉन्टीनेन्ट" के अन्तर्गत लेखक का कहना है कि बहुत से अल्पविकसित देशों ने प्राथमिक शिक्षा से सम्बंधित दोहरी समस्याएँ बहुत बड़े पैमाने पर पनप रही है। इनमें से मुख्य समस्या बहुत पहले से ही लाभदायक प्रतिष्ठानों में बच्चों से काम करवाने की प्रथा से जुड़ी है। यद्यपि अल्प विकसित देशों का मुख्य उद्देश्य बालश्रम का उन्मूलन सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों की समप्ति है। लेकिन इन समस्याओं के निराकरण की दिशा में गंभीर अड़चने उनकी व्यवहारिक पहलू पर दृष्टि डालने से उत्पन्न होती हैं, क्योंकि यदि बालश्रमिकों

को श्रम करने से रोका जाता है तो इन देशों को सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ढ़ाचा गड़बड़ा जाता है। अतः इस दिशा में कोई सही सोच बन पाना मुश्किल हैं।

मायरॉन विनर, (1991), ने अपनी पुस्तक ''द चाइल्ड एण्ड द स्टेट इन इण्डिया'' में लिखा है कि भारत में दुनिया के सबसे अधिक स्कूल न जाकर काम करने वाले बच्चों की संख्या है। सरकार ने क्यों उन्हें कार्यशक्तियों से अलग नहीं किया और उन्हें स्कूल जाने की आवश्यकता क्यों नहीं महसूस की गई। जैसा कि दूसरे विकसित और विकासशील देशों की सरकारें करती है? इस प्रश्न के उत्तर के लिये बड़े पैमाने पर किये गए अध्ययन से यह पता चलता है कि कब और क्यों दूसरे राज्यों ने माता-पिताओं और रोजगार देने वाले लोगों के विरूद्ध बच्चों को रोका। 19 वीं शताब्दी के यूरोप, संयुक्त राज्यों, जापान और अनेक विकासशील देशों का व्यापक अध्ययन करने के बाद मायरॉन विनर महोदय इस दलील को ठुकरा देते हैं कि बच्चों को कार्य शक्ति से तब अलग किया जब गरीबों की आमदनी बढ़ गई और नौकरी देने वाले लोगों ने अधिक बुद्धिमान श्रम शक्तियों की जरूरत महसूस की।

अध्ययन उदेश्य

- प्रस्तावित शोध अध्ययन से मानवाधिकार के वैश्विक चुनौतियों का उल्लेख करना है।
- प्रस्तावित शोध अध्ययन से संयुक्त राष्ट्र संघ मे दिये गये मानवाधिकार सम्बंधित विषय को उल्लेख करना।
- प्रस्तावित शोध लेख मानवाधिकार एवं मानवीय चेतना के विकास मे एतिहासिक काल-क्रम का विश्लेषण करना है।
- मानवाधिकार एवं मानवीय चेतना के प्रति राज्यों की भूमिका क्या है।

शोध विधिः-

शोध नियमों के अनुसार प्रस्तुत शोध सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्वतियों को अपनाते हुए मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया। द्वितीयक स्त्रोतों के तहत आवश्यक साम्रगी विभिन्न राष्ट्रीय पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के आलावा प्राचीन संदर्भ ग्रंथों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इन संदर्भ आधरित पुस्तकों के आलावा विभिन्न आयोगो के प्रकाशनों, आत्मलेखों, समाचार पत्र - पत्रिकाओं एवं राजनैतिक दलों के घोषणा पत्रों इत्यादि के लेखन साम्रगी संग्रहित कर विश्लेषणत्मक अध्ययन है।

मानव-अधिकारों की रक्षा का अभिसमय

मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की स्वीकृति के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र के मानव-अधिकार आयोग ने मानवीय अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय की रचना का प्रयत्न किया। यदि इस प्रकार का कोई अभिसमय महासभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा, तब वह संधि के रूप में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के समक्ष रखा जाएगा। जो राज्य इस संधि का अनुसमर्थन कर देंगे उन पर यह वैधानिक रूप में बाध्यकारी हो जाएगी। सन् 1950 में महासभा ने नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की एक ही संविदा तैयार करने का निर्णय लिया। किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका के अनुरोध पर सन् 1951 में महासभा ने मानव-अधिकार आयोग से दो अभिसमयों का प्रारूप तैयार करने को कहा एक नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर तथा दूसरा आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर। सन् 1954 के मध्य तक मानव-अधिकार आयोग ने अपना कार्य पूरा कर लिया। इसने दोनों प्रसंविदाओं को महासभा के सम्मुख रखा। दिसम्बर 1954 में महासभा ने इस पर विचार करना शुरू किया और अगले सत्र में इस पर ब्योरेवार विचार करने का निश्चय किया। आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के अभिसमय के प्रारूप में यह सुझाव दिया गया है कि सम्बंधित राज्य इन अधिकारों के कार्यान्वयन के सम्बंध में रिपोर्ट दिया करेंगें जिनमें यह बताया जाएगा कि इन अधिकारों को कहाँ तक कार्यान्वित किया है और उनकी कार्यान्वित करने के मार्ग में क्या बाधाएँ हैं। इस प्रकार आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की कार्यान्वित करने का एक ही अन्तर्राष्ट्रीय उपाय बतलाया गया हैं- रिपोर्टिंग पद्धति। परन्तु नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अभिसमय को कार्यान्वित करने के लिए एक मानवीय अधिकार समिति की स्थापना का सुझाव दिया गया है।

वर्तमान अभिसमय के पक्षकार राज्य

इस बात का विचार करते हुए कि संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्र में घोषित सिद्धांतों के अनुसार, मानव-परिवार के सभी सदस्यों की सहज गरिमा तथा समान और अनपहार्य अधिकारों की स्वीकृति विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति का आधार-स्तंभ हैं।

यह बात ध्यान में रखते हुए कि संयुक्त राष्ट्र संघ के जन-समाजों ने संयुक्त राष्ट्र अधिकार-पत्र में मूल मानवाधिकारों तथा व्यक्ति की गरिमा और महत्ता में अपने विश्वास की पुर्नपुष्टि की है तथा व्यापक स्वतंत्रता के वातावरण में सामाजिक प्रगति एवं बेहतर जीवन स्तर को बढ़ावा देने का संकल्प किया है।

यह स्वीकार करते हुए कि मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा और मानवाधिकार सम्बंधी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में संयुक्त राष्ट्र संघ ने घोषणा की है और वह इस बात पर सहमत हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी प्रकार के विभेद के बिना, जैसे नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य मत, राष्ट्रीय सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य स्थितियों पर आधारित विभेद के बिना, उक्त घोषणा तथा उक्त प्रसंविदाओं में उल्लिखित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है।

इस बात को याद करते हुए कि मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ऐलान किया है कि बचपन विशेष देखभाल और सहायता का पात्र है।

इस बात का कायल होकर कि समाज के बुनियादी समूह और अपने सभी सदस्यों तथा खास तौर से बच्चों के अभिवर्धन और कल्याण के स्वाभाविक परिवेश के रूप में परिवार को आवश्यक संरक्षण तथा सहायता देनी चाहिए, ताकि वह समाज के अंदर अपने दायित्वों को पूर्ण रूप से ग्रहण कर सके।

निष्कर्ष

इस बात को स्वीकार करते हुए कि मानव को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण और सुसंगत विकास के लिए पारिवारिक परिवेश में आनन्द, स्नेह और सौहार्द्र के वातावरण में बढ़ना चाहिए। इस बात को देखते हुए कि मानव को समाज में एक व्यक्तिगत जीवन जीने के लिए पूर्ण रूप से तैयार करना चाहिए और उसका विकास संयुक्त राष्ट्र अधिकार-पत्र में घोषित आदर्शों के अनुरूप और खास तौर से शांति, गरिमा, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, समानता और एकजुटता की भावना के साथ किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, पद्मिनीसेन; चाइल्ड लेबर ऐज ए सोशल प्राबलम्स, सोशल वेलफेयर, वर्ष 25, अंक 11, फरवरी, 1976.
2. जुयाल बी0 एन0, सुदर्शन कुमारी एवं एल0 एम0 चन्दोला; 'चाइल्ड लेबर द ट्वायस इक्सलोटेड', गांधीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ स्टडीज, राजघाट, वाराणसी, 1985.
3. जुयाल बी0 एन0, चाइल्ड लेबर एण्ड इक्सप्लोटेषन इन द इण्डस्ट्री', इण्डियन सोशल इन्स्टीट्यूट, नई दिल्ली, 1987.
4. कुमार, अभय (डॉ0); 'भारत में बालश्रमिक', समाज कल्याण, नई दिल्ली, नवम्बर 1998.
5. फिके, एलिक; 'चाइल्ड लेबर', पोलिटी प्रोस, आक्सफोर्ड प्रिन्टेड इन ग्रेट ब्रिटेन, 1989.
6. कनबर्गी, रमेश; 'चाइल्ड लेबर इन द इण्डियन सबकॉन्टीनेन्ट', सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1991.
7. विनर, मायरॉन; 'द चाइल्ड एण्ड द स्टेट इन इण्डिया', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1991.
8. यादव, आर0 एम0 (डॉ0); 'भारत में बालश्रमिकों की वर्तमान स्थिति एवं कानून', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, जुलाई, 1993.
9. फिलिप्स, डब्ल्यू0 एस0 के0; 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन इन इण्डिया', राव पब्लिकेशंस, जयपुर, 1994.
10. कुशवाहा, अलका (डॉ0); ' कच्ची उम्र में मजदूरी का बोझ', योजना, नई दिल्ली, जून 1995.
11. शर्मा, संगीता; 'बालश्रमिक व्यवस्था खत्म करना एक चुनौती', योजना, नई दिल्ली, वर्ष 39, अंक-9, सितम्बर, 1995.
12. बुर्रा, नीरा; 'बार्न टु वर्क चाइल्ड लेबर इन इण्डिया', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1995.

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना'

डॉ० सीमा रानी प्रधान

सहायक प्राध्यापक-हिंदी, शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महासमुंद (छ.ग.)

श्रीमती प्रतिमा चंद्राकर

सहायक प्राध्यापक-हिंदी, स्वामी आत्मानंद अंग्रेजी माध्यम महाविद्यालय, महासमुंद (छ.ग.)

आत्मकथा किसी भी व्यक्ति के जीवन का एक लेखा-जोखा अर्थात् सम्पूर्ण जीवन का एक जीवंत दस्तावेज होती है। आत्मकथा में हमें बुनियादी सच्चाई के आधार पर यथार्थ से यथार्थ तक पहुंचने की एक प्रक्रिया का ज्ञान होता है। आत्मकथा मानव के मनरूपी जगत में स्थित वह स्थायी प्रज्ञा है, जो समय आने पर अपने प्रकाश द्वारा आत्मकथा की लेखनी से निकलकर पाठकों एवं समाज को आलोकित करती है। मानव के सम्बंध में यह वर्णित हुआ है कि जीवन और साहित्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जीवन को साहित्य से तथा साहित्य को जीवन से पृथक करना एक अत्यन्त दुरुह एवं जटिल कार्य है। कहा गया है कि-''आत्मकथा व्यतीत जीवन का, भोगे हुए क्षणों का तथा अनुभव किये गये सुख-दु:ख का सच्चा लेखा-जोखा होती है।''[1] आत्मकथा का प्रत्येक पृष्ठ मानवीय जिजीविषा, अनुभूति, चिन्तन तथा कर्तव्य के रंग से रंगा होता है। इसके लेखन के लिए लेखक को आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण तथा आत्माभिव्यक्ति आत्मकथा के माध्यम से करनी होती है जो एक प्रकार से लेखक के लिए अग्नि परीक्षा के समान होती है।

साहित्यिक विधाओं में आत्मकथा विधा की एक अलग ही एवं विशिष्ट पहचान है। आत्मकथा का समावेश कथेतर साहित्य के अंतर्गत आता है। इसके अतिरिक्त भी कथेतर साहित्य में रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण, डायरी, पत्र-साहित्य, यात्रा साहित्य, रिपोर्ताज तथा निबन्ध साहित्य आदि का भी समावेश है। ''आत्मकथा की एक सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह है कि आत्मकथाकार को आत्मप्रशंसा से दूर रहना अति आवश्यक है अन्यथा आत्मकथा से प्राप्त होने वाली प्रामाणिकता से पाठक वंचित रह जायेगा। इसके साथ-ही-साथ लेखक सदा के लिए अपयश का पात्र भी सिद्ध होगा।''[2]

आत्मकथा शब्द का अर्थ एवं परिभाषा को जानना अति आवश्यक है। आत्मकथा शब्द 'आत्म' और 'कथा' इन दो शब्दों के सम्मिश्रण से निर्मित हुआ है। इस युग्म में आत्म शब्द का अर्थ है-निजी, अपनी तथा स्वकीय आदि तथा कथा शब्द का अर्थ है- किस्सा, कहानी, वार्ता, चर्चा, उपन्यास, झगड़ा तथा वाद-विवाद आदि। अत: आत्मकथा शब्द का तात्पर्य यह है कि अपनी कथा, निजी चर्चा अथवा स्वकीय वार्ता आदि। आत्मकथा लेखन का उद्देश्य लेखक को अपने जीवन वर्णन आदि से है जिसमें कथा का पात्र स्वयं लेखक ही होता है। एक विशेष तथ्य यह है कि आत्मकथा लेखन स्व शैली में ही किया जाता है।

''आत्मकथा का अर्थ है- (स्त्रीलिंग) अपने संबंध की आज कही हुई बातें, आत्मचरित्र, आप बीती तथा अपनी जीवनी स्वयं कही।''[3]

आत्मकथा लिखने का उद्देश्य यह है कि इसके माध्यम से लेखन अपने अनुभवों का लाभ अन्य लोगों को प्रदान करना चाहता है जिससे उसके कृत्यों का लाभ अन्य लोग भी प्राप्त कर सकें।

आत्मकथा को परिभाषित करने के पूर्व हमें यह ज्ञात करना आवश्यक है कि आत्मकथा वास्तव में किसे कहते हैं? आत्मकथा क्या है? तथा हिन्दी साहित्य में आत्मकथा का क्या महत्व है एवं आत्मकथा किस स्थान पर स्थानापन्न है? आत्मकथा का उद्‌भव कब हुआ और आत्मकथा का अन्य साहित्यिक विधाओं से क्या संबंध है आदि? इस संदर्भ में कुछ तथ्य इस प्रकार हैं-

1. आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित इतिहास है।
2. आत्मकथा स्वयं के द्वारा लिखी गयी स्वयं की कहानी है।
3. आत्मकथा का मूल सिद्धान्त आत्मनिरीक्षण होना चाहिए।
4. आत्मकथा व्यक्ति के लिए जीये हुए जीवन का लेखा-जोखा है जो कि स्वयं उसके द्वारा ही लिखा जाता है।

आत्मकथा की परिभाषा इस प्रकार है-

''जीवन स्वयं गतिशील है। इस गतिशीलता का विवरण जब क्रमिक अथवा कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तब वह आत्मकथा कहलाती है।''[4]

आत्मकथा में लेखक स्वयं की कथा लिखता है। अपने जीवन के अनुभव को अपने ही शब्दों में अभिव्यक्त करता हैं इस तरह आत्मकथा में लेखक अपने ऊपर बीते हुए समय को समाज के सामने रखता है।

''आत्मकथा लेखक की निजी आवश्यकता है तथा यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की एक प्रक्रिया भी है।''[5]

डॉ. नगेन्द्र ने आत्मकथा की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है।

''आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथ की रचना नहीं करता, कोई स्वप्न दृष्टि नहीं रखता। वरन् अपने गत जीवन के खट्टे-मीठे, उजले-अँधेरे, प्रसन्न-विषण्ण तथा साधारण-असाधारण संरचना पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है। अतीत को पुन: कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषण करता है।''[6]

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' में दासता की नजर आती है। शीर्षक के अनुसार पक्षी को यदि ऊँचे और असीमित गगन में उड़ने की बजाय एक पिंजरे में बन्द कर दिया जाये, तो वह तड़प-तड़पकर अपने प्राण गवाँ देता है उसी प्रकार ईर्ष्यालु एवं क्रोधी पति मिलने पर पत्नी अर्थात् नारी घुट-घुटकर जीवन जीने को विवश होती है और इसी त्रासदी में शायद अपनी प्राण लीला समाप्त कर ले तो आश्चर्य की बात नहीं होगी। इस आत्मकथा में नारी संघर्ष की गाथा को व्यक्त किया गया है। पिंजरे की मैना एक ओर आधुनिक स्त्री की सामान्य स्थिति को उजागर करती है तो दूसरी ओर यह एक संवेदनशीलता का भी प्रतीक है जो नि:सहायता के बावजूद भी अपनी बात प्रस्तुत करने के लिए लाचार है। इस आत्मकथा में लेखिका ने प्रारम्भ में अपनी वंश परम्परा एवं अपने पूर्वजों का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि देश के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के पास उनके पूर्वजों का लेखा-जोखा है। सामान्य जन का यह हाल है कि यदि उससे पूछो कि आपके दादा या परदादा का नाम क्या है तो यह निरुत्तर हो जाता है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जी ने लिंग भेद पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं- ''चंद्रावल बहिन पाकर बहुत प्रसन्न थी, उनके तीन भाई तो थे पर बहिन नहीं। यहाँ तक कि कोई बड़ी बूढ़ी आशीर्वाद देते समय माँ से कह देती क्यों बेटा क्यों दें भाई तो तीन हैं बहिन तो है नहीं। बूढ़ी हँसकर उत्तर देती बेटी! आशीष देने में यही कहते हैं सब, तुझे अगर बहिन चाहिए तो भगवान वही देगा। लड़की का जन्म लोग चाहते ही नहीं हैं।''[7] यह आत्मकथा किसी स्त्री की कथा नहीं है। इस आत्मकथा में उस समय की संपूर्ण कथा, व्यथा एवं विषेशताएं सम्मिलित है। तात्कालीन समय के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ भी इस आत्मकथा में देखा जा सकता है। इसमें स्त्री के दाम्पत्य जीवन और संयुक्त परिवार का भी वर्णन है।

उन्होंने लिखा है कि- ''खाने-पीने, धुआधुत के संस्कारों की जडें तो गहरी थीं ही; लड़कियों की शिक्षा के संबंध में भी प्रलोभन आर्य समाजी कार्यकर्ता दिया करते थे।''[8]

लड़की कितनी भी बुद्धिमती अथवा प्रतिभाशाली हो उसकी इन योग्यताओं की स्वीकृति समाज में बहुत कम होती है। उसके अपने परिवार वाले ही उसकी प्रतिभा की प्रदर्शिनी को हेय दृष्टि से देखते हैं। यथा-सुभाष बाबू के जलसे में कविता सुनाने के अपराध के लिए लेखिका को अपने भाई के मुँह से इतना सुनना पड़ा कि वह उसे जिंदगी भर नहीं भूल पायी अर्थात् स्त्री को समाज में उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त लेखिका का एक कथन इस प्रकार है- हम लोग बुजुर्गों के आगे जुबान नहीं खोल सकते थे, पर अपने ऊपर भरोसा न होने परदित जान देने की तैयारी तक कर लेता था। अब बात उल्टी है- यही अंतर बीसवीं सदी के शुरू और इक्कीसवीं सदी के आरम्भ का है। आज पहनावे से लेकर जीवन की समस्त गतिविधियों के लिए नारी तपाक से जवाब देती है कि हम अपना भला-बुरा सब समझते हैं। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा ने 'पिंजरे की मैना' के माध्यम से यह सन्देश दिया है कि उन्होंने अपने सामाजिक जीवन ने पारिवारिक संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष तथा आर्थिक संघर्ष आदि को निकट से भोगा है। ''उनके पूरे साहित्य में समाज का चित्रण हुआ हैं जिस घटना ने उन्हें धुआ, वही कहानी बन गई। उनके अधिकांश पात्र वास्तविक पात्र हैं।''[9]

इस उपन्यास में चन्द्रकिरण ने ऐसा कोई सामाजिक पहलू ऐसा नहीं है जिसे उल्लेख नहीं किया है। सौतेली सास से किस पकार बहु प्रताड़ित होती हैं इस पर इन्होंने लिखा है- ''किशोर समाज से अपनी बालिका पत्नी की दुर्दशा देखी नहीं जा रही थी, पर लाला ने अपनी शिकायत करने का साहस उसमें नहीं था। धीरे-धीरे वह सोने-सी सुंदर बालिका वधून छीजने लगी, उसे हल्का हल्का बुखार रहने लगा।'[10] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा संवेदनषील कथाकार रही है। उन्होंने अपने समय के पारिवारिक जीवन की तमाम घटनाओं को सूक्ष्मता से अवलोकन किया है। स्त्रियाँ कैसे अपने घर में घुटन भरे माहौल में रहती है। जीवन की सभी परिस्थितियों को धुने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जी ने अपनी आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' में विविध सामाजिक आयामों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि नारी स्वतंत्रता का यह अर्थ कतई नहीं होना चाहिए कि वह अपने संस्कारों एवं पारिवारिक जीवन मूल्यों को अपने पैरों तले कुचल डाले। वह जीवन की समस्त विडम्बनाओं को साहसपूर्वक सहकर सफलता का झंडा गाड़ दे। उसमें साहित्यिक ज्ञान के साथ-ही-साथ प्यार और पारिवारिक मूल्यों का होना भी नितान्त आवश्यक है। यह आत्मकथा नारी संघर्ष का जीवंत दस्तावेज है।

उनकी रचनाओं की उत्कृष्टता को ध्यान में प्रसिद्ध उपन्यास विष्णु प्रभाकर ने लिखा है कि- ''महादेवी को जो प्रसिद्धि कविता के क्षेत्र में प्राप्त हुई है, वही चन्द्रकिरण जी ने कहानी के क्षेत्र में पाई। मध्यवर्ग की नारी का जितना यथार्थ-चित्रण आपकी कहानियों में हुआ है, शायद ही किसी कथाकार की कृतियों में हुआ हो।''[11] इस आत्मकथा के माध्यम से वह स्वयं कथा के साथ सशक्त रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। अपने परदादा से लेकर उनके तक की कथा को बहुत ही औचित्यपूर्ण प्रस्तुत की है।

संदर्भ

1. गायकवाड़, मुकुन्द, मराठ से हिंदी में अनूदित दलित आत्मकथाएं, रूरा कानपुर देहात: 2022, पृ. 13
2. वही, पृ. 13
3. भारद्वाज, शिवप्रसाद, अशोक मानक विशाल हिंदी शब्दकोश दिल्ली: अशोक प्रकाशन 2015, पृ. 17
4. Art of Biogrophy- D.G. Nayak Page-44
5. प्रीतम, अमृता रसीदी टिकट दिल्ली: किताब घर, 2014, पृ. 149
6. नगेन्द्र, आस्था के चरण, दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2005, पृ. 202
7. मुरलीधरन, निशा हिन्दी आत्मकथाएँ और नारी संघर्ष, कानपुर 2022 शुभम् पब्लिकेशन, पृ. 45
8. सौनरेक्सा, चन्द्रकिरण पिंजरे की मैना, दिल्ली: पूर्वोदय प्रकाशन संस्करण 2008
9. वही, प्रस्तावना-विष्णु प्रभाकर
10. सौनरेक्सा, चन्द्रकिरण-पिंजरे की मैना, दिल्ली: पूर्वोदय प्रकाशन संस्करण 2008
11. वही प्रस्तावना- विष्णु प्रभाकर

प्रवासी हिंदी काव्य में गिरमिटिया मजदूर वर्ग का जीवन संघर्ष

डॉ० माजिद पटेल

(पोस्ट डॉक्टरेट रिसर्च फेलो ICSSR) हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजीनगर

प्रस्तावना-

प्रवासी साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चलाकर पिछले कुछ दशकों से हिंदी साहित्य को वैश्विक धरातल पर पहचान दिलाई है। इन प्रवासी रचनाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से प्रवासी भारतीयों की संस्कृति, संवेदना तथा जीवन को अपने साहित्य के माध्यम से विश्व के सामने लाया है।

प्रवासी साहित्य साहित्य की सभी विधाओं में मौजूद हैं जिसमें उपन्यास, कहानी, कविता, आत्मकथा, लेख आदि सभी विधाओं में कलम चलाई है। लेकिन प्रवासी कविता की अपनी अलग पहचान रही है। कविता के महत्व को व्यक्त करते हुए डॉ. सुमन सिंह ने लिखा है कि- "इसलिए महान कविता का कर्तव्य है कि वह साधारण जनता की दैनिक समस्याओं तथा उनके विरुध्द निर्मित सामाजिक विषमताओं को वाणी दे।"

प्रवासी लेखकों ने अपनी कविताओं में गिरमिटिया जीवन की संवदेनाओं, उनके संघर्षमय जीवन की दास्तान की स्मृतियों को अभिव्यक्त किया हैं। जिस प्रकार भारतीय मजदूरों को भारत से विदेशों में ले जाया गया। जिस में अधिक बिहार,पूर्वी उत्तर प्रदेश क्षेत्र से थे। जहॉ अधिक बेरोजगारी और अकाल पड़ने से रोटी की समस्या अधिक थी। भारतीय मजदूरों को पैसे का लालच देकर विदेश ले जाया गया था। उन्हें गुलाम बनाकर रखा गया और आज भी वे गुलामी की जंजीरों में ही बंधे है। जिसमें मौरीशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनदाद, दक्षिण आफ्रीका आदि आते है। वहॉ उनका वर्षो से शोषण हुआ है। गिरमिटिया मजदूरों की पीड़ा व उनकी वेदना को प्रवासी साहित्यकारों ने भोगा व समझा और अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुती देकर वैश्विक धरातल पर वाणी दी है।

'गिरमिटिया' शब्द का अर्थ

गिरमिटिया शब्द की उत्पत्ति 'गिरमिटि' शब्द से मानी जाती है। यह शब्द अंग्रेजी के 'एग्रीमेंट' (Agreement) शब्द का भोजपूरी रुप माना जाता है। (Agreement) को ही हिंदी में 'अनुबंध' कहते हैं। इसी 'अनुबंध' के तहत भारतीय मजदूरों को मॉरीशस, सुरीनाम, त्रिणदाद, गुयाना, फिजी, दक्षिण आफ्रीका आदि देशों में गन्ने की खेती करने की लिए सोने एवं हिरे की खदानों में काम करने के लिए तथा कंपनियों में कार्य करने के लिए 'अनुबंध' कर भारतीय मजदूरों को विदेशों में ले जाया गया था इसी एग्रीमेंट (Agreement) शब्द का अप्रभंश रुप 'गिरमिटिया' बन गया। और तभी से सभी भारतीय 'गिरमिटिया' मजदूर कहलाये जाने लगे।

गिरमिटिया मजदूरों की संवेदनाओं को उनके दूख: दर्द को प्रवासी लेखकों ने अपनी कविताओं के माध्यम से वाणी दी है। जिसमें पंडित कमला प्रसाद मिश्र, अभिमन्यु अनत, जोगिन्द्र सिंह कंवल, नेतराम शर्मा, अमरजीत कौर आदि प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में गिरमिटिया प्रवासी मजदूरों के अनुभव, जीवन की पीड़ा उनकी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हैं।

'पिजर' नाम कविता में कवि खेमेन्द्र कुमार ने प्रवासी भारतीयों के जीवन विस्थापना की पीड़ा तथा उनकी अस्मिता के प्रश्नों को अभिव्यक्त किया है। लेखक कहते है कि-

"गिरमिटिया की काली रात
घाव के उपर घाव
और इज्जत भी गई लुट
जटायु के भांति कट गए पंख
जब पिंजर खुला अकेला तटपर खड़ा
वो उड़ ना सका गर"[12]

कवि ने भारतीय मजदूरों की संघर्ष ख्रगाथा को, उनकी यातनाओं को दर्शाया है।

अभिमन्यु अनत ने भी अपने साहित्य में प्रवासी भारतीय मजदूरों के संघर्ष की दास्तान को वाणी दी है। उनकी कविताओं में न केवल इन मजदूरों के अन्याय, अत्याचारों का चित्रिण है, बल्कि शोषण के विरुध्द आवाज भी है। जिसका चित्रण लेखक ने 'खामोशी' नामक कविता में किया है -

"मेरे पूर्वजों के सॉवले बदन पर
जब बरसे थे कोड़े
तो उनके चमड़े
लहुलुहान होकर भी चुप थे
चीत्कारता तो था
गोरे का कोडा ही
और आज भी
कई सीमाओं पर
बंदूके ही तो चिल्ला-कराह रही हैं
भूखे नागरिक तो
शांत सो रह हैं
गोलियॉ खाकर।"[5]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से लेखक ने गिरमिट मजदूरों पर किए अन्याय- अत्याचारों को सामने लाया है। साथ ही उनकी यातनाओं का भी मार्मीक चित्रण प्रस्तुत किया है।

कवि जोगिन्द्र सिंह कंवल ने भी अपनी कविता में प्रवासी मजदूरों के जीवन को अंकित किया है। कठिण परिश्रम के बावजूद भी उन्हें भर पेट खाना नहीं मिलता, न हीं उन्हें तन ढकने के लिए कपड़ा नसीब होता है। उनका केवल मालिको द्वारा शोषण किया जाता है। इस सच्चाई का चित्रण लेखक ने निम्न पंक्तियों में किया है-

"यह उदासी यह खामोशी
यहा क्यों इतना सनाटा है?
चारों ओर कैसा यह मातम
क्यों फैला है सब तरफ सोग
क्या भीतर बेठकर
नए जख्मों को धोया जा रहा है
अन्याय के कोख में जन्में
एक नए अंधकार को सहा जा रहा है।"[4]

लेखक ने प्रवासी जीवन की पीड़ा, संघर्ष को प्रस्तुत कर प्रवासीयों के सुलघते प्रश्नों को उठाया है।

'पंछी' नामक कविता प. कमला प्रसाद मिश्र की यह चर्चीत कविता है। इस कविता में गिरमिटिया जीवन की वेदना को मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। जैसे:-

"है पथ थकित पर क्या चिंता? तूफान प्रबल पर किसका का भय?
वह देख चूका है सुख के दिन आशा का संचार लिए
इस दुर्दिन में भी क्या जीना किस आधा का संचार लिए
उड़ चला आकुल पंछी डर में अतित का भार लिए"[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में लेखक ने मजदूर जीवन के इतिहास को दर्शाया है। साथ ही उन्हें जीवन में किन-किन संघर्षो का सामना करना पड़ा था। उन स्मृतियों को याद कर मजदूरों में एक नई आशा का संचार भरने का प्रवास यहॉ लेखक द्वारा किया है।

भारतीय गिरमिटिया मजदूरों को भारत से लालच देकर, बहला फुसला कर विदेश लाया गया था। यहॉ उन्हें कई यातनाएँ दी गई थी। वहॉ उन्हें भर पेट न खाना मिलता और नहीं कपड़ा न यहॉ तक उन्हें रहने के लिए छत भी न थी। उनका हमेशा तिरस्कार ही किया गया। उनकी इस वेदनाओं को कवि नेतराम शर्मा ने समझा और भोगे हुए जीवन के इन संघर्ष को 'गिरमिटि की कहानी' इस कविता में अभिव्यक्त किया है। कवि कहते है -

" छोड आए थे अपना प्यारा देश
हरयाली ही मीलेगी चलो फीजी प्रदेश
सब्ज बाग दिखाए धोकेबाज थे कुछ कर्मचारी
क्या पता था परिश्रम से होगी यहॉ खेती बारी
तडके सूबह ही सबको कुल्मबर थे जगाते
दिनभर मेहनत कर बस शाम को ही घर आते
कठिन परिश्रम अनिवार्य था धूप हो या छॉव
ऐसे में भारत याद आता सगे संबंधी व गॉव"[6]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि ने उन तमाम मजदूर वर्ग के घर से बिछडने के दर्द को उनकी यादों को अंकित करते हुए उनकी जीवन गाथा को दर्शाया है।

प्रवासी लेखिका अमरजीत कौर ने भी प्रवासी मजदूरों की व्यथा को नजदीक से जाना है और उनकी पीड़ओं को 'पीड़ा' नामक कविता में उतारा है। इस कविता में लेखिका ने गिरमिटिया मजदूर स्त्री जीवन की वेदना का मार्मिक चित्रण किया है।

जैसे:-

"फिरंगिया के राजुआ मा छुटा मारो देसुआ हो
गोरी सरकार चली-चाल रे बिदेसिया
भोली हमें देख आरकाढी भरमाया हो
कलकत्ता पार जाओं पॉच साल रे बिदेसिया..
कुदाली, कुरबाल, दीना हाथुआ ना हम से हो
घाम का पसीनुआ बहाए रे बिदेसिया।"[7]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से लेखिका ने भारतीय मजदूर वर्ग की स्त्री जीवन की दास्तान को प्रस्तुत किया है।

प्रवासी कवि रोहित प्रसाद ने 'एक गरीब' कविता में प्रवासी जीवन की समस्याओं का मार्मीक चित्रण प्रस्तुत किया है। विदेश मजदूर बनाकर ले जाए गए भारतीयों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसका सूक्ष्म चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है-

"बदनामी सहकर/ गालिया सुनकर/ लोगो से धोखा खाकर/
अपने को ढोता है एक गरीब/ दुनिया से नजरे झुकाकर/
दुश्मनों को गले लगाकर /मजदूरी से लथपथ है एक गरीब"[8]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि ने मजदूर वर्ग के कष्ट का चित्र प्रस्तुत करते हुए मालिकों द्वारा उनके साथ किये जाने वाले बर्ताव को दर्शाया है।

लेखक जोगिन्द्र सिंह कंवल ने 'सात सागर पार' कविता में विदेश गये भारतीयों के मन को पहचाना है। अपनी देश की मीट्टी से मोहब्बत और देश से बिछड़ने की यादों का मार्मीक चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

"सात सागर पार करके भी ठीकाना न मिला
सौ साल प्यार करके भी निभाना न मिला
कई जन्मों से तो बिछड़े थे एक मॉ से हम
दूसरी मॉ के अंचल में भी सिर छिपाना न मिला
पीढ़ीया खेली हैं ए देश तेरी गोद में
फिर भी तेरी ममता का हमें नजराना न मिला।"[9]

उपर्युक्त पंक्तियों में लेखक ने विदेश मजदूरी करने गये भारतीयों कि मीट्टी से बिछड़ने की व्यथा को, उनकी मन की संवेदनाओं का चित्र प्रस्तुत किया है। अवासीय देश में प्रवासी बने भारतीय वहॉ के वातावरण में, वहॉ की संस्कृति में अपनों से दूर किस प्रकार विवष है उनकी विवषता को लेखक ने वाणी दी है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षत: हम यह कह सकते है कि प्रवासी लेखकों ने अपनी कविताओं में प्रवासी गिरमिटिया जीवन के अनुभव और उनके जीवन की संवेदनाओं का मार्मीक चित्रण किया है। साथ ही उनके जीवन के अतित, परिवार से बिछड़ने दर्द उनके साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार और कंपनी मालिको द्वारा किए गए बर्ताव को भी प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त मजदूर जीवन की पीड़ा, अभावी जीवन संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता का खतरा, उनके अन्याय अत्याचारों का भी सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है।

अत: प्रवासी कवियों ने अपनी कविताओं में प्रवासी जीवन से जुडे प्रत्येक अनुभवों, उनके गिरमिटिया मजदूर जीवन की पीड़ा-यातनाओं की आपबीती को मार्मीकता से अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. सुमन सिंह, समकालीन हिंदी कविता में दलित चेतना, विकास प्रकाशन, पृ.48
2. खेमेन्द्र कुमार, फीजी हिंदी काव्य साहित्य-सं.सुभाषिनी कुमार और मुकेश मिश्र, विद्या प्रकाशन, कानपूर पृ.47
3. अभिमन्यु अनत, खामोशी कविता, गुलमोहर खौल उठा- कविता संग्रह, कविता कोश आनलॉइन वेब.
4. जोगिन्द्र सिंह कवल, दर्द अपने-अपने, डायमंड पब्लिकेशनस नई दिल्ली पृ. 34
5. डॉ. विवेकानन्द शर्मा, फीजी के राष्ट्र कवि- कमला प्रसाद मिश्र का काव्य, निकष प्रकाशन, दिल्ली पृ .22
6. डॉ. नेतराम शर्मा, फीजी हिंदी काव्य साहित्य, सं जोगिन्द्र सिंह कवल, भारतीय संस्कृति संबंध परिषद, पृ. 104
7. जोगिन्द्र सिंह कंवल, फीजी में हिंदी के सौवर्ष, पृ. 37
8. कमला प्रसाद मिश्र, फीजी हिंदी काव्य साहित्य, सं जोगिन्द्र सिंह कवल, भारतीय संस्कृति संबंध परिषद, पृ. 16
9. http;//www.bharatdarshan.co.n2/magazine/iterature/825/saat-sagar-paar-fiji-kavita.html

भारत-बांग्लादेश सम्बन्धः एक विश्लेषण

जय कान्त यादव

पी.एचडी. राजनीति विज्ञान, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पृष्ठभूमि :-

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से राज्य अपने राष्ट्रीय हितों का संवर्धन एवं अभिव्यक्ति करते हैं। यह प्रक्रिया केवल एक समय की न होकर निरन्तर चलती रहती है। इस प्रक्रिया का प्रकटीकरण राज्यों की विदेश नीतियों के माध्यम से होता है। अतः अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में विदेशी नीतियों का आकलन एक अभिन्न अंग बन गया है। इसके अतिरिक्त, राज्यों की इन विदेश नीतियों के स्वरूप से ही अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में भी बदलाव आता है। किसी भी क्षेत्र का भूगोल उस क्षेत्र के राष्ट्रों के आपसी संबंध व उनके बीच के राजनीतिक संबंधों को प्रभावित करता है। इसी संदर्भ में, दक्षिण एशिया का क्षेत्र कई कारणों से विश्व का सर्वाधिक संवेदनशील क्षेत्र रहा है, इस क्षेत्र के उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणी स्थित है जो कि दक्षिण एशिया क्षेत्र को एशिया के अन्य क्षेत्रों से अलग करती है। इस पर्वतमाला की गोद में एक छोटा राष्ट्र भूटान अवस्थित है। यह राष्ट्र अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण सामरिक दृष्टि से काफी महत्व वाला राष्ट्र हैं। दक्षिण एशिया क्षेत्र की भू-राजनीति से बांग्लादेश की सामरिक महत्व के कारण उनकी भूमिका अतुलनीय रही है। चीन की दक्षिण एशिया में भू-राजनीतिक कूटनीति उपस्थिति के कारण भारत-बांग्लादेश के द्विपक्षीय सामरिक संबंधों को प्रभावित करने संबंधी तथ्यों को विश्लेषित करता है। प्रस्तुत शोध में द्वितीयक आकड़ों का प्रयोग किया जायेगा। इस अध्ययन की भूमिका, उपयोगिता और प्रासंगिकता हेतू नवीन अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने हेतु विश्लेषणात्मक (Analytical) अनुसन्धान प्रयोग किया जाएगा।

भारत-बांग्लादेश ऐतिहासिक संबंध

भारत और बांग्लादेश के साथ 4,096 किलोमीटर विस्तृत सीमा साझा करता है, जो दुनिया में पांचवीं सबसे लंबी सीमा है। भारत के असम, पश्चिम बंगाल, मिजोरम, मेघालय और त्रिपुरा राज्यों की सीमा बांग्लादेश से संबद्ध है। यह भारत की सुरक्षा और विदेश नीति के लिए महत्वपूर्ण है। भारत को चीन की 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' नीति का प्रतिस्पर्धा करने के लिए बांग्लादेश से सहयोग की आवश्यकता है। बांग्लादेश दक्षिण एशिया एवं दक्षिण पूर्व एशिया के चौराहे पर स्थित है और भारत की एक्ट ईस्ट नीति के लिए महत्वपूर्ण है, जिसका उद्देश्य दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाना है। बांग्लादेश दक्षिण एशिया में भारत का सबसे बड़ा व्यापार साझेदार है और भारत एशिया में बांग्लादेश का दूसरा सबसे बड़ा व्यापार साझेदार है।[1] वित्त वर्ष 2023-24 में भारत- बांग्लादेश के बीच कुल द्विपक्षीय व्यापार 14.01 बिलियन अमरीकी डॉलर था। भारत और बांग्लादेश का इतिहास, संस्कृति और विरासत साझा है। दोनों देशों के लोग मजबूत सांस्कृतिक और पारिवारिक संबंधों से जुड़े हुए हैं और बांग्लादेश में भारतीय मूल के लोगों की एक बड़ी आबादी रहती है। दोनों देश सीमा पार की नदियों और पारिस्थितिक तंत्रों को साझा करते हैं, जिससे जल प्रबंधन व बाढ़ नियंत्रण जैसे; मुद्दों पर सहयोग महत्वपूर्ण हो जाता है। दक्षिण एशिया में भारत-बांग्लादेश के सम्बन्धों की शुरूआत वर्ष 1971 से होती है। जब बांग्लादेश एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में विश्व में अस्तित्व में आया।

दोनों देशों के मध्य बहु-आयामी सम्बन्ध तथा विभिन्न स्तरों के राजनीतिक क्रिया-कलापों के सम्बन्ध जुड़े हुए है। राष्ट्रहित की पूर्ति हेतु विभिन्न नीतियों जैसे आदान-प्रदान, यात्राएँ, बैठकों इत्यादि नियमित रूप से आयोजित होती रहती हैं। जिसके द्वारा दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय परियोजनायें जैसे बांग्लादेश में स्थित भारतीय मिशन योजना, वीजा व्यवस्था, छात्रवृत्ति योजना, स्वास्थ्य सम्बन्धित अस्पतालों की व्यवस्था, चिकित्सा इत्यादि विद्यमान है। भारत-बांग्लादेश वर्तमान में राजकीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण बहुपक्षीय कार्य सम्पन्न हो रहे हैं और भविष्य के लिए मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अग्रसर है।[2]

भारत व बांग्लादेश के बीच हाल के कुछ वर्षों में विवाद का एक कारण बांग्लादेश व चीन के बीच बेहतर होते संबंधों से भारतीय हितों के प्रभावित होने के खतरे को लेकर भी उभरा है। ध्यातव्य है कि बांग्लादेश भारत और चीन के बीच में अवस्थति है इसलिये भारत के लिये उसका सामरिक महत्त्व बहुत ज्यादा है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत ने बांग्लादेश को 'लुक ईस्ट पॉलिसी' और उसके बाद शुरू की गई 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' के केंद्र में रखा है।[3] किंतु भारत को घेरने की श्स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्सश की अपनी नीति का अनुसरण करते हुए चीन बांग्लादेश को सदैव अपने प्रभाव में लेने का प्रयास करता रहा है जिसमें एक हद तक वह सफल भी रहा है। उसको सफलता इस रूप में मिली है कि भारत द्वारा विरोध किये जाने के बाद भी बांग्लादेश चीन की महत्त्वाकांक्षी बी.आर.आई. परियोजना से जुड़ गया। दोनों देशों के मध्य होने वाले आपसी व्यापार में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त, चीन बांग्लादेश को कई ढाँचागत परियोजनाओं को पूरा करने हेतु सस्ते ऋण के रूप में वित्तीय मदद भी प्रदान करा रहा है।

भारत-बांग्लादेश संबंधों पर भू-राजनीतिक प्रभाव

यह समस्या जटिल है, क्योंकि इस मामले में एक भारतीय राज्य भी शामिल है। लेकिन भारत के अपने हितों के लिए इसे जल्द से जल्द सुलझाया जाना चाहिए। इसके पीछे कई कारण हैं। सबसे पहले, इस क्षेत्र में भारतीय विदेश नीति को भारत के साथ गहन सहयोग के लिए द्विदलीय समर्थन हासिल करने

में सीमित सफलता मिली है। अपने अधिकांश निकटतम पड़ोसियों के साथ भारत के संबंध पार्टी या व्यक्ति-उन्मुख रहे हैं। एक बार जब कई पड़ोसी देशों में सत्ता पलट जाती है, तो उसके बाद इन देशों के साथ भारत के संबंधों में उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं। बांग्लादेश के मामले में, जब 2001 से 2006 तक बांग्लादेश में बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी की सरकार थी, तब भारत ने पूर्वोत्तर में उग्रवाद में वृद्धि देखी थी।[4] वर्ष 2009 के बाद अवामी लीग सरकार के लगातार समर्थन और सहयोग के कारण ही इसे नियंत्रित किया जा सका। बीएनपी का लगातार पाकिस्तान और चीन समर्थक रुख रहा है - यह नीति जनरल जियाउर रहमान के समय से जारी है और इसने वर्षों से अपने चुनाव अभियानों के प्रमुख भाग के रूप में भारत विरोधी बयानबाजी का इस्तेमाल किया है। ऐसे में, एक आसन्न मुद्दा जो सीधे पड़ोसी देश की आबादी के एक महत्वपूर्ण हिस्से को प्रभावित करता है, बांग्लादेश में शक्ति संतुलन के बदलाव की स्थिति में भारत के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सकता है। इसका पूर्वोत्तर भारत की सुरक्षा स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

जहां तक इस क्षेत्र में चीनी भागीदारी का सवाल है, बांग्लादेश दक्षिण एशिया में एक प्रमुख स्विंग राज्य बना हुआ है। चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने वर्ष 2016 में बांग्लादेश का दौरा किया और दोनों देशों ने लगभग 24 बिलियन अमरीकी डालर की लागत वाली विभिन्न बुनियादी ढांचा परियोजनाओं को पूर्ण करने वाले 27 समझौतों पर हस्ताक्षर किए। चीन बांग्लादेश को सैन्य उपकरणों का प्रमुख आपूर्तिकर्ता भी रहा है, जिसने वर्ष 2000 से 2020 के बीच 2,886 मिलियन अमरीकी डालर के उपकरण बेचे हैं, जो कुल रक्षा आयात का 65 प्रतिशत है।[5] जबकि बांग्लादेश बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के तहत विभिन्न परियोजनाओं के संदर्भ में चीन को शामिल कर रहा है, यह अभी भी सनोदिया बंदरगाह को रद्द करने और पायरा बंदरगाह के लिए भारत, चीन और बेल्जियम को शामिल करने वाले बहुपक्षीय दृष्टिकोण का पालन करने जैसी प्रमुख विकास परियोजनाओं के लिए अपने दृष्टिकोण में संतुलित रहा है। यह बदल सकता है अगर बीएनपी के नेतृत्व वाला विपक्ष भविष्य में बांग्लादेश सरकार पर पर्याप्त दबाव डालने और भारत विरोधी भावनाओं को रैली करने में सक्षम हो, अन्य चीजों के अलावा तीस्ता विवाद का उपयोग करके सत्ता हासिल करने के लिए, जिससे भारत-बांग्लादेश संबंधों में अब तक हुई प्रगति खतरे में पड़ जाए। इसलिए, तीस्ता महज एक सीमा पार जल विवाद नहीं है, बल्कि यह बांग्लादेश की घरेलू राजनीति और क्षेत्र में विकसित हो रही भू-राजनीति का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

भारत-बांग्लादेश संबंधों पर समकालीन बांग्लादेश की राजनीतिक संकट का प्रभाव

बांग्लादेश में चल रहे संकट का भारत-बांग्लादेश संबंधों पर गहरा असर पड़ा है। भारत समर्थक और उदारवादी प्रधानमंत्री शेख हसीना के अचानक इस्तीफे से भविष्य के द्विपक्षीय संबंधों पर चिंताएं बढ़ गई हैं, वहीं बांग्लादेश में हिंदुओं पर हिंसक हमले ने मानवीय चिंताओं को और गहरा कर दिया है। बांग्लादेश में राजनीतिक अशांति के कारण भारत में भी अस्थिरता फैलने की आशंका बढ़ गई है, खास तौर पर सीमावर्ती क्षेत्रों में जहां समुदाय आपस में जुड़े हुए हैं। इसके अलावा, इसने भारत के लिए सुरक्षा संबंधी चिंताएं भी बढ़ा दी हैं, क्योंकि सीमा पर घुसपैठ और अवैध गतिविधियों के बढ़ने की आशंका है। बांग्लादेश में कई भारतीय फंसे हुए हैं, ऐसे में इन चुनौतियों से निपटने और स्थिरता बहाल करने के लिए मजबूत कूटनीतिक जुड़ाव और सहयोग की आवश्यकता है।[6] हाल ही में, सरकार ने भारतीयों, हिंदुओं और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए बांग्लादेश के अधिकारियों के साथ समन्वय करने के लिए सीमा सुरक्षा बल, पूर्वी कमान के एडीजी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया है।

भारत-बांग्लादेश संबंधों का इतिहास 1971 में बांग्लादेश की मुक्ति से शुरू होता है। पाकिस्तान से आजादी के लिए बांग्लादेश के संघर्ष में भारत ने अहम भूमिका निभाई थी। पिछले कुछ वर्षों में भारत-बांग्लादेश संबंध कई क्षेत्रों को शामिल करते हुए एक व्यापक साझेदारी में विकसित हुए हैं। हालाँकि, 1970 के दशक के मध्य में सीमा विवाद, उग्रवाद के मुद्दे और जल-बंटवारे के संघर्षों के कारण भारत विरोधी भावनाएँ बढ़ीं। बाद में, 1996 में शेख हसीना के नेतृत्व में संबंधों में सुधार हुआ , जिसमें गंगा जल संधि जैसे महत्वपूर्ण समझौते शामिल थे। तब से, दोनों देशों ने सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भाषाई संबंधों के आधार पर एक मजबूत बंधन साझा किया है।

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री हसीना के इस्तीफे से देश में शासन संबंधी संकट पैदा हो गया है। भारत में बांग्लादेश के साथ आर्थिक संबंधों पर इसके प्रभाव को लेकर चिंताएं हैं। ये चिंताएं द्विपक्षीय व्यापार, बांग्लादेश में भारतीय निवेश और लोगों के बीच संपर्क की संभावनाओं पर आधारित हैं। अंतरिम सरकार की शांति और स्थिरता सुनिश्चित करने तथा द्विपक्षीय संबंधों में सामान्य स्थिति बनाए रखने की क्षमता पर अनिश्चितताओं ने बांग्लादेश को भारत के निर्यात की संभावनाओं को जटिल बना दिया है। पिछले कुछ समय से, बांग्लादेश में भारतीय निर्यातकों को देश में विदेशी मुद्रा की कमी के कारण भुगतान में देरी का सामना करना पड़ रहा है। संकट के बाद स्थिति और खराब हो सकती है, जिससे बांग्लादेश की आयात खरीदने की क्षमता कम हो सकती है। इसके अलावा, भारत के लिए, सीमाओं पर सख्त नियंत्रण और भूमि बंदरगाहों के पार माल के परिवहन में कठिनाइयों का मतलब निर्यातकों के लिए अतिरिक्त लागत होगी। बांग्लादेश से मछली, जूट और परिधान के भारतीय आयातकों के लिए भी लागत बढ़ जाएगी।

भारत और बांग्लादेश राजनीतिक संबंध चुनौतियां

बांग्लादेश के प्रधानमंत्री को वर्ष 2009 के लिए शांति, नि:शस्त्रीकरण तथा विकास हेतु इंदिरा गाँधी पुरस्कार प्रदान किया गया। इस अवसर पर दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने भविष्य में पारस्परिक रूप से सहयोग का एक व्यापक स्वयंवर्ग तैयार किया, जिसके अंतर्गत अपराधिक मामलों में कानूनी सहायता, आंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, संगठित अपराध और मादक पदार्थों की तस्करी रोकने तथा कैदियों की अदला-बदली जैसे महत्वपूर्ण समझौतों के साथ ऊर्जा और सांस्कृक्तिक आदान-प्रदान के समझौते पर भी हस्ताक्षर किए गए। इसके अतिरिक्त बांग्लादेश को नेपाल और भूटान के सड़क एवं रेल मार्गो से जोड़ने के साथ-साथ बंदरगाहों के इस्तेमाल पर भी साकारात्मक बातचीत हुई।

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री ने अपनी धरती से न केवल असम के उल्फा उग्रवादियों के खिलाफ कार्यवाहीं कर भारत के साथ सुरक्षा मामलों में सहयोग की एकजुटता दिखाई बल्कि भविष्य में उसकी धरती से भारत को अस्थिर करने वाली किसी प्रकार की आतंकवादी ताकतों को नेस्तनाबूद करने का भी

आश्वासन दिया। इस यात्रा से एक दूसरे के कब्जे वाले भू-खण्डों का मुद्दा भी सुलझने के आसार है, जिसके तहत् बांग्लादेश के अन्दर 17,158 एकड़ में फैले भारत के 111 तथा भारत के अन्तर्गत 7,110 एकड़ में बांग्लादेश के 51 भूखण्डों (कुल 162 भूखण्डों) का आदान-प्रदान सम्भव होगा। स्मरणीय रहे कि इन 162 भूखण्डों पर लगभग 51 हजार लोग रह रहे हैं, जिनमें भारत के 37000 और बांग्लादेश के 14000 लोग शामिल है।[7] तीन दशकों से इन लोगों को किसी भी देश की नागरिकता प्राप्त नहीं है, जिससे उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की ओर भी ध्यान नहीं दिया जाता था। अतः इस समझौते से उन्हें भी आम नागरिकों के मूल अधिकार प्राप्त हो सकेगें।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारत बांग्लादेश के बीच 4096 कि०मी० लम्बी सीमा रेखा है, जिसमें छह कि०मी० का इलाका विवादास्पद है, उसे भी सुलझा लिया जाएगा। इस सीमा रेखा में 2979 कि०मी० भू-सौमा तथा 1,117 कि०मी० नदीय सीमा के अन्तर्गत आता है। वर्तमान में भारत की इतनी लम्बी सीमा किसी अन्य पड़ोसी देश के साथ नहीं है यह सीमा पश्चिम बंगाल, असम, त्रिपुरा, मेघालय तथा मिजोरम तक फैली है। इससे दोनों देशों की सीमाओं से गैरकानूनी आवाजाही, आतंकवादी एवं उपद्रवी तत्वों की घुसपैठ तथा मादक पदार्थों की तस्करी पर रोक लगेगी। यद्यपि बांग्लादेश चाहता है कि भारत बांग्लादेश को भारतीय बाजारों में शुल्क मुक्त प्रवेश की अनुमति दे। बांग्लादेश ने भारत द्वारा दी जा रही सहायता का विस्तृत उल्लेख करते हुए दोनों देशों के सीमा विवाद के तनावपूर्ण वातावरण से कभी-कभी गंभीर दुर्घटनाएं भी घटित हो जाती है। जैसे कि भारतीय सीमा सुरक्षा बल के एक दल अपने महानिर्देशक श्री अश्वनी कुमार के साथ मेघालय सीमा पर निरीक्षण कर रहा था, उसी समय अकारण ही गोलियों की बौछार भारतीय अर्द्ध सैनिक बलों पर की गई। भारत सरकार ने एक समाचार विज्ञप्ति में बताया कि अश्वनी कुमार और उनके दल के लोगों पर उस समय गोलियाँ चलायी गई जब वे लोग अपनी सीमा क्षेत्र में थे। इस पर बांग्लादेश के उच्चायुक्त ने गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए भारत सरकार की ओर से प्रतिरोध भी दर्ज किया।

वर्ष 1972 में शेख मुजीब की सरकार बनने से लेकर वर्ष 2009 तक का अवलोकन करने पर लगभग 13 वर्ष ही वहाँ लोकतांत्रिक ढंग से चुनी सरकार का अस्तित्व रहा शेष 40 वर्ष वहाँ सैन्य शासन रहा है। 2009 में शेख हसीना के पुनः सत्ता में लौटने से बांग्लादेश की राजनीति में एक सुखद बदलाव देखने को मिल रहा है। यद्यपि कई मामलों में अब भी क्रूरता विद्यमान है फिर भी दोनों देशों के सम्बन्धों में मधुरता बढ़ना जारी हो गया है।[8] वास्तव में, बांग्लादेश विश्व की महाशक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी शक्तियाँ अपने दुषित महत्वाकांक्षाओं का जाल समस्त दक्षिण एशिया में फैला रहा है, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में अशान्ति फैल रही है। यह सही है कि भारत दक्षिण एशिया में एक महाशक्ति के रूप में उभर चुका है, इसीलिए भारत शांति, सुरक्षा एवं विकास के अपने दायित्वों को समझ पड़ोसियों से मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

भारत-बांग्लादेश संबंध, अशांति के बीच आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियां

भारत-बांग्लादेश संबंधों को ऐतिहासिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारकों के जटिल अंतर्संबंध द्वारा आकार दिया गया है। पड़ोसी देशों के रूप में, वे एक लंबी सीमा और एक गहरा इतिहास साझा करते हैं जो उनके वर्तमान संबंधों को प्रभावित करता है। हालाँकि, बांग्लादेश में हाल ही में हुए संकटों ने आंतरिक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, यह देखते हुए कि यह भारत के साथ सबसे लंबी सीमा साझा करने वाला देश है। प्रधानमंत्री शेख हसीना के इस्तीफे और अंतरिम सरकार के गठन के साथ विकसित हो रहे राजनीतिक परिदृश्य में स्थिरता और निरंतर सहयोग सुनिश्चित करने के लिए सावधानीपूर्वक और रणनीतिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

दोनों देशों के बीच विवाद का मुख्य बिंदु सीमा संबंधी है। गौरतलब है कि भारत व बांग्लादेश के साथ 4096 किलोमीटर लंबी सीमा साझा करता है। भारत के पश्चिम बंगाल, असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्य बांग्लादेश से जुड़े हैं। यह सीमा पोरस बॉर्डर के रूप में जानी जाती है जिसका भारत से बांग्लादेश तक खाद्य वस्तुओं, दवाओं, मवेशियों इत्यादि की तस्करी एक मार्ग के रूप में उपयोग किया जाता है। खासकर मवेशियों की तस्करी इस सीमा क्षेत्र में एक गंभीर समस्या है। दरअसल, बांग्लादेश में गोवंश माँस की मांग बहुत अधिक है और भारत में गोवंश के वध की इजाजत नहीं है। ऐसे में तस्करों द्वारा ऐसे पशुओं की सीमा पार तस्करी का अवैध कारोबार लगातार फलता-फूलता रहता है।[9]

भारत व बांग्लादेश के बीच के रिश्ते की यह विशेषता रही है कि इसमें समय-समय पर मधुरता व कड़वाहट आती रहती है, किंतु कुछ ऐसे मुद्दे भी हैं जिनमें दोनों देशों के मध्य स्थायी तौर पर विवाद है। इसमें सबसे प्रमुख है गंगा नदी के पानी के बँटवारे का मुद्दा गंगोत्री से निकलने वाली गंगा पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में दो धाराओं में बँट जाती है। एक धारा हुगली नदी के नाम से पश्चिम बंगाल के निचले भागों में चली जाती है, जबकि दूसरी धारा 'पद्मा' के नाम से भारत-बांग्लादेश सीमा के साथ-साथ बहती हुई ब्रह्मपुत्र में मिल जाती है। बंगाल की खाड़ी में गिरने से पूर्व यह 'मेघना नदी' में मिल जाती है। गंगा नदी के संदर्भ में भारत व बांग्लादेश के बीच विवाद का मुद्दा लगभग हर वर्ष पानी की कमी के मौसम में पानी के बँटवारे या उसका हिस्सा प्राप्त करने से संबंधित विवाद है। दरअसल मार्च से मई की अवधि में इस क्षेत्र में गंगा का प्रवाह घटकर 55,000 क्यूसेक तक आ जाता था, जिसमें से कोलकाता बंदरगाह के संचालन के लिये भारत 40 हजार क्यूसेक पानी का इस्तेमाल करता था और बांग्लादेश के लिये 15 हजार क्यूसेक पानी ही बचता था इसलिये बांग्लादेश के निर्माण के बाद से ही यह मामला वहाँ एक राजनीतिक मुद्दा बन गया। भारत ने फरक्का बांध बनाकर कोलकाता बंदरगाह का सुचारु संचालन तो सुनिश्चित कर लिया किंतु इस कारण दोनों देशों के संबंध खराब शुरू हो गए। ऐसे में सबसे पहले इंदिरा मुनोर समझौते के तहत गंगा के पानी के बटवारे का समाधान निकाला गया। तत्पश्चात् मोरारजी देसाई की सरकार और तत्कालीन बांग्लादेशी सरकार के मध्य एक समझौता हुआ किंतु इससे यह विवाद हल नहीं हुआ।[10]

अंततः वर्ष 1996 में भारत व बांग्लादेश के बीच गंगा जल समझौता हुआ जिसमें यह भी प्रावधान किया गया कि तीस वर्ष के पश्चात् दोनों देशों की सहमति से इस समझौते का नवीनीकरण किया जा सकेगा। इस समझौते के अनुसार यदि फरक्का से पानी की आपूर्ति 70,000 क्यूसेक या उससे कम हो तब दोनों देशों को उपलब्ध पानी का पचास-पचास प्रतिशत मिलेगा। यदि जल का प्रवाह 70,000 से 75,000 क्यूसेक होगा तो बांग्लादेश को 35,000 क्यूसेक और शेष पानी भारत के पास रहेगा। यदि फरक्का से पानी का प्रवाह 75,000 क्यूसेक से अधिक होगा तो भारत 40,000 क्यूसेक अपने लिये रखकर शेष

बांग्लादेश को दे देगा। ध्यान देने योग्य विमर्श यह भी है कि भारत और बांग्लादेश के बीच छोटी-बड़ी कुल करीब 50 से अधिक नदियाँ बहती है, जबकि 1996 के गंगाजल समझौते की अतिरिक्त दोनों देशों में पानी के बटवारे को लेकर कोई समझौता नहीं हो पाया है, जिससे गाहे-बगाहे पानी का मुद्दा दोनों में तनाव पैदा करता रहता है। दोनों देशों ने पिछले कुछ वर्षों में कई समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए हैं, जिसमें भारत ने वर्ष 2010 से तीन 'लाइन ऑफ क्रेडिट' का विस्तार किया है, जिनकी कुल कीमत 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर है, जिसमें भारत और बांग्लादेश के साथ-साथ पूर्वोत्तर क्षेत्र, ऊर्जा, रक्षा, बंदरगाहों और अंतर्देशीय जलमार्गों के उपयोग के बीच संपर्क में सुधार के लिए सीमा पार रेलवे सहित विभिन्न परियोजनाएं शामिल हैं।

भारत-बांग्लादेश संबंधों की संभावनाएं :-

भारत के लिए बांग्लादेश अहम पड़ोसी होने के साथ दक्षिण एशिया में उसका सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार भी है। भारत और बांग्लादेश के बीच करीब चार हजार किलोमीटर से ज्यादा की सीमा रेखा है और यह मुख्यत: असम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, मेघालय और मिजोरम को छूती है। बांग्लादेश और भारत सीमा के बीच पूर्वोत्तर की भौगोलिक परिस्थितियां घुसपैठ के अनुकूल हैं और पाकिस्तान की खुफियां एजेंसी आइएसआइ ने लंबे समय तक इसका फायदा उठाया। वर्ष 2015 में भूमि सीमा समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, तो इसे ऐतिहासिक सफलता और द्विपक्षीय रिश्तों में नया मोड़ बताया गया। हालांकि अब भी आशंका है कि भूमि सीमा समझौता अल्पजीवी होकर न रह जाए, क्योंकि इसके अन्य मुद्दों को सुलझाने की दिशा में बहुत कम प्रगति हुई है। भूमि हस्तांतरण की बाधाओं को खत्म कर बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना और भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने छह जून, 2015 को 1974 के भूमि सीमा समझौते की बहाली और उसके 2011 के प्रोटोकॉल से संबंधित दस्तावेजों का आदान-प्रदान किया।[11]

भारत-बांग्लादेश संबंधों को भविष्योन्मुखी साझेदारी के एक नए युग की ओर ले जाने की हमारी पारस्परिक इच्छा की पुष्टि करते हैं, जिसके लिए हम ष्विकसित भारत 2047ष और ष्स्मार्ट बांग्लादेश विजन 2041ष के अपने-अपने राष्ट्रीय विकास दृष्टिकोण को साकार करने में एक-दूसरे को अपरिहार्य भागीदार मानते हैं। तेजी से बढ़ती क्षमताओं के साथ एक करीबी और मूल्यवान पड़ोसी के रूप में, बांग्लादेश भारत की ष्पड़ोसी पहलेष नीति, ष्एक्ट ईस्टष नीति, सागर सिद्धांत और भारत-प्रशांत दृष्टिकोण के अभिसरण बिंदु पर है, और भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र के विकास में एक अपरिहार्य भागीदार है। दूसरी ओर, बांग्लादेश भारत के साथ अपने निकटतम और मैत्रीपूर्ण पड़ोसी के रूप में अपने संबंधों को महत्व देता है।

निष्कर्ष :-

भारत और बांग्लादेश के बीच विलक्षण एवं विशेष संबंध हैं। हम साझी सांस्कृतिक विरासत, साझे सिद्धांतों एवं मूल्यों तथा बेहतर भविष्य की आशाओं से बंधे हुए हैं। इस संबंध का निर्माण हमारी साझी आकांक्षाओं और बलिदानों के आधार पर हुआ है। भारत अपने बीच विद्यमान ऐतिहासिक सम्बन्धों को और सुदृढ़ बनाना चाहता है और साथ ही भारत इसे भविष्य का ऐसा विजन देना चाहते हैं जो स्थायी और सतत हो। हाल के वर्षों में उच्चस्तरीय यात्राओं के आदान-प्रदान से द्विपक्षीय सम्बन्धों को नई गतिशीलता मिली है। प्रगतिशील एवं व्यावहारिक नजरिए पर आधारित भारतीय सम्बन्धों ने नए दौर में प्रवेश कर लिया है जो संप्रभुता, समानता, मैत्री, आस्था एवं विश्वास के प्रति हमारी पारस्परिक वचनबद्धता की पुष्टि करते हैं। बांग्लादेश भारत का सिर्फ एक पड़ोसी राष्ट्र ही नहीं है बल्कि दोनों एक ही संस्कृति के साझेदार राष्ट्र है। भारत के लिए बांग्लादेश विभिन्न कारणों से महत्त्वपूर्ण है। भूगोल यह निर्धारित करता है कि भारत और बांग्लादेश की नियति आपस में लिपट कर उलझी हुई है और आगे भी सदैव ऐसी ही रहेगी विशेषकर भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के संदर्भ में यह अक्षरश: परिलक्षित होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

- Y.M. Bammi, India-Bangladesh Relations: The Way Ahead, New Delhi, United Service Institute of India.
- Manshi Suhag. (2 May 2024) ,"India and Bangladesh: An Emblem for the 21st Century", Centre for the Study of Joint Warfare.
- "Bangladesh, China agree to expand scale of bilateral trade: Business," BSS, January 17, 2024, https://www.bssnews.net/business/168562
- Teesta Dispute and India-Bangladesh Relations By Mohak Gambhir, May 31, 2021
- आशीष शुक्ला, (07 सितंबर, 2017), "बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था: पूर्व कार्यनिष्पादन और भावी संभावना". आई.सी. डब्ल्यू. ए. नई दिल्ली।
- Cchavi Vasisht "Discussion on India-Bangladesh Relations: Opportunities and Challenges". Vivekananda International Foundation February2,2021. https://www.vifindia.org/event/report/2021/february/02/discussion-on-india-bangladesh-relations-opportunities-and-challenges
- एशियन रिकार्डर, 8 जनवरी 1977.
- जहान, एस और अख्तर, एमएफ (2019) भारत-बांग्लादेश से सहयोग और संघर्ष की गतिशीलता, एशियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 27 (3), 265-2821
- पॉल, एम., और खान, एमएच (2020) जल बटवारा और भारत बांग्लादेश संबंध: संभावनाएँ और चुनौतियों, जर्नल ऑफ एशियन एंड अफ्रीकन स्टडीज, 55 (8), 1192-1208.
- खान, एमएम, (2018) भारत-बांग्लादेश संबंध: अवसर और चुनौतियाँ, भारत त्रैमासिक, 74(4), 331-3461
- स्मृति एस. पटनायक, सं.(2012), भारत-बांग्लादेश संबंधों के चार दशक: ऐतिहासिक अनिवार्यताएं और भविष्य की दिशा, नई दिल्ली, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस,

वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की भूमिकाः एक समीक्षा

नवल किशोर बैठा

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, एमजेके कॉलेज, बेतिया

सारांश

पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना एक विकासशील मिश्रित समाजवादी बाजार अर्थव्यवस्था है। चीन दुनिया की सबसे बड़ी विनिर्माण औद्योगिक अर्थव्यवस्था और वस्तुओं का निर्यातक है। चीन को व्यापक रूप से "विनिर्माण का पावरहाउस", "दुनिया का कारखाना" और दुनिया की "विनिर्माण महाशक्ति" माना जाता है

चीन की वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका है, यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा अर्थव्यवस्था वाला देश है और वैश्विक व्यापार में एक प्रमुख खिलाड़ी है। चीन में विशाल प्राकृतिक संसाधन और मानव पूंजी है, जो इसकी आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देती है। साथ ही, चीन वैश्विक व्यापार, निवेश और तकनीकी नवाचार में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है.

प्रतुत शोध लेख वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की उभरती भूमिका का पता लगाने के साथ सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) के संदर्भ में इसकी राजनीतिक रणनीतियों और आर्थिक परिणामों का विश्लेषण करता है।

मूल शब्दः चीन, वैश्विक अर्थव्यवस्था, राजनीतिक रणनीतियाँ, आर्थिक परिणाम, सतत विकास लक्ष्य, आर्थिक समावेशन।

परिचय

पिछले कुछ दशकों में, चीन वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरा है, जिसने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, निवेश और राजनीतिक संबंधों की गतिशीलता को मौलिक रूप से बदल दिया है। चीन की तीव्र आर्थिक वृद्धि, जिसे अक्सर "चीनी आर्थिक चमत्कार" के रूप में संदर्भित किया जाता है, की विशेषता यह है कि यह एक बड़े पैमाने पर कृषि अर्थव्यवस्था से वैश्विक विनिर्माण महाशक्ति में परिवर्तित हो गया है। यह परिवर्तन रणनीतिक आर्थिक नीतियों, पर्याप्त विदेशी निवेश और व्यापक निर्यात-उन्मुख औद्योगिक आधार के संयोजन द्वारा संचालित है। नतीजतन, वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की भूमिका का अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक रणनीतियों और आर्थिक परिणामों के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। चीन की आर्थिक उन्नति को अच्छी तरह से संतुलित राजनीतिक रणनीतियों की एक श्रृंखला द्वारा सुगम बनाया गया है जो इसके व्यापक राष्ट्रीय हितों के साथ संरेखित हैं। ओपन डोर पॉलिसी और विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) की स्थापना जैसे सुधारों का कार्यान्वयन प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) को आकर्षित करने और चीन को वैश्विक बाजार में एकीकृत करने में महत्वपूर्ण रहा है।

इन पहलों ने न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया, बल्कि चीन को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में एक प्रमुख खिलाड़ी के रूप में भी स्थापित किया। इसके अलावा, चीन की बेल्ट एंड रोड पहल (BRI) इसकी रणनीतिक आर्थिक कूटनीति का प्रतीक है। 2013 में शुरू की गई ठत्- का उद्देश्य एशिया, यूरोप और अफ्रीका में बुनियादी ढांचे के निवेश के माध्यम से क्षेत्रीय संपर्क को बढ़ाना और आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देना है। इस पहल के गहरे भू-राजनीतिक निहितार्थ हैं, क्योंकि यह व्यापार मार्गों का एक विशाल नेटवर्क बनाने का प्रयास करता है जो वैश्विक व्यापार प्रवाह को चीन की ओर पुनः उन्मुख करता है। बुनियादी ढांचे के विकास और आर्थिक एकीकरण पर BRI का जोर वैश्विक गांव के आर्थिक परिदृश्य को नया रूप देने और अपने तत्काल पड़ोस से परे अपने प्रभाव का विस्तार करने की चीन की महत्वाकांक्षा को दर्शाता है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थानों के साथ चीन का जुड़ाव, वैश्विक आर्थिक एकीकरण के लिए उसके रणनीतिक दृष्टिकोण को रेखांकित करता है। वर्ष 2001 से विश्व व्यापार संगठन (WTO) के सदस्य के रूप में, चीन ने अपनी भागीदारी का लाभ उठाते हुए एक अधिक खुली और समावेशी वैश्विक व्यापार प्रणाली की वकालत की है, साथ ही साथ अपने घरेलू उद्योगों की सुरक्षा भी की है।

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और एशियाई अवसंरचना निवेश बैंक (AIIB) जैसी वैश्विक वित्तीय संस्थाओं में चीन की बढ़ती भागीदारी भी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक शासन को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के उसके इरादे को उजागर करती है। हालाँकि, चीन का उदय विवाद और चुनौतियों से रहित नहीं रहा है। चीन के आर्थिक प्रभाव के विस्तार को अलग-अलग स्तरों पर प्रतिरोध और चिंता का सामना करना पड़ा है, विशेष रूप से स्थापित पश्चिमी शक्तियों से।

व्यापार असंतुलन, बौद्धिक संपदा अधिकार और राज्य के नेतृत्व वाली औद्योगिक नीतियों जैसे मुद्दे अन्य प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के साथ चीन के आर्थिक संबंधों में विवादास्पद बिंदु रहे हैं। इसके अतिरिक्त, आर्थिक विकास के लिए चीन के दृष्टिकोण, जिसमें अक्सर पर्याप्त राज्य हस्तक्षेप शामिल होता है, ने इसके विकास मॉडल की स्थिरता और निष्पक्षता के बारे में बहस छेड़ दी है। चीन की आर्थिक नीतियों के महत्वपूर्ण परिणामों में से एक वैश्विक व्यापार पैटर्न पर इसका प्रभाव है। विनिर्माण और निर्यात में चीन के प्रभुत्व ने वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं, जिसके कारण कई देश चीनी वस्तुओं और घटकों पर तेजी से निर्भर हो रहे हैं। यह निर्भरता विशेष रूप से इलेक्ट्रॉनिक्स, कपड़ा और उपभोक्ता वस्तुओं जैसे उद्योगों में स्पष्ट है, जहां चीन

उत्पादन प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाता है।

कोविड-19 महामारी ने इस तरह की निर्भरता से जुड़ी कमजोरियों को रेखांकित किया, क्योंकि चीनी विनिर्माण में व्यवधानों का वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा। चीन की आर्थिक रणनीतियों ने अंतर्राष्ट्रीय निवेश प्रवाह को भी प्रभावित किया है। देश FDI के सबसे बड़े प्राप्तकर्ताओं में से एक बन गया है, जो अपने विशाल बाजार और विनिर्माण क्षमताओं का लाभ उठाने के इच्छुक बहुराष्ट्रीय निगमों से निवेश आकर्षित कर रहा है। साथ ही, चीनी कंपनियाँ विशेष रूप से प्रौद्योगिकी, ऊर्जा और बुनियादी ढाँचे जैसे क्षेत्रों में आउटबाउंड निवेश और अधिग्रहण के माध्यम से अपने वैश्विक पदचिह्न का विस्तार कर रही हैं। ये निवेश गतिविधियाँ महत्वपूर्ण संसाधनों और प्रौद्योगिकियों तक पहुँच को सुरक्षित करने और दुनिया भर में अपनी आर्थिक उपस्थिति को मजबूत करने की चीन की व्यापक रणनीति को दर्शाती हैं। चीन के आर्थिक उदय का विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। बी.आर.आई. जैसी पहलों के माध्यम से चीन ने एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों को अत्यंत आवश्यक बुनियादी ढांचे के वित्तपोषण और विकास सहायता प्रदान की है।

जबकि इन निवेशों का आर्थिक वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने की उनकी क्षमता के लिए स्वागत किया गया है, उन्होंने ऋण स्थिरता और भू-राजनीतिक प्रभाव (ब्रौटिगम, 2020) के बारे में चिंताएँ भी जताई हैं। आलोचकों का तर्क है कि चीन की वित्तीय प्रथाओं से ऋण निर्भरता हो सकती है, जो प्राप्तकर्ता देशों की संप्रभुता से समझौता कर सकती है और रणनीतिक निर्भरताएँ पैदा कर सकती है। जैसे-जैसे चीन वैश्विक आर्थिक पदानुक्रम में आगे बढ़ता जा रहा है, इसकी राजनीतिक रणनीतियाँ और आर्थिक नीतियाँ अंतर्राष्ट्रीय विश्लेषण का केंद्र बिंदु बनी रहेंगी। वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की बहुमुखी भूमिका को समझना नीति निर्माताओं, व्यवसायों और विद्वानों के लिए समान रूप से आवश्यक है। चीन की घरेलू नीतियों, उसके अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक जुड़ावों और व्यापक भू-राजनीतिक संदर्भों के बीच परस्पर क्रिया वैश्विक अर्थव्यवस्था के भविष्य के प्रक्षेपवक्र को आकार देगी। एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में चीन का उदय इसकी रणनीतिक राजनीतिक और आर्थिक योजना का प्रमाण है।

जटिल वैश्विक आर्थिक परिदृश्यों को नेविगेट करने और विकास और विकास को बढ़ावा देने वाली नीतियों को लागू करने की देश की क्षमता ने इसे वैश्विक अर्थव्यवस्था में एक केंद्रीय खिलाड़ी के रूप में स्थापित किया है। चूंकि चीन बीआरआई जैसी पहलों और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं में अपनी भागीदारी के माध्यम से अपने प्रभाव का विस्तार करना जारी रखता है, इसलिए यह वैश्विक आर्थिक शासन और विकास के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की भूमिका का अध्ययन आर्थिक वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक और आर्थिक संबंधों की उभरती गतिशीलता के साथ आने वाली चुनौतियों और अवसरों के बारे में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

कूटनीतिक पहल और सॉफ्ट पावर

वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की राजनीतिक रणनीतियाँ बहुआयामी रही हैं, जिनमें कूटनीतिक पहल, आर्थिक भागीदारी और सॉफ्ट पावर का रणनीतिक उपयोग शामिल है। चीन के कूटनीतिक शस्त्रागार में प्राथमिक उपकरणों में से एक इसकी बेल्ट एंड रोड पहल (BRI) है, जिसका उद्देश्य एशिया, यूरोप और अफ्रीका में व्यापार मार्गों और आर्थिक संपर्क को बढ़ाना है। BRI ने न केवल बुनियादी ढांचे के विकास को सुगम बनाया है, बल्कि भाग लेने वाले देशों के साथ घनिष्ठ संबंधों को बढ़ावा देकर चीन के भू-राजनीतिक प्रभाव को भी मजबूत किया है। BRI के अलावा, चीन वैश्विक आर्थिक नीतियों को आकार देने के लिए अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों में सक्रिय रहा है। उदाहरण के लिए, विश्व व्यापार संगठन (WTO) में चीन की भूमिका उसके व्यापार हितों को बढ़ावा देने और उसके आर्थिक लक्ष्यों के साथ संरेखित सुधारों की वकालत करने में महत्वपूर्ण रही है। इसके अलावा, एशियाई अवसंरचना निवेश बैंक (AIIB) में चीन की भागीदारी विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) जैसी पश्चिमी नेतृत्व वाली संस्थाओं के पारंपरिक प्रभुत्व को चुनौती देते हुए विकास वित्त के वैकल्पिक स्रोत प्रदान करने की उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

आर्थिक भागीदारी और व्यापार समझौते

चीन की राजनीतिक रणनीतियों में द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार समझौतों पर बातचीत भी शामिल है, जो इसकी आर्थिक पहुंच का विस्तार करने में महत्वपूर्ण रहे हैं। उदाहरण के लिए, क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (RCEP) एक ऐतिहासिक व्यापार समझौता है जिसमें चीन और 14 अन्य एशिया-प्रशांत देश शामिल हैं। त्व्न्च का उद्देश्य टैरिफ को कम करना, व्यापार नियमों को मानकीकृत करना और क्षेत्र में आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा देना है। RCEP में भाग लेकर, चीन न केवल अपनी व्यापार संभावनाओं को बढ़ाता है बल्कि क्षेत्रीय आर्थिक शासन में अपने नेतृत्व को भी मजबूत करता है।

घरेलू सुधार और नीति समायोजन

घरेलू मोर्चे पर, चीन की राजनीतिक रणनीतियों में अधिक खुली और बाजार-उन्मुख अर्थव्यवस्था बनाने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण सुधार शामिल हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZ) की शुरूआत और विभिन्न क्षेत्रों के क्रमिक उदारीकरण ने विदेशी निवेश को आकर्षित किया है और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को सुगम बनाया है। इसके अतिरिक्त, नवाचार और तकनीकी उन्नति पर चीन के जोर ने उसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता, नवीकरणीय ऊर्जा और ई-कॉमर्स जैसे उभरते उद्योगों में वैश्विक नेता के रूप में स्थापित कर दिया है।

आर्थिक परिणाम

व्यापार और निवेश प्रवाह

चीन के वैश्विक आर्थिक एकीकरण के आर्थिक परिणाम उसके व्यापार और निवेश प्रवाह की पर्याप्त वृद्धि में स्पष्ट हैं। चीन दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया है, जिसके उत्पाद दुनिया के लगभग हर कोने तक पहुँच रहे हैं। इस निर्यात प्रभुत्व का श्रेय आंशिक रूप से चीन के प्रतिस्पर्धी विनिर्माण

क्षेत्र को जाता है, जो पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं, उन्नत उत्पादन तकनीकों और एक व्यापक आपूर्ति श्रृंखला नेटवर्क से लाभान्वित होता है। चीन के आर्थिक परिवर्तन में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। देश ने विशेष रूप से उच्च तकनीक वाले उद्योगों और सेवाओं में महत्वपूर्ण FDI प्रवाह को आकर्षित किया है। व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCTAD, 2023) के अनुसार, चीन 2022 में FDI का दूसरा सबसे बड़ा प्राप्तकर्ता था, जो वैश्विक निवेशकों के लिए एक गंतव्य के रूप में इसके आकर्षण को रेखांकित करता है।

बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI)

बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव चीन की आर्थिक रणनीति का एक प्रमुख घटक है, जिसका वैश्विक व्यापार और निवेश पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। ठत्ने रेलवे, राजमार्ग, बंदरगाह और ऊर्जा पाइपलाइन जैसी बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के निर्माण में मदद की है, जिससे एशिया, यूरोप और अफ्रीका के बीच संपर्क बढ़ा है। इन परियोजनाओं ने न केवल परिवहन दक्षता में सुधार किया है, बल्कि भाग लेने वाले देशों में आर्थिक विकास को भी बढ़ावा दिया है। हालाँकि, BRI को आलोचना और चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। विभिन्न हितधारकों द्वारा ऋण स्थिरता, पर्यावरणीय प्रभाव और भू-राजनीतिक तनावों के बारे में चिंताएँ जताई गई हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, BRI चीन की आर्थिक कूटनीति का एक केंद्रीय तत्व बना हुआ है, जो वैश्विक व्यापार पैटर्न को नया रूप देने और आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा देने की उसकी महत्वाकांक्षा को दर्शाता है।

तकनीकी नवाचार और डिजिटल अर्थव्यवस्था

तकनीकी नवाचार पर चीन के जोर ने महत्वपूर्ण आर्थिक परिणाम दिए हैं, खासकर डिजिटल अर्थव्यवस्था में। यह देश अलीबाबा, टेनसेंट और हुआवेई सहित दुनिया की कुछ अग्रणी प्रौद्योगिकी कंपनियों का घर है, जिन्होंने ई-कॉमर्स, सोशल मीडिया और दूरसंचार में क्रांति ला दी है। डिजिटल अर्थव्यवस्था ने न केवल घरेलू खपत को बढ़ावा दिया है, बल्कि वैश्विक बाजारों में चीन की प्रतिस्पर्धात्मकता को भी बढ़ाया है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और उन्नत विनिर्माण के क्षेत्र में, चीन ने उल्लेखनीय प्रगति की है। "मेड इन चाइना 2025" योजना जैसी सरकारी पहलों का उद्देश्य देश को उच्च तकनीक उद्योगों के लिए एक वैश्विक केंद्र में बदलना है। इन प्रगतियों ने उत्पादकता लाभ, नवाचार क्षमता में वृद्धि और नए व्यापार मॉडल के विकास में योगदान दिया है।

चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

जबकि चीन के आर्थिक एकीकरण ने कई लाभ लाए हैं, इसने महत्वपूर्ण चुनौतियों और आलोचनाओं का भी सामना किया है। प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ व्यापार तनाव ने वैश्विक अंतरनिर्भरता से जुड़ी कमजोरियों और जोखिमों को उजागर किया है (वांग, 2023)। टैरिफ, व्यापार प्रतिबंध और तकनीकी विघटन ने चीन के निर्यात क्षेत्रों को प्रभावित किया है और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं को बाधित किया है। इसके अलावा, चीन की आर्थिक प्रथाएँ, जैसे कि राज्य सब्सिडी, बौद्धिक संपदा संबंधी चिंताएँ और बाजार पहुँच प्रतिबंध, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वार्ताओं में विवाद का विषय रहे हैं (वू, 2022)। इन मुद्दों ने अधिक पारदर्शिता और वैश्विक व्यापार मानदंडों के अनुपालन की मांग को बढ़ावा दिया है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की भूमिका का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, निवेश और आर्थिक विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में, चीन की आर्थिक नीतियों और प्रदर्शन का वैश्विक बाजारों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, चीन के आर्थिक विकास में उतार-चढ़ाव दुनिया भर में कमोडिटी की कीमतों, व्यापार की मात्रा और निवेश प्रवाह को प्रभावित कर सकता है। वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं में चीन की भागीदारी ने उत्पादन और उपभोग पैटर्न को भी नया रूप दिया है। विनिर्माण और असेंबली के लिए एक प्रमुख केंद्र के रूप में कार्य करके, चीन ने खुद को कई देशों में फैली जटिल आपूर्ति श्रृंखलाओं में एकीकृत किया है। इस एकीकरण ने आर्थिक सहयोग के अवसर पैदा किए हैं, लेकिन व्यापार असंतुलन और निर्भरता से संबंधित चुनौतियाँ भी पेश की हैं।

पर्यावरण और सामाजिक विचार

चीन के वैश्विक एकीकरण द्वारा संचालित तीव्र आर्थिक विकास ने महत्वपूर्ण पर्यावरणीय और सामाजिक विचारों को जन्म दिया है। औद्योगीकरण और शहरीकरण ने पर्यावरणीय गिरावट, वायु और जल प्रदूषण और संसाधनों की कमी को जन्म दिया है।

इन पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान सतत विकास सुनिश्चित करने और आर्थिक गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है। सामाजिक रूप से, चीन की आर्थिक नीतियों ने जीवन स्तर में उल्लेखनीय सुधार और गरीबी में कमी लाने में योगदान दिया है। हालाँकि, आय असमानता और क्षेत्रीय असमानताएँ दबावपूर्ण मुद्दे बने हुए हैं। सामाजिक समानता और पर्यावरणीय स्थिरता के साथ आर्थिक विकास को संतुलित करना चीन के भविष्य के विकास के लिए एक प्रमुख चुनौती है।

निष्कर्ष

वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की राजनीतिक रणनीतियों और उसके आर्थिक नीतियों ने महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। व्यापार, निवेश और बुनियादी ढांचे के विकास पर बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) जैसी पहलों के महत्वपूर्ण प्रभाव को रेखांकित करते हैं, जो चीन को वैश्विक आर्थिक मामलों में एक प्रमुख खिलाड़ी के रूप में स्थापित करते हैं। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में चीन की सक्रिय भागीदारी ने इसकी आर्थिक कूटनीति को मजबूत किया है और इसे अपने हितों के अनुरूप वैश्विक व्यापार मानदंडों को प्रभावित करने की अनुमति दी है। इसके अतिरिक्त, प्रौद्योगिकी में रणनीतिक निवेश ने डिजिटल अर्थव्यवस्था में चीन के विकास को बढ़ावा दिया है, जिससे वैश्विक आर्थिक महाशक्ति के रूप में इसकी स्थिति और मजबूत हुई है। हालांकि, अध्ययन

चीन की आर्थिक रणनीतियों से जुड़ी चुनौतियों और जोखिमों को भी उजागर करता है, जैसे कि ठत् देशों में ऋण स्थिरता पर चिंताएं और प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के साथ व्यापार तनाव। आगे बढ़ते हुए, नीति निर्माताओं और हितधारकों को वैश्विक स्तर पर सतत और समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए चीन के आर्थिक अवसरों का लाभ उठाते हुए इन चुनौतियों का समाधान करना चाहिए।

संदर्भ

1. Bown, C. P. (2021). The US-China Trade War and Phase One Agreement. Journal of Economic Perspectives, 35(2), 57-81.
2. Branstetter, L. G., & Lardy, N. R. (2022). China's Embrace of Globalization. Journal of Economic Perspectives, 36(4), 21-46.
3. Breslin, S. (2021). China Risen? Assessing China's Influence in International Economic Governance. International Affairs, 97(5), 1415-1434.
4. Huang, Y., & Zhang, L. (2023). Technological advancement and economic growth in China: The role of policy initiatives. China Economic Review, 65, 102-120.
5. Hurley, J., Morris, S., & Portelance, G. (2018). Examining the debt implications of the Belt and Road Initiative from a policy perspective. Center for Global Development Policy Paper, 121, 1-32.
6. Wu, M. (2022). China's Economic Practices and International Trade Rules. Journal of International Economic Law, 25(1), 1-29.
7. Wang, J. (2023). Trade Wars and Trade Talks. Journal of International Economics, 140, 103710.
8. Wei, S. (2021). Technological Innovation in China: Progress and Challenges. Technology and Innovation, 22(1), 23-40.
9. Wooldridge, J. M. (2019). Introductory Econometrics: A Modern Approach. Cengage Learning.
10. World Bank. (2023). The Belt and Road Initiative: Economic Impacts and Opportunities. World Bank Publications.
11. Xie, Y. (2022). Future directions in China's economic strategies. Global Policy Journal, (4), 305-320.
12. Zenglein, M. J., & Holzmann, A. (2019). Evolving Made in China 2025: China's industrial policy in the quest for global tech leadership. MERICS Papers on China. Retrieved from https://merics.org/en/report/evolving-made-china-2025
13. Zhang, Y. (2022). China's role in international organizations and global economic governance. International Affairs, 98(1), 89-107.

नागरिक अवज्ञा आंदोलन में महात्मा गाँधी का योगदान

डॉ० अदिती लाल

अतिथि शिक्षिका, इतिहास विभाग, एम.आर.एम. कॉलेज, दरभंगा

सारांश

सिविल असहयोग आंदोलन 1930 के दशक में उपमहाद्वीप के लिए एक महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास था। यह भारत के सभी हितधारकों के साथ सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ था। वर्तमान अध्ययन इस आंदोलन की प्रकृति, ब्रिटिश राज की प्रतिक्रिया और इसमें गांधी की भूमिका पर प्रकाश डालने का एक विनम्र प्रयास है। इसके अतिरिक्त, यह प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है कि गांधी और कांग्रेस ने इस आंदोलन को प्रारंभ करने और सफल बनाने में क्या भूमिका निभाई? ब्रिटिश राज ने इस आंदोलन के प्रति कैसे प्रतिक्रिया दी? यह पत्र चार भागों में विभाजित है। पहले भाग में 1920–30 के दशक के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और ब्रिटिश राज की राजनीति पर चर्चा की गई है। दूसरे भाग में इस आंदोलन में गांधी की स्थिति और भूमिका को दर्शाया गया है, जबकि तीसरे भाग में आंदोलन की प्रकृति को समझाया गया है। अंत में, अंतिम भाग इस आंदोलन की प्रतिक्रिया और उपमहाद्वीप की राजनीति पर इसके प्रभावों को उजागर करता है। जहां तक विधि की बात है, वर्तमान अध्ययन वर्णात्मक-विश्लेषणात्मक विधि का उपयोग करता है।

मुख्य शब्दः- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, नागरिक अवज्ञा, ब्रिटिश राज।

परिचय

सामाजिक अवज्ञा आंदोलन 1930 में महात्मा गांधी के प्रेरणादायक नेतृत्व में शुरू हुआ, जो उपमहाद्वीप में आम जनता के बीच सबसे लोकप्रिय नेता थे। यह आंदोलन 12 मार्च 1930 को अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से प्रारंभ हुआ, जहाँ गांधी जी ने कुछ लोगों के साथ मिलकर दांडी की ओर अपनी यात्रा शुरू की, जो भारत के पश्चिमी तट पर स्थित एक गांव है। उन्होंने 25 दिनों में 385 किलोमीटर की दूरी तय की और अंततः 6 अप्रैल 1930 को दांडी पहुंचे। वहां पहुँचकर गांधी जी ने उपनिवेशी शासकों की दमनकारी नीतियों, जैसे कि नमक कानून, के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया। यह आंदोलन 1930 से 1934 तक चार वर्षों तक चला। इसे दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है, क्योंकि यह 1930 में उत्साहपूर्वक शुरू हुआ और गांधी-इरविन वार्ताओं के कारण रोक दिया गया, फिर 1932 में दूसरे गोल मेज सम्मेलन के बाद पुनः प्रारंभ हुआ। यह आंदोलन उस महत्वपूर्ण समय में शुरू हुआ जब वैष्विक आर्थिक मंदी ने ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय देशों को प्रभावित किया, जिसका असर भारतीय बाजारों पर भी पड़ा। भारतीयों ने ब्रिटिश कपड़ों और शराब का बहिष्कार किया। इस आंदोलन में मुख्य रूप से कांग्रेस का प्रभुत्व था और कई हिंदुओं ने इसमें उत्साहपूर्वक भाग लिया। ऐनी बेसेंट ने बंगाल में इस आंदोलन की शुरुआत की और बाचा खान ने इसे उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत में नेतृत्व प्रदान किया।[1] इस प्रकार, इस आंदोलन को पूरे उपमहाद्वीप से समर्थन मिला। जहां तक इस आंदोलन की सफलता का सवाल है, यह अपने प्राथमिक लक्ष्यों के संदर्भ में असफल रहा। हालांकि, दीर्घकालिक दृष्टिकोण से यह सफल रहा, क्योंकि इसने भारतीयों के बीच स्वतंत्रता आंदोलन में जनसामान्य की भागीदारी के लिए जागरूकता फैलाई। इस आंदोलन के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी थे। इसने भारतीयों को अपने उपनिवेशी शासकों के सामने संदेह के घेरे में ला खड़ा किया। इस आंदोलन ने शासकों को भारत में संस्थागत प्रक्रिया शुरू करने के लिए भी मजबूर किया। इसलिए, यह सिद्ध होता है कि इस आंदोलन ने ब्रिटिशों पर दबाव बनाने में सफलता प्राप्त की, ताकि कांग्रेस को भारतीयों की एक राजनीतिक पार्टी के रूप में मान्यता मिले। इस लेख में गांधी और कांग्रेस की इस आंदोलन में भूमिका को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा।[2]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य कुछ कानूनों या सरकारी मांगों का पालन करने से इनकार करना था, ताकि विधायी या सरकारी नीतियों को प्रभावित किया जा सके। यह आंदोलन अहिंसात्मक तकनीकों जैसे कि बहिष्कार, धरना और करों का न निपटाना का उपयोग करके किया गया। भारतीयों ने इस विधि को अपनाया और 1930 में गांधी के प्रेरणादायक नेतृत्व में एक ऐतिहासिक आंदोलन की शुरुआत की। प्रारंभ में यह छोटे स्तर पर था, लेकिन बाद में यह पूरे भारत में फैल गया और हजारों लोगों ने इसमें भाग लिया। यह आंदोलन गांधी के अन्य आंदोलनों की तुलना में अधिक अनुशासित था और यह सत्याग्रह के सिद्धांतों पर आधारित था। गांधी का सत्याग्रह आंशिक रूप से शेली के अहिंसा पर लेखों से प्रभावित था।

ब्रिटिशों की राजनीति इस आंदोलन के समय

उन्नीसवीं सदी के बीसवें दशक की शुरुआत में ब्रिटिशों का दृष्टिकोण भिन्न था। ब्रिटिश उपमहाद्वीप के सभी मामलों में प्रभुत्व रखते थे। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का कोई उत्तर नहीं दे रहे थे और इसे स्थानीय भारतीयों की राजनीतिक पार्टी के रूप में स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं थे। 1927 में साइमोन आयोग इसका स्पष्ट उदाहरण है। ब्रिटिशों ने 1919 के अधिनियम के अनुसार इस आयोग को भेजने का निर्णय लिया, जिसका उद्देश्य आवश्यक परिवर्तनों

का मूल्यांकन करना था। लेकिन जब यह आयोग भेजा गया, तो इसके सभी सदस्य ब्रिटिश नहीं थे। दिलचस्प बात यह है कि इस आंदोलन का उद्देश्य स्थानीय भारतीयों की समस्याओं का समाधान करना था, फिर भी इस आयोग में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं बनाया गया। यह कार्य उनके मानसिकता और सोच को दर्शाता है।[3] इसलिए, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधी ने इस आयोग का बहिष्कार करने का निर्णय लिया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की राजनीति इस आंदोलन के समय

बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में उपमहाद्वीप का राजनीतिक माहौल तेजी से बदल रहा था। जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, और आजाद जैसे कुछ युवा और ऊर्जावान नेताओं ने कांग्रेस की नीतियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[4] खिलाफत आंदोलन के बाद मुसलमानों और हिंदुओं के बीच सांप्रदायिक दंगे बढ़ने लगे। यह वह समय था जब स्थानीय भारतीय राजनीति के क्षेत्र में कई समस्याओं का सामना कर रहे थे। कांग्रेस ने उपमहाद्वीप में एक राजनीतिक पार्टी के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत की। यह वह अवधि थी जब गांधी कांग्रेस पर हावी थे।

गांधी का नागरिक अवज्ञा आंदोलन में स्थान

गांधी खिलाफत आंदोलन के दौरान दोनों समुदायों के नेता के रूप में उभरे। 1924 में असहयोग आंदोलन की असफलता के बाद उन्होंने राजनीति से दूरी बना ली। जब गांधी जेल से रिहा हुए, तो वे अपने आश्रम लौट आए। उन्होंने सामाजिक कार्य शुरू किया और आम लोगों की भलाई के लिए सेवाएँ प्रदान कीं। उन्होंने अखिल भारतीय खादी संघ की स्थापना की और भारत में ग्रामीण उत्थान पर ध्यान केंद्रित किया। उनका मानना था कि आत्मनिर्भर बनना आवश्यक है, इसलिए उन्होंने हाथ से बुने गए कपड़ों के उत्पादन पर जोर दिया।[5] इस अवधि में, कुछ कांग्रेस नेताओं ने भगत सिंह की हत्या के प्रति उनके निष्क्रिय दृष्टिकोण के कारण उनकी कड़ी आलोचना की। दिलचस्प बात यह है कि इस समय वे सक्रिय राजनीति में भाग नहीं ले रहे थे। इसके बावजूद, जब कांग्रेस ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का निर्णय लिया, तो उन्होंने उन्हें इस आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए आमंत्रित किया। गांधी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और 1930 में इस आंदोलन का नेतृत्व किया।

सामाजिक अवज्ञा आंदोलन के कारण

इस आंदोलन के दौरान राजनीतिक माहौल अत्यंत संवेदनशील था। ब्रिटिशों का स्थानीय भारतीयों के प्रति रवैया बहुत कठोर था। वे स्थानीय भारतीयों को अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे। यहां तक कि वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक राजनीतिक पार्टी और स्थानीय भारतीयों के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने को भी तैयार नहीं थे। ऐसे कठिन हालात में कई राजनीतिक और सामाजिक घटनाएँ हुईं, जिन्होंने इस आंदोलन के आरंभ में सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया। निम्नलिखित कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं, जो इस ऐतिहासिक आंदोलन के पीछे मुख्य कारक प्रतीत होती हैं।

1. वायसराय लॉर्ड इर्विन के शासनकाल में, ब्रिटिश सरकार ने उपमहाद्वीप की समस्याओं का अंतिम समाधान खोजने के लिए देश के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया। इसके बाद, 1928 में साइमोन के पर्यवेक्षण में एक आयोग का गठन किया गया, जिसे साइमोन आयोग के नाम से जाना गया। एक दिलचस्प तथ्य यह है कि इस आयोग का गठन ब्रिटिशों द्वारा स्थानीय लोगों के भविष्य का निर्णय लेने के लिए किया गया, लेकिन इस आयोग में एक भी स्थानीय भारतीय को आमंत्रित या चयनित नहीं किया गया। यह उपनिवेशी शासकों की ओर से एक मजाक था। वे स्थानीय लोगों से परामर्श किए बिना उपमहाद्वीप पर शासन करने का एक फार्मूला स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार, ब्रिटिशों का यह गैर-गंभीर और पक्षपाती रवैया गांधी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को विशेष रूप से आहत करता था। उस समय कांग्रेस के नेताओं ने अपनी नीतियों में बदलाव करने का निर्णय लिया। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यह भी इस आंदोलन का एक कारण था।[6]
2. इंग्लैंड में एक और महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास हुआ, जिसका उपमहाद्वीप पर गहरा प्रभाव पड़ा। 1929 में इंग्लैंड में चुनाव हुए, जिसमें लिबरल पार्टी ने बहुमत प्राप्त किया। बहुमत हासिल करने के बाद, उन्होंने भारत को कॉमनवेल्थ की सदस्यता देने का सम्मान देने का वादा किया। लेकिन विपक्ष के नेता चर्चिल ने इस कार्य पर श्रमिक पार्टी की कड़ी आलोचना की और इसे अपराध करार दिया। परिणामस्वरूप, इंग्लैंड में सरकार बनाने वाली श्रमिक पार्टी ने इस घोषणा को वापस ले लिया। यह कदम कांग्रेस और गांधी के लिए भी बहुत निराशाजनक था।
3. इस साइमोन कॉमन्स रिपोर्ट के जवाब में, जवाहरलाल नेहरू ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया और इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया।[7]
4. 26 जनवरी, 1930 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने लाहौर में एक सत्र का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता नेहरू ने की। इस सत्र में गांधी ने उपनिवेशी शासकों को कुछ अल्टीमेटम दिए। गांधी के इन अल्टीमेटम का कोई उत्तर नहीं मिलने पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने विदेशी शासन से पूर्ण स्वराज प्राप्त करने का निर्णय लिया। यह निर्णय कांग्रेस के लाहौर सत्र में लिया गया, जो कांग्रेस के इतिहास में महत्वपूर्ण साबित हुआ। इस अवसर पर यह भी घोषित किया गया कि स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि कोई विदेशी इसे छीनता है, तो हम उसका विरोध करेंगे। इस सत्र के बाद न केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभी समर्थक, बल्कि जिनके पास कुछ तमेमतअंजपवदे थे, वे भी एकजुट हुए और अत्याचारी विदेशी शासन के खिलाफ आवाज उठाने का निर्णय लिया।[8]

ये कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ थीं, जिन्होंने उपमहाद्वीप के इतिहास में इस ऐतिहासिक आंदोलन को शुरू करने में सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया।

सामाजिक अवज्ञा आंदोलन की प्रकृति

सामाजिक अवज्ञा आंदोलन, असहयोग आंदोलन के समान था, लेकिन इसकी प्रकृति में कुछ भिन्नताएँ थीं। मुख्य अंतर यह था कि लोग ब्रिटिश राज को कोई कर नहीं चुकाएंगे और वे किसी भी ऐसे कानून या कार्य को स्वीकार नहीं करेंगे, जिसे वे अपनी अंतरात्मा के खिलाफ मानते थे। इस आंदोलन में विभिन्न

क्षेत्रों के लोग शामिल हुए। इसका मुख्य उद्देश्य उपनिवेशी शासकों पर दबाव बनाना था। इस आंदोलन के दौरान, लोगों ने विदेशी कपड़ों को जलाना शुरू किया और भारत विरोधी कानूनों, जैसे कि नमक कानून, का विरोध किया। यह आंदोलन उपमहाद्वीप के हर कोने तक पहुंच गया। केवल पुरुष ही नहीं, बल्कि महिलाएं भी इस आंदोलन में भाग लेती रहीं, हालाँकि उन्हें कई कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा, फिर भी उन्होंने धैर्यपूर्वक सभी कठिनाइयों का सामना किया और कभी भी हिंसक नहीं हुई। इसके अलावा, कांग्रेस ने इस आंदोलन के प्रतिभागियों के लिए बहुत कठोर शर्तें निर्धारित की थीं, जैसे कि सभी प्रतिभागियों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्ण अनुशासन को शांतिपूर्ण तरीकों से अपनाना होगा। एक और शर्त यह थी कि सभी को जेल जाने या किसी अन्य समस्या का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा। इसके अलावा, यह भी एक शर्त थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रतिभागियों को किसी भी नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं होगी और न ही कोई वित्तीय या आर्थिक सहायता प्रदान करेगी। सभी को अपने-अपने नेता के निर्देशों और आदेशों का पालन करना होगा। दिलचस्प बात यह है कि ये शर्तें पूरी करना बहुत कठिन था, लेकिन इसके बावजूद लोग इस ऐतिहासिक आंदोलन में समर्थन और भागीदारी के लिए तैयार थे। यही सामाजिक अवज्ञा आंदोलन की प्रकृति थी।[9]

ब्रिटिश राज की इस आंदोलन पर प्रतिक्रिया

प्रारंभ में, ब्रिटिश राज ने इस आंदोलन को हल्के में लिया। उन्हें लगा कि गांधी इस अहिंसक आंदोलन के माध्यम से कुछ नहीं कर सकेंगे। लेकिन जैसे-जैसे यह आंदोलन लोकप्रिय हुआ और अधिक से अधिक लोग इसे गंभीरता से लेने लगे, उन्होंने गांधी में पूर्ण विष्वास दिखाना शुरू कर दिया। ब्रिटिश राज ने इस आंदोलन के महत्व को समझा और अपनी नीतियों में बदलाव किया। उन्होंने गांधी और इस आंदोलन के अन्य समर्थकों के प्रति कठोरता दिखाई। गांधी और कई अन्य समर्थकों को जेल में डाल दिया गया। उन्होंने सत्याग्रहियों पर लाठीचार्ज करने के आदेश भी जारी किए। इस आंदोलन की ताकत और लोकप्रियता ने उन्हें बहुत परेशान किया। ब्रिटिश राज द्वारा उठाए गए ये सभी कदम क्रांतिकारियों की भावना को दबाने में असफल रहे और उनके सभी प्रयास व्यर्थ गए।

एक भारतीय लेखक ने लिखा है कि भूमि उन लोगों के शवों से ढकी हुई थी जो लाठियों के प्रहारों के नीचे शोक मना रहे थे। फिर भी, सत्याग्रहियों ने उपनिवेशी शासकों की इन सभी अत्याचारों की परवाह किए बिना इस आंदोलन में उत्साहपूर्वक भाग लिया।[11]

राजनीतिक महत्व

इस आंदोलन का राजनीतिक महत्व अत्यधिक था और इसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला। यह ब्रिटिश राज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने में सहायक सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त, इस आंदोलन ने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष का एक नया मार्ग प्रस्तुत किया। इस ऐतिहासिक आंदोलन के कारण कई महत्वपूर्ण घटनाएँ भी हुईं, जैसे कि गोल मेज सम्मेलन। बहुत से लोग मानते हैं कि गोल मेज सम्मेलन साइमोन आयोग के परिणामस्वरूप हुए, लेकिन यह सही नहीं है। लॉर्ड इर्विन ने इस आंदोलन के बारे में टिप्पणी की, 'गांधी द्वारा हिंदुओं के बीच शुरू किया गया आंदोलन पर्यवेक्षकों के लिए चिंता का स्रोत है। हम इस आंदोलन को दबाने में असफल रहे। यदि ब्रिटिश सरकार ने मेरी मांग पर गोल मेज सम्मेलन का आयोजन नहीं किया, तो मैं इस्तीफा दे दूंगा।'[12] इस प्रकार, लॉर्ड इर्विन के इस कथन से इस आंदोलन के महत्व को समझा जा सकता है।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन के परिणाम

यह आंदोलन ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण था। ब्रिटिश राज की सभी दमनकारी नीतियों के बावजूद, इस आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए कुछ सकारात्मक परिणाम दिए।

1. ब्रिटिश दृष्टिकोण में परिवर्तन

इस आंदोलन से पहले, उपनिवेशी शासक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक राजनीतिक पार्टी और स्थानीय भारतीयों का प्रतिनिधि नहीं मानते थे। इस आंदोलन के बाद, उन्होंने इसे एक राजनीतिक पार्टी के रूप में स्वीकार किया और इसका उत्तर देना शुरू किया। उन्होंने स्थानीय भारतीयों को गोल मेज सम्मेलन में बातचीत के लिए आमंत्रित किया।

2. गांधी-इरविन संधि

इस आंदोलन के बाद, उपनिवेशी शासकों ने इस संदर्भ में प्रतिक्रिया देना शुरू किया। गांधी-इरविन संधि उनके बीच हस्ताक्षरित हुई। इस संधि के अनुसार, यह घोषित किया गया कि ब्रिटिश सरकार सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा करेगी। इसके जवाब में, कांग्रेस ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन को निलंबित करने और दूसरे गोल मेज सम्मेलन में भाग लेने का आश्वासन दिया।[13]

3. गोल मेज सम्मेलन

गोल मेज सम्मेलन इस आंदोलन के महत्वपूर्ण परिणामों में से एक थे। हालांकि, इन सम्मेलनों ने उपमहाद्वीप की राजनीति में सकारात्मक परिवर्तन नहीं ला सके। फिर भी, उपनिवेशी शासकों ने स्थानीय भारतीयों को उपमहाद्वीप की समस्याओं के समाधान के लिए आमंत्रित किया। ये नागरिक अवज्ञा आंदोलन के परिणाम थे।[14]

निष्कर्ष

इस प्रकार, नागरिक अवज्ञा आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण आंदोलन था। गांधी ने इस आंदोलन से पहले कई अन्य आंदोलनों की शुरुआत की थी, लेकिन यह आंदोलन अधिक अनुशासित था और उनके अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों के अनुसार था। इसके अतिरिक्त,

इस आंदोलन ने ब्रिटिशों के दृष्टिकोण को बदल दिया और उन्हें स्थानीय भारतीयों के राजनीतिक दल और प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। इस आंदोलन के बाद, उपनिवेशी शासकों ने स्थानीय भारतीयों के साथ समान स्तर पर समस्याओं के समाधान के लिए बातचीत करना शुरू किया। इन विशेषताओं के कारण, इस आंदोलन का अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ

1. जूडिथ एम. ब्राउन, गांधी और नागरिक अवज्ञा: महात्मा भारतीय राजनीति में 1928-1932, (कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1977)।
2. स्टेनली वोल्पर्ट, गांधी का जुनून: महात्मा गांधी का जीवन और विरासत, (ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001), पृ० 142।
3. एंथनी पारेल, गांधी पर कैम्ब्रिज साथी, संपादक: जूडिथ एम. ब्राउन, (कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011), पृ० 53।
4. ब्राउन, गांधी और नागरिक अवज्ञा, पृ० 387।
5. वोल्पर्ट, गांधी का जुनून, पृ० 152।
6. एस. के. मजूमदार, जिन्ना और गांधी: भारत की स्वतंत्रता की खोज में उनकी भूमिका, (लाहौर: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1976), पृ० 117।
7. रॉबर्ट पेन, महात्मा गांधी का जीवन और मृत्यु, (लंदन: द बॉडली हेड, 1969), पृ० 374।
8. वोल्पर्ट, गांधी का जुनून, पृ० 121।
9. पेन, महात्मा गांधी, पृ० 381।
10. वोल्पर्ट, गांधी का जुनून, पृ० 128।
11. पारेल, गांधी, पृ० 57।
12. ब्राउन, गांधी और नागरिक अवज्ञा, पृ० 34।
13. वोल्पर्ट, गांधी का जुनून, पृ० 130।
14. ब्राउन, गांधी और नागरिक अवज्ञा, पृ० 34।

आश्रम व्यवस्था का महत्त्व - वर्त्तमान समय के संदर्भ में

डॉ० प्रियंका कुमारी

सहायक प्राध्यापक (अतिथि), समाजशास्त्र विभाग, एम० आर० एम० महाविधालय, दरभंगा, ल० ना० मि० विश्वविधालय

शोध-सार:-

आश्रम व्यवस्था भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता रही है जहाँ व्यक्ति के संपूर्ण जीवन अवधि को चार अलग-अलग भागों में विभाजित किया जाता है ताकि व्यक्ति को उन चारों स्तरों से गुजारकर इस तरह तैयार किया जा सके ताकि वह मानव-जीवन के परम उदेश्य या मोक्ष को प्राप्त कर सके। भारतीय सामाजिक व्यवस्था, व्यक्ति को ब्रहाचर्य, गृहस्थ, वानप्रास्थ और सन्यास भाज्रम के द्वारा इस प्रकार जीवन के प्रत्येक पहलू से अवगत कराती है, उसके कर्त्तव्यों से उसको अवगत कराती है ताकि वह बिना किसी सांसारिक परेशानियों के अपने आपको मोध्न प्राप्ति के लिए तैयार कर सके। आजत्म-व्यवस्था, व्यक्ति को उसके जीवन के अंतिम लक्ष्य के लिए धीरे-धीरे तैयार करने की सुविचारित योजना कही जा सकती है। जिसमें व्यक्ति पहले ज्ञान प्राप्त करता है, तदन्तर संसारिक कर्त्तव्यों की पूर्ति करता है, फिर ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात मोक्ष प्राप्ति के लिए सन्यास लेता है। प्रत्येक आश्रम, व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ है।

प्रस्तुत शोध, वर्त्तमान समय में इस व्यवस्था की प्रासंगिकता को दर्शाता है। इसमें द्वितीयक आकड़े संग्रहण की विधि का उपयोग किया गया है। शोध का उदेश्य, आश्रम व्यवस्था के महत्व को वर्त्तमान समय के संदर्भ में दर्शाना है इसमें वर्णात्मक शोध-विधि का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्द:- आश्रम-व्यवस्था, ब्रहाचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, मोझ।

परिचय:- आश्रम व्यवस्था, प्राचीन भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है। आश्रम व्यवस्था में व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है जो क्रमश: ब्रहाचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम है। प्रत्येक आश्रम या व्यवस्था के प्रमुख कर्त्तव्य और कार्यो को निर्धारित किया गया था ताकि व्यक्ति का संपूर्ण जीवन विभिन्न स्तरों से गजरता हुआ, अंतिम लक्ष्य अर्थात मोक्ष की प्राप्ति को सुनिश्चित करे। आश्रम व्यवस्था का उल्लेख हम उपनिषद में देखते हैं।

आश्रम का शाब्दिक अर्थ होता है, परिश्रम यानि आश्रम-व्यवस्था, व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न स्तरों या आश्रम के कार्यो को उग्रमपूर्वक करना होता है, कार्य, कर्त्तव्य पूर्व निश्चित होते हैं। इस आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति एक आश्रम के कर्त्तव्यों या कार्यो को पूरा करने के उपरांत ही दूसरे आश्रम में प्रवेश कर सकता था। आश्रम व्यवस्था, को हम ऐसी व्यवस्था कह सकते हैं जो व्यक्ति के जीवन के महत्वपूर्ण चरणों यानि ज्ञान, भोग, धर्म के बाद उसके जीवन के अंतिम लक्ष्य यानि माक्ष प्राप्ति का माध्यम है। मानव की आयु 100 वर्षो की मानी जाती है, इस 100 वर्षो को 202-25 वर्षो के चार भागों में अलग-अलग आश्रम के लिए बाँटा गया है सभी आश्रम एक दूसरे से अंत संबंधित है इस के कारण यह एक व्यवस्था का रूप लेता है।

आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत चार आश्रमों की बात कही जाती है:-

1. ब्रहाचर्य आश्रम (जीवन के प्रथम 25 वर्षो तक)
2. गृहस्थ आश्रम (5 वर्षो तक)
3. वानप्रस्थ आश्रम (75 वर्षो तक)
4. सन्यास आश्रम (75 में 100 वर्षो के बीच)

भारतीय संस्कृतिक में सदैव ही व्यक्ति के दीर्घ जीवन की कामना की जाती है, वहाँ व्यक्ति जीवन के चार उदेश्य होते है:- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हीं उदेश्यों की प्राप्ति में आश्रम व्यवस्था मददगार होता है।

1. ब्रहाचर्य आश्रम:- ब्रहाचर्य आश्रम में व्यक्ति जीवन के लिए आवश्यक शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है, ब्रहाचर्य आश्रम में व्यक्ति ऐसे मार्ग पर चलता है जिससे वह आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक रूप से महान हो सकते हैं। ब्रहाचर्य का एक संकुचित अर्थ लैंगिक संयम समक्षते हैं, लेकिन यह केवल एक पहलू है। जनेऊ संस्कार के बाद बालक जीवन के प्रथम आश्रम यानि ब्रहाचर्य आश्रम में प्रवेश करता है। यह आश्रम व्यक्ति को अनुशासित जीवन जीने के लिए आमंत्रित करता है ताकि व्यक्ति का संपूर्ण जीवन अनुशासित रहे। व्यक्ति इस आश्रम में गुरू की सेवा करता है, शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है। भिक्षा माँग कर अपना आहार करते थे। ब्रहाचारियों के प्रमुख कर्त्तव्यों में ईश्वर के बारे में ज्ञान प्राप्त करना, अपवित्र चीजों से सुरक्षित रहना, पवित्रता का ध्यान रखना आदि शामिल था। ब्रहाचर्य आश्रम की समाप्ति के समय एक प्रतीकात्मक स्नान करने की परंपरा थी, जिसका अर्थ उसके स्नातक होने से था। और इसके बाद वह दूसरे आश्रम यानि गृहस्थ आश्रम में जाने का अधिकारी हो जाता था।

2. गृहस्थ आश्रमः- ब्रहाचर्य आश्रम के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इस आश्रम को सभी आश्रमों से महत्वपूर्ण माना गया है और इसे सभी आश्रमों का आधार कहा जाता है। इस आश्रम में व्यक्ति सभी पारिवारिक जिम्मेदारियों का पालन करने में सक्षम होता है। इस आश्रम में व्यक्ति विवाह के उपरांत संतान को जन्म देता है, उनका पालन-पोषण करता है, अपने माता-पिता की सेवा करता है। व्यक्ति अपने सभी समाजिक उत्तरदायित्वों का पालन इसी आश्रम में करता है। मनु ने भी गृहस्थ आश्रम को ज्येष्ठ व श्रेष्ठ कहा है। गृहस्थ आश्रम का महत्व व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक सभी रूपों में है, क्योंकि व्यक्ति इसी आश्रम में सभी पाँचों प्रकार के यज्ञ करता है साथ ही अन्य कर्ळव्यों को भी पूरा करता है।

3. वानप्रस्थ आश्रमः- व्यक्ति गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इस आश्रम में पत्नी के साथ भी प्रवेश कर सकते हैं और यदि पत्नी न जाना चाहे तो अकेले भी जाया जा सकता है। इस आश्रम में व्यक्ति, परिवार की जिम्मेदारियों को अपनी संतान को सौंप कर मोह त्याग कर, सन्यास आश्रम के लिए स्वंय को तैयार करता है। इसमें व्यक्ति घर, परिवार, गाँव, सामाज को छोड़ कर वन में कुटिया बनाकर रहते थे। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति, अपने परिवार का न होकर पूरे समाज का सदस्य बन जाता था। समाज के कल्याण का प्रयत्न करता था।

4. सन्यास आश्रमः- वानप्रस्थ आश्रम के बाद, व्यक्ति सन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। सभी संसारिक चीजों को त्यागकर, स्वंय का नाम त्यागकर एक सन्यासी के रूप में व्यक्ति को इस आश्रम में प्रवेश करना होता था। एक सन्यासी एक जगह पर स्थायी रूप से निवास नहीं करते थे। अपने अंदर से घृणा, मोह को त्यागकर, मोक्ष प्राप्ति के लिए इस आश्रम में प्रयास किया जाता था। किसी का अपमान नहीं करना, क्रोध न करना, भारत्मसुख के लिए किसी से शत्रुता नहीं करना, इस आश्रम में व्यक्ति सीखता था।

आश्रम-व्यवस्था का महत्वः-

आश्रम -व्यवस्था, एक ऐसी व्यवस्था रही है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास संभव है, क्योंकि जब तक व्यक्ति का स्वंय का जीवन संगठित न हो, समाज-कल्याण की बात नहीं की जा सकती है।

आश्रम व्यवस्था के महत्व को हम इस प्रकार समक्ष सकते हैं कि यह व्यक्ति के संपूर्ण जीवन की योजना को प्रस्तुत करता है कि किस उम्र में व्यक्ति किस आश्रम में रहेगा, कितने वर्षो तक रहेगा। एवं उस आश्रम के किन पूर्व निश्चित कार्यो को करेगा। इस तरह से जब कार्य होता है तब व्यक्ति अनावश्यक दबाव से बच जाता है, उसका जीवन सरल हो जाता है।

आश्रम व्यवस्था का एक अन्य महत्व है कि यह व्यक्ति के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। शास्त्रों में व्यक्ति के जीवन के आवश्यकताओं या पुरूषार्थ की बात कही जाती है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हीं पुरूषार्थो की प्राप्ति में आश्रम व्यवस्था सहायक होता है।

आश्रम व्यवस्था, व्यक्ति के मानसिक विकास में भी बहुत सहायक रहा है। आश्रम व्यवस्था में व्यक्ति के जीवन के प्रारंभिक समय के धर्म और कर्मो के साथ-साथ अंतिम काल में किए जाने वाले कार्यो को स्पष्ट कर दिया गया है जिसके व्यक्ति को उन कार्यो को कुशलतापूर्वक करने में सहायता मिलती है साथ ही व्यक्ति इन कोर्यो में अनावश्यक मानसिक द्वंत से बच जाता है उसका मानसिक विकास सही तरीके से होता है।

आश्रम व्यवस्था, व्यक्ति के ज्ञान संचय करने एवं उसके प्रचार प्रसार का भी माध्यम है। ब्रहाचर्य आश्रम में व्यक्ति गुरू के द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। पश्चात गृहस्थ आश्रम में पारिवारिक ज्ञान की प्राप्ति करता है। इसके पश्चात वह इस प्राप्त ज्ञान को वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में पूरे समाज में फैलता है ताकि संसार का कल्याण हो सके।

आश्रम व्यवस्था में सबके कल्याण की भावना भी सम्मिलित है। व्यक्तिगत कल्याण से शुरू होकर विश्व कल्याण तक की भावना को आश्रम व्यवस्था दर्शाता हे ब्रहाचर्य आश्रम में स्वंय का था व्यक्तिगत कल्याण, गृहस्थ आश्रम में पारिवारिक अंत में सन्यास आश्रम के दौरान विश्व के कल्याण की बात आश्रम व्यवस्था की विशेषता है।

आश्रम व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों को प्रगाढ़ एवं स्वस्थ्य बनाता है। व्यक्ति विभिन्न आश्रमों में समाज के संस्कृति परंपरा, मूल्यों के बारे में सीखता है साथ ही धर्म, कर्म की भी जानकारी प्राप्त करता है। समाज के वहित की बात करता है। आश्रम व्यवस्था न केवल व्यक्ति के लिए हितकारी है, बल्कि समाजिक सुदृढ़ता के लिए भी बहुत ही आवश्यक है।

आश्रम व्यवस्था एक महत्वपूर्ण व उपयोगी व्यवस्था है जिसके द्वारा व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को की आयु के अनुसार धर्म एवं क्रर्म से जोड़ दिया गया ताकि सामाजिक संरचना और व्यक्तित्व विकास में यह सहायक हो सके।

आश्रम-व्यवस्था की वर्ळामान समय में प्रासंगिकताः-

आश्रम-व्यवस्था न केवल प्राचीन भारतीय समाज बल्कि वर्ळामान एवं आधुनिक समाज के लिए भी बहुत ही उपयोगी है। आश्रम व्यवस्था की वर्ळामान समय में प्रासंगिकता इस तरह से हम देख सकते हैं कि यह आजकल के आधुनिक युवाओं को अनुशासन में रहकर कार्यो को करना सीखता है, जिसमें युवा मन भटकाव से बच जाता है। एक अनुशासीत व्यक्ति ही स्वंय के साथ-साथ समाज के लिए भी उपयोगी होता है। अनुशासन में ही समाज एवं देश विकसित होता है। आश्रम व्यवस्था न केवल व्यक्ति को अनुशासित रखता है बल्कि उनमें मानवोवित गुणों का समावेश भी करता है। आश्रम व्यवस्था गुरू के प्रति शिष्यों के ग्रहाभाव रखना बताता है, जिसकी आधुनिक समय में कहीं न कही कमी को हम देख सकते हैं। लेकिन इसकी उपयुक्तता आज भी बनी हुई है। मानवोचित्र गुणों के विकास से ही एक व्यक्ति का व्यक्तित्व संवेदनशील हो सकता है, व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन अच्छी तरह से कर सकता है। वर्ळामान युग, तकनीकी एवं मशीनों का युग है जिसमें व्यक्ति मशीनों पर अतयधिक निर्भर हो गया है जिससे उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास प्रभावित हसे रहा है जिसे दूर करने में आश्रम व्यवस्था बहुत प्रभावशाली है। ब्रहाचर्य आश्रम में ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ, अपने व्यवहार को भी संयमित बनाकर रखना होता है जिससे व्यक्ति अपने पर किसी भी परिस्थिति में नियंत्रण रख पाता है।

आश्रम व्यवस्था, व्यक्ति के जीवन के सभी महत्वपूर्ण स्तरों पर कुशलता से कार्य करना सीखाती है, व्यक्ति को उसके क्रर्त्तव्ययों का बोध कराकर, उसको धर्म के प्रति जागरूक बनाकर मोक्ष प्राप्ति की और अग्रसर करती है।

आश्रम व्यवस्था भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है जो व्यक्ति के विकास के प्रत्येक चरणाों को पूर्व निश्चित करता है जिससे व्यक्ति अनावश्यक दवाब से बच जाता है। आश्रम व्यवस्था, सामाजिक संरचना को भी सुदृढ़ बनाती है। जहाँ व्यक्ति के क्रर्त्तव्य, जिम्मेदारी एवं लक्ष्य को बेहतर एवं स्पष्ट तरीके से बता कर व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को समान बनाया गया है।

आश्रम व्यवस्था एक पथप्रदर्शक के रूप में व्यक्तिगत विकास में भी सहायक होती है। सामाजिक संतुलन, सदभाव को बनाए रखने में भी यह व्यवस्था उपयोगी है। आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति को धर्म और नेतिकता का पालन करना आवश्यक होता है, जिससे सामाजिक मूल्यों को बनाए रखने में सहायता होती है, साथ ही व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के लिए भी आश्रम व्यवस्था बहुत आवश्यक है।

निषकर्षः- वस्तुतः आश्रम व्यवस्था, एक तरह से परमार्श की व्यवस्था है। इसमें व्यक्ति के साथ-साथ समाज का कल्याण भी निहित है। आश्रम व्यवस्था, आयु के अनुसार व्यक्ति के जीवन का विभाजन इस प्रकार करती है ताकि जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति हो सके। आश्रम व्यवस्था, सभी अवस्थाओं में सामंजस्य समन्वय बनाती है। विभिन्न आयु वर्गो के बीच आपस में सहयोग की भावना का विकास करती है। कार्यो, क्रर्ळाव्यों के पूर्वनिश्चित होने से व्यक्ति पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता है। यह व्यवस्था समय के साथ नई परिस्थितियों में ढ़लना सीखाती है, जिसकी प्रासंगिकता आधुनिक समाज में भी बनी हुई है।

संदर्भः-

1. दामोदर धर्मानन्द कौसाम्बी- प्राचीन भारत की संस्कृति एवं सभ्यता, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन 1977
2. पी० एच० प्रभू -सोशल आर्गनाइजेशन, पृष्ठ-83
3. श्रीनिवास, एम० एन० (1996)
4. महाभारत अनुशासन पर्व 161/5-6
5. स्मृति संदर्भ
6. वामन पाण्डुरंग काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास
7. रेनू गुप्ता (2023) - आश्रम व्यवस्था का समाजशास्त्रीय महळ्व- एक अध्ययन

विद्यालयीय अनुभव कार्यक्रम के दौरान बी. एड. के विद्यार्थियों की स्कूल नेतृत्व के प्रति समझ

साधना यादव

शोध छात्रा, केंद्रीय शिक्षा, संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन विद्यालयीय अनुभव कार्यक्रम के दौरान बी. एड. के विद्यार्थियों की स्कूल नेतृत्व के प्रति समझ पर किया गया है। इसमें मुख्य रूप से विद्यार्थियों का स्कूल नेतृत्व के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है। शोध की प्रकृति गुणात्मक है और इसके अंतर्गत वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। प्रतिदर्श के रूप में बी. एड. के 16 विद्यार्थियों को लिया गया है। निष्कर्ष के रूप में यह पता चलता है कि विद्यालय प्रबंधन ठीक तरीके से हो रहा लेकिन इसमें थोड़ी सुधार की आवश्यकता है। शिक्षकों, प्रधानाध्यक, तथा छात्राध्यापकों के संबंधों की बात की जाय तो अच्छा और सहयोगी पाया गया।

बीज शब्द: विद्यालय अनुभव, विद्यार्थी, स्कूल नेतृत्व, विद्यालय प्रबंधन, प्रधानाध्यापक, शिक्षक।

प्रस्तावना

शिक्षा में नेतृत्व को लेकर लंबे समय से चर्चा होती रही है, लेकिन यह शिक्षा के प्रशासनिक अधिकारियों तथा विद्यालय प्रमुख तक ही सीमित हो जाती हैं। यह बात स्वीकार करने योग्य है कि शैक्षिक नेतृत्व विद्यालय स्तर पर बहुत महत्वपूर्ण है। किसी भी संस्था या संगठन का एक निश्चित उद्देश्य होता है, उस उद्देश्य को प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य होता है। एक संस्था कई सारे तत्वों से मिलकर बनी होती है। स्कूल नेतृत्व को समझने के लिए सबसे पहले इस पर विचार करना उचित होगा कि एक स्कूल क्या करता है और वे कौन से तत्व हैं जिनके कारण वह अच्छी तरह काम करता है। एक विद्यालय बिल्डिंग, फर्नीचर, शिक्षक तथा शिक्षार्थी आदि तत्वों से मिलकर बनता है। कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनके कारण स्कूल अच्छे तरीके से काम करता है लेकिन इन तत्वों की पहचान करना बहुत आसान नहीं है। विद्यार्थियों के शैक्षणिक अनुभवों के लिए विद्यालय को संगठित रूप में कार्य करना पड़ता है शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच अंतर्क्रिया तथा शिक्षकों-शिक्षकों के बीच अंतर्क्रिया। इन सबको संगठित करने का कार्य स्कूल प्रमुख का होता है। नौकरशाही तंत्र स्कूल प्रमुख के लचीलेपन को कम कर देती है। कभी-कभी जिम्मेदारी से बचने के कारण भी यह तरीका अपनाया जाता है(मिश्रा - दीवान,2012)।

विद्यालय में योजना बनाना, दिशा-निर्देश देना, समन्वय करना तथा पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता होती है। तभी एक विद्यालय सुचारु रूप से अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हो सकेगा। विद्यालय में नेतृत्व प्रदान करने के लिए एक नेतृत्वकर्ता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नेतृत्वकर्ता अपने व्यवहार, गुण तथा अपनी इच्छाशक्ति के द्वारा इस कार्य अर्थात विद्यालय नेतृत्व को सकारात्मक अंजाम दे सकता है। हम एक अच्छा नेतृत्वकर्ता उसे ही मानते हैं जिसके अंदर लोगों को प्रभावित करने की क्षमता हो, समाज के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करता हो, जिसकी बात को लोग मानते हों तथा उसपर विश्वास करते हों। इस प्रकार का नेतृत्वकर्ता अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर पाता है।

शिक्षा के नीतिगत दस्तावेजों को यदि हम खंगालें तो विद्यालय स्तर पर शैक्षिक नेतृत्व तथा प्रबंधन की शायद ही कहीं चर्चा की गयी होगी। शिक्षा को एक सामाजिक उपक्रम माना जाता है। इसमें प्राचीन काल से ही समाज की भागीदारी अप्रत्यक्ष रूप से रही है, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से तब अस्तित्व में आयी जब 1992 में पंचायती राज अधिनियम पारित हुआ। उस समय पंचायतें प्रभावी स्वशासन के रूप में सामने आती हैं। इस अधिनियम में कई समितियों का गठन किया गया जिसमें से एक 'ग्राम शिक्षा समिति' भी है, जो कि प्रबंधन तथा नेतृत्व को विद्यालय स्तर पर औपचारिक रूप प्रदान करती है। यह समिति विद्यालय में समुदाय को भी भागीदार बनाती है। दूसरा कदम 2009 शिक्षा के अधिकार अधिनियम में विद्यालय प्रबंधन समिति द्वारा शिक्षकों तथा अभिभावकों को भागीदार बनाकर किया जाता है। इसका उद्देश्य प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय के विकास के लिए नेतृत्व का प्रशिक्षण देना होता है। यह प्रयास राज्य स्तरों पर विद्यालय प्रमुखों का अभिमुखीकरण व प्रशिक्षण सुनिश्चित करता है। इसका ध्येय है कि प्रत्येक बच्चा सीखे और प्रत्येक विद्यालय उत्कृष्ट हो।

विद्यालय नेतृत्व वह विचार है जो विद्यालय को मात्र विद्या प्रदान करने वाले उपकरण के रूप में ही नहीं देखता है बल्कि उससे व्यापक विकास का दृष्टिकोण रखता है। सभी विद्यालय प्रमुख एक शिक्षक मात्र ही नहीं है बल्कि उसकी भूमिका का दायरा व्यापक है। किसी भी संगठन में चाहे वे विद्यालय ही क्यों न हो प्रबंधकीय गुणों को ज्यादा महत्व दिया जाता है, लेकिन विद्यालय नेतृत्व इससे आगे बढ़कर कार्य करता है। प्रभावी नेतृत्व संस्थान को सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने की धुरी है। जहां प्रबंधन वर्तमान को बेहतर बनाने का प्रयास करता है, वहीं नेतृत्व वर्तमान की बुनियाद पर बेहतर भविष्य विकास की संकल्पना को साकार करता है।

विद्यालयों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले विद्यालय प्रमुखों को प्रभावी नेतृत्व प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया है। जिसमें 42 लाख विद्यालय प्रमुखों तथा शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की योजना है। यह कार्यक्रम भारत का प्रमुख संगठन 'नीपा' द्वारा निष्ठा नाम से संचालित किया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य देश भर के 42 लाख विद्यालय प्रमुखों तथा शिक्षकों को प्रशिक्षित करना है। प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षकों के क्षमता का विकास करना है। विद्यार्थियों के माता-पिता तथा समुदाय के सदस्यों की दृष्टि से विद्यालय का परिणाम तथा उत्पाद एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, इसलिए विद्यालय को अच्छा प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों का झुण्ड तैयार करना तथा माता-पिता की अपेक्षाओं पर ज्यादा ध्यान देना पड़ता है। इसके अलावा विद्यालय को अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है उसे राज्य स्तर पर बनाए गए दिशा-निर्देशों का पालन करना पड़ता है, यदि स्थानीय स्तर पर कुछ अवसर बचे रहते हैं तो वे सीमित ही होते हैं। इन कारणों की वजह से स्कूल प्रमुख को एक निश्चित ढर्रे पर ही चलना पड़ता है(मिश्रा -दीवान,2012)।

रामचंद्रन, वी. (2012) ने अपने अध्ययन 'स्कूल नेतृत्व पर कुछ विचार' में नागालैण्ड के दीमापुर के निकट एक स्कूल की चर्चा किए हैं। उस स्कूल में सामुदायिक प्रक्रिया के तहत ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों को स्कूल संचालन का अधिकार दिया गया है। ग्राम शिक्षा समिति तथा प्रधानाध्यापक मिलकर सहयोगी दल की तरह काम करते हैं और स्कूल को नेतृत्व प्रदान करते हैं। प्रधानाध्यापकों से हुई बातचीत के दौरान यह पता चला कि स्कूल संचालन के लिए उन्हें किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं मिला। त्ज्म् अधिनियम और प्रशासक स्कूल नेतृत्व के लिए ैक्डब् को जिम्मेदार मानते हैं। जबकि लगभग सभी राज्यों में ैक्डब् के सदस्य अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में नहीं भेजते हैं। नागालैण्ड में भी यही स्थिति देखने को मिली। सरकारी स्कूलों कि गुणवत्ता की बात करें तो उसे सुधारने के लिए ज्यादा प्रयास नहीं किए जा रहे हैं, क्योंकि उसमें गरीब लोगों के बच्चे ही पढ़ने आते हैं, जिससे उसपर कोई ज्यादा ध्यान नहीं देता। नेतृत्व का मुद्दा अधिकारों, विकेन्द्रीकरण तथा शक्तियों के वितरण में कहीं खो गया है। दिवाकर, एस. (2012) ने शिक्षा में संस्थागत संस्कृति- कर्नाटक के शैक्षणिक नेतृत्व विकास कार्यक्रम से कुछ सबक में कर्नाटक के शैक्षणिक नेतृत्व विकास कार्यक्रम (ELDP) के तीन वर्ष के अनुभवों के आधार पर संस्थागत संस्कृति के आयाम को टटोलने की कोशिश करता है। ELDP ने शिक्षा विभाग के उन कर्मचारियों की नेतृत्व एवं प्रबंधन क्षमताओं को संवर्धित करने का प्रयास किया है जो स्कूल के सबसे नजदीक हैं। शिक्षा की अधिकांश जड़ें उस संस्कृति में हैं जिससे व्यवस्था सुचारु रूप से चलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जिले में स्कूलों कि संस्कृतियों तथा संस्थाओं के बीच सम्बन्धों के स्वरूप भी स्कूल के प्रदर्शन तथा उसके विकास पर प्रभाव डालते हैं।

शोध का औचित्यः

प्रस्तुत अध्ययन विद्यालयीय अनुभव कार्यक्रम के दौरान बी. एड. के विद्यार्थियों की स्कूल नेतृत्व के प्रति समझ पर आधारित है। इसमें विद्यालय अनुभव कार्यक्रम के दौरान छात्राध्यापकों का विद्यालय नेतृत्व के प्रति स्कूल अनुभवों का अध्ययन करना है। छात्राध्यापक भी भविष्य में शिक्षक बनेंगे इसलिए उनके अनुभव इस दिशा महत्वपूर्ण साबित होंगे। वे अपने अनुभवों के आधार पर एक सफल स्कूल नेतृत्वकर्ता बन पाएंगे और उन्हें जो कमियाँ नजर आयी होंगी उस पर विचार करके आगे आवश्यक बदलाव लाने में सहयोग कर पाएंगे।

शोध उद्देश्यः

- छात्राध्यापकों के दृष्टिकोण से विद्यालय प्रबंधन के स्वरूप का अध्ययन करना।
- छात्राध्यापकों तथा विद्यालय के शिक्षकों के बीच संबंध का अध्ययन करना।
- एक स्कूल नेतृत्वकर्ता के रूप में विद्यालय के प्रधानाचार्य के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
- स्कूल नेतृत्व के प्रति छात्राध्यापकों के विचार का अध्ययन करना।

शोध विधिः

किसी भी शोध कार्य को करने के लिए एक निश्चित तथा व्यवस्थित रूपरेखा बनाने की आवश्यकता होती है। इसके अंतर्गत शोधार्थी द्वारा अपने शोध को वैज्ञानिक, विश्वसनीय तथा वैध बनाने के लिए अध्ययन से पूर्व एक योजना बनानी पड़ती है। शोध की प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों की सत्यता पूर्ण रूप से शोध की विधियों एवं प्रविधियों पर निर्भर करती है।

प्रस्तुत शोध की प्रकृति गुणात्मक है जिसके अंतर्गत शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। प्रतिदर्श के रूप में बी. एड. में अध्ययनरत विद्यार्थियों (विद्यालय अनुभव कार्यक्रम में शामिल) को लिया गया है। शोधार्थी द्वारा उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन के माध्यम से 16 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

आकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रियाः

किसी भी अध्ययन का सबसे प्रमुख भाग आकड़ों का विश्लेषण होता है। जितनी ईमानदारी और सावधानी के साथ आकड़ों का संकलन किया जाता है उतनी ही सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए; तभी शोध की गुणवत्ता बनी रहती है। प्रस्तुत अध्ययन का विश्लेषण कुछ घटकों के आधार पर किया गया है, जो निम्नलिखित हैं-

1. छात्राध्यापकों के दृष्टिकोण से विद्यालय प्रबंधन का स्वरूप
2. छात्राध्यापकों तथा विद्यालय के शिक्षकों के बीच संबंध
3. एक स्कूल नेतृत्वकर्ता के रूप में विद्यालय के प्रधानाचार्य
4. स्कूल लीडरशिप के प्रति छात्राध्यापकों के विचार

छात्राध्यापकों के दृष्टिकोण से विद्यालय प्रबंधन का स्वरूपः

विद्यालय को सुचारु रूप से चलाने के लिए सबसे आवश्यक तत्व विद्यालय प्रबंधन ही है। शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा संसाधनों सभी की व्यवस्था करना प्रबंधन के अंतर्गत ही आता है। प्रबंधन को लेकर बी. एड. प्रशिक्षुओं से कुछ प्रश्न किए गए, जैसे- आप शिक्षण अनुभव कार्यक्रम के दौरान किस कक्षा में विद्यार्थियों के साथ शिक्षण कार्य किया? आपके विद्यालय की समय-सारणी किसके द्वारा निर्धारित की जाती है? वहाँ का विद्यालय प्रबंधन किस प्रकार कार्य करता है तथा उसमें कौन से लोग शामिल होते हैं? आपको अपनी कक्षाओं से संबन्धित बात या कोई जानकारी किसके माध्यम से मिलती है? विद्यालय में सबसे महत्वपूर्ण कार्य शिक्षण-अधिगम ही होता है। हम सामान्यतः यह मानते हैं कि बी.एड. करने के पश्चात विद्यार्थी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक के लिए योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। उपर्युक्त सवालों के उत्तर में छात्राध्यापकों ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर जवाब दिया। उनका उत्तर कुछ इस प्रकार से प्राप्त हुआ। उनके द्वारा कक्षा 6-10 तक के विद्यार्थियों के साथ शिक्षण-अधिगम कार्य किया गया। लगभग 80% छात्राध्यापकों का जबाब था कि 6-8 तक की कक्षाएं ही हमें मिलती हैं पढाने को, जबकि 20% अर्थात 4 छात्राध्यापकों ने बताया कि उन्हें 9-10 तक की कक्षाओं को भी पढाने का अवसर मिला। समय-सारणी तथा प्रबंधन से संबन्धित कार्य प्रधानाचार्य द्वारा ही किया जाता है, उनके अनुपस्थिति में इससे संबन्धित कार्य की जिम्मेदारी वरिष्ठ अध्यापक द्वारा निभायी जाती है। विद्यालय प्रबंधन में सम्मिलित सदस्यों का अनुक्रम कुछ इस प्रकार है; प्रधानाध्यापक- सीनियर शिक्षक ख्र जूनियर शिक्षक ख्र क्लर्क ख्र चपरासी आदि। छात्राध्यापकों को अपने विषय से संबन्धित शिक्षकों से अपनी कक्षाओं के बारे में बातचीत करनी होती थी। 50% छात्राध्यापकों ने अपने विद्यालय के प्रबंधन को बहुत अच्छा बताया उन्होने कहा की विद्यालय प्रबंधन में कोई कमी नहीं थी इससे जुड़े सदस्यों को प्रबंधन में महारत हाशिल थी। 6 ने बताया कि थोड़ा सुधार करने की आवश्यकता थी। तथा दो छात्राध्यापक ने तो प्रबंधन के बारे में बताया कि वहाँ का प्रबंधन ठीक नहीं था। इस प्रकार से विद्यार्थियों के अनुभवों से यह पता चलता है कि विद्यालय प्रबंधन में सुधार करने की आवश्यकता है, जिससे विद्यालय अपने लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को आसानीपूर्वक प्राप्त कर सकें।

छात्राध्यापकों तथा विद्यालय के शिक्षकों के बीच संबंधः

किसी भी संस्था या संगठन को चलाने के लिए उस संस्था के सदस्यों के आपसी संबंध अच्छे होने चाहिए। आपस में सहयोग तथा समायोजन होने पर उन्हें किसी कार्य को उचित तरीके से तथा आसानीपूर्वक करने में सहायता मिलती है। छात्राध्यापकों तथा विद्यालय के शिक्षकों के बीच सम्बन्धों को जानने का प्रयास किया गया तो यह पता चला कि छात्राध्यापकों के साथ विद्यालय के शिक्षकों का रवैया सहयोगी तथा साकारात्मक है। विद्यालय प्रशासन की तरफ से भी छात्राध्यापकों के प्रति सहयोगात्मक रवैया अपनाया जाता है। विद्यार्थियों तथा कक्षाकक्ष से संबन्धित कोई समस्या तथा जानकारी की आवश्यकता पड़ने पर उनका उचित सहयोग मिलता है। उनके अन्दर नैतिकता तथा सदाचार की भावना विद्यमान थी, जो कक्षाकक्ष के अंदर विद्यार्थियों में भी झलकती है। 10% छात्राध्यापकों ने अपने विद्यालय के बारे में बताया कि लगभग सभी सदस्यों का आपसी संबंध सामान्य था, लेकिन कभी-कभी आपस में विवाद भी हो जाता था जिससे नेतृत्वकर्ता को बीच में हस्तक्षेप करना पड़ता था। इस प्रकार से छात्राध्यापकों तथा विद्यालय के शिक्षकों का आपसी संबंध अच्छा था, कुछ सुधार की आवश्यकता थी।

एक स्कूल नेतृत्वकर्ता के रूप में विद्यालय के प्रधानाचार्यः

एक विद्यालय में नेतृत्वकर्ता की भूमिका अहम होती है। पूरे विद्यालय की जिम्मेदारी उसी के कंधे पर होती है। छात्राध्यापकों से पूछने पर कि क्या प्रधानाचार्य का निर्णय सर्वोपरि होता है? उनका जबाब भी परंपरागत विद्यालयों की तरह ही था कि सभी को अपने विचार रखने की स्वतन्त्रता होती है लेकिन अंतिम निर्णय प्रधानाध्यापक का ही होता है। कुछ विद्यालयों में सभी शिक्षकों की एक बैठक होती है उसके बाद आवश्यक मुद्दों पर चर्चा की जाती है तथा सलाह मशविरा किया जाता है और अंतिम रूप से निर्णय प्रधानाध्यापक का ही होता है। छात्राध्यापक कक्षा में पढ़ा रहे होते थे तो प्रधानाचार्य तथा अन्य शिक्षकों द्वारा पर्यवेक्षण किया जाता था, लेकिन एक छात्राध्यापक ने बताया कि मेरी कक्षा मे कभी भी किसी शिक्षक या प्रधानाचार्य द्वारा पर्यवेक्षण नहीं किया गया तथा एक ने बताया कि कभी-कभी किया जाता था। पूछने पर कि क्या आपको विद्यालय का हिस्सा समझा जाता था? हालांकि विद्यालय में जो भी सदस्य कार्य कर रहे होते हैं वे किसी न किसी रूप में विद्यालय के सदस्य होते हैं। छात्राध्यापकों द्वारा यह बताया गया कि वहाँ के शिक्षकों तथा हमारे बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। तथा विद्यालयों द्वारा लीडरशिप पर एसेम्बली में कभी-कभी चर्चा होती थी। एक ने बताया कि ओरिएंटेशन में लीडरशिप पर चर्चा हुई थी और कुछ विद्यार्थियों ने बताया कि कभी-कभी चर्चा हो जाती थी।

स्कूल लीडरशिप के प्रति छात्राध्यापकों के विचारः

आज के विद्यार्थी कल के शिक्षक होंगे, कोठारी आयोग ने भी कहा है कि भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा होता है। छात्राध्यापकों का लीडरशिप के प्रति विचार कैसा है? इस बात को जानने के लिए उनके विद्यालयी अनुभव के आधार पर कुछ प्रश्न किये गए, उन्होने लीडरशिप पर अपने विचार को साझा करते हुये सर्वप्रथम कक्षा में समावेशीकरण पर अधिक जोर दिया। उनका समवेशीकरण से आशय कक्षा में सभी विद्यार्थियों को समान अवसर प्रदान करने से है। 90% छात्राध्यापकों ने बताया कि विद्यालय में आधारभूत संसाधनों जैसे- शिक्षकों की पर्याप्त संख्या, कक्षा-कक्ष की संख्या, शौचालय की व्यवस्था, पीने का पानी, पुस्तकालय, कंप्यूटर कक्ष, प्रयोगशाला तथा स्वास्थ्य संबंधी सुविधायें आदि की पर्याप्त उपलब्धता पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए। कुछ विद्यार्थियों ने इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक बताया कि एक लीडर को हमेशा पक्षपात तथा पूर्वाग्रह से बचना चाहिये तभी वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन ईमानदारी से कर सकेंगे। एक लीडर में दूरदर्शिता तथा धैर्य की भावना होना सबसे आवश्यक तत्व है।

निष्कर्ष:

विद्यालयीय अनुभव कार्यक्रम के दौरान बी. एड. के विद्यार्थियों की लीडरशिप के प्रति समझ का अध्ययन करने के बाद उनके द्वारा विद्यालय में किया गया अनुभव, जिसे कि शोधार्थी के साथ साझा किया गया उससे यह पता चलता है कि छात्राध्यापकों को विद्यालय में कमियों के साथ कुछ अच्छाईयां भी मौजूद दिखायी दी तथा विद्यालय प्रबंधन ठीक तरीके से हो रहा लेकिन इसमें थोड़ी सुधार की आवश्यकता है। शिक्षकों, प्रधानाध्यक, तथा छात्राध्यापकों के संबंधों की बात की जाय तो उसे हम अच्छे श्रेणी का मान सकते हैं। एक विद्यालय को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रबंधन का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है यह कार्य प्रधानाध्यापक द्वारा ही किया जा रहा है। विद्यालय की सभी प्रकार की गतिविधियों में प्रधानाध्यापक की सक्रिय भूमिका पायी गयी तथा सभी गतिविधियाँ प्रधानाध्यापक के नियंत्रण में ही की जा रही हैं। इसके अलावा छात्राध्यापकों ने अपने भी विचारों से अवगत कराया जिससे विद्यालय नेतृत्व के बारे में वे क्या सोचते हैं इसका भी अनुमान लगाया जा सकता है, वे कक्षा को समावेशी बनाने की तरफ ज्यादा जोर दे रहे थे तथा मूलभूत सुविधाओं के बारे में भी चर्चा किये। इस प्रकार इस अध्ययन से यह पता चलता है कि हमें विद्यालयीय नेतृत्व के बारे में गहराई से विचार करने की तथा इसमें कुछ सुधार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ:

धनकर, आर. (2009). सांस्कृतिक विविधता और शिक्षणशास्त्र, शिक्षा विमर्श, सितम्बर-अक्टूबर.

युंग, बी. एल., मेडसन, जे. - युंग, एम. ए. (2010). इंप्लीमेंटिंग डाइवर्सिटी प्लान्स: प्रिंसिपल्स परशेपशंस ऑफ दीयर एबिलिटी टू एड्रेस डाइवर्सिटी इन दीयर स्कूल. एनएएसएपी बुलेटिन, 94(2), 135-257. DOI: 10. 1177/0192636510379901.

दिवाकर, एस. (2012). शिक्षा में संस्थागत संस्कृति, लर्निंग कर्व, हिन्दी अंक 4:सितम्बर.

शर्मा, आर. ए. (2013). एडुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमेंट. मेरठ : आर लाल बुक डिपो.

खलीफा, ए. एम., गुडेन, एम. ए. - डेविस, जे. ई. (2016). कल्चरली रिस्पांसिव स्कूल लीडरशिप:ए सिंथेसिस ऑफ दी लिटरेचर, रिव्यू ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, वॉल्यूम 86, पृ. सं. 1272-1351. DOI: 10.3102/0034654316630383.

पारिक, एम. के. (2017). शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन. जयपुर : नीलकंठ पुस्तक मंदिर.

गुप्ता, एस. पी.(1017). अनुसंधान संदर्शिका संप्रत्यय कार्यविधि एवं प्रविधि, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. सं. 39-43, 107-112.

नौटियाल, ए. (2019). विद्यालय प्रमुख होने के मायने. प्रवाह. अक्टूबर-जनवरी.

गांधीवादी मूल्य स्थापना में नंदकिशोर आचार्य के नाटकों का योगदान

मीनू मीणा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

नंदकिशोर आचार्य के नाटकों में गांधीवादी विचारधारा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनके साहित्य में सत्य, अहिंसा, सामाजिक न्याय, संवाद और सहिष्णुता जैसे मूल्यों को प्रमुखता दी गई है। ये नाटक समाज की रूढ़ियों को तोड़ने और सत्ता-संरचना के वास्तविक स्वरूप को उजागर करने का कार्य करते हैं। गांधीजी का मानना था कि सच्चा सामाजिक परिवर्तन अहिंसात्मक संघर्ष और सत्य की खोज से संभव है, और आचार्य के नाटकों में यह विचारधारा बार-बार सामने आती है। उनके प्रसिद्ध नाटक देहांतर सामाजिक परिवर्तन और मानवीय मूल्यों पर आधारित है, पागलघर अन्याय और सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाता है, और गुलाम बादशाह सत्ता और समाज के बीच के संबंधों की गहरी पड़ताल करता है। इन नाटकों में पात्रों के संवाद केवल वैचारिक टकराव नहीं दर्शाते, बल्कि आत्ममंथन और सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देते हैं। गांधीजी के सिद्धांतों के अनुरूप, इन रचनाओं में यह संदेश दिया गया है कि सच्ची सत्ता वही है जो जनता की सेवा करे और समाज में समानता एवं न्याय की स्थापना करे। इस प्रकार, नंदकिशोर आचार्य का नाट्य साहित्य गांधीवादी मूल्यों को आधुनिक संदर्भ में पुनः स्थापित करने और समाज में सकारात्मक बदलाव लाने का सशक्त माध्यम बनता है।

बीज शब्दः-गांधीवादी विचारधारा, सत्य, अहिंसा, सामाजिक न्याय, संवाद, सहिष्णुता, सत्ता, समाज, परिवर्तन, हिन्दी साहित्य।

हिन्दी साहित्य में नाटकों का विशेष महत्व है, क्योंकि यह साहित्य की वह विधा है जो मंच के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों को जीवंत रूप में प्रस्तुत करती है। नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज के यथार्थ, उसकी समस्याओं और संघर्षों को अभिव्यक्त करने का प्रभावी माध्यम भी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, मोहन राकेश, नन्द किशोर आचार्य और बाद में अनेक समकालीन नाटककारों ने हिन्दी नाटक को सामाजिक जागरूकता, ऐतिहासिक चेतना और मनोवैज्ञानिक गहराई देने का कार्य किया।[1] इन नाटकों के माध्यम से जनता तक विचारधारा, मूल्य और संवेदनाएं प्रभावशाली ढंग से पहुँचती हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में नाटकों की भूमिका केवल एक साहित्यिक विधा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का भी महत्वपूर्ण माध्यम है।

नन्दकिशोर आचार्य राजस्थान के उन महत्वपूर्ण नाटककारों में से है, जिन्होंने हिन्दी नाट्य जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। वे आधुनिक हिन्दी रंगमंचों के उस स्थान पर खड़े हैं जहाँ हिन्दी क्षेत्र के रंगकर्मी उन्हें आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते है। उनके नाटकों को फैजल अल्काजी, रामगोपाल, बजाज, वीरेन्द्र मेहदीरत्ता जैसे निर्देषकों ने मंचित किया है। अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'चौथा सप्तक' के कवि नन्दकिशोर आचार्य के अब तक बारह कविता-संग्रह, आठ नाटक, सात साहित्यिक आलोचना की पुस्तकें एवं संस्कृति, शिक्षा, राजनीतिक-आर्थिक चिन्तन, मानवाधिकार एवं गाँधी दर्शन पर केन्द्रित बारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।[2]

आचार्य जी के द्वारा नाटक-देहांतर (किमिदम् यक्षम् सहित), पागलघर (जूते सहित), गुलाम बादशाह (हस्तिनापुर सहित), जिल्ले-सुब्हानी, किसी और का सपना, बापू आलोचना-अज्ञेय की काव्यतितीर्षा, रचना का सच सर्जक का मन, अनुभव का भव, साहित्य का स्वभाव, नाट्यानुभव, साहित्य का अध्यात्म, लेखक की साहित्यिकी आदि नाटकों माध्यम से सामाजिक जागरूकता, ऐतिहासिक चेतना और मनोवैज्ञानिक गहराई देने का कार्य किया है।

नंदकिशोर आचार्य समकालीन हिन्दी नाटककारों में एक प्रमुख नाम हैं, जिनके नाट्य-साहित्य में गहरी दार्शनिकता, मानवीय संवेदनाएं और सामाजिक सरोकार मुखर होकर सामने आते हैं। उनके नाटकों में गांधीवादी विचारधारा[3]- सत्य, अहिंसा, आत्मबल, स्वदेशी, ग्रामस्वराज और नैतिकता की स्पष्ट छवि देखने को मिलती है। नंदकिशोर आचार्य का रचना-संसार न केवल रंगमंच की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि विचारधारा की दृष्टि से भी समृद्ध है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय परंपरा और आधुनिकता के बीच एक संवाद स्थापित किया है, जहाँ गांधीवाद एक सृजनात्मक मार्गदर्शन के रूप में उभरता है।

आचार्य जी द्वारा रचित देहांतर नाटक सामाजिक परिवर्तन और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। देहांतर नाटक में गांधीवादी मूल्यों की गहरी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। सत्य और अहिंसा की गांधीजी की विचारधारा इस नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नाटक में प्रस्तुत घटनाएँ और संवाद समाज में व्याप्त असमानताओं और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हैं, लेकिन संघर्ष का मार्ग हिंसा नहीं, बल्कि सत्य और सहिष्णुता पर आधारित है। पात्रों के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया है कि वास्तविक परिवर्तन तब आता है जब लोग अपने भीतर सत्य को पहचानते हैं और अहिंसा को अपनाते हैं।[4]

नाटक में सामाजिक न्याय और समानता के मूल्य स्पष्ट रूप से उभरते हैं। गांधीजी ने समाज में कमजोर और वंचित वर्गों के उत्थान पर जोर दिया था। इस नाटक में भी ऐसे पात्र और स्थितियाँ प्रस्तुत की गई हैं, जहाँ समाज के विभिन्न वर्गों के संघर्ष और उनके अधिकारों की बात की गई है। पात्रों की आवाज

केवल व्यक्तिगत नहीं होती, बल्कि वे पूरे समाज की समस्याओं को उजागर करती हैं। यह गांधीवादी सिद्धांत का ही प्रभाव है कि नाटक किसी एक व्यक्ति की समस्या तक सीमित नहीं रहता, बल्कि समाज के व्यापक बदलाव की ओर संकेत करता है।

इसके अलावा, संवाद और सहिष्णुता गांधीवादी दृष्टिकोण का अहम हिस्सा हैं, और 'देहांतर' इन मूल्यों को प्रभावी ढंग से दर्शाता है। नाटक के पात्रों के बीच चर्चा और वाद-विवाद केवल तर्क के लिए नहीं होते, बल्कि समाधान खोजने की दिशा में होते हैं। यह विचारधारा गांधीजी के उस विष्वास को दर्शाती है कि सच्चा परिवर्तन तभी संभव है जब संवाद खुले, ईमानदार और अहिंसात्मक हों।

देहान्तर नाटक के सत्य से संबंधित कुछ पात्रों के संवाद इस प्रकार है-

बिन्दु-कटु सत्य कहने के लिए क्षमा करेंगे, देव

ययाति-नही, यह सत्य नही है। तुम विनोद कर रही हो। लेकिन तुम्हारे इस कथन से मुझे कितनी पीड़ा पहुंची है, जानती हो।

बिन्दु-नही, राजन्। आपको पीड़ा देना मेरा अभीष्ट नही है।

ययाति-फिर ऐसा क्यों कहती हो?

बिन्दु-क्योंकि यही सत्य है।

बिन्दु-सत्य सदैव षुभ होता है।....[5]

आध्यात्मिकता और आत्ममंथन भी नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गांधीजी की विचारधारा में आत्ममंथन का स्थान बहुत ऊँचा था, और 'देहांतर' में पात्र स्वयं को समझने और अपने भीतर बदलाव लाने की कोशिश करते हैं। यह दिखाता है कि सामाजिक परिवर्तन केवल बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक विकास और आत्मनिरीक्षण पर भी आधारित होता है।

इस प्रकार, देहांतर नाटक गांधीवादी मूल्यों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह केवल एक साहित्यिक कृति नहीं है, बल्कि एक विचारधारा का प्रतिबिंब है, जो समाज को अहिंसा, सत्य, न्याय और संवाद की दिशा में प्रेरित करता है।

'पागलघर' नाटक में समाज की रूढ़ियों और अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई गई है। राजधानी के जवाहर कला केंद्र द्वारा पाक्षिक नाटक योजना के तहत रंगायन में व्यंग्यात्मक नाटक पागलघर का मंचन किया गया। नंदकिशोर आचार्य द्वारा लिखित और रमेश शर्मा की परिकल्पना और निर्देशन पर आधारित इस नाटक में मनुष्य की कुंठित मानसिकता पर चोट की गई।

'पागलघर' नाटक के द्वारा मुख्य फोकस में बताया गया है कि सत्ता में बैठे लोग एवं नेता उससे भयभीत हो जाते और उसपर झूठे आरोप लगा कर पागलखाने भेज दिया जाता है। वहां लेखक को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिया जाता है और उसके समझौता ना करने पर उसे तरह-तरह से प्रताडित किया जाता है। हालाकिं लेखक उनके सामने नहीं झुकता और अंत में खुदखुशी कर लेता है। इन सभी घटनाओं को करीब से देख रहा युवा डॉक्टर विद्रोह कर देता है और नेता को झुकने पर मजबूर कर देता है। इस प्रकार यह नाटक दर्शकों को बिगड़ी व्यवस्थाओं और मनुष्य की कुंठित मानसिकता पर सोचने पर मजबूर करता है।

'पागलघर' नाटक समाज की रूढ़ियों और अन्याय के खिलाफ एक सशक्त आवाज है, जिसमें गांधीवादी मूल्यों की गहरी छाप देखने को मिलती है। यह नाटक उन सामाजिक तंत्रों को चुनौती देता है जो स्वतंत्र विचारों को अस्वीकार कर उन्हें हाशिए पर धकेलते हैं। गांधीजी का जीवन भी इसी प्रकार के संघर्षों से भरा था, जहां उन्होंने अहिंसा और सत्य को हथियार बनाकर अन्याय से लड़ने का मार्ग चुना।

इस नाटक में अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान है। गांधीजी का मानना था कि अन्याय का प्रतिकार केवल हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसात्मक प्रतिरोध से किया जाना चाहिए। पागलघर में दिखाया गया है कि किस प्रकार समाज उन लोगों को अस्वीकार करता है जो उसकी स्थायी और कठोर रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास करते हैं। लेकिन नाटक की आत्मा यह संदेश देती है कि संघर्ष और विरोध केवल हिंसा से नहीं, बल्कि विचारों और संवाद के माध्यम से भी किया जा सकता है।

सत्य और सामाजिक न्याय भी इस नाटक के महत्वपूर्ण घटक हैं। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि सत्य ही सबसे बड़ा अस्त्र है, और अन्याय के विरुद्ध लड़ाई में यह सबसे प्रभावी सिद्ध हो सकता है। 'पागलघर' में ऐसे पात्र हैं जो स्थापित सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रतिकार करते हैं, सत्य की खोज में आगे बढ़ते हैं और उन मूल्यों को उजागर करते हैं जो समाज में बदलाव लाने के लिए आवश्यक हैं। यह नाटक संकेत देता है कि परिवर्तन तब आता है जब लोग रूढ़ियों को तोड़ने का साहस करते हैं और अन्याय को चुनौती देने के लिए सत्य को अपनाते हैं।

इसके अलावा, संवाद और सहिष्णुता गांधीजी की विचारधारा के मूल तत्व थे। उन्होंने हमेशा जोर दिया कि समाज में बदलाव तब संभव है जब विरोध और संघर्ष संवाद के माध्यम से हो। 'पागलघर' नाटक में संवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पात्रों के बीच चर्चाएँ केवल विचारों का टकराव नहीं हैं, बल्कि समाज की गहरी समस्याओं को समझने और उनका समाधान खोजने की दिशा में हैं। यह गांधीजी के उस दृष्टिकोण को दर्शाता है कि बिना संवाद और सहिष्णुता के कोई भी सामाजिक बदलाव स्थायी नहीं हो सकता।

इस प्रकार, 'पागलघर' नाटक न केवल समाज की रूढ़ियों को चुनौती देता है, बल्कि गांधीवादी मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है। यह हमें अहिंसा, सत्य, सामाजिक न्याय और संवाद की शक्ति का महत्व समझाता है और इस दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करता है।

गुलाम बादशाह नाटक सत्ता और समाज के बीच के संबंधों को उजागर करता है।[6] 'गुलाम बादशाह' नाटक सत्ता और समाज के बीच के जटिल संबंधों को उजागर करता है, जिसमें गांधीवादी मूल्यों की गहरी झलक मिलती है। यह नाटक हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या सत्ता वास्तव में समाज की भलाई के लिए कार्य करती है, या फिर वह अपने स्वार्थ और प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए जनता को एक माध्यम के रूप में देखती है।

गांधीजी के विचारों में सत्ता का अर्थ केवल प्रशासनिक अधिकार नहीं था, बल्कि जनसेवा का एक माध्यम था। वे मानते थे कि सच्ची सत्ता वह होती है जो जनता की भलाई के लिए कार्य करे और सत्ता का उद्देश्य सेवा भाव होना चाहिए, न कि वर्चस्व। 'गुलाम बादशाह' में सत्ता और समाज के बीच जो द्वंद्व दिखाया गया है, वह इसी विचारधारा की पुष्टि करता है। नाटक में यह प्रदर्शित किया गया है कि जब सत्ता जनहित से दूर हो जाती है, तो वह अपने ही लोगों को गुलाम बना देती है।

इस नाटक में सत्य और अहिंसा के गांधीवादी सिद्धांतों को देखा जा सकता है। जब समाज शोषण और अन्याय का शिकार होता है, तो उसका प्रतिकार केवल हिंसा से नहीं, बल्कि सत्य और अहिंसा के मार्ग से किया जा सकता है। गांधीजी का मानना था कि सच्चा नेतृत्व वही है जो अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे और अन्याय के विरुद्ध अहिंसा के माध्यम से परिवर्तन लाने की क्षमता रखता हो। 'गुलाम बादशाह' में सत्ता की स्वेच्छाचारिता और जनता के संघर्ष को दर्शाया गया है, जहाँ समाज के कुछ वर्ग सत्ता के दबाव में झुक जाते हैं, जबकि कुछ लोग सत्य और न्याय की राह पर चलकर प्रतिरोध करने का साहस दिखाते हैं।

इसके अतिरिक्त, सहिष्णुता और संवाद इस नाटक के केंद्र में हैं। गांधीजी ने हमेशा संवाद को ही समस्या का समाधान माना था। उन्होंने विभिन्न समाजों और सत्ता प्रतिष्ठानों के साथ अहिंसात्मक संवाद स्थापित करके बदलाव लाने का प्रयास किया। 'गुलाम बादशाह' में पात्रों के बीच होने वाले संवाद सत्ता और समाज के बीच की वास्तविकता को उजागर करते हैं। ये संवाद केवल मतभेद नहीं दर्शाते, बल्कि एक बड़ी सामाजिक समस्या की ओर संकेत करते हैं जहाँ जनता की आवाज को दबाया जाता है और सत्ता अपने नियंत्रण को बनाए रखने के लिए हर संभव प्रयास करती है।[7]

'गुलाम बादशाह' केवल एक साहित्यिक कृति नहीं है, बल्कि यह सत्ता की वास्तविकता और समाज की भूमिका पर गहन विमर्श प्रस्तुत करता है। गांधीवादी दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह नाटक हमें यह सिखाता है कि सच्ची सत्ता केवल शासन करने के लिए नहीं होती, बल्कि वह समाज के उत्थान और जनता की सेवा के लिए होती है। जब सत्ता इस उद्देश्य से दूर हो जाती है, तो समाज की आत्मा दब जाती है। लेकिन गांधीजी के विचारों के अनुसार, यदि जनता अहिंसा, सत्य और संवाद के मार्ग पर चले, तो वह सत्ता को चुनौती देकर एक नया सामाजिक परिवर्तन ला सकती है। नंदकिशोर आचार्य के नाटक 'बापू' में गांधी के अंतिम दिनों के मानसिक द्वंद्व और आत्मसंघर्ष को अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रित किया गया है। नाटक का केंद्रीय फोकस गांधी के स्वयं से संवाद, उनके आदर्शों और उनके सहयोगियों के साथ उभरे मतभेदों पर है। यह प्रस्तुति किसी भी विचारधारात्मक आग्रह से परे, गांधी के व्यक्तित्व के भीतर चल रहे टकरावों-जैसे अहिंसा के सिद्धांत और तत्कालीन राजनीतिक यथार्थ के बीच- को उजागर करती है। नाटक इस विडंबना की ओर संकेत करता है कि स्वतंत्रता के जिस स्वप्न को गांधी ने गढ़ा, उसकी परिणति उन्हें मानसिक रूप से उद्वेलित कर गई, क्योंकि यह उसी कांग्रेस नेतृत्व द्वारा दिशा पा रही थी, जिससे वे सहमत नहीं थे। गांधी का कथन-"कोई गंभीर पाप रह गया होगा मेरी आत्मा में-उसी से बह रहा होगा ये खून"- इस आत्मग्लानि और पीड़ा का साक्ष्य बनता है।[8]

नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं, विशेष रूप से कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर गांधी और कांग्रेस नेतृत्व के बीच मतभेद का उल्लेख एक सशक्त विमर्श प्रस्तुत करता है। गांधी जी द्वारा मुंबई में 1946 की कांग्रेस वर्किंग[9] कमेटी की बैठक में दिए गए भाषण का हवाला इस द्वंद्व को ऐतिहासिक रूप से पुष्ट करता है। यद्यपि गांधी की कुछ आशंकाएं स्पष्ट थीं, परंतु उन्होंने कांग्रेस के नेतृत्व में विश्वास बनाए रखा, जैसा कि डी.जी. तेंदुलकर की जीवनी से प्रमाणित होता है। नाटककार की रचनात्मक स्वतंत्रता के अंतर्गत गांधी की पीड़ा को 'घाव' के प्रतीकों में रूपांतरित करना एक कलात्मक युक्ति है, जिससे गांधी के आत्मसंघर्ष को गहराई मिलती है। यह कलात्मक चयन न तो ऐतिहासिक तथ्यों का विकृतिकरण करता है और न ही किसी विचारधारा को आरोपित करता है, बल्कि गांधी के आत्मिक अनुभवों को एक मानवीय धरातल प्रदान करता है।[10]

'बापू' नाटक विचारधारा की जड़ता को तोड़ते हुए व्यक्तित्व के द्वंद्वात्मक विकास की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है। इसमें गांधी का संवाद अपने 'अहम्' से है, न कि ऐतिहासिक पात्रों से, यही कारण है कि नेहरू, पटेल, आजाद आदि पात्र गांधी की अपेक्षाओं के बिंदु बन जाते हैं। यह शैली फ्रांसीसी मार्क्सवादी दार्शनिक ऐलेन बाद्यू के नाटक "L"Incident d"Antioche"k~ की याद दिलाती है, जहाँ क्रांति के बाद के पुनर्निर्माण के प्रश्न पर नेता 'कमिउ' सत्ता छोड़ देता है क्योंकि उसमें उसे 'धीरे-धीरे पराजय' की प्रक्रिया दिखाई देती है। इसी प्रकार, गांधी जी भी स्वतंत्रता के बाद पुनर्निर्माण की राजनीति में एक आंतरिक दूरी महसूस करते हैं। आचार्य का 'बापू' इस दार्शनिक स्तर पर गांधी के आत्म-संदेह, आत्म-विसर्जन और प्रतिरोध की परिणति को समझने की कोशिश है, जो उसे एक शुद्ध कलाकृति और गंभीर विमर्श का विषय बनाता है, न कि किसी विचारधारात्मक एजेंडे का प्रतिनिधि।

संदर्भ-

1. भारत रत्न भार्गव, नाटक का शब्द, अर्थ, लय और भंगिमा, मधुमती (अंक 7-8), जुलाई-अगस्त, 2000, पृ. 172
2. मीणा, लहरी राम, नन्दकिशोर आचार्य के नाटकों की अन्तर्वस्तु और रंगानुभव, नटरंग (अंक 103-104), पृ. 110
3. महात्मा गाँधी, विष्व षान्ति का अहिंसक मार्ग, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1959
4. बेक, जिनिथ निर्मला, 'देहान्तर' नाटक का रंगमंचीय शिल्प, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रीसर्च थॉट, वॉल्यूम 12, अंक 2, फरवरी, 2024, पृ. 751
5. आचार्य, नंदकिशोर, देहान्तर, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1987, पृष्ठ 39
6. आचार्य, नंदकिशोर, रंगत्रयी, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ 11
7. आचार्य, नंदकिशोर, गाँधी हैं विकल्प, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2021
8. आचार्य, नंदकिशोर, बापू (नाटक), राजकमल प्रकाशन, 2020, पृ. 84
9. गाँधी, मोहनदास करमचंद, कलेक्टेड वर्क ऑफ महात्मा गाँधी, वॉल्यूम 90, प्रकाषन विभाग, भारत सरकार, 1946, पृ. 69
10. महात्मा गाँधी, गाँधी वाणी, गाँधी साहित्य प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, 1939

तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण

डॉ० ओम सिंह[1]

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, एपेक्स स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड आर्ट्स, एपेक्स यूनिवर्सिटी, जयपुर

प्रो० (डॉ०) रतन कुमार भारद्वाज[2]

आचार्य, संजय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जयपुर

सारांश (Abstract)

यह अध्ययन तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों पर केंद्रित है। अध्ययन में पाया गया है कि तकनीकी विकास ने भारतीय भाषाओं को नए अवसर प्रदान किए हैं, जैसे कि ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल सामग्री और सोशल मीडिया। हालांकि, इन अवसरों के साथ-साथ कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं, जैसे कि भाषाई विविधता, अंग्रेजी का प्रभाव और भाषाई संरक्षण। अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तकनीकी का उपयोग करना चाहिए, भारतीय भाषाओं की शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए और भाषाई संरक्षण के लिए काम करना चाहिए।

Keywords: तकनीकी युग, भारतीय भाषा, ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल सामग्री और सोशल मीडिया।

परिचय (Introduction)

तकनीकी युग में भारतीय भाषाएँ एक नए युग में प्रवेश कर रही हैं, जिसमें वे वैश्विक परिदृश्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। तकनीकी विकास ने भारतीय भाषाओं को नए अवसर प्रदान किए हैं, जैसे कि ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल सामग्री और सोशल मीडिया। इस अध्ययन में, हम तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों पर चर्चा करेंगे, और यह जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे भारतीय भाषाएँ इस नए युग में अपनी पहचान बना सकती हैं और वैश्विक स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकती हैं।

भारतीय भाषाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय भाषाएँ एक समृद्ध ऐतिहासिक विरासत का हिस्सा हैं। प्राचीन काल से ही भारत में कई भाषाएँ बोली जाती रही हैं, जिनमें संस्कृत, तमिल, हिंदी, बंगाली और मराठी प्रमुख हैं। इन भाषाओं ने भारतीय साहित्य और संस्कृति को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

I- प्राचीन काल: संस्कृत और तमिल जैसी प्राचीन भाषाएँ भारतीय सभ्यता की नींव हैं।

प्प्.मध्यकालीन काल: मध्य युग में, भाषाओं का विकास हुआ, जैसे कि हिंदी, बंगाली और मराठी।

प्प्प्.आधुनिक काल: आज, भारतीय भाषाएँ तकनीकी युग में नए अवसरों का सामना कर रही हैं।

उदाहरण

1. प्रिंटिंग प्रेस: 16वीं शताब्दी में प्रिंटिंग[11] प्रेस की शुरुआत ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को बढ़ावा दिया।
2. डिजिटल क्रांति: 20वीं शताब्दी के अंत में डिजिटल क्रांति ने भारतीय भाषाओं को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर पहुंचाया।
3. मोबाइल और इंटरनेट: आज, मोबाइल और इंटरनेट के माध्यम से भारतीय भाषाएँ वैश्विक स्तर पर पहुंच रही हैं।

तकनीकी युग में भारतीय भाषाएँ

तकनीकी युग में, भारतीय भाषाएँ नए अवसरों और चुनौतियों का सामना कर रही हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया और मोबाइल तकनीक ने भारतीय भाषाओं को वैश्विक स्तर पर पहुंचाने में मदद की है। आज, भारतीय भाषाएँ ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल सामग्री और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर उपयोग की जा रही हैं। चुनौतियाँ और अवसर भारतीय भाषाओं को तकनीकी[4] युग में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिनमें शामिल हैं:

I. भाषायी विविधता: भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं, जो राष्ट्रीयता के भाव को बौना बना देती हैं।
II. प्रांतीयता: प्रांतीयता का भाव राष्ट्रीयता के भाव पर हावी हो गया है, जिससे भाषायी अस्मिता का संकट पैदा होता है।
III. अंग्रेजी का प्रभाव: अंग्रेजी भाषा ने भारतीय भाषाओं को अपने अस्तित्व के लिए खतरा नहीं माना, लेकिन हिंदी को अपने अस्तित्व के लिए संकट के रूप में चिन्हित किया गया है।

अवसर

1. हिंदी की भूमिका: हिंदी भारतीय जीवन दर्शन को राष्ट्रीय संदर्भों में अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली निर्झरणी है, जो अनेकानेक भाषाओं, बोलियों और सभ्यताओं के इस पुंज को प्रेम, कर्म, करुणा और प्रकाश से भरने वाले अंत: निहित केंद्र के रूप में कार्य करती है।
2. तकनीकी विकास: भाषायी तकनीकी विकास ने वैश्विक स्तर पर हिंदी को नया आयाम दिया है, जिससे यह भाषा संभावनाओं का नया इतिहास रचने लगी है।
3. ऑनलाइन शिक्षा: ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म पर भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जा रही है।
4. डिजिटल सामग्री: डिजिटल सामग्री के माध्यम से भारतीय भाषाएँ वैश्विक स्तर पर पहुंच रही हैं।
5. सोशल मीडिया: सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर भारतीय भाषाओं का उपयोग बढ़ रहा है।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

डॉ. अंशु पुरी1 (2023) - सोशल मीडिया के उदय ने हिंदी को वैश्विक महत्व प्राप्त करते देखा है और दुनिया भर में 558 मिलियन से अधिक मूल हिंदी भाषी, और 600 से अधिक विश्वविद्यालय हिंदी पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं, यह भाषा निरंतर ऊपर की ओर बढ़ रही है। सोशल मीडिया संचार और एकीकरण को बढ़ावा देकर इस परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे गूगल, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे प्रमुख प्लेटफॉर्म हिंदी को शामिल करने में अग्रणी हो गए हैं। परिणामस्वरूप, हिंदी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दर्शकों का ध्यान आकर्षित कर रही है, यह सब सोशल मीडिया के उपयोग में वृद्धि के कारण है।

एम. टी. वी. नागराजू[2] और खुशबू वर्मा (2023) हिंदी भारत की बहुसंख्यक आबादी द्वारा बोली जाने वाली भाषा है और स्वतंत्रता के बाद से हिंदी आमजन की भाषा रही है, जिसे भारतीय संविधान द्वारा राजभाषा के रूप में भी स्वीकृत किया गया है। हिंदी दुनिया की दस सबसे शक्तिशाली भाषाओं में से एक है और आज हिंदी एक विश्व भाषा के रूप में विकसित हो रही है क्योंकि इसमें आत्मसात करने की जबरदस्त शक्ति है। आज का युग तकनीकी युग है और शिक्षा में तकनीक के विकास के कारण हिंदी भाषा के अध्ययन और अध्यापन में कई बदलाव हुए हैं, जिसके कारण न केवल भारत में बल्कि विश्व स्तर पर भी हिंदी का प्रभुत्व बढ़ रहा है।

डॉ. सुमेध[3] के. हाडके (2021) - भारत एक बहुभाषी देश है और यह दुनिया के दो सबसे बड़े भाषा परिवारों, इंडो-आर्यन और द्रविड़ियन का घर है। ऑस्ट्रो-एशियाटिक और तिब्बती-बर्मी भाषा परिवारों की भाषाएँ भी भारत में बोली जाती हैं। हिंदी एक नई इंडो-आर्यन भाषा है जो भारत के उत्तर में लगभग 550 मिलियन लोगों द्वारा बोली जाती है और 2011 की जनगणना के अनुसार, 43.63 प्रतिशत भारतीय हिंदी बोलते हैं और भारत सरकार की आधिकारिक भाषा है। हालाँकि, देश भाषाई रूप से विविध है जिसमें 12 लिपियाँ और 22 अलग-अलग भाषाएँ आधिकारिक मानी जाती हैं और भाषाओं की ये विविधता भारत की संस्कृति और विविध इतिहास को दर्शाती है।

अध्ययन का क्षेत्र (Scope of study)

1. अध्ययन में भारतीय भाषाओं की तकनीकी तैयारी का विश्लेषण किया जाएगा, जैसे कि फॉन्ट, कीबोर्ड और सॉफ्टवेयर।
2. अध्ययन में भाषायी विविधता और तकनीकी विकास के बीच संबंधों का विश्लेषण किया जाएगा।
3. अध्ययन में भारतीय भाषाओं के ऑनलाइन उपयोग का विश्लेषण किया जाएगा, जैसे कि सोशल मीडिया, वेबसाइट और ऑनलाइन शिक्षा।
4. अध्ययन में तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं के संरक्षण और प्रचार के लिए रणनीतियों का विकास किया जाएगा।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Study)

1. तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति का विश्लेषण करना।
2. भारतीय भाषाओं के सामने आने वाली चुनौतियों की पहचान करना।
3. भारतीय भाषाओं के विकास के लिए सुझाव देना।

तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति

तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति काफी मजबूत हो रही है, खासकर हिंदी भाषा की। हिंदी विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है और भारत में यह एक राजभाषा है। देश की आधी से अधिक जनसंख्या हिंदी जानती है और इसका उपयोग प्रशासन, राजनीति, अर्थव्यवस्था, सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर में किया जाता है।

हिंदी भाषा की प्रासंगिकता के क्षेत्रः

- प्रौद्योगिकी: हिंदी भाषा की प्रासंगिकता प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी बढ़ रही है। गूगल की रिपोर्ट के अनुसार, हर पांच साल में हिंदी9 की सामग्री में 94% बढ़ोतरी हो रही है।
- सोशल मीडिया: लोग हिंदी में लेख लिखते हैं और ऑनलाइन एक दूसरे से साझा करते हैं। फेसबुक और व्हाट्सएप जैसी कंपनियां हिंदी भाषा के साथ तालमेल बैठाने में लगी रहती हैं।
- फिल्म उद्योग: हिंदी भाषा का उपयोग बॉलीवुड फिल्मों में किया जाता है और यह एक बड़े वर्ग को आकर्षित करती है। इससे बनाने वाले लोगों की कमाई पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- कंपनियों की रुचि: बहुराष्ट्रीय[10] कंपनियां हिंदी जानने वाले कर्मचारियों को वरीयता दे रही हैं और अपनी वेबसाइट हिंदी भाषा में भी उपलब्ध करा रही हैं।

हिंदी भाषा के विकास के लिए प्रयासः

1. गूगल असिस्टेंट: गूगल ने हिंदी भाषा में गूगल[7] असिस्टेंट का प्रावधान किया है, जिससे लोगों को आसानी से जानकारी मिल सकती है।
2. हिंदी दिवस: भारत सरकार 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाती है और हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए प्रयत्न कर रही है।

भारतीय भाषाओं के सामने चुनौतियाँ

भारतीय भाषाओं के सामने कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं:

भाषायी विविधता और प्रांतीयता

- भाषायी विविधता: भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं, जो राष्ट्रीयता[8] के भाव को बौना बना देती हैं।
- प्रांतीयता: प्रांतीयता का भाव राष्ट्रीयता के भाव पर हावी हो गया है, जिससे भाषायी अस्मिता का संकट पैदा होता है।

अंग्रेजी का प्रभाव

- अंग्रेजी का प्रभुत्व: अंग्रेजी भाषा का प्रभाव भारतीय भाषाओं पर पड़ता है, खासकर शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में।
- भाषायी असमानता: अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व के कारण, भारतीय भाषाओं को कम महत्व दिया जाता है, जिससे भाषायी असमानता बढ़ती है।

तकनीकी चुनौतियाँ

- फॉन्ट और कीबोर्ड: भारतीय भाषाओं के लिए फॉन्ट और कीबोर्ड की कमी है, जिससे इन भाषाओं का उपयोग करना मुश्किल होता है।
- ऑनलाइन सामग्री: ऑनलाइन[6] सामग्री में भारतीय भाषाओं की कमी है, जिससे इन भाषाओं के उपयोगकर्ताओं को जानकारी प्राप्त करने में मुश्किल होती है।

शिक्षा और रोजगार

- शिक्षा में भाषायी चुनौतियाँ: शिक्षा में भारतीय भाषाओं का उपयोग कम होता है, जिससे छात्रों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने में मुश्किल होती है।
- रोजगार में भाषायी चुनौतियाँ: रोजगार में अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व है, जिससे भारतीय भाषाओं के उपयोगकर्ताओं को रोजगार प्राप्त करने में मुश्किल होती है।

भारतीय भाषाओं के सामने कई चुनौतियाँ हैं, जिनका समाधान करने के लिए हमें इन भाषाओं के महत्व को समझना होगा और इनके उपयोग को बढ़ावा देना होगा। साथ ही, हमें तकनीकी विकास के माध्यम से इन भाषाओं के उपयोग को आसान बनाना होगा और शिक्षा और रोजगार में इन भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देना होगा।

भारतीय भाषाओं के विकास के लिए सुझाव

भारतीय भाषाओं के विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

शिक्षा में भारतीय भाषाओं का उपयोग बढ़ाना

1. मातृभाषा में शिक्षा: छात्रों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने से उन्हें बेहतर ढंग से समझने और सीखने में मदद मिल सकती है।
2. भारतीय भाषाओं के पाठ्यक्रम: स्कूलों और कॉलेजों में भारतीय भाषाओं के पाठ्यक्रम शुरू करने से छात्रों को इन भाषाओं में महारत हासिल करने में मदद मिल सकती है।

तकनीकी विकास

1. फॉन्ट और कीबोर्ड: भारतीय[5] भाषाओं के लिए फॉन्ट और कीबोर्ड विकसित करने से इन भाषाओं का उपयोग करना आसान हो सकता है।
2. ऑनलाइन सामग्री: ऑनलाइन सामग्री में भारतीय भाषाओं का उपयोग बढ़ाने से इन भाषाओं के उपयोगकर्ताओं को जानकारी प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

रोजगार में भारतीय भाषाओं का उपयोग बढ़ाना

1. रोजगार में भाषायी विविधता: रोजगार में भारतीय भाषाओं का उपयोग बढ़ाने से इन भाषाओं के उपयोगकर्ताओं को रोजगार प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।
2. भाषायी प्रशिक्षण: कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षण प्रदान करने से उन्हें इन भाषाओं में संवाद करने में मदद मिल सकती है।

सांस्कृतिक प्रोत्साहन

1. सांस्कृतिक कार्यक्रम: भारतीय भाषाओं और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करने से इन भाषाओं के प्रति लोगों की रुचि बढ़ सकती है।
2. साहित्यिक पुरस्कार: भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य को पुरस्कृत करने से लेखकों को प्रोत्साहन मिल सकता है।

सरकारी समर्थन

1. भाषायी नीति: सरकार को भारतीय भाषाओं के विकास के लिए एक प्रभावी भाषायी नीति बनानी चाहिए।
2. वित्तीय समर्थन: सरकार को भारतीय भाषाओं के विकास के लिए वित्तीय समर्थन प्रदान करना चाहिए।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

- वर्णनात्मक अनुसंधान: इस अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान डिजाइन का उपयोग किया जाएगा, जिसमें तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति का वर्णन किया जाएगा।
- प्राथमिक डेटा: प्राथमिक डेटा संग्रह के लिए सर्वेक्षण, साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चा का उपयोग किया जाएगा।
- द्वितीयक डेटा: द्वितीयक डेटा संग्रह के लिए मौजूदा शोध पत्रों, पुस्तकों और ऑनलाइन संसाधनों का उपयोग किया जाएगा।

अनुसंधान अंतर (Research Gap)

1. भारतीय भाषाओं की तकनीकी तैयारी और उनके ऑनलाइन उपयोग के बारे में अधिक शोध की आवश्यकता है।
2. भाषायी विविधता और तकनीकी विकास के बीच संबंधों का अध्ययन करने की आवश्यकता है।
3. भारतीय भाषाओं के ऑनलाइन उपयोग के प्रभावों का अध्ययन करने की आवश्यकता है, जैसे कि भाषा की स्थिति और सांस्कृतिक पहचान पर प्रभाव।
4. तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं के संरक्षण और प्रचार के लिए रणनीतियों का विकास करने की आवश्यकता है।

अनुसंधान का महत्व

1. भारतीय भाषाओं के विकास में योगदान: इस अनुसंधान से भारतीय भाषाओं के विकास में योगदान हो सकता है।
2. भाषायी विविधता के संरक्षण में मदद: इस अनुसंधान से भाषायी विविधता के संरक्षण में मदद मिल सकती है।
3. तकनीकी विकास के प्रभावों को समझने में मदद: इस अनुसंधान से तकनीकी विकास के प्रभावों को समझने में मदद मिल सकती है।

तकनीकी युग में भारतीय भाषाओं की स्थिति और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण में कई अंतर हैं जिन्हें भरने की आवश्यकता है। इस अनुसंधान से भारतीय भाषाओं के विकास, भाषायी विविधता के संरक्षण और तकनीकी विकास के प्रभावों को समझने में मदद मिल सकती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

तकनीकी युग में भारतीय भाषाएँ नए अवसरों और चुनौतियों का सामना कर रही हैं। अध्ययन में पाया गया है कि तकनीकी विकास ने भारतीय भाषाओं को नए अवसर प्रदान किए हैं, लेकिन साथ ही साथ कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। अध्ययन के निष्कर्ष नीति निर्माताओं और शिक्षकों के लिए उपयोगी हो सकते हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो, भारतीय भाषाएँ एक समृद्ध विरासत का हिस्सा हैं और तकनीकी विकास के साथ नए अवसरों का उपयोग कर रही हैं। इन चुनौतियों का सामना करने और अवसरों का लाभ उठाने के लिए, हमें भारतीय भाषाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और तकनीकी विकास के प्रभाव को समझना होगा। साथ ही, हमें हिंदी जैसी भाषाओं की भूमिका को भी समझना होगा, जो भारतीय जीवन दर्शन को राष्ट्रीय संदर्भों में अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली निर्झरणी है। भारतीय भाषाओं के विकास के लिए हमें इन भाषाओं के महत्व को समझना होगा और इनके उपयोग को बढ़ावा देना होगा। साथ ही, हमें तकनीकी विकास, शिक्षा, रोजगार, सांस्कृतिक प्रोत्साहन और सरकारी समर्थन के माध्यम से इन भाषाओं के विकास में मदद करनी होगी।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अंशु पुरी (2023). वैश्वीकरण विरोधाभास: दुनिया भर में हिंदी भाषा को आकार देने में सोशल मीडिया की भूमिका, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यूज (IJRAR), नवंबर 2023, खंड 10, अंक 4, (ई-आईएसएसएन 2348-1269, पी- आईएसएसएन 2349-5138)
2. एम. टी. वी. नागराजू और खुशबू वर्मा (2023), Hindi Language in the Global Era: A Step Forward, ATISHAY KALIT, A U.GC. Care Listed Referred International Bilingual Research Journal of Humanities, Social Science & Fine-Arts , Vol- I0, Pt. A, Sr. 17, 2023 ISSN : 2277-4 I 9X
3. डॉ. सुमेध के. हाडके (2021) Hindi language: Its contemporary importance and aspects, International Journal of Academic Research and Development Volume 6, Issue 4, 2021, Page No. 69-74, ISSN: 2455&4197, www.academicjournal.in
4. Chelliah, S. L. (2021), Why Language Documentation Matters. Springer Nature, Switzerland.
5. Gilles, A. (2019), et al, Proceedings of the 1st International Conference on Language Technologies for All. European Language Resources Association (ELRA), Paris.
6. Amodei, D. (2016), 'Deep Speech 2: End-to-end Speech Recognition in English and Mandarin', Proceedings of Machine Learning Research 48, pp. 173-182.
7. Throne, S.L. (2016). The Intercultural turn and Language Learning in the Crucible of New Media. In Helm. F. and Guth. S. (ed), Tele collaboration 2.0 for Language and Intercultural Learning. pp 139-164, Bern: Peter Lang.
8. Navikaran (2013). Impact of the Development of Hindi Language on Asia and the World. May 2013.
9. Patrika News Network. (2013). Rajisthan Patrika. Alwar edition,15 September,2023.
10. Irfan, H.et.al. (2012). Influence of Digital Social Media in Writing, p 15.2012.
11. Jones, G.(2003).To What Extent Does Social Media Improves Language Development.edubirdie.com

लोक संस्कृति के हस्तांतरण में मातृ भाषा कुमाऊँनी की आवश्यकता: एक अध्ययन

डॉ० सुमिता गड़कोटी

सहायक प्रोफेसर हिंदी, एस.एस.जे.डी.डब्लू.एस.एस. एस. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (अल्मोड़ा) उत्तराखंड

सारांश (Abstract)

भारतीय संस्कृति का वैभव इसकी विविधता और लोक परंपराओं में समाहित है। यह विविधता भारत के विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट जीवनशैलियों, भाषाओं और सांस्कृतिक मूल्यों में परिलक्षित होती है। कुमाऊँनी भाषा भी इसी समग्र भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है, जो उत्तराखंड के कुमाऊं क्षेत्र की परंपराओं, लोक साहित्य और सामाजिक मूल्यों को सहेजती और संप्रेषित करती है।

कुमाऊँनी भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति, रीति-रिवाज, आचार-विचार, लोक साहित्य और जीवनदृष्टि की वाहक है। यह भाषा, अपने माधुर्य, शब्द संपदा और अभिव्यक्ति के सौंदर्य से लोक संस्कृति को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती है। इसके माध्यम से लोकगीत, जागर, कहावतें, लोककथाएँ और वीरगाथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हैं। इस भाषा में निहित प्रेम, सौहार्द, सहयोग और सामूहिक चेतना के तत्व समाज को जोड़ने का कार्य करते हैं।

किन्तु वर्तमान समय में वैश्वीकरण, शहरीकरण और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रभाव के कारण क्षेत्रीय भाषाएँ संकट में हैं। तेजी से बदलते सामाजिक और आर्थिक परिवेश में कुमाऊँनी भाषा के प्रयोग में गिरावट देखी जा रही है, जिससे लोक संस्कृति के मूल तत्व विलुप्त होने के कगार पर हैं। आधुनिक पीढ़ी में मातृभाषा के प्रति सम्मान और जागरूकता बढ़ाने की अत्यंत आवश्यकता है, जिससे न केवल भाषा बल्कि संस्कृति का भी संरक्षण और संवर्धन हो सके।

यह शोध पत्र कुमाऊँनी भाषा के महत्व और उसके लोक संस्कृति के हस्तांतरण में योगदान का विश्लेषण करता है। यह विभिन्न प्रमाणिक स्रोतों के माध्यम से यह स्थापित करता है कि यदि मातृभाषा को शिक्षा, प्रशासन और सामाजिक जीवन में उचित स्थान दिया जाए, तो भाषा और संस्कृति दोनों का संरक्षण संभव है। शोध में यह निष्कर्ष निकला है कि कुमाऊँनी भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं, बल्कि यह लोक संस्कृति के सतत प्रवाह की संवाहक भी है, और इसे संरक्षित करना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है।

शब्द कुंजी: कुमाऊँनी भाषा, मातृभाषा, संस्कृति, लोकसंस्कृति, वैश्वीकरण, शहरीकरण, ऐतिहासिक धरोहर, शब्द संपदा, कहावतें, परिवेश।

भूमिका (Introduction)

जब भी हम किसी समाज की समृद्धि, उसके मूल्यों और उसकी पहचान की बात करते हैं, तो सबसे पहले उसकी भाषा और संस्कृति का चित्रण सामने आता है। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं होती, बल्कि वह किसी समाज के इतिहास, परंपराओं और लोक जीवन की संवाहक भी होती है। उत्तराखंड का कुमाऊँ क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषा और समृद्ध लोकसंस्कृति के लिए जाना जाता है। यह शिव की क्रीड़ा भूमि है। यहाँ के वातावरण में बद्रीनाथ और केदारनाथ की महानता मानसरोवर और कैलाश पर्वत की महत्ता तथा गंगा और यमुना की पवित्रता समाई हुई है। इस भूभाग को बुरुंशी, प्योली, दुदभाती के फूल दुल्हन की तरह सजाते हैं[1]। ऐसे क्षेत्र कुमाऊँ-मंडल की भाषा उसकी पारंपरिक बोली-कहावतें, लोकगीत, कहानियाँ, नृत्य और रीति-रिवाज न केवल एक समाज की पहचान हैं, बल्कि भावनाओं, संवेदनाओं और अनुभूतियों का भी प्रतीक हैं।

कुमाऊँनी भाषा अपने भीतर हजारों वर्षों की परंपराओं, ऐतिहासिक धरोहरों और सांस्कृतिक मूल्यों को समेटे हुए है। शंकर और पार्वती से संबंधित अनेक कहानियाँ कुमाऊँ में आज भी सम्मान के साथ सुनी, कही और गाई जाती हैं[2]। यह भाषा अपने माधुर्य, सहजता और गेयता के कारण अद्वितीय है। इस भाषा में वह लालित्य है, जो इसे न केवल अभिव्यक्ति का साधन बनाता है, बल्कि यह लोकसंस्कृति के संरक्षण और संचार का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी बन जाती है। जिसका प्रमुख आधार कुमाऊंनी भाषा- भाषी लोगों की अधिकता है अचार्य राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सन् 1901 की जनगणना के आधार पर लगभग 94,67% लोग कुमाऊंनी भाषा बोलते थे[3]। यही कारण है कि, आजभीउसके मीठे-मीठे गीत कुमाऊँ की उपत्यकाओं में गूंजते हैं, कुमाऊँनी भाषा के गीतों का जादू और उसकी कसक भरी कुहक लोक गीतों में भी गूंजती है।बहू बेटियां मैत (पीहर) जाने की खुशी के अनुमान में ही गीत गाने लगती हैं-

"मैते की नराई लै रै सुण मेरी बैंण,
घुगुति घुरण लैंगे ऐगे उतरैंण" [4]॥

कुमाऊँनी भाषा का स्वरूप और विकास

कुमाऊँनी भाषा एक अत्यंत समृद्ध भाषाई परंपरा से विकसित हुई है। यह भाषा प्राचीन भारतीय भाषाओं के प्रभाव में रही है, और इसका विकास एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में हुआ है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी मध्य पहाड़ी (गढ़वाली व कुमाऊँनी) की उत्पत्ति खस अथवा दरदी भाषा से मानते हैं[5]। इसके स्वरूप और विकास को निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

1. प्रारंभिक काल (1100 ई. -1400 ई.)

इस काल में संस्कृत और प्राकृत भाषा का गहरा प्रभाव देखा जाता है।कुमाऊँनी भाषा के प्राचीनतम प्रमाण ताम्रपत्रों और शिलालेखों में मिलते हैं।

2. पूर्व मध्यकाल (1400 ई. - 1700 ई.)

इस काल में कुमाऊँनी भाषा में तद्भव शब्दों की वृद्धि हुई।

कत्यूर वंश (850-105[6]) और चंद वंश (1400-1790[7]) के शासनकाल में कुमाऊँनी भाषा को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई ।

3. उत्तर मध्यकाल (1700 ई.- 1900 ई.)

इस काल में कुमाऊँनी भाषा में अरबी, फारसी और उर्दू के शब्द सम्मिलित हुए। ऐतिहासिक घटनाओं और प्रशासनिक परिवर्तनों के कारण भाषा में बदलाव आया।

4. आधुनिक काल (1900 ई. - वर्तमान)

आधुनिक युग में कुमाऊँनी भाषा का प्रयोग साहित्य, लोकसंस्कृति और जनसंचार में भी तीव्र हुआ।हिंदी और अंग्रेजी के प्रभाव से अनेक नए शब्द और संज्ञाएँ कुमाऊँनी में आई।

कुमाऊँनी भाषा की भाषाई संरचना और शब्द संपदा

कुमाऊँनी भाषा में स्वर और व्यंजन संरचना अत्यंत समृद्ध है। इसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी और अन्य भाषाओं के प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। कुमाऊँनी भाषा की शब्द संपदा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। यह भाषा न केवल प्राकृतिक परिवेश, कृषि, पशुपालन, पर्वतीय जीवनशैली और सामाजिक संरचना से जुड़ी है, बल्कि इसमें गहरी सांस्कृतिक परंपराओं और ऐतिहासिक चेतना की झलक भी मिलती है[8]। कुमाऊं मंडल में मुख्यत: पांच बोलियाँ बोली जाती कुमाऊंनी, राजी, भोटिया (शौका), बुक्सा और था। भाषा की विविधता के कारण इसे पूर्वीकुमाउँनी तथा पश्चिमी कुमाउँनी के दो रूपों में विभाजित किया गया है। पूर्वी कुमाउँनी की चार उपबोलियां-कुमय्यों, सोर्याली, सीराली, अस्कोटी तथा पश्चिमी कुमाउँनी की छह उपबोलियां-खसपर्जिया, चौगर्खिया, गंगोली, दनपुरिया, पछाई औररौ-चौंबैंसी मानी गयी हैं[9]। इसके अतिरिक्त डॉ नारायण दत्त पालीवाल ने अपनी पुस्तक 'कुमाऊंनी संस्कृति भाषा एवं शब्द संपदा' में कुमाऊँ क्षेत्र की भाषाओं को खसपर्जिया, कुमैंया, सोर्याली, अस्कोटी, पछांई खसपर्जिया, जोहारी, दानपुरिया, गंगोला, सिराली, फलदाकोटिया, नैनीताल की कुमाऊंनी, चौगर्खिया, मझकुमैंया आदि बोलियों के रूप में वर्गीकृत किया है। जिसमें अन्य बोलियोंके अतर्गत बोक्सा, भोटिया, भाबरी आदि का नाम भी लिया है[10]। तथा बोलियों का वर्गीकरण करते हुए उन्होंने उत्तरी कुमाउँनी में- जोहारी (भोटिया), पश्चिमी कुमाउँनी में - खसपर्जिया, पछाई, फल्दाकोटी, चौगर्खिया, गंगोई (गंगोली), दनपुरिया, पूर्वी कुमाउँनी में - कुमय्यां, सोर्याली, सिराली, तथा अस्कोटी एवं दक्षिणी कुमाउँनी में- रौ-चौभैंसी बोली को रखा है[11]; लेकिन डॉ भवानीदत्त उप्रेती फल्दाकोटिया को पश्चिमी कुमाऊँनीके अंतर्गत स्वीकार करते हैं तथा उप्रेती जी के साथ डॉ रूबाली दोनों ही जोहारी को कुमाऊँनी बोली के अंतर्गत नहीं मानते हैं[12]।

पारंपरिक शब्दावली

कुमाऊँनी भाषा में ऐसे कई पारंपरिक शब्द हैं जो दैनिक जीवन, कृषि, उत्सवों और रीति-रिवाजों से जुड़े हुए हैं। कुमाऊँनी में प्रयुक्त कुछ महत्वपूर्ण एवं पारंपरिक शब्द जैसे - "अकर-महंग- (महंगा), "अंवाजी- कुश्ती (कुश्ती)," "घेल्तु-आलकसि (आलसी)", "ढेपू/ढपू- रूपैं/पैंस (रुपया-पैसा)", "भिदाड़ा- फाटी-पुराण (फटेपुराने)", "रिसाण- गुस्सकरण (गुस्साकरना)", आदि हैं[13]।

सांस्कृतिक शब्दावली और धार्मिक संदर्भ

कुमाऊँनी भाषा में धार्मिक और सांस्कृतिक शब्दों की गहरी जड़ें हैं। यह शब्द न केवल आध्यात्मिक आस्था को प्रकट करते हैं, बल्कि समाज की धार्मिक परंपराओं, अनुष्ठानों और सांस्कृतिक मूल्यों को भी संजोते हैं। इन शब्दों के माध्यम से कुमाऊँ की देवभूमि का आध्यात्मिक वैभव और सांस्कृतिक समृद्धि प्रकट होती है। कुमाऊँ की धार्मिक परंपराओं में प्रयुक्त शब्द अत्यंत प्रभावशाली और गहरे भाव लिए होते हैं। ये शब्द केवल पूजा-पद्धतियों तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना को भी अभिव्यक्त करते हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारक इन शब्दों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। ये शब्द न केवल धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त होते हैं, बल्कि समाज की आस्थाओं और परंपराओं को भी दर्शाते हैं। जागर[14]- देवी-देवताओं की स्तुति में गाया जाने वाला पारंपरिक गीत, कहंणघलौ, खवै, कयेश, हुड़कीजागर (हुड़का -एक परंपरागत वाद्य), जुड़ाण-सुजाण (वर-वधू की कुंडली को देखकर नक्षत्र, ग्रह, दशा आदि को मिलान करने की क्रिया), औंतरण-नाचंण (यदि किसी व्यक्ति पर देवी आदि दिव्य शक्तियां का अवतरण होता है तो उस समय -'वीक आंग देवी ऐंछ' कहते हैं, इसके उपरांत जब वह नाचने की मुद्राएं करता है तब उस समय कुमाऊंनी में देवताओं के नाचने का अवतरण 'औंतरण-नाचंण' कहते हैं।[15] "बगड़वाल" - शक्तिशाली योद्धा के लिए प्रयोग में लाया जाता है। "भगनौल"[16] - एक प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान कहा गया है। "ओलिया"

– गर्मियों में पूर्वजों को अर्पित किया जाने वाला विशेष भोग ओलिया नाम से संबोधित किया जाता है। देवी-देवताओं से जुड़े शब्द भी कुमाऊँ के लोक जीवन में विशेष स्थान रखते है। गोलू देवता – न्याय के देवता, जिन्हें समर्पित मंदिर अल्मोड़ा, चंपावत और पिथौरागढ़ में हैं। गंगनाथ – न्यायप्रिय योद्धा, जिनकी कथा जागरों में गाई जाती है। हरु हीत – वीरता और बलिदान के प्रतीक देवता। नंदा देवी – कुमाऊँ और गढ़वाल की आराध्य देवी। कुमाऊँ की धार्मिक संस्कृति में कई प्रकार के अनुष्ठान होते हैं, जिनके लिए विशिष्ट शब्द प्रयोग किए जाते हैं। हरेला – हरियाली और प्रकृति की उपासना का पर्व।द्वार पूजा – किसी शुभ अवसर पर घर के मुख्य द्वार की पूजा। छोलिया नृत्य – कुमाऊँ की बारात में आकर्षण की वृद्धि करने वाला पारंपरिक शैली पर आधारित, वीरता का प्रदर्शन करने वाला छोलिया नर्तकों के द्वारा किया गया नृत्य छोलिया नृत्य कहलाता है।[17] रामलीला – कुमाऊँ में विशेष रूप से मंचित की जाने वाली धार्मिक नाट्य परंपरा। झोड़ा – सामूहिक नृत्य गायन, जिसे मेलों और पर्वों में प्रस्तुत किया जाता है। चांचरी – एक और पारंपरिक नृत्य-गीत शैली।

भौगोलिक एवं प्राकृतिक सौंदर्य से जुड़े शब्द

कुमाऊँनी भाषा में प्रयुक्त भौगोलिक, प्राकृतिक और कृषि शब्द केवल संज्ञाएँ नहीं हैं, बल्कि यह पहाड़ों में रहने वाले लोगों की संस्कृति, परंपराओं और प्रकृति के प्रति प्रेम का प्रतिबिंब भी हैं। इन शब्दों के माध्यम से पहाड़ की मिट्टी, नदियों की धाराएँ, हरे-भरे चारागाह, और ऋतुओं के बदलते रंग जीवंत हो उठते हैं। अत:कुमाऊँनी भाषा की समृद्धि इसमें निहित भौगोलिक, प्राकृतिक एवं कृषि शब्दों से स्पष्ट होती है। यह भाषा प्रकृति से इतनी गहराई से जुड़ी हुई है कि इसके कई शब्द सीधे पर्यावरण, भौगोलिक संरचनाओं और कृषि जीवन से प्रेरित हैं। इन शब्दों का प्रयोग न केवल पहाड़ी जीवन शैली को दर्शाता है, बल्कि यह बताता है कि पहाड़ों में रहने वाले लोग अपने परिवेश को कितनी आत्मीयता से देखते हैं।

भाषा की इस समृद्धि को सँजोना और अगली पीढ़ी तक पहुँचाना हमारी सांस्कृतिक धरोहर को बचाने का एक महत्वपूर्ण प्रयास होगा। उदाहरणस्वरूप कुमाऊँ के पहाड़ी भूगोल से संबंधित कई शब्द अत्यंत काव्यात्मक हैं। इन शब्दों में केवल स्थल का भौगोलिक संदर्भ ही नहीं, बल्कि उसके प्रति प्रेम और अपनापन भी झलकता है। भौगोलिक सौंदर्य को देखने के लिए यदि कुमाऊँनी गीतों को देखा जाए तो स्पष्ट ही उस का सौंदर्य दिखाई देता हैजहाँ धूप को दीदी कहकर और बादल को जीजा कहकर संबोधित किया गया है– "घाम दीदी इथां आ, बाधो भिनापना जा"[18]। कुमाऊँनी में जब रात्रि का अंतिम प्रहर समाप्ति की ओर और सुबह का प्रथम प्रहार आने को होता है तब आकाश में एक तारा टिमटिमाता हुआ दिखाई देता है। इस भोर के तारे को कुमाऊँनी में "व्याणी तारो" कहा जाता है जो इतना सुन्दर लगता है कि, उसकी उपमा नवेली दुल्हन से दी जाती है। तो कुमाऊँनीमें इसे कहते हैं 'रत्तैब्याण' अर्थात (रात खुलने का समय) बना हुआ है। अत: गाड़ (नदी), धार (पहाड़ के शिखर का पूरा भाग), तहड़ (जोर से बरसना), उरगारौ (तूफान), भरसीत (अर्द्ध रात्रि का समय), बेतण (स्थानीय वृक्ष) आदि भौगोलिक शब्द सम्पदा स्थानीय भाषिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति है। कुमाऊँ की भाषा में प्राकृतिक तत्वों को दर्शाने वाले शब्द अत्यंत समृद्ध हैं। यहाँ की जलवायु, वनस्पति और पर्यावरण को शब्दों के माध्यम से जीवंत रूप में देखा जा सकता है। न्यौली – पहाड़ी कोयल, जिसका गीत कुमाऊँनी संगीत का हिस्सा है। बुरांश – पहाड़ों में खिलने वाला लाल फूल। छाना – पहाड़ी मकान की छत, जिसे पत्थरों से बनाया जाता है। द्यो – पहाड़ों में स्थित किसी देवता का स्थान। झांकर – पहाड़ी जंगल की रहस्यमयी गूँज।

कृषि शब्दों का सौंदर्य

कृषि कुमाऊँनी जनजीवन का आधार रही है। यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि से जुड़े कई अनूठे शब्द प्रचलित हैं। जिनमें यहाँ की भाषा के सौंदर्य के साथ साथ यहाँ की मिट्टी की सौम्यता एवं रमणीयता भी बसी हुई है जैसे : दानो – खेत का छोटा भाग अथवा टुकड़ा दानो कहलाता है। श्यर- नदियों के किनारे अथवा घाटियों के समतल तथा उर्वर खेत को तो इस नाम से पुकारा जाता है। कुमाऊंनी कहावत में कहते हैं, 'ख्वर बासमती या श्यर बासमती' अर्थात भाग्य में बासमती चावल खाना हो तो कोई श्यर का स्वामी हो या ना हो अंतर नहीं पड़ता। ढै-डूंगर- अर्थात शैल शिखर, ग्वडै-न्यवै-गोड़ाई-निराई, बंणाग- गर्मी के दिनों में जंगलों में लगने वाली आग आदि सभी शब्द कृषि आदि के समय प्रयुक्त किए जाने वाले भाषागत विचार विनिमय का हिस्सा हैं।

ऋतुओं से संबंधित शब्दावली

कुमाऊँ की भाषा में मौसम और ऋतुओं का भी अनूठा वर्णन मिलता है। चौमास – चातुर्मास की ठंड, रूड़ – गर्मी के लिए प्रचलित शब्द, द्योकछांण/छमछम/ दणाक /सणाट/सणाटो/तहड़पड़ण- वर्षा की जोरदार फुहार,उरगारो- आँधी।

ग्रामीण जीवन से जुड़े शब्द

कुमाऊँ का ग्रामीण जीवन अपनी सादगी और प्राकृतिक सौंदर्य के लिए जाना जाता है। यहाँ के लोग परस्पर अपनी वार्ता में सरल और हृदयगत भाषा के द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। भाषा का यह सौंदर्य शब्दों की सरलता और भावनात्मकता से जुड़ा हुआ है। वास्तव में देखा जाये तो यहाँ के ग्रामीण जीवन में प्रयुक्त शब्द अत्यंत गहरे अर्थ रखते हैं। घर के अंदर अनाज के भंडार भरने के लिए बनाया गया लकड़ी का भंडागार 'भकार' कहा जाता है। चूल्हे के दोनों भाग जिन पर बर्तन रखकर खाना पकाया जाता है उसे 'औन' कहते हैं; जिसे आज के समय में अंग्रेजी में 'अवन' बोलते हैं। घर के आंगन के लिए वहाँ की नारियां 'पटांगण' शब्द का प्रयोग करती हैं। कुमाऊं में प्राचीन काल में कहते थे '36 थ्योन और 32 परग्यार, जिनका आशय होता था प्राचीन काल में 36 प्रकार के भोजन बनाए जाते थे जिन्हें बनाने के लिए 32 प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता था। कुमाऊं में आज भी रोटी को 'वट, और चावल को भात कहा जाता है। कुमाऊं की स्त्रियाँ श्रृंगार प्रधान रही हैं। वहाँ समस्त श्रृंगारों के मध्य नथ को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस आभूषण को स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं; जिसे वहाँ की भाषा में 'नथुली' कहा जाता है।वर्तमान में बहुत सारे शब्द ऐसे हैं जो हिंदी के प्रभाव से हिंदी भाषा के अनुरूप प्रयुक्त किए जाते हैं; लेकिन फिर भी कुमाऊंनी भाषा का सौंदर्य आज भी बरकरार है, उदाहरणस्वरूप कुछ शब्द इस प्रकार है: काघत-(कागज), कमेटू (लिखने की मिट्टी), खरक (गौशाला), स्यूड़ (सुई), लुंणी (नमकीन), गुई (मीठा), घरकुड़ि (घर-द्वार), स्यू (शेर), बूबू (दादाजी), आदि।

आधुनिकता के प्रभाव से बदले शब्द

आधुनिक समय में हिंदी और अंग्रेजी भाषा के बढ़ते प्रभाव से कुमाऊँनी भाषा में भी कुछ बदलाव देखने को मिले हैं। पारंपरिक शब्दों के स्थान पर नए शब्दों का प्रयोग बढ़ा है। जैसे: "सोसैटी-(सोसाइटी)", "इस्कूल-(स्कूल)", "लम्फू-(लैम्प)" , "डराइवर-(ड्राइवर)", "साटफिकट-(सर्टिफिकेट)", "रैट-(राइट)"आदि शब्दों को तो मानो कुमाऊंनी ने आत्मसात कर लिया है। ऐसा नहीं है कि, कुमाऊंनी भाषा में उसके शब्दकोष के अतिरिक्त किसी भाषा के शब्दों का ग्रहण नहीं किया जाता; बल्कि अन्य भाषाओं जैसे- संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, उर्दू, बांग्ला, पंजाबी सभी ने उसके भाषाकोश को समृद्ध किया है। मानो इन समस्त भाषाओं की शब्दावली ने कुमाऊंनी के शब्द सौंदर्य को भी वृद्धि प्रदान की है।

भाषा संरक्षण की आवश्यकता

कुमाऊँनी भाषा की समृद्ध शब्द संपदा और उसके विराट स्वरूप को बचाने के लिए इसके साहित्य, लोकगीत, और पारंपरिक कहावतों को संरक्षित करने की आवश्यकता है। कुमाऊंनी साहित्य न केवल मनोरंजन, भावाभिव्यक्ति और हास-उल्लास का साहित्य है बल्कि वह धर्म, दर्शन की गूढ़ बातों को भी सहज, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण शैली में अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है; जो भाषा के संरक्षण का एक प्रभावपूर्ण अंदाज है। कवि कुमय्यांगीता में व्यक्त गूढ़ तत्वों को बड़े ही सरल अंदाज के साथ व्यक्त करते हैं ख्र

"फिर लै चंचल मन नि मानन,
अर्जुन पुछुछ किसन यार।
मन कि औडव चलिछ जबत,
पड़ि नि सकनि कसिक पार।।
भगवान बतानी असली दवाई,
गीता में कतुक श्लोक कै बटि" [19]।

गीता के गूढ़तत्वों को इस लोक गीत के माध्यम से संजोने का रमणीय प्रयास भाषा के संरक्षण को बढ़ावा देता है।

कुमाऊँनी भाषा की समृद्ध शब्दावली केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं है, बल्कि यह समाज की आस्था, परंपरा और संस्कृति का जीवंत दस्तावेज भी है।

इन शब्दों के माध्यम से कुमाऊँनी में मानव मन की समृद्ध भावनायें, सांस्कृतिक विरासत को पुष्टकरती हुई प्रतीत होती हैं। ससुराल में कितना ही सुख, प्रेम और सम्मान क्यों न मिले; लेकिन एक बेटी के हृदय की भावनाएँ जो उसके मायके से जुड़ी होती है वो कहीं ना कहीं उसके हृदय को कचोटती हैं।तरह-तरह के उपहारों से लदे-फदे भाई के आने की मीठी और सुखदायक प्रतीक्षा की स्मृति में खुद की सुध बुध खो बैठी बहन की इस अद्‌भुत भावना को भाषा के माध्यम से सहेजना और अगली पीढ़ी तक पहुँचाना मानो कवि का कर्तव्य सा हो गया है-

"खुटी लै रै कुरमुरी इजू समजीछा, ठुक ठुक बाँटुई मेरी कलेजी काटीछा।
आज मेरो भाई आलो जाव कसि जून, कसीक मुखड़ि देखूं लागि रैंछ धुन ।
दीदि देखो पार एक बाटि म बटौव, भित घड़ि बिसै द्यूल घासूक गढौव ।
हलौ मेरो भुलि जब पै दगड़े' जौंला, मैते कि छकोड़ि करणी बाँटि चुंटि खौंला" [20]।

लोक संस्कृति के हस्तांतरण में कुमाऊँनी भाषा

कुमाऊँ की लोक संस्कृति एक जीवंत परंपरा है, जो अपनी विशिष्ट भाषा, रीति-रिवाज, लोकगीत, कथाएँ और नृत्य के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होती रही है। इस हस्तांतरण में कुमाऊँनी भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। यह भाषा केवल संचार का साधन नहीं, बल्कि लोक संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन का आधार भी है।

कुमाऊँनी भाषा में समृद्ध लोक साहित्य उपलब्ध है, जो संस्कृति को आगे बढ़ाने में सहायक है। कुमाऊँनी साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि यह समाज की परंपराओं, विश्वासों और सांस्कृतिक धरोहर को पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। लोक संस्कृति के हस्तांतरण में कुमाऊँनी साहित्य की भूमिका बहुआयामी रही है, जो विभिन्न विधाओं में व्यक्त होती है। "राजुला-मालूशाही" और "गंगनाथ की कथा" जैसी गाथाएँ प्रेम, वीरता , न्याय और अलौकिक आनंद के प्रतीक हैं -

"बचि रया यमरा मालना का भायौ,
बचि रया यमाले यो दिने यो मासा।
भेटनै घाटनै अमरै की काया,
अमर रै जाया....." [21]।

लोककथाएँ: "हरु हीत" , "धोति निचोड़ि मोत्यूं मिल"[22] , "भै भूको मैं सितो"[23] , "मरी पितर आब किलै निं लौटन"[24], र "भगनाथ कथा" जैसी लोककथाएँ धार्मिक आस्थाओं और नैतिक मूल्यों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाती हैं।

जागर और भगनौल: देवताओं और वीरों की स्तुति में गाए जाने वाले ये गीत धार्मिक व सामाजिक मूल्यों को संरक्षित करते हैं। प्रस्तुत 'गंगनाथ देवता का जागर' कुमाऊँनी धार्मिक भावनाओं का उदाहरण है-

"राजपाट छाड़ि वेर, घटकुला मांझ, ओ गाङी रंगिला गाङी, परान गयान।
तेरा परान ग्यान, रंगिला गाङी, तेरा परान ग्यान।।
आव वे मिसिरि का कुंजा।
जोशिन हूँ गंगनाथ भुती वेर, ओ साधु रंगिला गाङी, खाइ लिनि पुजा।
वो साधु, खाइ लिनि वो पुजा, साधू खाइ लिनि पुजा।।जोगि वैठो ध्यान"[25]।

संस्कार गीत: जन्म, विवाह और मृत्यु जैसे अवसरों पर गाए जाने वाले गीत सांस्कृतिक स्थिरता बनाए रखते हैं। इनमें कुछ गीत ऐसे होते हैं जिन्हें शकुनाखर अर्थात शकुन गीत कहते हैं जो प्रत्येक शुभ कार्य के आरंभ में गाए जाते हैं-

"ध्यायनुभयै, ध्यायनु भयै थाति को थत्याल,
ध्यायनु भयै, ध्यायनु भयै, भुई को भुंयाल,
ध्यायनु भयै, ध्यायनु भयै, खोली को गनेस,
ध्यायनु भयै, ध्यायनु भयै, चौखन्या धरती" [26]।।

बेढू पाको बारो मासा: जैसे गीत कृषि जीवन और प्रकृति के सौंदर्य को चित्रित करते हैं।

नंदा देवी महोत्सव: इस उत्सव से जुड़े जागर और लोकगीत कुमाऊँनी भाषा में गाए जाते हैं।

कहावतों और मुहावरों के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत का हस्तांतरण

कुमाऊँनी भाषा की कहावतें और मुहावरे सामाजिक मूल्यों, अनुभवों और परंपराओं को संजोते हैं। कुमाऊँनी भाषा में कहावतों का विशेष स्थान है। ये कहावतें न केवल समाज के अनुभवों और सीखों को संजोती हैं, बल्कि भाषा को प्रभावशाली और अभिव्यक्तिपूर्ण भी बनाती हैं। कुछ महत्वपूर्ण कहावतें निम्नलिखित हैं:

"नाक राखन" - प्रतिष्ठा बनाए रखना, "मन फाटन" - चिंता करना, "भदौ मैना को राङो" - अत्यधिक मोटा व्यक्ति।'चारो खै गया तितिर च्याखुड़, जिवाली पड़ा मुसभ्याकुड़' अर्थात् अपराध कोई करे, दण्ड कोई पाए।' कौ लाटा काथ बाँच सुण काला तू' में गूंगे से कथा बाँचने को और बहरे से सुनने को कहा जाता है।

कुमाऊँनी भाषा के मुहावरे भाषा की अभिव्यक्ति को अधिक सजीव और रोचक बनाते हैं। कुछ प्रचलित मुहावरे निम्नलिखित हैं: "खवर कन्यणू" - बेकार की बातें करना, "गाड़ बगूण" - नदी में बहा देना, "कांसक टुपर हुण" - बहुत ही पतला व्यक्ति, "लकीरक फकीर हुण" ख्र पुराने विचारों पर अडिग रहना। "सौण मरि सासु भदौ ए आंसु"[27] (सावन में सांस मरी और आंसू भाद्रपद में आये)। "भौजिक हातम वात रवाट खऔ या भात"[28] (भाभी के हाथ में ही बात है वह चाहे रोटी खिलाए, चाहे तो बात खिलाए)

कुमाऊँनी साहित्य में सामाजिक चेतना और संघर्ष

- गिरदा (गिरीश तिवारी) के गीत:सामाजिक चेतना और शोषण के विरुद्ध जनचेतना जागरूक करने में सहायक रहे हैं।
- चारुचंद्र पांडे के साहित्य में सामाजिक संघर्ष:उनके लेखन में आधुनिकता के प्रभाव से हो रहे सांस्कृतिक बदलावों की अभिव्यक्ति है।
- महिला चेतना:कुमाऊँनी साहित्य में महिला सशक्तिकरण को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, विशेषकर पहाड़ी स्त्रियों की जीवनशैली को दर्शाने वाले गीतों में।

लोक साहित्य और आधुनिक संचार माध्यम

आज के डिजिटल युग में कुमाऊँनी साहित्य के हस्तांतरण में नए माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है:

- रेडियो और टेलीविजन:कुमाऊँनी भाषा के कार्यक्रम लोक संस्कृति को व्यापक रूप में प्रचारित कर रहे हैं। ये गतिविधियां सांस्कृतिक हस्तांतरण में अहम भूमिका का निर्वहन करती हैं।
- यूट्यूब और डिजिटल मीडिया:लोकगायक और सांस्कृतिक कार्यकर्ता कुमाऊँनी साहित्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। वर्तमान में फेसबुक, यूट्यूब और इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफार्मों पर कुमाऊँनी भाषा में सामग्री प्रसारित की जा रही है।

शैक्षणिक संस्थान: वर्तमान में विश्वविद्यालय और विद्यालयों में कुमाऊँनी साहित्य मानव संस्कृति को लोक संस्कृति से जोड़ने का रमणीय आह्वान है। कुमाऊँनी भाषा और लोक साहित्य विद्यालयों और विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम का हिस्सा बन भाषा के संवर्धन की ओर भी एक अनुपम व लोकसांस्कृतिक प्रवाह है। जो निरंतर आने वाली सभ्यता को भी युगों युगों की इस सांस्कृतिक माधुरी से संपृक्त कर वर्तमान में भाषाई परिमार्जन, परिष्करण, एवं प्रेमासक्ति के रूप में कुमाऊँनी को प्रासंगिक बनाये हुए है।

कुमाऊँनी साहित्य लोक संस्कृति के हस्तांतरण में एक सेतु का कार्य करता है। यह समाज की पहचान, रीति-रिवाज, लोक साहित्य, गीत, नृत्य और धार्मिक परंपराओं को सुरक्षित रखते हुए उन्हें आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने में सहायक है। यदि इसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली, साहित्य, मीडिया, डिजिटल प्लेटफार्म और सामाजिक माध्यमों में अधिक स्थान दिया जाए, तो कुमाऊँनी लोक साहित्य के माध्यम से संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

कुमाऊँनी भाषा की शब्द संपदा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। यह न केवल लोक संस्कृति को संजोती है, बल्कि एक समाज की पहचान को भी परिभाषित करती है। यह आवश्यक है कि हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सहेजने के लिए इस भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग करें और इसे आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने का प्रयास करें।

कुमाऊँनी भाषा और साहित्य लोक संस्कृति के संरक्षण और हस्तांतरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह न केवल अभिव्यक्ति का साधन है, बल्कि रीति-रिवाज, परंपराएँ, धार्मिक विश्वास और सामाजिक मूल्यों को सहेजने और अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का भी माध्यम है।

इस शोध पत्र में प्रस्तुत किए गए विभिन्न पहलुओं से यह स्पष्ट होता है कि कुमाऊँनी भाषा का धीरे-धीरे घटता प्रयोग लोक संस्कृति के भविष्य के लिए एक गंभीर चुनौती है। भाषा का संरक्षण केवल भाषाई अस्तित्व को बचाने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से जुड़ी पूरी सांस्कृतिक विरासत को भी जीवित रखना आवश्यक है।

शिक्षा प्रणाली में कुमाऊँनी भाषा को शामिल करना, इसे डिजिटल माध्यमों पर अधिक प्रचारित करना और साहित्यिक योगदान को प्रोत्साहित करना इस दिशा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यदि समाज और सरकारें मिलकर प्रयास करें, तो कुमाऊँनी भाषा और इसकी समृद्ध संस्कृति को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

अत: यह आवश्यक है कि लोकसंस्कृति को बचाने के लिए मातृभाषा के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए और नई पीढ़ी में इसके प्रति जागरूकता लाई जाए।

संदर्भ (References)

1. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा.सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 17.
2. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 29.
3. सांकृत्यायन, राहुल : कुमाऊँ, पृष्ठ- 150.
4. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 103.
5. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (1986): कुमाऊँनी (हिन्दी की उपभाषा) के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, मौलिक साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 27.
6. पाण्डेय, डॉ त्रिलोचन. (1979): कुमाऊँनी लोक साहित्य की पृष्ठभूमि, साहित्य भवन प्रकाशन लि०, इलाहाबाद, पृष्ठ- 88.
7. पाण्डेय, डॉ त्रिलोचन. (1979): कुमाऊँनी लोक साहित्य की पृष्ठभूमि, साहित्य भवन प्रकाशन लि०, इलाहाबाद, पृष्ठ- 92.
8. पोखरिया, डॉ देवसिंह. (2004): कुमाऊँनी भाषा का उद्भव एवं विकास तथा उसका भाषिक अध्ययन, डॉ भगत सिंह, अंकित प्रकाशन(कुमाऊँनी भाषा साहित्य AECCk-101, पृष्ठ 04 पर उद्धृत)
9. पोखरिया, डॉ देवसिंह. (2004): कुमाऊँनी भाषा का उद्भव एवं विकास तथा उसका भाषिक अध्ययन, डॉ भगत सिंह, अंकित प्रकाशन (कुमाऊँनी भाषा साहित्य AECCk-101, पृष्ठ 08 पर उद्धृत)
10. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 55-56.
11. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 146.
12. पोखरिया, डॉ देवसिंह. (2004): कुमाऊँनी भाषा साहित्यएवंसंस्कृति,पृष्ठ- 40-41.
13. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 158-164.
14. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 322
15. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 323-325
16. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 111.
17. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 65.
18. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (2000): कुमाऊँनी संस्कृति, भाषा एवं शब्द संपदा. सचिन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 257.
19. पालीवाल, डॉ नारायणदत्त. (1986): कुमाऊँनी (हिन्दी की उपभाषा) के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन, मौलिक साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 354. (कुमाऊँनीगीतसंग्रहपृष्ठ- 19-27
20. बिष्ट, गंगासिंह: रंगीलापहाड़पृष्ठ- 39-40
21. पोखरिया, डॉ देवसिंह. (2004): कुमाऊँनी गाथाराजूला मालूशाही, भोपाल प्रकाशन, मध्यप्रदेश, भूमिका.
22. जोशी, डॉ कृष्णानन्द. (1971): कुमाऊँ का लोक साहित्य (परिचयात्मक संग्रह), प्रकाशबुक डीपो, बरेली, पृष्ठ- 367.
23. जोशी, डॉ कृष्णानन्द. (1971): कुमाऊँ का लोक साहित्य (परिचयात्मक संग्रह), प्रकाशबुक डीपो, बरेली, पृष्ठ-360.
24. जोशी, डॉ कृष्णानन्द. (1971): कुमाऊँ का लोक साहित्य (परिचयात्मक संग्रह), प्रकाशबुक डीपो, बरेली, पृष्ठ-348.
25. जोशी, डॉ कृष्णानन्द. (1971): कुमाऊँ का लोक साहित्य (परिचयात्मक संग्रह), प्रकाशबुक डीपो, बरेली, पृष्ठ-74..
26. जोशी, डॉ कृष्णानन्द. (1971): कुमाऊँ का लोक साहित्य (परिचयात्मक संग्रह), प्रकाशबुक डीपो, बरेली, पृष्ठ-17.
27. पाण्डेय, डॉ त्रिलोचन.(1962): कुमाऊँ का लोक साहित्य , श्री अल्मोड़ा बुक डीपो। पृष्ठ-229
28. पाण्डेय, डॉ त्रिलोचन.(1962): कुमाऊँ का लोक साहित्य , श्री अल्मोड़ा बुक डीपो। पृष्ठ--228.

अंग महाजनपद की विदूषी महिला

डॉ० अनामिका कुमारी

ए.आई.एच.सी. एवं पुरातत्व, टी.एम.बी.यू. भागलपुर

सारांश

अंग महाजनपद की गिनती छठी शताब्दी के 16 महाजनपदों में से छह बड़े महाजनपदों में गिनती होती थी। अंग महाजनपद का विस्तार क्यूल नदी के पूर्वी किनारे से राजमहल की पहाड़ियों तक तथा उत्तरी सीमा कोसी नदी से लेकर दक्षिणी सीमा छोटानागपुर के पठार तक लगती है जो वर्त्तमान में मुख्य रूप से भागलपुर और मुंगेर जिले तक शामिल था, इसके प्रमुख शहर चम्पा, भददीया आदि थे।

प्राचीन अंग महाजनपद की ख्याति सांस्कृति उपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध थे। इस महाजनपद में कई शक्तिशाली शासक हुए तथा जैन और बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण प्रमुख केन्द्र रहा। यह अंग भूमि शिक्षा का केन्द्र भी रहा। अंग महाजनपद में समाज के महत्त्वपूर्ण अंग नारी की स्थिति सम्मानजनक थी। अंग महाजनपद में अनेक विदूषी महिलाऐं हुई। जो अपने बौद्धिक अचार-विचार से बौद्ध धर्म, जैन धर्म या सनातन धर्म के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शब्द कुंजी - अंग महाजनपद, बौद्ध ग्रंथ, जैन ग्रंथ, विशाखा, श्रेष्ठी, कोसल महाजनपद, चन्दनवाला, धर्मा, रोहिणी।

मूल शोध विषय - प्राचीन भारत में छठी शताब्दी ई० पू० में आर्यावर्त्त में कुल 16 महाजनपद थे, जिसकी जानकारी बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय और बौद्ध ग्रंथ ''महावस्तु'' में उल्लेख मिलता है। हालांकि बौद्ध ग्रंथ दीर्घनिकाय में 7 बड़े महाजनपदों (1) कलिंग (2) अस्मक (3) अवंति (4) विदेह (5) अंग (6) काशी (7) सौवीर की गिनती होती थी। यानि अंग की गिनती 7 महाजनपदों में होती थी। अंग की गिनती बुद्धकालीन छः नगरों में होता था। अंग गंगा दोआब क्षेत्रों में स्थित होने के कारण समृद्ध प्रदेश था, साथ हीं इसकी राजधानी चंपा व्यापारिक मार्गो पर स्थित था, जिसका व्यापारिक सम्बन्ध चीन, बर्मा, तिब्बत और श्रीलंका से था। सिल्क मार्ग के लिए भी चम्पा महत्त्वपूर्ण केन्द्र था।

कुल मिलाकर अंग महाजनपद का राजनीतिक-आर्थिक महत्त्व था। राजनीतिक-आर्थिक दृष्टिकोण से अंग प्रदेश समृद्ध और शक्तिशाली महाजनपद था। इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी कम नहीं, जहाँ जैन धर्म के 12वें तीर्थकार वासुपूज्य का पंच कल्याण का क्षेत्र अंग महाजनपद था। यहीं नहीं बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध और जैन धर्म के 24वें तीर्थकर महावीर कई बार अंग महाजनपद का भ्रमण के लिए आए थे।

अंग महाजनपद अपने कर्मठ और विदूषी महिला के लिए प्रसिद्ध था। महात्मा बुद्धकालीन अंग की विदूषी महिला विशाखा थी, जो महात्मा बुद्ध से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म को स्वीकार्य कर ली थी। महात्मा बुद्ध एक बार चारिका करते हुए वैशाली के बाद भद्दीया (वर्त्तमान में मदरिया) पहुँचे थे।[1] भद्दीया चांदन नदी के किनारे भागलपुर से दक्षिण अवस्थित नगर था। भद्दीया में मेण्डक नामक एक श्रेष्ठी व व्यापारी रहते थे, जो बिम्बिसार के समकालीन अत्यन्त वैभव सम्पन्न पाँच श्रेष्ठीयों में से एक था।[2] मेण्डक ने एक बार सुना कि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ उसके नगर द्वार पर पधारे है, तब उसने अपने पोती विशाखा को 500 कन्याओं के साथ सत्कार के लिए भेजा। उस समय विशाखा की उम्र मात्र सात साल थी।[3] नगर में भगवान बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर मेण्डक का सारा परिवार बुद्ध का उपासक हो गया।[4] विशाखा आगे चलकर बहुत बड़ी बुद्ध की उपासिका भिक्षुणी और दायिका बन गई। बौद्ध संघ को दान देने में यह अद्वितीय नारी थी।

कोसल के राजा प्रसेनजित के बुलावे पर मेण्डक के पुत्र धनंजय, उसकी पुत्र वधु सुमना और पोती विशाखा अवध गई और वही बस गयी। इस प्रकार विशाखा को अपने माता-पिता के साथ अवध की राजधानी साकेत में वासना पड़ा था, तब उसकी उम्र - 12 वर्ष थी।

विशाखा का विवाह श्रावस्ती के श्रेष्ठी पुत्र पुण्यवर्द्धन से हुआ था, इसके विवाह में कोसल नरेश प्रसनजित स्वयं सम्मलित हुई थी। विशाखा बाद में ''मिगार माता'' नाम से प्रसिद्ध हुआ। मिगार उसके ससुर का नाम था और वह जैन धर्म को मानता था और बौद्ध धर्म से विश्क्ति था बौद्ध धर्म सख्त चीढ़ था। ससुद भी चाहता था कि विशाखा जैन धर्म को स्वीकार्य कर ले और जैन धर्म का प्रचार - प्रसार करे, जबकि विशाखा ने अपनी श्रद्धा-सुमन बौद्ध धर्म के प्रति था। विशाखा अपने ज्ञान और उपदेशों से अपने ससुर के विचारों को प्रभावित करने में सफल रही। दूसरी ओर विशाखा अपनी सेवा, सुशीलता, धर्मनिष्ठा और श्रद्धाभक्ति से ससुर को प्रसन्न करने में सफल रही। ससुर मिगार निग्गण्ठों की भक्ति को छोड़कर बौद्ध भिक्षुओं के प्रति निष्ठावान हो गया और बौद्ध धर्म का उपासक बन गया। मिगार को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने के कारण मिगार का गुरू या ''मिगार माता'' कहकर बौद्ध धर्म में प्रसिद्ध हुई।

विशाखा बौद्ध धर्म के प्रति समर्पित थी। विशाखा ने श्रावास्ती में बौद्ध संघ की भिक्षुणियों के लिए 'पूर्वाराम' नामक बौद्ध महाविहार बनवाई थी, जो काफी विशाल था।[4] वह बिहार दो मंजिला बना था और दोनों तल्लों में पाँच-पाँच सौ कमरे थे। लगभग उनतीस करोड़ स्वर्ण मुद्राऐं व्यय करके 9 मासों में इस भवन का निर्माण करवाया था। इसके निर्माण के समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में हीं उपस्थित थे और इस विहार को बनवाने का भार बौद्ध धर्म के महान उपासक ''महामौद्गल्यायन'' ने लिया था।

इस प्रकार बौद्ध धर्म में विशाखा का महत्त्वपूर्ण स्थान है और महात्मा बुद्ध की प्रिय शिष्या थी। विशाखा का बौद्ध धर्म में क्या स्थान था और बौद्ध धर्म का उस पर कितना स्नेह था, इस बात का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि स्वयं बुद्ध ने कुलवन्ती नारियों के आठ गुणों का उपदेश, उसे और शेष भिक्षुणियों को उसके घर में दिया था।[5] बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में इसकी महत्ती भूमिका थी। विशाखा ने अंग से लेकर श्रावस्ती तक अपना प्रभाव स्थापित किया था।

मौर्यवंश के तीसरी पीढ़ी के शासक या भारतवर्ष के महान शासक अशोक के पिता का नाम विन्दूसार और माता का नाम सुभद्रांगी अथवा धर्मा थी। सुभद्रांगी चम्पानगर (भागलपुर) के एक ब्राह्मण कुल में जन्मी रूपवती कन्या थी। इतिहासकार तारानाथ ने भी सुभद्रांगी की प्रशंसा की है।

अंग महाजनपद जैन धर्म के लिए पवित्र स्थल था। भागलपुर से चार मील दूर चम्पानगर में 12वें तीर्थकार भगवान वासुपूज्य ने गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण प्राप्त किए थे। चम्पा के राजा का नाम जितशत्रु था, जिसकी रानी रक्तवती थी। भगवान महावीर के आर्यिका संघ के प्रधान 'चन्दना' या 'चन्दनबाला' यहीं की राजपुत्री थी।[7] जैन इतिहास में चन्दनबाला का महत्वपूर्ण और अद्वितीय स्थान है। जैन मान्यतानुसार भगवान महावीर का संघ चार भागों में विभक्त थी – मुनि, आर्यिका, श्रावक, और श्राविका। चन्दनबाला छत्तीस हजार सादिवयों के संघ की अधिष्ठात्री देवी थी। चन्दनबाला का जन्म राजघराने में होने के बावजूद भी कर्म संयोश से इसे अपने जीवन में घोर संघर्ष करना पड़ा।[8] महावीर इसे पिछले जन्म् के कर्म मानते थे। ऐसा हुआ एक बार महावीर एक बार भ्रमण करते हुए कौशाम्बी पहुँचे। उनकी साधना के कठोर मार्ग की ओर थे। तभी उन्होंने प्रण किया था कि वे अपना उपवास ऐसी राजकुमारी के हाथों से तोड़ेंगे, जो किसी की दासी हो, गंजी हो, जिसके हाथ – पैर हिल रहे हों, जो तीन दिनों से भूखी हो, जिसके मुख पर मुस्कान हो तथा आँखों में आसूँ हो।[9] एक दिन महावीर ध्यान से निवृत होने के उपरांत आहार के लिए भिक्षा हेतु कौशाम्बी नगर पहुँचे थे, महावीर ने देखा कि एक राजकुमारी भूखे – प्यासे, जंजीरों से जकडेघ, बाल कटे हुए थे, उसे खाने के लिए कोदो भात और पानी दिया हुआ था। महावीर ने जब भीक्षा माँगा तो चन्द्रनवाला लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते मुख्य द्वार तक आयी और अपना भोजन महावीर के सामने रख दी। महावीर ने प्रेम से ग्रहण किया। भीक्षा दान पुण्य से चंदन बाला के पैर की जंजीरे स्वत: टूट गई। इसकी कीर्तिगाथा तेजी से सर्वत्र फैल गई। इसके बाद सेठ के घर से मुक्त होकर उसने महावीर से दीक्षा ग्रहण की और आर्यिका संघ की प्रधान बनी। चन्दना की बहन 'ज्येष्ठा' ने भी भगवान महावीर से दीक्षा ग्रहण की थी।[10]

इसी चम्पानगरी में राजा मधवा और रानी श्रीमती से 'रोहिणी' नाम की एक सुन्दर कन्या हुई। रोहिणी के पिछले जन्मों के विषय में कहा गया है कि यह अत्यन्त दुर्गन्ध शालिनी, अशुभ कन्या थी तथा पाप के प्रभाव से इसे अनेक कष्ठ उठाने पढ़े थे। इसने रोहिणी व्रत किया था। उसी के प्रभाव से इसे सुन्दर रूप और सम्भ्रान्त घर प्राप्त हुआ। बाद में यह रोहिणी राजा आशोक की रानी बनी। बाद में इस संसारिक जीवन से विरक्त होकर जैन धर्म को स्वीकार्य कर ली और कमलक्षी आर्यिका से व्रत लिया।[11]

उपसंहार – कुल मिलाकर अंग महाजनपद में महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी, महिलाओं को राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। महिलाऐं धर्म सभाओं व धार्मिक क्रियाकलापों में स्वतंत्ररूप से भाग लेती थी। धर्म के साथ शिक्षा के क्षेत्र में अंग महाजनपद की महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनेक विदूषी महिलाओं ने वैदिक ऋचाओं के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। विशाखा, सुभद्रांची, चन्दबाला, ज्येष्ठा, रोहिणी ने अंग महाजनपद का नाम रोशन किया।

संदर्भ सूचि ग्रंथ

1. पं राहुल सांस्कृत्यायन, बुद्धचर्चा, पृ० 151
2. श्री हवलदार त्रिपाडी 'सहदय', बौद्ध धर्म और बिहार, पृ० 89, में बम्बिसार
3. महावग्गो 6,5,4,2
4. वही
5. अंगुत्तर निकाय – 4/267
6. श्री हवलदार त्रिपारी सहदय, बौद्ध धर्म और बिहार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० – 166
7. उत्तर पुराण 74/338-347
8. विजय कुमार पृ० – 5
9. हर्षा जैन, 24 तीर्थकर, पृ० – 90

नर्मदा की संवेदनशील यात्राः अमृतलाल वेगड़

अल्का स्वामी

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय साहित्यिक परंपरा में यात्रा एक विशिष्ट स्थान रखती है। यह केवल स्थल की भौगोलिक दूरी तय करने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक और आत्मिक संवाद की प्रक्रिया रही है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक हिंदी साहित्य तक यात्रा एक अनुभव-संपन्न विधा के रूप में उभरती रही है। विशेष रूप से आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में यात्रा-वृत्तांत ने एक सशक्त विधा के रूप में अपना स्थान बनाया है, जहाँ लेखक केवल देखा-सुना नहीं कहता, बल्कि देखा हुआ, अनुभव किया हुआ और संवेदित किया हुआ समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।

अमृतलाल वेगड़ हिंदी यात्रा साहित्य के उन साहित्यकारों में अग्रणी हैं जिन्होंने इस विधा को न केवल सांस्कृतिक गहराई प्रदान की, बल्कि उसे पर्यावरणीय, सामाजिक और दार्शनिक विमर्श से भी जोड़कर देखा। उनका लेखन एक यात्रा का लेखन नहीं, बल्कि एक 'संवाद का लेखन' है - संवाद प्रकृति से, समाज से, संस्कृति से और स्वयं से। वे एक चित्रकार थे, परंतु उन्होंने शब्दों के माध्यम से जिस प्रकार यात्रा को रूपायित किया, वह एक अद्‌भुत साहित्यिक उपलब्धि है।

अमृतलाल वेगड़ का जन्म 3 अक्टूबर 1928 को मध्य प्रदेश के धार जिले में हुआ। वे मूलतः एक चित्रकार थे, किंतु उनके भीतर एक गंभीर साहित्यिक चेतना भी समाहित थी। वेगड़ की आरंभिक शिक्षा इंदौर और जबलपुर में हुई। उन्होंने ललित कला में डिप्लोमा प्राप्त किया और अपनी चित्रकला के माध्यम से प्रसिद्धि अर्जित की। उनके चित्रों में प्रकृति, जनजीवन और भारतीय संस्कृति की छवियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती थीं।

उनके जीवन का अधिकांश समय जबलपुर में बीता और वहीं से उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा प्रारंभ की। चित्रकार के रूप में उनकी दृष्टि अत्यंत संवेदनशील और सूक्ष्म अवलोकन की क्षमता से युक्त थी। यही दृष्टि आगे चलकर उनकी यात्रा साहित्य में शब्दों के माध्यम से उभरती है। वे किसी दृश्य को केवल बाहर से नहीं देखते, बल्कि उसमें छिपे इतिहास, भूगोल और संस्कृति की परतों को खोजने का प्रयास करते हैं।

उनकी साहित्यिक यात्रा का मुख्य प्रेरणा स्रोत नर्मदा नदी रही। नर्मदा के प्रति उनका आकर्षण केवल धार्मिक नहीं था, वह एक गहरा सांस्कृतिक और भावनात्मक संबंध था। उन्होंने नर्मदा की परिक्रमा पैदल की - पहले नदी के दक्षिणी तट से और फिर उत्तरी तट से। इस यात्रा में उन्होंने न केवल नदी के भौगोलिक स्वरूप को देखा, बल्कि वहाँ के गाँवों, जनजीवन, लोक कथाओं, भाषाओं, रीति-रिवाजों और प्राकृतिक परिवेश को भी आत्मसात किया।

वेगड़ का जीवन संयम, साधना और संवेदना का जीवन था। वे अत्यंत सरल जीवन जीते थे, बाह्य आडंबर से दूर। उनका रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान और व्यवहार- सबमें भारतीय ग्रामीण आत्मा की झलक मिलती थी। उन्होंने अपने भीतर एक 'यात्री' को नहीं, एक 'साधक' को जिया।

उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे प्रकृति और संस्कृति के बीच एक सेतु की तरह कार्य करते थे। वे आधुनिकता से विचलित नहीं थे, परंतु परंपरा से कटे भी नहीं थे। उन्होंने दोनों के बीच एक सामंजस्यपूर्ण संवाद स्थापित किया।

उनकी प्रमुख कृतियाँ - ''सौंदर्य की नदी नर्मदा'' और ''अमृतस्य नर्मदा'' - उनकी यात्रा, चिंतन और संवेदनाओं का अद्‌भुत संकलन हैं। इन कृतियों में उन्होंने नर्मदा को केवल नदी के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत चेतना, एक 'संस्कृति की माँ' के रूप में देखा है।

वेगड़ का जीवन यह सिद्ध करता है कि सृजन केवल कागज पर शब्द या कैनवास पर रंग भरना नहीं है, वह एक जीवंत प्रक्रिया है - जिसमें मनुष्य प्रकृति, संस्कृति और समाज से निरंतर संवाद करता है। उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि एक कलाकार जब साहित्यकार बनता है, तो वह दृश्य को केवल वर्णन नहीं करता, वह उसे जीता है, उसमें समाहित होता है।

उनका निधन 14 सितंबर 2014 को हुआ, परंतु उनकी लेखनी आज भी यात्रा साहित्य के क्षितिज पर एक प्रकाश स्तंभ की भाँति प्रकाशित है।

''सौंदर्य की नदी नर्मदा'' अमृतलाल वेगड़ की यात्रा साहित्य की वह कृति है, जिसने हिंदी साहित्य में यात्रा वृत्तांत को एक नई ऊँचाई प्रदान की। यह केवल यात्रा का विवरण नहीं है, यह एक सांस्कृतिक अन्वेषण, एक सौंदर्य-संवेदना और एक पर्यावरणीय चेतना का घोष है। इस ग्रंथ में वेगड़ ने अपनी पदयात्रा के माध्यम से नर्मदा के दक्षिणी तट की समग्र परिक्रमा की।

''इस संदर्भ में रामचंद्र तिवारी जी कहते है कि ''श्री अमृतलाल वेगड़ ने दो हजार छः सौ चौबीस किलोमीटर नर्मदा तट की पैदल यात्रा की है आपने नर्मदा के सौम्य, शांत नीरव रूप को देखा है और उग्र, भयानक एवं विकराल रूप को भी। नर्मदा के मोहक और त्रासद दोनों रूपों को शब्दाकिंत करने के साथ ही अपने उसके तटवासियों के जीवन को रेखांकित भी किया है। लेखक और चित्रकार की सह उपस्थिति ने उस यात्रावृत्तांत को महत्त्वपूर्ण बना दिया है।''[1]

वेगड़ का उद्देश्य नर्मदा की भौगोलिक या ऐतिहासिक जानकारी देना नहीं था, बल्कि उस समग्र संस्कृति को समझना था जो नर्मदा के किनारों पर पलती है। उन्होंने नदी के किनारे बसे छोटे-बड़े गाँवों, जनजातियों, लोगों की जीवन शैली, धार्मिक रीति-रिवाजों, पुरातात्विक स्थलों और भूगर्भीय संरचनाओं को गहराई से देखा और समझा।

पुस्तक में प्रयुक्त भाषा अत्यंत संवेदनशील, चित्रात्मक और दृश्यात्मक है। वे स्थानों को केवल भौगोलिक निर्देशांक के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीकों के रूप में देखते हैं।

उनकी शैली में ठहराव है, अनुभूति की गहराई है। प्रत्येक स्थान का वर्णन किसी चित्रकार की भाँति सूक्ष्म है। वे चट्टानों को, पेड़ों को, रास्तों को जीवंत पात्रों की भाँति प्रस्तुत करते हैं।

पुस्तक में वेगड़ ने कई लोककथाओं, मिथकों और किंवदंतियों को भी स्थान दिया है। जैसे - नर्मदा की उत्पत्ति से जुड़ी पौराणिक गाथाएँ, राजा मंडहाता, ऋषि श्रृंग आदि की कथाएँ। ये प्रसंग केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि उस सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने के लिए हैं जो पीढ़ियों से इन स्थलों में रची-बसी है।

वेगड़ की दृष्टि में नर्मदा केवल जलधारा नहीं है - वह एक जीवंत सांस्कृतिक चेतना है। ''नर्मदा के घाटों पर भजनों, लोकगीतों, कथा कहानियों का अन्तहीन, अविस्मरणीय खजाना। वेगड़ जी से गहरी ईर्ष्या होती है कि उन्होंने एक नदी की यात्रा में भारत की कितनी छवियाँ, दृश्य, लोग- एक समूची संस्कृति की रासलीला का अमृत रस छक लिया है।''[2]

''सौंदर्य की नदी नर्मदा'' एक अनुपम उदाहरण है कि कैसे यात्रा को आत्म-अन्वेषण और सामाजिक दस्तावेजीकरण का माध्यम बनाया जा सकता है। इसमें पर्यावरणीय दृष्टि, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय संवेदना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। यह कृति न केवल साहित्यिक महत्त्व की है, बल्कि नर्मदा अंचल के सामाजिक-भौगोलिक अध्ययन के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

'अमृतस्य नर्मदा' अमृतलाल वेगड़ की दूसरी प्रमुख यात्रा कृति है, जो 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' की तरह ही पदयात्रा पर आधारित है। यह ग्रंथ नर्मदा के उत्तरी तट की यात्रा का वृत्तांत प्रस्तुत करता है।

यदि पहली पुस्तक सौंदर्य की संवेदना का परिचायक थी, तो अमृतस्य नर्मदा सांस्कृतिक गहराइयों का अन्वेषण करती है।

'अमृतस्य नर्मदा' का अर्थ है- अमृत की यात्रा या उस पथ का अनुसरण जो अमरत्व की ओर ले जाए। इस शीर्षक में ही लेखक का दार्शनिक दृष्टिकोण समाहित है। वेगड़ ने नर्मदा को 'माँ' और 'संस्कृति' दोनों के रूप में देखा है और उनकी यह यात्रा एक भावनात्मक, सांस्कृतिक और दार्शनिक संवाद बन जाती है।

इस कृति में वेगड़ ने अपने अनुभवों को केवल दृश्य के रूप में नहीं, बल्कि उस सांस्कृतिक स्मृति के रूप में प्रस्तुत किया है जो नर्मदा अंचल में पीढ़ियों से विद्यमान है। उन्होंने लोकगाथाओं, जनश्रुतियों, धार्मिक अनुष्ठानों, परंपराओं और रीति-रिवाजों को न केवल देखा, बल्कि उनमें निहित सामाजिक संरचना और भावबोध को भी समझा।

'अमृतस्य नर्मदा' में लेखक के भीतर का दार्शनिक अधिक मुखर हो उठा है। वे नदी को चेतना, जीवन और मोक्ष का प्रतीक मानते हैं।

इस ग्रंथ में कई सांस्कृतिक स्थल जैसे - ओंकारेश्वर, महेश्वर, चित्रकूट, मंडला आदि का वर्णन अत्यंत सूक्ष्मता और आत्मीयता के साथ किया गया है। वेगड़ प्रत्येक स्थल पर वहाँ की स्थानीय परंपराओं, वेशभूषा, खानपान, पर्व-त्योहार और स्थानीय बोली के प्रति गहरी रुचि रखते हैं।

'अमृतस्य नर्मदा' केवल भूतकाल की स्मृति नहीं है, यह वर्तमान की चेतना और भविष्य की दिशा भी है। वेगड़ ने इसमें पर्यावरणीय संकट, धार्मिक कट्टरता, शहरीकरण और परंपरा के क्षरण जैसे विषयों पर भी अत्यंत संवेदनशील ढंग से विचार किया है।

कृति में प्रयुक्त शैली गद्य और पद्य के बीच की एक सीमा पर चलती है। भाषा चित्रात्मक है, अनुभूति प्रधान है और संवादात्मक भी। यह संवाद केवल पाठक से नहीं, उस सांस्कृतिक भूमि से भी है जिसे लेखक ने आत्मसात किया है।

'अमृतस्य नर्मदा' एक ऐसी यात्रा है जो केवल गंतव्य तक नहीं पहुँचाती, वह पाठक को अपनी संस्कृति, अपनी जड़ों और अपनी पहचान की ओर लौटने को प्रेरित करती है। यह ग्रंथ एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आह्वान है।

अमृतलाल वेगड़ का यात्रा साहित्य न केवल सांस्कृतिक और सौंदर्यात्मक विमर्श प्रस्तुत करता है, बल्कि उसमें पर्यावरणीय चेतना और सामाजिक सरोकार भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' और 'अमृतस्य नर्मदा' जैसी कृतियों में उन्होंने केवल स्थलों का वर्णन नहीं किया, बल्कि वहाँ की प्राकृतिक स्थिति, पारिस्थितिकी तंत्र, मानव-प्रकृति संबंध और पर्यावरणीय संकटों का भी गहन निरीक्षण किया है।

वेगड़ ने नर्मदा की यात्रा को केवल धार्मिक या सांस्कृतिक अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि एक पर्यावरणीय अभियान के रूप में भी देखा। वे नदी के प्रति भावनात्मक नहीं, जिम्मेदार दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे एक स्थल पर लिखते हैं - ''नर्मदा तट के छोटे से छोटे तृण और छोटे से छोटे कण न जाने कितने परिव्राजकों, ऋषि-मुनियों और साधु सन्तों की पदधूलि से पावन हुए होंगे।''[3]

उनकी चेतना में नदी केवल जलधारा नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन तंत्र है - जिसमें जैव विविधता, वनस्पति, पशु-पक्षी, मछुआरे, किसान, साधु-संत और ग्रामीण जीवन सब समाहित हैं। वेगड़ ने बार-बार इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि किस प्रकार से आधुनिक विकास योजनाएँ - विशेषकर बाँध, खनन, और औद्योगिक प्रदूषण - नर्मदा के अस्तित्व को संकट में डाल रही हैं।

उन्होंने विशेष रूप से सरदार सरोवर परियोजना के प्रभावों की चर्चा की है, जिसमें हजारों लोगों का विस्थापन, जंगलों की कटाई, जीव-जंतुओं का विनाश और नर्मदा की पारिस्थितिकी पर व्यापक प्रभाव शामिल है।

> *''नर्मदा पर एक विशाल बांध बन रहा है। उनका यह गांव और आसपास के कई गांव उस बांध की डूब में आ जाएंगे। तब वे कहाँ जाएंगे, क्या करेंगे, यही चिंता उन्हें सता रही थी। दरअसल बेघर होने की यह चिंता उनकी ही नहीं, सारे इलाके की थी।''*[4]

उनकी भाषा में आक्रोश नहीं है, अपितु पीड़ा है - एक ऐसी पीड़ा जो प्रकृति की पीड़ा है।

वे चेताते हैं कि यदि नर्मदा जैसी नदियों को हमने नहीं बचाया, तो केवल जल नहीं, संस्कृति और सभ्यता भी सूख जाएगी।

सामाजिक दृष्टि से भी वेगड़ अत्यंत सजग हैं। उन्होंने जनजातीय समाज, विशेषकर भील, बैगा, गोंड आदि के जीवन पर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने देखा कि किस प्रकार ये समुदाय प्रकृति से संतुलन बनाकर जीवन जीते हैं और आधुनिकता किस तरह उनके जीवन में विघटन ला रही है।

वेगड़ का दृष्टिकोण 'विकास' की एकांगी अवधारणा को चुनौती देता है। वे विकास की ऐसी संकल्पना का समर्थन करते हैं जो पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय जीवनशैली और पारिस्थितिकी के साथ सामंजस्य बनाए।

अत: यह स्पष्ट है कि अमृतलाल वेगड़ का यात्रा साहित्य केवल सौंदर्य का उत्सव नहीं, बल्कि चेतना का दस्तावेज भी है। इसमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा, समाज के प्रति संवेदना और भविष्य के प्रति उत्तरदायित्व समाहित है। यही तत्त्व उन्हें यात्रा साहित्य के अन्य लेखकों से अलग करते हैं और उन्हें एक गहरे सरोकार वाला साहित्यकार सिद्ध करते हैं।

हिंदी यात्रा साहित्य में अमृतलाल वेगड़ का स्थान विशिष्ट और विलक्षण है। उनके समकालीन या पूर्ववर्ती अनेक लेखकों ने यात्रा-वृत्तांत लिखे हैं, परंतु वेगड़ की दृष्टि, शैली और सरोकार उन्हें अलग पहचान दिलाते हैं। तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वेगड़ का यात्रा साहित्य मात्र विवरणात्मक नहीं, बल्कि बहुस्तरीय और संवेदनात्मक विमर्श प्रस्तुत करता है।

यदि हम राहुल सांकृत्यायन को आधुनिक हिंदी यात्रा साहित्य का पितामह मानें, तो उनकी यात्राएँ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विस्तार के लिए जानी जाती हैं। वे बौद्ध धर्म, मध्य एशिया, तिब्बत और अन्य देशों की यात्राओं को गंभीर शोधात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। वहीं वेगड़ की यात्रा भारत की एक नदी तक सीमित होते हुए भी, व्यापक सांस्कृतिक और संवेदनात्मक आयाम लिए हुए है।

बालकृष्ण भट्ट, नागार्जुन, शिवानी, मनोहर श्याम जोशी, मनु भंडारी जैसे लेखक भी यात्रा साहित्य में उल्लेखनीय हैं। परंतु इनमें से अधिकांश की यात्राएँ या तो पर्यटनपरक हैं या आत्मकेंद्रित अनुभवों पर आधारित। वेगड़ इससे भिन्न हैं - उनकी यात्रा एक साझा सांस्कृतिक संवाद है।

वेगड़ की भाषा भी इन लेखकों से भिन्न है। राहुल सांकृत्यायन जहाँ शोध और तर्क की भाषा में लिखते हैं, वहीं वेगड़ चित्रात्मक, भावनात्मक और संवेदनात्मक भाषा में। उदाहरण के लिए, वेगड़ किसी स्थान के भूगोल की बजाय वहाँ की 'आत्मा' की चर्चा करते हैं। ''हजारों वर्षों से मनुष्य उसकी ओर खिंचता चला आया है। केवल इसलिए नहीं कि वह हमारी और हमारे खेतों की प्यास बुझाती है, बल्कि इसलिए भी कि वह हमारी आत्मा को भी तृप्त करती है। उसके तट पर हमारी आत्मा पल्लवित-पुष्पित होती है।''[5]

तुलनात्मक दृष्टि से एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है - पर्यावरण चेतना। जहाँ अधिकांश यात्रा लेखक स्थल वर्णन और अनुभवों की बात करते हैं, वहीं वेगड़ नर्मदा के पारिस्थितिकी तंत्र, वनस्पति, जीव-जंतुओं, जनजातीय जीवन और जलवायु परिवर्तन पर भी विचार करते हैं। यह दृष्टिकोण उन्हें समकालीन यात्रा साहित्य में एक विशिष्ट स्थान देता है।

एक अन्य दृष्टि से वेगड़ की तुलना हम गाँधीजी या विनोबा भावे जैसे पदयात्रियों से भी कर सकते हैं - जिनकी यात्राएँ सामाजिक सुधार, आत्म-अनुशासन और संवाद के माध्यम थीं। वेगड़ भी पदयात्री हैं, लेकिन वे सुधारक नहीं, संवेदनशील पर्यवेक्षक हैं।

अत: यह स्पष्ट है कि अमृतलाल वेगड़ का यात्रा साहित्य न केवल अपने समकालीनों से भिन्न है, बल्कि उसकी शैली, विषय-वस्तु, भाषा और दृष्टिकोण - सब मिलकर उसे एक अलग ही श्रेणी में स्थापित करते हैं। वेगड़ का साहित्य यात्रा को एक सृजनात्मक, दार्शनिक और सांस्कृतिक साधना में परिवर्तित करता है।

निष्कर्ष अमृतलाल वेगड़ का यात्रा साहित्य हिंदी साहित्य में एक अनूठी, बहुआयामी और गहन परंपरा का निर्माण करता है। उनकी कृतियाँ केवल स्थलदर्शन नहीं, अपितु समाज, संस्कृति, पर्यावरण और आत्मचिंतन का संवेदनशील दस्तावेज हैं। वेगड़ की यात्रा मात्र शारीरिक नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और संवेदनात्मक अन्वेषण भी है।

उन्होंने यात्रा को दर्शन, संवाद और साधना में रूपांतरित किया। 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' और 'अमृतस्य नर्मदा' के माध्यम से उन्होंने नर्मदा को केवल जल स्रोत नहीं, एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया। उनके लेखन में लोकसंस्कृति, जनजीवन, पर्यावरणीय संकट, सौंदर्यबोध और सामाजिक सरोकारों का समावेश अत्यंत प्रभावी ढंग से हुआ है।

उनकी भाषा चित्रात्मक है, शैली आत्मीय है, और दृष्टिकोण मानवीय। वेगड़ की दृष्टि में यात्रा केवल जानकारी का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि संवेदनात्मक और सांस्कृतिक संवाद है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि जब साहित्यकार स्वयं साधक बनकर यात्रा करता है, तो उसकी रचना केवल साहित्य नहीं, संस्कृति का गाथागीत बन जाती है। वेगड़ ने नर्मदा यात्रा के माध्यम से एक जीवंत सांस्कृतिक ग्रंथ की रचना की है। उनकी कृतियों में पर्यावरणीय चेतना अत्यंत सजग रूप में विद्यमान है। उन्होंने यात्रा साहित्य को एक गंभीर साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। लोकसंस्कृति, जनजातीय जीवन और परंपरागत ज्ञान की प्रस्तुति उनकी विशेषता है। उनकी शैली और भाषा ने यात्रा वृत्तांत को कलात्मक ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

अंतत:, अमृतलाल वेगड़ का यात्रा साहित्य केवल साहित्य नहीं, भारतीय आत्मा का दर्पण है। यह हमें हमारी जड़ों, परंपराओं और प्रकृति से जोड़ता है। उनके द्वारा रचित यात्रा काव्य आज के यांत्रिक युग में हमें ठहरकर सोचने और लौटकर देखने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 545-546
2. अमृतलाल वेगड़, अमृतस्य नर्मदा, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण, 2021, भूमिका- निर्मल वर्मा
3. अमृतलाल वेगड़, सौंदर्य की नदी नर्मदा, पेंगुइन बुक्स, 2006, पृष्ठ संख्या 98
4. अमृतलाल वेगड़, सौंदर्य की नदी नर्मदा, पेंगुइन बुक्स, 2006, पृष्ठ संख्या 45-46
5. अमृतलाल वेगड़- सौंदर्य की नदी नर्मदा, पेंगुइन बुक्स, 2006, पृष्ठ संख्या 7

घराना परंपरा के प्रचार-प्रसार में महिला संगीतकारों की भूमिका

डॉ० उषा

सहायक प्रवक्ता, संगीत वादन विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी

शोध प्रपत्र सार

भारत अनेक विविधताओं वाला देश है जहाँ संगीतकला, नाट्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला आदि अनेक कलाएँ हमारे देश का अलंकरण करती है। आरम्भ से ही कला और संस्कृति के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में अत्यन्त विषम और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हार नही मानी और अपनी कला के माध्यम से समाज में न केवल प्रतिष्ठा बनाई, बल्कि सामाजिक चेतना जागृत करते हुए उन्होंने अनेक महिलाओं का मार्गदर्शन भी किया। कुछ महिलाओं ने तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत आदर एवं सम्मान पाया है, अगर हम इन उपलब्धियों को जाने तो हमें गर्व महसुस होता है। भारत सरकार ने इन्हें पदम श्री, पदम भूषण, पदम विभूषण, भारत रत्न आदि सर्वोच्च सम्मानों से विभूषित किया। लता मंगेशकर, एम० एस० सुब्बुलक्ष्मी, प्रभा अत्रे ऐसे कुछ नाम हम बहुत अच्छे से जानते हैं।

सभ्यता से वर्तमान तक की जीवन यात्रा में नारी की उपयोगिता उसका महत्व और उसके दर्जे में भी उतार-चढ़ाव आते रहे है, लेकिन इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद भी भारतीय संस्कृति में नारी की माँ और व्यवहारिक जीवन की शिक्षा में "मातृ देवी भव पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव'' कहते थे। इसमें माता का स्थान गुरू और पिता से पहले है। कला मानव-संस्कृति का प्राण है, जिसमें मन तथा शरीर की अनुभूति निहित है। संगीत के गायन, वादन और नृत्य तीनों क्षेत्रों में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वैदिक काल में भी अपाला, लोपामुडा, घोषा आदि संगीत की अच्छी ज्ञाता थी। महाकाव्य काल में राज्य सभाओं में भी संगीतकला में निपुण महिलाओं को राजकलाकार के रूप में नियुक्त किया जाता था। बौद्ध साहित्य तथा जैन ग्रंथों में भी नारियों द्वारा मधुर गायन का उल्लेख मिलता है। बीसवीं शताब्दी का आरम्भ केवल भारत के स्वतंत्र युग का ही क्रान्तिकाल नही है, अपितु संगीत कला की दृष्टि से भी अनोखी क्रान्ति का युग माना जा सकता है। संगीत के आकाश में दो नक्षत्रों- पंङ्क विष्णु नारायण भारतखण्डे एवं विष्णु दिगम्बरपुलस्कर का उदय हुआ जिन्होंने नारी वर्ग को संगीत साधना के सुअवसर प्रदान कराए। वर्तमान में कुछ महिलाओं ने अनेक संघर्षों के बाद संगीत जगत में ऐसे मानदंड स्थापित किए हैं जो अविस्मरणीय रहेंगे। ऐसी महान कलाकारों में स्वर सम्राज्ञी लता मंगेशकर को उत्कृष्ट पार्श्व गायिका एवं एमङ्क एसङ्क सुब्बलक्ष्मी को भारतीय शास्त्रीय गायिका के रूप में सारा संसार जानता है।[1]

आज के परिप्रेक्ष्य में आकाशवाणी, दूदर्शन के साथ-साथ छोटे व बड़े पर्दे पर भी महिला कलाकार आकर्षण का केन्द्र रही है। नारी शक्ति है, यह केवल अतीत का विषय नही, आज भी वह शक्ति है। केवल इस शक्ति को पहचानने की जरूरत है। नए और पुराने विचारों की दुविधा से निकल उसकी अच्छाइयों को चुनने और उसमें तालमेल बैठाने की जरूरत है।

भारतीय संगीत परम्परा की भाँति महिला सभ्यता भी अति प्राचीन है। यदि अतीत का अवलोकन करे तो पायेंगे कि महिलाओं का सदैव से धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ तक की संगीत की उन्नति भी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती मानी गयी है। गूलाम रसूल ने तो संगीत का दूसरा रूप नारी को माना है-

नारी ही संगीत है, जाके है दो रूप।
एक रूप तो गीत है, दूजा नृत्य स्वरूप।।

आधुनिक काल में उत्तर भारतीय संगीत में महिलायें पुरुष के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर चल रही है। चाहे वो संगीत की कठिनतम ध्रुवपद, धमार जैसी मर्दानगी गायकी हो या अवनद्ध वाद्य, जिस पर पुरूष वर्ग सदा से अपना आधिपत्य मानते आये हैं। अब वो विधायें भी महिलाओं से अछूती नही है। आधुनिक युग में संगीत के क्षेत्र में नारियों को परिवार का भरपूर सहयोग मिल रहा है। आधुनिक नारी अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी की दास नही है। लेकिन आर्थिक निर्भरता के साथ-साथ उसे मानसिक बौद्धिक व नैतिक स्तर पर भी उँचे उठाना होगा कि अधिकार उसे मांगने न पड़े, स्वयं अर्पित किए जाए या अपने आप पास खिंचे चले आए। इस सन्दर्भ में दो पंक्तियां इस प्रकार है-

"आत्म का विश्वास और सम्मान हो नीति हमारी मांग मत अधिकार नारी।'[2]

वैदिक काल

वैदिक और वैदिकोत्तर युग में एवं कलासिक और पौराणिक युग में गंधर्व, किन्नर और अप्सराओं के साथ संगीत का घनिष्ठ संबंध था। अथर्ववेद के दसवें तथा सातवें कांड में महिलाओं के नृत्य, गीत और वाद्य के अनुशीलन में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं का भी योगदान का वर्णन है। सामप्रातिशाख्य में वाद्य

और नृत्य का विशेष उल्लेख है जिससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वैदिक समाज में विभिन्न प्रकार की वीणाओं, तांत एवं तार वाद्यों का प्रचलन था। वाद्यों के साथ ताल कायम रखकर सामग गान करते थे और उनकी पुरनारियां करताली देकर यज्ञ-वेदी के चारों ओर नृत्य करती थी। इस बात का प्रमाण ब्राह्मण-साहित्य में मिलता है। ऋग्वेद में एक मंत्र है- 'अधि पेशांसि वपते नृतुरिवा' अर्थात- उषा नर्तकी के समान रुप प्रकट कर रही है। नर्तकी शब्द के उल्लेख से यहां यह प्रमाणित होता है कि वैदिक समाज में नृत्य का अनुशीलन था।

डॉ० कोलण्ड ने 'पंचविशब्रह्मण' में कहा है कि यजमानों की पत्नियां बैठकर कांडवीणा और पिच्छोरा वीणा बजाया करती थी। उन्होंने कहा कि कम-से-कम पांच और अधिक से अधिक पचास दासियां वीणा बजाया करती थी। श्री एम राम-कृष्ण कवि ने वैदिक साम-गान में नृत्य का उल्लेख कर कहा है कि यज्ञकर्ता गाथा का गान करते थे और उनकी पत्नियां वीणा बजाती थी और अंत में विचित्र नृत्य होता था।[3]

महाभारत युग

इस युग में भी पुरुषों के समान नारियों और यहां तक कि अंत:पुरचारिणियों के लिए भी नृत्य-गीत-वाद्य निषिद्व नहीं था। इसका उदाहरण यह है-

"वृहन्नला-नृत्य वा यदि वा गीतं
वादित्रं वा पृथग्विधम्।
तत् करिषयामि भद्रं ते सारथ्यं तु कुतो मम।।"

विष्णुपर्व में उल्लेख है कि महाराजा उग्रसेन ने जब वासुदेव को राज्य-भार देकर श्रीकृष्ण और यादवों के साथ समुद्र-यात्रा की तब रेवती, सत्यभामा के अलावा सोलहसौ रमणियां भी श्रीकृष्ण के साथ उपस्थित थी और यादवों ने भी अपनी पत्नियों को साथ लिया था। तीर्थ में जलक्रीड़ा के समय विभिन्न नृत्य गीतों का आयोजन हुआ था। इस अवसर पर सत्यभामा ने नृत्य-गीत-वाद्य में योगदान और आसारित नृत्य के बाद नर्तकी रंभा ने अपने अपने नृत्य से सबको विमुग्ध किया था।[4]

प्राचीन काल

प्रथम और द्वितीय शताब्दी की प्रस्तर मूर्तिकला में कई नट-नटियों की मूर्तियां मिलती हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि उस काल में गीत-वाद्य-नृत्य का अनुशीलन था और उसमें महिलाओं ने योगदान दिया था। बहुत से हिंदू मंदिरों व बौद्वविहारों में भी ऐसी मूर्तियां मिली हैं। पुराण-काल में भी गान, वाद्य के साथ-साथ नृत्य के प्रचलन का उल्लेख मिलता है। इतिहास के परिप्रेक्ष्य से हमें पता चलता है कि पुरुष और नारी सभी नृत्य एवं गीत का अनुशीलन करते थे। विश्वाची, घृताची, तिलोळामा आदि अपसराएं नृत्य और गीत के साथ नाटक भी प्रस्तुत करती थी और राजसभा में वारक्लिासिनियां नृत्य-गीत प्रस्तुत करती थी।

मुगल काल

रामपुर की सदारंग-परम्परा के प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति के अनुसार, मुगल काल में अकबर के राज्य के समय (1556-1605) संगीत का चरमोत्कर्ष हुआ। उनके दरबार में कई संगीतज्ञ थे, जिनमें तानसेन का नाम उल्लेखनीय है। यह भी एक सत्य है कि गायन-वादन पर रोक लगाने वाला औरंगजेब (1658-1707) अपनी युवावस्था में अधिक समय तक अंत:पुर में रहा, जहां विलास के अनेक साधन थे। हीराबाई नाम की एक दासी जो संगीत-कला में निपुण थी और वह औरंगजेब की प्रेमिका थी और वह बाद में जैनाबादी बेगम के नाम से प्रसिद्ध हुई। तानसेन (1506-1585) की पुत्री सरस्वती भी उम्दा कलाकार थी, उसने मिश्रीसिंह उर्फ नौबत खां के साथ विवाह किया, जिनसें बीनकार घराने का आरंभ हुआ। तानसेन वंश के उ० दबीर खां के शिष्याओं में छाया गंगोपाध्याय, डॉली दे, डॉ० वीणा राय, डॉ० तृणा पुरोहित माया राय आदि के नाम मिलते हैं जिन्होंने संगीत को चर्मोत्कर्ष तक पहुंचाया।[5]

ग्वालियर एवं सहसवान घराना

ग्वालियर घराना अष्टांग गायकी के लिए प्रसिद्ध रहा है और प्राय: अन्य घरानों का मुख्य स्त्रोत भी है। इस घराने की वंश और शिष्य-परंपरा बहुत बडीघ है। इसी घराने में काशीनाथ बुआ की शिष्या सुशीला मराठे, बलदेव जी बुआ की शिष्या कौशल्या मांजरेकर, पं० ओंकारनाथ ठाकुर की शिष्या विजनबाला घोषदस्तीदार, वासुदेव बुआ की शिष्या सुलभा मोहिले, विनायकराव पटवर्धन की शिष्या कमल केलकर, पं० कुमार गंधर्व की पत्नी वसुंधरा कोमकाली एवं शिष्या मीरा राव, पं० शंकरराव बोडस की पुत्री एवं वीणा सहस्त्रबुद्धे, जैसी अनेक कलाकारों के नाम उल्लेखनीय है। इनमें कई गायिकाओं ने बहुत अच्छी ख्याति अर्जित भी की है। इन गायिकाओं ने इस घराने के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इसी प्रकार सहसवान घराने में गुलाम साबिर खां की शिष्या नयनादेवी, हफीज अहमद खां की शिष्या अलकनंदा पटेल और उमा गर्ग, गुलाम मुस्तफा खां की शिष्या लक्ष्मी नायम्पल्ली एवं मुश्ताकहुसेन खां रामपुरवाले की शिष्या सुलोचना बृहस्पति तथा शन्नोदेवी के नाम मिलते हैं।[6]

आगरा घराना

आगरा घराना कई चिरपरीचित महिला कलाकारों के लिए जाना जाता है। इस घराने की महिला कलाकारों में फैयाज खां की समकालीन जोहराबाई एवं मलिकाजान, विलायतहुसेन खां से वरिष्ठ बबलीबाई, चंदा कारवारिन, जानकी छप्पनछुरी, विलायतहुसेन खां की समकालीन इंदौर की फरहद जान बिब्बो, फैयाज खां की समकालीन मलिकाजान, पं० जगन्नाथ बुआ पुरोहित की शिष्या माणिक वर्मा एवं मालती पांडे, विलायतहुसेन खां की शिष्या माणिक वर्मा एवं मालती पांडे, अंजनीबाई जाम्बोलीकर, इंदिराबाई वाड़कर, श्रीमतीबाई फातरफेकर, महुमदहुसेन की शिष्या चंपाबाई कार्लेकर एवं ताराबाई शिरोडकर आदि के नाम मिलते हैं। जिन्होंने ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी जैसी गायन शैलियों के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाई।

अतरौली घराना

अतरौली घराना की महिला कलाकारें में अल्लादिया खां की प्रमुख शिष्या केसरबाई केरकर और मोधूबाई कुर्डीकर के अलावा तानीबाई, मेनकाबाई शिरोडकर, लीलाबाई शिरगांवकर के नाम मिलते हैं। हैदर खां की शिष्या में लक्ष्मीबाई जाधव, भूर्जी खां की शिष्या दुर्गाबाई कुलकर्णी, मोधूबाई कुर्डीकर की पुत्री और शिष्या किशोरी अमोणकर तथा अन्य शिष्या कौशल्या मंजेश्वर के नाम मिलते हैं। श्रीमती किशोरी अमोणकर आज अग्रणी गायिकाओं में है और उन्होंने कई शिष्याएं तैयार की है, जिनमें माणिक भिंडेघ का नाम उल्लेखनीय है। माणिक भिड़े की पुत्री एवं शिष्या अश्विनी देशपांडे आज भारतवर्ष की युवा गायिकाओं में अग्रणी है।

किराना घराना

किराना घराना विशेषत: स्वर-सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध रहा है और इस गायकी की ओर महिलाओं का आकृष्ट होना स्वाभाविक है। अब्दुलवहीद खां की प्रमुख शिष्या हीरा बाई बडोदेकर (जन्म: नवम्बर 20, 1989) आज हमारे बीच नहीं है और उन्होंने संगीत जगत को कई शिष्याएं दी है। इसके पूर्व हमें चुन्नाबाई का नाम मिलता है। बताया जाता है कि वे बहुत ही प्रभावकारी गायिका थी और बंदेअली खां की द्वितीय पत्नी थी। अतरौली घराने की सुरश्री केसरबाई केरकर के नाम से कौन परिचित नहीं है, उन्होंने उस्ताद अब्दुल करीम खां से भी शिक्षा हासिल की थी। अब्दुल करीम खां की अन्य शिष्याएं हैं- ताराबाई और रोशनआरा बेगम। सवाई गंधर्व की शिष्या गंगूबाई हंगल एक प्रतिष्ठित गायिका थी। इसी तरह हीराबाई की शिष्याओं में सरस्वतीबाई राणे, प्रभा अत्रे, मालती पांडे एवं सुलभ ठकार आदि लोकप्रिय गायिकाएं रही। इनमें प्रभा अत्रे और माणिक वर्मा ने किराना घराने के सुरेशबाबु माने से भी शिक्षा हासिल की है। इसी घराने में ए० कानन की शिष्याएं हैं- गौरी मुखर्जी, नीला मजूमदार, पुर्णिमा चौधरी, प्रतिमा मित्र एवं शशिकला मंजेश्वर। इस घराने की अन्य गायिकाएं हैं- अलका जोगलेकर एवं आशा पारसनीस।

इंदौर घराने के उस्ताद अमीर खां ने संगीत जगत को कई शिष्यांए दी, जिन्होंने कंकणा बेनर्जी, कृष्णा दासगुप्त, पूरबी मुखर्जी आदि के नाम उल्लेखनीय है। मुरादाबाद भंडीबाजार घराना भी अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस घराने में नजीर खां की शिष्या अंजनीबाई मालपेकर बडीघ प्रसिद्ध गायिका हुई है जिन्होंने इस घराने की परम्परा को बखुबी आगे बढ़ाया।[7]

बनारस घराना

इस घराने का आरम्भ पं० रामबालक मिश्र से होता है। इस घराने में कई प्रतिष्ठित गायिकाएं हुई है जिनमें मोतीबाई, जद्दनबाई, विद्याघरी, सिद्धेश्वरी, गिरजादेवी आदि ने काफी नाम कमाया। सिद्धेश्वरी की पुत्रिया- शांता और सविता प्रतिष्ठित गायिकाएं हुई। बनारसी सुगम संगीत की ओर भी कई महिलाएं आकृष्ट हुई है। जिनमें ठुमरी, दादरा और गजल का प्राधान्य रहा है। इस क्षेत्र में सिद्धेश्वरी और बेगम अख्तर प्रमुख रहीं। सिद्धेश्वरी की परंपरा का निर्वाह उनकी पुत्री शांता ने किया और आज उनकी द्वितीय पुत्री सविता इसी पथ पर है। इस घराने की शैली और बेगम अख्तर की गायकी का निर्वाह रीटा गांगुली कर रही है। इन दोनों शैलियों में आज निष्णात है- मेनकाबाई शिरोडकर की पुत्री शोभा गुर्टू। इनके अलावा अनिता सेन, रेवा मुहरी, सरला भिड़ें, शुभा जोशी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बनारसी गायकी की गायिका हीरादेवी मिश्र, जो अता खां की शिष्या एवं पटियाला घराने की गायिका होते हुए भी बनारसी रंग की गायकी में निष्णात थी।

पटियाला घराने में बड़े गुलामअली की शिष्या मीरा बनर्जी एवं संध्या मुखर्जी, मीरा की शिष्या कावेरीकर, प्रभाती मुखर्जी एवं बेला चौधरी तथा मुनव्वरअली की शिष्या आरती बागची एवं मीनाक्षी के नाम उल्लेखनीय है। जबकि दिल्ली घराने में उस्ताद चांद खां की शिष्याओं में डॉ० कृष्णा विष्ट एवं भारती चक्रवर्ती के नाम उल्लेखनीय हैं।

आज जो युवा गायिकाएं आगे आ रही हैं, उनमें आरती अंकलीकर का नाम उल्लेखनीय है, जो वसंतराव कुलकर्णी की शिष्या है। वाद्य के क्षेत्र में इमदादी घराने के इमदादहुसेन खां एवं इनायतहुसेन खां की शिष्या डॉ० कल्याणी मलिक, जितेंद्रमोहन संनगुप्त एवं विलायत खां की शिष्या कल्याणी राय, विमलाकांत राय चौधरी की शिष्या उत्पला सरकार, विलायत खां की शिष्या देविका घोषाल एवं बिंदु कावेरी के नाम उल्लेखनीय हैं।[8]

संत संगीतज्ञ अलाउद्दीन खां की शिष्याओं में श्रीमती अन्नपूर्णादेवी प्रमुख रही। उनकी एक अन्य शिष्या है सरोद वादिका शरणरानी, जिन्होंने अलीअकबर खां से भी शिक्षा पाई थी। पं ० रविशंकर की शिष्याओं में जया विश्वास एवं कृष्णा चक्रवर्ती के नाम प्रचलित हैं। जबकि अलीअकबर खां की शिष्या में शिशिरकणाधर चौधरी (वायलिन), सरोद वादन में जरीन दारुवाला का नाम आता है, जिन्होंने कई गायकों से शिक्षा पाई। सारंगी के क्षेत्र में एक महिला प्रसिद्ध हुई जिनका नाम है पं० अरुणा। तबला जैसा साज को भी महिलाओं ने अपनाया है। मुरारीमोहन (पखावज-कलकत्ता) घराने के सतीशचंद्र गुप्त की शिष्या डॉ० दीना राय एवं माया राय इसकी प्रसिद्ध कलाकार रही है। इनके अलावा तबला-वादिकाओं में डॉ० जोगमाया शुक्ल एवं डॉ० आबान ई० मिस्त्री के नाम प्रमुख है। आबान मिस्त्री ने तो तबला और पखावज वादन पर कई पुस्तकें भी लिखी है। हारमोनियम-वादन के क्षेत्र में श्रीमती वासंती महाप्सेकर का नाम उल्लेखनीय है। उनके अलावा एक अन्य युवा वादिका भी लोकप्रिय है जिसका नाम है सीमा मिस्त्री। इसी तरह कर्नाटक शैली में प्रशिक्षित श्रीमती एन० राजम् ने पं० ओंकारनाथ ठाकुर का शिष्यत्व ग्रहण कर वायलिन-वादन को नया आयाम दिया। श्रीमती राजम् दोनों वादन-शैलियों में निष्णात हैं, किन्तु उत्तर-भारतीय संगीत ही उनके वादन में मुख्य है।

संगीत शास्त्र की रचना में भी महिलाएं पीछे नही रही है। संगीत शास्त्र के क्षेत्र में अतिया बेगम लिखित 'द म्यूजिक ऑफ इंडिया' संभवत: प्रथम महिला-रचित संगीत-ग्रंथ है, जिसमें नाद, स्वर, राग आदि का विवेचन किया गया है और संगीत के साथ ज्योतिष का संबंध बताया गया है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अनुसंधान विभाग की प्रमुख तथा इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की भुतपूर्व कुलपति विदुषी डॉ० प्रेमलता शर्मा ने जो पं० ओंकारनाथ ठाकुर की शिष्या रही, अनेक उच्च स्तर के शोध-लेखों की रचना की और एक प्राचीन ग्रंथ 'सहसरस' का संपादन किया है। इसी क्षेत्र में एक

नाम डॉ० श्रीमती इंद्राणी चक्रवर्ती जी का भी आता है जिन्होंने 'स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान' नामक एक खोजपूर्ण और उपयोगी ग्रंथ लिखा है। इनके अलावा आचार्य बृहस्पति की पत्नी, गायिका श्रीमती सुलोचना बृहस्पति-लिखित पुस्तक 'खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार' संगीत के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से उपयोगी है। इस प्रकार संगीत पर अनुसंधान करने वाली शोधकात्रियों की सूची बहुत लम्बी है जिनको सूचीबद्ध करना मुश्किल है। उन्होंने संगीत के क्षेत्र की कई महत्वपूर्ण जानकारियों को प्रकाश में लाया है।

लोक संगीत के क्षेत्र में महिलाओं का विशेष योगदान रहा है। विभिन्न राज्यों के त्योहारों-उत्सवों में महिलाओं का गायन ही प्रमुख रहा है। लोक-संगीत सामाजिक व्यवहार, रीति-रिवाज को मूर्त रुप देने का माध्यम है और इसके प्रचार-प्रसार में महिलाओं का महत्वपूर्ण योग रहा है। प्राचीन संगीत चित्रों को देखने से पता चलता है कि उनमें से अधिकांश में, राग-रागिनियों के चित्रण में महिलाओं का समावेश हुआ है। तोडीघ, ललित, बसंत, विभास, भैरवी आदि रागों के चित्रों को देखने से यह बात सिद्ध हो जाती है। इस शोधपत्र के निश्कर्ष में स्वरुप इस बात पर जोर देना चाहूंगी कि महिलाओं ने संगीत के उत्थान के लिए हर युग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और वर्तमान समय में भी इसके प्रचार-प्रसार में सुयोग्य कार्य कर रही हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, डॉ० महारानी, संगीत-मणि, पृ० सं० 42
2. जौहरी, डॉ० सीमा, संगीतायन, पृ० सं० 37
3. श्रीवास्तव, प्रो० हरीशचन्द्र हमारे प्रिय संगीतज्ञ, संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद, पंचम संस्करण, 2006
4. बावरा, जोगिन्द्र सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, ए०बी०एस० पब्लिकेशन्स जालंधर, प्रथम संस्करण, 1996
5. मालवीय, डॉ० श्रद्धा, भारतीय संगीतज्ञ एवं संगीत ग्रंथ, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटस, नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण, 2010
6. जैन, डॉ० वीणा, सेनिया घराना और सितार वादन शैली, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण, 2008
7. संगीत पत्रिका, महिला संगीत अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1992
8. ठाकुर, डॉ० जयदेव सिंह, इंडिया म्यूजिक, संगीत रिसर्च अकेडमी, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1995

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन और महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता: एक अवलोकन

किशोर कुमार पासवान

(रिसर्च स्कॉलर), राजनीति विज्ञान विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

शोध आलेख का सारतत्व:

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग नहीं था, बल्कि यह सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और लैंगिक समानता की दिशा में भी एक सशक्त कदम था। इस संघर्ष में भारतीय महिलाओं की भागीदारी एक ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रतीक थी। यद्यपि प्रारंभिक चरणों में महिलाओं की सहभागिता सीमित थी, किंतु 20वीं शताब्दी के आरंभ से उनकी सक्रिय उपस्थिति राष्ट्रवादी आंदोलन की रीढ़ बन गई। प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें यह दर्शाया गया है कि कैसे विभिन्न आंदोलनों-जैसे स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन-में महिलाओं ने न केवल प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया, बल्कि नेतृत्वकारी भूमिकाएँ भी निभाई। सरोजिनी नायडू, अनी बेसेंट, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अरुणा आसफ अली, और कस्तूरबा गांधी जैसी महिलाओं ने राष्ट्रीय चेतना को नई दिशा प्रदान की। महिलाओं की सहभागिता ने भारतीय समाज में लैंगिक भूमिका की पारंपरिक परिभाषाओं को चुनौती दी। भारतीय महिलाएँ जो पहले सामाजिक बंधनों में सीमित थीं, अब सार्वजनिक जीवन और राजनीतिक निर्णयों का हिस्सा बनीं। उन्होंने न केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध किया, बल्कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को भी पुनर्परिभाषित किया। प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण नहीं करता है, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के भीतर लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के आरंभिक स्वरूप की पहचान भी करता है। यह स्पष्ट करता है कि स्वतंत्रता संग्राम भारतीय महिलाओं के लिए न केवल राजनीतिक अवसर था, बल्कि सामाजिक मुक्ति की भी आधारभूमि बना है।

प्रमुख शब्दावली: राष्ट्रवादी आंदोलन, महिलाओं की सहभागिता, स्वतंत्रता संग्राम, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन, महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, स्वदेशी आंदोलन, सामाजिक चेतना, स्वतंत्रता सेनानी, राजनीतिक भागीदारी, महिला नेतृत्व, कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अरुणा आसफ अली, अनी बेसेंट, भारतीय समाज, पितृसत्तात्मक संरचना, सार्वजनिक जीवन, राजनीतिक अधिकार, आंदोलनात्मक राजनीति, ब्रिटिश विरोध, शिक्षित महिलाएँ, राष्ट्रीय चेतना, औपनिवेशिक शासन, महिला संगठन, समता आंदोलन, नारी जागरण आदि।

प्रस्तावना :

19 वीं शताब्दी के भारतीय समाज सुधार आंदोलनों के इतिहास में महिला मुक्ति का प्रश्न केन्द्रीय भूमिका में रही है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में भी यह राष्ट्रीय आंदोलन की सूची में कायम रहा। जहाँ एक ओर महात्मा गाँधी की 'संत' रूपी छवि ने उनके नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम को ध र्मिक रंग प्रदान किया वही दूसरी ओर राष्ट्र प्रेम स्वयं एक धर्म के रूप में उभरा, जिसमें राष्ट्र आराध्य देवी या मातृ-भूमि के रूप में रहा। महिलाओं की आन्तरिक शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए इस आन्दोलन में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। हालाँकि उनकी अंत:शक्ति की इस जागृति तथा दीर्घ काल से उनके विरुद्ध चल रहे दमन चक्र में अंतर्विरोध निहित था।[1] गाँधीजी ने इस समस्या के समाधान के लिए स्वतंत्रता आंदोलन को अहिंसक एवं अध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया, जिसमें जुनून, त्याग आदि जैसे तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण थे, जो महिलाओं के नैसर्गिक गुण के रूप में सर्वमान्य है। इसके अलावा इसके पीछे कांग्रेस की एक और नीति कार्य कर रही थी जिसके तहत उनका उद्देश्य महिलाओं को शामिल कर स्वतंत्रता आंदोलन का विस्तार करना था।

महिलाओं के इस राजनीतिकरण के महत्व को भी समझना आवश्यक है जैसे इसका उनके गृहस्थ जीवन पर प्रभाव उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव, महिला संबंधी नए मुद्दों का उदय तथा आन्दोलन में महिला सहभागियों के प्रति पुरुष भागीदारों के नजरिये में बदलाव आदि।

विदेशी शासन उनकी संस्कृति, उनके धर्म तथा अध्ययन के माध्यम के रूप में उनकी अंग्रेजी भाषा ने भारतीयों के राष्ट्रीय चरित्र को समाप्त करने हेतु प्रर्याप्त प्रयास किए।[2] ब्रिटिश शासन, अंग्रेजी अध्ययन पद्धति तथा मिशनरियों द्वारा प्रचारित ईसाइयत ने भारत में सामाजिक परिवर्तन हेतु उन्नीसवीं शताब्दी में कई सुधार आन्दोलनों को जन्म दिया। महिलाओं की जागृति में राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित उदारवादी सामाजिक सुधार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे महिलाओं के वैधानिक अधिकारों की माँग करते हुए सामने आए। ब्रह्म समाज की स्थापना करते हुए उन्होंने भारतीय समाज की घृणित सती व्यवस्था की समाप्ति का आह्वाहन किया। आगे चलकर ईश्वर चंद्र विद्यासागर विधवा पुनर्विवाह के अग्रदूत बने। आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानंद सरस्वती ने पंजाब में वैदिक सभ्यता को स्वतंत्र एवं मुक्त समाज हेतु पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।[3] दक्षिण भारत में एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसाईटी के माध्यम से राष्ट्र स्तर पर महिलाओं व पुरुषों दोनों के लिए समान शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। इसी समय कई महिला समाज सुधारकों ने भी जैसे पंडिता रामाबाई, रामाबाई रानाड़े, लेड़ी बोस तथा भीकाजी कामा ने स्वयं को महिलाओं के उत्थान के लिए अपने को समर्पित कर दिया।

रामाबाई कारावास रूपी दण्ड तक झेलने को तैयार थी क्योंकि वह अपने वैवाहिक कर्तव्य को न निभाकर और पढ़ना चाहती थी, जो अन्तत उसने किया भी। पंडिता रामाबाई के मुक्ति सदन, जो उच्च जाति की विधवाओं के लिए तथा पंडिता रानाड़े के संस्थान ने जो उन्होंने अपनी गरीब बहनों की मदद के लिए बनाया था[4] ने महिलाओं को शिक्षित करने व उनकी स्थिति के सुधार में व्यापक योगदान दिया। दोनों ही महिलाओं ने अपने कार्यो को इस उद्देश्य से निर्देशित किया कि महिलाओं को व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे आत्मनिर्भर बन सके। भोपाल की महिला शासक सुल्ताना जहाँ बेगम साहिबा भी एक महान सुधारक थी। उन्होंने किताबें लिखीं, अस्पताल, स्कूल आदि की स्थापना भी की। वे अलीगढ़ मस्लिम शताब्दी में कई सुधार आन्दोलनों को जन्म दिया। महिलाओं की जागृति में राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित उदारवादी सामाजिक सुधार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे महिलाओं के वैधानिक अधि कारों की माँग करते हुए सामने आए। ब्रह्म समाज की स्थापना करते हुए उन्होंने भारतीय समाज की घृणित सती व्यवस्था की समाप्ति का आह्वाहन किया। आगे चलकर ईश्वर चंद्र विद्यासागर विधवा पुनर्विवाह के अग्रदूत बने। आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानंद सरस्वती ने पंजाब में वैदिक सभ्यता को स्वतंत्र एवं मुक्त समाज हेतु पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। दक्षिण भारत में एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसाईटी के माध्यम से राष्ट्र स्तर पर महिलाओं व पुरुषों दोनों के लिए समान शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया।[5] इसी समय कई महिला समाज सुधारकों ने भी जैसे पंडिता रामाबाई, रामाबाई रानाड़े, लेड़ी बोस तथा भीकाजी कामा ने स्वयं को महिलाओं के उत्थान के लिए अपने को समर्पित कर दिया।

रामाबाई कारावास रूपी दण्ड तक झेलने को तैयार थी क्योंकि वह अपने वैवाहिक कर्तव्य को न निभाकर और पढ़ना चाहती थी, जो अन्तत उसने किया भी। पंडिता रामाबाई के मुक्ति सदन, जो उच्च जाति की विधवाओं के लिए तथा पंडिता रानाड़े के संस्थान ने जो उन्होंने अपनी गरीब बहनों की मदद के लिए बनाया था, ने महिलाओं को शिक्षित करने व उनकी स्थिति के सुधार में व्यापक योगदान दिया। दोनों ही महिलाओं ने अपने कार्यो को इस उद्देश्य से निर्देशित किया कि महिलाओं को व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे आत्मनिर्भर बन सके। भोपाल की महिला शासक सुल्ताना जहाँ बेगम साहिबा भी एक महान सुधारक थी। उन्होंने किताबें लिखीं, अस्पताल, स्कूल आदि की स्थापना भी की।[6] वे अलीगढ़ मस्लिम विश्वविद्यालय की कुलपति भी रही थी। साथ ही उन्हें मीडिया के मार्गदर्शक बर्नाकुर के महान समर्थक के रूप में भी जाना जाता है। बड़ौदा की महारानी के प्रभाव को भी नरजअंदाज नहीं किया जा सकता। 1911 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'दि पॉजिशन ऑफ विमेन इन इंडियन लाइफ' महिला आंदोलन पर लिखी गई एक शास्त्रीय पुस्तक है। अपने पूरे जीवन में उन्होंने महिलाओं का नेतृत्व किया। उन्हीं के प्रयास से अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का प्रारंभिक दौर संपन्न हो सका। 7इसने महिलाओं के शैक्षणिक सुधार, सामाजिक सुधार की शीघ्र शुरूआत, बाल विवाह के विरुद्ध कानून के लिए आंदोलन आदि मुद्दों पर उनके विचार-विमर्श के लिए मंच प्रदान किया।

1883 में पहली बार कोई महिला भारतीय विश्वविद्यालय से स्नातक हुई। मैसूर की श्रीमती रूक्मिअम्मा, बंगाल की श्रीमती कोनेशिया सोराबजी, मद्रास की डॉ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी, जैसी विदुषी महिलाओं ने विद्वता के क्षेत्र में महिलाओं की प्रतिष्ठा बढ़ायी। इन्होंने अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर लोगों के लिए मिसाल स्थापित की। उनसे प्रेरणा पाकर महिलाओं को यह विश्वास हो गया कि वे भी राजनीति कानून या ललित कला जैसे क्षेत्रों में रचनात्मक भूमिका निभा सकती है। इन घटनाक्रमों ने राष्ट्रीय जीवन तथा नागरिक सेवाओं में महिलाओं को भी पुरुषों के बराबर की स्थिति में लाने में मदद की।

महात्मा गाँधी ने स्त्रियों को दक्षिण अफ्रीका में सर्वप्रथम 1913 में सार्वजनिक प्रदर्शनों में उतारा था और भारतीय स्त्रित्व की भारी राजनीतिक क्षमता का एहसास किया था। भारत वापसी के बाद 1919 के रौलट सत्याग्रह में उन्होंने औरतों को राष्ट्रीय अभियान में भाग लेने को फिर आमंत्रित किया, लेकिन इस दिशा में कई सार्थक पहल हो इससे पहले ही उसे वापस ले लिया गया। 1921 में जब अहसयोग आंदोलन शुरू हुआ तो गाँधी ने स्त्रियों के लिए शुरू-शुरू में एक सीमित भूमिका बताई अर्थात् बहिष्कार और स्वदेशी के अभियान में। लेकिन स्त्रियों ने अपने लिए और भी सक्रिय भूमिका का दावा किया।

आधुनिक काल में राजनीति में महिलाओं की भागीदारी अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है। यद्यपि उपनिवेश ने दोनों ही, अभिजन तथा गैर अभिजन महिलाओं की भूमिका को प्रभावित किया तथापि दोनों की भूमिकाएँ अलग-अलग रूपों में प्रभावित हुई। अभिजनेत्तर महिलाओं ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। अभिजन महिलाओं ने मुख्यत: भारतीय पुनर्जागरण 19वीं शताब्दी के समाज सुधार आन्दोलन में हिस्सा लिया। इनके संघर्ष एवं आक्रामकता का मुख्य उद्देश्य समाज में महिलाओं के विरुद्ध हो रहे पारंपरिक अन्याय जैसे महिला, भ्रूणहत्या, सती प्रथा, बालविवाह तथा विधवा पुनर्विवाह को प्रतिबंधित करने वाले नियम को समाप्त करना था। यह संघर्ष समानता के लिए नहीं बल्कि समाज में महिलाओं और पुरुषों की पृथक एवं सम्पूर्ण भागीदारी पर बल देता था। यह आन्दोलन महिलाओं को बेहतर माँ एवं पत्नी बनाने का प्रयास था। चूँकि इन महिला आंदोलनों ने प्रारंभिक परिवार संरचना एवं महिलाओं की घर एवं समाज में भूमिका पर आधारित करने का प्रयास किया अत: कुछ पुरुषों ने भी इसका समर्थन किया।

भारतीय राजनीतिक स्वतंत्रता का स्वअभिप्रेरित आन्दोलन 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ आरंभहुआ। प्रारम्भ से ही इसकी सदस्यता के लिए महिलाओं तथा पुरुषों दोनों पर समान शर्ते आरोपित थी। कांग्रेस के 1889 के बॉम्बे अधिवेशन में दस महिलाओं ने भाग लिया। 1904 के कलकत्ता अधिवेशन में टैगोर परिवार की एक कांग्रेसी बंगाली महिला, श्रीमती सरलादेवी चौधरानी ने कांग्रेस के इतिहास में अपना नाम लिखा वाया जब उन्होंने एक समूह को श्वंदे मातरम्श राष्ट्रीय गीत गाने के लिए प्रशिक्षित किया। यह गीत राष्ट्रवादी अपील की वजह से जल्दी ही प्रसिद्ध हो गया। उन्होंने आर्य समाज की महिला शाखा की शुरूआत की।

श्रीमती एनी बेसेन्ट के 1914 में भारतीय राजनीति में आगमन ने महिलाओं एवं पुरुषों दोनों की राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित किया। 1874 में, उन्होंने लिखा कि महिलाओं को भी कानून निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी निभानी चाहिए क्योंकि उनकी भी कानून के साथ संलग्नता अपेक्षित है। 1915 से उन्होंने प्रसिद्ध होम रूल आन्दोलन प्रारम्भ किया।

महात्मा गाँधी ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का समर्थन किया। उन्होंने महिलाओं से सीता एवं द्रौपदी की तरह शुद्ध, संयमित एवं नियंत्रित भूमिका निभाने का आग्रह किया। उनके अनुसार समानता का अर्थ यह नहीं कि महिला एवं पुरुष एक ही कार्य करें। महिलाओं एवं पुरुषों की क्षमता अलग होती है।[8] अत: उन्हें अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करनी चाहिए। उन्होंने महिलाओं से स्वदेशी आन्दोलन में 'उपवास' करने विदेशी वस्त्र को त्यागकर खादी वस्त्र धरण करने की अपील की। श्रम के सम्बंध में, उन्होंने महिलाओं को खादी निर्माण तथा लघु उद्योग में उनकी भूमिका के लिए आहान किया।

वर्ष 1920–22 के दौरान हुए असहयोग आन्दोलन में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। उन्होंने खादी को प्रसिद्ध बनाने का प्रयास किया तथा शराब की दुकानों के सामने प्रदर्शन किया। बम्बई में राष्ट्रीय महिला आयोग की महिलाएँ अपने दो लक्ष्यों स्वशासन तथा महिला कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध थी ये दोनों ही उद्देश्य अंर्तसंबंधित थे, महिलाओं का विकास तब तक नहीं हो सकता था जबतक वे राजनीतिक में भागीदारी नहीं निभाती। इन महिलाओं ने वेल्स के युवराज के भारत आगमन के विरुद्ध बम्बई में हडताल भी की।

राष्ट्रीय आन्दोलन महज एक सुधारवादी आन्दोलन था। जिसमें स्वेदेशी आन्दोलन ने महिलाओं को रोजगार उपलब्ध कराया, किन्तु उनके आय का महज पुरुषों की आय में परिपूरक के रूप में देखा गया। पर 1920 के दशक के अंत तक महिलाओं ने मजदूर आन्दोलनों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी। 1930 में राष्ट्रीय कांग्रेस समिति ने ग्वालियर में श्रमिकों के मुद्दे पर परिचर्चा के लिए विशेष सत्र का गठन किया। 1931 के लाहौर सम्मेलन में, उन फैक्टरियों के निकट प्राथमिक विद्यालय आदि के खोले जाने सम्बन्धी प्रस्ताव पास किए गए। जहाँ महिलाएँ बड़ी संख्या में काम करती है। इस आन्दोलन के प्रदर्शन रैली में महिलाएँ भी हिस्सा लेना चाहती थी, किन्तु गाँधीजी ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। उन्होंने ऐसा इसलिए किया ताकि अंग्रेज भारतीय पुरुषों को कायर न समझे। फिर भी जहाँ भी रैली रूकती थी भारी संख्या में महिलाएँ गाँधी के भाषण को सुनने के लिए जमा होती थी। नमक सत्याग्रह आन्दोलन में भी हजारों महिलाओं ने नमक बनाकर बेचा। इनमें कमला देवी चट्टोपाध्याय, एनी बेसेन्ट, सरोजनी नायडू तथा मार्केट कोजिन्स ने इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभायी। इस समय महिलाओं को पुलिस का दमन भी झेलना पड़ा। पुलिस महिला प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध भी हिंसक हो गयी थी। इस घटना ने लोगों की प्रतिक्रियाओं को और प्रभावित किया, यहाँ तक कि मीडिया भी उनकी आलोचक हो गई। कई महिलाएँ जेल भेज दी गई और उनकी संख्या लगातार बढ़ती ही रही।[9]

वर्ष 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। इन्होंने समानान्तर सरकार के गठन सहित विभिन्न कार्यों में मदद की। कइयों को तो आन्दोलन के दौरान अपनी जान दाँव पर लगानी पड़ी। कई आत्म-सुरक्षा समितियों का गठन हुआ, जहाँ महिलाओं को भी प्रशिक्षित किया गया। महिलाओं ने सामंतवाद विरोधी आन्दोलन में भी भाग लिया। 1940 के दशक में महिलाएँ पूर्णत: राष्ट्रीय आन्दोलन की हिस्सा हो गयी थी। क्योंकि देश की स्वतंत्रता ही महिलाओं की सभी समस्याओं का सबसे बड़ा समाधन था। ऐसी भी महिलाऐं थी जो नवीन एवं आजाद भारत के निर्माण के लिए अहिंसा के स्थल पर क्रांतिकारी आन्दोलनों को उचित माध्यम मानती थी। इसमें दुर्गा भाभी, लाडो रानी, अरुणा, आसफ अली, उषा मेहता तथा अम्मु स्वामी नाथन थीं, जिन्होंने अपने सक्रिय सामाजिक जीवन के माध्यम से देश की सेवा में हाथ बटाया। मैडम कामा की कहानी भी अत्यधिक उत्प्रेरक है। 1907 में ही, जब गाँधीजी ने भारत में अपने स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत नहीं की थी, तभी उन्होंने भारतीय तिरंगे को लहराया था। उनका प्रभाव भगत सिंह तथा उनके साथियों के विचारों पर भी पड़ा था। बम्बई की उषा मेहता एक भिन्न प्रकार की क्रांतिकारी जिन्होंने स्वतंत्रता की मशाल को जलाए रखने में मदद की। 1942 के आन्दोलन की नायिका, अरुणा आसफ अली ने डॉ. लोहिया तथा जय प्रकाश नारायण के साथ मिलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की समाजवादी शाखा की स्थापना की। राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं के बौद्विक प्रतिनिधित्व को सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पड़ित तथा सुचेता कृपलानी ने पूरा किया। कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने भारतीय राष्ट्रीय सेना की रानी झाँसी रेजिमेंट का नेतृत्व भी किया।[10]

20वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारतीय अभिजन महिलाओं के बीच ही विशुद्ध महिला संगठनों का गठन हुआ। 1882 में, प्रार्थना समाज के संरक्षण में बबई में स्थापित आर्य महिला समाज, भारत में ऐसे प्रार्रभिक संगठनों में से था। 1913 में शुरूआत करते हुए सरोज नलिनी दत्त ने कई नगरों में महिला समितियों की स्थापना की। 1910 में सरला देवी चौधरानी ने महिलाओं की स्वतंत्र पहचान के लिए भारत स्त्री महामंडल की स्थापना की। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में प्रवेश के नए मार्ग का निर्माण किया। महिलाओं की क्षेत्रीय संगठनों में भागीदारी से मिले अनुभव ने प्रांतीय एवं राष्ट्रीय संगठनों के विकास का मार्ग सुलभ किया। युवा महिला संस्था, महिला ब्रहा समाज तथा अन्य बृहत् प्रांतीय एवं सामुदायिक समूह ने भी विशिष्ट वर्ग की महिलाओं को राष्ट्रीय स्वतंत्रता को लक्षित करते हुए आत्म उत्थान की प्रेरणा दी। एनी बेसेंट, दैरोजी जिनारानादासा तथा मार्गेट कोजिन्स ने मद्रास तथा कई अन्य शहरों में इसकी शाखा सहित प्रथम अखिल भारतीय महिला संगठन के रूप में भारतीय महिला संघ की स्थापना की। श्रीमती टाटा तथा अन्य द्वारा स्थापित बंबई प्रेसिडेन्सी विमेन का उंसिल ने अन्य संस्थानों के साथ समायोजन कर अपनी नीतियों एवं कार्यों को निर्धारित किया। यह संस्था बाद में नेशनल काउंसिल ऑफ इंडिया से जा मिली।[10] इसके पीछे उद्देश्य यह था कि क्षेत्रीय या प्रांतीय स्तर पर कार्य कर रही सुधारवादी संस्थाओं को समायोजित कर समाज सुधार कार्यक्रमों को सघवादी संरचना में ढाला जा सके। 1926 के आम चुनाव में महिलाओं ने भाग लिया। विमेन्स इंडिया एसोसियेशन की ओर से स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में भाग लेने वाली कमला देवी चट्टोपाध्याय, कांग्रेस प्रत्याशी से हार गयी। भारतीय महिला संघ ने सरकारी अधिकारियों के पास एक शिष्ट मंडल भेजकर विधान परिषद में महिलाओं को नियुक्त करने का आग्रह किया। तीन महिलाओं मद्रास में डॉ.मुथुलक्ष्मी रेड्डी, संयुक्त प्रांत के श्रीमती अहमद शाह तथा मध्य प्रांत में श्रीमती ए.काले को नियुक्त किया गया। 1927 में, डॉ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी सर्वसम्मति से परिषद की अध्यक्ष चुन ली गई।[11] जो एक विश्व कीर्तिमान थी। वह उनकी आशाओं पर खरी उतरी जो यह मानते थे कि महिलाएँ राजनीति में व्यापक भूमिका निभा सकती है। प्रथम सत्र में वे महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति में सुधार हेतु विधेयक लाई जिनका उद्देश्य, देवदासी एवं बाल विवाह जैसे कुप्रथाओं का उन्मूलन सभी स्कूल एवं कॉलेजों में चिकित्सा संबंधी जाँच की अनिवार्यता, गरीब लड़कियों के लिए उच्च विद्यालय तक के शैक्षणिक शुल्क में कटौती, बाल अस्पताल की स्थापना तथा अभावग्रस्त महिलाओं के प्रशिक्षण के लिए अनुदान की व्यवस्था आदि के रूप में जनकल्याण था। इन महिलाओं की शक्ति उनकी बहुमूल्य राष्ट्र सेवा में निहित थी जो उन्होंने राष्ट्र के लिए अर्पित कर दी और खुद को इसके लिए आन्दोलन में झोंक दिया। भारतीय स्वतंत्राता के लिए लड़ी गयी लम्बी लड़ाई अंतत: 15 अगस्त 1947 को माउंट बेटन योजना के साथ समाप्त हुई और लाखों लोगों के सपनों को पूरा करने के लिए स्वतंत्र भारत का उदय हुआ। इसमें महिलाओं की भूमिका भी कई रूपों में महत्वपूर्ण रही थी। भारी संख्या में महिलाओं की भागीदारी ने स्वराज की महत्ता को बढ़ा दिया तथा इस आन्दोलन को जन आंदोलन बनाने में महिलाएँ मददगार रही।

स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण में भी महिलायें पीछे नहीं रही। अक्टूबर 1946 में बनी संविधान सभा में सरोजिनी नायडू, दुर्गाबाई देशमुख, रेणुका राय, तथा हंसा मेहता को भी संविधन के निर्माण के लिए चुना गया। इसके साथ ही राजकुमारी अमृत कौर ने संविधन सभा के मौलिक अधिकार पर बनी उप-समिति

के सदस्य के रूप में किसी भी रूप में या किसी भी आधार पर होने वाले भेदभाव को समाप्त कर लिंग समानता स्थापित करने हेतु उपबन्धों को आहूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के बाद विशिष्ट वर्गीय महिला आंदोलन ने मताधिकार संबंधी अपनी लड़ाई भी जीत ली। कांग्रेस तथा कुछ महिला संगठनों की साझीदारी ने इसे स्थापित किया तथा अब सभी क्षेत्र से महिलाएँ राजनीति में हिस्सा ले सकती थी। 1917 में एनी बेसेंट और 1925 में सरोजनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुई थी। इस राजनीतिक भूमिका ने महिलाओं के जीवन में व्यापक परिवर्तन आए। अब वे अधिक आत्मविश्वास से पूर्ण थी तथा अब उनके जीवन से निजी व सर्वाजनिक के पृथकता के बाधक तत्व समाप्त हो चुके थे। हालाँकि अभी भी जो भूतकाल को आदर्श के रूप में मानते थे उनके लिए यह स्वीकार्य नहीं था और इस मुद्दे में वे विवाद को जारी रखे हुए थे। अत: महिलाओं की क्षमता में विश्वास रखने वाले तथा कुछ संकीर्ण परंपरावादी लोगों के बीच वैचारिक द्वन्द्व कायम था। कुल मिलाकर पाँच ऐसे तथ्य है जिन्होंने 1947 से पहले की भारतीय महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी एवं संगठनों को आकार प्रदान किया, जैसे औपनिवैशिक शोषण एवं प्रारंभिक जनआंदोलन, महिलाओं के आंदोलन में प्रारंभिक स्तर पर विशिष्ट वर्ग की महिलाओं की भूमिका एवं समाज-सुधारक आन्दोलन तथा पितृसत्तात्मक भारतीय संस्कृति एवं समाज पर उग्र आक्रमण का अभाव। जब महिलाएँ संघर्षरत थी तब भी उन्होंने हिंसा तथा उग्रता को व्यापक स्तर पर नहीं अपनाया। इसके फलस्वरूप संविधान में महिलाओं के अधिकार एवं समानता को स्थापित किया गया। जो नहीं हो सका वह था, कांग्रेस में किसी सशक्त महिला विभाग का गठन या पृथक महिला राजनीतिक संगठन का निर्माण। ऐसे संगठन सभी सांविधनिक प्रावधनों को महिलाओं के दिन-प्रतिदिन जीवन में वास्तविक रूप से लागू करवा पाने में सहायक सिद्ध हो सकती थी। फिर भी हम देखते हैं कि भारत के राष्ट्रीय आंदोलनों में और भारतीय राजनीति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और भारत की समृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

निष्कर्ष :

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एक ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रतीक थी, जिसने न केवल स्वतंत्रता संग्राम की दिशा को सशक्त किया, बल्कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को भी एक नई पहचान दी। प्रारंभ में जहाँ महिलाओं की भूमिका पारंपरिक सीमाओं तक सीमित थी, वहीं राष्ट्रवादी आंदोलनों के विभिन्न चरणों में उनकी सक्रियता ने यह सिद्ध कर दिया कि महिलाएँ भी राजनीतिक चेतना, नेतृत्व और बलिदान की पूर्ण क्षमता रखती हैं। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे बड़े आंदोलनों में महिलाओं ने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया और अनेक बार उन्होंने जेल यात्राएं, सत्याग्रह, प्रदर्शन और विदेशी वस्त्रों की होली जलाने जैसे कार्यों में अग्रणी भूमिका निभाई। इन आंदोलनों में भाग लेने वाली महिलाओं ने सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए अपने आत्मबल, साहस और समर्पण से यह सिद्ध किया कि वे भी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष में बराबर की सहभागी हैं। सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अरुणा आसफ अली, कस्तूरबा गांधी जैसी महिला नेताओं ने न केवल प्रेरणा प्रदान की, बल्कि नेतृत्व क्षमता का उदाहरण भी प्रस्तुत किया। महिलाओं की इस सक्रिय भागीदारी ने स्वतंत्र भारत के संविधान में उन्हें राजनीतिक अधिकार, समानता और मताधि कार दिलाने की आधारभूमि तैयार की। यह भी स्पष्ट होता है कि महिला सहभागिता केवल राष्ट्रवाद तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसने महिला शिक्षा, सामाजिक सुधार और राजनीतिक सहभागिता की व्यापक दिशा को भी प्रभावित किया। अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल एक राजनीतिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति भी था, जिसमें महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण की नींव रखी, जिसे स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में साकार रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ :

1. नारी देसाई, विमेन इन मॉडर्न इंडिया वोरा एण्ड क. पब्लिशर्सप्रा. लि., बम्बई, 1958, पृष्ठ 113
2. पर्घ्वनी सेन गुप्ता, दि स्टोरी ऑफ विमेन इन इंडिया, इंडियाबुक कम्पनी, नई दिल्ली, 1974, पृष्ठ 157
3. मार्गेट कोजिन्स, इंडिया विमेन हुड टुडे, किताब स्टोर, इलाहबाद, 1941, पृष्ठ 17
4. वही, पृष्ठ 70
5. लीला कस्तूरी एवं वीना मजूमदार, विमेन एण्ड नेशनलिज्म, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 14
6. गेराल्डिन पफोर्ब्स, इंडियन विमेन एण्ड फीड़म मूवमेन्ट ए हिस्टोरियन्स पर्सपेक्टिवस, रिसर्च सेंटर फॉर विमेन्स स्टडीज, एस.एन.डी.टी. विमेन्स युनिवर्सिटी, मुम्बई, 1997, पृष्ठ 56
7. वही, पृष्ठ 32-34
8. कमला देवी चट्टोपाध्याय, इंडियन विमेन्स बैटल फॉर फ्रीडम, अभिनव पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 83
9. कमला देवी चट्टोपाध्याय, अवेकनिंग ऑफ इंडियन विमेन, एवरी मेन्स प्रेस, मद्रस, 1939, पृष्ठ 53
10. स्त्री धर्म दिसम्बर, 1927
11. विमेन्स इंडिया एसोसिएशन रिपोर्ट, 1931-32, पृष्ठ 6-

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण, भारत में किफायती आवास का उभरता हुआ परिदृश्यः रोहतक मण्डल के संदर्भ में

डॉ० मंजीत कुमार

सहायक प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान विभाग (राजनीति विज्ञान), बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

दीपिका

शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान विभाग (राजनीति विज्ञान), बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सारांश

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण भारत सरकार की एक व्यापक ग्रामीण आवासीय पहल है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन व वंचित वर्गों के लिए किफायती, स्थायी और गरिमापूर्ण आवास सुनिश्चित करना है। प्रस्तुत अध्ययन रोहतक मण्डल के पाँच जिलों- रोहतक, झज्जर, सोनीपत, चरखी दादरी एवं भिवानी- में वर्ष 2016 से 2022 तक योजना की प्रगति, प्रभावशीलता और क्रियान्वयन की स्थिति का विश्लेषण करता है। शोध में यह पाया गया कि अधिकांश जिलों ने पंजीकरण, जियो-टैगिंग, स्वीकृतियों और निर्माण कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति की, किन्तु कुछ क्षेत्रों में चतुर्थ किश्त के वितरण में विलंब तथा क्रियान्वयन में असमानता रही। योजना की विशेषताएँ जैसे प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, वित्तीय समावेशन, तकनीकी सहायता और शौचालय निर्माण जैसी सहायक सुविधाएँ इसे समग्र ग्रामीण विकास की दिशा में एक प्रभावी माध्यम बनाती हैं। तथापि, लाभार्थियों की पहुँच, जागरूकता तथा स्थानीय प्रशासनिक दक्षता जैसे क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता भी रेखांकित होती है। यह अध्ययन दर्शाता है कि प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण न केवल आवास निर्माण की योजना है, बल्कि सामाजिक समावेशन, आत्मनिर्भरता और जीवन गुणवत्ता सुधार का एक व्यवहारिक उदाहरण है।

मुख्य शब्दः किफायती आवास, प्रधानमंत्री आवास योजना, जियो-टैगिंग, योजना क्रियान्वयन

प्रस्तावना

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण भारत सरकार द्वारा वर्ष 2016 में प्रारंभ की गई एक प्रमुख ग्रामीण आवासीय योजना है, जिसका उद्देश्य वर्ष 2022 तक 'सभी के लिए आवास' सुनिश्चित करना था। इस योजना के अंतर्गत सभी कच्चे एवं जर्जर मकानों को पक्के एवं मूलभूत सुविधाओं से युक्त स्थायी आवासों में परिवर्तित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। सरकार द्वारा 2 करोड़ 95 लाख आवासों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया था, जिसमें से हालिया आँकड़ों के अनुसार 2 करोड़ 10 लाख से अधिक आवासों का निर्माण पूर्ण किया जा चुका है, जो ग्रामीण आवास सुरक्षा की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति को दर्शाता है (के एवं मैरी, 2020)।[1] हर पात्र लाभार्थी को समतल क्षेत्रों में एक लाख बीस हजार रुपये तथा कठिन/पर्वतीय क्षेत्रों में एक लाख तीस हजार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त शौचालय निर्माण हेतु स्वच्छ भारत मिशन के अंतर्गत बारह हजार रुपये तथा महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के अंतर्गत 90 से 95 दिवस का मजदूरी कार्य भी दिया जाता है (चटर्जी, 2017)।[2]

इस योजना की प्रमुख विशेषताओं में पारदर्शी चयन प्रक्रिया (सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना 2011 के आँकड़ों पर आधारित), आवासों का भू-चिह्नीकरण तथा सीधे लाभार्थियों के खातों में धन अंतरण प्रणाली सम्मिलित हैं, जो इसके सुचारु क्रियान्वयन को सुनिश्चित करते हैं। यद्यपि इस योजना ने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, फिर भी शोध से यह संकेत मिलता है कि लगभग 35 से 40 प्रतिशत लाभार्थियों को भुगतान में देरी अथवा निर्माण में बाधाओं के कारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है (हर्षा एवं अन्य, 2021)।[3] वित्तीय दृष्टिकोण से योजना पर अनुमानित कुल निवेश लगभग 2 लाख 95 हजार करोड़ रुपये आंका गया है, जिसमें केंद्र तथा राज्य सरकारों के मध्य 60:40 (विशेष श्रेणी के राज्यों हेतु 90:10) अनुपात में व्यय वहन किया जाता है (करण सिंह, 2024)।[4] सर्वेक्षणों से यह भी ज्ञात हुआ कि 70 प्रतिशत से अधिक लाभार्थियों ने अपने नव-निर्मित घरों की गुणवत्ता तथा उपलब्ध सुविधाओं

पर संतोष व्यक्त किया (सलिमानी एवं आकाश, 2024)।[5] पूर्ववर्ती इंदिरा आवास योजना की तुलना में प्रधानमंत्री आवास योजना – ग्रामीण अधिक प्रभावी सिद्ध हुई है, क्योंकि इसमें आँकड़ों पर आधारित नियोजन, धन की निगरानी प्रणाली तथा लक्षित पहुँच में सुधार देखा गया है (हलदर एवं कोली, 2024)।[6]

हालाँकि, वहनीयता अब भी एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है। आँकड़ों से ज्ञात होता है कि लगभग 30 से 35 प्रतिशत निर्धन परिवार, सरकार की सहायता मिलने के बावजूद, समुचित आवास की पहुँच से अब भी वंचित हैं (सिंह एवं सिंह, 2023)।[7] यह तथ्य यह इंगित करता है कि वित्तीय समावेशन, जागरूकता तथा क्रियान्वयन में और अधिक सुदृढ़ता की आवश्यकता है।

समग्र रूप से, प्रधानमंत्री आवास योजना – ग्रामीण ने भारत में ग्रामीण आवासीय अभाव को दूर करने की दिशा में एक परिवर्तनकारी नीति के रूप में उभर कर, आर्थिक सहयोग, रोजगार सृजन तथा सामाजिक उन्नयन के समन्वय के माध्यम से नवाचार प्रस्तुत किया है।

शोध के उद्देश्य

1. किफायती आवास की अवधारणा का विश्लेषण करना।
2. प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण की प्रमुख विशेषताओं और संरचना का अध्ययन करना।
3. पीएमएवाई-जी योजना की प्रगति का मूल्यांकन करना।
4. हरियाणा राज्य के रोहतक मण्डल में पीएमएवाई-जी के प्रदर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण करना।

अध्ययन क्षेत्र

इस शोध का अध्ययन क्षेत्र हरियाणा राज्य का रोहतक मण्डल है, जो निम्नलिखित पाँच जिलों को सम्मिलित करता है-

1. रोहतक जिला
2. झज्जर जिला
3. सोनीपत जिला
4. चरखी दादरी जिला
5. भिवानी जिला

इन जिलों का चयन इस कारण किया गया है क्योंकि ये क्षेत्रीय विविधताओं, प्रशासनिक प्रभावशीलता, ग्रामीण-शहरी अंतराल तथा योजना के क्रियान्वयन की अलग-अलग स्थिति को प्रतिबिंबित करते हैं। प्रत्येक जिले में विभिन्न ब्लॉकों के स्तर पर योजना के लक्ष्यों, पंजीकरण, स्वीकृतियों, जिओ-टैगिंग और पूर्ण निर्माण जैसे मानकों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

शोध की पद्धति

इस अध्ययन में वर्णनात्मक और तथ्यात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसका उद्देश्य प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के अंतर्गत किफायती ग्रामीण आवास की अवधारणा और उसकी क्रियान्वयन स्थिति का गहन मूल्यांकन करना है। शोध पूरी तरह से द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है।

शोध की प्रकृति

यह अध्ययन गैर-प्रायोगिक तथा गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों विधाओं का सम्मिलन है।

आंकड़ों का प्रकार

अध्ययन में प्रयुक्त आंकड़े पूरी तरह द्वितीयक स्रोतों से लिए गए हैं।

आंकड़ों के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं-

1. भारत सरकार का ग्रामीण विकास मंत्रालय
2. प्रधानमंत्री आवास योजना की आधिकारिक वेबसाइटें
3. पी.आर.एस. लेजिस्लेटिव रिसर्च
4. भारत के वार्षिक केंद्रीय बजट रिपोर्ट्स (2010-2022)
5. सामाजिक-आर्थिक जातीय जनगणना
6. राज्य व जिला स्तरीय रिपोर्टें, विशेषकर रोहतक मण्डल के जिलों से संबंधित प्रगति रिपोर्टें

विश्लेषण विधि

1. आंकड़ों का विश्लेषण सांख्यिकीय सारणियों, प्रतिशतों और प्रवृत्तियों के माध्यम से किया गया है।
2. ब्लॉक-स्तरीय आँकड़ों का परीक्षण, विशेष रूप से पंजीकरण, जियो-टैगिंग, स्वीकृतियाँ और निर्माण की पूर्णता के आधार पर किया गया है।

समयावधि

अध्ययन की समयावधि वर्ष 2016 से 2022 तक की है, जो योजना के आरंभिक और मध्यवर्ती क्रियान्वयन की स्थिति को दर्शाती है।

सीमाएँ

1. यह अध्ययन केवल द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, अत: लाभार्थियों की प्रत्यक्ष राय या अनुभवों को सम्मिलित नहीं किया गया है।
2. अध्ययन क्षेत्र रोहतक मण्डल तक सीमित है, अत: इसके निष्कर्ष अन्य क्षेत्रों पर समान रूप से लागू नहीं किए जा सकते।

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण की मुख्य विशेषताएँ[8]

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण की मुख्य विशेषताओं में ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की गुणवत्ता और उपलब्धता में सुधार हेतु अनेक महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। इस योजना के अंतर्गत न्यूनतम आवास आकार को 20 वर्ग मीटर से बढ़ाकर 25 वर्ग मीटर किया गया है, जिसमें स्वच्छ खाना पकाने के लिए पृथक स्थान की व्यवस्था भी शामिल है। मैदानी क्षेत्रों में आवास निर्माण हेतु दी जाने वाली सहायता राशि को रू. 70,000 से बढ़ाकर रू. 1.20 लाख कर दिया गया है, जबकि पहाड़ी राज्यों, दुर्गम क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातीय उपयोजना जिलों के लिए यह सहायता रू. 75,000 से बढ़ाकर रू. 1.30 लाख कर दी गई है। यह राशि केंद्र और राज्य सरकारों के बीच लागत-साझेदारी के आधार पर मैदानी क्षेत्रों में 60:40 तथा उत्तर-पूर्वी व पहाड़ी राज्यों में 90:10 के अनुपात में वहन की जाती है।

लाभार्थियों की पहचान सामाजिक-आर्थिक जातीय जनगणना 2011 (SECC-2011) के आंकड़ों के आधार पर की जाती है, जिसमें ग्राम सभा द्वारा आवास की आवश्यकता और सामाजिक वंचन मानकों के आधार पर चयन किया जाता है। वित्तीय सहायता के अतिरिक्त, लाभार्थियों को निर्माण कार्य हेतु तकनीकी सहायता भी प्रदान की जाती है। यदि कोई लाभार्थी चाहे, तो वह ৳70,000 तक का ऋण वित्तीय संस्थानों से ले सकता है। निर्माण लागत व प्रक्रिया को सरलता से समझाने हेतु लाभार्थियों के लिए विशेष प्रशिक्षण मॉड्यूल भी विकसित किया गया है। सभी भुगतान लाभार्थियों के बैंक या डाकघर खातों में प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) प्रणाली के माध्यम से 'आवास सॉफ्ट' (AwasSoft MIS) पोर्टल पर पंजीकृत जानकारी के अनुसार किए जाते हैं।

योजना के अंतर्गत प्रत्येक आवास में रू. 12,000 की लागत से शौचालय की सुविधा तथा मनरेगा के तहत 90 से 95 दिनों का अकुशल श्रमदिवस भी प्रदान किया जाता है, जो कि निर्धारित इकाई लागत से अलग है। इसके अतिरिक्त, बिजली, पाइप से पीने का पानी, वर्षा जल संचयन, उज्ज्वला योजना के तहत एलपीजी कनेक्शन, सौर ऊर्जा, फलदार पौधों, मुर्गी पालन, बकरी पालन, डेयरी शेड, ठोस व तरल कचरा प्रबंधन जैसी सेवाओं के साथ समन्वित प्रयासों को प्रोत्साहित किया गया है। स्थानीय निर्माण शैलियों, पारंपरिक ज्ञान और सौंदर्यशास्त्र को ध्यान में रखते हुए आवास डिजाइनों की एक सूची तैयार की गई है तथा राजमिस्त्रियों को प्रशिक्षण देकर गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु प्रमाण-पत्र भी मौके पर प्रदान किए जाते हैं। जहां संभव हो, वहाँ ग्राम पंचायत, खंड या जिले को एक इकाई मानते हुए आवासीय संतृप्ति (saturation approach) अपनाई जाती है।

किफायती आवास की परिभाषा

किफायती आवास की अवधारणा बीते लगभग पंद्रह वर्षों से व्यापक रूप में प्रयुक्त होती रही है, किंतु इसकी सटीक परिभाषा करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। रॉबिन्सन, स्कॉबी और हैलिनन (2006)[9] के अनुसार, किफायती आवास को उस प्रकार के आश्रय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे एक परिवार बिना आर्थिक संकट में पड़े वहन कर सके, अर्थात् ऐसा आवास जो खर्च की दृष्टि से प्रभावशाली हो। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किफायती आवास को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। इस संदर्भ में मैकलेनन और विलियम्स (1990)[10] द्वारा प्रस्तुत परिभाषा अत्यंत उपयोगी मानी जाती है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि किफायती आवास वह है जो किसी निर्धारित मानक के अनुरूप हो, और जिसकी कीमत अथवा किराया किसी तृतीय पक्ष (अर्थात् सरकार) की दृष्टि में पारिवारिक आय पर अनुचित बोझ न डाले।

सामान्यत: किफायती आवास से अभिप्राय उन मकानों से होता है जो उन परिवारों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं जिनकी आय इतनी नहीं होती कि वे बाजार से उपयुक्त आवास खरीद सकें। एडेबोयेजो (2005)[11] के अनुसार, गरिमापूर्ण आवास को व्यक्ति, परिवार और पर्यावरण की एक मूलभूत आवश्यकता के रूप में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है। अमेरिका और कनाडा में किफायती आवास का एक प्रचलित मापदंड यह है कि आवास पर होने वाला कुल व्यय परिवार की सकल आय का 30 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें मकान मालिकों के लिए कर और बीमा तथा सभी उपभोक्ता सेवाओं का खर्च सम्मिलित होता है (वाइब्रेंट गुजरात, 2017 में उद्धृत)।[12]

किफायतीपन की सर्वाधिक स्वीकृत परिभाषाओं में से एक यह मानी जाती है कि यह आवास पर होने वाले व्यय और परिवार की आय के अनुपात को मापता है। यह दृष्टिकोण भारत सरकार द्वारा भी स्वीकार किया गया है, जिसने "High Level Task Force on ffAordable Housing for All (2008)"[13] की रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया कि किफायती आवास से तात्पर्य उस आवास से है जो किसी न किसी प्रकार की किफायती कसौटी पर खरा उतरता हो, जैसे कि परिवार की आय, मकान की इकाई का आकार, मासिक किस्त की वहन-क्षमता या मकान की कीमत और वार्षिक आय के अनुपात के आधार पर।

तालिका 1.1: भारत में प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण (पीएमएवाई-जी) की प्रगति (2022-23)

								किस्त					
क्र० सं०	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	तय लक्ष्य (Mo RD)	राज्य द्वारा तय लक्ष्य	पंजी कृत	पंजीकृत में से जिओ टैग किए गए	जिओ टैग में से स्वीकृत	सत्यापित खातों सहित स्वीकृति	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पूर्ण और सत्यापित	पूर्ण निर्माण
	कुल	2322614	2320173	2652743	2621288	2318931	2295680	1212035	1166722	1121887	63276	1131727	1140136
1	अरुणाचल प्रदेश	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
2	असम	0	0	7	7	0	0	0	0	0	0	0	0
3	बिहार	0	0	38286	37851	0	0	0	0	0	0	0	0
4	छत्तीसगढ़	78998	78998	65582	64856	78996	78432	78237	73783	68629	63276	66086	66172
5	गोवा	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
6	गुजरात	168146	167279	20235	20177	166910	165297	165719	153320	129523	0	137395	143963
7	हरियाणा	0	0	20	20	0	0	0	0	0	0	0	0
8	हिमाचल प्रदेश	0	0	15	15	0	0	0	0	0	0	0	0
9	जम्मू और कश्मीर	0	0	2585	2585	0	0	0	0	0	0	0	0
10	झारखंड	0	0	6917	6820	0	0	0	0	0	0	0	0
11	केरल	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
12	मध्य प्रदेश	0	0	11633	11201	0	0	0	0	0	0	0	0
13	महाराष्ट्र	0	0	51212	47293	0	0	0	0	0	0	0	0
14	मणिपुर	0	0	19	19	0	0	0	0	0	0	0	0
15	मेघालय	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
16	मिजोरम	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
17	नागालैंड	0	0	1	1	0	0	0	0	0	0	0	0
18	ओडिशा	97037	96666	96325	95982	95960	95088	93657	69666	61266	0	62469	62469
19	पंजाब	0	0	549	547	0	0	0	0	0	0	0	0
20	राजस्थान	0	0	16733	16648	0	0	0	0	0	0	0	0
21	सिक्किम	0	0	24	2	0	0	0	0	0	0	0	0
22	तमिलनाडु	0	0	7	0	0	0	0	0	0	0	0	0
23	त्रिपुरा	73	74	55	55	72	71	72	69	66	0	61	61
24	उत्तर प्रदेश	858498	857301	854943	854941	857284	856494	856458	852119	844717	0	847983	849738
25	उत्तराखंड	17882	17875	1048	1048	17820	17789	17820	17743	17678	0	17733	17733
26	पश्चिम बंगाल	1101723	1101723	1486147	1461023	1101723	1082358	0	0	0	0	0	0
27	अंडमान और निकोबार	257	257	393	190	166	151	72	22	8	0	0	0
28	दादरा और नगर हवेली	0	0	2	2	0	0	0	0	0	0	0	0
29	दमन और दीव	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
30	लक्षद्वीप	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
31	पुडुचेरी	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
32	आंध्र प्रदेश	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
33	कर्नाटक	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
34	तेलंगाना	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
35	लद्दाख	0	0	5	5	0	0	0	0	0	0	0	0
	कुल योग	2322614	2320173	2652743	2621288	2318931	2295680	1212035	1166722	1121887	63276	1131727	1140136

स्रोत: प्रधानमंत्री आवास योजना - ग्रामीण, ग्रामीण विकास मंत्रालय

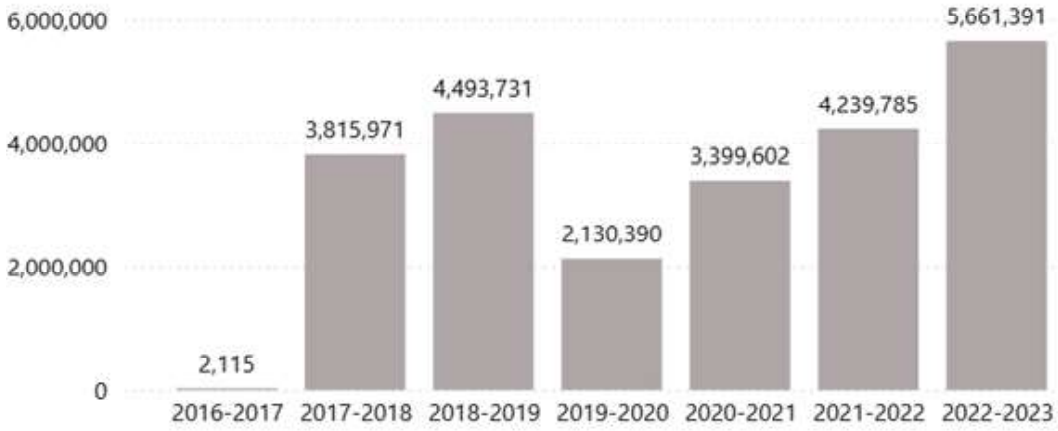

आकृति 1.1: प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के अंतर्गत पूर्ण किए गए कुल मकान (वर्ष 2016-2017 से 2022-2023 तक)

तालिका 1.2: भारत में ग्रामीण आवास योजना पर बजट बनाम वास्तविक व्यय (करोड़ रुपये में)

वर्ष	निर्धारित बजट	वास्तविक व्यय	निर्धारित बजट का प्रतिशत
2010–11	8,966	10,337	115%
2011–12	8,996	9,872	110%
2012–13	9,966	7,868	79%
2013–14	13,666	12,981	95%
2014–15	16,000	11,106	69%
2015–16	10,025	10,116	101%
2016–17	15,000	16,071	107%
2017–18	23,000	22,572	98%
2018–19	21,000	19,308	92%
2019–20	19,000	18,475	97%
2020–21	19,500	–	–
2021–22	19,500	–	–

स्रोत: भारत के संघीय बजट, वर्ष 2010-11 से 2021-22 तक पी.आर.एस.

तालिका 1.3: पीएमएवाईजी योजना के तहत चरखी दादरी जिले की प्रगति, 2016 से 2022

क्र. सं.	खंड का नाम	जिले द्वारा निर्धारित लक्ष्य	पंजीकृत	पंजीकृत में से जियो टैग किया गया	जियो टैग की गई स्वीकृतियाँ	सत्यापित खातों के साथ स्वीकृतियाँ	किस्त				पूर्ण और सत्यापित	पूर्ण
							पहली	दूसरी	तीसरी	चौथी		
	कुल	284	284	284	284	284	284	283	281	0	277	283
1	बाढ़ड़ा	115	115	115	115	115	115	114	114	0	113	114
2	बौंद	7	7	7	7	7	7	7	7	0	7	7
3	चरखी दादरी	79	79	79	79	79	79	79	79	0	79	79
4	झोझू	83	83	83	83	83	83	83	81	0	78	83
	कुल	284	284	284	284	284	284	283	281	0	277	283

स्त्रोत: भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय,
https://rhreporting.nic.in/netiay/DataAnalytics/PhysicalProgressRpt.aspx

प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) के अंतर्गत वर्ष 2016 से 2022 तक चरखी दादरी जिले में कुल 284 आवासों का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जिसमें शत-प्रतिशत पंजीकरण पूर्ण हुआ। इन सभी लाभार्थियों की भू-स्थान आधारित टैगिंग भी पूरी की गई और उन्हें योजना के अनुसार स्वीकृति प्रदान की गई। सत्यापित खातों के आधार पर सभी 284 मामलों में स्वीकृति दी गई, जिनमें से 283 को पहली किश्त, 281 को दूसरी किश्त और 277 को तीसरी किश्त का भुगतान किया गया, जबकि चौथी किश्त किसी को नहीं मिली। अब तक 277 आवास पूर्ण होकर सत्यापित हो चुके हैं, जबकि 283 को पूर्ण घोषित किया गया है। यदि खंड-वार स्थिति की बात करें तो बाढ़ड़ा खंड में 115 का लक्ष्य निर्धारित हुआ, और सभी लाभार्थियों का पंजीकरण, टैगिंग व स्वीकृति पूर्ण हुई, जिनमें से 113 मकान पूर्ण व सत्यापित हैं। बौंद खंड में 7 आवासों का लक्ष्य रखा गया, जिन सभी का पंजीकरण, टैगिंग और निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। चरखी दादरी खंड में कुल 79 लाभार्थियों को शामिल किया गया, जिन सभी का कार्य शत-प्रतिशत पूर्ण हुआ। झोझू खंड में 83 लाभार्थियों का चयन किया गया, जिनमें से 81 को दूसरी किश्त तक सहायता मिली, तथा 78 आवास पूर्ण व सत्यापित हुए। संपूर्ण जिले में योजना की प्रगति संतोषजनक रही है, परन्तु चौथी किश्त का वितरण अभी लंबित है, जिसे शीघ्र पूरा करने की आवश्यकता है ताकि समस्त लाभार्थियों को योजना का पूर्ण लाभ मिल सके।

तालिका 1.4: पीएमएवाई-जी योजना के अंतर्गत सोनीपत के विभिन्न ब्लॉकों में लक्ष्य, पंजीकरण, और स्वीकृतियों की स्थिति, 2016-22

क्रमांक	ब्लॉक का नाम	जिलों द्वारा निर्धारित लक्ष्य	पंजीकृत	पंजीकृत में से जिओ टैग्ड	जिओ टैग्ड में से स्वीकृतियां	सत्यापित खातों के साथ स्वीकृतियां	किस्त				पूर्ण और सत्यापित	पूर्ण
							प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ		
	कुल	1200	1222	1215	1200	1199	1200	1194	1183	0	1144	1195
1	गन्नौर	293	294	294	293	293	293	290	289	0	280	290
2	गोहाना	92	95	93	92	92	92	92	92	0	83	92
3	कठुरा	93	104	101	93	93	93	93	93	0	88	93
4	खरखोदा	201	202	201	201	201	201	201	199	0	193	201
5	मुंडलाना	197	197	197	197	197	197	196	195	0	193	196
6	मुरथल	152	153	153	152	151	152	150	147	0	149	151
7	राई	23	25	25	23	23	23	23	23	0	22	23
8	सोनीपत	149	152	151	149	149	149	149	145	0	136	149
	कुल	1200	1222	1215	1200	1199	1200	1194	1183	0	1144	1195

स्त्रोत: भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय,

https://rhreporting.nic.in/netiay/DataAnalytics/PhysicalProgressRpt.aspx

प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) के अंतर्गत वर्ष 2016 से 2022 तक सोनीपत जिले में कुल 1200 आवासों का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस अवधि में 1222 लाभार्थियों का पंजीकरण किया गया, जिनमें से 1215 का जिओ टैग किया गया और 1200 मामलों को स्वीकृति प्रदान की गई। सत्यापित खातों के साथ 1199 स्वीकृतियाँ दी गई और सभी स्वीकृत लाभार्थियों को प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय किश्तें जारी की गई, जबकि चतुर्थ किश्त का वितरण किसी को भी नहीं हुआ। अब तक 1144 मकान पूर्ण होकर सत्यापन की प्रक्रिया में आ चुके हैं और कुल 1195 मकानों को पूर्ण घोषित कर दिया गया है। यदि ब्लॉकवार विवरण पर दृष्टि डालें तो गन्नौर में 293 लक्ष्य के विरुद्ध 294 पंजीकरण हुए, जिनमें से 293 मामलों को स्वीकृति मिली और 290 को तीनों किश्तें मिल चुकी हैं। गवींदं में 92 लक्ष्य के विरुद्ध 95 पंजीकरण हुए और 92 को अंतिम रूप से सहायता प्राप्त हुई। कठुरा में 93 के लक्ष्य की तुलना में 104 पंजीकरण हुए और 93 मकान पूर्ण व सत्यापित हुए। खरखोदा में 201 का लक्ष्य था और सभी लाभार्थियों को सहायता दी गई, जिसमें से 193 मकान पूर्ण व सत्यापित हैं। मुंडलाना में 197 लक्ष्य के अनुरूप ही पंजीकरण व स्वीकृति हुई और 196 मकान पूर्ण माने गए हैं। मुरथल में 152 के लक्ष्य पर 151 लाभार्थियों को अंतिम सहायता मिली और 149 मकान पूर्ण माने गए। राई ब्लॉक में 23 मामलों में पूरी प्रक्रिया पूर्ण हुई। सोनीपत ब्लॉक में 149 लक्ष्य के अनुरूप 149 लाभार्थियों को अंतिम सहायता प्राप्त हुई और 136 मकानों का निर्माण पूर्ण हो चुका है। इस प्रकार सोनीपत जिले में योजना की समग्र प्रगति संतोषजनक रही है, यद्यपि चतुर्थ किश्त का वितरण अब तक लंबित है, जिसे शीघ्र पूरा करने की आवश्यकता है ताकि सभी पात्र लाभार्थियों को योजना का पूर्ण लाभ सुनिश्चित किया जा सके।

तालिका 1.5: प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के तहत झज्जर में पंजीकृत कुल लाभार्थियों की संख्या, 2016-22

वर्ष	पंजीकृत लाभार्थियों की संख्या
2016–2017	312
2017–2018	113
2018–2019	0
2019–2020	0
2020–2021	0
2021–2022	288

स्त्रोत: भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय,

https://rhreporting.nic.in/netiay/DataAnalytics/PhysicalProgressRpt.aspx

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के अंतर्गत वर्ष 2016 से 2022 तक झज्जर जिले में लाभार्थियों के पंजीकरण की स्थिति में उतार-चढ़ाव देखा गया। वर्ष 2016-2017 में सर्वाधिक 312 लाभार्थियों का पंजीकरण हुआ, जिसके पश्चात 2017-2018 में यह संख्या घटकर 113 रह गई। इसके बाद लगातार तीन वर्षों- 2018-2019, 2019-2020 और 2020-2021- में एक भी लाभार्थी का पंजीकरण नहीं हुआ, जिससे योजना की प्रगति स्थगित-सी प्रतीत होती है। परंतु 2021-2022 में योजना को पुनः गति मिली और 288 नए लाभार्थियों का पंजीकरण किया गया। यह आँकड़े यह संकेत देते हैं कि झज्जर जिले में योजना का क्रियान्वयन अनियमित रहा है, जिसमें कुछ वर्षों तक कोई भी प्रगति नहीं हुई, जबकि कुछ वर्षों में अपेक्षाकृत बेहतर सक्रियता देखी गई।

तालिका 1.6: प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के तहत झज्जर में स्वीकृत कुल घरों की संख्या, 2016-22

वर्ष	स्वीकृत घरों की संख्या
2016—2017	313
2017—2018	112
2021—2022	148

स्त्रोतः भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय,

https://rhreporting.nic.in/netiay/DataAnalytics/PhysicalProgressRpt.aspx

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के अंतर्गत वर्ष 2016 से 2022 तक झज्जर जिले में स्वीकृत घरों की संख्या में स्पष्ट अंतराल देखा गया। वर्ष 2016-2017 में कुल 313 घरों को स्वीकृति प्रदान की गई, जो उस समय योजना की सक्रियता को दर्शाता है। इसके बाद 2017-2018 में यह संख्या घटकर 112 रह गई, जो संभवतः आवंटन या पात्रता की शर्तों में परिवर्तन का संकेत देती है। अगले दो वर्षों में- 2018-2019 और 2019-2020- कोई भी स्वीकृति दर्ज नहीं की गई, जिससे योजना की रफ्तार प्रभावित हुई। अंततः वर्ष 2021-2022 में पुनः 148 घरों को स्वीकृति दी गई, जो योजना की आंशिक पुनरारंभता को दर्शाता है। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि झज्जर जिले में योजना का क्रियान्वयन कुछ वर्षों तक शिथिल रहा, परंतु बाद में इसमें आंशिक सुधार देखा गया।

तालिका 1.7: पीएमएवाईजी योजना के तहत भिवानी जिले की प्रगति, 2016-2022

क्रमांक	खंड का नाम	जिले द्वारा निर्धारित लक्ष्य	पंजीकृत	पंजीकृत में से जियो टैग किया गया	जियो टैग की गई स्वीकृतियाँ	सत्यापित खाते वाली स्वीकृतियाँ	पहली	दूसरी	तीसरी	चौथी	पूर्ण और सत्यापित	पूर्ण
कुल		827	853	853	827	827	827	823	822	0	822	823
1	बवानी खेड़ा	78	78	78	78	78	78	77	77	0	77	77
2	बहल	14	14	14	14	14	14	14	14	0	14	14
3	भिवानी	399	407	407	399	399	399	397	396	0	396	397
4	कैरु	50	68	68	50	50	50	50	50	0	50	50
5	लोहारू	29	29	29	29	29	29	29	29	0	29	29
6	सिवानी	44	40	40	40	40	40	40	40	0	40	40
7	तोशाम	213	217	217	217	217	217	216	216	0	216	216
कुल		827	853	853	827	827	827	823	822	0	822	823

स्त्रोतः भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय,

https://rhreporting.nic.in/netiay/DataAnalytics/PhysicalProgressRpt.aspx

प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण के अंतर्गत वर्ष 2016 से 2022 तक भिवानी जिले में कुल 827 आवासों का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस लक्ष्य के विरुद्ध 853 लाभार्थियों का पंजीकरण हुआ, जिन सभी का जियो टैग किया गया। पंजीकृत लाभार्थियों में से 827 को स्वीकृति प्रदान की गई और सत्यापित बैंक खातों के आधार पर सभी 827 को सहायता मंजूर की गई। प्रथम, द्वितीय और तृतीय किश्तों का वितरण क्रमशः 823, 822 और 0 लाभार्थियों को हुआ, जबकि अभी तक किसी को भी चतुर्थ किश्त नहीं मिली है। अब तक 822 मकान पूर्ण होकर सत्यापित हो चुके हैं और 823 को पूर्ण घोषित किया गया है।

खंडवार विश्लेषण में देखा जाए तो बवानी खेड़ा में निर्धारित 78 लक्ष्य पूर्ण रूप से पूरे हुए हैं, जहां 77 मकान पूर्ण और सत्यापित हो चुके हैं। बहल खंड में 14 मकान स्वीकृत हुए और सभी पूर्ण रूप से बन चुके हैं। भिवानी खंड में सर्वाधिक 399 लक्ष्य निर्धारित थे, जिनमें से 397 आवास पूर्ण हुए हैं। कैरु में 50 लक्ष्य के विरुद्ध 68 पंजीकरण हुए, परंतु स्वीकृति केवल 50 को दी गई, और सभी 50 निर्माण पूर्ण कर चुके हैं। लोहारू और सिवानी खंडों में क्रमशः 29 और 40 मकान पूर्ण रूप से बनकर सत्यापित हो चुके हैं। तोशाम खंड में 213 लक्ष्य के विरुद्ध 217 पंजीकरण हुए और 216 मकान अब तक पूर्ण हो चुके हैं। इस प्रकार भिवानी जिले में योजना का क्रियान्वयन संतोषजनक रहा है, जिसमें अधिकांश लाभार्थियों को आवास निर्माण की सभी मुख्य किश्तें मिल चुकी हैं, यद्यपि चतुर्थ किश्त का वितरण अभी लंबित है। जिले के लगभग सभी अनुमोदित लाभार्थियों ने अपने मकान पूर्ण कर लिए हैं, जो योजना की सफल कार्यान्वयन प्रक्रिया को दर्शाता है।

तालिका 1.8: रोहतक में पीएमएवाई-जी योजना का प्रदर्शन, 2016-2022

क्र०सं	ब्लॉक का नाम	जिले द्वारा निर्धारित लक्ष्य	पंजीकृत	जियो–टैग किए गए	जियो –टैग किए गए में से स्वीकृत	सत्यापित खातों के साथ स्वीकृत
	कुल	1231	1280	1245	1231	1227
1	कलानौर	495	509	506	495	491
2	लाखन माजरा	30	30	30	30	30
3	महम	593	599	596	593	593
4	रोहतक	84	84	84	84	84
5	सांपला	29	58	29	29	29
	कुल	1231	1280	1245	1231	1227

स्त्रोतः भारत सरकार ग्रामीण विकास मंत्रालय, https://rhreporting.nic.in/netiay/DataAnalytics/PhysicalProgressRpt.aspx

यह तालिका रोहतक जिले में प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण (PMAY-G) के प्रदर्शन का विस्तृत विवरण देती है। इसमें जिले द्वारा आवास निर्माण के लिए निर्धारित लक्ष्यों, पंजीकरण की संख्या, जियो-टैगिंग, और स्वीकृत खातों की जानकारी शामिल है।

कुल 1231 मकानों का लक्ष्य रखा गया था, जिसमें से 1280 मकान पंजीकृत किए गए, 1245 जियो-टैग किए गए और 1227 खातों को सत्यापित कर स्वीकृत किया गया। ब्लॉक-वार विवरण इस प्रकार है-

(क) कलानौर - यहां 495 मकानों का लक्ष्य था, जिनमें से 509 पंजीकृत हुए, 506 जियो-टैग किए गए और 491 खातों को सत्यापित कर स्वीकृत किया गया। यह ब्लॉक लक्ष्य से अधिक पंजीकरण करने और लगभग सभी मकानों को जियो-टैग करने में सफल रहा।

(ख) लाखन माजरा - 30 मकानों का लक्ष्य था, सभी 30 मकान पंजीकृत और जियो-टैग किए गए और 30 खातों को सत्यापित किया गया। यह ब्लॉक अपने निर्धारित लक्ष्य को पूरी तरह से पूरा करने में सफल रहा।

(ग) महम - 593 मकानों का लक्ष्य था, जिनमें से 599 पंजीकृत, 596 जियो-टैग किए गए और 593 खातों को सत्यापित कर स्वीकृत किया गया। महम ने लक्ष्य से अधिक पंजीकरण और जियो-टैगिंग के साथ-साथ सभी खातों को सत्यापित करने में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया।

(घ) रोहतक - 84 मकानों का लक्ष्य था, जिनमें से सभी 84 मकान पंजीकृत, जियो-टैग किए गए और सत्यापित किए गए। यह ब्लॉक भी अपने लक्ष्य को शत-प्रतिशत पूरा करने में सफल रहा।

(ङ) सांपला - 29 मकानों का लक्ष्य था, जिनमें से 58 पंजीकृत, 29 जियो-टैग किए गए और 29 खातों को सत्यापित कर स्वीकृत किया गया। इस ब्लॉक में पंजीकरण की संख्या लक्ष्य से काफी अधिक रही, लेकिन जियो-टैगिंग और सत्यापन में लक्ष्य के अनुरूप ही रहा।

तालिका के अनुसार, कलानौर, महम, और रोहतक ब्लॉक अपने लक्ष्यों को पूरी तरह से प्राप्त करने में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हैं। कलानौर ने 495 के लक्ष्य के मुकाबले 509 पंजीकरण किए, महम ने 593 के लक्ष्य के मुकाबले 599, और रोहतक ने 84 के लक्ष्य के मुकाबले 84 पंजीकरण किए। सभी ब्लॉकों ने जियो-टैगिंग और सत्यापन में लगभग अपने लक्ष्यों को पूरा किया है। लखन माजरा ने अपने 30 मकानों के लक्ष्य को शत-प्रतिशत पूरा किया, जो दर्शाता है कि यह ब्लॉक भी योजना के तहत अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। सांपला ने 29 मकानों के लक्ष्य के मुकाबले 58 पंजीकरण किए, लेकिन जियो-टैगिंग और सत्यापन में लक्ष्य के अनुसार ही प्रदर्शन किया।

निष्कर्ष

प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण के अंतर्गत रोहतक मण्डल के पाँचों जिलों– रोहतक, झज्जर, सोनीपत, चरखी दादरी एवं भिवानीकृमें वर्ष 2016 से 2022 तक की अवधि में योजना का क्रियान्वयन समग्र रूप से संतोषजनक रहा, जहाँ पंजीकरण, जियो–टैगिंग, स्वीकृतियाँ एवं किश्तों के वितरण में अधिकांश जिलों व ब्लॉकों ने लक्षित मानकों को या तो पूर्ण कर लिया या अत्यधिक निकट पहुँच बनाई। भिवानी, चरखी दादरी, सोनीपत एवं रोहतक जिलों ने आवास निर्माण और सत्यापन में अच्छी प्रगति दिखाई, विशेषकर महम, कलानौर, तोशाम और गन्नौर जैसे ब्लॉकों ने अपने निर्धारित लक्ष्यों से अधिक पंजीकरण कर श्रेष्ठ प्रदर्शन किया, जबकि झज्जर जिले में योजनात्मक असंतुलन तथा कुछ वर्षों की निष्क्रियता के कारण क्रियान्वयन में अस्थिरता देखने को मिली। अधिकांश क्षेत्रों में चतुर्थ किश्त का वितरण लंबित रहा, जो लाभार्थियों को पूर्ण लाभ प्राप्त करने से रोकता है। वित्तीय सहायता, श्रमदिवस, शौचालय सुविधा एवं अन्य सहायक सेवाओं के एकीकृत प्रावधानों ने योजना को केवल आवासीय नहीं, बल्कि समग्र ग्रामीण उन्नयन के एक साधन में परिवर्तित किया है। तथापि, लाभ की सार्वभौमिक पहुँच, किश्तों की समयबद्धता, और क्रियान्वयन में स्थानीय चुनौतियों से निपटने हेतु राज्य एवं स्थानीय प्रशासन को और अधिक समर्पित, समन्वित व जवाबदेह प्रयासों की आवश्यकता बनी हुई है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण, किफायती आवास के क्षेत्र में एक परिवर्तनकारी पहल है, जिसने सामाजिक सुरक्षा, गरिमापूर्ण जीवन और ग्रामीण विकास को व्यवहारिक धरातल पर संभव बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. के – मैरी, एफ. (2020). प्रोग्रेस एंड प्रॉस्पेक्ट्स ऑफ पीएमएवाई स्कीम इन इंडिया, फूडसाईआरएन: अदर फूड लॉज, एन.पी. https://doi-org/10-2139/ssrn-3534549
2. चटर्जी, एस. (2017). रूरल डिवेलपमेंट स्कीम्स/योजना फोकसिंग ऑन फर्स्ट कॉमन रिव्यू मिशन: अ डिस्कशन, जर्नल फॉर स्टडीज इन मैनेजमेंट एंड प्लानिंग, 3, 113–120
3. हर्षा, डी. एस., प्रणीथा, एस., स्वेता, वी., दिनेश, पी., – वाणी, के. (2021). एवैल्यूएशन ऑफ सपोर्ट टू बेनेफिशियरीज अंडर पीएमएवाई यूजिंग क्लस्टरिंग टेक्निक्स, 2021 सेकंड ग्लोबल कॉन्फ्रेंस फॉर एडवांसमेंट इन टेक्नोलॉजी (GCAT), 1–6
4. करन सिंह. (2024). एन एनालिसिस ऑफ पॉवर्टी अलीविएशन प्रोग्राम्स इन द पोस्ट–रिफॉर्म पीरियड इन हरियाणा, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साईंटिफिक रिसर्च इन इंजीनियरिंग एंड मैनेजमेंट, एन.पी. https://doi.org/10.55041/ijsrem36066
5. सलीमानी, आर., – आकाश, एस. बी. (2024). पीएमएवाई स्कीम एंड बेनेफिशियरी सैटिस्फैक्शन – एन एक्सप्लोरेटिव स्टडी, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साईंटिफिक रिसर्च इन इंजीनियरिंग एंड मैनेजमेंट, एन.पी., https://doi.org/10.55041/ijsrem36469
6. हालदर, एच., – कोले, जे. (2024). अ कॉम्परेटिव एनालिसिस ऑफ इंदिरा आवास योजना एंड प्रधान मंत्री आवास योजना इन डिवेलपिंग हाउसिंग इन इंडिया, ईपीआर: इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकनॉमिक एंड बिजनेस रिव्यू, एन.पी, https://doi.org/10.36713/epra17811
7. सिंह, ए. जे., – सिंह, एस. आर. (2023). प्रधान मंत्री आवास योजना (पीएमएवाई): गवर्नमेंट ऑफ इंडिया' अप्रोच टू अफोर्डेबल हाउसिंग फॉर द अर्बन पुअर, जर्नल ऑफ एडवांस्ड जूलॉजी, एन.पी.ए, https://doi.org/10.17762/zaz.v44is5.2392
8. वी.आर. रेड्डी, आर. रमेश, 2018, इमपेक्ट असेस्मेंट ऑफ पीएमवाई–जी, सेंटर फॉर रूलर इनफरास्टर्कचर, हैदराबाद, पृ० 7–12
9. रॉबिन्सन, एम., स्कोबी, जी. एम., – हैलिनन, बी. (2006), अफोर्डेबिलिटी ऑफ हाउसिंग: कॉन्सेप्ट्स, मेजरमेंट एंड एविडेंस, न्यू जीलैंड ट्रेजरी, वर्किंग पेपर 06/04
10. मैकलेनन, डी. – विलियम्स, आर. (1990), अफोर्डेबल हाउसिंग इन ब्रिटेन एंड द यूनाइटेड स्टेट्स, यॉर्क जोसेफ रॉउंट्री फाउंडेशन, पृ० 6
11. एडबोयेजो, ओ. (2005), "कोऑपरेटिव हाउसिंग स्ट्रैटेजी फॉर मास हाउसिंग डिलीवरी इन नाइजीरिया", पेपर डिलीवर्ड ऐट द कॉन्फ्रेंस ऑफ हैड्स ऑफ प्लानिंग स्कूल्स इन नाइजीरिया, फैसिलिटेटेड बाय फेडरल मिनिस्ट्री ऑफ हाउसिंग एंड अर्बन डिवेलपमेंट ऐट कडूना, https://academicjournals.org/zournal/JGRP/article-references/BB43BB662960
12. वाइब्रंट गुजरात (2017), कंस्ट्रक्शन ऑफ 5750 यूनिट्स अंडर अफोर्डेबल हाउसिंग ऑन पीपीपी (इन सिचू री–डेवलपमेंट ऑफ स्लम्स) अंडर स्मार्ट सिटी मिशन, सुरत अर्बन डिवेलपमेंटय गवर्नमेंट ऑफ गुजरात, 5–15
13. हाई लेवल टास्क फोर्स ऑन अफोर्डेबल हाउसिंग फॉर ऑल (2008), रिपोर्ट ऑफ द हाई लेवल टास्क फोर्स ऑन अफोर्डेबल हाउसिंग फॉर ऑल, न्यू दिल्ली: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, रिट्रीव्ड 11.01.2018, फ्रॉम http://www-naredco-in/pdfs/report&high&leveltask-pdfA

विजयदान देथा (बिज्जी) की कथाओं में सामन्ती चेतना

गोविन्द गौरव सिंह

31 जमना नगर, सोडाला, जयपुर (राज.)

हिन्दी साहित्यकोश के मतानुसार-''किसान उत्तराधिकार के आधार पर भूमि जोतता था किन्तु बौद्धिक दृष्टि से भूमि का मालिक जमींदार ही था। उक्त जमींदार सामंत की बेगार किसान को करनी पड़ती थी तथा उसको लगान भी देता।''[1] डॉ. देवदत्त शर्मा के दृष्टिकोण से ''सामंतवाद एक राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था थी जिसका जन्म विशेष परिस्थितियों के गर्भ में हुआ.... सामन्तवाद एक ऐसा समझौता था जो सामान्यजन और कुलीन वर्ग के बीच सुरक्षा की दृष्टि से किया गया था।''[2]

राजस्थान में पनपे सामंवाद और सामंतो के सम्बन्ध में इतिहावासविद् डॉ. दशरथ शर्मा के विचार हैं-''मुस्लिम आक्रमणों के कारण प्रत्येक के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह राजस्थान की सुरक्षा में रूचि ले। इसके लिए सर्वोत्तम मार्ग था राजपूत यौद्धाओं का शासक के दुर्भाग्य या सौभाग्य में उनका सहगामी बन कर कार्य करना। यदि शत्रु के विरूद्ध युद्ध में वे विजयी होते थे तो वे प्राप्त की हुई भूमि के स्वामी बन जाते थे, यदि असफल होते थे तो उन्हे शासक की अपेक्षा हानि उठानी पड़ती थी क्योंकि उनकी जागीरें राज्य की सीमा पर स्थित थी।''[3]

राजस्थान के पश्चिमी अंचल में आजादी के बाद भी भू-स्वामी के रूप में जागीरदारों एवं ठाकुरों का अपनी-अपनी रियासतों के गांवो में दबदबा रहा।ये सामंत लघु सीमांत कृषकों तथा छोटी कही जाने वाली जाति के लोगों से बेगार करवा लेना अपना हक समझते रहे हैं।बेगार प्रथा का प्रारम्भ भी सामंत युग में ही हुआ।बिज्जी ने सामंती चेतना को लेकर विभिन्न कहानियों का सृजन करजनता को जगाने का कार्य किया है।

बिज्जी की कहानियों में पूंजीपति और सर्वहारा तथा मिल-मालिक एवं श्रमिकों से सम्बन्धित उदाहरण नहीं मिलते।बिज्जी का कहानियों में सामंतवाद का जो रूप मिलता है उसमें नारी शोषण, दासी कर्म, वेश्या, वृति, कुप्रथाओं का चित्रण, स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध, विलासी, प्रवृत्ति, बलात्कार आदि के उदाहरण अधिक प्राप्त होते है।

देथा की आधुनिक संवेदना जनवादी चेतना से बद्धमूल रूप से जुड़ी है जिसे कभी अपना एलान करने की जरूरतें नहीं होती। 'अदीठ वस्त्र' कहानी सामंतवाद पर एक व्यंग्य कथाहै जिसमें लोक कथा का रूप कहीं नहीं टूटता। बच्चा कहां जो भ्रम तोड़े, राजा पूरी कहानी में उसी नफीस कपड़े के भ्रम में रहता है जो दिखाई नहीं देता, औरराजा का खजाना खाली होता रहता है।राजा सच्चाई का सामना इसलिए नहीं कर सकता क्योंकि उसे हरामी और मूर्ख करार दिए जाने का डर है-और नंगे राजा की सवारी शहर भर में घूम जाती है।

देथा अपनी कल्पना के राम राज का खाका 'बखत-बखत रो बायरो' (समय-समय की हवा) में देते हैं। किसी समय की गोद में एक सुखी एवं संतोषी गॉव है, जहॉ जमींदार ने अपनी जमीन एक किसान को खेती के लिए देरखी है। किसान ने लगान देने की खातिर बहुत मिन्नतें की लेकिन जमींदार किसी भी कीमत पर राजी नहीं हुआ।उसने कहा-जोतो, बाओ, कमाओ और खाओ बात में ध्वनि यही है।राम राज में नाटकीय स्थित पैदा हो जाती है, जब किसान को मोहरों से भरे सात कलश खेत में पड़े मिलते हैं। कलश किसके हैं? किसान जमींदार को देना चाहता है, जमींदार कहता है कि किसान को मेहनत करते हुए खेत में मिले हैं, कलश उसी के हैं। पंचायत भी यही कहती है, राजा भी यही कहता है। हार कर किसान कलश खेत में फिर गाड़ देता, क्योंकि कलश उसके किसी काम के नहीं हैं। राम राज खत्म। फिर ठोस पदार्थ अगली पीढ़ी के बहाने नमूदार होता है और कलश हड़पने के लिए अगली पीढ़ी को घूस दी जाती है।तीसरी पीढ़ी में दौलत के लिए जमींदार और किसान की हत्या हो जाती है।इस तररह राम राज के आइने में हम व्यवस्था का पतन, हिंसा और शोषण देखते हैं। जो सामंती व्यवस्था की विद्रूपता को अनावृत करते हैं।

बिज्जी की कहानियों में सामन्तशाही के उथले और उजले दोनों भांति के चित्रण मिलते हैं। बिज्जी की निम्न कहानियां सामंती परिवेश को लेकर लिखी हुई है-'मां रो बदळो', 'दो बेरा करिया दीसै', 'चौधरण री चतराई', अलेखूं हिटलर', सूळां हंदी सेज', 'भांबी री बेगार'। इन कहानियों में सामंतो के शोषण की शिकार व्यवस्था के जीवंत चित्र हैं।

ठाकुर तो ठाकुर उसके हाजरिए भी इस शोषण मूलक व्यवस्था में अपने को किसी सामंत से कम महत्वपूर्ण नहीं समझते उदाहरणार्थ -'दो बेरा करिया दीसै'[4] कहानी को देखा जा सकता है जिसमें एक किसान ने ठाकुर के खेत के चौथे हिस्से में मिर्ची की खेती की लेकिन 'कैणा में तो ठाकर रौ बांटौ चौथो हो पण रोजीना री मांगा-तांगी में के आज फलाणजी रै मिरचां भेजणी है, आज ढ़ीकड़जी रै आज पूंछड़जी रै मिरचां भेजणी, यूं करनै सगळौ बांटो आधा सूं ई करड़ौ पड़ियो।'

'चौधरण री चतुराई' कथा में ठाकुर कृषक समाज के पात्रों के मुख से सच्चाई सुनकर उसे सहन नहीं कर सकता क्योंकि उन्हें चापलूसी की आदत थी।चौधरी एवं उसके बेटों की आन्तरिक भावना को आडम्बरहीन अकुण्ठित अभिव्यक्ति मिली है।गांव के ठाकुर ने गोलाकार सीढ़ियों के अनुरूप वैसा ही गोल कमरा बनाया।ठाकुर-सुहाती बातें करने वाले शिष्ट लोग ठाकुर के सामनेगोल कमरे व सीढ़ियों की बड़ी प्रशंसा करते रहे।प्रकृति की गोद मे सहज भाव

से गांव-चौधरी ने इमारत की तारीफ तो की परन्तु अन्त में उसे एक कमीनजर आई तो वह कहे बिना नहीं रह सका, 'मालिक, कमरा तो आपके लायक बहुत सुन्दर बना है, पर दुर्योग से कमरे में आपके प्राण छूट गये तो गोल सीढ़ियों से लाश और न कारीगरों ने।'' वैसी अशुभ बात सुनते ही ठाकुर गुस्से में आपा खौ बैठा और गॉव चौधरी को तहखाने में बन्द करवा दिया। तत्पश्चात् बारी-बारी से बाबा के चारों बेटे उसकी तलाश में आते हैं औरएक से एक बढ़ कर मन में सहज उपजी बात को तत्काल उगल देते हैं। यह उनके उज्जड़पन की अभद्र बात नहीं, सच्चाई की अकृत्रिम अभिव्यक्ति है जो ऊपरी दिखावे और आभिजात्य चोंचलों के प्रति तनिक भी सम्मान प्रदर्शित नही करती। इन कथाओं में शोषक-वर्ग के प्रति शोषितों के अन्तरतम में दबा आक्रोश मुखरित होता है। इस प्रकार से यह सामंती प्रवृत्ति की द्योत्तक है।अपने पर आश्रितों एवं अपने अधीनस्थों से मनमाना दुर्व्यवहार करना सामंतवाद की ही एक प्रवृति है।

सामान्तवाद को मुख्य रूप से एक प्रशासनिक व्यवस्था के रूप में प्रतिपादित किया गया है जिसमें प्रशासनिक स्तर पर सामन्त और उसके अधीनस्थ के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है।डॉ. रामशरण शर्मा ने इसके निम्न मुख्य भेद माने हैं- राजनीतिक सामन्तवाद, आर्थिक सामन्तवाद, धार्मिक सामन्तवाद। बिज्जी की कहानियों एवं उपन्यासों में चरित्र विधान के माध्यम से भी सामन्तवाद की अभिव्यक्ति हुई है।सामन्ती चेतना के संवाहक के रूप में जिन पात्र वर्गों की सृष्टि है उनमें प्रमुख हैं-सामन्त, राजा, महाराजा, जमींदार साहूकार, पंडे, पुरोहित, व्यापारी वर्ग आदि।

धार्मिक परिप्रेक्ष्य में हम सामन्तवादी व्यवस्था को देखें तो ऐसे प्रतीत होता है कि राज्याश्रय में पलने वाले धर्म राजतंत्र पर ही हावी होने लगे थे। वे शासन में उच्च पद प्राप्त करके राज्य की नीति निर्धारण में भाग लेने लगे थे।धर्म के नाम पर अनेक कुप्रथाओं ने जन्म लिया। उदाहरणार्थ 'वैतरणी' कथा में पिता की मृत्यु के उपरान्त घर की बगुली नामक गाय के दान का प्रसंग जिसमें जीवन का आर्थिक संबल वह गाय होती है जिसके सहारे गृहस्थी चलती है परन्तु धार्मिक ठेकेदार पंडित बाबा को वैतरणी पार करवाने का झांसा देकर गाय अपने घर पर (दान-दक्षिणा) ले गया।

इसी प्रकार 'खटकरम' कथा में अन्त तक सदियों से छलते आ रहे ब्राह्मणों एवं पण्डितों के बासी संस्कारों से ग्रस्त समाज को नारकीय यन्त्रणाओं का डर दिखाकर अपनी निर्ममताओं की सीमा का बेहिचक अतिक्रमण करने में जाने-अनजाने रंचमात्र भी संकोच नहीं करते और भोली ठकुरानी मृत पति के सुख की खातिर सब कुछ लुटाती रहती है। 'हिन्दू धर्म की महिमा न्यारी।मरे मानुस का खर्चा भारी।धर्म-कर्म की बातें झीनी। जीवित काया माटी से हीनी।'' पर ठिकाने का व्यास सब का गुरू था।उसके सिखाये-सिखाये ही ठकुरानी ने कुंवर के ब्याह में इतनी देर की थी। ठकुरानी व्यास को खूब मानती थीं।टोने-टोटके, जप-जाप हवन-पूजा और ग्रहदशा के बहाने पर बखूबी अपना काम निकाल लेता था। व्यास को धर्म कर्म की बजाय अपने कौशल पर ज्यादा भरोसा था।कंजूस ठाकुर का भी व्यास के आगे बस नहीं चलता था।ब्राह्मण भोज में देखते-देखते आधी दक्षिणा हड़प गया।

मठ और मदिर आर्थिक इकाइयों का काम करते थे लेकिन ये इकाइयां काफी विस्तृत होती थी।कभी-कभी ऐसी इकाइयों में सौ से भी अधिक गॉव हुआ करते थे।स्पष्टत: ऐसी इकाइयों में कुछ गॉव अन्न जुटाते थे, कुछ कपड़े कुछ इमारतों की मरम्मत के लिए श्रमिक आदि।

जो इलाके बसे बसाए होते थे उनमें धार्मिक भोक्ताओं को ऐसी जमीन दान दी जाती थी जिसमें पहले से ही खेतीबाड़ी होती थी। ऐसे क्षेत्रों में उनकी उपयोगिता इस बात में निहित होती थी कि लोगों में प्रतिष्ठित सामाजिक व्यवस्था के प्रति सम्मान का भाव पैदा करत थे। दूसरे भूमि अनुदानों के परिणाम स्वरूप क्षेत्रों में शांति सुव्यवस्था कायम रखने में सहायता मिलती थी, क्योंकि इन क्षेत्रों में शाति सुव्यवस्था कायम रखने में सहायता मिलती थी, क्योंकि इन क्षेत्रों में कानून की सत्ता और शांति बनाए रखने का दायित्व ग्रहीताओं को दिया जाता था। दाताओं की इस कृपा का प्रतिदान भी ब्राह्मण किसी न किसी रूप में अवश्य देते थे।

उदाहरणार्थ-खटकरम में ठकुरानी का दान-'फिर ठकुरानी क्यों कोताही करती।पांच गायें, पचास बीघे का कुआं और पति के पहने हुए गहनों का दान बोला।[5]

आर्थिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो देश के विभिन्न हिस्सों में मौजूद आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों पर ही सामंती व्यवस्था आधारित थी। मुद्रा का अभाव माप तौल के स्थानीय मानकों का चलन, राजाओं तथा सामंत सरदारों द्वारा उद्योग-व्यापार से होने वाली जिन्सी तथा नकदी आय का मंदिरों के नाम हस्तान्तरण - ये तमाम बातें ऐसे एकांशो के अस्तित्व की साक्षी भरती है।

प्रत्येक स्थान की आवश्यकताओं की पूर्ति वहीं पैदा किए हुए माल से की जाती थी और इस प्रयोजन से किसानों और कारीगरों को गांवो से बांधकर रखा जाता था। इसलिए सामन्ती समाज में अर्थ व्यवस्था सामन्ती शिकंजे में जकड़ी रहती थी। भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व में जाने से कृषकों की दशा हीनतर होती जा रही थी।उनके ऊपर करों का बोझ बढ़ रहा था। कृषकों की स्थिति खेतिहर मजदूरों के समान थी, एक तरफ तो किसानों की स्थिति दासवत् थी, दूसरी ओर उन पर तरह-तरह के नवीन कर लगा दिए गए। इस प्रकार से सामन्ती व्यवस्था मूल रूप से शोषण पर आधारित थी।

उदाहरणत: शोषण परक प्रवृति के कारण एवं अमानवीय कृत्यों के कारण सामन्त अपने कर्तव्यों से विमुख भी हो गए। 'मसाण री मया' कथा में अपने कर्त्तव्यों से विमुख एक अमानवीय ठाकुर के विषय में बिज्जी का कथन है-''किसी एक गॉव रौ ठाकर हो, यूं दीखण पाटण में तो ठाकर मिनखॉ रे इज उणियारै हो पण गुणां में सांप, गिंडक, स्याळ अर कागलां रै दुरगुणां रौ इज मेळ।'[6]

इसी प्रकार 'सूळां हंदी सेज' कथा के ठाकुर का चरित्र लेखक के शब्दों में 'बतीस गॉवा रो एक ठाकर, चौतीस लखवां रौ सियासत हो। उण ठिकाणै जीवण री दाझ मौत सूं ई वत्ती ही। ठाकर कांई हो जम रो ई परतख अवतार। ठाकर रा नांव सूं सूती स्यारां रा सपनां में ई थरणा कांपता।'[7]

शोषण सामन्ती व्यवस्था की विशिष्ट देन है।शोषण दीन हीन प्राणियों के मन एवं शरीर पर किसी शक्तिशाली व्यक्ति के अनधिकार स्वामित्व का सूचक है जिसे वह अपनी शक्ति और अधिकार के बल पर प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। बिज्जी की कहानियों में सामंतो के शोषण का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है बिज्जी की 'साची वारता' कहानी। जिसमें कहा गया है कि 'हालतां हालतां खवास नै एक बूढ़ो, चौधरी सामी धकियौ। खवासजी री बात सुणनै वौ ऊंडौ निस्कारौ न्हांकतो कह्यो, सेवट थूं ई ठाकरसा री आंटी में पजग्यौ।अबै फगत गोतां रै थारै हाथ कीं नीं आ सकै। आयै साल पांच हजार मण गेहुआं री तालियां रा कूढ़ा ठाकरसा डकार जावै जिणरो पाछो दाणौ ई हाथ लागणो कैड़ो व्है। म्हैं ई पाछा हाथै आवण रा धोखा में अठै आयग्यौ। इग्यारा बरसां सूं अठी-अठी भंवतो फिरूं, पण हाथां लटायोडी तालियां रौ पाछो दाणौ ई देखणा ने नीं आयो।[8]

नव सामंतवादी प्रवृत्तियों को दर्शाती हुई बिज्जी की 'पुटियों काको' कहानी अपने आप में एक अलग प्रकार की कहानी है। जगत काका में भी नए युग के नए सामन्तवाद का चित्रण निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-'जम रा डर सूं कम डर अेस.पी. रौ नीं व्है। भूल चूक सूं कदै ई हत्थै चढ़ग्या तो हाडका खोळा कर न्हाखैला। सांधौ-सांधो टंटोळिया हाळ नेहचौ इज नीं करै पुलिस रौ अेस.पी., नी लुगाई री कांण राखै अर नीं विद्वान री।दस-बीस रंगरूट रगदोळैला तद उणरी अकल ठांणै आवैला। सावळ जाव पड़ैता के टूरियां री प्रीत अर मुरळीधर री प्रीत में जमीन-आसमान रौ भेद है।'[9] ऐसी एक अन्य पंक्ति 'नयी चेतना रै परताप ई नवै इतिहास रचीजैला। पापी रौ नीं पाप रौ पापौ काटौ-आ इज नवी चेतना जणां-जणां रै हीये जगावणी है।'[10]

सामंत और उसकी सत्ता जिसे सामंतवाद कहा गया है। एक राजनीतिक व्यवस्था थी जो कहीं भुजबल से तो कहीं डर और सुरक्षा की भावना से विकसित हुई, जिससे शासक एकाधिकार या प्रभुता सम्पन्न होने का भाव पालित किए रखता था।सामन्त केवल बेगार लेने वाले शोषक ही नहीं होते थे बल्कि पराक्रमी, शरणागत वत्सल, वचनरक्षक और कुलाभिमानी भी होते थे। इसलिए वे दायित्व के साथ अपनी प्रजा की रक्षा करने को भी प्रतिबद्ध होते थे। उदाहरणार्थ-'आठ राजकॅवरर' कथा के आठों ही राजकुमारों की प्रवृत्तियॉ बिल्कुल ऐसी ही है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सामंती शोषण का कुचक्र ही लोक जीवन के पिछड़ेपन का मूल कारण रहा है। लोक जीवन और समाज में रूढ़िवाद, निरक्षरता, अंधविश्वास, जातिवाद के अभिशाप और संकीर्ण मनोवृति के कारण सामन्तों को अपना प्रभुतव स्थापित रखने तथा शोषण की प्रक्रिया को गतिशील रखने में सहायता मिली।

बंधुआ मजदूरी, बेगार, दास प्रथा, पीढ़ी-दर पीढ़ी चलने वाली ऋण ग्रस्तता अवैध यौन संबंध जैसे अभिशप्त प्रसंग बिज्जी की कहानियों में विशेष रूप से उभरे हैं। कहीं कहीं तो बिज्जी की कहानियों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि लोक जीवन में दमन और शोषण का जो कुचक्र सामन्तों ने चलाया था वह अन्तहीन प्रक्रिया के रूप में आज भी गतिशील है।

संदर्भ-

1. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्यकोश, सं. पृ. 913
2. डॉ. देवदत्त शर्मा, हिन्दी के सामन्ती चेतनापरक उपन्यास - पृ. 41
3. डॉ. दशरथ शर्मा, लाइफ इन राजस्थान इन 14जी एण्ड 15जी सेनच्यूरी, पृ. 106
4. विजयदान देथा, बातां री फुलवाड़ी, भाग-1 पृ. 77
5. विजयदान देथा, बातां री फलुवाड़ी, भाग-13 पृ. 84
6. विजयदान देथा, बातां री फुलवाड़ी, भाग-9 पृ.151
7. वहीं, पृ. 192
8. विजयदान देथा, बातां री फुलवाड़ी, भाग-1 साची वारता, पृ. 57
9. विजयदान देथा, पुटियो काको, अलेखूं हिटलर, पृ. 51
10. वही, पृ. 51

ग्रामीण राजनीति के बदलते आयाम: एक अध्ययन बिहार राज्य के विशेष संदर्भ में

विकाश कुमार 'विधाता'

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

औद्योगीकरण, मशीनीकरण और शहरीकरण के इस दौर में भी असली भारत गांव में ही बसता है। देश की आजादी के बाद ज्ञान-विज्ञान की प्रगति हुई, देश विकास की ओर उन्मुख है, किंतु आज भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपने मूल रूप में ग्राम प्रधान ही है। आज भी देश की बहुत बड़ी जनसंख्या गांव में ही निवास करती है। अत: ग्रामीण राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन किए बगैर हम असली भारत को नहीं समझ सकते।

मानव सामाजिक प्राणी ही नहीं, एक राजनीतिक प्राणी भी है। इस प्रकार राजनीति का मानव से घनिष्ठ संबंध है। यह अलग बात है कि शहरी और ग्रामीण राजनीतिक संस्कृति के स्वरूप में भिन्नता है किंतु ग्रामीण समाज में भी राजनीतिक क्रियाएं अपने स्वभाव के अनुसार ही चलायमान हैं। समय और स्थिति के बदलते परिपेक्ष में ग्रामीण राजनीति के आयाम परिवर्तित हो रहे हैं। अत: यह एक अध्ययन का विषय है।

शब्द बीज:- ग्रामीण राजनीति, पंचायती राज, जातिवाद, मतदान व्यवहार, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक संकीर्णता, भाई-भतीजाबाद, इत्यादि..

प्रस्तावना

ग्राम्य जीवन के इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि मानव संस्कृति का इतिहास पूर्णत: ग्रामों की संस्कृति से बंधा है। मनुष्य का ग्रामीण जीवन वहाँ से आरंभ होता है जब वह घुमंतू जीवन त्याग कर निश्चित स्थान पर बस कर कृषि कार्य करने लगा। कृषि ने ही मानव को निश्चित स्थान पर बसने हेतु मजबूर किया जिसका परिणाम हुआ, गाँव का उदय तथा ग्रामीण जीवन का आरंभ। मानव अपने स्थिर ग्रामीण जीवन के कारण ही सभ्यता और संस्कृति को निर्मित करने में सफल हो सका। इस प्रकार ग्रामीण समुदायों के अध्ययन से ही हमें अपनी पुरानी संस्कृति का ज्ञान हो पाता है। इसके अध्ययन से हम उस विकास क्रम को समझ पाते हैं जिससे हमारा जीवन गुजर कर वर्तमान स्थिति तक पहुंच पाया है।

ग्रामीण शब्द की व्याख्या शहरी और नगरीय शब्द से भिन्न है। ग्रामीण क्षेत्र के नागरिक तथा शहरी क्षेत्र के नागरिकों के बीच आर्थिक और सामाजिक विषमता भी व्याप्त है। कुल मिलाकर शहरी विशेषताओं के विपरीत वाले क्षेत्र ही ग्रामीण क्षेत्र हैं। अन्य देशों की तरह हमारे देश में भी एक निश्चित जनसंख्या वाले क्षेत्र को ग्रामीण क्षेत्र कहा जाता है और इससे अधिक जनसंख्या होने पर वह शहर क्षेत्र की श्रेणी में आ जाता है। ग्रामीण क्षेत्र की खास विशेषता यह है कि यहां के लोगों के सामाजिक,आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन में समरूपता पाई जाती है। ग्रामीणों के आचार-विचार, भाषा,धर्म,आदर्श, रीति-रिवाज एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण सामान हुआ करते हैं। नागरिकों के जीवन में अत्याधिक विषमता देखने को नहीं मिलती है।

राजनीति का मानव की सामाजिक क्रिया से गहरा नाता है, एक-दूसरे के बीच घनिष्ठ संबंध। मानव सामाजिक प्राणी के साथ राजनीतिक प्राणी भी है। प्रसिद्धि विद्वान मिलर ने स्पष्ट कहा है- 'राजनीति मूलत: मानवीय क्रिया है'। कुल मिलाकर मानव चाह कर भी राजनीति से अलग नहीं हो सकता। इसके बावजूद भी हम कर सकते हैं कि ग्रामीण समाज में राजनीतिक गतिशीलता की दर कम है। जबकि सक्रियता को राजनीति के लिए बेहद जरूरी बताया गया है। निष्क्रिय राजनीति अपना महत्त्व खो देती है तथा निरर्थक बन कर रह जाती है। हम जानते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था और हमारा समाज एक-दूसरे का पूरक है। राजनीतिक व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाज में पायी जाती है। चाहे वह समाज ग्रामीण हो या नगरीय। ग्रामीण समाज में भी अन्त: क्रिया होती है और राजनीति का जन्म होता है। ग्रामीण समाज के सदस्यों के बीच भी राजनीति में भाग लेने की क्रिया अनवरत जारी है। समय, क्षेत्र और परिस्थिति के अनुसार सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक व्यवस्था का समावेश हुआ करता है। जैसा समाज होगा,राजनीतिक व्यवस्था भी उसी के अनुरूप ढल जाएगी। जाति, धर्म और संप्रदाय की राजनीति से पूरी व्यवस्था ही प्रभावित है, ग्रामीण राजनीति पर इन चीजों का व्यापक असर देखा और महसूस किया जा सकता है।

मूल विषय

आजादी के लम्बे आरसे बीत जाने के बाद भी ग्रामीण राजनीति जाति,धर्म और संप्रदाय की राजनीति से मुक्त नहीं हो पा रही है। समाज के अंतिम पायदान पर स्थित लोगों की भूमिका भी राजनीतिक क्रिया में हो, शासन संचालन में हो, इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्थानीय स्वशासन की अवधारणा का उदय हुआ जो वास्तविकता की धरातल पर कमोबेश सफल स्वरूप में दिख रहे हैं। पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण राजनीति को गतिशीलता प्रदान करने में अहम भूमिका

निभाई है। इस व्यवस्था से ग्रामीण जनता में राजनीतिक जागरूकता का समावेश हुआ है। पुरुषों के अलावे महिलाओं की भूमिका भी राजनीति में देखने को मिल रही है किंतु निर्णय प्रक्रिया में महिलाएं आज भी स्वतंत्र होकर निर्णय नहीं ले पा रही हैं। आज भी इस कार्य हेतु पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। आत्मनिर्भरता केवल सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी निहायत जरूरी है। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति एक प्रतिनिधि के रूप में भी कठपुतली के समान है। महिलाएं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं या फिर उनके वास्तविक अधिकारों का हनन पुरुषों के द्वारा हो रहा है। अत: वास्तविक समानता की स्थापना नहीं हो पा रही है। मनोदशा में परिवर्तन लाकर ही महिलाओं के प्रति ऐसी धारणा को बदली जा सकती है।

सत्ता का स्वरूप लोकतंत्रात्मक होने के बावजूद भी ग्रामीण राजनीतिक संस्कृति एक संकीर्ण संस्कृति के रूप में दिखाई देती है। ग्रामीण राजनीति की संस्कृति जाति-धर्म, भाई-भतीजावाद तक सीमित होकर रहना चाहती है। ऐसी संकीर्णता विकास के मार्ग में बाधक शक्ति बनकर उभरती है, ऐसी स्थिति में राजनीतिक विकास का अवरुद्ध होना स्वाभाविक और लाजमी है। ग्रामीण राजनीति में समाजीकरण की दिशा सही नहीं होने के कारण राजनीतिक विकास का अभिमुखीकरण सही दिशा में नहीं हो पाता है। परिणाम स्वरूप एक नकारात्मक संस्कृति का उद्‌भव और विकास होता है जो पूरी व्यवस्था को लंबे समय तक प्रभावित करती रहती है। गरीबी में जीवन यापन कर रहे ग्रामीण जनता के बीच राजनीतिक उदासीनता स्पष्ट दिखाई देती है। नागरिकों के बीच अशिक्षा और अज्ञानता का पाया जाना इसके प्रमुख कारण हैं। जनता अपने हितों की रक्षा व भरण-पोषण को प्राथमिकता देती है, उन्हें राजनीतिक क्रियाकलाप से अधिक वास्ता नहीं रहता।

बिहार की राजनीति

बिहार की राजनीति में जातिवाद के तत्व अब तक विद्यमान हैं। इन तत्वों का प्रभाव यह है कि जहां किसी खास जाति की अधिकता है वहां अल्पसंख्यकों के राजनीतिक हितों की रक्षा नहीं हो पाती। हमेशा राजनीतिक असंतुलन की स्थिति बनी रहती है। ग्रामीण समाज में राजनीतिक उदासीनता भी पाई जाती है। अत: हम कह सकते हैं कि गरीबी और अशिक्षा जैसे कारक राजनीतिक उदासीनता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। ग्रामीण राजनीति में मतदाता का व्यावहार भी जाति-धर्म, भाई-भतीजावाद जैसे कारकों से बुरी तरह प्रभावित है। मतदाता अक्सर उम्मीदवार का चयन अपनी जाति के रूप में ही किया करते हैं, उन्हें किसी योग्य उम्मीदवार की योग्यता से मतलब नहीं रहता। ग्रामीण समुदाय में छोटे-छोटे राजनीतिक दल जनता को भ्रमित करने में लगे हैं। ये दल अपने हितों का ध्यान रखकर ही गांव में छोटे-छोटे गुटों का निर्माण करते हैं और ये गुट राजनीतिक दल के मनोनुकूल ही काम करते हैं। सामान्य नागरिक राजनीतिक अज्ञानता के कारण स्वविवेक से निर्णय नहीं ले पाते हैं, फलत: राजनीतिक दलों का राजनीतिक व्यापार चिरकाल तक फलता-फूलता रहता है। अपने उद्देश की पूर्ति हेतु ग्रामीण जनता भी गुट का निर्माण करती है। ऐसे गुटों के सदस्य सिर्फ और सिर्फ अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही कार्यरत रहते हैं। ग्रामीणों के द्वारा अपनाए गए ऐसे कृत्य से आपसी द्वेष और ईर्ष्या की भावना का विकास होता है। एक गुट के सदस्य दूसरे गुट के सदस्यों को ईर्ष्या भरी निगाह से देखते हैं।

समस्या

यह सर्वेज्ञात है कि अशिक्षा,अज्ञानता और भाई-भतीजावाद की प्रवृत्ति ग्रामीण राजनीति को सही दिशा में गमन करने नहीं दे रही है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण राजनीति का दिशा विहीन होना स्वाभाविक है। ग्रामीण राजनीति में जातीयता की भावना इस कदर समाहित है जिसे आसानी से पृथक करना संभव नहीं है। प्रबुद्ध वर्ग के व्यक्ति राजनीतिक समझ नहीं रखने वाले लोगों का खुलकर राजनीतिक इस्तेमाल करते हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य अपनी सत्ता की हिफाजत है। संकीर्ण मानसिकता वाले राजनीतिक दल भोली-भाली ग्रामीण जनता को टुकड़ों में विभक्त करने में लगे हैं। राजनीतिक दलों के द्वारा अपनाए गए इस प्रकार के कृत्य से आपसी एकता और भाईचारा जैसे कारक प्रभावित हो रहे हैं। लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा तथा पंचायत चुनाव में भी राजनीतिक दलों के सदस्य सक्रिय होकर ग्रामीण जनता को दिग्भ्रमित करते हैं। ग्रामीण नेता अलग-अलग खेमों में विभक्त होकर विकास और लोक कल्याणकारी कार्य को भी प्रभावित करते हैं। एक दल के नेता दूसरे दल के कार्यों को ठीक से संपादित नहीं होने देते। उनकी मंशा यह होती है कि यदि यदि दूसरे दल के सदस्य कोई काम करेंगे तो जनता के बीच उसकी अलग पहचान बन जाएगी। ऐसी स्थिति में विकास का काम भी प्रभावित होता है। ऐसे नेता सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में बाधक शक्ति बनकर उभरते हैं। पढ़े-लिखे ग्रामीणों में भी हम की भावना स्पष्ट रूप से देखे और महसूस किए जा सकते हैं। अधिकांश महिला प्रतिनिधियों के कार्यों का संचालन पुरुष प्रतिनिधियों द्वारा होता है। कभी-कभी निर्वाचन प्रक्रिया में देरी की वजह से भी विकास कार्यों पर नकारात्मक असर पड़ता है। सरकारी कर्मचारियों और ग्रामीणों के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं होने के कारण विकास के कार्य प्रभावित होते रहते हैं।

अध्ययन का महत्व

ग्रामीण राजनीतिक संस्कृति को ठीक से समझने के लिए इसके परंपरागत स्वरूप के साथ वर्तमान स्वरूप का अध्ययन भी बेहद जरूरी है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा- 'भारत की आत्मा गांवों में बसती है'। वास्तव में भारत एक ग्राम प्रधान राष्ट्र है। इस प्रकार ग्रामों को समझे बगैर हम देश को नहीं समझ सकते। अध्ययन की दृष्टि से यह विषय काफी रोचक और महत्वपूर्ण है। समाज के अंतिम पायदान पर स्थित लोगों की भूमिका भी राजनीति में हो, इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ग्राम पंचायत की व्यवस्था की गई है और यह व्यवस्था वर्तमान समय में पुष्पित, फलित और पल्लवित होती हुई दिखाई दे रही है। बिहार जैसे राज्य के, ग्रामीण राजनीति के, विभिन्न आयामों को अच्छी तरह से समझने के लिए, इस विषय पर गहन अध्ययन परम आवश्यक है। अत: इस विषय पर किया गया शोध कार्य ग्रामीण राजनीति के बदलते आयामों को समझने व समझाने में सहायक सिद्ध होगा, यह शोध वर्तमान परिपेक्ष में भी काफी प्रसांगिक होगा तथा इससे अध्ययन को भी एक नूतन आयाम मिलेगा।

साहित्य समीक्षा

किसी भी विषय वस्तु को ठीक से समझने के लिए उसके हर पहलू पर विचार किया जाना चाहिए। ग्रामीण राजनीति के अध्ययन के उपरांत ऐसा लगता है कि इस विषय पर ठीक से काम नहीं हुआ है। इस विषय पर आधारित अलग-अलग कृतियों में, शोध में, सिलसिलेवार तथा स्पष्ट विश्लेषण का अभाव है। अत: प्रस्तुत शोध विषय अध्ययन की दृष्टि से बेहद उपयोगी होगा तथा आगे के अध्ययन को भी नवीन आयाम प्रदान करेगा।

एच. आर. यादव (2006) - इनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'ग्रामीण विकास योजना' में ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित योजनाओं का वर्णन है, इन्होंने ग्रामीण विकास में योजनाओं के महत्व तथा योगदान पर प्रकाश डाला है।

एस.पी. सिंह (2003) - इनकी पुस्तक ग्रामीण विकास के लिए योजनाएं और प्रबंध' में उल्लेख किया गया है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम पूर्णता सफल स्वरूप में परिलक्षित नहीं हो रहा है। जिसके कारण ग्रामीण नागरिक गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने हेतु मजबूर है। इन्होंने ग्रामीण विकास प्रबंध पर विशेष जोर दिया है।

प्रताप मल देवपुरा (2006) - प्रताप मल देवपुरा जी ने अपनी किताब के माध्यम से ग्रामीण विकास को ही प्रमुख मुद्दा बनाया है। इनके द्वारा लिखी गई किताब 'ग्रामीण विकास का आधार:आत्मनिर्भर पंचायतें' में गांव और शहरों के बीच मौजूद अंतर का सुंदर विश्लेषण किया गया है ।

अरुण केशव (2019) के द्वारा विकेंद्रीकरण को वह व्यवस्था माना गया है जिसमें अलग-अलग स्तरों पर सत्ता एवं अधिकार के साथ शक्तियों का भी बंटवारा होता है । कहाने का मतलब साफ है कि केंद्र से लेकर पंचायत तक सत्ता, शक्ति तथा संसाधनों का बंटवारा होता है तथा हर इकाई में अपने कार्यों के मामले में स्वयं जिम्मेदार है । इस प्रकार प्रत्येक इकाई स्वतंत्र रहकर भी केंद्र से जुड़ी हुई है और वहाँ भी राजनीतिक क्रियाएं अपनी गति से संचालित होती हैं।

एस. वाई. कुरैशी (2015) के मतानुसार विश्व स्तर पर विकेंद्रीकरण के सोच को महत्व दिया जा रहा है किंतु शासन व्यवस्था में आम जनों की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित करने हेतु कारगर प्रयास किया जाना शेष है। उनके मतानुसार वर्तमान समय में विकेंद्रीकरण की व्यवस्था प्रसांगिक है तथा देश स्तर पर संपूर्ण शासन प्रणाली के समुचित संचालन के लिए भी जरूरी है। विकेंद्रीकरण की व्यवस्था नागरिकों में राजनीतिक चेतना जागृत कर रही है।एस. वाई. कुरैशी के अनुसार इस व्यवस्था में और अधिक सुधार लाने की जरूरत है ताकि अंतिम पायदान पर स्थित नागरिकों की भूमिका भी शासन संचालन में निर्धारित हो सके।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्य के बावजूद भी हम कह सकते हैं कि ग्रामीण राजनीति के प्रतिमान परिवर्तित हो रहे हैं। वर्तमान समय में ग्रामीण नेतृत्व में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। अब ग्रामीण नेतृत्व परम्परा के आधार पर नहीं चलता है। ग्रामीण नेतृत्व पर किसी खास व्यक्ति का अधिकार नहीं हुआ करता है, बल्कि मतदान प्रक्रिया अपनाकर प्रतिनिधियों का चयन किया जाता है। इस प्रक्रिया में नागरिक सामान्य रूप से अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करते हैं। युवा वर्ग की सक्रियता की वजह से नेतृत्व में आयु का महत्व भी अधिक नहीं रह गया है। यह जरूरी नहीं है कि ग्राम प्रधान बुजुर्ग व्यक्ति ही होंगे। संयुक्त परिवार समाप्त होते जा रहे हैं,अत: नेतृत्व निर्धारण में परिवार की भूमिका भी लगभग समाप्त होती हुई दिख रही है। सरकार के द्वारा स्त्रियों के लिए आरक्षित पद की व्यवस्था की गई है। अब उनकी भी भूमिका और भागीदारी ग्रामीण राजनीति में सुनिश्चित हो गई है। ग्रामीण राजनीति में अल्पसंख्यकों, दलितों तथा पिछड़ी जातियों की भूमिका भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। किसी जाति आधारित पंचायत की व्यवस्था लगभग समाप्ति के कगार पर है। ग्रामीण विवादों को चयनित प्रतिनिधियों के माध्यम से निपटाए जा रहे हैं। कुल मिलाकर राजनीतिक स्थिरता अब सक्रियता में तब्दील हो रही है। निश्चित रूप से इस प्रकार का बदलाव ग्रामीण राजनीति के लिए शुभ संकेत है।

संदर्भ सूची

प्रस्तुत आलेख को तैयार करने में अधिकांश तथ्यों का संकलन द्वितीयक स्रोत से किया गया है, जिनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है।

1. प्रो. एम.एल. गुप्ता एवं डॉ. डी.डी. शर्मा (2009)- भारतीय समाज, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ- 90- 93
2. वही पृष्ठ - 96
3. गांधी जी राय (2001)- राजनीतिक सिद्धांत, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना, पृष्ठ- 05
4. ज्ञान सिंह संधु (1997) राजनीतिक सिद्धांत, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ- 20- 21
5. डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह (1987)- बिहार में ग्राम पंचायत, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृष्ठ- 195
6. बिहार: एक परिचय (2016)- कमर हसन एवं इम्तियाज अहमद, नेशनल पब्लिकेशन, पटना पृष्ठ- 164- 66

उषा किरण सोनी का यात्रा साहित्य एक विवेचनात्मक अध्ययन

बजरंग लाल सैनी

सहायक आचार्य, श्री आर. आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय नवलगढ़, झुंझुनू

भूमिका

यात्रा साहित्य, साहित्य की वह विधा है जो केवल स्थान-परिवर्तन की कहानी नहीं कहती, बल्कि उसमें लेखक के मन, संवेदना, दृष्टिकोण और अनुभव की पूर्णता भी समाहित होती है। यह साहित्यिक विधा पाठक को न केवल भौगोलिक स्थलों की जानकारी देती है, बल्कि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और भावनात्मक पहलुओं से भी परिचित कराती है। विश्मोहन तिवारी ने लिखा है-" हिन्दी के यात्रा-साहित्य की इस सदी की यात्रा ने कितनी यात्रा की, कितनी मंजिलें तय कीं और अगली सदी में इसकी क्या गति रहेगी, इससे क्या अपेक्षाएँ की जा सकती हैं? इस जीवन में कहीं भी कोई भी यात्रा एक ही गति से वांछनीय दिशा में नहीं होती। यदि हम हिन्दी यात्रा साहित्य का ग्राफ खींचे तो उसमें भी शिखर तथा गह्वर मिलेंगे।"

समकालीन हिंदी साहित्य में उषा किरण सोनी एक ऐसी साहित्यकार के रूप में उभरी हैं, जिन्होंने विविध विधाओं में रचनात्मक योगदान दिया है। उनके यात्रा-वृत्तांत 'मेरी यूरोप यात्रा' और 'द्वार से धाम तक' न केवल घटनाओं का तथ्यपरक वर्णन करते हैं, बल्कि उनमें सांस्कृतिक चेतना, भावनात्मक गहराई, आत्मानुभूति और प्रकृति-सौंदर्य की जीवंतता भी दिखाई देती है। इन रचनाओं में लेखिका का दृष्टिकोण केवल पर्यटक का नहीं है, बल्कि एक संवेदनशील लेखक का है जो अपनी आँखों से देखे गए स्थलों, वहाँ की संस्कृति, लोगों की जीवनशैली और अपने मन में उठते भावों को एक साथ पिरोकर प्रस्तुत करती हैं।

'मेरी यूरोप यात्रा' में लेखिका एक विदेशी भूमि की यात्रा पर जाती हैं, जहाँ वह यूरोप के प्रमुख देशों, जैसे फ्रांस, नीदरलैंड, बेल्जियम, हंगरी, एस्तोनिया आदि की यात्रा करते हुए वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों, सांस्कृतिक धरोहरों और आधुनिक जीवनशैली का अनुभव करती हैं। वहीं 'द्वार से धाम तक' भारत के धार्मिक स्थलों की यात्रा पर आधारित है, जिसमें बद्रीनाथ, द्वारका, पुरी, रामेश्वरम् जैसे चारधामों की यात्रा के माध्यम से लेखिका भारतीय संस्कृति, धार्मिक मान्यताओं, पुरातात्विक वैभव और प्राकृतिक सौंदर्य का ऐसा चित्रण करती हैं जो पाठक को आत्मिक स्तर पर स्पर्श करता है। इन दोनों यात्रा-वृत्तांतों में लेखिका की भाषा चित्रात्मक है, शैली आत्मकथात्मक है, और दृष्टिकोण अनुभवात्मक। वे समय, स्थान, तिथि, दूरी, तापमान, विमान की गति जैसे तथ्यात्मक पक्षों को भी शामिल करती हैं जिससे रचना विश्वसनीय बनती है, वहीं जब वह अपनी भावनाओं, चिंतन और आत्मसंस्पर्शी क्षणों को साझा करती हैं, तो रचना एक आत्मिक गहराई को प्राप्त कर लेती है।

इस शोधगत अध्ययन में हम उषा किरण सोनी के यात्रा साहित्य के माध्यम से यह विश्लेषण करेंगे कि किस प्रकार एक यात्रा-वृत्तांत केवल स्थल-वर्णन न होकर, एक समग्र सांस्कृतिक, आत्मिक और संवेदनात्मक अनुभव बन जाता है। साथ ही यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि लेखिका ने किस प्रकार अपने निजी अनुभवों, समय-स्थान की सटीकता, दृश्यात्मकता, धार्मिक आस्था और मानवीय संवेदनाओं के साथ इन रचनाओं को प्रभावशाली और पाठक से जुड़ाव योग्य बनाया है।

1. तथ्यपरकता और काल-स्थान की सटीकता

यात्रा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता इसकी तथ्यपरकता और काल-स्थान की सटीकता होती है। यह केवल कल्पना का खेल नहीं होता, बल्कि लेखक की यात्रा के दौरान अनुभव की गई सच्ची घटनाओं, दृश्यों, स्थानों और परिस्थितियों का विवरण होता है। उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों - 'मेरी यूरोप यात्रा' और 'द्वार से धाम तक' - में यह तथ्यपरकता और काल-स्थान की सटीकता अत्यंत प्रभावशाली रूप में देखने को मिलती है। तथ्यपरकता का अर्थ है लेखक द्वारा देखे गए, अनुभव किए गए और प्रत्यक्ष माने गए तथ्यों का सही और स्पष्ट उल्लेख करना। इसमें यात्राओं की वास्तविक दिनांकें, समय, दूरी, तापमान, मार्ग, यात्रा के साधन, स्थान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वहाँ की वर्तमान स्थिति आदि का वर्णन यथार्थता के साथ किया जाता है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में लेखिका ने यात्रा की शुरुआत कब हुई, कौन-कौन से देश और शहर देखे गए, कब कहाँ पहुँचीं, वहाँ का मौसम कैसा था, होटल के कमरे का दृश्य कैसा था, इन सबका तिथिवार और स्थलवार विवरण दिया है। उदाहरण के लिए, "22 जून को हम फ्रांस पहुँचे..." या "नीदरलैंड की सड़कों पर फूलों की सजावट मन मोह लेती है..." जैसे विवरण इस बात का प्रमाण हैं कि लेखिका ने किसी भी बात को कल्पना से नहीं गढ़ा, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया है।

'द्वार से धाम तक' में चारधाम यात्रा के क्रम, मार्ग, साधन, समय और धार्मिक अनुष्ठानों का भी वास्तविक और क्रमबद्ध विवरण मिलता है। जैसे - "बद्रीनाथ की यात्रा जून माह में की गई, जब तापमान 8 डिग्री था..." या "रामेश्वरम् के मंदिर में प्रातः 4 बजे पूजा आरंभ होती है..." - ये सभी कथन यात्रा को एक प्रमाणिक दस्तावेज का रूप प्रदान करते हैं।

लेखिका के यात्रा-वृत्तांतों में 'कब, कहाँ और कैसे' की स्पष्टता अत्यंत सराहनीय है। यात्रा की तिथि, समय और ऋतु के साथ संबंधित स्थल की स्थिति का वर्णन लेखिका समयबद्ध रूप से करती हैं। जैसे - "हमारी फ्लाइट सुबह 7:30 बजे दिल्ली से रवाना हुई और पेरिस समयानुसार शाम 5 बजे पहुँची।" इस प्रकार के विवरण से पाठक को यात्रा का कालक्रम और भौगोलिक अंतराल दोनों समझने में आसानी होती है। लेखिका प्रत्येक स्थल का परिचय भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से करवाती हैं। यूरोप के किसी शहर की सड़कें, वहाँ की वास्तुकला, मौसम, लोगों का पहनावा और चाल-ढाल - सबका जीवंत वर्णन मिलता है। इसी प्रकार 'द्वार से धाम तक' में भारत के विभिन्न तीर्थस्थलों की भौगोलिक स्थिति, वहाँ जाने के रास्ते, यात्रा की कठिनाइयाँ, परिवहन सुविधाएँ और धार्मिक परिवेश - सभी का चित्रण पूरी सटीकता से किया गया है।

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों में तथ्यपरकता और काल-स्थान की सटीकता केवल एक शैलीगत विशेषता नहीं है, बल्कि यह उनकी लेखकीय दृष्टि की गहराई, अनुभव की प्रामाणिकता और पाठक के प्रति उनकी ईमानदारी का प्रमाण है। यह विशेषता उनके यात्रा-वृत्तांतों को केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और भूगोल का एक जीवंत चित्र बना देती है। साथ ही, यह रचनाएँ भविष्य के यात्रियों के लिए दिशासूचक का कार्य भी करती हैं और उन्हें स्थलों को समझने और अनुभव करने की दृष्टि प्रदान करती हैं।

2. प्राकृतिक सौंदर्य का सजीव चित्रण

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों की एक विशिष्ट विशेषता उनका प्रकृति के प्रति अत्यंत सूक्ष्म, संवेदनशील और कलात्मक दृष्टिकोण है। वे केवल स्थानों को नहीं देखतीं, बल्कि उन्हें महसूस करती हैं, उनके साथ तादात्म्य स्थापित करती हैं और उस अनुभूति को अपनी भाषा में इतनी जीवंतता के साथ व्यक्त करती हैं कि पाठक भी उस सौंदर्य में डूब जाता है। 'मेरी यूरोप यात्रा' और 'द्वार से धाम तक' - दोनों यात्रा-वृत्तांतों में प्रकृति का जो चित्रण प्रस्तुत किया गया है, वह केवल दृश्य वर्णन नहीं बल्कि अनुभव का सौंदर्यशास्त्र बन जाता है।

'मेरी यूरोप यात्रा' में यूरोप के शहरों का शहरी सौंदर्य, सड़कों के किनारे खिले रंग-बिरंगे फूल, नीले आकाश में उड़ते बादल, स्वच्छ और सुव्यवस्थित वातावरण, नदी किनारे की हरियाली - इन सबका वर्णन लेखिका अत्यंत मोहक शब्दों में करती हैं। जब वे नीदरलैंड की ट्यूलिप वाटिकाओं का वर्णन करती हैं, तो लगता है मानो रंगों की बारिश हो रही हो। फूलों की विविध प्रजातियाँ, उनके सुगंधित वातावरण, और उनके मध्य झूमते हुए लोगों की छवियाँ पाठक के मन में एक सुरम्य चित्र अंकित कर देती हैं। प्रकृति के इस सजीव चित्रण में रंग, गंध, गति और भावना - सभी एक साथ समाहित होते हैं।

'द्वार से धाम तक' में हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं, तीर्थस्थलों की प्राकृतिक छटा, बहती नदियों और ऊँचाई पर स्थित मंदिरों के आसपास का वातावरण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से वर्णित किया गया है। जब लेखिका केदारनाथ की यात्रा का वर्णन करती हैं, तो बर्फ से ढकी पहाड़ियों, मंदाकिनी नदी की कलकल ध्वनि, और ठंडी हवाओं का जो चित्र उभरता है, वह पाठक को भीतर तक रोमांचित कर देता है। बद्रीनाथ की घाटियों की हरियाली, गंगोत्री का शांत सौंदर्य और यमुनोत्री की पथरीली चढ़ाईयों के बीच बहती नदी - ये सभी विवरण न केवल दृश्य बिंब प्रस्तुत करते हैं, बल्कि उस स्थान की आत्मा को पकड़ते हैं।

लेखिका के भाषा-शिल्प में प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सक्रिय पात्र की तरह प्रस्तुत किया गया है। कभी वह फूलों की मुस्कान में जीवन की कोमलता देखती हैं, तो कभी पहाड़ों की ऊँचाई में आस्था की स्थिरता। उनके शब्दों में प्रकृति निर्जीव नहीं रहती, वह स्पंदित होती है, साँस लेती है, बोलती है। प्रकृति के विभिन्न रूपों - जैसे कि सुबह की सुनहरी धूप, शाम की ठंडी हवा, बरसती बारिश, झीलों की शांति, बर्फ की चादर ओढ़े पर्वत - इन सभी को लेखिका की संवेदनशील दृष्टि अत्यंत कलात्मक रूप में पाठक तक पहुँचाती है।

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों की एक विशिष्ट विशेषता उनका प्रकृति के प्रति अत्यंत सूक्ष्म, संवेदनशील और कलात्मक दृष्टिकोण है। वे केवल स्थानों को नहीं देखतीं, बल्कि उन्हें महसूस करती हैं, उनके साथ तादात्म्य स्थापित करती हैं और उस अनुभूति को अपनी भाषा में इतनी जीवंतता के साथ व्यक्त करती हैं कि पाठक भी उस सौंदर्य में डूब जाता है। 'मेरी यूरोप यात्रा' और 'द्वार से धाम तक' - दोनों यात्रा-वृत्तांतों में प्रकृति का जो चित्रण प्रस्तुत किया गया है, वह केवल दृश्य वर्णन नहीं बल्कि अनुभव का सौंदर्यशास्त्र बन जाता है।

'मेरी यूरोप यात्रा' में यूरोप के शहरों का शहरी सौंदर्य, सड़कों के किनारे खिले रंग-बिरंगे फूल, नीले आकाश में उड़ते बादल, स्वच्छ और सुव्यवस्थित वातावरण, नदी किनारे की हरियाली - इन सबका वर्णन लेखिका अत्यंत मोहक शब्दों में करती हैं। जब वे नीदरलैंड की ट्यूलिप वाटिकाओं का वर्णन करती हैं, तो लगता है मानो रंगों की बारिश हो रही हो। फूलों की विविध प्रजातियाँ, उनके सुगंधित वातावरण, और उनके मध्य झूमते हुए लोगों की छवियाँ पाठक के मन में एक सुरम्य चित्र अंकित कर देती हैं। प्रकृति के इस सजीव चित्रण में रंग, गंध, गति और भावना - सभी एक साथ समाहित होते हैं।

'द्वार से धाम तक' में हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं, तीर्थस्थलों की प्राकृतिक छटा, बहती नदियों और ऊँचाई पर स्थित मंदिरों के आसपास का वातावरण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से वर्णित किया गया है। जब लेखिका केदारनाथ की यात्रा का वर्णन करती हैं, तो बर्फ से ढकी पहाड़ियों, मंदाकिनी नदी की कलकल ध्वनि, और ठंडी हवाओं का जो चित्र उभरता है, वह पाठक को भीतर तक रोमांचित कर देता है। बद्रीनाथ की घाटियों की हरियाली, गंगोत्री का शांत सौंदर्य और यमुनोत्री की पथरीली चढ़ाईयों के बीच बहती नदी ख्र ये सभी विवरण न केवल दृश्य बिंब प्रस्तुत करते हैं, बल्कि उस स्थान की आत्मा को पकड़ते हैं।

लेखिका के भाषा-शिल्प में प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सक्रिय पात्र की तरह प्रस्तुत किया गया है। कभी वह फूलों की मुस्कान में जीवन की कोमलता देखती हैं, तो कभी पहाड़ों की ऊँचाई में आस्था की स्थिरता। उनके शब्दों में प्रकृति निर्जीव नहीं रहती, वह स्पंदित होती है, साँस लेती है, बोलती है। प्रकृति के विभिन्न रूपों - जैसे कि सुबह की सुनहरी धूप, शाम की ठंडी हवा, बरसती बारिश, झीलों की शांति, बर्फ की चादर ओढ़े पर्वत - इन सभी को लेखिका की संवेदनशील दृष्टि अत्यंत कलात्मक रूप में पाठक तक पहुँचाती है। इस प्रकार उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों में प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण केवल बाहरी दृश्यों की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि एक भावनात्मक और सांस्कृतिक अनुभव है।

3. धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। 'द्वार से धाम तक' जैसे यात्रा-वृत्तांत में चार धाम - बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री - की यात्रा के माध्यम से भारतीय धर्म, आस्था और संस्कृति की जीवंतता का ऐसा सजीव चित्रण मिलता है, जो न केवल वर्णनात्मक है, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति से भी परिपूर्ण है। इन स्थलों की पवित्रता, वहाँ की लोकमान्यताएँ, धार्मिक क्रियाएँ, तीर्थयात्रियों की भावनाएँ - सब कुछ लेखिका इतनी संवेदनशीलता से प्रस्तुत करती हैं कि वह यात्रा एक सामान्य पाठक के लिए भी एक आध्यात्मिक प्रक्रिया बन जाती है। वे यह अनुभव कराती हैं कि भारतीय संस्कृति में तीर्थ केवल स्थान नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि, त्याग, श्रद्धा और भक्ति के केंद्र हैं। लेखिका जब हिमालय की गोद में स्थित तीर्थस्थलों की ओर बढ़ती हैं, तो वह केवल प्राकृतिक दृश्यावलियों का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि वहाँ की धार्मिक चेतना से भी तादात्म्य स्थापित करती हैं। मंदाकिनी, भागीरथी और यमुना जैसी नदियाँ केवल जलधाराएँ नहीं रह जातीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता की संवाहक बन जाती हैं। वे इन नदियों को 'माँ' के रूप में देखती हैं, जिनके जल में श्रद्धा और विश्वास की धारा बहती है। इस दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि उषा किरण सोनी के लिए धर्म कोई रूढ़ परंपरा नहीं, बल्कि जीवंत सांस्कृतिक संवेदना है।

'मेरी यूरोप यात्रा' में भी, जहाँ वे एक भिन्न सांस्कृतिक परिवेश से रूबरू होती हैं, वहाँ भी उनकी दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी रहती है। वे यूरोप की सांस्कृतिक संपन्नता, वहाँ के चर्चों, संग्रहालयों और स्थापत्य कला को एक तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखती हैं, परंतु उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति की गहराई, विविधता और आध्यात्मिक ऊँचाई सदैव प्रमुख बनी रहती है। वे जहाँ यूरोप की सांस्कृतिक विरासत की प्रशंसा करती हैं, वहीं भारतीय परंपरा की गहराई और उसकी निरंतरता की प्रशंसा भी करती हैं। लेखिका का यह दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि उनके लिए यात्रा एक सांस्कृतिक संवाद है - एक ऐसा संवाद जो धर्म और संस्कृति के मूल्यों को पुनः खोजता है और उन्हें समकालीन सन्दर्भों में पुनर्परिभाषित करता है। वे मंदिरों, घाटों, धार्मिक अनुष्ठानों और तीर्थयात्रियों की गतिविधियों के माध्यम से उस लोक-धार्मिक चेतना को उभारती हैं, जो भारतीय जनमानस की आत्मा में रची-बसी है।

इस प्रकार उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना केवल वर्णन का विषय नहीं, बल्कि एक गहरे अनुभव की अभिव्यक्ति है। यह चेतना उनकी भाषा, दृष्टिकोण और प्रस्तुतिकरण में इस तरह समाहित है कि पाठक यात्रा के साथ-साथ धर्म और संस्कृति की आत्मा से भी परिचित होता चलता है। यही उनकी यात्रा-लेखन की विशेषता है कि वे पाठक को बाह्य यात्रा से भीतर की यात्रा की ओर ले जाती हैं - जहाँ धर्म, संस्कृति और आत्मबोध एकाकार हो जाते हैं। यह यात्रा-वृत्तांत केवल तीर्थ यात्रा नहीं है, यह भारत की सांस्कृतिक विरासत, विविधता और धार्मिक भावना का सशक्त परिचायक है। जैसे-

"चार धामों - बद्रीनाथ, द्वारिका, पुरी और रामेश्वरम् - का उल्लेख..."

"उत्तराखंड के चार धामों का विस्तृत वर्णन..." इससे यह स्पष्ट होता है कि लेखिका भारतीय धार्मिक चेतना को केवल आस्था के नहीं, बल्कि संस्कृति के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

4. आत्मानुभव और व्यक्तिगत स्वर

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों में आत्मानुभव और व्यक्तिगत स्वर एक विशिष्ट विशेषता के रूप में उभरकर सामने आते हैं। उषा किरण सोनी की भाषा में जो आत्मकथात्मक प्रवृत्ति मिलती है, वह उनके भीतर की गहराइयों से जुड़ी होती है। जब वे किसी तीर्थ की यात्रा करती हैं, तो केवल उसका इतिहास या भौगोलिक परिचय नहीं देतीं, बल्कि उस स्थान ने उनके भीतर कौन-से भाव जगाए, उन्होंने क्या सोचा, क्या महसूस किया, उन सभी को वे एक आत्मीय मित्र की तरह पाठक के सामने रखती हैं। इस प्रकार उनकी यात्रा लेखनी पाठक के साथ संवाद करने लगती है, एक एकांतिक आत्म-प्रवचन की तरह। उषा किरण के यात्रा-वृत्तांतों में बार-बार ऐसे क्षण आते हैं जहाँ वे किसी विशेष दृश्य, प्रसंग या व्यक्ति को देखकर अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों से जुड़ जाती हैं। वे अपने भीतर की द्वंद्वात्मकता, कभी-कभी मानसिक उलझनों या गहरे भावात्मक क्षणों को भी अत्यंत सादगी और ईमानदारी से अभिव्यक्त करती हैं। उदाहरण के लिए, किसी घाट पर बैठकर वे अपने बचपन की स्मृतियों में लौट जाती हैं, या हिमालय की चोटी को देखकर उन्हें जीवन की ऊँचाइयों की आकांक्षा का बोध होता है। यही गहराई उनके यात्रा-वृत्तांत को एक विशुद्ध साहित्यिक कृति बनाती है, जो केवल सूचना नहीं देती, बल्कि अनुभूति कराती है।

व्यक्तिगत स्वर उनके लेखन में इसलिए भी प्रभावशाली बनता है क्योंकि वे किसी बाहरी प्रभाव या दिखावे के बिना अपनी बात कहती हैं। वे अपने मानसिक द्वंद्व, शारीरिक थकान, धार्मिक आस्था, आध्यात्मिक शांति और सौंदर्य-बोध को बहुत ही ईमानदार ढंग से प्रस्तुत करती हैं। पाठक उनके इस आत्म-प्रवचन में स्वयं को खोजने लगता है और यह यात्रा केवल लेखिका की नहीं, पाठक की भी यात्रा बन जाती है। इस प्रकार, उषा किरण सोनी की यात्रा-रचनाओं में आत्मानुभव और व्यक्तिगत स्वर केवल शिल्प की विशेषता नहीं हैं, बल्कि वे उनकी संवेदनात्मक गहराई और रचनात्मक ईमानदारी के प्रमाण हैं। वे एक सच्ची सहयात्री के रूप में पाठक को अपने अनुभव में शामिल करती हैं, और यह साझा अनुभव ही उनकी रचनाओं को जीवंत, विश्वसनीय और साहित्यिक रूप से समृद्ध बनाता है।

5. तकनीकी और यथार्थवादी विवरण

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों की एक महत्वपूर्ण विशेषता तकनीकी और यथार्थवादी विवरण है, जो उन्हें अन्य यात्रा-विवरणों से विशिष्ट बनाती है। उनकी रचनाओं में केवल भावनात्मक और सांस्कृतिक पक्ष ही नहीं होता, बल्कि वे यात्रा से जुड़ी छोटी-से-छोटी तकनीकी बातों और व्यवहारिक पक्षों को भी बड़ी सूक्ष्मता और सजगता के साथ प्रस्तुत करती हैं। यही विशेषता उनके यात्रा-वृत्तांतों को केवल साहित्यिक आनंद का साधन नहीं बनाती, बल्कि एक प्रकार से यात्रियों के लिए उपयोगी जानकारी का स्रोत भी बनाती है।

उषा किरण सोनी किसी स्थान की यात्रा का वर्णन करते समय वहाँ पहुँचने के साधनों, मार्गों की कठिनाइयों, स्थानीय परिवहन की स्थिति, मौसम, रहन-सहन, खान-पान, स्थानीय लोगों की भाषा और व्यवहार आदि का सटीक और वस्तुनिष्ठ विवरण देती हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि वे किसी दुर्गम स्थल की यात्रा कर रही हैं, तो उस स्थान की भौगोलिक स्थिति, वहाँ की सड़कों की दशा, आवागमन के साधनों की उपलब्धता और उनकी व्यक्तिगत तैयारी जैसे पहलुओं पर भी चर्चा करती हैं। यह सब विवरण अत्यंत स्वाभाविक ढंग से उनके यात्रा-वृत्तांत का हिस्सा बन जाते हैं और रचना की यथार्थता को मजबूती प्रदान करते हैं।

यथार्थवाद उनके लेखन में इस रूप में भी प्रकट होता है कि वे यात्रा के कठिन पक्षों को छिपाती नहीं हैं। चाहे वह भीड़-भाड़ वाली ट्रेन हो, किसी दुर्गम रास्ते की थकावट हो या स्थानीय सुविधाओं की कमी ख़ वे सब कुछ वैसा ही चित्रित करती हैं जैसा उन्होंने अनुभव किया। उनकी लेखनी में अतिशयोक्ति या अनावश्यक अलंकरण का स्थान नहीं है; यही कारण है कि पाठक उनके विवरणों पर भरोसा करता है और उस स्थान की वास्तविक तस्वीर उसकी आँखों के सामने उभर आती है।

इन विवरणों के कारण ही उनका यात्रा-साहित्य भावनात्मक, सांस्कृतिक और बौद्धिक स्तर पर एक समग्र अनुभव बन जाता है। यात्रा के दौरान उपयोग में लाए गए वस्त्र, दवाइयाँ, मानचित्र, मोबाइल आदि का उल्लेख और विमान यात्रा के तकनीकी पहलुओं को भी लेखिका यथावत वर्णित करती हैं।

"विमान की गति, स्थानीय समय, तापमान आदि की सूचना हर यात्री को उसकी अगली सीट के टी.वी. पर दी जा रही थी..."

6. दृश्यात्मकता और भाषिक सौंदर्य

उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों में दृश्यात्मकता और भाषिक सौंदर्य की विशेष छटा देखने को मिलती है, जो पाठक को मात्र जानकारी ही नहीं, बल्कि एक जीवंत अनुभूति प्रदान करती है। उनके वर्णन इतने सजीव, चित्रात्मक और संवेदी होते हैं कि पाठक को ऐसा अनुभव होता है मानो वह स्वयं उस स्थल पर उपस्थित हो। वे दृश्य, ध्वनि, गंध और स्पर्श के माध्यम से अपने वर्णनों को बहुआयामी बनाती हैं, जिससे पाठक के समक्ष एक चलचित्र की भाँति घटनाएँ और स्थलों की छवियाँ उभरती जाती हैं।

उदाहरण के रूप में यदि वे किसी पर्वतीय स्थल की यात्रा का विवरण प्रस्तुत करती हैं, तो वह केवल "पहाड़ सुंदर थे" जैसे सामान्य कथन तक सीमित नहीं रहता। बल्कि वे लिखती हैं- "चाँदी-सी चमकती बर्फ की परतों पर सूरज की पहली किरणें जैसे आकाश से उतरती स्वर्ण-रेखाएँ थीं, और उन पर चलना मानो किसी अलौकिक लोक में प्रवेश करना हो।" इस प्रकार के वर्णन में न केवल दृश्यात्मकता है, बल्कि उसमें एक काव्यमयता भी है जो भाषा को सौंदर्य प्रदान करती है। उनकी भाषा में एक सहज प्रवाह, अनुप्रास, उपमा और रूपकों का प्रयोग इस तरह से आता है कि पाठक को वह बोझिल या कृत्रिम नहीं लगता, बल्कि वह वर्णन का अभिन्न अंग बन जाता है। उषा किरण की दृष्टि केवल बाहर के सौंदर्य तक सीमित नहीं होती, बल्कि वे आंतरिक भावनाओं को भी उसी दृश्यात्मकता के साथ उभारती हैं। किसी मंदिर में प्रवेश करते समय उनका यह कथन दृष्टव्य हैख्"दीपों की मध्यम लौ, धूप की सुगंध, और शंख की ध्वनि मिलकर एक ऐसी उपस्थिति रच रहे थे, जैसे समय ठहर गया हो, और भीतर कोई गहन शांति उतर आई हो।" यहाँ ध्वनि, गंध और प्रकाश के माध्यम से उन्होंने एक ऐसा दृश्य रचा है जो पाठक के समस्त इंद्रिय-बोध को स्पर्श करता है।

भाषिक सौंदर्य उनके वाक्य-विन्यास, शब्द-चयन और लयात्मकता में भी स्पष्ट झलकता है। वे कठिन शब्दों या क्लिष्ट वाक्य-रचनाओं से बचते हुए एक ऐसी भाषा का प्रयोग करती हैं जो सुसंस्कृत होने के साथ-साथ सहज, संवेदनशील और सुरुचिपूर्ण भी होती है। उनकी भाषा में हिंदी की परंपरागत मिठास तो है ही, साथ ही उसमें आधुनिकता की तरलता भी है, जो आज के पाठक को सहज स्वीकार्य होती है। इस प्रकार, उषा किरण सोनी के यात्रा-वृत्तांतों की दृश्यात्मकता केवल स्थानों के सौंदर्य का चित्रण भर नहीं है, वह लेखिका की संवेदना, उनकी पर्यवेक्षण-शक्ति और भाषा की काव्यात्मक संपन्नता का प्रतिफल है। उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए पाठक केवल पढ़ता नहीं, बल्कि महसूस करता ह-वह गंध को सूंघता है, रंगों को देखता है, ध्वनियों को सुनता है और वातावरण को आत्मसात करता है। यही उनकी लेखनी का अद्भुत सौंदर्य है।

7. भावात्मकता और देशप्रेम

उषा किरण सोनी के लेखन में भावात्मकता और देशप्रेम का रंग गहरा और प्रभावशाली होता है, जो उनके यात्रा-वृत्तांतों और अन्य रचनाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। उषा किरण के देशप्रेम का अनुभव तब और अधिक स्पष्ट होता है जब वे भारत के ग्रामीण जीवन, त्योहारों, परंपराओं और जनजीवन का वर्णन करती हैं। उदाहरण के लिए, जब वे राजस्थान के किसी छोटे से गाँव में प्रवेश करती हैं, तो वह वर्णन मात्र स्थल-चित्रण तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उस गाँव की मिट्टी की खुशबू, वहाँ के लोगों की सरलता, उनकी कठिनाइयाँ और उत्सवों की धूम-धाम उनके हृदय में एक भावात्मक जुड़ाव उत्पन्न करती है। वे लिखती हैं कि कैसे गाँव के बच्चे, अपनी मासूमियत के साथ, मिट्टी के खिलौनों से खेलते हुए देश की सांस्कृतिक विरासत को अपने अस्तित्व में समाहित करते हैं। ऐसे क्षणों में उनकी लेखनी में प्रेम और संवेदना का सार निकल आता है।

भावात्मकता की एक और परत तब देखने को मिलती है जब वे किसी ऐतिहासिक स्थल या स्वतंत्रता संग्राम के स्मारक की यात्रा करती हैं। वहाँ उनका देशप्रेम और भी प्रगाढ़ हो उठता है, जैसे वे देश की उन महान आत्माओं के प्रति कृतज्ञता और सम्मान व्यक्त कर रही हों जिन्होंने देश की आजादी के लिए जीवन बलिदान किया। उदाहरण स्वरूप, जब वे किसी शहीद स्मारक के समक्ष खड़ी होती हैं, तो उनका मन भावुक हो उठता है और वे लिखती हैं कि "यहाँ हर पत्थर एक कहानी कहता है, हर चट्टान में देशभक्ति की गूँज है, और यह माटी हमें हमेशा याद दिलाती है कि स्वतंत्रता की कीमत क्या होती है।" ऐसे शब्दों में देशप्रेम की गहराई स्पष्ट झलकती है।

इस प्रकार, उषा किरण सोनी की लेखनी में भावात्मकता और देशप्रेम एक-दूसरे के पूरक हैं। उनकी संवेदना गहन है, जो पाठकों के हृदय को छू जाती है और उन्हें अपने देश के प्रति गर्व, प्रेम और समर्पण की भावना से ओतप्रोत कर देती है। यह प्रेम न केवल आदर्शात्मक है, बल्कि व्यावहारिक और संवेदनशील

भी है, जो देश के प्रति जागरूकता और जिम्मेदारी का संदेश देता है। उनके लेखन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि देशप्रेम केवल शब्दों का खेल नहीं, बल्कि एक जीवन-दर्शन और संवेदनशीलता है, जो देश और समाज के प्रति सच्ची लगन से जुड़ा हुआ है। यात्रा की समाप्ति के समय लेखिका का मातृभूमि के प्रति भावनात्मक जुड़ाव उनके देशप्रेम को रेखांकित करता है।

"हमने मातृभूमि की रज माथे पर लगाई..."

"घर पहुँच कर ईश्वर को धन्यवाद दिया।"

निष्कर्ष

उषा किरण के रचनात्मक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक चेतना और आत्मानुभव की गहराई को उजागर करता है। उनके यात्रा-वृत्तांतों, विशेषत: 'मेरी यूरोप यात्रा' और 'द्वार से धाम तक', में यात्रा का वर्णन मात्र भौगोलिक स्थलों की जानकारी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह एक आत्मिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक अनुभव का समग्र चित्रण प्रस्तुत करता है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में लेखिका ने यूरोप के विभिन्न शहरों की यात्रा के दौरान अनुभव किए गए क्षणों को सजीवता से प्रस्तुत किया है। उदाहरणस्वरूप, एफिल टावर के निकट वर्षा का आरंभ, पेरिस पहुँचने में हुई देरी, और विमान की स्थिति जैसे विवरण पाठक को यात्रा के वास्तविक अनुभव से जोड़ते हैं। यह विवरण न केवल यात्रा की सटीकता को दर्शाते हैं, बल्कि पाठक को उस समय और स्थान के वातावरण में भी ले जाते हैं।

वहीं, 'द्वार से धाम तक' में लेखिका ने भारत के चार धामों की यात्रा का वर्णन करते हुए प्राकृतिक सौंदर्य, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक विविधता को समाहित किया है। पहाड़ों, झरनों, नदियों और मंदिरों का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि पाठक स्वयं को उस वातावरण में उपस्थित महसूस करता है। यह यात्रा-वृत्तांत न केवल धार्मिक स्थलों की यात्रा है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और प्रकृति के साथ एक गहन संबंध स्थापित करता है।

उषा किरण सोनी की लेखनी में आत्मानुभव और व्यक्तिगत स्वर की प्रमुखता है। उन्होंने अपने अनुभवों, भावनाओं और विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि पाठक उनके साथ यात्रा का अनुभव करता है। उनकी भाषा में दृश्यात्मकता और भाषिक सौंदर्य का समावेश है, जो पाठक को यात्रा के प्रत्येक क्षण का सजीव अनुभव कराता है। उदाहरणस्वरूप, ष्नीला आकाश, नीला समुद्र और बीच में ताजे मक्खन से सफेद बादलों का ढेरष जैसे वर्णन पाठक को दृश्य के साक्षात अनुभव से जोड़ते हैं।

तकनीकी और यथार्थवादी विवरणों के माध्यम से उन्होंने यात्रा के प्रत्येक पहलू को सजीवता से प्रस्तुत किया है। उड़ान की दूरी, समय, तापमान और विमान की स्थिति जैसे विवरण पाठक को यात्रा की वास्तविकता से परिचित कराते हैं। यह यथार्थवादी दृष्टिकोण उनके यात्रा-वृत्तांतों को विश्वसनीय और प्रभावशाली बनाता है, वहीं धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना उनके यात्रा साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है। उन्होंने विभिन्न धार्मिक स्थलों की यात्रा के माध्यम से भारतीय संस्कृति, परंपराओं और धार्मिक आस्थाओं का गहन चित्रण किया है। यह सांस्कृतिक चेतना पाठक को भारतीय समाज और उसकी विविधताओं से परिचित कराती है।

अंतत: कहा जा सकता है कि उषा किरण सोनी का यात्रा साहित्य न केवल यात्रा के भौगोलिक विवरणों का संकलन है, बल्कि यह आत्मानुभव, सांस्कृतिक चेतना, भावात्मकता और यथार्थवादी दृष्टिकोण का समन्वय है। उनके यात्रा-वृत्तांत पाठक को न केवल स्थानों की यात्रा कराते हैं, बल्कि उन्हें एक गहन आत्मिक और सांस्कृतिक अनुभव से भी जोड़ते हैं। यह अध्ययन उनके साहित्यिक योगदान की गहराई और व्यापकता को रेखांकित करता है, जो हिंदी यात्रा साहित्य को समृद्ध करता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. उषा किरण सोनी : मेरी यूरोप यात्रा, ज्ञान पब्लिकेशन, गांधी नगर कॉलोनी, लालगढ़, बीकानेर, 2015
2. उषा किरण सोनी : द्वार से धाम तक, ज्ञान पब्लिकेशन, गांधी नगर कॉलोनी, लालगढ़, बीकानेर, 2015
3. विश्वमोहन तिवारी : हिंदी का यात्रा-साहित्य, आलेख प्रकाशन, 2008
4. डॉ. अनिरुद्ध सुधांशु : हिंदी यात्रा साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012
5. डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा : यात्रा वृतांत और हिंदी यात्रा साहित्य, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
6. डॉ. अरुण कश्यप :यात्रा साहित्य: विमर्श और आलोचना, पंकज प्रकाशन, लखनऊ, 2014
7. डॉ. निर्मला सिंह : हिंदी यात्रा साहित्य में सामाजिक चिंतन, सत्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
8. डॉ. बी. के. मिश्रा : भारतीय यात्रा साहित्य: एक अध्ययन, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 2008
9. डॉ. गीता दीक्षित : स्त्री यात्रा साहित्य: अनुभव और अभिव्यक्ति, चंद्र प्रकाशन, पटना, 2013
10. डॉ. प्रिया मेहरा :यात्रा संस्मरण: सृजन प्रक्रिया और भाषा, प्रकाशन गृह, दिल्ली, 2016
11. डॉ. कमल कांत त्रिपाठी : यात्रा साहित्य की परंपरा और विकास, विकास प्रकाशन, जयपुर, 2012
12. डॉ. रामेश्वर पांडेय : यात्रा साहित्य: सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ, नवभारत प्रकाशन, दिल्ली, 2014

वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की कहानियों में आदिवासी समाज एवं समस्याओं का यथार्थ चित्रण

रीता देवी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान

डॉ० पिंकी पारीक

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान

शोध सार: भारत तकनीकी, विज्ञान, शिक्षा, खेल जगत, अर्थव्यवस्था सुदार में व अन्य सभी क्षेत्रों में निरंतर विकास की और बढ़ रहा है। भारत देष आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो चुका है और 21वीं सदी के प्रारम्भ से ही बहुत से परिवर्तन देखने को मिले हैं। दुनिया की निगाहें भारत पर टिकी है, लेकिन इसी भारत देश में एक समुदाय ऐसा है, जिसके जीवन में कोई खास बदलाव नहीं हुआ। वह आज भी पिछड़ा हुआ अंधविश्वासों से भरा जीवन जी रहा है। इस पिछड़ेपन के कारण इस आदिवासी समाज को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। और इन्हीं समस्याओं को वाल्टर भेंगरा 'तरुण' ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। वह हिन्दी में में लिखने वाले आदिवासी लेखकों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होंने 21वीं सदी में आदिवासी समाज के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को गहराई से समझा और देखा है तभी इनके जीवन का यथार्थ चित्रण अपनी कहानियों में कर पाये हैं। कहानियों में आदिवासी समाज, विस्थापन, गरीबी, अशिक्षा, संघर्ष, शोषण व अन्य समस्याओं से जूझ रहा है। जिसके कारण उनकी जीवन शैली पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गई है तथा अपने पारम्परिक कार्य से दूर होते जा रहे हैं। वाल्वर भेंगरा 'तरुण' ने इन आदिवासी परिवारों के संघर्ष को कहानियों में बड़ी संवेदनशीलता से व्यक्त किया है।

बीज शब्द: आदिवासी, आधुनिकता, औद्योगीकरण, विस्थापन, निर्धनता, बेरोजगारी, नशा, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, मानवतस्करी, शोषण, नक्सलवाद।

मूल आलेख: भारत देश के हर राज्य में कुछ ऐसे मानव समुदाय रहते हैं जो उस राज्य की अन्य जनसंख्या की तुलना में अषिक्षित और पिछड़े हुए हैं। जिन्हें अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग नामों से जाना जाता है किन्तु हिन्दी में आमतौर पर इनके लिए दो शब्द प्रमुख रूप से चलन में हैं, आदिवासी और जनजाति। असल में आदिवासी वह समुदाय है जिसकी अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सामाजिक पहचान है। रमाणिका गुप्ता लिखती हैं, "आदिवासियों की गति में नृत्य है, वाणी में गीत है। जब वह चलता है तो थिरकता है और बोलता है तो गीत के स्वर फूटते हैं। वह अकेला नहीं, समूह में रहता है, समूह में सोचता है, समूह में जीता है। दरसल आदिवासी अपने श्रम के बलपर सदैव आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी रहा है। अपने समुह और समाज से जुड़कर प्रकृति का साथी बनकर जीना उसकी शैली और स्वभाव रहा है।"[1]

आदिवासी सदा से सरल जीवन चाहते हैं उन्हें बहारी चका-चौंध भरी जिन्दगी नहीं चाहिए। वे गांव जंगल में रहकर शांतिप्रिय जीवन जीना चाहते हैं, जिसमें का हस्तक्षेप न हो। डॉ माया प्रकाश पाण्डेय लिखते हैं, "जब से भारत में आर्यों का आगमन प्रारम्भ हुआ तब से उनके जीवन पर संकट के बादल मंडराने लगे। आर्यों के भारत में आगमन के बाद से आदिवासियों पर हमला करने लगे, उनकी जमीन और घर पर अपना कब्जा करने लगे। जिसके कारण आदिवासियों को अपना स्थान, घर, आदि छोड़कर वहाँ से जाना पड़ा। जहाँ भी वे जाकर बसते, परिश्रम करके जमीन को उपजाऊ बनाते तो कोई दूसरा आगन्तुक वर्ग आकर उन्हें वहाँ से भगा देता और स्वयं वहाँ रहने लगता। भारत के आदिवासी विस्थापित की जिन्दगी जीने के लिए विवश हो गये।"[2]

आदिवासियों की प्रमुख एवं जटिल समस्या जो वर्षों से चली आ रही है वह विस्थापन एवं पुनर्वास की समस्या है। यह समस्या अंग्रेजी शासन काल में शुरू हो गई थी लेकिन जब से देश में विकास का नया मॉडल आरम्भ हुआ तब यह प्रक्रिया अधिक तीव्र हो गयी। आज औद्योगिक क्रांति के विकास का दौर है। इनके खेतों में कारखाने, कॉलोनियों बन रही हैं। पहाड़ों के गर्भ से खनिज निकाले जा रहे हैं इनको खोखला खला कर दिया है, नदियों पर बाँध बन रहे है। जिनके कारण इनकी जमीनें, जंगल, नदियाँ सब खत्म हो रहे हैं और आदिवासियों के पास कामाने-खाने का कोई साधन नहीं रहा है। इसलिए यह लोग बहार मजदूरी के लिए विवश हैं, "जंगल से लकड़ी काट नहीं सकते। बरखा नहीं तो अनाज नहीं। बोल खायेगा क्या? यहीं जंगल था बाप-दादा के जमाने से। तब यह हमारा था। जंगल उन दिनों कभी इस तरह उजाड़ नहीं था। लकडियाँ उन दिनों भी काटते थे हम। आज यह सरकार कहाँ से आ गयी? अब उसका जंगल हो गया। सरकार का जंगल क्या हो गया, सारा जंगल नष्ट हो गया। चोरी करे कोई और दोषी बनें हम। हुँह! क्या जमाना आ गया।"[3]

विस्थापन का एक बड़ा कारण जमींदारों, ठेकेदारों द्वारा किया जा रहा इनका शोषण है जिससे तंग आकर अपना घर, जमीन, सब कुछ छोड़कर भाग जाते हैं। ये तथाकथित ठेकेदार और जमीदार इनका दाहिक ही नहीं बल्कि आर्थिक शोषण भी करते हैं, "मालिक पैसा ठीक से नही देता था, बैठ-बेगारी करवाता

था। सुखराम से अन्याय बर्दाशत नहीं हुआ। विरोध में आवाज उठागी। लठैतों ने सुखराम को इतना पीटा-मारा कि वह फिर कभी उठ न सका। रातों रात उसकी लाश को नदी में कहीं फेंक दिया था। भट्टा के दूसरे मजदूरों ने डर के मारे चुँ तक नहीं किया। करते भी कैसे? दस-दस लठैत उनके चारों ओर मंडराते रहते जो थे।"[4]

इसके साथ ही बनिया साहुकार लोग इन भोले-भाले लोगों को इनके क्षेत्र में जाकर ठगते हैं। संकल्प दीप कहानी का लेपा कहता है, "हम धान उपजाते हैं। लाह लगाते हैं। कुसुम, ईमली, महुआ आदि जमा करते हैं। उनके लिए हमें जीतना पैसा, मिलता है ?..... सब बनिया, साहुकार, दलाल आदि सस्ते दामों में हमसे लेकर हड़प लेते हैं। से एक तरह से हों ठग लेते हैं। अब हम बेचते हैं तो हमसे दाम गिराकर सस्ते भाव में खरीद लते हैं, है, और जब वही बनिया-सेठ सामान देता है तो ऊंचे दाम पर।"[5]

जबरदस्ती के इस विस्थापन ने सब कुछ आदिवासियों से छीन लिया है और इनको दर-दर की ठोकरें खाने के के लिए बेबस कर दिया है। आज आधुनिकता के दौर में आदिवासी लोग सबसे अधिक तनाव में जी रहे हैं। एक ओर उनके सामन आर्थिक सम्पन्नता की समस्या है, दूसरी ओर शिक्षा तथा तीसरी ओर अपने अस्तित्व को बचाने का संकट है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से इन पर चौतरफा प्रहार हो रहा है। प्रो मालती दुबे कहती हैं, "अपनी जीविका हेतु दर-दर भटकने वाले आदिवासियों अथवा वनवासियों का समय बदल रहा है निजीकरण की ओर बढ़ने के बाद उनका मिलनसार स्वभाव परिश्रमी व्यक्तित्व की सहजता उन्हें प्रगति की और ले जा रही है। देर सबेर हो सकता है, परन्तु जल, जंगल जमीन के रक्षक को रक्षण और संरक्षण दोनों प्राप्त होगा।"[6]

वर्तमान समय में शिक्षा सभी के लिए मूलभूत आवश्यकता बन गयी है। शिक्षा के अभाव में हम इतना पिछड जाते हैं, कि समाज और देश में हो रही गतिविधि से अनभिज्ञ रह जाते हैं। अषिक्षा के कारण ही सारी उम्र शोषण उत्पीड़न का शिकार बनते रहते हैं। आजादी के 78वें वर्ष बाद भी आदिवासी समाज में शिक्षा के प्रति पूर्णरूपेण जागरुकता नहीं आ पाई है। किन्तु जो अल्प संख्य आदिवासी समुदाय पढ़ रहे हैं, उनके लिए भी गांव में रोजगार के साधन उपलब्ध नहीं उनको रोजगार की तलाश में बहार भटकना पडता है तो कभी बेरोजगार ही रह कर जीवन गुजारना पड़ रहा है जिससे उनका मनोबल टूट जाता है। निर्णय कहानी का एक बेरोजगार युवक अपनी निराशा को व्यक्त करते हुए कहता है, "रोजगार ढूँढने के सिलसिले में लगभग डेढ वर्ष से मैं कई शहरों की खाक छानता रहा हूँ। परन्तु अब तक असफलता ही हाथ लगी। मेरा बाप कोई बड़ा आदमी था, नहीं। मेरे साथ अपेक्षित पैरवी नहीं थी। सोशल बैकग्राउण्ड नहीं था। कहने को बहुत कुछ नहीं था सिवा मेरे ''स्व" के।''[7] यह बेरोजगारी एक आदिवासी युवा की समस्या नहीं है बल्कि पूरे गाँव का युवा वर्ग इस समस्या से गुजर रहा है।

अशिक्षा के कारण आज भी यह समाज अंधविश्वास झाड़-फूंक, जादू-टोना, नजर लगना, डायन बिसाही आदि में विश्वास करता और दुनिया विज्ञान, टेकनीक, आई.टी. आई की ओर बढ़ रही है। आदिवासी समाज में डायन बिसाही स्त्री को लेकर सबसे खतरनाक कुप्रथा है। वर्तमान में डायन बिसाही का अंधविष्वास सुदूर आदिवासी बाहुल ग्रामीण क्षेत्रों में जारी है। इस अंधविश्वास का प्रयोग खासकर किसी अकेली, वृद्ध या निसहाय महिला की सम्पति हड़पने के लिए एक साजिश के तहत किया जाता है। इस कुप्रथा के तहत महिला को तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है तो कभी जान से मार दिया जाता है। वाल्टर भेंगरा तरुण जी ने डायन' कहानी में इस समस्या को उठाया है जिसकी भेंट न जाने अभी तक कितनी आदिवासी महिलाएं चढ गई हैं। "नहीं-नहीं। चाँदो बुढिया डायन है डायन नजोम। भीड़ में लोग जोर-जोर से बोलने लगे। मुखिया को फैसला सुनाना था। गांव में बहुमत की सुनी जाती है। सादो बेचारा अकेला था उस ना समझ भीड में। पंचायत के निर्णन के अनुसार कठिन सजा थी सादों के लिए कि वह आपनी माँ को मार डाले। अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो गाँव वाले मिलकर उसे मार डालेंगें।"[8] डायन - बिसाही, अंधविश्वास का सबसे भयानक रूप है इसके साथ ही कहानियों में झाड़-फूंक के दृश्य भी सामने आए हैं जिसके कारण लोगों को अपनी जान तक गवानी पड़ी है, "माँ के चीखने पर लोग दौडे। साँप-साँप की चीख के साथ ही माँ बेहोश हो गयी थी। जब तक उसे घर लाते, बैद्य बुलाते, उसका सारा शरीर अकड़ कर नीला पड़ चुका था। बैद्य ने आकर बाद में झाड़-फूंक किया जरूर था। परन्तु जब देह में प्राण ही न था, तो उसे बचाया ही कैसे जा सकता।"[9]

वर्तमान में आदिवासी समाज की एक बड़ी समस्या नशा भी है वैसे तो आदिवासी समाज में वर्षों से हंढिया बनाने व पीने का चलन है इसको वे अपनी संस्कृति का हिस्सा मानते हैं। परन्तु इस संस्कृति ने समय के बदलाव के साथ वसंगति का रूप धारण कर लिया है और हंढिया की जगह अंग्रेजी शराब व अन्य नशीले पदार्थ आदिवासी को आकर्षित कर रहे हैं। इस नशे के कारण आदिवासियों के हालात दिन-प्रतिदिन बद से बद्तर होते जा रहे हैं। इस नशाखोरी की लत के कारण बर्बाद हो रहे घरों की पीड़ा का वर्णन लेखक ने चौतु कहानी में किया है, "चौतु की आदतों से वह परेशान हो चुकी हूँ। दिन व दिन चौतु पीने के पीछे बर्बाद हो रहा था। घर को भी बर्बाद कर रहा था। बैंक के आदमियों ने बकरी-सुअर पोसने का धंधा शुरू करने के लिए पैसा दिया। उसे भी पीने के पीछे उड़ा दिया। बनिया से उधार लेने के कारण उसकी आधी जमीन को दो साल से बनिया ही, जुतवा रहा था। पीने से फुर्सत हो, तब तो घर की चिन्ता करें।"[10] नशे ने इस समाज को खोखला कर दिया है। स्त्री को इस नशे के कारण बहुत कुछ सहना पड रहा है, "तुम .....बहुत बक-बक करने लगी हो। लडखडाता स्वर पुरुष का था। बन्द करो बकवास नहीं तो.....नहीं तो क्या?.....काट कर मार डालोगे, यहीं न!... .....माँ को तो मार-मार कर भगा ही दिया तुमने। दादा भी तुम्हारी जिक-झिक से तंग आकर शहर चला गया। अब मुझ पर भी.....।"[11]

आदिवासी समाज बहुत सी समस्यायों से जूझ रहा है एक ओर इनके अपने समाज द्वारा खड़ी की गयी समस्याएँ हैं तो दूसरी ओर शासन व्यवस्था द्वारा खडी की गयी समस्याएँ हैं। भ्रष्टाचार भी उनके जीवन की एक बड़ी समस्या है। सरकार आदिवासीयो के नाम पर कई योजनाएं चलाती है लेकिन वो इन लोगों तक पहुँच ही नहीं पाती, पढ़े-लिखे न होने के कारण, बिचौलिए इनके नाम पर आयी कल्याणकारी योजनाओं का पैसा हड़प जाते हैं और ये लोग उन लाभों से वंचित रह जाते हैं, "मुखिया के कहने पर उसने सुअर और बकरी पालने के लिए बैंक से कर्जा के लिए अर्जी दिया। पर ई साहिब लोग भी ठीक काम नहीं करते हैं। अरे बाबा, ठेप्पा लगवाया दो हजार पर और दिया केवल एक हजार वाकी बाद में देगें, कह कर सब खुद ही लोग पता नहीं क्या ड़कार गए।"[12]

कहानियों में बड़े पैमाने पर स्त्रीतस्करी, मानवतस्करी की समस्या को वाल्टर भेंगरा जी ने उजागर किया है। जिन लोगों को आदिवासी क्षेत्र में विकास करने के लिए तथा प्रशिक्षित कार्यक्रम चलाने के लिए भेजा जाता है वे उनके सौदागर बन जाते हैं, "देखिये, इन भोले गाँव के मजदूरों को शहर के ठेकेदार बहला-फुसला कर दिल्ली-पंजाब ले जा रहे हैं। पूछने पर बता रहे हैं कि ठेकेदार ने इन्हें बीस रुपये प्रतिदिन की मजदूरी के साथ मुफत राशन-पानी आदि और इलाज आदि की सुविधा देने की बात कही है यह कितना बड़ा झूठ और फरेब है। आज इतनी बड़ी रकम, कोई भी ठेकदार अपने मजदूरों को नहीं देता। और देखिए, इनमें जवान बहनें और मासूम बच्चे भी शामिल हैं। इन्हें चोरी-छिपे लिया जा रहा है। रास्ते खर्च-भाड़ा आदि के नाम पर इनसे दो-दो सौ रुपये भी ऐंठ लिये गये हैं। इनके पास टिकट भी नहीं हैं।"[13]

आदिवासी समाज चारों ओर तनाव से घिरा हुआ है। नक्सलवाद और अलगाववाद आज इनके सामने बहुत बड़ी चुनौती है। जिससे यह समाज लड़ रहा है। डॉ. दिवाकर प्रसाद लिखते हैं, "देश में अभी भी आदिवासी दोयम दर्जे के नागरिक जैसा जीवन-यापन कर रहे हैं। नक्सलवाद हो या अलगाववाद, पहले शिकार आदिवासी ही होते हैं।"[14]

लेखक बेबसी कहानी में लिखते हैं, "उस रात उग्रवादियों का एक बड़ा दल फूलो के गाँव को घेर रखा था। बजरंग साहू के यहाँ से काफी रूपया पैसा मिला था। उन्हें गांव के किसी भी व्यक्ति ने प्रतिवाद नहीं किया। वे जानते थे कि प्रतिरोध करने पर ये लोग हाथ-पैर काटने या गला रेतने से भी नहीं हिचकते।"[15] नक्सलवाद के प्रभाव के कारण आदिवासी समाज किस मानसिक पीड़ा से गुजर रहा है उसे कोई नहीं समझना चाहता। वे किस दर्द में अपना जीवन जी रहा है उस दर्द को हम नहीं जानना चाहते बल्कि उन पर ही नक्सलवाद का आरोप लगा दिया जाता है। लड़ाई जारी है कहानी में मुखिया कहता है, "हाँ मैने भी सुना है। पिछले ही महीने तो मरूमकेल गांव के चार-पाँच लड़को को पुलिस पकड़ कर ले गयी। सभी लड़के शहर में पढ़ते हैं। छुट्टीयों में गाँव आये हुए है।"[16] आदिवासियों का जीवन संघर्षो भरा रहा है इसलिए आदिवासी युवाओं के लिए रोजगार के अवसर सुनिश्चित करने चाहिए। ताकि समाज विरोधी तत्व इन बेरोजगार, भोले लोगों का फायदा न उठा पाएँ और जवान बेटे-बेटियों को भड़का कर अपने साथ में न मिला सकें। निष्कर्ष: हम कह सकते हैं कि वाल्टर भेंगरा 'तरुण' ने अपनी कहानियों में आदिवासी समाज की जीवन व्यथा को हर प्रकार से दिखाने का प्रयास किया है तथा इस समाज के जीवन की सच्चाई को हम सबको दिखाया है। जिसमें न तो किसी से कोई शिकायत की गई है और न ही बदले की भावना है बस इस पिछड़े समाज की दयनीय स्थिति को उजागर किया है। इनकी दयनीय स्थिति के बहुत से कारणों को लेखक ने कहानियों में उद्धघटित किया है जिसमें मुख्य कारण विकास को माना है इस विकास के कारण ही इनको इनके घर से खदेडाघ जा रहा है तो दूसरी ओर जंगल पर से उनके अधिकार को खत्म कर दिया और इनको विस्थापित कर दर-दर की ठोकरों के लिए विवश कर दिया। और इसी विस्थापन के कारण इनके जीवन में अन्य बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न हो गई। जिसमें इनकी संस्कृति, भाषा और कलाकृतियों सब नष्ट हो रही हैं जिनको बचाने का संकट आज आदिवासी समाज झेल रहा है। इसके साथ नक्सबाद, अषिक्षा, बेरोजगारी तथा नशाखोरी जैसी समस्या को भी लेखक ने अपनी कहानियों में उजागर किया है। नशे ने इस समाज को दरिद्रता व कर्ज में डूबो दिया है। जो इनके विकास में बाधक की भूमिका निभा रहा है इसलिए शिक्षा को आदिवासी समाज के लिए महत्वपूर्ण बताते हुए कहते से हैं कि षिक्षा को इनके परिवार तक पहुंचाना अति आवश्यक है जिससे ये अपने अधिकारों को जान सकें और समस्याओं से बहार निकल सकें तथा अन्य समाज की तरह पढ लिख कर अपने समाज और देश के उत्थान में सहयोग कर सकें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. गुप्ता, रमाणिका, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, 2014, पृ.-8
2. डॉ. पाण्डेय, मायाप्रकाश, हाशिये का समाज एवं आदिवासी साहित्य, चिन्तन प्रकाशन 2022, पृ. 146
3. 'तरूण', वाक्टर भेंगरा, जंगल को ललकार, 'द्वितीय संस्करण, सत्यभारती प्रकाशन, 2014, पृ.108
4. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, जंगल की ललकार, द्वितीय संस्करण, सत्य भारती प्रकाशन, 2014, पृ. 118
5. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, जंगल की ललकार, द्वितीय संस्करण, सत्य भारती प्रकाशन, 2014, पृ. 120
6. डॉ पाण्डेय, मायाप्रकाश, हाशिये का समाज एवं आदिवासी साहित्य, चिन्तन प्रकाशन, 2022, पृ. 7
7. 'तरुण', वाल्टर भेंगरा, जंगल की ललकार, द्वितीय संस्करण, सत्य भारती प्रकाशन, 2014, पृ. 182
8. 'तरुण', वाल्टर भेंगरा, विकल्प, अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, 2020, पृ. 75
9. 'तरुण', वाल्टर भेंगरा, जंगल की ललकार, द्वितीय संस्करण, सत्य भारती प्रकाशन, 2014, पृ. सं.- 179
10. वहीं, पृ.सं.-144
11. वहीं, पृ. सं.- 156
12. वही, पृ.सं.-141
13. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, जंगल की ललकार, द्वितीय संस्करण, सत्य भारती प्रकाशन, 2014, पृ. 127
14. डॉ. प्रसाद, दिवाकर, आधुनिक भारत में आदिवासी जीवन एवं संघर्ष, जे.टी.एस पब्लिकेशन्स, 2020, पृ. 78
15. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, अपना-अपना युद्ध, प्रथम संस्करण, सत्य भारती प्रकाशन, 2014, पृ-20
16. वहीं, पृ.सं.-91

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का दौर और बाल साहित्य

प्रियंका महावर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार

इस लेख में 21वीं सदी में बाल साहित्य की बदलती स्थिति, उसके प्रभाव, और उसके समक्ष उपस्थित चुनौतियों पर गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस लेख में बाल साहित्य पर बाजारवाद, डिजिटल मीडिया, और बदलते सामाजिक परिवेश के प्रभाव को विस्तृत रूप में दर्शाया गया है। साथ ही, यह भी बताया गया है कि कैसे आधुनिक तकनीक और सोशल मीडिया ने बच्चों के व्यवहार, रुचियों और मानसिक स्थिति को प्रभावित किया है। बाजारवाद के प्रभाव से बाल साहित्य व्यावसायिक दृष्टिकोण से विस्तृत हुआ है, परंतु उसकी उपयोगिता और प्रभावशीलता पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इस बात पर बल दिया गया है कि बच्चों को साहित्य के प्रति जागरूक करने में माता-पिता, अभिभावकों और शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पुस्तक मेलों, बाल पुस्तकालयों और पारिवारिक साहित्यिक चर्चाओं के माध्यम से बच्चों में पढ़ने की आदत किस प्रकार विकसित की जा सकती है।

बीज शब्द:- इक्कीसवीं सदी, भूमंडलीकरण, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, बाल साहित्य, बाल विकास, नई पीढ़ियां ।

प्रस्तावना

21वीं सदी भूमंडलीकरण और बाजारवाद की सदी है। बाजारवाद का असर हर एक क्षेत्र पर नजर आता है। बाल साहित्य भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा है। बाल साहित्य भी बाजार की तरह विस्तृत होता जा रहा है। बच्चों के लिए अच्छी संख्या में किताबें प्रकाशित की जा रही हैं। इनकी सामग्री का आकलन किन मायनों पर किया जाता है इस पर कम ही बात की जा रही है लेकिन इनका प्रकाशन भरपूर मात्रा में किया जा रहा है। इस युग में बाल पुस्तकों की सामग्री का मूल्यांकन करना बहुत आवश्यक है।

वर्तमान युग का बच्चा यानि 4 ख़जी और 5ख़जी युग के बच्चे नवीन तकनीकों और जानकारी को ग्रहण करने में बहुत तेज हैं। वर्तमान पीढ़ी जो 2010-2024 वर्ष के दौरान पैदा हुई है उसे सोशल मीडिया पर 'जेनरेशन अल्फा' कह कर संबोधित किया जाता है। यह पीढ़ी नया सीखने और सिखाने में बहुत आगे है। माताख़पिता और अभिभावक जिन इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों और तकनीक का प्रयोग करने में झिझकते हैं, जेनरेशन अल्फा बेझिझक इसका प्रयोग किए जा रही है।

जेनरेशन अल्फा का जीवन अनुभव 'जेनरेशन जूमर्स' जिसे सोशल मीडिया पर जेन-जी (Gen&z) कहकर संबोधित किया जाता है से बहुत अलग है। जेन-जी पीढ़ी ने मोबाइल, कंप्यूटर, स्मार्टफोन के साथ पुस्तकों को भी पढ़ा है लेकिन जेनरेशन अल्फा ने पुस्तकों को केवल पाठ्यक्रम के रूप में ही पहचाना है। इसके अतिरिक्त साहित्य पढ़ने की रुचि उनमें उत्पन्न करना आसान काम नहीं है। माता-पिता स्वयं दफ्तर की भागदौड़ और सोशल मीडिया की चहल पहल से समय नहीं निकल पा रहे हैं। वो कहते हैं ना "बच्चे बड़ों को देख और सुनकर ही सीखते हैं" इसी का जीता जागता प्रमाण है 'जेनरेशन अल्फा'।

वर्तमान समय में हमें किसी भी तरह का अभाव है यह कहना बिल्कुल गलत होगा। जेनरेशन अल्फा का बचपन स्मार्टफोन, टैबलेट, 24'7 इंटरनेट की उपलब्धता के बीच कट रहा है। इसके सकारात्मक और नकारात्म दोनों प्रभाव हैं। बच्चे इंटरनेट और सोशल मीडिया पर सबसे अधिक समय बिताते हैं। एक ही टच और सर्च से देश दुनिया की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, शिक्षण के नए माध्यम ढूंढ सकते हैं, सूचना एवं प्रौद्योगिकी से परिचित हो रहे हैं, तकनीक को सहजता से उपयोग कर सकते हैं, विश्व भर में संपर्क साध सकते हैं।

बच्चों में कंप्यूटर, लैपटॉप, इंटरनेट, सोशल मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक, तकनीक आदि के बढ़ते प्रभाव से उनकी मन: स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। बच्चे इन सभी उपकरणों के आदि हो गए हैं। इसका जीवंत प्रभाव हम अपनेख़अपने घरों में या आसपास संभवत: रोज ही देखते हैं।

डॉ. सुरेंद्र विक्रम हिंदी बाल साहित्य आलोचक और समीक्षक ने वर्षो पहले आयोजित 'राष्ट्रीय बाल भवन' नई दिल्ली की राष्ट्रीय संगोष्ठी में कहा था "सोशल मीडिया ने आज के बच्चों को उनकी वास्तविक उम्र से कम से कम 10 वर्ष बड़ा कर दिया है"।

बच्चों में, यू-ट्यूब पर घंटों गेमिंग वीडियो देखना यू -ट्यूब शॉट्स देखना इंस्टाग्राम पर रील बनाना घंटों स्क्रोलिंग करना बहुत लोकप्रिय हो गया है। पहले यह केवल बड़ों तक सीमित था लेकिन अब बच्चे भी इसके आदि हो रहे हैं। बच्चे मनोरंजन से हटकर अब एक नई बीमारी की चपेट में आ गए हैं जो कि 'सोशल मीडिया पर वायरल' होने के नाम से जानी जाती है।

इन सभी गतिविधियों के बीच बच्चे अनुपयुक्त सामग्री के संपर्क में आ रहे हैं तथा उन्हें दोहरा कर ऑनलाइन अपलोड भी कर रहे हैं जैसे हिंसात्मक वीडियो बनाना, खतरनाक स्टंट करना, अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग करना। इन सभी के प्रभाव से बच्चों की मानसिक स्थिति बिगड़ रही है।

व्यवहार संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। पढ़ाई से मन हट रहा है तथा शारीरिक गतिविधियों की कमी के कारण अनेक बीमारियां हो रही हैं। भारत देश और भारत की भावी पीढ़ी का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए माता-पिता, अभिभावकों और शिक्षकों को भी योगदान देना होगा। बच्चों के साथ ऑफलाइन अधिक से अधिक समय बिताना, सोशल मीडिया के अच्छे और बुरे बिंदुओं पर चर्चा करना, डिजिटल अनुभवों को साझा करना आदि काम करने होंगे। पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगाना इसका हल नहीं है। इससे बच्चे भविष्य में आजीविका के लिए न्यूनतम डिजिटल कौशल विकसित करने में सक्षम नहीं होंगे।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और वर्तमान बाल साहित्य

बाल साहित्यकार 'रजनीकांत शुक्ल' कहते हैं - "विज्ञान और तकनीक की रफ्तार बढ़ती जा रही है। मानवीय संवेदनाओं की जड़े बचपन में ही जमने लगती है। बच्चों में संस्कार भरना और सही दिशा निर्देश करने में बाल साहित्य का महत्व नकारा नहीं जा सकता। 21वीं सदी में बाल साहित्य की बहुत आवश्यकता है। समस्या यह है कि अब अच्छे पाठकों की संख्या बहुत कम है। बाल पाठकों की संख्या में वृद्धि कैसे की जाए इस पर बात करना भी आवश्यक है"।

तकनीक और साहित्य एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। दोनों की ही सहायता से हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान युग की समस्या कहें या जरूरत कि सभी काम कंप्यूटर और लैपटॉप द्वारा ही किए जाते हैं ऐसी स्थिति में माता-पिता चाहे भी तो बच्चों को स्क्रीन से दूर नहीं रख पाते। स्क्रीन टाइम को नियंत्रित करने के लिए माता-पिता बच्चों को किंडल बुक्स, अमेजन बुक्स और गूगल बुक्स के माध्यम से ऑनलाइन पुस्तकों जैसे - ई-बुक्स, ऑडियो बुक्स, पॉडकास्ट, गुणवत्ता पूर्ण एनिमेटेड कहानियां, ज्ञानवर्धक सामग्री आदि उपलब्ध करा सकते हैं।

21वीं सदी में बाल साहित्य सृजन की स्थिति बहुत अच्छी और संतोषजनक है। पारंपरिक व समसामयिक घटनाओं,परिवेश और भविष्य की दुनिया पर भी बाल साहित्य लिखा जा रहा है। बाल साहित्य नए-नए विषयों को केंद्र में ला रहा है। सहज सरल और स्पष्ट रूप में बाल साहित्य किताबों के साथ-साथ ई - पुस्तकों के रूप में भी उपलब्ध है। समस्या यह है कि इन्हें बच्चों तक कैसे पहुंचाया जा सकता है। बच्चों से पहले माता पिता और अभिभावकों तक पहुंचाना आवश्यक है।

तकनीक या प्रौद्योगिकी हमारी समस्या नहीं है और केवल तकनीक को दोष देना सही नहीं है। विचार इस बात पर भी करना होगा कि बच्चों तक बाल साहित्य पहुंचाने में हमारी कितनी कोशिश रही है। माता पिता स्वयं साहित्य से दूर चले गए हैं, खाली समय में वे भी सोफे पर बैठ मोबाइल और टैबलेट लेकर स्क्रॉल कर रहे होते हैं। बच्चों का ध्यान भटकाने के लिए वे उन्हें प्ले स्टेशन और वीडियो गेम्स जैसे उपकरण में व्यस्त कर देते हैं। बच्चों के सवाल पूछने पर वे उन्हें गूगल पर उत्तर देखने के लिए कहते हैं। इन सभी समस्याओं को हमने ही जन्म दिया है और हम इसका दोष तकनीक और इंटरनेट को देते हैं। यदि हम बच्चों को इंटरनेट और डिजिटल मीडिया से परिचित करा रहे हैं तो हमें बच्चों को पुस्तक मेलों में भी ले जाना चाहिए, उन्हें बाल पुस्तकालयों में ले जाना चाहिए, यात्रा करते हुए पुस्तकें पढ़ने के लिए देने से पढ़ने और सृजन करने की प्रवृति उत्पन्न होती है।

'आज तक' न्यूज चौनल द्वारा आयोजित 'साहित्य आज तक' कार्यक्रम में सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार एवं कहानीकार 'क्षमा शर्मा' जी ने कहा था - "बाल साहित्यकार बच्चों के मन तक पहुंच रहे हैं लेकिन बच्चों के माता पिता और प्रकाशक भी बाल साहित्यकारों तक पहुंचे"

वर्तमान समय में समस्याओं की कमी नहीं है। माता पिता स्वयं दफ्तर की भाग दौड़ और महंगाई के युग में भविष्य की चिंता में बच्चों को समय नहीं दे पा रहे हैं। एकल परिवार की परंपरा से भी बच्चे शोषित हो रहे हैं वे अकेलेपन का शिकार हो रहे हैं। इन पंक्तियों से हम इस बात पर प्रकाश डालते हैं-

पापा को ऑफिस की जल्दी, माँ तुम भी तो जाती छोड़
दादी-नानी कोई न संग बोलो मुझे संभल कौन ?

(डॉ.) सुरेंद्र विक्रम, इक्कीसवीं सदी की ओर

डिजिटल माध्यमों के प्रभाव से बच पाना मुश्किल है। सूचना क्रांति के युग में बच्चे टेलीविजन और कंप्यूटर को ही अपना मित्र मानते हैं। स्कूल की पढ़ाई और होम वर्क के दबाव से बच्चे किताबों से दूर होते जा रहे हैं। इन पंक्तियों के माध्यम से हम बच्चों की मानसिक स्थिति को समझ सकते हैं ख़

इक ऐसी तरकीब सुझाओं तुम कंप्यूटर भैया,
बसते का कुछ बोझ हटाओ तुम कंप्यूटर भैया।
हिंदी,इंग्लिश,जी. के. का ही बोझ हो गया काफी,
बाहर पड़ी मैथ्स की कॉपी कहां रखें ज्योग्राफी।
रोज रोज यह फूल फूलकर बनता जाता हाथी ।।

(डॉ.) सुरेंद्र विक्रम, इक्कीसवीं सदी की ओर

स्कूलों में भी पाठ्यक्रम से इतर बच्चों को साहित्य पढ़ने के लिए अलग पीरियड होना चाहिए। पारंपरिक पुस्तकों से अब दूरी बढ़ती जा रही है। बाल साहित्यकार भी अधिकाधिक विधाओं में लिख रहे हैं। अधिकाधिक माध्यमों में लेखन हो रहा है। सभी तरह के विषयों को शामिल किया जा रहा है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त साहित्य लिखा जा रहा है। इसके साथ ही अनुवाद द्वारा विश्व भर का बाल साहित्य उपलब्ध कराना तथा स्थानीय भाषाओं में बाल साहित्य की रचनाओं में वृद्धि की जानी चाहिए।

'अणुव्रत विश्व भारती सोसायटी' द्वारा आयोजित "बच्चों का देश" मासिक पत्रिका की रजत जयंती पर अर्चना त्यागी जी ने कहा - "बचपन से ही यदि पढ़ने की आदत विकसित हो जाए तो वह आगे चलकर गंभीर अध्येता भी बनते हैं। सोचने-समझने का नजरिया अलग हो जाता है। सामाजिक सरोकार में

अलग तरह की पहचान-भागीदारी बनती है। मिट्टी तो लगभग एक ही है लेकिन खाद-पानी-हवा और प्रकाश जैसा वातावरण हष्ट-पुष्ट वृक्ष बनाता है। साहित्य भी एक खुराक है। बाल मनोविज्ञान के साथखसाथ बदलते वातावरण की परख भी जरूरी है।[8]

डिजिटल मीडिया के उपयोग पर विभिन्न देशों द्वारा लगाए गए विनियमः-

बच्चों की सुरक्षा को देखते हुए वैश्विक स्तर पर कई कदम उठाए गए हैं। कुछ उदाहरण दिए गए हैं:-

भारत में :- इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रोद्योगिकी मंत्रालय (Meity) भारत सरकार द्वारा डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम (DPDPA) 2025 धाराख्र9 के अंतर्गत बच्चों के सोशल मीडियो अकाउंट बनाने को लेकर नियम लागू किए गए हैं। 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को सोशल मीडिया का उपयोग करने के लिए माता पिता की सहमति लेना अनिवार्य है।

वैश्विक स्तर पर

संयुक्त राज्य अमेरिकाः- बच्चों के लिए ऑनलाइन गोपनीयता संरक्षण अधिनियम [children's online privacy protection act 1988 (COPPA)] 13 वर्ष से कम आयु के बच्चों को ऑनलाइन डेटा एकत्र करने के लिए माता पिता की सहमति लेना अनिवार्य है।

यूरोपियन यूनियन :- सामान्य डेटा संरक्षण विनियम [General data protection regulation chapter –13, 2018 (GDPR)] इसके अंतर्गत नागरिकों की व्यक्तिगत जानकारी को गोपनीय रखने के मानक निर्धारित किए गए हैं।

दक्षिण कोरिया :- यूथ प्रोटेक्शन रिवीजन एक्ट [Youth Protection Revision Act (2011)] इसे सिंड्रेला लॉ तथा शट डाउन लॉ भी कहा जाता है। इसमें बच्चों पर रात 12:00 बजे से सुबह 06:00 बजे से ऑनलाइन गेम्स खेलने पर प्रतिबंध लगाया गया। इस नियम को 2020 में खत्म कर दिया गया है।

निष्कर्ष :-बाल साहित्य को बचाने और बढ़ावा देने के लिए तकनीक का सही उपयोग, माता-पिता की भागीदारी, और बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करना आवश्यक है। तकनीक को दोष देने के बजाय उसका सकारात्मक उपयोग करके बाल साहित्य को बढ़ावा दिया जा सकता है। लेख में यह विचार भी प्रस्तुत किया गया है कि तकनीक और साहित्य एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि उनके संतुलित उपयोग से बच्चों को साहित्य से जोड़ा जा सकता है।

संदर्भ सूची

- बाल साहित्य परंपरा, प्रगति और प्रयोग ख्र सुरेंद्र विक्रम
- कंप्यूटर भैया, इक्कीसवीं सदी की ओर (कविता संग्रह) ख्र सुरेंद्र विक्रम
- ीजजचे://लवनजन.इर्म/कपडइव्बब्श्रप।?प=म॰ड6त्स्र्द्स3व8डउ;9
  (साहित्य आज तक, आज तक न्यूज चौनल)
- Ï%https://www.anuvibha.org/%E0%A4%AC%E0%A4%9A%E0%A5%8D%E0%A4%9A%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%A6%E0%A5%87%E0%A4%B6-%E0%A4% AA%E0%A4%A4% E0% A5 %8D %E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%B0%E0%A4%9C%E0%A4%A4-%E0%A4%9C%E0%A4%AF%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A5%80-% E0%A4%B8% E0% A4% AE%E0 %A4% BE% E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9-16-%E0%A4%B8%E0%A5%87%C2%A018%C2%A0%E0%A4%85%E0%A4%97%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A4
  ('बच्चों का देश' पत्रिका रजत जयंती, अगस्त' 24 अणुव्रत विश्व भारती सोसायटी, राजसमन्द)
- https://www.ftc.gov/news-events/topics/protecting-consumer-privacy-security/kids-privacy-coppa
- https://www.fcc.gov/consumers/guides/childrens-internet-protection-act
- https://gdpr-info.eu/chapter-3/
- https://www.abc.net.au/news/2023-08-02/new-rules-restrict-smartphone-internet-use-for-chinese-youth/102681432?utm_campaign=abc_news_web&utm_content=link&utm_medium=content_shared&utm_source=abc_news_web
- https://www.meity.gov.in/static/uploads/2024/06/2bf1f0e9f04e6fb4f8fef35e82c42aa5.pdf

वैदिक काल में जीव-जन्तु संरक्षण की अवधारणा

डॉ० हिमांशु शेखर

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

आशीष कुमार सिंह

(शोधार्थी) तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

जीव-जन्तु, पशु- पक्षी सभी पर्यावरणीय घटक है और पर्यावरण के संतुलन के लिए आवश्यक है। पशु-पक्षियों और मनुष्यों के बीच तालमेल हो। यह विचार व अवधारणा प्राचीन काल से हीं हमारी संस्कृति या वैदिक संस्कृति रही है। इस वैदिक संस्कृति में पर्यावरण के प्रति धार्मिक और भौतिक दोनों रूपों से संरक्षणवादी रही है। इस क्रम में भारतीय संस्कृति में ''जिओ और जीने दो'' के सिद्धांत पुष्पित, पल्लवित हुआ। इस संस्कृति में मानव ने ना सिर्फ मानव के साथ सहिष्णुता, प्रेमभाव समर्पित किया गया, बल्कि पशु-पक्षी, जीव-जन्तु के प्रति अहिंसा का सिद्धात पालन करते हुए प्रेम सहिष्णुता अर्पित किया। वैदिक काल से हीं ऐसी मान्यता है कि कण-कण में भगवान निवास करता है और सभी जीवों में आत्मा होती है। इसी भावना के साथ वैदिक संस्कृति में पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटक जीव-जन्तु, पशु-पक्षी के संरक्षण से संबंधित अनेकों सूक्त मौजूद है।

प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने पशु-पक्षी संरक्षण की अवधारणा बनाए रखने के लिए इस प्रकार वर्णन किया है कि जिस तट पर स्थित वृक्षों की छाया में जीव विश्राम करते हो, ऐसे सरोवर में सदा देवता निवास तथा विहार करते है। रामायण में अशोक वाटिका में सुन्दर वृक्षों पर अनेक पक्षियों के चह-चहाट या बोलने से वाटिका मनमोहन का सुंदर वर्णन किया है।[1] मृगों और पक्षियों से भरी होने के कारण वह नन्दनवन की सुन्दरता काफी बढ़ जाती है। इसी नन्नन वन और अशोक वाटिका जैसे बाग-बगीचें, जंगलों में ऋषि-मुनि बैठा करते थे।[2] ऋषि-मुनियों के साथ हीं जंगलों-वनों तथा वाटिका में अनेक पशु-पक्षी के झुंड विचारते थे।

आर्य जाति व हिन्दू धर्म में पर्यावरणीय घटक जंगली पशु-पक्षी को भी देवी-देवताओं से जोड़कर इसकी पूजा, अराधना करते थे। उसकी रक्षा करना, भोजन खिलाना, उसकी सेवा करना वैदिक काल से भारतीय संस्कृति का हिस्सा रही है। उसे देवी-देवताओं से जोड़कर किसी भी प्रकार के अत्याचार से प्रतिबन्धित था। भारतीय संस्कृति में पशुओं के प्रति अंहिसा और आदर का भाव रखते आ रहे है। देवी-देवताओं के साथ अनेक वाहनों को पूजे जाने का उल्लेख मिलता है और आज भी पूजते आ रहे है जैसे - शिव का वाहन नंदी बैल, लक्ष्मी का वाहन उल्लू, सरस्वती का वाहन हंस, विष्णु का वाहन गरूड़, विश्वकर्मा का हाथी, दुर्गा का शेर आदि। इस प्रकार पशु-पक्षियों को देवताओं से जोड़कर पूजा करना और आदर करना पारिस्थितिकी संतुलन के प्रति सचेत होने का संकेत मिलता है। वैदिक काल से हीं पशु-पक्षियों के प्रति आदर लोगों का रहा, जिससे निसन्देह प्रकृति का संतुलन स्थापित करने में महत्ती भूमिका रही थी।[3]

पशु एवं पक्षी	–	सम्बन्धित देवी–देवता
गधा	–	शीतला
हिरण	–	वायु
कुत्ता	–	भैरव
चैता	–	कात्यायनी
गिद्ध	–	शनि
डलूक	–	लक्ष्मी
मेर	–	कार्तिकेय
घोड़ा	–	सूर्य
बन्दर	–	श्राम
गरूड़	–	विष्णु
हंस	–	सरस्वती
चूहा	–	गणेश
नंदी या बैल	–	शिव
हाथी	–	इन्द्र, गणेश
कलहंस	–	ब्रह्मा
शेर	–	दुर्गा

मत्स्य	–	काम का देवता
गौ	–	कृष्ण
मकर	–	वरूण
मेष	–	मंगल
महिष	–	यम
वन्य हंस	–	ब्रहमा
सर्प	–	शिव
वृषभ	–	दत्तात्रेय
गिद्ध	–	शनि

इस प्रकार वैदिक ग्रंथों में कतिपय वृक्षों और पशु-पक्षियों के साथ विशिष्ट सम्बन्धों का उल्लेख मिलता है। वैदिक ऋषि पशु-पक्षियों की हिंसा करने अथवा उन्हें पीड़ा पहुंचाने की तो कल्पना भी नहीं कर पाते थे, क्योंकि वे उन्हें देवता तुल्य मानकर, उनकी स्तुति करते थे और उनसे स्वयं को पाप से मुक्त करने की प्रार्थना करते थे।[4]

पार्थिवा दिव्याः पशवः आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान् पक्षिणौ ब्रूमस्ते नो मुच्चन्त्वंहसः।।

वैदिक आर्य इस तथ्य से परिचित थे कि यदि पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखना है तो पशु, अश्व और मनुष्य तीनों को परस्पर मिलजुल कर चलना पड़ेगा, जिससे धान्य की समृद्धि भी बढ़ेगी।[5] वैदिक आर्यो ने ग्राम्य व आरण्यक पशुओं की भिन्नता को जान लिया था – वि ग्राम्या पशवः आरण्यैः।[6]

वेदों में पशुओं को तीन भागों में बाँटा गया हैं [7]

1. वायव्यान् अर्थात् हवा में विचरण करने वाले
2. आरण्यान् अर्थात् अरण्य में विचरण करने वाले
3. ग्राम्यान् अर्थात् ग्रामों में विचरण करने वाले

अथर्ववेद के अनुसार मानव इन आरण्यक पशुओं का स्वयं नहीं मारता था, क्योंकि उन पर वह पशुपति महादेव (रूद्र) का अधिकार समझता था, केवल वे हीं उन्हें अपने आयुध से मारते थे। तात्पर्य है कि प्रकृति में रूद्र अर्थात् परमात्मा द्वारा स्वयं जीव संतुलन उत्पन्न किया जाता है। जैसा कि इस मंत्र से ज्ञात होता है-

हे रात्रि! जो कुछ भी यह झाड़ियों में चल रहा है, जो कुछ भी हिंसक जानवर चल रहा है और जो हिंसक प्राणी पहाड़ पर से उतरकर आ रहा है, उससे तू हमारी रक्षा करे। आकाश में उड़ने वाले श्येन आदि पक्षी समूह, भूमि में सरकने वाले सर्प आदि और पर्वतों में विचरण करने वाले व्याध्र, सिंह आदि दुष्ट तत्त्वों से वह अपनी रक्षा करता था। काले अनिष्टकारी पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि जंतु, सर्प आदि विषयुक्त प्राणियों व जंगली जानवरों से पहुँचाये गये कष्ट को अग्नि व सोम के द्वारा वह दूर करने का प्रयास करता था। अथर्ववेदीय मानव की कामना था कि दूर के मार्ग से भेड़िये और सांपिन चली जाये।8 ऋषि का मानना था कि – सर्प, बिच्छू तथा अन्य जो डंक मारते हैं, वे तथा रेंगने वाले प्राणी वर्षा ऋतु में वन में प्रसन्नतापूर्वक धूमें, किन्तु मानव बस्ती में न जायें, क्योंकि वे मानव के लिए अकल्याणकारी होते हैं अतएव वे केवल प्रत्यक्ष कल्याण करने वाले जीव समूह को हीं अपने पास आने देते थे।[9]

अथर्ववेद एक मंत्र में बछड़ों को पकड़ कर ले जाने वाले भेड़ियों को गोपालों द्वारा बलपूर्वक भगा देने का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार ऋग्वेद में भी भेड़िये के मुँह के अन्दर दबी बटेर को अश्विनी कुमारों द्वारा कुशलतापूर्वक बाहर निकालने का वर्णन मिलता है। उल्लू व कपोत को अशुभ मानकर उन्हें घर में आश्रय नहीं दिया जाता था।[10] गृह में कपोत के प्रवेश करने पर दोषों से शान्ति की जाती थी। वहीं दूसरी ओर आर्यों के जीवन में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। इनका संदेशवाहक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।[11] पशु-पक्षी जिन औषधियों एवं रोगोंपचार को जानते थे, उनका अथर्ववेदीय आर्यों को ज्ञान था, जैसे कि- वेगवान कृष्णमृग के सींग से आनुवंशिक रोग, क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि व्याधियों की चिकित्सा की जाती थी।[12] हरिण के सींग से हृदय तथा क्षेत्रिय रोग दूर किये जाते थे। गरूड़ के पित्त से नील नामक औषधि निर्मित होती थी, जिससे कुष्ठ रोग दूर होकर त्वचा समान वर्ण वाली हो जाती थी। बराह, नौला, सर्प और गंधर्व जिन औषधियों को जानते हैं उनसे रूग्ण पुरूष की चिकित्सा की जाती थी। अथर्ववेद में वर्षा ऋतु के आने में मेढ़कों के योगदान व प्रसन्नता का वर्ण है।[13] इस प्रकार पर्यावरण एवं मानव के लिए पशुओं की महत्ता को देखते हुए अनेक मंत्रो में प्रार्थना की गई है कि – हे सूर्य आप मुझकों अनेक रूप वाले पशुओं से पूर्ण करिये।[14]

वेद-पुराणों में मनुष्यों में ब्राह्मणों और पशुओं में गाय की हत्या घोर पाप बतलाया है और राजा को विशेष निर्देश दिया गया है कि गौ की रक्षा करे। गौ की रक्षा के विषय में कहा गया है कि रोग के कारण या व्याध्रादि हिंसक जन्तुओं से भयभीत, गिरी हुई या कीचड़ आदि में फंसी हुई गौ की सब उपायों से रक्षा करनी चाहिए। इसके अलावे गर्मी-वर्षा में गौ की रक्षा का प्रबंध किए बिना अपनी रक्षा करना वर्जित किया है। गो हिसां वर्जित की गई है। गो हत्यारा के पाप से मुक्ति के विषय में उल्लेख मिलता है। स्मृतियों में भी गोहत्या या मारने पर प्रायश्चित करने का निम्न उपाय बतलाया है। उसको हरी-हरी घास लाकर खिलाना मनुष्य का कर्त्तव्य बताया गया है, जब तक गाय का घाव ठीक न हो जाय।[15] गौओं की राह में आग लगाने वाले एवं वन में निरपराध पशुओं का वध ब्रह्म हत्या के तुल्य बताया है।[16] यदि एक गौ एक से अधिक के द्वारा मृत हो जाय तो उन सबको गो हत्या के प्रायश्चित करने का कठोर नियम बताऐ है। अग्नि पुराण[17] में उल्लेख मिलता है कि गौ की हत्या करने वाले को एक लाख वर्ष तक 'महानीचि' नामक नरक में पीड़ा दी जाती है। वही अग्नि

पुराण[18] में उल्लेख मिलता है कि गाय की सींग टूट जाने पर अस्थि के भंग हो जाने पर और पूछ के छेदन होने पर एक क्षति पहुचाने वाले व्यक्ति को प्रायश्चित करना चाहिए।

बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, पक्षी, मेढ़क, कुत्ता, गाय, उल्लू और कौवा इनमें से किसी को मारने वाले नीच और हीन की श्रेणी में गिनती आता है। बिल्ली को मारने वाला तीन रात चार कोस गमन करे या नदी में स्थान करें अथवा वरूण देवता के मंत्र का जाप करे।[19] वैदिक ग्रंथों में पशु की हत्या, अत्याचार, उसकी सेवा नहीं करने पर नरक में विशेष कष्टों का वर्णन उपलब्ध है। जो पशुओं को बुरी तरह से मारते हैं। वह सब नरक गमन करने वाले होते है और यमदूत उनको लक्ष्य बनाकर पाप से मारता है।[20] जो पुरूष गाय का वध करते है, वह पाँच कल्प तक नरक की ओर यातनाओं को झेलते हैं।[21] यदि मांस खाने वाले, पशु-पक्षीयों की हत्या करने पर दूध देने वाली गाय का दान करना चाहिए। मांस न खाने वालें पशुओं का वध करते पर बछिया का दान करने का वर्णन है।[22] इसके अतिरिक्त अस्थियुक्त प्राणी की हत्या करने पर ब्राह्मण को कुछ दान देना चाहिए।[23] इस प्रकार स्वर्ग-नरक जैसी मान्यताओं से जोड़कर पशु - पक्षी के संरक्षण की बात वेद-पुराणों में उल्लेखित है।

परिस्थितिकी संतुलन के लिए यह पशु-पक्षियों का होना अति आवश्यक है। ये पर्यावरण के एक घटक है। पुराणों में पक्षी संरक्षण की धारणा का संकेत मिलता है। पुराणों में उल्लेख मिलता है जो कोई व्यक्ति वन में वृक्षों को लगाता है। वह व्यतीत हुए तथा आगे आने वाले समस्त पितृ-वंशों का उद्धार कर देता है। वृक्षों पर वास करने वाले पक्षीयों का भक्षण करता है तो उसे पाप का प्रायश्चित करने चाहिए। प्रायश्चित के रूप में पक्षियों का भक्षण करने वालों को 12 दिन का उपवास एवं एक मास तक गो-मूत्र में पका हुआ यावक खाने से मनुष्य की शुद्धि का वर्णन किया गया है।[24]

इस प्रकार वैदिक काल में पारिस्थितिकी चक्र में पशु-पक्षियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बतलाया है। वैदिक काल में दोपायों एवं चौपायों की रक्षा के प्रति सतत् जाग्रत था।[25] यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि दोपायों और चौपायों के प्रति उसकी रक्षा के लिए सतत् जाग्रत रहना चाहिए और यह भी निर्देशित किया है कि चौपायों का अच्छी तरह पालन-पोषण करे उसकी रक्षा करे, उसे न मारे।[26] इसलिए वैदिक ग्रंथों में गाय को 'अधन्या' कहते हुए उसे चोर, डाकू आदि से बचाने के लिए नागरिकों से कहा गया है। वैदिक ग्रंथों में यह भी उल्लेख मिलता है कि राजा या शासक का दायित्व है कि वह दोपाये, चौपाये आदि पशुओं की रक्षा करे, उसके भोजन का प्रबंध करे और उसे बल प्रदान करे। यजुर्वेद[27] में यह भी उल्लेख मिलता है और राजा को आदेश दिया है कि बैल, गौ, ऊन देने वाले पशु, पेड़ का संरक्षण प्रदान करे। यजुर्वेद में राजा को यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि वे अकाश और पृथ्वी इन दोनों के बीच के प्राणियों को न सतावें तथा अंतरिक्ष के प्राणियों को भी न सतावें।[28]

यहां तक कि वैदिक काल में पशुओं व चौपायों की रक्षा हेतु 24 अधिकारियों की नियुक्ति करने का उल्लेख मिलता है। वैदिक समाज में पशुओं के पालक को नमन किया जाता था। क्योंकि आवश्यक पशुओं की वृद्धि में मदद करता था और अनावश्यक पशुओं और हिंसक पशुओं को नष्ट करता है। राजा व शासक को भी यह ध्यान देने की बात कहा कि जंगली पशु व पीड़ादायक पशुओं को नष्ट करें।[29] वेदों में निर्देश मिलता है कि पशुओं में अधिक वेगवान अश्व, गधे, खच्चर आदि पशुओं को न मारा जाये तथा जंगल के गौर नामक बारहसींगें के वृद्धि के लिए प्रयास करें, किंतु गौर नामक बारहसींगे जब-तब खेतों में लगे चास या फसलों को खा जाय या हानि पहुँचाने लगे तो उसे नियंत्रित करने या रोकने का प्रयास करे।[30] अथर्ववेद[31] में भी अनिष्टकारी पक्षी, कीड़े-मकोड़े, विषयुक्त-सर्प, बिच्छू जैसे प्राणियों व जंगली जानवरों को अग्नि और सोम के द्वारा दूर भगाने के लिए प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है।[32] अथर्ववेद में यह भी कामना करते हुए श्लोक मिल जाता है कि मानव वस्ती के आसपास या मानव के मार्ग से दूर चले जाय।

ऋग्वेद के अरण्यानी: सूक्त में तथा अथर्ववेद में सर्पादि जीव-जन्तुओं, मृग, सिंह आदि पशुओं और कीटों के संरक्षण व पालन पर बल दिया गया है। वनों की रक्षा वास्तव में मनुष्य नहीं करता है, वह तो उसका विनास और उपयोग हीं करता है। इसका श्रेय जीवों को हीं जाता है। कुछ वन्यजीव प्रकृति के सफाई के नायक की भूमिका निभाता है जैसे - सियार, गिद्ध, कौवे, सुअर आदि ऐसे अनेक जंतु है, जो सड़ी-गली लाशों और पदार्थों का सफाया करते रहते है। यदि इन जन्तुओं की संख्या कम होती है तो इस प्रकार की अज्ञात लाशें तथा अन्य प्रदूषित पदार्थ यथावत् बने रहेंगे, जिससे जल और वायु प्रदूषण की उत्पत्ति संभावित है। शेर, बाघ, चीता आदि कुछ ऐसे जन्तु है, जिनके शरीर से निकलने वाली गंध आस-पास फैलती रहती है। जिससे स्वत: हीं बीमारी के कीटाणु और विषाणु नष्ट हो जाते है। सुअर, गोध, शाही आदि अनेक ऐसे जन्तु है, जो जमीन के अन्दर छिपे हानिकारक कीड़े और मकोड़ों को नष्ट करते रहते है। साँप, चूहों की संख्या और नेवले आदि साँपों की संख्या संतुलित करते रहते है। कुछ वन्य जीवों के मूल-मूत्र की गंध से भी वायुमण्डल में बिखरे बीमारी के कीटाणु नष्ट होते है। कबूतर की उपस्थिति में लकवा के जीवाणु अथवा विषाणु समाप्त होने की बात बताते है। कुछ जन्तु आने वाली प्राकृतिक आपदाओं और विपदाओं की सूचना पहले ही देते है या देने की क्षमता रखते है। यदि इन प्रवृतियों का गम्भीरता से अध्ययन किया जाए तो धन और जन की बहुत बड़ी क्षति से तो बचा हीं जा सकता है, बल्कि इससे उत्पन्न होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रदूषणों पर भी बहुत कुछ काबू पाया जा सकता है।

वन्य पशु वनों के पत्तों का भक्षण कर लेते है अथवा पैरों से पत्तों की तरह छितरा देते है, जिससे पत्तों की तह नहीं बन पाती तथा पृथ्वी पर बीज गिर कर पुन: उग जाते है। नवीन अनुसंधानों से ज्ञात हो रहा है कि जिन वनों से वन्य जीवों का विनाश हो रहा है वहाँ वनों का विकास हीं रूक गया है। जैसे - हरिद्वार से उत्तर से स्थित रायबाला के जंगलों के वन्य पशुओं को मार दिये जाने से वहां शालवन में नये पौधे नहीं उग रहे हैं, क्योंकि पत्तों की भूमि पर तह बन गयी है। पर्यावरण की शुद्धता एवं परिस्थितिकी संतुलन में वन्य जीवों के महत्त्वपूर्ण योगदान को दृष्टिगत करते हुए हमें आर्यों के समान वन्य जीवों को आत्मवत् एवं देवता तुल्य मानते हुए उन्हें यथोचित आदर एवं संरक्षण प्रदान करना होगा। पर्यावरण के हित में हमें उनके संबंध में समुचित नीति निर्धारित करनी होगी, तभी मानवाधिकारों की सुरक्षा होगी। मृदा प्रदूषण को रोकने का वैदिक समाधान यह भी कि भूमि पर विद्यमान वन संपदा के साथ प्राणी जगत की भी रक्षा की जाये। रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों की उपेक्षा पशु - पक्षी व कीट भूमि की उर्वरता को बढ़ाने में अधिक सक्षम है।

निष्कर्ष:- इस प्रकार वेदों में पशु-पक्षियों के संरक्षण की बाते उल्लेखित है। कृमि, जीव, पक्षी और जन्तु यदि पृथ्वी पर न हो तो सम्पूर्ण वातावरण या पारिस्थितिकी संतुलन खत्म हो जायेगा। यदि जलचर जीवों को निवास पोखर, तालाब या नदियों में न हो तो जल को प्रदूषित तथा मलिन करने वाले पदार्थों

का प्राचुर्य हो जायेगा। हिंसक पशु शाकाहारी पशुओं का भक्षण करके उनकों नियंत्रित करते है, जिससे शाकाहारी पशुओं की संख्या और उपलब्ध वनस्पति में संतुलन बना रहता है। वन जीव वनों को बनाये रखते है, वन जलों को आकर्षित कर पृथ्वी पर बरसाते है और वायु को शुद्ध करते है।[34]

अतः पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने, पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखने तथा प्राकृति में विभिन्न रूपों व अवस्थाओं में विद्यमान वनस्पति क्षेत्रों और जीव-जन्तुओं व पक्षियों की प्रजातियों व उनकी आवश्यक संस्था को संरक्षित किया जाना आवश्यक है।

संदर्भ सूचि

1. रामायण, सुन्दरकांड 61, 24
2. वही
3. डॉ मुकेश भूषण, पर्यावरण और धार्मिक मान्यताऐं (संपा), डॉ वीरेन्द्र सिंह, पूर्वोक्त, पृङ्ख - 270
4. अथर्ववेद 11.6.8
5. अथर्ववेद 2.26.3
6. अथर्ववेद 3.31.3
7. ऋग्वेद 10.90.8
8. अथर्ववेद 4.3.2
9. वही 12.1.46
1.. अथर्ववेद 6.29.1
11. अथर्ववेद 6.28.1
12. वही 3.7.1
13. अथर्ववेद 4.15
14. वही 7.1.6
15. पराशर स्मृति 20
16. शिवपुराण, 33
17. अग्निपुराण, 2,6,83
18. वही, 12
19. मनुस्मृति 10/131
20. श्रीमद्भागवत् पुराण 11,24
21. नरक पुराण 1/76
22. कर्म पुराण 32, 55
23. वही, 56
24. वही 11-14
25. यजुर्वेद 14.8
26. यजुर्वेद 16.48
27. यजुर्वेद 1.1
28. यजुर्वेद 5.43, 11.45
29. यजुर्वेद 13.49, 13.50
30. वही 13.48
31. अथर्ववेद 18/3/55
32. वही 4/3/2

छत्तीसगढ़ में शहरी परिवर्तन और स्थानीय पहचानः एक सैद्धांतिक अन्वेषण

डॉ० अनुराग भगत

दिल्ली कौशल और उद्यमिता विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

परिचय

शहरीकरण एक बहुआयामी और गतिशील प्रक्रिया है जो समाज को गहन तरीके से आकार देती है। भारत में, इस प्रक्रिया को अक्सर आर्थिक विकास और सामाजिक विकास के प्रतीक के रूप में माना जाता है, फिर भी यह अपने साथ जटिल चुनौतियाँ भी लेकर आता है, खासकर हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए। ऐसा ही एक समुदाय जो शहरीकरण के प्रभावों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील है, वह है आदिवासी। छत्तीसगढ़, जो गोंड, बैगा, पहाड़ी कोरवा, अभुज मारिया, उरांव, बिरहोर और अन्य जनजातियों का घर है, यहाँ शहरीकरण के कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखा है, जिसने परिदृश्य और सामाजिक संरचनाओं दोनों को नया रूप दिया है। यह बदलाव आदिवासी पहचान के संरक्षण के लिए चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। यह लेख डेविड हार्वे, हेनरी लेफेब्रे और एडवर्ड सोजा के सैद्धांतिक ढाँचों के माध्यम से छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदायों पर शहरीकरण के प्रभाव की पड़ताल करता है, तथा स्थानिक परिवर्तन और सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता के बीच तनाव की जाँच करता है। शहरीकरण को लंबे समय से पूंजीवादी संचय की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में मान्यता दी गई है। जैसा कि डेविड हार्वे (2006) तर्क देते हैं, शहरीकरण केवल शहरों का विकास नहीं है, बल्कि आर्थिक विकास और पूंजी के संचय को सुविधाजनक बनाने के लिए समाज का एक जटिल स्थानिक पुनर्गठन है। मार्क्सवादी सिद्धांत में निहित यह दृष्टिकोण शहरी विकास, आर्थिक विकास और सामाजिक संरचनाओं के परिवर्तन के बीच अंतर्संबंध पर जोर देता है। भारत में तेजी से शहरीकरण कर रहे क्षेत्र छत्तीसगढ़ के मामले में, शहरी विस्तार और पूंजीवादी संचय की प्रक्रियाएँ विरोधाभासों से भरी हुई हैं, खासकर हाशिए के समुदायों के लिए। छत्तीसगढ़ के संदर्भ में शहरीकरण और पूंजीवादी छत्तीसगढ़ में 2000 से अपने गठन के बाद से तेजी से दिख रहा है, जिसे अक्सर आर्थिक विकास के संकेत के रूप में देखा जाता है। राज्य की राजधानी रायपुर देश के सबसे तेजी से बढ़ते शहरों में से एक बन गई है, जिसमें राजमार्ग, औद्योगिक पार्क और रियल एस्टेट परियोजनाओं जैसे बुनियादी ढांचे का विकास परिदृश्य पर हावी है। हालाँकि, यह शहरीकरण केवल विकास की एक तटस्थ प्रक्रिया नहीं है, बल्कि पूंजीवादी संचय के साथ जुड़ा हुआ है, क्योंकि बड़े पैमाने पर निवेश और परियोजनाएं लाभ के लिए भूमि और संसाधनों का दोहन करना चाहती हैं। हार्वे के भौगोलिक संकेंद्रण सिद्धांत में कहा गया है कि शहरीकरण और औद्योगीकरण केवल प्राकृतिक या अपरिहार्य प्रक्रियाएं नहीं हैं, बल्कि विशिष्ट क्षेत्रों में पूंजी को केंद्रित करने के लिए डिजाइन किए गए हैं, जिससे निवेश की लाभप्रदता बढ़ जाती है। शहरीकरण को अधिक कुशल पूंजी संचय को सक्षम करने के लिए समाज के एक रणनीतिक स्थानिक पुनर्गठन के रूप में देखा जाता है।

हार्वे (2006) का तर्क है कि शहरीकरण पूंजीवादी संचय का एक उपकरण है इस संदर्भ में, शहरीकरण समाज को स्थानिक रूप से पुनर्गठित करने और पूंजी संचय को बढ़ाने का एक साधन बन जाता है, जिससे आदिवासियों (स्थानीय समुदायों) और दलितों सहित हाशिए के समूहों का विस्थापन होता है स

केस स्टडी 1: कोरबा में औद्योगीकरण और विस्थापन

छत्तीसगढ़ के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित कोरबा में कई बड़े पैमाने के बिजली संयंत्र और कोयला खदानें हैं। इन उद्योगों की स्थापना के माध्यम से कोरबा का औद्योगीकरण सीधे भौगोलिक संकेन्द्रण से मेल खाता है। इस क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्र का विकास इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि शहरीकरण किस तरह पूंजीवादी संचय की जरूरतों को पूरा करता है। हार्वे (2006) का तर्क है कि इस तरह के शहरीकरण के कारण अक्सर औद्योगिक विस्तार के लिए स्थानीय आबादी का विस्थापन होता है। कोरबा में, इसने स्थानीय समुदायों, विशेष रूप से आदिवासियों और दलितों को बेदखल कर दिया है, जिनकी जमीन औद्योगिक परियोजनाओं के लिए ली गई है।

कोयला खनन और बिजली संयंत्रों के लिए भूमि अधिग्रहण के कारण स्थानीय आदिवासी और दलित समुदायों को बड़े पैमाने पर विस्थापन का सामना करना पड़ा है। जैसे-जैसे ये समुदाय अपनी जमीन और संसाधनों तक पहुँच पाते है, वे गरीबी में और भी अधिक फंसते जाते हैं। आर्थिक विकास की अपनी खोज में राज्य ने अक्सर इन समुदायों के कल्याण पर औद्योगीकरण को प्राथमिकता दी है। जैसा कि घोष (2006) ने लिखा है, "विकास की दौड़ में, हाशिए पर पड़े समुदाय अक्सर खुद को हारते हुए पाते हैं, प्रगति के नाम पर उनकी आजीविका छीन ली जाती है।"

कोरबा का शहरीकरण, औद्योगिक उत्पादन के इर्द-गिर्द केंद्रित है, यह दर्शाता है कि कैसे हाशिए पर पड़ी आबादी की कीमत पर औद्योगिक केंद्रों में पूंजी को केंद्रित करने के लिए जगह को पुनर्गठित किया जाता है, जो अपनी जमीन और आजीविका के साधन खो देते हैं। पूंजीवादी शहरीकरण के विरोधाभास

यहाँ स्पष्ट हैं। इसने पर्यावरणीय गिरावट, असमानता में वृद्धि और सामाजिक अशांति को भी जन्म दिया है। जबकि कोरबा के शहरीकरण ने औद्योगिक उत्पादन के मामले में आर्थिक विकास में योगदान दिया है, इसने एक साथ स्थानीय आबादी की गरीबी और हाशिए को और गहरा कर दिया है।

केस स्टडी 2: रायपुर में शहरी विस्तार और भूमि संघर्ष

डेविड हार्वे का भौगोलिक संकेन्द्रण का सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि पूंजीवाद शहरों और क्षेत्रों के स्थानीय पुनर्गठन को इस तरह से संचालित करता है जिससे आर्थिक लाभप्रदता अधिकतम हो। हार्वे के अनुसार, शहरीकरण एक तटस्थ या जैविक प्रक्रिया नहीं है, यह पूंजीवादी ताकतों द्वारा संचालित होता है जो विशिष्ट क्षेत्रों में धन और पूंजी को केंद्रित करना चाहता हैं। ये क्षेत्र तब निवेश, विकास और आर्थिक गतिविधि के केंद्र बन जाते हैं।

रायपुर में, रियल एस्टेट और शहरी विस्तार के विकास के परिणामस्वरूप भौगोलिक संकेन्द्रण हुआ है। रायपुर, जो कभी मुख्य रूप से कृषि प्रधान था, अब एक वाणिज्यिक और आवासीय केंद्र में तब्दील हो रहा है। यह परिवर्तन शहरी क्षेत्रों में धन को केंद्रित करता है, जिससे पूंजी संचय के लिए जगह बनती है। हालाँकि, इसका नकारात्मक परिणाम हाशिए पर पड़े समुदायों, विशेष रूप से आदिवासी और दलित आबादी का विस्थापन होता है, जिन्होंने विकास परियोजनाओं के लिए अपनी कृषि भूमि खो दी है। ये समूह, जो ऐतिहासिक रूप से आत्मनिर्भर थे, अब सामाजिक और आर्थिक हाशिए पर हैं। कृषि भूमि से वाणिज्यिक और आवासीय स्थानों में भूमि के रूपांतरण की प्रक्रिया इस बात का उदाहरण है कि कैसे पूंजीवादी-चालित भौगोलिक संकेन्द्रण सामाजिक असमानता को जन्म दे सकता है। जिस भूमि का उपयोग कभी आदिवासी समुदायों द्वारा निर्वाह खेती के लिए किया जाता था, उसे अब वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पुनः उपयोग में लाया जा रहा है, जिससे अमीरों (जो विकास से लाभान्वित होते हैं) और गरीबों (जो विस्थापित और दरिद्र हो जाते हैं) के बीच दूरि गहरी होती जा रही है। यह स्थानिक पुनर्गठन, जहां कुछ समूहों को शहरी विस्तार के लाभों से बाहर रखा जाता है, हार्वे की पूंजीवाद की आलोचना को प्रतिबिंबित करता है।

हार्वे (2006) इस बात पर जोर देते हैं कि शहरीकरण अक्सर पूंजीवाद के लिए स्थान बनाने की आवश्यकता से प्रेरित होता है, और रायपुर में कृषि भूमि को वाणिज्यिक और आवासीय स्थानों में रूपांतरित करने से सामाजिक असमानता तीव्र हुई है। जैसा कि मोहंती (2015) तर्क देते हैं, "रायपुर में स्थान का पुनर्गठन, जिसे प्रगति का संकेत माना जाता है, वास्तव में उन समुदायों के विस्थापन का कारण बना है जो पहले से ही हाशिये पर रह रहे थे।" हार्वे का राज्य कनेक्शन सिद्धांत उस तरीके को संदर्भित करता है जिसमें राज्य और उसकी नीतियाँ पूंजीवादी हितों के साथ गहराई से जुड़ी हुई हैं। राज्य, अपने विभिन्न तंत्रों (जैसे भूमि अधिग्रहण कानून, बुनियादी ढांचा परियोजनाएँ और शहरी नियोजन) के माध्यम से, शहरों के स्थानिक पुनर्गठन को सुविधाजनक बनाने में एक केंद्रीय भूमिका निभाता है, जो पूंजी संचय को लाभ पहुँचाता है। इस अर्थ में, राज्य तटस्थ रूप से कार्य नहीं करता है, बल्कि अक्सर पूंजीवादी ताकतों के साथ गठबंधन करता है, जो शहरी विस्तार के लिए हाशिए के समूहों को बेदखल करने की सुविधा प्रदान करता है। रायपुर के संदर्भ में, वाणिज्यिक और आवासीय विकास के लिए भूमि अधिग्रहण में राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। भूमि अधिग्रहण अक्सर राज्य की नीतियों के माध्यम से होता है जो आदिवासी और दलित समुदायों से भूमि के अधिग्रहण को सक्षम बनाता है, जिन्हें उनके नुकसान के लिए पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया जाता है। यह राज्य और पूंजीवादी हितों के बीच एक सीधा संबंध दर्शाता है। राज्य मॉल और आवासीय परिसरों जैसी बड़े पैमाने की विकास परियोजनाओं को प्राथमिकता देता है, जो आर्थिक लाभ उत्पन्न करने और निवेश आकर्षित करने की संभावना रखते हैं। हालांकि, ये परियोजनाएं स्थानीय, हाशिए पर पड़े समुदायों की कीमत पर आती हैं, जिनकी आजीविका उस जमीन पर निर्भर करती है, जिस पर वे रहते हैं। इन भूमि अधिग्रहणों के खिलाफ आदिवासी समुदायों का विरोध और प्रतिरोध न्याय और मान्यता के लिए चल रहे संघर्ष को दर्शाता है। राज्य का पूंजी से संबंध तब स्पष्ट हो जाता है जब विरोध प्रदर्शनों को दमन का सामना करना पड़ता है या पूंजीवादी शहरीकरण परियोजनाओं के पक्ष में उन्हें दरकिनार कर दिया जाता है। जबकि राज्य दावा करता है कि रायपुर में जगह का पुनर्गठन प्रगति है, हार्वे का सिद्धांत यह सुझाव देगा कि वास्तव में यह एक व्यापक पूंजीवादी परियोजना का हिस्सा है जो हाशिए पर पड़ी आबादी को विस्थापित कर शहरी क्षेत्रों में धन को और अधिक केंद्रित करती है।

हेनरी लेफेब्रे और छत्तीसगढ़ में स्थान का उत्पादन

हेनरी लेफेब्रे का ष्स्थान के उत्पादनष् का सिद्धांत (1991) इस बारे में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है कि कैसे शहरी स्थान केवल भौतिक निर्माण नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताकतों द्वारा आकार लेते हैं। लेफेब्रे के अनुसार, स्थान राज्य प्राधिकरणों, पूंजीपतियों और स्थानीय समुदायों सहित विभिन्न अभिनेताओं की बातचीत के माध्यम से निर्मित होता है। छत्तीसगढ़ के मामले में, शहरीकरण द्वारा लाया गया स्थानिक परिवर्तन अक्सर आदिवासी समुदायों के विस्थापन को शामिल करता है, जिससे उनके पारंपरिक क्षेत्रों का विखंडन होता है। जैसे-जैसे शहरी बुनियादी ढाँचे जैसे कि सड़कें, उद्योग और आवास परियोजनाएँ आदिवासी भूमि पर अतिक्रमण करती हैं, वे स्थान जो कभी सांप्रदायिक पहचान और सांस्कृतिक प्रथाओं को बढ़ावा देते थे, वे गैर-आदिवासी द्वारा नियंत्रित और निर्यंत्रित हो जाते हैं। इससे स्थान पर नियंत्रण खो जाता है, जो सीधे आदिवासी पहचान को प्रभावित करता है।

हेनरी लेफेब्रे का 'स्थान के उत्पादन' का सिद्धांत (1991) यह समझने के लिए एक और व्यापक रूपरेखा प्रदान करता है कि कैसे स्थान केवल भौतिक स्थान नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताकतों द्वारा आकार लेते हैं। लेफेब्रे का सुझाव है कि अंतरिक्ष का निर्माण विभिन्न अभिनेताओं, राज्य अधिकारियों, पूंजीपतियों और स्थानीय समुदायों के बीच बातचीत के माध्यम से होता है। उनके विचार में, अंतरिक्ष एक तटस्थ पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि सत्ता संबंधों और सामाजिक प्रथाओं का एक उत्पाद है जो पर्यावरण को लगातार आकार और नया आकार देते हैं। आदिवासी समुदायों पर शहरीकरण के प्रभावों की जांच करते समय इस दृष्टिकोण के गहरे निहितार्थ हैं, खासकर मध्य भारत के छत्तीसगढ़ जैसे क्षेत्रों में।

छत्तीसगढ़ में शहरीकरण और जनजातीय समुदायों का विस्थापन

छत्तीसगढ़ में शहरीकरण, बुनियादी ढांचे के विकास और औद्योगीकरण की राज्य-नेतृत्व वाली प्रक्रियाओं ने कई जनजातीय समुदायों को विस्थापित किया है, खासकर खनिज समृद्ध क्षेत्रों से जिन्हें आर्थिक विकास के लिए पुनर्गठित किया जा रहा है। लेफेब्रे के अनुसार, स्थान एक सामाजिक उत्पाद है और उत्पादन, प्रजनन और उपभोग की शक्ति गतिशीलता द्वारा आकार लेता है। जैसे-जैसे सड़कें, उद्योग और आवास परियोजनाएँ जैसे शहरी बुनियादी ढाँचे जनजातीय भूमि पर अतिक्रमण करते हैं, वे उन स्थानों को बदल देते हैं जहाँ समुदाय कभी अपने अधिकारों और स्वायत्तता का प्रयोग करते थे। ये भूमि, जो कभी सांप्रदायिक पहचान, सांस्कृतिक प्रथाओं और सामूहिक स्मृति के स्थल थे, गैर-आदिवासी द्वारा वस्तुकरण और नियंत्रित की जाती हैं, जो इन समुदायों की पारंपरिक स्थानिक प्रथाओं को नष्ट कर देती हैं।

वस्तुकरण और स्थान पर नियंत्रण की प्रक्रिया जनजातीय समूहों की पहचान और सामाजिक ताने-बाने को महत्वपूर्ण रूप से बाधित करती है। विस्थापन न केवल इन समुदायों के भौतिक पर्यावरण को प्रभावित करता है बल्कि भूमि के साथ उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों को भी कमजोर करता है। यह लेफेब्रे के इस कथन से मेल खाता है कि ष्स्थान एक सामाजिक उत्पाद है,ष जहाँ स्थान का नियंत्रण समाज में सत्ता संबंधों को बनाए रखने के लिए अभिन्न अंग है। छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदायों के लिए परिणाम गंभीर हैं, क्योंकि पारंपरिक क्षेत्रों के विखंडन के परिणामस्वरूप उनकी सांस्कृतिक प्रथाओं और सामाजिक संगठन का क्षरण होता है।

छत्तीसगढ़ में जनजातीय भूमि और पहचान का वस्तुकरण

लेफेब्रे का 'शहर के अधिकार' का सिद्धांत छत्तीसगढ़ में स्थान पर नियंत्रण के नुकसान को समझने में विशेष रूप से उपयोगी है। उनका तर्क है कि स्थान का उत्पादन अक्सर कुछ सामाजिक समूहों को विशेषाधिकार देता है जबकि अन्य को हाशिए पर रखता है। छत्तीसगढ़ के संदर्भ में, आदिवासी समुदाय जो सदियों से भूमि पर ऐतिहासिक रूप से रह रहे हैं, वे खुद को अपनी पैतृक भूमि के उपयोग के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं से बाहर पाते हैं। जैसे-जैसे राज्य प्राधिकरण और निजी पूंजी द्वारा बुनियादी ढांचा परियोजनाएं थोपी जाती हैं, वैसे-वैसे सांप्रदायिक पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता से जुड़े स्थान आर्थिक निष्कर्षण के स्थलों में बदल जाते हैं।

छत्तीसगढ़ के मामले में, इस प्रक्रिया का एक उल्लेखनीय उदाहरण बड़े पैमाने पर औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के लिए आदिवासी समुदायों का विस्थापन है, जैसे कि कोरबा में कोयला खनन संचालन और दुर्ग-भिलाई इस्पात संयंत्र का निर्माण। इन समुदायों के विस्थापन के कारण भूमि पर नियंत्रण खत्म हो गया है, और आदिवासी लोगों और उनकी भूमि के बीच एक बार एकीकृत संबंध बाजार संचालित विकास की एक अलगावकारी प्रणाली द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। जैसा कि भारतीय समाजशास्त्री जी. एन. देवी ने उल्लेख किया है, 'आदिवासी समुदायों का विस्थापन केवल एक आर्थिक अव्यवस्था नहीं है; यह उनकी संपूर्ण जीवन शैली में एक दरार है, जहाँ स्थान अब स्मृति या इतिहास का प्रतीक नहीं है' (देवी, 1997)। यह दरार लेफेब्रे के इस कथन को दर्शाती है कि स्थान तटस्थ नहीं है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक संबंधों को लागू करने का एक साधन है। जैसे-जैसे आदिवासी समुदाय अपने घरों को छोड़ने और नई आजीविका की तलाश में शहरी क्षेत्रों में पलायन करने के लिए मजबूर होते हैं, वे एक ऐसी जगह का सामना करते हैं जो अब उनकी अपनी नहीं है, एक ऐसी जगह जिसे बाहरी आबादी की जरूरतों के बजाय राज्य और पूंजी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पुनर्गठित किया गया है। कई केस स्टडी इस बात का सबूत देती हैं कि छत्तीसगढ़ में शहरीकरण ने आदिवासी समुदायों को कैसे प्रभावित किया है, जिससे स्थान के साथ उनके रिश्ते में बदलाव आया है। एक प्रमुख उदाहरण इंदिरा सागर और कैलाश्वर बांधों के निर्माण के कारण होने वाला विस्थापन है, जिसने क्षेत्र में आदिवासी भूमि के बड़े हिस्से को जलमग्न कर दिया। इन क्षेत्रों में बैगा और गोंड आदिवासियों जैसे आदिवासी समुदायों को उनके पारंपरिक आवासों से विस्थापित कर दिया गया है, जिससे उनके सामाजिक और सांस्कृतिक नेटवर्क का विखंडन हुआ है। इस मामले में, जलाशयों और ऊर्जा उत्पादन के लिए जगह बनाने के उद्देश्य से बुनियादी ढांचे में राज्य के निवेश के परिणामस्वरूप हजारों आदिवासी परिवारों को जबरन पुनर्वास करना पड़ा है, जिन्होंने न केवल अपने घर खो दिए, बल्कि अपनी पारंपरिक आजीविका भी खो दी। इन पवित्र स्थानों का वस्तुकरण सीधे लेफेब्रे की सामाजिक संपर्क और सांस्कृतिक पहचान के स्थान के रूप में स्थान की धारणा का खंडन करता है। इंदिरा सागर बांध के प्रभाव पर एक रिपोर्ट में, शुभ्रांशु चौधरी तर्क देते हैं कि आदिवासी समुदायों के विस्थापन के कारण 'भूमि उपयोग के स्वदेशी रूपों का विनाश हुआ है और वैश्विक ताकतों द्वारा संचालित वस्तु में स्थान का पुनर्गठन हुआ है' (चौधरी, 2009)। लेफेब्रे के अनुसार, वस्तुकरण की यह प्रक्रिया स्थान के पुनर्व्यवस्थापन की ओर ले जाती है, जहाँ आदिवासी समुदायों की जरूरतें और प्रथाएँ बाजार और राज्य के नेतृत्व वाले विकास की जरूरतों के अधीन हो जाती हैं।

एक और उदाहरण है रायगढ़-कोरबा बेल्ट जैसे औद्योगिक गलियारों का विस्तार, जिसमें कोयला खनन, बिजली संयंत्रों और बड़े पैमाने पर बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं के लिए रास्ता बनाने के लिए कई आदिवासी समूहों का पुनर्वास शामिल है। इस क्षेत्र में मेगा-प्रोजेक्ट्स का विकास हुआ है, जिसने आदिवासी क्षेत्रों के परिदृश्य को बदल दिया है। वी. के. पालीवाल जैसे स्थानीय कार्यकर्ताओं और विद्वानों के अनुसार, यह परिवर्तन 'आदिवासी लोगों को उनकी पैतृक भूमि से बेदखल कर देता है, उन्हें उनके अपनेपन की भावना से वंचित कर देता है और उन्हें एक नए औद्योगिक क्रम में केवल मजदूर बना देता है' (पालीवाल, 2016)। इस संदर्भ में औद्योगीकरण की शुरूआत न केवल आर्थिक विस्थापन की ओर ले जाती है, बल्कि आदिवासी समुदायों के सामाजिक ताने-बाने के विघटन की ओर भी ले जाती है। लेफेब्रे का ढांचा यह समझाने में मदद करता है कि कैसे स्थान शक्ति और अधिकार द्वारा आकार दिए गए सामाजिक संबंधों का उत्पाद होता है। छत्तीसगढ़ के मामले में, आदिवासी भूमि का औद्योगिकीकरण के स्थानों में परिवर्तन केवल एक आर्थिक घटना नहीं है, बल्कि राज्य और पूंजी की राजनीतिक शक्ति में निहित है। जैसा कि लेफेब्रे तर्क देते हैं, 'राज्य के पास समाज पर स्थान के अपने दृष्टिकोण को लागू करने की शक्ति है' (लेफेब्रे, 1991), और इस दृष्टिकोण में अक्सर स्वदेशी आबादी के अधिकारों पर आर्थिक विकास को प्राथमिकता देना शामिल होता है। बांध, सड़क और कारखानों जैसी बुनियादी ढांचा परियोजनाओं को लागू करना इस बात का स्पष्ट उदाहरण है कि कैसे राज्य के नेतृत्व वाले स्थानिक परिवर्तन स्वदेशी संस्कृतियों

की कीमत पर औद्योगिक और शहरी विकास को प्राथमिकता देते हैं। इन निर्णयों में स्थानीय समुदायों और आदिवासी नेताओं की भूमिका अक्सर हाशिए पर चली जाती है, क्योंकि राज्य के पास स्थानिक उत्पादन को निर्देशित करने की शक्ति होती है। यह लेफेब्रे के इस तर्क को पुष्ट करता है कि 'स्थान कभी भी तटस्थ नहीं होता' (लेफेब्रे, 1991)। छत्तीसगढ़ में स्थान का निर्माण करने वाले सामाजिक संबंध उन ताकतों द्वारा आकार लेते हैं जो स्वदेशी लोगों के अपने पर्यावरण के साथ गहरे संबंधों की उपेक्षा करते हैं। इसका परिणाम स्थान का नुकसान है जो न केवल भौतिक बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक भी है।

संक्रमण में जनजातीय पहचान: शहरी छत्तीसगढ़ में सोजा के थर्डस्पेस की खोज

एडवर्ड सोजा की 'थर्डस्पेस' (1996) की अवधारणा शहरीकरण को समझने के लिए एक अनूठा दृष्टिकोण प्रदान करती है। सोजा के थर्डस्पेस के विचार से पता चलता है कि स्थान केवल भौतिक या वैचारिक नहीं है, बल्कि रोजमर्रा की प्रथाओं के माध्यम से जिया और अनुभव किया जाता है। छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदायों के संदर्भ में, ग्रामीण से शहरी परिवेश में संक्रमण जीवन जीने के विभिन्न तरीकों के बीच बातचीत को बताता है। शहरी स्थानों में आदिवासी आबादी के प्रवेश से अक्सर एक अलग पहचान बनती है, जहाँ पारंपरिक आदिवासी मूल्य आधुनिक शहरी संस्कृति के प्रभावों के साथ मिल जाते हैं। यह 'थर्डस्पेस' शहरी दबावों के सामने आदिवासी पहचान की पुनर्कल्पना करने की अनुमति देता है, लेकिन सांस्कृतिक आत्मसात, भाषा की हानि और सामाजिक बहिष्कार जैसी चुनौतियाँ भी लाता है। सोजा का सिद्धांत बताता है कि शहरी परिवेश में स्थान का पुनर्गठन पहचान निर्माण के लिए नई संभावनाएँ पैदा कर सकता है, लेकिन अगर सावधानी से संबोधित नहीं किया गया तो यह आदिवासी आबादी के हाशिए पर जाने को और गहरा कर सकता है। एडवर्ड सोजा की थर्डस्पेस की अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि स्पेस बहुआयामी है। परंपरागत रूप से, स्पेस को दो आयामों में समझा जाता है, पहला स्पेस, भौतिक और शारीरिक क्षेत्र, और दूसरा स्पेस, वैचारिक और कल्पित क्षेत्र। सोजा का तर्क है कि एक तीसरा आयाम, थर्डस्पेस, जीवित और अनुभव किए गए स्थान के रूप में मौजूद है, जो व्यक्तियों की दैनिक प्रथाओं और सामाजिक अंत:क्रियाओं द्वारा आकार लेता है (सोजा, 1996)। थर्डस्पेस की यह अवधारणा विशेष रूप से आदिवासी आबादी के अनुभवों को समझने में उपयोगी हो सकती है क्योंकि वे ग्रामीण से शहरी वातावरण में संक्रमण करते हैं। ग्रामीण, आदिवासी परिवेश से शहरी परिवेश में बदलाव पारंपरिक और आधुनिक के बीच एक समझौता करने के लिए मजबूर करता है, जिससे एक नई, संकर पहचान बनती है। यह संकर स्थान, इस समझौता का एक उत्पाद है, जो आदिवासी परंपराओं के संरक्षण और शहरी सांस्कृतिक तत्वों को अपनाने द्वारा चिह्नित है। मध्य भारत का एक राज्य छत्तीसगढ़, एक महत्वपूर्ण आदिवासी आबादी का घर है। इस क्षेत्र के तेजी से शहरीकरण का इन समुदायों पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जिनके पारंपरिक जीवन के तरीके अब शहरी विकास के दबावों द्वारा पुनर्गठित किए जा रहे हैं। ग्रामीण इलाकों से शहरी इलाकों में संक्रमण आदिवासी समूहों के लिए कोई सीधी प्रक्रिया नहीं है। यह एक गतिशील और बहुआयामी यात्रा है, जो अक्सर पारंपरिक आदिवासी मूल्यों और आधुनिक शहरी संस्कृति के प्रभावों के सम्मिश्रण द्वारा चिह्नित होती है।

उदाहरण के लिए, छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में, कई आदिवासी परिवार रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवन स्तर की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कर गए हैं। आदिवासी जीवन शैली और शहरी परिवेश के बीच की बातचीत से अक्सर एक सांस्कृतिक पहचान का निर्माण होता है। पुरानी पीढ़ी त्यौहारों, अनुष्ठानों और सामुदायिक जीवन जैसे आदिवासी रीति-रिवाजों को बनाए रखने का प्रयास करती है, जबकि युवा पीढ़ी व्यक्तिवाद, आधुनिक शिक्षा और उपभोक्ता संस्कृति जैसी शहरी प्रथाओं से तेजी से प्रभावित होती है। यह पहचान थर्डस्पेस की अभिव्यक्ति है, क्योंकि यह केवल एक भौतिक स्थान (रायपुर) या एक वैचारिक स्थान (आदिवासी परंपराएँ) नहीं है, बल्कि आदिवासी लोगों की रोजमर्रा की प्रथाओं और सामाजिक अंत:क्रियाओं द्वारा आकार लेने वाला एक जीवंत अनुभव है। जैसा कि सोजा (1996) कहते हैं, 'थर्डस्पेस भौतिक और कल्पित का एक सरल, रैखिक विस्तार नहीं है, बल्कि बनने और फिर से बनने की एक सतत प्रक्रिया है।' छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदायों के मामले में, शहरी क्षेत्रों में उनका संक्रमण केवल जीवन जीने के नए तरीकों को अपनाने के बारे में नहीं है, बल्कि शहरी संदर्भ में अपनी पहचान को फिर से कल्पित करने के बारे में भी है।

केस स्टडी 1: बस्तर के गोंड

छत्तीसगढ़ के सबसे बड़े आदिवासी समुदायों में से एक है गोंड जो शहरीकरण के संदर्भ में एक सम्मोहक केस स्टडी प्रस्तुत करता है। परंपरागत रूप से, गोंड ग्रामीण, वन क्षेत्रों में रहते हैं और अपने प्राकृतिक परिवेश से उनका गहरा संबंध है। हालाँकि, शहरी क्षेत्रों के विस्तार के साथ, विशेष रूप से बस्तर में, कई गोंड काम की तलाश में शहरी स्थानों पर जाने के लिए मजबूर हो गए हैं।

यह शहरी बदलाव गोंडों के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करता है। जबकि शहरी स्थान शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और रोजगार तक पहुँच प्रदान करते हैं, वे सांस्कृतिक क्षरण के जोखिम भी पेश करते हैं। विशेष रूप से गोंडों की युवा पीढ़ी खुद को दो दुनियाओं के बीच फँसा हुआ पाती है, अपने पूर्वजों की पारंपरिक दुनिया और शहर की आधुनिक दुनिया। जगदलपुर जैसे शहरों में, आदिवासी युवा फैशन विकल्पों से लेकर जीवनशैली प्राथमिकताओं तक, शहरी जीवन शैली को तेजी से अपना रहे हैं, साथ ही पारंपरिक मूल्यों को संरक्षित करने के लिए अपने बड़ों की अपेक्षाओं से भी जूझ रहे हैं।

सोजा का थर्डस्पेस का सिद्धांत पहचान वार्ता की इस प्रक्रिया में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। गोंड केवल अपनी परंपराओं को नहीं छोड़ रहे हैं; बल्कि, वे एक ऐसी जगह की तलाश कर रहे हैं जो पारंपरिक और आधुनिक दोनों हो, जिससे एक नई, सांस्कृतिक पहचान का निर्माण हो सकता है। जैसा कि बी. एस. गुहा (2012) ने लिखा है, 'शहरी केंद्रों में आदिवासी युवाओं के बीच एक पहचान का उभरना एक नए तरीके का संकेत देता है जो पारंपरिक आदिवासी मूल्यों और शहरी जीवन के आधुनिक, महानगरीय प्रभावों दोनों से आकार लेता है।'

केस स्टडी 2: कांकेर के मारिया

छत्तीसगढ़ के एक अन्य जिले कांकेर में, गोंड जनजाति के एक उप-समूह मारिया को शहरीकरण की प्रक्रिया में इसी तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ऐतिहासिक रूप से, मारिया कृषि और वनवासी रहे हैं, जिनमें समुदाय की एक मजबूत भावना और आजीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता है। हालाँकि, शहरी सीमा के विकास और नए उद्योगों की स्थापना के साथ, कई मारिया शहरी क्षेत्रों के करीब चले गए हैं।

इस बदलाव ने नए आर्थिक अवसरों को पेश किया है, लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक तनाव भी पैदा हुए हैं। जबकि कुछ मारिया ने शहरी जीवन को अपनाया है, अन्य पारंपरिक प्रथाओं, विशेष रूप से उनके अनुष्ठानों और भाषा को जारी रखा है। आधुनिकता और परंपरा के बीच यह तनाव थर्डस्पेस की पहचान है। मारिया का अनुभव सोजा के इस दावे को दर्शाता है कि थर्डस्पेस 'रचनात्मक तनाव' (सोजा, 1996) का स्थल है, जहाँ व्यक्ति पहचान और अपनेपन के नए अर्थों पर बातचीत करता है।

मारिया के अनुसार शहरी क्षेत्रों में सामाजिक बहिष्कार से और भी जटिल हो जाता है। जबकि शहरी स्थान आर्थिक उन्नति के अवसर प्रदान करते हैं, मारिया, कई अन्य आदिवासी समुदायों की तरह, अक्सर भेदभाव और हाशिए पर होने का सामना करते हैं। कई मामलों में, मारिया शहरी ताने-बाने में पूरी तरह से एकीकृत नहीं हैं, जो सामाजिक बहिष्कार की उनकी भावना को बढ़ाता है। जैसा कि नंदिनी सुंदर (2008) तर्क देती हैं, 'आदिवासी लोगों का शहरी क्षेत्रों में प्रवास अक्सर सामाजिक एकीकरण की कमी से चिह्नित होता है, जिससे और अधिक हाशिए पर जाने और पहचान खोने की स्थिति पैदा होती है।' थर्डस्पेस की अवधारणा शहरी सेटिंग्स के भीतर पहचान निर्माण की क्षमता पर प्रकाश डालती है, क्योंकि आदिवासी समुदाय पारंपरिक और आधुनिक जीवन शैली को मिलाते हैं। यह स्थान पहचान की पुनर्कल्पना की अनुमति देता है, जिससे नई सांस्कृतिक संभावनाएँ बनती हैं। जैसे-जैसे छत्तीसगढ़ में आदिवासी आबादी शहरी स्थानों का सामना करती है, वे न केवल शहरी जीवन में आत्मसात होते हैं, बल्कि अपनी विरासत और आधुनिकता के प्रभावों को प्रतिबिंबित करने के लिए अपनी पहचान को फिर से आकार देते हैं। हालाँकि, शहरीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण चुनौतियों के साथ भी आती है। सांस्कृतिक आत्मसात, भाषा की हानि और सामाजिक बहिष्कार का जोखिम वास्तविक खतरे हैं। जैसा कि सोजा (1996) ने चेतावनी दी है, स्थान के पुनर्गठन से र्षविविध सांस्कृतिक पहचानों का समरूपीकरणष् हो सकता है, जो सावधानी से संबोधित न किए जाने पर आदिवासी समुदायों को हाशिए पर डाल सकता है। उदाहरण के लिए, भाषा का नुकसान एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है, क्योंकि शहरी वातावरण में अक्सर हिंदी या अंग्रेजी को अपनाने की आवश्यकता होती है, जिससे आदिवासी भाषाओं के लुप्त होने का खतरा रहता है। इसके अलावा, पहचान निर्माण की प्रक्रिया कभी-कभी आंतरिक संघर्षों को जन्म दे सकती है, खासकर पीढ़ियों के बीच। युवा आदिवासी व्यक्ति शहरी सांस्कृतिक प्रथाओं को अपना सकते हैं, जिससे पुरानी पीढ़ियों के साथ तनाव पैदा हो सकता है जो पारंपरिक जीवन शैली को संरक्षित करने के लिए अधिक प्रतिबद्ध हैं। यह पीढ़ीगत विभाजन थर्डस्पेस की जटिल प्रकृति को दर्शाता है, जहाँ विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाएँ लगातार परिवर्तनशील होती रहती हैं।

निष्कर्ष: आर्थिक प्रगति के प्रतीक के रूप में छत्तीसगढ़ का शहरीकरण, आधुनिकता के वादे और सांस्कृतिक क्षरण को समाहित करता है, खासकर राज्य की जनजातीय आबादी के लिए। जबकि यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि शहरीकरण से आर्थिक अवसरों में वृद्धि होती है, यह जनजातीय पहचान में गहरा व्यवधान भी लाता है, जिससे वे हाशिए पर चले जाते हैं। डेविड हार्वे, हेनरी लेफेब्रे और एडवर्ड सोजा के सैद्धांतिक ढाँचों की जाँच करके, हम इस परिवर्तन को आकार देने वाली गतिशील शक्तियों और जनजातीय समुदायों के लिए परिणामों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करते हैं। डेविड हार्वे का शहरीकरण का सिद्धांत, विशेष रूप से ष्शहर के अधिकारष् को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करती है, शहरीकरण पूंजीवादी विकास के लिए एक तंत्र के रूप में कैसे कार्य करता है। नया शहरी क्षेत्र अधिशेष संचय के लिए एक स्थल के रूप में कार्य करता है और इसलिए पूंजीवाद के अस्तित्व की कुंजी है। हार्वे का तर्क है कि शहरीकरण एक तटस्थ प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जो अक्सर लाभ के लिए भूमि और संसाधनों का वस्तुकरण करके पूंजीवादी वर्ग को लाभ पहुँचाती है। अपनी पुस्तक सोशल जस्टिस एंड द सिटी में हार्वे ने जोर देकर कहा, ष्शहर का अधिकार शहर को नया आकार देने का सामूहिक अधिकार है जिससे लोगों को शहरी वातावरण से जुड़ाव की भावना फिर से प्राप्त होती है।ष् यह विचार छत्तीसगढ़ में विशेष रूप से प्रासंगिक है, जहाँ कोरबा और रायपुर जैसे शहरी केंद्रों के विस्तार ने आदिवासी समुदायों को उनकी पैतृक भूमि से विस्थापित कर दिया है। ये क्षेत्र, जो कभी मुख्य रूप से कृषि या सामुदायिक स्थान थे, अब औद्योगिक और शहरी विकास के लिए तेजी से वस्तु बन रहे हैं, जिससे आदिवासी आबादी अनिश्चित स्थिति में है। औद्योगिकीकरण, जो कई व्यक्तियों को आकर्षित करता है, काफी हद तक अच्छा जीवन प्रदान करने में विफल रहा है।

हेनरी लेफेब्रे की 'स्थान के उत्पादन' की अवधारणा इस बात पर और अधिक विस्तार से प्रकाश डालती है कि शहरीकरण किस तरह से आदिवासी समुदायों के जीवंत अनुभवों को बाधित करता है। लेफेब्रे इस बात पर जोर देते हैं कि स्थान एक निष्क्रिय पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि सामाजिक संबंधों का एक सक्रिय उत्पाद है। वे द प्रोडक्शन ऑफ स्पेस में लिखते हैं, 'स्थान एक सामाजिक उत्पाद है; स्थान समाज में लोगों के एक-दूसरे से संबंध बनाने के तरीके का उत्पाद है।' छत्तीसगढ़ में, सड़कों, कारखानों और आवासीय क्षेत्रों जैसे बुनियादी ढाँचे के विस्तार ने भौतिक और सामाजिक परिदृश्यों को इस तरह से बदल दिया है कि आदिवासी संस्कृति और सामुदायिक संरचनाओं को नष्ट कर दिया है। आदिवासी आबादी के पारंपरिक स्थान, जैसे जंगल और सांप्रदायिक सभा स्थल, पूंजी संचय की ओर उन्मुख स्थानों से प्रतिस्थापित किए जा रहे हैं, जिससे पैतृक जीवन शैली से वियोग हो रहा है। एडवर्ड सोजा की थर्डस्पेस की अवधारणा शहरीकरण के संदर्भ में पहचान निर्माण की जटिलता को समझने के लिए एक संभावित मार्ग प्रस्तुत करती है। सोजा के अनुसार, थर्डस्पेस एक ऐसा स्थान है जो भौतिक, सामाजिक और काल्पनिक स्थानों की परस्पर क्रिया से उत्पन्न होता है। उनका तर्क है कि यह तीसरा स्पेस नई पहचान और जीने के तरीकों को बढ़ावा दे सकता है, जिसे आदिवासी समुदायों के लिए चुनौती और अवसर दोनों के रूप में देखा जा सकता है। थर्डस्पेस: जर्नीज टू लॉस एंजिल्स एंड अदर रियल-एंड-इमेजिन्ड प्लेस में, सोजा लिखते हैं, 'थर्डस्पेस सभी अन्य संभावनाओं का स्थान है... एक ऐसा स्थान जो संस्कृति और पहचान के परिवर्तन और पुनर्व्याख्या की संभावना को खोलता है।' यह विचार छत्तीसगढ़ के आदिवासी समुदायों के लिए महत्वपूर्ण बात करता है क्योंकि वे पारंपरिक पहचान को

बनाए रखने और शहरीकरण के दबावों के अनुकूल होने के बीच तनाव को दूर करते हैं। जैसे-जैसे युवा आदिवासी पीढ़ी शहरी वातावरण में अधिक एकीकृत होती जाती है वैसेआदिवासी संस्कृति के लिए एक नए भविष्य की पेशकश होती है।

छत्तीसगढ़ में आर्थिक विकास और सांस्कृतिक संरक्षण के बीच तनाव विशेष रूप से स्पष्ट है, जहाँ शहरीकरण सामाजिक गतिशीलता के अवसर प्रदान करता है लेकिन आदिवासी संस्कृतियों के विखंडन की ओर भी ले जाता है। युवा पीढ़ी, विशेष रूप से, अपनी आदिवासी पहचान को बनाए रखने का प्रयास करते हुए शहरी संस्कृति में आत्मसात करने की चुनौती का सामना करती है। शहरी मानदंडों और प्रथाओं को अपनाने के दबाव से प्रेरित यह सांस्कृतिक आत्मसात, पीढ़ीगत विभाजन की ओर ले जाता है। जैसे-जैसे पुरानी आदिवासी पीढ़ियाँ सांस्कृतिक प्रथाओं को पकड़ती हैं, युवा आबादी खुद को दो दुनियाओं के बीच फँसा पाता है, अपने बुजुर्गों की ग्रामीण आदिवासी दुनिया और अवसरों की शहर आधुनिक दुनिया।

हालाँकि, पहचान की संभावना भी उम्मीद लेकर आती है। जैसा कि सोजा सुझाते हैं, थर्डस्पेस में कई पहचानों का प्रतिच्छेदन सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के नए रूपों को जन्म दे सकता है द लैंग्वेज ऑफ बिलॉन्गिंग में देवी लिखती हैं, 'भाषाएँ सिर्फ संस्कृति की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि लोगों की पहचान का आधार हैं। उन्हें मिटाना लोगों को मिटाना है।' यह शहरीकरण के दबाव में आदिवासी पहचान के बारे में व्यापक चिंता को दर्शाता है। भारत की विकास नीतियों की अपनी आलोचना में अनियंत्रित आर्थिक विकास के साथ आने वाले 'बेदखली' के खतरे की चेतावनी देती हैं। रॉय अपनी पुस्तक फील्ड नोट्स ऑन डेमोक्रेसी में वे कहती हैं, 'विकास का एजेंडा शक्तिशाली लोगों के हाथों में एक हथियार है। यह गरीबों, विस्थापितों, हाशिए पर पड़े आदिवासी लोगों को बेकार बना देता है।' छत्तीसगढ़ का शहरीकरण अवसर और जोखिम दोनों प्रस्तुत करता है। राज्य का बढ़ता औद्योगिक और बुनियादी ढांचा आर्थिक विकास का वादा कर सकता है, लेकिन यह आदिवासी आबादी की सांस्कृतिक अखंडता और सामाजिक सामंजस्य को भी खतरे में डालता है। जैसा कि हार्वे, लेफेब्रे और सोजा स्थान, शक्ति और पहचान के प्रतिच्छेदन को समझने के लिए मूल्यवान रूपरेखा प्रदान करते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है कि शहरीकरण एक गैर-आलोचनात्मक प्रक्रिया नहीं हो सकती। विकास समावेशी होना चाहिए, यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आदिवासी समुदायों के अपनी भूमि, संस्कृति और पहचान के अधिकारों का सम्मान किया जाए। आदिवासी अनुभव की जटिलता का सम्मान करने वाली पहचानों के उद्भव को सुगम बनाने के लिए, नीतियों को ऐसा वातावरण विकसित करना चाहिए जहाँ आर्थिक विकास और सांस्कृतिक संरक्षण दोनों एक साथ रह सकें। आदिवासी समुदायों की आवाज केंद्र में होनी चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि उनके इतिहास और पहचान को प्रगति की वेदी पर बलि न चढ़ाया जाए।

संदर्भः

चौधरी, एस. (2009)। विकास से विस्थापितः छत्तीसगढ़ में आदिवासी समुदाय और शहरीकरण। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

दास, एस., और दुबे, आर. (2014)। छत्तीसगढ़ में शहरीकरण और आदिवासी समुदायों का विस्थापन। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 49(42), 52ख़59।

देवी, जी. एन. (1997)। लुप्त होती जनजातियाँः भारत में विस्थापन और पहचान। नई दिल्लीः सेज प्रकाशन।

घोष, ए. (2006)। विकास और विस्थापनः छत्तीसगढ़ का मामला। नई दिल्लीः रूटलेज।

गुहा, बी.एस. (2012)। शहरी स्थानों में आदिवासी पहचानः छत्तीसगढ़ का मामला। दिल्ली यूनिवर्सिटी प्रेस।

हार्वे, डी. (2008)। शहर का अधिकार। न्यू लेफ्ट रिव्यू, 53, 23ख़40।

कुमार, ए. (2019)। आदिवासी भूमि और शहरीकरणः छत्तीसगढ़ का मामला। एशियन जर्नल ऑफ डेवलपमेंट, 18(3), 133ख़150।

लेफेब्रे, एच. (1991)। स्पेस का उत्पादन। ब्लैकवेल पब्लिशिंग।

मोहंती, एम. (2005)। शहरीकरण और आदिवासी पहचान पर इसका प्रभावः छत्तीसगढ़ का एक केस स्टडी। जर्नल ऑफ इंडियन सोशियोलॉजी, 43(2), 99ख़113।

सोजा, ई. (1996)। थर्डस्पेसः लॉस एंजिल्स और अन्य वास्तविक और काल्पनिक स्थानों की यात्रा। ब्लैकवेल।

सुंदर, एन. (2008)। आदिवासी और आधुनिकः शहरी भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 43(35), 39-47।

फोटोग्राफी के बदलते स्वरूप का विज्ञापनों पर प्रभाव

अंकित सिंह

शोध छात्र, ललित कला विभाग, कला संकाय महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म०प्र०)

फोटोग्राफी का स्वरूप समय के साथ तकनीकी विकास और बदलती उपभोक्ता अपेक्षाओं के कारण काफी विकसित हुआ है। इसका सीधा और व्यापक प्रभाव विज्ञापन उद्योग पर पड़ा है। पारंपरिक फोटोग्राफी से डिजिटल फोटोग्राफी तक का सफर, फोटोग्राफी का इतिहास तकनीकी और रचनात्मक विकास का एक लंबा और प्रेरणादायक सफर है। पारंपरिक फोटोग्राफी से डिजिटल फोटोग्राफी तक की यात्रा में तकनीकी नवाचारों और बदलती जरूरतों ने इस क्षेत्र को एक नई दिशा दी। फोटोग्राफी का पहला स्वरूप 16वीं सदी में "कैमरा ऑब्सक्युरा" था, जिसका उपयोग छवियों को कैनवास पर प्रतिबिंबित करने के लिए किया जाता था। इसमें स्थायी तस्वीरें नहीं बनती थीं, केवल छवि को देखा जा सकता था।

डैगुएरोटाइप प्रक्रिया 1839 लुई डैगुएर ने पहली बार स्थायी छवियां बनाने की प्रक्रिया विकसित की। धातु की प्लेट पर छवियां उकेरी जाती थीं, जो काफी महंगी और समय लेने वाली थी। फिल्म-आधारित फोटोग्राफी 1888 में कोडेक ने पहला पोर्टेबल कैमरा पेश किया, जिसने फोटोग्राफी को आम लोगों के लिए सुलभ बनाया। काले और सफेद फिल्म से शुरू होकर रंगीन फिल्म तक विकास हुआ। 20वीं सदी में सिंगल लेंस रीफ्लैक्स कैमरों ने लोकप्रियता पाई। चुनौतियां तस्वीरें लेने और विकसित करने के लिए समय और श्रम की आवश्यकता होती थी।

डिजिटल फोटोग्राफी का उदय डिजिटल सेंसर का विकास 1960 के दशक में, नासा और वैज्ञानिकों ने डिजिटल इमेजिंग सेंसर का उपयोग शुरू किया। चार्ज कॉउपलेड डिवाइस और सी.यम.ओ.यस सेंसर ने डिजिटल फोटोग्राफी को संभव बनाया। पहला डिजिटल कैमरा 1975 कोडेक ने पहला डिजिटल कैमरा विकसित किया, जो फिल्म के बजाय डिजिटल डेटा का उपयोग करता था। 1990 के दशक में डिजिटल फोटोग्राफी तस्वीरे लेने का सबसे सुलभ, तेज और सस्ता साधन बन गया, जिससे यह व्यापक रूप से अपनाया जाने लगा।[1] एडिटिंग सॉफ्टवेयर जैसे फॉटोशॉप ने तस्वीरों को प्रोसेस और सुधारने की नई संभावनाएं दीं। डिजिटल फोटोग्राफी के युग में मुख्य विशेषताएं स्मार्टफोन कैमरों का विकास स्मार्टफोन के साथ कैमरा फोटोग्राफी का सबसे आम उपकरण बन गया।

मल्टी-लेंस सिस्टम ने स्मार्टफोन कैमरों की गुणवत्ता को डी.यस.यल.आर. के करीब पहुंचा दिया। एडिटिंग और शेयरिंग फोटो एडिटिंग के लिए सॉफ्टवेयर और ऐप्स जैसे लाइटरूम और सनपसीड ने पेशेवर गुणवत्ता को आसान बना दिया। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म (इंस्टाग्राम, फेस्बूक) पर तस्वीरों को तुरंत साझा करना संभव हुआ। 3डी और 360° फोटोग्राफी 3डी इमेजिंग और वर्चुअल रियलिटी के लिए 360° फोटोग्राफी का उपयोग बढ़ा है। यह तकनीक रियल एस्टेट, पर्यटन, और गेमिंग में लोकप्रिय है। डिजिटल फोटोग्राफी का प्रभाव सुलभता आज फोटोग्राफी हर किसी के लिए उपलब्ध है। व्यवसाय डिजिटल फोटोग्राफी ने विज्ञापन, फिल्म निर्माण, और कला के क्षेत्र में नई संभावनाएं पैदा की हैं। रचनात्मकता एडिटिंग और पोस्ट-प्रोसेसिंग टूल्स ने फोटोग्राफी को एक रचनात्मक माध्यम बना दिया है। पारंपरिक फोटोग्राफी से डिजिटल फोटोग्राफी तक का सफर तकनीकी और सांस्कृतिक बदलावों का प्रतीक है। इसने न केवल तस्वीरें लेने के तरीके को बदला है, बल्कि इसे हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा भी बना दिया है।

सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स ने विज्ञापन की दुनिया को पूरी तरह बदल दिया है। फोटोग्राफी, जो पहले केवल एक पूरक माध्यम थी, अब सोशल मीडिया की रीढ़ बन गई है। इसके माध्यम से ब्रांड्स अपने उत्पाद और सेवाओं को अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं। सोशल मीडिया और फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन का विकास विजुअल कंटेंट की प्राथमिकता प्लेटफॉर्म जैसे इंस्टाग्राम, पिन्टरेस्ट, और फेस्बूक विजुअल-केंद्रित हैं, जहां फोटोग्राफी मुख्य भूमिका निभाती है। तेजी से साझा करने की क्षमता सोशल मीडिया ने विज्ञापन को त्वरित और व्यापक बना दिया है। सुलभता स्मार्टफोन और डिजिटल कैमरों ने फोटोग्राफी को आम लोगों और छोटे व्यवसायों के लिए भी किफायती बना दिया है।

सोशल मीडिया इंस्टाग्राम यह प्लेटफॉर्म पूरी तरह फोटोग्राफी और शॉर्ट वीडियो पर केंद्रित है। ब्रांड्स अपने उत्पादों को आकर्षक तरीके से दिखाने के लिए हाई-क्वालिटी तस्वीरों और रील्स का उपयोग करते हैं। पिंटरेस्ट यहां लोग प्रेरणा और विचारों की तलाश में आते हैं, जहां फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन प्रभावी साबित होते हैं। फेसबुक यहां विज्ञापन में तस्वीरें, गैलरी, और स्लाइडशो का उपयोग कर दर्शकों का ध्यान खींचा जाता है। आकर्षक और प्रभावी प्रस्तुति फोटोग्राफी उत्पादों और सेवाओं को अधिक यथार्थ और आकर्षक तरीके से प्रस्तुत करती है। उदाहरण फैशन ब्रांड्स अपने उत्पादों की हाई-रिजॉल्यूशन तस्वीरें पोस्ट करते हैं जो दर्शकों को तुरंत आकर्षित करती हैं। ब्रांड पहचान और स्टोरीटेलिंग फोटोग्राफी के माध्यम से ब्रांड्स अपनी कहानी बताते हैं। उदाहरण नैचुरल उत्पाद बनाने वाले ब्रांड्स प्रकृति की सुंदर तस्वीरें साझा करके अपनी ब्रांड पहचान को मजबूत करते हैं।

सोशल मीडिया पर फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन उपभोक्ताओं को व्यक्तिगत अनुभव देता है। उदाहरण इंस्टाग्राम पर 'लाइव फोटोज' और 'रियल-लाइफ रिव्यू' दर्शकों को आकर्षित करते हैं। वायरल मार्केटिंग एक अच्छी तस्वीर या क्रिएटिव पोस्ट तेजी से वायरल हो सकती है, जिससे ब्रांड की पहुंच लाखों लोगों तक हो जाती है। स्मार्टफोन कैमरों की उन्नति और एडिटिंग ऐप्स (जैसे कैनवा, लाइटरूम, स्नैपसीड) ने छोटे व्यवसायों को भी पेशेवर फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन बनाने में सक्षम किया है। ।त् (आउगमेंटेड रीऐलिटी) और 3डी फोटोग्राफी ने विज्ञापनों को इंटरएक्टिव बना दिया है। आकर्षक छवियाँ तुरंत ध्यान आकर्षित करती है और उपयोगकर्ताओं को आपकी सामग्री के साथ जुडने के लिए प्रेरित करती है।[2] उपभोक्ताओं की बदलती अपेक्षाएं उपभोक्ता अब

उत्पाद की तस्वीरों में यथार्थवाद और गुणवत्ता चाहते हैं। 'पहले देखो और फिर खरीदो' जैसे ट्रेंड ने फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन को अनिवार्य बना दिया है। चुनौतियां सोशल मीडिया पर प्रतिस्पर्धा बहुत अधिक है। ग्राहकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए फोटोग्राफी में निरंतर नयापन चाहिए। समाधान क्रिएटिव और अनोखी तस्वीरें बनाना।

ए.आई और डेटा एनालिटिक्स के जरिए उपभोक्ता की पसंद के अनुसार सामग्री तैयार करना। सफल फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन जोमैटो (जोमाइटो) खाने की आकर्षक तस्वीरों और ह्यूमर का उपयोग कर उन्होंने सोशल मीडिया पर बड़ी पहचान बनाई। नाइकी (नाइक) हाई-क्वालिटी फोटोग्राफी और स्टोरीटेलिंग के जरिए नाइकी ने अपने उत्पादों को वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत किया। ए.आई और अन्य तकनीकी नवाचारों के माध्यम से, विज्ञापन उद्योग दर्शकों की अपेक्षाओं को बेहतर ढंग से समझने और उन्हे पूरा करने में सक्षम हो रहा है।[3] सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स ने फोटोग्राफी आधारित विज्ञापन को तेज, किफायती और प्रभावी बना दिया है। इन प्लेटफार्म्स ने ब्रांड्स को नए और रचनात्मक तरीके से अपने दर्शकों तक पहुंचने का अवसर दिया है। फोटोग्राफी का महत्व आने वाले समय में और बढ़ेगा, खासकर जब तकनीकी नवाचारों का उपयोग किया जाएगा।

विज्ञापन उद्योग में दर्शकों की अपेक्षाएं समय के साथ बदल रही हैं। आज का दर्शक केवल उत्पाद या सेवा की जानकारी नहीं चाहता, बल्कि वह ऐसे विज्ञापन की तलाश करता है जो उनके साथ भावनात्मक और व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ सके। डिजिटल युग में इन बदलती अपेक्षाओं ने विज्ञापन की रणनीतियों को पूरी तरह से बदल दिया है। पर्सनलाइजेशन का महत्व दर्शक अब सामान्य विज्ञापनों की जगह अपनी रुचियों और जरूरतों के अनुसार कस्टमाइज्ड विज्ञापन देखना चाहते हैं। उदाहरण ऑनलाइन शॉपिंग प्लेटफॉर्म्स द्वारा दर्शकों की सर्च हिस्ट्री के आधार पर विज्ञापन दिखाना। डेटा एनालिटिक्स का उपयोग ब्रांड्स, दर्शकों की पसंद, व्यवहार और स्थान का विश्लेषण करके व्यक्तिगत अनुभव प्रदान कर रहे हैं।

केवल उत्पाद नहीं, बल्कि कहानी दर्शक अब केवल उत्पाद की विशेषताओं से प्रभावित नहीं होते, वे विज्ञापनों में कहानी और भावनात्मक जुड़ाव की तलाश करते हैं। उदाहरण नाइकी के विज्ञापन, जो सफलता और संघर्ष की कहानियां बताते हैं। भावनात्मक अपील विज्ञापन में ऐसा कंटेंट चाहिए जो दर्शकों की भावनाओं को छू सके, जैसे परिवार, दोस्ती, या प्रेरणा। वास्तविकता और प्रामाणिकता की मांग असली अनुभव दर्शक अब रियलिस्टिक विज्ञापन देखना पसंद करते हैं जो उनके जीवन से संबंधित हों। उदाहरण बिना एडिट किए गए, रियल-लाइफ रिव्यू और यूजर जनरेटेड कंटेंट। आज का उपभोक्ता ब्रांड्स से ईमानदारी और पारदर्शिता की अपेक्षा करता है। नकली दावे और भ्रामक जानकारी अब स्वीकार्य नहीं हैं। इंटरएक्टिव विज्ञापन दर्शक अब ऐसे विज्ञापन पसंद करते हैं जिनमें वे सक्रिय रूप से भाग ले सकें। शॉर्ट-फॉर्म कंटेंट ध्यान अवधि कम होने के कारण छोटे और प्रभावी विज्ञापन अधिक पसंद किए जाते हैं, जैसे इंस्टाग्राम रील्स या यूट्यूब शॉर्ट्स।

सस्टेनेबिलिटी दर्शक अब ब्रांड्स से पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी की अपेक्षा करते हैं। उदाहरण इको-फ्रेंडली पैकेजिंग या सस्टेनेबल प्रोडक्ट्स पर आधारित विज्ञापन। सोशल मुद्दों पर ध्यान ब्रांड्स जो सामाजिक मुद्दों जैसे जेंडर समानता, शिक्षा, और विविधता का समर्थन करते हैं, उन्हें दर्शक अधिक पसंद करते हैं। ओम्नीचौनल मार्केटिंग दर्शक विभिन्न प्लेटफॉर्म्स (जैसे सोशल मीडिया, ईमेल, टीवी, वेबसाइट) पर एक सुसंगत अनुभव की उम्मीद करते हैं। उदाहरण किसी ब्रांड का इंस्टाग्राम विज्ञापन, उनकी वेबसाइट और ईमेल कैंपेन से मेल खाता हो। मोबाइल-फ्रेंडली कंटेंट मोबाइल उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ने से, विज्ञापन अब मोबाइल के लिए ऑप्टिमाइज्ड होने चाहिए। मनोरंजन और क्रिएटिविटी की मांग मनोरंजन का तत्व दर्शक ऐसे विज्ञापन पसंद करते हैं जो न केवल जानकारी दें, बल्कि उन्हें मनोरंजन भी करें। उदाहरण मजेदार वीडियो, म्यूजिक, और क्रिएटिव विजुअल्स।

यादगार और अनूठा ब्रांड्स को ऐसे विज्ञापन बनाने की आवश्यकता है जो दर्शकों के दिमाग में लंबे समय तक बने रहें। रियल-टाइम और त्वरित जानकारी फास्ट डिलीवरी दर्शक त्वरित और सटीक जानकारी चाहते हैं। उदाहरण लाइव विज्ञापन और रियल-टाइम प्रमोशन। 24/7 कनेक्टिविटी विज्ञापन अब हर समय उपलब्ध होने चाहिए, खासकर ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर। सोशल मीडिया का प्रभाव सोशल प्रूफ दर्शक उन ब्रांड्स पर अधिक विश्वास करते हैं जिनके पास सोशल मीडिया पर सकारात्मक समीक्षाएं और फॉलोइंग हो। उदाहरण इन्फ्लुएंसर मार्केटिंग और यूजर जेनरेटेड कंटेंट। वायरल कंटेंट क्रिएटिव और ट्रेंड-सेटिंग विज्ञापन तेजी से वायरल होते हैं, जिससे ब्रांड की पहुंच बढ़ती है। दर्शकों की बदलती अपेक्षाओं ने विज्ञापन उद्योग को अधिक प्रामाणिक, व्यक्तिगत, और इंटरएक्टिव बना दिया है। अब ब्रांड्स को केवल उत्पाद बेचने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उन्हें अपनी कहानी, नैतिकता, और रचनात्मकता के माध्यम से दर्शकों से गहरा संबंध बनाना चाहिए। जो ब्रांड इस बदलाव को अपनाएंगे, वे भविष्य में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रख पाएंगे।

इको-फ्रेंडली और नैचुरल फोटोग्राफी की बढ़ती मांग आज के समय में, जब पर्यावरणीय समस्याएं और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दे गंभीर रूप से उभर रहे हैं, दर्शकों और उपभोक्ताओं के बीच इको-फ्रेंडली और नैचुरल फोटोग्राफी की मांग तेजी से बढ़ रही है। लोग अब ऐसे विज्ञापन और कंटेंट देखना पसंद करते हैं जो पर्यावरण के प्रति जागरूकता को बढ़ावा देते हों और प्राकृतिक सुंदरता को दर्शाते हों। इको-फ्रेंडली फोटोग्राफी का अर्थ है पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव डालते हुए फोटोग्राफी करना। इसमें नैचुरल लाइट का उपयोग, सस्टेनेबल उपकरणों का चयन, और पर्यावरण के अनुकूल एडिटिंग प्रक्रियाएं शामिल हैं। फोटोग्राफरों को चाहिए की वे स्थानीय वनस्पति और जीवों का सम्मान करें, और उनके आवासों में कम से कम हस्तक्षेप करें, जिससे जैव विविधता संरक्षित रह सके।4 नैचुरल फोटोग्राफी में प्राकृतिक स्थलों, तत्वों और प्रकाश का उपयोग किया जाता है, जो दर्शकों को शुद्ध और यथार्थ अनुभव प्रदान करता है। प्राकृतिक प्रकाश का उपयोग आर्टिफिशियल लाइटिंग के बजाय नैचुरल सनलाइट का इस्तेमाल। इससे न केवल ऊर्जा की बचत होती है, बल्कि तस्वीरें भी अधिक वास्तविक और जीवंत लगती हैं।

लो वेस्ट प्रोडक्शन शूट के दौरान कचरे को कम करने पर ध्यान दिया जाता है। पुनरू उपयोग योग्य सामग्रियों और उपकरणों का उपयोग। डिजिटल फोटोग्राफी फिल्म कैमरे के बजाय डिजिटल कैमरे का उपयोग, जिससे रसायनों और कागज की खपत कम होती है। पर्यावरण के अनुकूल लोकेशन चयन शूटिंग के लिए प्राकृतिक स्थलों का चयन, जैसे जंगल, पहाड़, और समुद्र तट। स्थलों की स्वच्छता और पर्यावरणीय संरक्षण का ध्यान। नैचुरल फोटोग्राफी की बढ़ती लोकप्रियता के कारण सच्चाई और प्रामाणिकता दर्शक अब ऐसी तस्वीरें पसंद करते हैं जो वास्तविकता और यथार्थता को दर्शाती हैं। फिल्टर और भारी एडिटिंग से बचा जाता है। इको-फ्रेंडली फोटोग्राफी का उपयोग ब्रांड्स को पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार दिखाने में मदद करता है। सस्टेनेबल ब्रांडिंग

पर्यावरण के अनुकूल दृष्टिकोण अपनाने वाले ब्रांड्स अधिक ग्राहकों को आकर्षित करते हैं। उदाहरण इको-फ्रेंडली कपड़ों की ब्रांडिंग में नैचुरल फोटोग्राफी का उपयोग। भावनात्मक जुड़ाव प्राकृतिक तत्वों और सुंदरता के माध्यम से दर्शकों को गहराई से जोड़ने का प्रयास करता है।

इको-फ्रेंडली और नैचुरल फोटोग्राफी का विज्ञापन पर प्रभाव पर्यावरण के प्रति ब्रांड की छवि मजबूत करना ऐसे विज्ञापन जो प्राकृतिक और टिकाऊ तत्वों का उपयोग करते हैं, दर्शकों के बीच ब्रांड की जिम्मेदारी और भरोसे को बढ़ाते हैं। उदाहरण "दा बॉडी शोप" और "पटअगोनिय" जैसे ब्रांड्स। ऑर्गेनिक और प्राकृतिक उत्पादों की मार्केटिंग प्राकृतिक फोटोग्राफी का उपयोग हर्बल कॉस्मेटिक्स, जैविक खाद्य पदार्थों और पर्यावरणीय उत्पादों के विज्ञापन में होता है। सोशल मीडिया पर लोकप्रियता दर्शक नैचुरल फोटोग्राफी वाले पोस्ट और विज्ञापनों को अधिक पसंद और साझा करते हैं। लॉन्ग-टर्म ब्रांड वैल्यू इको-फ्रेंडली दृष्टिकोण अपनाने वाले ब्रांड्स दीर्घकालिक रूप से दर्शकों के साथ सकारात्मक संबंध बना पाते हैं। कैसे अपनाएं इको-फ्रेंडली और नैचुरल फोटोग्राफी? सस्टेनेबल उपकरणों का उपयोग करें ऊर्जा-कुशल कैमरा और लाइटिंग उपकरण चुनें। डिजिटल एडिटिंग का कम उपयोग करें प्राकृतिक रंगों और प्रकाश को प्राथमिकता दें। स्थानीय और नैचुरल लोकेशन चुनें स्टूडियो सेटअप के बजाय बाहरी प्राकृतिक स्थलों पर फोटोग्राफी करें।

रिसाइक्लेबल सामग्रियों का उपयोग शूटिंग के दौरान न्यूनतम कचरा उत्पन्न करें। केस स्टडी नैचुरल और इको-फ्रेंडली विज्ञापन इकेआ उनके विज्ञापनों में प्राकृतिक स्थलों और नैचुरल फोटोग्राफी का उपयोग किया जाता है। एप्पल "शॉट ऑन आईफोन" अभियान में वास्तविक और प्राकृतिक तस्वीरों को प्राथमिकता दी गई। दा बॉडी शोप ब्रांड की नैचुरल प्रोडक्ट लाइन के लिए प्राकृतिक फोटोग्राफी का उपयोग। इको-फ्रेंडली और नैचुरल फोटोग्राफी केवल एक ट्रेंड नहीं है, बल्कि यह ब्रांड्स की सामाजिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारी का प्रतीक है। यह न केवल पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव डालता है, बल्कि दर्शकों के साथ भावनात्मक जुड़ाव बनाने में भी मदद करता है। आने वाले समय में, यह दृष्टिकोण विज्ञापन की दुनिया में और अधिक प्रमुख होगा।

विज्ञापन की लागत और गुणवत्ता के बीच गहरा संबंध है। बदलते तकनीकी परिदृश्य, उपभोक्ताओं की अपेक्षाओं, और बाजार में प्रतिस्पर्धा ने विज्ञापन उद्योग को अपनी रणनीतियां बदलने पर मजबूर कर दिया है। ब्रांड्स को न केवल उच्च गुणवत्ता वाले विज्ञापन बनाने होते हैं, बल्कि उन्हें यह सुनिश्चित करना होता है कि लागत भी प्रबंधनीय रहे। विज्ञापन की लागत पर प्रभाव डालने वाले कारक उन्नत तकनीक का उपयोग आधुनिक उपकरण जैसे 4के कैमरे, ड्रोन फोटोग्राफी, और वीआरध्एआर तकनीक ने विज्ञापन की गुणवत्ता बढ़ा दी है, लेकिन इनकी लागत अधिक है। उदाहरण एनीमेशन या वी.एफ.एक्स आधारित विज्ञापन बनाना पारंपरिक विज्ञापनों की तुलना में महंगा होता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उदय सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर विज्ञापन डालना पारंपरिक टीवी और प्रिंट विज्ञापनों से किफायती हो सकता है। हालांकि, डिजिटल विज्ञापनों में क्रिएटिविटी और टार्गेटिंग के लिए अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता होती है।

रचनात्मकता उच्च गुणवत्ता वाले विज्ञापन में अनोखा विचार और आकर्षक प्रजेंटेशन होना चाहिए। ब्रांड्स को रचनात्मक विशेषज्ञों और एजेंसियों की मदद लेनी पड़ती है, जिससे लागत बढ़ती है। तकनीकी नवाचार ए.आर, वी.आर, और 3डी मॉडलिंग जैसी तकनीक विज्ञापन को अधिक प्रभावशाली बनाती हैं। उदाहरण इकेअ का ए.आर आधारित विज्ञापन, जहां उपभोक्ता उत्पादों को वर्चुअल रूप से अपने घर में देख सकते हैं। प्रोडक्शन क्वालिटी उच्च-गुणवत्ता वाले उपकरण, सेट डिजाइन, और पोस्ट-प्रोडक्शन एडिटिंग से विज्ञापन अधिक आकर्षक बनते हैं। हालांकि, इससे उत्पादन की लागत भी बढ़ती है। कम समय में तैयार किए गए विज्ञापनों में अक्सर गुणवत्ता से समझौता करना पड़ता है। उच्च गुणवत्ता वाले विज्ञापन के लिए पर्याप्त समय और संसाधन की आवश्यकता होती है।

ग्राहकों की भावनाओं और जरूरतों को ध्यान में रखते हुए तैयार विज्ञापन अधिक प्रभावशाली होते हैं। विज्ञापन में भावनाओं का उपयोग उपभोक्ताओं के साथ गहरे संबंध स्थापित करने और ब्रांड की दीर्घकालिक सफलता सुनिश्चित करने में सहायक होती है।5 इसके लिए ब्रांड रिसर्च, फोकस ग्रुप, और उपभोक्ता डेटा पर खर्च करता है। डिजिटल टूल्स का उपयोग सस्ती और प्रभावशाली एडिटिंग सॉफ्टवेयर जैसे कंवा, दाविंन्सी, रीजाल्व और अडोबी प्रीमियर प्रो ने लागत कम करते हुए गुणवत्ता बनाए रखने में मदद की है। बड़े ब्रांड्स अब छोटे प्रोडक्शन हाउस और फ्रीलांसरों के साथ काम करके गुणवत्ता और लागत के बीच संतुलन बना रहे हैं। एक ही विज्ञापन को छोटे-छोटे हिस्सों में बांटकर अलग-अलग प्लेटफॉर्म्स पर उपयोग करना। उदाहरण टीवी विज्ञापन से क्लिप लेकर सोशल मीडिया पर पोस्ट करना। ए.आई और मशीन लर्निंग ए.आई आधारित टूल्स ने विज्ञापन निर्माण प्रक्रिया को तेज और सटीक बना दिया है, जिससे लागत कम हो रही है।

डिजिटल उपकरणों ने पारंपरिक फिल्म फोटोग्राफी की तुलना में लागत को कम किया है। उच्च लागत और उच्च गुणवत्ता बड़े ब्रांड्स (जैसे नाइकी, एप्पल) उच्च लागत पर प्रीमियम गुणवत्ता वाले विज्ञापन बनाते हैं। यह ब्रांड की प्रतिष्ठा को बढ़ाता है और उपभोक्ता को आकर्षित करता है। छोटे व्यवसाय किफायती विज्ञापन बनाते हैं, लेकिन अब डिजिटल उपकरणों और क्रिएटिविटी के माध्यम से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। उदाहरण सोशल मीडिया इन्फ्लुएंसर्स द्वारा बनाए गए विज्ञापन। आधुनिक तकनीकों, रचनात्मकता, और रणनीतिक दृष्टिकोण के माध्यम से ब्रांड्स इस संतुलन को बनाए रखते हुए अपने लक्षित दर्शकों तक प्रभावी ढंग से पहुंच सकते हैं। लंबे समय तक सफलता के लिए, ब्रांड्स को लागत और गुणवत्ता के बीच सामंजस्य बिठाना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. https://vgmcu.blogspot.com/2016/11/
2. https://www.skaggsmedia.com/blog/photography-in-social-media-marketing
3. https://www.experian.com/marketing/resources/advertising-technology/cansumar-ad-experience
4. https://www.rmcad.edu/blog/eco-photography-captureing-and-canserving-nature
5. https://stevens-tate.com/articles/emotional-advertising

प्राचीन बिहार में सामाजिक और राजनीतिक पुनर्जागरण: एक अवलोकन

मो० परबेज कुरैशी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

यह सत्य है कि बिहार का इतिहास ही भारत का इतिहास प्राचीन काल में माना गया है क्योंकि प्राचीन काल में बिहार के सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन में भारतीय पुनर्जागरण की दिशा को तय किया था। पुनर्जागरण से अभिप्राय यहाँ यह है कि विभिन्न दिशाओं में नये चिंतन का प्रादुर्भाव क्योंकि उन दिनों बिहार से ही चाहे समाज के वर्ग-व्यवस्था का जाति व्यवस्था में परिवर्तित होना, आर्थिक क्षेत्र में केन्द्रीयकृत चिंतन, राजनीतिक में समूहवाद से प्रभुवाद में परिवर्तन, धार्मिक में वैज्ञानिक सोच की जगह अंधविश्वास का समावेश एवं सांस्कृति में सामाजिक बहुलतावादी सोच की जगह व्यक्तिपरक सोच होना आदि। प्राय: देखा गया है कि प्राचीन भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधार का केन्द्र बिहार ही था। चाहे वह पूर्व वैदिक काल का सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था की पराकाष्ठा हो वहीं उत्तर वैदिक काल में बिहार की आर्थि क व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था और सांस्कृतिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हुए और वे परिवर्तन अवैज्ञानिक था। इस परिवर्तन के पीछे मूलत: दो तत्व काम कर रहे थे। एक लोहे का अविष्कार और दूसरा रथ और घोड़े के प्रयोग, इन दोनों ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था को जन्म दिया। क्योंकि उत्पादन में खपत से ज्यादा उत्पादन होना एक ऐसे प्रभुवर्ग का निर्माण किया जिनकी सोच थी कि समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र में विभक्त है।

जैनवाद भी कमोवेश सत्य एवं अहिंसा पर आधारित समाज को स्थापित करने का बल दिया। इसे भी कमोवेश पुनर्जागरण आन्दोलन ही माना गया है। तो यह कह सकते हैं कि आखिर प्राचीन बिहार में वे तत्व विद्यमान थे, जिसने समाज में रहने वाले दीन-दुखियों का चिंता किया और इस प्रभुवर्ग ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ एक नई सोच पैदा की जिसने न केवल बिहार बल्कि भारतवर्ष में भी और बाद के काल में भारत से बाहर कई देशों में इस आन्दोलन को प्रसारित किया तथा विस्तारित किया।

बिहार का आर्यीकरण और राज्य का निर्माण

ऐसी मान्यता है कि भारत में आर्य ईरान से आए एवं पूर्व वैदिक काल (1500 ई. पू. से 1000 ई पू.) में पंजाब हरियाणा के क्षेत्र में बसे। ऋग्वेद के श्लोकों से यह पता चलता है कि बिहार में आर्यो का निवास नहीं था। यहाँ अनार्य बसते थे तथा आर्य उन्हें हेय दृष्टि से देखते थे। ऋग्वेद में कीकट नामक एक प्रदेश की चर्चा मिलती है। जिसका शासक परमांगद था। परवर्ती कृतियों में कहीं-कहीं पर मगध के लिया कीकट का प्रयोग किया गया हैं यर्जु वेद में मगध की चर्चा है और उसे आर्य सभ्यता एवं संस्कृति से अलग माना गया हैं इसमें यहाँ के लोगों को ब्रात्य कहा गया है। अथर्ववेद के एक सूक्त में यह इच्छा व्यक्त की गई है कि ज्वर अंग एवं मगध में जाए। इससे स्पष्ट होता है कि पूर्व वैदिककाल में बिहार आर्य संस्कृति के संपर्क में नहीं था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अथर्ववेद की रचना के दौरान आर्यो ने बिहार के क्षेत्र में प्रवेश किया। संभवत: ब्राह्मण साहित्य एवं आरण्यकों के रचना काल में यहाँ आर्य सभ्यता संस्कृति का प्रचार प्रसार हुआ। कुछ ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों की रचना भी इस में हुई।

ऐसा प्रतीत होता है उत्तर वैदिक काल में आर्यो का प्रसार बिहार सहित समस्त पूर्वी भारत में आरंभ हुआ। इसमें लौह प्रोद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। लोह की जानकारी के बाद उन्होंने उसके औजार बनाए जिससे जंगलों की कटाई आसान हो गई लोहे का उपयोग भारत में 1000 ई. पू. से 800 ई. पू. के मध्य प्रार ंभ हुआ। जिसे श्याम या कृष्ण कहा गया है। लगभग इसी काल में गंगाघाटी में आर्यो का विस्तार हुआ। 800 ई.पू. के आसपास रची गई शतपथ ब्राह्मण में आर्यो द्वारा गंगाघाटी के क्षेत्र को जलाकर और काटकार साफ करने की चर्चा है। शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि कैसे अग्नि भूमि को साफ करते हुए सदानीरा अर्थात आधुनिक गंडक तक पहुंची। इनका पीछा करते हुए आर्य प्रमुख विदेह माधव और पुरोहित गौतम राहुगम भी पहुँचे और अग्निदेव, को सदानीरा पार करने को बाध्य किया। इस प्रकार आधुनिक गंडक से पूरब विदेह तक बिहार प्रदेश की भूमि का आर्यीकरण हुआ।

छठी शताब्दी ई. पूर्व से पूर्व के बिहार के राजनीतिक इतिहास के संबंध में रामायण महाभारत एवं पुराणों से भी जानकारी मिलती हैं। इन ग्रंथों में उत्तर बिहार में विदेह और दक्षिण बिहार में मगध की चर्चा प्रमुख रूप से आती है। ई.पू. छठी शताब्दी में यहाँ चार राज्य थे-

1. विदेह (मिथिला),
2. वैशाली,

3. अंग और
4. मगध।

इन चारों के इतिहास पर नीचे प्रकाश डाला गया है।

1. विदेह मिथिला- विदेह के राजवंश की शुरूआत इच्छवाकू के पुत्र निमी विदेह से मानी जाती है, जो सूर्यवंशी थे। इसी वंश के दूसरे राजा मिथिला जनक विदेह ने मिथिला राज्य की स्थापना की। इसके पश्चात यहाँ के सभी राजाओं के नाम के साथ जनक शब्द जुड़ने लगा। इसी वंश के 25वें राजा सिरध्वज जनक थे। इसी जनक के द्वारा गोद ली गई पुत्री सीता का विवाह अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम के साथ हुआ था। इस वंश के प्रारंभिक खण्ड में कुन 53 राजा हुए थे।

दूसरे दौर में इस वंश में कुल 15 राजा हुए जिसमें जनक वैदेह विद्वानों के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध था।

इस वंश में करल जनक अंतिम राजा थे। छठी शताब्दी के प्रारंम्भ के समय यहाँ राजतंत्र के बदले जनतंत्र आ गया। शक्तिशाली गणराज्यों से घिरे होने के कारण इसके आसपास के राज्यों ने मिलकर एक महासंघ की स्थापना की जो पहले वज्जी संघ और बाद में लिच्छवी संघ के नाम से जाना गया।

इस संघ में शामिल होने के कारण विदेह का अस्तित्व समाप्त हो गया।

2. वैशाली- वैशाली का इतिहास काफी समृद्ध रहा है। सूर्यवंश के संस्थापक इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने ही वैशालिक राजवंश और ''विशाला'' के नाम से विख्यात की स्थापना की थी। लंबे समय तक राजतंत्र रहने के पश्चात् ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी के अंत के आसपास वैशाली का राजतंत्र गणतंत्र में परिवर्तित कर दिया गया। कालान्तर में स्थापित 'बज्जि महासंघ' की राजधानी बनने का गौरव भी वैशाली कोही प्राप्त हुआ।

प्राचीन काल में वैशाली भारत का प्रमुख नगर एवं लिच्छवि की राजधानी थी। जातक ग्रंथों और तिब्बती स्त्रोतों के अनुसार यह नगर तीन भागों में विभक्त था- पहला, जिसमें सोने के बुर्जवाले प्रसादों की प्रधानता थी, दूसरा, जिसमें चाँदी के बुर्ज थे और तीसरा, जिसमें तांबे तथा पीतल के बुर्ज थे। ये विभाग क्रमशः उच्च, मध्य और निम्न श्रेणी के लोगों के थे।

लिच्छवी गणराज्य में 7707 राजा, (वे संभवतः अपने-अपने के अधिकारी थे और उनका संगठन लिच्छवी गणराज्य था) अनेक उपराजा, सेनापति तथा भाण्डारिक थे। लिच्छवी गणराज्य में सभी व्यक्ति खुद को राजा मानता था। विनिस्थ महामात्र व्यावहारिक और सूत्रधार (अष्टुल के अधिकारी) अपराधियों का निर्णय करते थे और तत्पश्चात् सेनापति के पास अपराधी को दण्डार्थ भेज दिया जाता था। वहां से अपराधी उपराजा तथा राजा के पास भेजा जाता था। गौतमबुद्ध ने लिच्छवियों की सुंदर शासन-व्यवस्था की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है। लिच्छवियों पर बुद्ध तथा जैन के उपदेशों का प्रभाव भी पर्याप्त पड़ा और विभिन्न राजकुमारों ने धर्म के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम किया।

3. अंग- अंग नामक राजकुमार ने इस राज्य की स्थापना की थी। मगध राज्य और राजमहल की पहाड़ियों के मध्य स्थित यह राज्य मिथिला से 60 मील दूर था। अंग के सन्दर्भ में कोई ऐसा तथ्य नहीं प्राप्त हुआ है जिससे इसके इतिहास की जानकारी मिल सके। अंग वंश का जो वर्णन पुराणों में किया गया है, उसे भी कुछ विद्वान पूरी तरह विश्वसनीय नहीं मानते हैं। हाँ, यह तथ्य अवश्य मिलता है कि मगध के पुनरूत्थान से सशंकित अंग नरेश दृढ़वर्मन द्वारा अपनी पुत्री का विवाह कौशाम्बी नरेश उदयन के साथ कर देने के बावजूद अंग राज्य की रक्षा नहीं हो सकी। मगध में हर्यक वंश के संस्थापक बिम्बिसार ने अंग राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

4. मगध- मगध राज्य की भौगोलिक स्थिति ने उसके उत्कर्ष में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह प्रदेश गंगा नदी के मैदान के ऊपर और नीचे के भागों में स्थित था, जिससे इसका सामरिक महत्त्व अधिक था। उपजाऊ प्रदेश और गंगा नदी के व्यापार का केन्द्र बिंदु होने के कारण इसका विकास तेजी से हुआ। यहाँ के शासकों ने पहले राजगृह को अपनी राजधानी बनाया बाद में गंगा के तट पर सुरक्षित स्थान देखकर पाटलिपुत्र को यहाँ की राजधानी बनाया गया। ये दोनों ही राजधानी अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बहुत ही सुरक्षित प्रदेश थे। समृद्ध होने के कारण मगध के शासकों को एक विशाल शक्तिशाली सेना रखने में मदद मिली। लेकिन सिर्फ प्राकृतिक साधनों से किसी देश का विकास नहीं होता। उसकी उन्नति वहां के निवासियों की उच्चाकांक्षाओं और भावनाओं पर निर्भर करती है। मगध में भी ऐसा ही हुआ। मगध के राजाओं ने योग्य व्यक्तियों को अपना मंत्री चुना और अच्छा प्रशासन स्थापित किया। मगध के भाट-चारणों ने भी जनता को प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप मगध राज्य तत्कालीन भारत का सबसे शक्ति सम्पन्न राज्य बन गया।

उस समय अंग और मगध राज्य एक-दूसरे को पराजित करने के लिए कूटनीतिज्ञों के प्रयोग से पीछे नहीं रहते थे। चम्पा नदी इन दोनों राज्यों के मध्य थी। कभी मगध अंग कोपराजित करता था तो कभी अंग मगध पर आधिपत्य जमा लेता था। इसी तरह काशी और कोशल राज्य के मध्य सदा संघर्ष चलता रहता था। जिस तरह मगध ने अंग पर कब्जा कर लिया था, उसी प्रकार महाकोशल ने सदा के लिए काशी को कोशल राज्य में मिला लिया था, उसमें मुख्य रूप से कोशल, वत्स, अवंती और मगध के शासकगण सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। सब-के-सब अपने-अपने अस्तित्व को मजबूत करने में लगे हुए थे और अपने-अपने राज्य के नेतृत्व में भार के इतिहास लम्बी अवधि के बाद एक युग का आरंभ हुआ जिसे मगध के उत्कर्ष के नाम से जानते हैं।

मगध को वैदिक साहित्य की दृष्टि से अपवित्र स्थान माना गया है। इसका कारण संभवतः यह था कि आर्यों के सांस्कृतिक प्रभाव से मगध काफी दिनों तक बाहर रहा और मगध के निवासियों को लोग व्रात्य (पतित) कहा करते थे। ये लोग आर्य थे या अनार्य, यह कहना सही नहीं है; परन्तु इतना निश्चित है कि ये लोग वेदसम्मत सभ्यता को नहीं मानते थे। ई. पू. छठी शताब्दी के पूर्व मगध में बार्ह द्रधवंश का शासन था और इसकी राजधानी राजगृह या गिरव्रज में थी। गौतम बुद्ध के दौर में इसी वंश का शासक बिम्बिसार मगध राज्य पर शासन कर रहा था। बृहद्रथ का पुत्र जरासंध शक्तिशाली शासक था। इस कुल की समाप्ति कैसे हुई इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। ई.पू. छठी शताब्दी में हम मगध में हर्यककुल का शासन देखते हैं। बुद्ध के समय इसी वंश का शासक बिम्बिसार मगध में राज्य कर रहा था।

वृहद्रथ वंश- अन्य तीन राजतंत्रों में मगध सबसे शक्तिशाली थी। पुराण हमें मगध के बहुत-से-राज्यों के उत्थान तथा पतन के बारे में बताते हैं। मगध की राजनीतिक सत्ता वृहद्रथ ने स्थापित की। वृहद्रथ वंश का संस्थापक वृहद्रथ माना जाता है। जरासंध ने अपने बाहुबल से विभिन्न छोटे-बड़े राज्यों को जीतकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। पाण्डवों के विरोध के कारण वह इस कार्य में सफल नहीं हो सका और मल्लयुद्ध में भीम द्वरा मारा गया। उसकी मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र वासुदेव मगध की गद्दी पर बैठा। इस वंश का अंतिम राजा निपुंजय था। इस तरह वृहद्रथ वंश का पतन हो गया। उसके

मंत्री पुलिक ने उसकी हत्या करवाकर अपने पुत्र को मगध के सिंहासन पर बैठा दिया। हर्यक वंश-इसका अस्तित्व बहुत कम दिनों तक रहा। भट्टीय नामक एक वीर महात्वाकांक्षी पुलक के पुत्र का वध कराकर अपने पुत्र बिम्बिसार को मगध के सिंहासन पर बैठा दिया। इस समय बिम्बिसार लगभग 543 ईसा पूर्व मगध के सिंहासन पर बैठा था। जिस राजवंश की स्थापना बिम्बिसार ने की उसे हर्यक राजवंश कहा जाता है।

निष्कर्ष

भारत के प्रत्येक राज्य का अपना गौरवशाली और समृद्ध इतिहास रहा है। इसी में शामिल है बिहार, जो कि शक्तिशाली साम्राज्य का केंद्र था।

बौद्ध और जैन साहित्य में इस बात का उल्लेख मिलता है कि 6ठी शताब्दी में भारत में कई छोटे राज्य थे, जिन पर मगध का आधिपत्य था। 500 ई. पू. में सोलह राज्यों और गणराज्यों का उद्‌भव हुआ। इन्हें महाजनपद के नाम से जाना जाता है।

सक्षम साम्राज्यों के संरक्षण में यह हजारों वर्षों तक शिक्षा का सांस्कृतिक केंद्र रहा। शब्द 'बिहार' 'विहार' से बना है, जिसका अर्थ है बौद्ध भिक्षुओं के आराम करने का स्थान। लेकिन, 12वीं सदी के मुस्लिम शासकों ने इस स्थान को शबिहारश कहना शुरु कर दिया था।

संदर्भ

1. कौलेश्वर राय, बिहार का इतिहास, पटना, 2001, पृ. 11-19।
2. राजेश्वर प्रसाद सिंह, बिहार अतीत के झरोखे से, दिल्ली, 1986, पृ. 33।
3. Omalley L S S, *History of Magadh*, Veena Publication, 2005, ISBN 81-89224-01-8
4. Ahmad Qeyamuddin, *Patna Through The Ages: Glimpses of History, Society & Economy*, Commonwealth Publishers,1988
5. *Singh, Upinder (2016), A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century, Pearson PLC, ISBN 978-81-317-1677-9*

धर्मवीर भारती के निबंधों में मानव मूल्य

मनीष कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

धर्मवीर भारती निबंध विधा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से मानवीय मूल्यों की तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है तथा भारतीय समाज को प्रभावित किया है। उनके निबंध संग्रहों में 'ठेले पर हिमालय', 'पश्यंती', 'कहनी - अनकहनी' का अपना-अपना महत्व है।, धर्मवीर भारती ने साहित्य लेखन के साथ-साथ मानव कल्याण सम्बन्धी अनेक आन्दोलनों का नेतृत्व किया है।

धर्मवीर भारती के समय देश के अन्दर सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन ने स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में पहली बार जन-आन्दोलन का रूप लिया तथा द्वितीय विष्वयुद्ध में उलझी हुई-साम्राज्यवादी ताकतों को हिलाकर रख दिया। विष्व युद्ध का समापन भी व्यापक ध्वंश के साथ हुआ। हिरोशिमा, नागासाकी पर परमाणु बम गिराये गये। इस महाविनाशक घटना ने मानव अस्तित्व के सामने कुछ नया सोचने को मजबूर कर दिया। इस घटना ने भी युग चेतना व मानव मूल्यों को प्रभावित किया और इनसे एक नये युग व नये मूल्यों की रचना हुई।

धर्मवीर भारती के निबंधों में समकालीन जीवन एवं युगबोध पर चिंतन है जिसके द्वारा वे जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं इनके निबंधों में अभिव्यक्त तत्कालीन किसी घटना, प्रसंग या किसी समस्या पर इनके विचारों को पढ़कर इनके भीतर का साहित्यकार, जिम्मेदार शिक्षक तथा सजग पत्रकार आदि रूप उभरकर हमारे सामने आते हैं। उनके चिंतन के केन्द्र में सदैव साहित्य, समाज और संस्कृति ही रहे हैं। अपने निबंधों में वे सिर्फ समस्याओं का विवेचन ही नहीं करते अपितु, उन समस्याओं का उचित समाधान भी प्रस्तुत करते हैं तथा इन समस्याओं के निराकरण के लिए बुद्धिजीवियों तथा साहित्यकारों की भूमिका क्या है? यह प्रश्न भी उठाते हैं।

धर्मवीर भारती ने जीवन में व्याप्त विसंगतियों के माध्यम से मानव मूल्यों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। समकालीन इतिहास चक्र की कोई छोटी से छोटी घटना हो या सामान्य से सामान्य समाचार हो मानवीय मूल्यों के निकष पर उसे भी कसा जा सकता है और बहुत कुछ है, जो उसके सन्दर्भ में कहा जा सकता है। भारती का कहना है कि आइखमैन को सजा देना वैसा ही है जैसा अणुबम गिराने वाले जहाज चालक को सजा देना।

"आज एक अणुबम गिराने वाले लड़ाकू जहाज का चालक उतना ही बड़ा नरसंहार कर सकने में समर्थ है जितना कि आइखमैन ने किया। कहा जा सकता है कि आइखमैन एक गलत लक्ष्य के लिए नरसंहार करता था और अणुबम का हमारा सैनिक उड़ाका एक सही लक्ष्य के लिए नरसंहार करने को विवश होगा"[1] व्यक्ति को दण्ड देने से क्या फायदा? सजा तो मानवीय मूल्यों का हनन करने वाली सता की होनी चाहिए। किसी ने भी अपने हाथों में शक्ति आने पर दूसरों के सांस्कृतिक और मानवीय अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया। जरूरत इस बात की है, सबसे पहले हम यह माने कि अपने सिद्धान्त और अपने सांस्कृतिक विकास का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है और जिस जीवन को हम दे नहीं सकते, उसे नष्ट करने का अधिकार किसी भी हालत में हमें नहीं है। धर्मवीर भारती का अभिमत है कि हमारी मध्यकालीन व्यवस्था में लाखों बुराइयाँ थी-धर्माधता, कट्टरता, जातिवाद, रूढ़िपूजा आदि। फिर भी एक अच्छाई थीं जो निभाई जा सके तो अच्छा हो। मुहल्ले-टोले में, गाँव-गिराँव में एक मानवीयता का सूत्र था यथा समय इन्सानियत के नाते दूसरे पर विष्वास करने, दूसरे को सहारा देने, अपने दुश्मन के परिवार में भी कष्ट पड़ने पर जाकर उसे मदद देने की परम्परा थी जो धीरे-धीरे खत्म हो रही है। आज का यही चलन है, इंसानियत के नाम पर सिद्धान्त बनाना मगर इंसानियत से दूर रहना, जिससे समाजिक मूल्यों का हनन हो गया है। नवीनीकरण के नाम पर सांस्कृतिक मूल्य जो प्रासंगिक हैं उन्हें नकारा न जाए। धर्मवीर भारती का मानना है कि नैतिक मूल्यों के पतन के कारण अनेक राजनैतिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

'विचारक का गुस्सा' निबंध में अनशन को 'नैतिक ब्लैकमेल' मानते हुए धर्मवीर भारती का कहना है कि, "आए-दिन अखबारों में समाचार आता है कि आज अमुक पार्टी के नेता ने खाना-पीना छोड़ दिया, कल से अमुक आमरण अनशन घोषित करेगा-पर वे सब तो राजनीतिक दाव-पेंच की बातें होती हैं। अपने देश के सामाजिक जीवन में जहाँ और दस अजूबे देखने में आते हैं उनमें से एक अनशन का राजनीतिक ब्रह्मास्त्र भी है।"[2]

'मानसरोवर, और दिल्ली के हंस', 'हाय हाथी हाय', 'व्यक्ति पूजा के लिए' आदि निबंधों में विभिन्न राजनैतिक तथा भ्रष्टाचार के मुद्दों पर विचार किया गया है।

लेखक हर रचना को एक कुतूहल वर्धक उठान देकर फिर मुख्य विषय पर प्रष्नचिह्न लगाकर अन्त में प्रायः मूल्यों की सम्भावना की खोज करता है।

धर्मवीर भारती परम्परागत मूल्यों के बारे में कहते हैं कि पुराने मूल्य अब मिथ्या लगने लगे हैं। इस प्रकार की श्रद्धा आस्था, करूणा अमानवीय वृळियों को जन्म देती है वे मानवीय गौरव को परिष्कृत करने के बजाए उसे विकलांग बना देती है जैसे श्रद्धा, आस्था, करूणा, दया आदि मूल्य वर्तमान समाज में कम ही नजर आते हैं। धर्मवीर भारती के निबंध 'ठेले पर हिमालय' में हिमालय पर्वत का दृश्य स्मरण करते हुए वहाँ की पहाड़ी, बर्फ, हिम शिखर, हिमालय की शीतलता में मनुष्य के दुख को, पीड़ा को कम करने के लिए ही, ऋषि मुनि यहाँ तपस्या साधना करते हैं। मनुष्य के जीवन को हिमालय के समान ऊंचा उठाने के लिए सदैव प्रयासरत रहते हैं। उनकी तपस्या से हमारे मानव मूल्य बने रहे हैं। धर्मवीर भारती ठेले पर हिमालय' निबंध में कहते हैं कि, "किसी

ऐसे ही क्षण में, ऐसे ही ठेलों पर लदे हिमालय से थिरककर ही तो तुलसी ने नहीं कहा था, "कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगे...।" मैं क्या कभी ऐसे भी रह सकूँगा, वास्तविक हिम-शिखरों की ऊंचाईयों पर? और तब मन में आता है कि फिर हिमालय को किसी के हाथ संदेशा भेज दूं... "नहीं बंधु..... आऊंगा। मैं फिर लौट लौट कर वहीं आऊंगा। उन्हीं ऊँचाइयों पर तो मेरा आवास है। वहीं मन रमता है... मैं करूँ तो क्या करूँ?"[3]

धर्मवीर भारती ने अपने निबंध 'नवलेखन-माध्यम मैं' में अपने बचपन में देखे गए मेले की एक घटना का वर्णन किया है और पद्मा दीदी के विषय में बताया है और संजय के प्रसंग को आधार बनाकर नवलेखन की समस्या को प्रकट किया है। 'एक घृणा: अनेक आयाम' निबंध में अंधायुग काव्य नाटक के चरित्र अश्वथामा के संबंध में चर्चा की है। कैसे अश्वथामा का चरित्र उनके लिए पहेली बना हुआ था तभी एक दिन फादर एक्ट्रांस के एक वाक्य "मैंने कहा था न भारती घृणा प्यार का सबसे गहरा पूर्वाभ्यास है" से उन्हें इस बात का जवाब मिल जाता है।

धर्मवीर भारती के निबंध 'जलौघमग्ना सचराचरा धरा' में धर्मवीर भारती ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विचार व्यक्त करते हुए धर्मवीर भारती स्वीकारते हैं कि जीवन के अंधकारमय क्षण में उनके द्वारा रचित कितने ही वाक्यों ने उन्हें शक्ति दी है तथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में वर्णित किसी से भी नहीं डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं, को ही गुरुमंत्र मानकर उन्हें प्रणाम करते हैं।

'विकासोन्मुख व्यवस्था ह्रासोन्मुख आत्मीयता' में भारती ने व्यक्ति के बीच की नष्ट हो रही आत्मीयता और मूल्य पतन पर चिंता व्यक्त की है। उन्होंने पंडित गोविन्द वल्लभ पंत का उदाहरण प्रस्तुत किया है। पंडित गोविन्द वल्लभ पंत को अपने गाँव के प्रति बड़ी आत्मीयता थी। गाँव के हर एक व्यक्ति का ख्याल उन्हें रहता था। हर एक की समस्या को जानकर वे उनकी मदद करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे 'एक मंत्री होते हुए अपने राष्ट्र के महत्वपूर्ण मामलों के बीच भी उन्होंने अपने गाँव की समस्याओं को कभी अनदेखा नहीं किया। लेकिन आज अपने गाँव, अपने प्रदेश के प्रति यह आत्मीयता देखने को नहीं मिलती। इस परिवर्तन की ओर संकेत करते हुए धर्मवीर भारती ने लिखा है। ''अब वह पीढ़ी धीरे- धीरे बीत रही हैं, जिसकी जड़ें अपने गांव, मुहल्ले में इतनी गहरी थी कि वह सत्ता और ख्याति में चाहे जितना भी ऊंचा उठ जाए पर मानवीय संबंध और आत्मीयता का उत्स कभी खत्म नहीं होता था।"[4] लेकिन यह समस्या केवल राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में यह समस्या देखने को मिलती है। हर क्षेत्र में तो विकास हो रहा है लेकिन मानवीयता, आत्मीयता और हार्दिकता धीरे-धीरे कम होती जा रही है इस सबंध में धर्मवीर भारती का कथन है "राजनीति हो, पत्रकारिता हो, साहित्य हो, व्यवसाय हो, उद्योग हो, आपको पहले से ज्यादा चमक-दमक मिलेगी, पहले से ज्यादा सजाव-सिंगार मिलेगा, पहले से ज्यादा हलचल और जागरूकता मिलेगी मगर आत्मीयता का कण खोजिए, एक जिंदादिल इंसान खोजिए, मानवीयता का वातावरण खोजिए तो आपको निराश होना पड़ेगा"[5]

धर्मवीर भारती का मानना था कि इंसानी रिश्तों की आत्मीयता राष्ट्रनिर्माण की नींव है अगर यह नींव दिनों दिन खोखली होती गयी तो हम मजबूत राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। धन की कमी को उधार मांगकर पूरा किया जा सकता है लेकिन मानवीयता जो हजारों वर्षों की परम्परा की देन है उसे किसी दूसरे से उधार नहीं मांग सकते।

धर्मवीर भारती ने 'काबा और दरवेश' की कथा के द्वारा इस तथ्य को प्रकट किया है कि इस देश की जनता का अंतर्मन संतो ने बनाया, उन्होंने हमेशा आदमी के मन की सच्चाई का आदर किया, उन्होंने कभी भी संप्रदाय, भाषा, सूबा, जाति-पाति, वेशभूषा आदि का भेद नहीं माना। वे मानवमात्र की एकता में विश्वास करते थे। लेकिन आज कुछ राजनेता अपने स्वार्थ के लिए संत परंपरा को भूलकर देश, सम्प्रदाय, सूबा, भाषा, जाति आदि के नाम पर भेदभाव की दीवारें खड़ी कर रहे हैं। किंतु भारती जी को विश्वास था कि अगर दिवार खड़ी भी कर दी जाए तो दिल की आवाज उस दीवार को कायम नहीं रहने देगी। धर्मवीर भारती ने अपने निबंध 'एक छोटी खबर एक बड़ा संदर्भ' में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि आये दिन अखबार दंगा, खून, डाका, बलात्कार, विद्रोह, जासूसी समाचार, राजनैतिक खबरों से भरा होता है। किंतु मानवता से भरी, जीवन के लिए प्रेरणादायी खबरों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। जबकि ऐसी ही खबरें हमें जीने का अर्थ देती हैं। हमारे मन में रस और प्रेरणा का संचार करती हैं। ऐसी ही एक मानवतापूर्ण खबर का जिक्र धर्मवीर भारती ने यहाँ पर किया है। गोंडा नामक एक छोटे से कस्बे के एक वकील ने भिखमंगे बच्चे को भीख देने के बजाय बूट पॉलिश का सामान देकर उसे स्वाभिमान से जीने की प्रेरणा दी। उसके बाद उस बच्चे ने उस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उस कस्बे के छह बच्चों को बूट पॉलिश का समान खरीद कर दे दिया और वे बच्चे भी उस लड़के की तरह भीख मांगना छोडकर मेहनत की कमाई से जीने लगे। उस वकील की हमदर्दी पूर्ण इस छोटी सी पहल ने उन सात बच्चों को स्वाभिमान पूर्ण जीवन जीने की राह दिखाई थी। धर्मवीर भारती का मानना था कि "मानवीयता से भरी उस नितांत साधारण सामान्य व्यक्ति की वह ईमानदार हमदर्दी ऐसी बड़ी मगर खामोश क्रांति हमारे जीवन में कर जाती हैं, जिसकी तुलना में नेताओं के गरमा-गरम भाषण हास्यास्पद खोखले और मिथ्या लगते हैं।"[6]

धर्मवीर भारती ने अपने निबंध संग्रह 'ठेले पर हिमालय', 'पश्यंती', 'कहनी अनकहनी' आदि के माध्यम से मानवीय मूल्यों को समाज तक पहुंचाने का कार्य किया है। धर्मवीर भारती के निबंधों में व्याप्त संवेदनशीलता, रागात्मकता, मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठा, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं के प्रति सजगता उनकी पहचान है। युगीन समस्याओं के प्रति भारती जी सदैव सजग रहे हैं। यह उनके लेखन में सर्वत्र प्रतिभासित होता है।

संदर्भ-

1. चन्द्रकांत बांदिवडेकर-धर्मवीर भारती ग्रंथावली-भाग-4, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली 1998 पृ.स. 228
2. चन्द्रकांत बांदिवडेकर-धर्मवीर भारती ग्रंथावली-भाग-4, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली 1998 पृ.स. 172
3. चन्द्रकांत बांदिवडेकर-धर्मवीर भारती ग्रंथावली-भाग-4, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली 1998 पृ.स. 18
4. चन्द्रकांत बांदिवडेकर-धर्मवीर भारती ग्रंथावली-भाग-4, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली 1998 पृ.स. 193
5. चन्द्रकांत बांदिवडेकर-धर्मवीर भारती ग्रंथावली-भाग-4, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली 1998 पृ.स. 194
6. चन्द्रकांत बांदिवडेकर-धर्मवीर भारती ग्रंथावली-भाग-4, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली 1998 पृ.स. 238

संगीत शिक्षण में विभिन्न आयामों की भूमिका

डॉ० सौरभ वर्मा

सहायक प्रोफेसर, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सार संक्षेप

भारत के प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है कि 'गानात् परतरं न ही' अर्थात् संगीत से अधिक कुछ भी नहीं है। संसार का सर्जनहार संगीत को माना जाता है। समस्त पीड़ाओं को समाप्त करने तथा जड़चेतन को हरा-भरा करने की सर्वाधिक क्षमता संगीत विद्या में विद्यमान होती है। सृष्टि का कोई जीव, स्थान, प्रकृति आदि नहीं जिसमें संगीत की उपस्थिति न ही हो। संगीत केवल मनुष्य ही नही अपितु पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि सभी के जीवन का आधार है। बिना संगीत के यह जीवन मृत पशु के समान है। देव-दानव, यक्ष-गांधर्व, से लेकर सूक्ष्म अतिसूक्ष्म जीवों के जीवन में भी संगीत का प्राबल्य रहा है। शिव का डमरू, नारद का इकतारा, विद्या की अधिष्ठात्रि, माँ शारदे की वीणा, भगवान श्री कृष्ण की बांसुरी, भरत मुनि की वीणा, अकबर का नगाड़ा तथा स्वामी हरिदास एवं तानसेन का मधुर गायन सदैव संगीत की उपासकता एवं सेवा में तत्पर रहे हैं। संगीत की अति पाक, पवित्त एवं ललित कलाओं में स्वोपरि इस विद्या को प्राचीन काल से ही शिक्षण का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण विषय माना गया है। आरम्भिक देवी देवताओं से राजा महाराजाओं की संतानों की भी पूर्ण शिक्षित तभी माना जाता था जब उन्हें संगीत कला में निपुणता प्राप्त हो जाती थी। प्राचीन-काल से आधुनिक काल तक के विभिन्न आयाम संगीत शिक्षण या माध्यम रहे हैं जिसके माध्यम से संगीत विद्या को प्रदान करने एवं प्रचारित प्रसारित करने में महत्वता प्राप्त हुई। संगीत शिक्षण के प्रमुख एवं प्रचलित आयाम निम्मलिखित है -

गुरु शिष्य परम्परा, गुरूकुल व्यवस्था, घराना परम्परा, विद्यालय-महाविद्याल एवं विश्वविद्यालयी व्यवस्था, विभागीय व्यवस्था आदि। इनके अतिरिक्त वर्तमान समय में संगीत शिक्षण के नये आयामों का भी तिराभाव हुआ है जैसे म्युजिक, वर्कशॉप, यूट्यूब-चौनल, अकादमियों, ऑन लाइन म्यूजिक स्कूलस, मिडिया, ई-बुक, जर्नल, बुक, नई राष्ट्रीय शिक्षा निति आदि।

विश्लेषण या शोध विस्तार

ललित कलाओं में संवोपरि एवं सर्वभौमिक कला 'संगीत' इस ब्रह्माण्ड की सबसे अनमोल विद्या अथवा कला है, जिसे सीखना एवं सिखाना किसी देव दर्शन से कम नहीं है। इसके सर्दर्भ में एडिसन का लोक कथन है कि ''इस पृथ्वी लोक पर स्वर्ग लोक से मिली हुई कोई चीज है तो वह संगीत है।''[1] जिसका शिक्षण करना प्रत्येक मनुष्य के लिए हितकारी है। संगीत मूर्ख से विद्वान तथा कुशाग्र बुद्धि का विकास करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विद्या मानी गई है। यही कारण है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों, ब्रह्मा, शिव, भरतमुनि व सारंगदेव जैसे प्रकान्ड विद्वानों ने भी इस विद्या का पठन-पाठन किया है। इस कला के संदर्भ में उस्ताद फैय्याज खाँ कि एक कथनी है कि ''संगीत से मनुष्य की उर्ध्वगामी प्रवृतियों के बल मिलता है और जब सच्चा स्वर लगता है तो खुदा की झलक दिखाई देती है।''[2]

संगीत शिक्षा को प्रदान करने के माध्यम तो अनेक है परन्तु उनके उद्देश्य एवं लक्ष्य समान ही हैं। संगीत शिक्षण का मूल उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना है। यही कारण है कि इसमें प्रारम्भ से ही बालक के सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, संज्ञानात्मक, बौद्धिक तथा सौदर्य आदि विभिन्न गुणों के विकास पर बल दिया जाता है। संगीत शिक्षण के माध्यम से ही बच्चों में दया, प्रेम, राष्ट्रीयता, भक्ति, सत्य, धर्म, तथा मानवीय मूल्यों को उजागर किया जाता है। संगीत कला का शिक्षण केवल एक संगीत विषय ही नहीं अपितु पढ़ाए जाने वाले अन्य से निहित है। संगीत शिक्षण के द्वारा एक व्यक्ति संस्कृति व राष्ट्र के प्रति अपनी सच्ची श्रृद्धा एवं भाव व्यक्त करता है।[3]

संगीत शिक्षण विभिन्न आयाम तथा उनकी भूमिका

1. गुरु शिष्य परम्परा आयाम

जब एक उत्कृष्ट संगीतज्ञ संगीत की सभी विधि-विधानों को ढंग से ग्रहण करके उसी विधि-विधान या शैली से अपने शिष्यों को संगीत सिखाता है तो वह परम्परा 'गुरु-शिष्य परम्परा' के नाम से सम्बोधित होती है। इसमे शिष्य एवं गुरु आमने सामने बैठकर संगीत शिक्षा को देते एवं लेते हैं। प्राचीन काल में यही परम्परा होती थी जिसमें शिष्य अपने गुरु को ही सर्वस्व मानकर उसके आदेशों का पालन करता था। यह विधि या आयाम बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है, जिसने हमारे संगीत जगत के अनेकों पुरोद्धाओ का तिरोभाव किया जिसके फलस्वरूप (नारदमुनि, भरतमुनि, शारंगदेव, आचार्य बृहस्पति, पं० भातखण्डे आदि) आज हम संगीत शिक्षण ग्रहण कर पा रहे है।

2. गुरुकुल व्यवस्था आयाम

मध्यकाल एवं उसके समकक्ष विभिन्न शैक्षणिक आयामों में गुरुकुल व्यवस्था अति महत्वपूर्ण समझी जाती थी। गुरुकुल जैसे विद्यार्थियों को कौशल विद्याओं जैसे धर्नुविद्या, शास्त्र विद्या, घुड़स्वारी के साथ-साथ संगीत की कला का भी शिक्षण दिया जाता था। इस काल में जिस व्यक्ति के पास संगीत का ज्ञान नहीं होता था, उसे विवाह या किसी पद के योग्य नही माना जाता था। अर्जुन जैसे योद्धाओं ने भी इस संगीत विद्या का शिक्षण ग्रहण कर उसे बृहन्नला जैसी नृतिकाओं को शिक्षण प्रदान किया था। अत: उक्त समय गुरुकुल में अन्य विषयों के साथ-साथ संगीत शिक्षण का विशेष प्रबंध था। उपरोक्त इन दोनों आयामों में विशेषत, साम गान, उदात-अनुदात एवं वैदिक संगीत की शिक्षा दी जाती थी।

3. घराना परम्परा आयाम

प्राचीन काल के अन्त एवं मध्यकाल के प्रारम्भ में जिसे पूर्व मध्यकाल कहा गया। उसे हर्षवर्धन के पश्चात का यवन काल भी कहते हैं। इसी समय सम्पूर्ण भारत छोटे विभाजनों में विभस्त था तथा ये स्वतंत्र खन्ड व रियासते आपस में युद्ध के लिए तैयार रहते थे। ऐसी स्थिति में संगीतज्ञ भी अलग-अलग समुहों में बंटे हुए थे। सभी अपनी-अपनी समझ एवं ज्ञान दृष्टिकोण से संगीत का प्रचार-प्रसार करने लगे। फलस्वरूप संगीत अत्यधिक विकसित हो गया जिन्हें आगे चलकर 'घराना' के नाम से जाना जाने लगा। घराना आयाम में शिष्यों की शिक्षण या तालीम तो बेहद उम्दा थी परन्तु उस्ताद अपने सगे सम्बंधियों वंशजों, कुछ करीबी रिश्तेदारो या मुख्य शिष्यों की ही शिक्षा देते थे परन्तु फिर भी संगीत शिक्षण में अत्यधिक बदलाव आया। इन घरानो एवं ''घराना शिक्षण'' के माध्यम उस समय की राजनैतिक दशाओं और आपा-धापी के वातावरण में भी संगीत शिक्षण धरोहर को सुरक्षित रखा जा सका ये प्रतिफल है घरानेदार उस्तादों एवं गुरुजनों का। उन्ही के सफल प्रयासों एवं नव नित घरानो के कारण आज संगीत हमारे समक्ष विविध रूप में प्रवाहित हो रहा है जैसे दिल्ली घराना, ग्वालियर, पंजाब घराना, अजराड़ा घराना, लखनऊ घराना, किराना घराना, रामपुर सहसवान घराना आदि।

4. विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय शिक्षण आयाम

19वीं शताब्दी भारत ही नहीं अन्य कई देशों के संगीत के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अनेक भारतीय संगीत, संगीत मर्मज्ञ एवं प्रकांड विद्वान आए जिन्होंने संगीत विषय को विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के संकायों में पूर्ण रूप से स्वतंत्र संकायों में स्थापित कर दिया। इनके कर कमलों से ही संगीत के विशेषकर महाविद्यालय, विद्यालय एवं विश्वविद्यालय भी खोले गए जिनमें केवल संगीत कला से सम्बधित शिक्षण का प्रावधान किया गया। 19वीं सदी की डगमगाती नौका को अपना मार्गदर्शन देकर पं० विष्णु दिगम्बर प्लुष्कर ने समस्त संगीत शिक्षण जगत पर, उपकार किया। उन्होंने 1815 में मिरज के 'बाल कृष्ण बुआ इंचलकर जीकर' से संगीत शिक्षा ग्रहन करके नेत्रहीन होते हुए भी भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाकर संगीत शिक्षा प्रचार-प्रसार किया। इन्होंने उस समय घरानों में प्रचलित श्रृगारिक, बे-ढंगे व अश्लील शब्दों व बंदिशों को हटाकर उन्हें भक्ति रस का अमलीजामा पहनाया जिससे संगीत शिक्षण व्यवस्था का विकास उभर उभर कर आया। इन्होंने 1901 में लाहोर में संगीत शिक्षण हेतु गंधर्व महाविधालय की स्थापना की। इसके पश्चात् 1908 मे मुम्बई में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। इससे अनेक विद्यार्थी एवं अध्यापकगण लाभान्वित हुए। इन महाविद्यालयों में संगीत शिक्षक को 'उपदेशक' की संज्ञा प्राप्त हुई 8 वर्ष वर्ष के पाठ्यक्रम को दो वर्गों में विभाजित किया। प्रथम चार वर्ष (संगीत प्रवेशिका) तथा दूसरा (संगीत प्रवीनण) कहलाया था। पं० जी के द्वारा इन महाविद्यालयों में चलाई गई संगीत पद्धति आज देशभर के सभी शिक्षम संस्थानों में व्यवहत है।

इन्ही गंधर्व महाविद्यालयो की अनेक शाखाएँ तथा केन्द्र पूना नागपुर, आदि अनेक शहरों में की गई। 1931 दिसम्बर में अखिल भारतीय की स्थापना 'गंधर्व महाविद्यालय मण्डल' की स्थापना पं० नारायण मारेखखरे, और पं० शंकर राव व्यास के दिशा निर्देशन में की गई जिसका संचालन पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पं० वामनराव, प्रोफसर देवधर आदि वि० दि० प्लुष्कर के अनेक शिष्यों ने किया।

इनके अतिरिक्त अनेक शिक्षण केन्द्र, विभागों विद्यालय, संस्थाओं जैसे - अलि अकबर कॉलेज ऑफ म्युजिक-कोलकाता, भारतखन्डे संगीत महाविद्यालय-जबलपुर, शांतिनिकेतन महाविद्यालय - बंगाल, वनस्थली विद्यापीठ - वनस्थली, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय - मध्य प्रदेश (खैरागढ़), सयाजीराव म्यूजिक कॉलेज - बड़ोदरा, भातखन्डे संगीत महाविद्यालय - लखनऊ, प्रयाग संगीत समीति -इलाहाबाद, प्राचीन कला केन्द्र - चंड़ीगढ, गर्धव महाविद्यालय - दिल्ली, रविन्द्र भारतीय विश्वविद्यालय - कोलकाता, आई. टी. सी रिसर्च आकादमी - कोलकाता तथा अनेक राज्यों के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों में स्थापित संगीत विभाग। संगीत शिक्षण के क्षेत्र में उपरोक्त इन सभी आयामों की महत्वपूर्ण भूमिका है।[4]

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

इस नीति को 29 जुलाई 2020 को केन्द्र सरकार द्वारा सहमति दी गई थी। इसे 1986 की शिक्षा निति जिसे राजीव गांधी द्वारा संचालित किया था तथा जी बाद में 1992 में पुन: संसाधित की गई थी के रूपान्तरण में ही प्रस्तुत किया गया था। इसके निर्माण कमेटी के चेयमेन इसरो के सेवानिवृत अध्यक्ष श्री कृष्ण स्वामी कस्तूरी रंजन थे।

इस नीति द्वारा 2080 प्री विद्यालय से माध्यामिक विद्यालय स्तर तक दाखिला अनुपात 100% प्राप्त करना है। तथा उन दो करोड़ बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में साम्मिलित करना है। जो किसी कारण वश पढ़ाई छोड़ चुके हैं। इस निति ने व्यवसायिक शिक्षा, शिक्षके की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम ढाचाँ 2021 (NCERT) को लागू किया है। 2030 तक शिक्षक बनने हेतु कम से योग्यता 4 वर्षीय (Intergrated) एकीकृत बी. एड. डीग्री को लागू किया है जिनमे संगीत विषय के भी मुल्य विषयों में भी स्थान मिला है। अर्थात् वी० एड० कॉलेज आदि संस्थाओं में भी अपने संगीत विद्यार्थी मुख्य विषय से ठण्म्क करने में समर्थ होगे।

इस राष्ट्रीय शिक्षा निति के माध्यम से ही नियुक्ति हुई है तथा निरन्तर विद्यार्थियों को संगीत शिक्षण दिया जा रहा है।

6. यू-ट्यूब, फेसबुक, ऑनलाईन, गुगल मीट्स, एकेडमिक, चौनलों के द्वारा नए आयाम

संगीत शिक्षण के प्रचार-प्रसार में वर्तमान मे एक नया मोड़ या स्वरूप सामने आ रहा जिसमे विभिन्न कोचिंग सेंटर, संस्थाएँ, केन्द्र एवं अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्म नेटवर्क (ऑन लाइन) के माध्यम से संगीत शिक्षण प्रदान कर रहे हैं जिनके विद्यार्थियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस श्रेणी में कुछ उच्च-कोटी के कलाकार भी सम्मलित हैं जिन्हें कभी सुन पाना ही, सौभाग्य की बात समझा जाता था ऐसे कलाकार आन लाइन के जरिए देश विदेशों में भी संगीत शिक्षण प्रचार-प्रसार कर रहे है। विभिन्न वाद्यों के तथा भिन्न-भिन्न शैलियों के नृतक एवं गायकों अलग-अलग ऑन लाइन प्लेटफोर्म के माध्यम से संगीत शिक्षण प्रदान कर रहे हैं। संगीत शिक्षण में सहायक इन सभी प्लेटफोर्मस की सूची निम्नलित है।

(i) शंकर महादेवन एकेडमी

(ii) Annenbery Learne - हाई स्कूल के बच्चों के साथ-साथ अध्यापको के लिए भी उपयोगी है।

(iii) British Broadcasting Corporation (BBC) - यह आयाम विद्यार्थियों के लिए बैठने की सही मुद्रा, श्वसन क्रिया, व साऊ उच्चारन पर बल देता है।

(iv) Emory University - यह कोर्स 23 लैसन्स प्रदान करता है की जो चेण्क ौबीवसंत कटनी ब्राउन ने तैयार किया है। इसमें देशभक्ति, आदलनीय गीत पर बल दिया गया है।

(v) The World Music Foundation - यह गैर लाभकारी संगठन है जो 9 देशों के शहरी एवं ग्रामिण युवाओं को वैश्विक स्तर पर ऑन लाइन संगीत की शिक्षा प्रदान करता है।

(vi) संगीत नाटक अकादमी - यह संस्था विश्वस्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों, वर्कशॉप आदि के माध्यम विद्यमियों के लाभान्वित करती है तथा विभिन्न प्रकार के संगीत कोर्स भी करवाकर उन्हें योग्यता प्रदान करती हैं।

(vii) आकाशवाणी एवं दूर्दशन - ये दोनो केन्द्र देश के विभिन्न स्थानों से संगीत जगत के बड़े प्लेटफार्म माने जाते हैं जहाँ विद्यार्थी को सम्मान एवं उसकी राशि भी प्रदान की जाती है। इन केन्द्रो के माध्यम से विभिन्न संगीतकारों के साक्षात्कार, बन्दिशें, एवं अन्य गायन शैलियों का प्रचारण प्रसारण संगीत शिक्षण में अति लाभकारी है।

(viii) यू-ट्यूब, फेसबुक, इन्साग्राम आयाम - वर्तमान काल की संगीत पीढी के विद्यार्थी उपरोक्त चौनलस के माध्यम से भी संगीत शिक्षण गृहण कर रहे हैं, यूय्यूब के माध्यम से विद्यार्थी घर बैठे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित कलाकारों से अपनी रूची के अनुसार संगीत शिक्षा गृहण कर रहे हैं।

निष्कर्ष या उपसंहार

उपरोक्त समस्त शोध-पत्र के शोध कार्य से प्राप्त होता है कि संगीत विद्या को प्रचारित प्रसारित करने तथा उसकी शिक्षण व्यवस्था हेतु विभिन्न आयाम या रास्ते हैं जिन्हें माध्यम भी कहा जा सकता है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक यह कला शिक्षण व्यवस्था के माध्यम से निरन्तर प्रसारित हो रही हैं। इस प्रसारण में सर्वाधिक योगदान उपरोक्त वर्णित सभी आयामो का है जिनके फलस्वरूप संगीत शिक्षण आज स्वतंत्र शिक्षण व्यवस्था तक पहुंच पाया है। अत: संगीत शिक्षण के इन सभी आयामों का योगदान अथवा भूमिका कभी भुलाई नहीं जा सकती।

सदर्भ ग्रंथ सूचि

1. संगीत शिक्षण शास्त्र, डॉ० मन्जू जैन विजय पब्लिकेशन, बुकमार्केट, लुधियाना - 141008
2. भारतीय संगीत एवं संस्कृति, डॉ० गीता शर्मा 'पाठक' डॉ० चन्द्रपाल पुनिया, आर्यन पब्लिकेशन, 110 गली नं० - 4, हरफुल विहार, व्यापरौला, नई दिल्ली - 110043, प्रथम संस्करण - 2021
3. संगीत शिक्षण - डॉ० के० सी० अग्रवाल श्री विनोद मुस्तक मंदिर प्रकाशन, आगरा (50 प्र०) 282003, प्रथम संस्करण - 2020
4. भारतीय संगीत में अनुसंधान की समस्याएँ - डॉ० वंदना शर्मा संजय प्रकाशन, 4378/4 बी 209, जे० एम० डी० हाऊस, गली मुरारीलाल, अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, प्रथम संस्करण - 2017

औपनिवेशिककाल में राष्ट्रीयता की भावना: विशेष संदर्भ 'सोजेवतन'

प्रीति सिंह

शोधार्थी (हिन्दी विभाग), झारखंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, (रांची)

शोध सार - मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ उसका भविष्य निर्धारित करती हैं, जिस दिशा में मनुष्य का चरित्र, उसका जीवन, उसकी संस्कृति, उसका अपने देश के प्रति प्रेम प्रभावित होगा, उसी दिशा में ये प्रतिक्रियाएं भी होंगी। इतिहास के पन्नों को पलटकर देखने से इन सभी परिस्थितियों का भान हमे बखूबी होता है। मानव जीवन और उसका संघर्ष हमेशा एक दूसरे के पूरक रहे हैं। चाहे वह हजार साल पहले अपना जीवन यापन करता हो, चाहे आज विश्वस्तर पर अपने आपको प्रतिष्ठित करना हो, परंतु उसका संघर्ष उसके जीवन में निरंतर विद्यमान ही रहा है, बस संघर्ष की रूपरेखा व उससे लड़ने के तरीके बदल जाते है। कहते है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है अर्थात् समाज में जो-जो घटित होता है, उसे विस्तृत रूप देने का कार्य साहित्य ही करता है। साहित्य समाज की विभिन्न स्थितियों को दिखाने के साथ-साथ एक और कार्य भी करता है जो किसी भी समाज के लिए अत्यावश्यक है और वह है मार्गदर्शन का। साहित्य अपनी कुशल अभिव्यक्तियों से सम्पूर्ण समाज का प्रेरणास्त्रोत भी होता है। जब भारत परबाहरी देशों का आधिपत्यहुआ और उनकी कूनीतियों से सम्पूर्ण समाज त्रस्त हो उठा, जब भारतीयों का मनोबल गिरने लगा एवं पूरा जीवन अंधकारमय प्रतीत होने लगा, तब हमारे साहित्यकार ही उस समाज में एक रोशनी के किरण का कार्य किए, चाहे भक्तिकाल में सूर, कबीर, तुलसी हो,चाहे आधुनिक काल के भारतेन्दु इत्यादि रचनाकार।जहां तुलसी इत्यादि रचनाकारों ने भक्तिमार्ग को चुना तो भारतेन्दु इत्यादि रचनाकारों ने व्यंग, प्रहसन। परंतु इनका उद्देश्य भारतीयों के हृदय में अपने देश, अपनी संस्कृति, अपनी दुर्दशा की ओर ध्यान केंद्रित कर उसके विरुद्ध आवाज उठाना ही रहा। सम्पूर्ण भारत में विभिन्न भाषाओं के रचनाकार औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध लिख रहे थे और परिणाम स्वरूप उनकी रचनाओं को प्रतिबंधित कर दिया जाता था, इन्ही कुनीतियों के शिकार उग्र,प्रेमचंद इत्यादि रचनाकार भी हुए। 'प्रेमचंद' की कहानी संग्रह 'सोजेवतन' देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत है और इस कहानी संग्रह में अपने देश के प्रति प्रेम और सम्मान की भावना को दिखाने का कार्य प्रेमचंद ने किया है। प्रेमचंद की सोजेवतनमें देश प्रेम को किस रूप में दिखाया गया है उसी का वर्णन इस शोध आलेख में किया जा रहा है।

बीज शब्द: राष्ट्र, प्रेरणा, प्रतिबंधित, शासन, वर्चस्व, भारतीय, दमन, समाज, देशप्रेम, औपनिवेशिक

मूल आलेख: सर्वप्रथम हम राष्ट्रीयता की बात करते है, कि यह किस रूप में भारत को व्याख्यायित करता है। भारत में विभिन्न जाति, धर्म के लोग रहते है, उनकी बोल-चाल, वेशभूषा इत्यादि अलग है परंतु इतनी विविधताओं के बाद भी ये लोग एक दूसरे से आत्मीय रूप से जुड़े हुए हैं। भारतीय राष्ट्रीयता में स्व-रक्षा का भावविधमान है और यही भाव औपनिवेशिक काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक दूसरे के करीब लाने का कार्य करती है। इस संदर्भ में 'डॉ नगेन्द्र' का कथन है, "राष्ट्रीयता का जो सबसे स्थूल रूप है वह है विदेशी शासन के अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण। यह क्रिया बहुत स्थूल रूप में भी हो सकती है और बहुत सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट रूप में भी"[1] यही भावना हमे प्रेमचंदकी कहानी संग्रह 'सोजेवतन' में देखने को मिलती है, जहां वो भारतीय जनता को प्रेरित करने, उन्हें उत्साहित करने, उनके हृदय में देश के प्रति प्रेम व बलिदान की भावना जगाने के उद्देश्य से अपने कहानी के नायकों द्वारा देश प्रेम का संदेश देते हैं। इस कहानी संग्रह में विभिन्न कहानियाँ है जो देश पर बलिदान हो जाने, उसके लिए सर्वस्व लुटाने की प्रेरणा देती हैं और यही कारण है कि उनकी रचना को प्रतिबंधित कर दिया गया। हिन्दी साहित्य में बहुत से ऐसे रचनाकार हुए जिनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वर गूंज उठते और अंग्रेजी सरकार उसे प्रतिबंधित कर उन साहित्यकारों की भावनाओं को आमजन तक पहुँचने से पहले ही रोक देती। इस संदर्भ में 'मैनेजर पांडेय' ने भी लिखा है, "साम्राज्यवादी शक्तियां अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए उन गतिविधियों का दमन करना चाहती है जो गुलामों में स्वतंत्रता की चेतना भरती है। साहित्य में जब-जब चेतना जाग्रत करने की प्रेरणा दिखाई देती उसे प्रतिबंधित कर दिया जाता"।[2] इस प्रकार से देखा जाए तो भारतीयों को विभिन्न प्रकार से रोकने का कार्य अंग्रेजी सरकार द्वारा किया जाता था।अंग्रेजी सरकार किसी भी रचना को छापने और न छापने के विभिन्न नियम बनाए हुए थी जैसे किसी भी साहित्य में रूसी क्रांति का वर्णन नहीं होना चाहिए, 1857 के विद्रोह का वर्णन न हो, तत्कालिन सरकार के खिलाफलिखा नहीं होना चाहिए और मातृभाषा में भी नहीं लिखना है इत्यादि। अंग्रेजी सरकार का सबसे बड़ा डर मातृभाषा में रचना ही थी क्योंकि यह प्रत्येक लोगों से आसानी से तादात्म्य स्थापित कर सकती थी। इस संदर्भ में 'मैनेजर पांडेय' लिखते हैं, "विडंबना यही है, स्वाधीनता आंदोलन के दौरान क्रांतिकारी साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा लोक साहित्य से जुड़ा हुआ है और लोक साहित्य अपने देश की सभी भाषाओं में मौजूद है"।[3]

साहित्य और समाज का घनिष्ट संबंध है, यह एक दूसरे के साथी भी है, प्रेरणास्त्रोत भी है, और एक दूसरे के पूरक भी है। भारतीय समाज अपनी दासता को हमेशा से ही अपने अतीत के साथ जोड़ कर देखता था, यदि उसके द्वारा कुछ गलतियाँ नहीं हुई होती तो शायद वह कभी गुलाम नहीं हुआ होता। भारत की गुलामी के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारण मुख्य रूप से लक्षित होते है। अंग्रेज जब भारत आए और अपनी कुनीतियों द्वारा भारतीय समाज पर विभिन्न प्रकार से अंकुश लगाने लगे तो वह दबता चला गया। अपनी गौरवगाथा को मात्र अपनी स्मृतियों तक ही सीमित कर दिया, उनमे न तो औपनिवेशिक

शासन के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत थी और न कोइ प्रेरणास्त्रोत। अत: धीरे-धीरे अपना सर्वस्व खोकर भारतवर्ष मात्र गुलाम देश बनकर रह गया, परंतु कहते है न कि विष का तोड़ विष ही होता है। मनुष्य के बंधन में ही उसकी मुक्ति का मार्ग विद्धमान होता है, बशर्ते उस मनुष्य को उस मार्ग का भान हो। इस संदर्भ में 'राजीव अहीर' लिखते हैं, "अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को गुलाम समझा जाता था समाज में अंग्रेजों के प्रति उपेक्षा की भावना बहुत अधिक बढ़ गई थी, क्योंकि उनके रहन-सहन अन्य व्यवहार एवं उधोग-आविष्कार से भारतीय व्यक्तियों की सामाजिक मान्यताओं में अंतर पड़ता था। अपने सामाजिक जीवन में वे अंग्रेजों का प्रभाव स्वीकार नहीं करना चाहते थे। अंग्रेजों की खुद को श्रेष्ठ और भारतीयों को हीन समझने की भावना ने भारतीयों को क्रांति करते की प्रेरणा दी"।[4] एक समय तक प्रताड़ना, आत्मग्लानि, हीनता को सहते-सहते भारतीय जनता में अपनी स्थितियों को बदलने की प्रेरणा जागी। प्रेमचंदअपने 'सोजेवतन' के माध्यम से भारतीय जनता को प्रेरित करने का प्रयास करते है। अपने देश, अपनी संस्कृति के प्रति लगाव की भावना प्रेमचंदकी कहानी 'यही मेरा वतन है' बखूबी दर्शाती है। इस कहानी का नायक जो अमेरिका में बहुत बड़ा व्यापारी रहता है, वह अपने देश भारत को प्रत्येक पल याद करता है और वही की मिट्टी में मिल जाना चाहता है। वह अपना सर्वस्व त्यागकर अपने देश आता है, परंतु अपने लोगों के बदले व्यवहार और जीवन शैली को देखकर चीख उठता है, "नहीं-नहीं और हजार बार नहीं यह मेरा वतन, मेरा प्यारा देश, मेरा प्यारा भारत नहीं है, यह कोइ और देश है। यह यूरोप है, अमरीका है, मगर भारत हरगीज नहीं है"।[5] नायक का इस प्रकार से चीख पड़ना उस समय के समाज को वर्णित करता है, जहां उसके सारे मनोभाव एक भयावहता का रूप ले लेते हैं।वह नायक अपने मन में जिस देश की छवि बनाकर भारत आया था वह धूमिल होने लगती है, क्योंकि उसके देश में अपनापन था, प्रेमभाव था, वेदमन्त्रों का उच्चारण करना व गंगास्नान ही वहाँ के लोगों का मूल कार्य था। परंतु आज स्थिति कुछ और है। प्रेमचंद इस नायक के माध्यम से अपने देश की सांस्कृतिक महत्ता और अपने देश के प्रति प्रेम की ओर ध्यान केंद्रित करते है। वह नायक जो कुछ देर पहले चीख रहा था कि यह मेरा देश नहीं है अब वही अचानक कही वेदमन्त्रों को सुनकर, कुछ लोगों के माथे पर टीका देखकर, कुछ स्त्रियों के मुख से भजन सुनकर फिर चिल्ला उठता है, "हाँ-हाँ यही मेरा देश है, यही मेरा प्यारा वतन है, यही मेरा भारत है और इसी के दर्शन की, इसी की मिट्टी में मिल जाने की आरजू मेरे दिल में थी"।[6] किसी भी देश की सबसे बड़ी ताकत उसकी सांस्कृतिक धरोहर है। जो भी देश अपनी संस्कृति को बचाए रखता है उसका अस्तित्व हमेशा बना रहता है, और जैसे ही वह अपनी संस्कृति से अलग होता है, उसका अस्तित्व भी समाप्त जाता है। इसी संस्कृति की महत्ता को बाबू गुलाबराय भी वर्णित करते हैं, "जिस सभ्यता का आधार संस्कृति में नहीं वह सभ्यता, सभ्यता नहीं। संस्कृति की आत्मा के बिना सभ्यता का शरीर शव की भांति निष्प्राण रहता है"।[7] भारतीय लेखक अपनी सांस्कृतिक महत्ता को विभिन्न प्रकार से वर्णित करते हैं। प्रेमचंद अपने देश के प्रति प्रेम और बलिदान का वर्णन करते हुए एक और कहानी 'शेख मखमूर' का जिक्र करते हैं जिसमे वह नायक को अपने राज्य को पुन: हस्तगत करने की प्रेरणा देते हुए नजर आते हैं। इस कहानी के नायक के पिता का सम्पूर्ण राज्य छिन जाता है और वह मसऊद से अपने राज्य को पुन: हस्तगत करने की बात करते है। एक स्थान पर 'मसऊद' का पिता उसे संबोधित करते हुए कहता है, "यह देश तुम्हारा है, यह ताज तुम्हारी है, तुम इसे अपने कब्जे में लाने की मरते दम तक कोशिश करते रहना और अगर तुम्हारी तमाम कोशिशें नाकाम हो जाए और तुम्हें भी यही बेसरोसामानी की मौत नसीब हो तो यही वसीहत तुम अपने बेटे को कर देना और यह ताज उसकी अमानत होगी उसके सुपुर्द कर देना"।[8] इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद भारतवासियों को पीढ़ी दर पीढ़ी संघर्ष कर स्वतंत्रता प्राप्त करने की नसीहत देते है। मसऊद एक महान योद्धा होता है, वह अपनी कौम को संघर्ष करने और दृढ़ता के साथ खड़े रहने की प्रेरणा देता रहता है। जब भी उसकी सेना किसी आक्रमण से भयाक्रांत होती है तो वह उनका हौसला बढ़ाता है। एक स्थान पर तो ऐसा प्रतीत होता है की स्वयं 'प्रेमचंद' अपने देश की जनता को संबोधित करते हुए अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा दे रहे है। नायक के द्वारा वे इस प्रकार कहलवाते है, "क्या बात है अगर 'अमीर पुरतदबीर' बड़ा दिलेर और इरादे का पक्का सिपाही है। अगर वह शेर है तो तुम शेर मर्द हो, अगर उसकी तलवार लोहे की है तो तुम्हारा तेंगा फौलाद का है, अगर उसके सिपाही जान पर खेलने वाले है तो तुम्हारे सिपाही भी सर कटाने के लिए तैयार हैं। हाथों में तेंगा मजबूत पकड़ो और खुदा का नाम लेकर दुश्मन पर टूट पड़ो, तुम्हारे तेवर कहे देते है कि मैदान तुम्हारा है"।[9] अपने देश को मुक्त कराना ही सम्पूर्ण भारतीयों का लक्ष्य था। भारत की आजादी में सभी का योगदान महत्व रखता है सभी अपने -अपने तरीके से अंग्रेजी सरकार का विरोध कर रहे थे।

कॉग्रेस के बटवारे के बाद भारत में एक नरम दल और एक गरम दल कार्य करने लगा। नरमदल जहां अहिंसा व सविनय अवज्ञा के मार्ग पर च रहा था, वही गरम दल का मानना था कि जिससे लड़ो उसको उसी की भाषा में जबाब दो। इस संदर्भ में राजीव अहीर लिखते हैं, "उग्रवादियों का मानना था की इस समय भारतीयों में अभूतपूर्ण उत्साह है तथा स्वतंत्रता आंदोलन को पूर्णरूपेण प्रारंभ करने का यह उपयुक्त समय है। उनका मत था कि अब यह वह समय आ गया है, जब ब्रिटिश शासन पर आघात किया जाए तथा उसे जड़ से उखाड़ फेंका जाए। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि उदारवादी इस कार्य के लिए अनुपयुक्त है तथा उन्हें स्वतंत्रता अभियान से अलग कर दिया जाए"।[10] इस प्रकार से देखा जाए तो भारत को आजादी दिलाने के लिए दो अलग विचार धाराएं एक ही समय और दिशा में कार्य कर रही थी, भले ही इनके कार्य करने का तरीका अलग हो परंतु उद्देश्य दोनों का एक था। अपने देश को स्वाधीन करने में सभी अपने-अपने स्तर पर कार्य कर रहे थे। चाहे आमजन हो, चाहे राजनेता हो, चाहे पत्रकार हो या साहित्यकार या फिर हमारे देश की औरतें हो ये सभी अपने से ऊपर अपने देश को रखते थे, जहां ये बड़े से बड़ा त्याग करने से भी पीछे नहीं हटते थे। इन सभी लोगों के साथ भारतीय साहित्यकारों ने देश की स्वतंत्रता में अहम भूमिका निभाई, उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम सेभारतीय जनता में एक नई चेतना का संचार किया। इस संदर्भ में 'राजीव अहीर' लिखते हैं, "हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चद, बांग्ला में रवीन्द्रनाथ टैगौर, राजा राममोहन राय, बंकिम चंद चटर्जी, मराठी में विष्णुशास्त्री चिपलूणकर,असमिया में लक्ष्मीनाथ बेजवरुआ इत्यादि उस काल के प्रख्यात राष्ट्रवादी साहित्यकार थे। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा भारतीयों में स्वतंत्रता, समानता, एकता, भाईचारा तथा राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया। साहित्यकारों के इन प्रयासों से आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास को प्रोत्साहन मिला"।[11] इन रचनाकारों के अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे रचनाकार हुए जिन्होंने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ पूरी पारदर्शिता के साथ लिखा, जिसमे उनकी कुनीतियों पर सीधा प्रहार भी किया जाता था। इन साहित्यकारों की रचनाएं भले ही जप्त कर ली गई परंतु इनके उद्देश्य और राष्ट्रप्रेम की भावना को वो लोग नहीं मिटा पाए।

'सोजेवतन' में संकलित एक और कहानी 'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम' में भी देश के प्रति पूरी निष्ठा का भाव परिलक्षित होता है जहांइस कहानी का नायक 'मैजिनी' अपने देश के लिए अपना सर्वस्व त्याग देता है। भले ही इस कहानी की पृष्ठभूमि विदेशी है परंतु इसका मूल उद्देश्य देशप्रेम ही है। इस कहानी

की नायिका मैग्डलीन जो जीवनपर्यंत मैजिनी से प्रेम करती है परंतु वह अपने देश के लिए नायिका का प्रेम ठुकरा देता है। जहां एक तरफ मैजिनी है जो देश प्रेम के लिए अपने सांसारिक प्रेम को ठुकरा देता है वही दुनिया का सबसे अनमोल रतन का नायक 'दिलफिगार' है जो प्रेम के लिए अपना जीवन भी दाव पर लगा देता है और उसी प्रेम के द्वारा वह देश प्रेम और उसकी महत्ता को समझ पाता है। विभिन्न यातनाओं को सहते हुए जब वह एक सैनिक से मिलता है और उसके खून की एक-एक बूंद को देखकर उसे ही दुनिया का सबसे अनमोल रतन मान लेता है, क्योंकि उस सैनिक ने अपने देश के लिए अपने सम्पूर्ण शरीर के खून तक को न्योछावर कर दिया था। अंत में 'दिलफरेब'जो उसकी प्रेमिका होती है एक रत्नजड़ित मंजूषा मंगाती है जिसपर लिखा होता है, "खून का वो आखिरी कतरा जो देश की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है"।[12] इस कहानी में भी देश पर मर मिटने का ही संदेश दिया गया है।ये सारी प्रेरणाएं ही अंग्रेजी सरकार को रास नहीं आती थींऔर वे रचनाओं को जप्त कर लेते थे।

निष्कर्ष: उपर्युक्त लिखे सभी तर्कों का आधार देश प्रेम ही है। ये जितनी भी कहानियाँ सोजेवतन में छपी हैं, ये सभी प्रेरणा स्त्रोत हैं। जब भी किसी देश की स्थिति में कोइ राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक बदलाव होते हैं तो उसका सबसे ज्यादा प्रभाव उस देश की जनता पर पड़ता है और जनता से होते हुए साहित्य में आता है। अंग्रेजी सरकार भारतीयों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार की कुनीतियों का प्रयोग करते थे, जिससे भारतीयों में अपने आत्मसम्मान की प्रेरणा जागृत न हो, ताकि उनके शासन में कोइ व्यवधान न आए और जब कभी भारतीय अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाते तो पूरी बर्बरता के साथ उनकी आवाज को दबा दिया जाता। '1857 की क्रांति' से लेकर जलियावाला बाग हत्याकांड तक अंग्रेजी सरकार की अमानुषिक प्रवृति देखी जा सकती है। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी सरकार भारतीयों को रोकने का कार्य करती रही, परंतु इन सभी अन्यायों के बावजूद भी भारतीयों ने अपने देश को स्वाधीन कराने का जज्बा कम नहीं होने दिया। जहां तक बात साहित्यकारों की है वह औपनिवेशिक काल से पहले भी देश को प्रेरित करते थे और इस काल में भी विभिन्न रचनाकारों ने देश की आजादी में अप्रतिम भूमिका निभाई। साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से अंग्रेजी सरकार को भी भयभीत कर दिया और यही कारण है की उनकी रचनाओं को जप्त कर ब्रिटेन भेज दिया जाता था। अत: हम कह सकते है कि साहित्य का मूल भाव जनता के मनोभावों को समझ कर उसे अप्रतिम रूप देने का प्रयास है।

संदर्भ सूची-

1. डॉ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या 603
2. पाठक, डॉ गजेन्द्र, ई-पाठशाला, हिन्दी का प्रतिबंधित साहित्य और हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. 'वही'
4. अहीर, राजीव, आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि. जनकपुरी, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 165
5. प्रेमचंद, सोजेवतन, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 39
6. 'वही' पृष्ठ संख्या 41
7. गुलाबराय, बाबू, भारतीय संस्कृति, रवींद्र प्रकाशन, पाटनकर बाजार, ग्वालियर 1975, पृष्ठ संख्या 4
8. 'वही' पृष्ठ संख्या, 22
9. 'वही' पृष्ठ संख्या 32
10. अहीर, राजीव, आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि. जनकपुरी नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 272
11. 'वही' पृष्ठ संख्या 237
12. प्रेमचंद, सोजेवतन, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या19

भारतीय अर्थव्यवस्था में बैंकिंग क्षेत्र की भूमिका : भारतीय स्टेट बैंक के विशेष सन्दर्भ में

डॉ० मनोज कुमार अग्रवाल

प्रोफेसर, लेखा एवं विधि विभाग, एस. आर.के. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था में बैंकिंग क्षेत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो आर्थिक विकास, वित्तीय समावेशन और ऋण की सुविधा प्रदान करने में योगदान करता है।

बैंक विभिन्न लोगों को वित्तीय सेवाओं तक पहुंच प्रदान करते हैं, जिससे वे बचत कर सकते हैं, निवेश कर सकते हैं और ऋण प्राप्त कर सकते हैं। यह वित्तीय समावेशन में मदद करता है, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

बैंक व्यवसायों, व्यक्तियों और उद्योगों को ऋण प्रदान करते हैं, जिससे निवेश, उत्पादन और आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

बैंक लोगों की बचत जमा करके पूंजी जुटाते हैं और इसे व्यवसायों और परियोजनाओं में निवेश करते हैं।

बैंक तरलता का प्रबंधन करके और विभिन्न क्षेत्रों को ऋण प्रदान करके आर्थिक स्थिरता में योगदान करते हैं।

बैंक भुगतान प्रणाली का संचालन करते हैं, जो व्यापार और आर्थिक गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने में मदद करती है।

बैंक सरकार को ऋण प्रदान करते हैं और सार्वजनिक ऋण का प्रबंधन करते हैं।

भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई), जो भारत का सबसे बड़ा बैंक है, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के विकास और अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मूल शब्द: भारतीय अर्थव्यवस्था, बैंकिंग क्षेत्र, भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई), सार्वजनिक ऋण

प्रस्तावना

भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। इसमें आधुनिक बैंकिंग सेवाओं का इतिहास 200 वर्ष पुराना है। भारत में आधुनिक बैंकिंग की शुरुआत ब्रिटिश राज्य में हुई है। यहाँ प्रारंभ में बैंकों की शाखाएं और उनका कारोबार वाणिज्य केन्द्रों तक ही सीमित होता था। स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय रिजर्व बैंक को केंद्रीय बैंक का दर्जा बरकरार रखने के लिये उसे बैंकों का बैंक घोषित किया गया। सभी प्रकार की मौद्रिक नीतियों को तय करने और उसे अन्य बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा लागू कराने का दायित्व भी उसे सौंपा गया। इस बारे में भारतीय रिजर्व बैंक की नियंत्रण तथा नियम शक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

बैंकों ने सदियों से अर्थव्यवस्था और राजनीति को प्रभावित किया है। विभिन्न प्रकार की आवश्यकता और देश के विकास में बैंकों की भूमिका है। जो विभिन्न सेवाओं और देश की अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता करते है। किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में बैंक की व्यवस्था का अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान होता है। बैंक, मुद्रा बाजार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग के रूप में देश के आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण उपकरण होते है। पूंजी निर्माण व्यापार उद्योग एवं कृषि के अर्थ प्रबंधन तथा देश की आर्थिक सामाजिक नीतियों एवं कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में उनकी भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। किसी भी देश का विकास पूंजी निर्माण की दर पर निर्भर करता है।

परिवर्तन एवं विकास विश्व की सार्वभौमिक प्रक्रिया है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में निरंतर प्रगति एवं विकास होता जा रहा है। व्यावसयिक एवं औद्योगिक प्रगति के लिये वित्तीय सहायता की आवश्यकता पड़ती है। वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हमें बैंकों पर निर्भर होना पड़ता है। समाज एवं उद्योग की वित्तीय आवश्यकताओं में भी निरंतर परिवर्तन एवं संवर्धन होता जा रहा है, अत: आज बैंक संगठन का वह स्वरूप नहीं है, जो प्राचीन काल में था। प्राचीन काल में बैंकिंग का कार्य एक व्यक्ति या फर्म करती थी, जिन्हें साहूकार या महाजन कहा जाता था। इस प्रकार, निजी बैंकों की पूंजी, साधन एवं क्षेत्र अति सीमित थे और ब्याज दर काफी ऊंची होती थी।

अत: आधुनिक समय में पाश्चात्य प्रणाली पर संयुक्त स्कन्ध कंपनियों के रूप में बैंक स्थपित किए गए है, जिनके पास वृहत पूंजी साधन होते है। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था के अंतर्गत संपूर्ण बैंकिंग संस्थानों को सम्मिलित किया जा सकता है, जो कि पूरे भारत में बैंकिंग सेवाएं प्रदान कर रहे है। ये संस्थान एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न वर्गो को उनकी आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान कर रहें है। यह एक बड़ा विस्तृत, जटिल एवं सघन संगठन

है, जो कि देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसमें संगठित एवं असंगठित निजी एवं सार्वजनिक, देषी एवं विदेषी, ग्रामीण एवं शहरी आधुनिक एवं परंपरागत सभी प्रकार के रूप देखने को मिलते हे। वास्तव में भारतीय बैंकिंग व्यवस्था यहां की सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्था की भांति अपनी विविधताओं से परिपूर्ण है।

भारतीय बैंकों की मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने हेतु नये विनियोगों को प्रोत्साहान दिया जाता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में आय मुद्रा में लिखी जाती है और मुद्रा को अंकों में ही लिखा जाता है जिसमें भारतीय रिजर्व बैंक हर दूसरे महीने मौद्रिक नीति की समीक्षा करता है, इस पर आर. बी.आई. की पैनी नजर होती है एवं इसमें अर्थव्यवस्था की स्थिति को देखते हुए नीतिगत ब्याज दरें घटाने या बढ़ाने का निर्णय लिया जाता है।

भारत में बैंक व्यवस्था

आज विश्व के प्राय: सभी विकासशील देश आर्थिक नियोजन के आधार पर अपना विकास करने का प्रयत्न कर रहे है। क्योंकि आर्थिक नियोजन के कार्यक्रमों को पूरा करने के लिये विशाल पूंजी की आवश्यकता होती है। जिसकी उपलब्धि केवल निजी क्षेत्र के द्वारा ही नहीं की जाती बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकों का इसमें विशेष योगदान रहता है। किसी भी प्रकार के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के अनेक कार्यक्रमों में जोखिम की मात्रा भी अधिक होती है क्योंकि धन लगा देने के बाद यह आवश्यक नहीं है कि उससे शीघ्र ही पर्याप्त लाभ मिल जाये। निजी क्षेत्र उन्हीं उपक्रमों में विनियोग करना चाहता है जो शीघ्र ही अधिक लाभ दे सकते है और जिनमें जोखिम की मात्रा भी कम होती है, किंतु यह देश के सर्वांगीण आर्थिक विकास में योगदान नहीं देता है। सार्वजनिक क्षेत्र ही एक मात्र ऐसा क्षेत्र है जो कि ऐसे उपक्रमों का विकास करता है जो भले ही देर से लाभ दें, पर देश के विकास में योगदान कर सकें।

सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक सुरक्षा सम्बन्धी उपक्रम है जिस पर व्यक्ति भरोसा कर सकता है और पूंजी को सुरक्षित रख सकें। यह उपक्रम राष्ट्रीय तौर पर बहुत ही महत्वपूर्ण होते है। इन उपक्रमों में जोखिम की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए इन पर भरोसा को ध्यान में रखते हुए इन पर भरोषा करके लोग जोखिम मुक्त रहते है। इन सार्वजनिक उपक्रमों के आने से लोगों का सरकार पर विश्वास हो गया है। जिससे वह अपनी पूंजी इन बैंकों को सौंपे और सुरक्षित महसूस करें। आजकल बैंक सेवाएं ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तृत है।

सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकों का मुख्य उद्देश्य लोगों तक सेवाओं को पहुँचाना और उनके एवं देश के आर्थिक विकास में योगदान देना है। जिससे पूर्ण रूप से देश का आर्थिक विकास किया जा सके। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को भारतीय बैंकिग उद्योग में कुछ अग्रिमों का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने पिछले चार-पांच दशकों मे जबरदस्त वृद्धि दिखाई है। भारत के हमारे अपने बैंकिग क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की संख्या सितंबर 2018 तक सार्वजनिक क्षेत्र के 21 बैंक है- 19 राष्ट्रीकृत बैंक, आई.डी.बी.आइ. बैंक और भारतीय स्टेट बैंक है। 56 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं जो इन 21 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में से एक के स्वामित्व में है। ये बैंक किसी विषेष राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश के कुछ जिलों में ग्रामीण बैंकिंग पर केन्द्रित है। इन बैंकों में सरकार की 51% से अधिक इक्विटी हिस्सेदारी है, इसलिए इन्हें सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक कहा जाता है।

भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई)

भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) एक भारतीय बहुराष्ट्रीय सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक और वित्तीय सेवा निकाय है जिसका मुख्यालय मुंबई में है। यह भारत का सबसे बड़ा बैंक है जिसकी संपत्ति के हिसाब से 23% बाजार हिस्सेदारी है और कुल ऋण और जमा बाजार में 25% हिस्सेदारी है। यह लगभग 250,000 कर्मचारियों के साथ भारत का दसवां सबसे बड़ा नियोक्ता भी है।

2024 तक, एसबीआई के 50 करोड़ ग्राहक हैं। भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने एसबीआई, एचडीएफसी बैंक और आईसीआईसीआई बैंक को घरेलू व्यवस्थित रूप से महत्वपूर्ण बैंकों (डी-एसआईबी) के रूप में पहचाना है, जिन्हें अक्सर ऐसे बैंकों के रूप में संदर्भित किया जाता है जो षविफल होने के लिए बहुत बड़े हैं"।

एसबीआई कुल संपत्ति के हिसाब से दुनिया का 47वां सबसे बड़ा बैंक है और 2024 की दुनिया की सबसे बड़ी कंपनियों की फॉर्च्यून ग्लोबल 500 सूची में 178वें स्थान पर है, जो सूची में एकमात्र भारतीय बैंक है।

2024 में, फोर्ब्स ग्लोबल 2000 में एसबीआई को 55वां स्थान मिला। यह बैंक 1806 में इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया के माध्यम से स्थापित बैंक ऑफ कलकत्ता से निकला है, जो इसे भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे पुराना वाणिज्यिक बैंक बनाता है। बैंक ऑफ मद्रास का ब्रिटिश भारत के अन्य दो प्रेसीडेंसी बैंकों, बैंक ऑफ कलकत्ता और बैंक ऑफ बॉम्बे में विलय हो गया, जिससे इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया बना, जो 1 जुलाई 1955 को भारतीय स्टेट बैंक बन गया। अपने 200 साल के इतिहास में, बैंक का गठन बीस से अधिक बैंकों के विलय और अधिग्रहण से हुआ है। भारत सरकार ने 1955 में इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया, जिसमें भारतीय रिजर्व बैंक (भारत का केंद्रीय बैंक) ने 60% हिस्सेदारी ले ली, जिसका नाम बदलकर स्टेट बैंक ऑफ इंडिया कर दिया गया।

परिचालन

एसबीआई भारत और विदेशों में अपनी शाखाओं के नेटवर्क के माध्यम से बैंकिंग उत्पादों की एक श्रृंखला प्रदान करता है, जिसमें अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) के लिए लक्षित उत्पाद भी शामिल हैं। एसबीआई के 17 क्षेत्रीय केंद्र हैं जिन्हें स्थानीय प्रधान कार्यालय (एलएचओ) के रूप में जाना जाता है, जिसके अंतर्गत 57 प्रशासनिक कार्यालय (एओ) हैं, जो पूरे भारत में महत्वपूर्ण शहरों में स्थित हैं, जिसके अंतर्गत प्रशासनिक उप-कार्यालय हैं जिन्हें क्षेत्रीय व्यवसाय कार्यालय (आरबीओ) के रूप में जाना जाता है, प्रत्येक आरबीओ के पास अपने प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण में लगभग 40 से 50 शाखाएँ हैं।

निष्कर्ष

भारतीय अर्थव्यवस्था में बैंकिंग क्षेत्र और भारतीय स्टेट बैंक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वे आर्थिक विकास, वित्तीय समावेशन और ऋण की सुविधा प्रदान करने में योगदान करते हैं। एसबीआई विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

एसबीआई भारत में सबसे बड़ा बैंक है और इसकी एक विस्तृत शाखा नेटवर्क है, जो वित्तीय सेवाओं को देश के विभिन्न हिस्सों में पहुंचाता है।

एसबीआई एक सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक है, जो सरकार के द्वारा संचालित किया जाता है और यह भारत के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

एसबीआई ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनी सेवाएं प्रदान करता है, जिससे वित्तीय समावेशन को बढ़ावा मिलता है।

एसबीआई विभिन्न प्रकार के ऋण प्रदान करता है, जैसे कि व्यक्तिगत ऋण, व्यवसाय ऋण और कृषि ऋण।

एसबीआई विभिन्न निवेश उत्पादों को भी प्रदान करता है, जैसे कि म्यूचुअल फंड और शेयर। एसबीआई डिजिटल बैंकिंग सेवाओं को भी बढ़ावा दे रहा है, जैसे कि मोबाइल बैंकिंग और ऑनलाइन बैंकिंग।

सन्दर्भ

1. Bhattacharya, K. M., and Agarwal, O.P. (2006). Basics of Banking and Finance, Himalaya Publishing House First Edition, Mumbai.
2. Joshy, V., and Little, J.M.D. (1998). India's Economic Reforms: 1991-2001, Oxford University Press, New Delhi. ~ www.indianeconomic.com.
3. *Mukerji, B (December 1961). "State Bank of India and Co-operative Institutions" (PDF). Indian Journal of Agricultural Economics.* ***XVI*** *(I). ISSN 0019-5014 – via AgEcon, Department of Applied Economics University of Minnesota.*
4. *Bagchi, Amiya (2007). The Evolution of the State Bank of India: The Roots 1806-1876. Vol. 1. New Delhi: Penguin India. p. 452. ISBN 978-0670999170.*
5. *Ray, Abhik; Chakraborty, A. K.; Das, Suman; Mathai, J.S. (2009). The Evolution of the State Bank of India: The Era from 1995 to 1980. Vol. 4. Penguin India. ISBN 9780670999064.*
6. *Chakrabarti, Rajesh (2012). "State Bank of India: The Opportunities and Challenges of Being a State-Owned Bank in India". The Political Economy of State-owned Enterprises in China and India. London: Palgrave Macmillan. pp. 247–272. doi:10.1057/9781137271655_11. ISBN 978-1-137-27165-5.*
7. *Dhir, Sanjay; Kumar, Sushil (17 April 2019). "State Bank of India". Cases in Strategic Management. Flexible Systems Management. Singapore: Springer. doi:10.1007/978-981-13-7064-9_14. ISBN 978-981-13-7064-9.*
8. https://economictimes.indiatimes.com/industry/banking/finance/lic-investment-income-at-rs-180117-crore-in-2016- 17/articleshow/58774413.cms
9. https://www.thehindubusinessline.com/money-and-banking/lics-surplus-payout-to-govt-up-158-at-rs-2207-cr-infy17/article9881194.ece

वैश्वीकरण के दौर में सिकुड़ती हिन्दी की बोलियाँ

प्रतिमा सिंह

(शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं,अपितु वह एक राष्ट्र की सभ्यता,संस्कृति,आत्मगौरव होती है। सन 1947 से पहले भारत एक गुलाम देश था और उस पर ब्रिटेन का एकछत्र शासन। जाहिर है कि भारत भी इस परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति पाने का स्वप्न देख रहा था और किसी भी राष्ट्र –देश के लिए स्वतंत्र होने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी अपनी एक स्वत्रन्त्र भाषा हो, क्योंकि षबिना भाषा की नींव दृढ़ किए स्वतंत्रता की नींव दृढ़ नहीं हो सकती[1], जिसमें न केवल स्वयं को अभिव्यक्त कर सके,वरन अपने सरकारी कामकाज को भी बिना किसी बाधा के सुचारू रूप से किया जा सके।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे भाषाएं भारतीय स्वाधीनता के इस अभियान और आंदोलन को व्यापक जनाधार देते हुए लोकतंत्र की इस आधारभूत अवधारणा को सम्पुष्ट करती रही कि जब भारत स्वतंत्र होगा तो लोक–व्यवहार और राजकाज के लिए भारतीय भाषाओं को ही चुना जाएगा, उन्ही का प्रयोग होगा। भारत स्वतंत्र हुआ और दक्षिण भारत के विरोध के कारण 'हिंदी' को संघ की राजभाषा और अंग्रेजी को सह –राजभाषा का दर्जा संविधान द्वारा प्रदान कर दी गई और यह सुनिश्चित किया गया कि पन्द्रह वर्ष बाद सभी राज्यो की पूर्ण सहमति से सिर्फ 'हिंदी' को संघ की 'राजभाषा' बना दिया जाएगा। परन्तु आजादी के सत्तर वर्ष के बाद भी 'अंग्रेजी' को हटाया नहीं जा सका है और आज स्थिति यह है कि अंग्रेजी जो हिंदी की सह – भाषा के रूप में मनोनित थी, आज राजभाषा के रूप में काबिज हो रही है और हिंदी इसकी सह–भाषा की भूमिका में।

जब संविधान पारित हुआ था तो यह आशा की जा रही थी कि भारतीय भाषाओं और उसकी बोलियों का विस्तार किया जाएगा, उनको उचित स्थान दिया जाएगा, उनकी भाषाओं में रोजगार, शिक्षा, व्यापार के मार्ग खोले जाएंगे, परन्तु हुआ यह कि "राजनीति की भाषा और भाषा की राजनीति ने मिलकर हिंदी की नियति का अपहरण का लिया।"[2] इसमें कोई दो राय नहीं है कि हिंदी और उसकी सह –भाषाओं को सबसे अधिक क्षति अंग्रेजी के वर्चस्व से और राजनीति की वजह से पहुँची है और रही सही कसर इस उपभोक्तावादी संस्कृति यानी वैश्विकरण ने पूरी कर दी।

वैश्वीकरण एक ऐसी अवधारणा है जिसने दुनियाँ को एक ही मंच पर लाकर खड़ा कर दिया है – एक सूत्र में बांध दिया है। जहाँ बड़ी आसानी से किसी भी देश की संस्कृति, भाषा, रहन –सहन आदि से परिचित हुआ जा सकता है और यह सांस्कृतिक एकाकार बिना 'अंग्रेजी' के सम्भव नहीं।। सरल शब्दों में कहें तो यह अवधारणा पूरे विश्व को एक ष्बाजारष् के रूप में तब्दील कर चुका है जहाँ उसी की भाषा, नियम और शर्त लागू होते हैं और पूरा विश्व इस 'बाजार' में अव्वल आने की होड़ में लगा हुआ उसके नियम, भाषा को आत्मसात कर रहा है।बिना इसके ज्ञान के इस मंच पर टिक पाना सम्भव नहीं।

उपभोक्तावाद का प्रचार – प्रसार वैश्वीकरण की प्रमुख शर्त है। जैसा कि सर्व विदित है कि शासक हमेशा अपने अधीनस्थ राज्यों पर सहूलियत के लिए अपनी भाषा लागू कर राज करते है। इस बाजारवाद ने भी अपने उत्पादों के क्रय– विक्रय के लिए अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य कर दिया। भारत में नब्बे के दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ होती है और आते ही सबसे पहले शिक्षा को अपने अनुरुप बनाने की कोशिश की गई।

दैनिक बोलचाल की भाषा में अंग्रेजी शब्दों की भरमार होनी शुरू हो गई।इतना ही नहीं लोगों को आकर्षित करने के लिए उनको भविष्य के सुनहरे सपने दिखाए जाने लगे और यह एहसास दिलाया जाने लगा कि अंग्रेजी ही उनके सुनहरे सपनों की सीढ़ी है। ठीक उसी तरह दुनियाँ के अल्प विकसित देशों के बाजारो पर एकाधिपत्य स्थापित करने के साथ – साथ वहाँ की जीवन दृष्टि, संस्कृति को स्वयं के अनुरूप ढालने का प्रयास यह बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अंग्रेजी भाषा के माध्यम से कर रही हैं।आज भारतीय समाज अनेक स्तरों पर इसी उपनिवेशवाद से घिरा हुआ है और इस वजह से भारतीय भाषाओं का विकास बाँधित हो रहा है–– "कमी बुनियादी ढाँचें या संसाधनों की नही है,कमी यह है कि इन भाषाओं को बाजार की स्वीकृति नहीं मिली है। लिहाजा ये शिक्षा के समूचे सिस्टम में भी नजर नहीं आती हैं।"[3]

उदारीकरण के बाद जब बाजार का विस्तार हुआ तो विदेशी कंपनियां और निवेशक अपने उत्पादों को भारत लेकर आए। भारत आने के बाद कुछ ही समय मे उन्हें यह ज्ञात हो गया कि भारतीय सर जमीं पर और भारतीय लोगों तक अपने उत्पाद पहुचाने है तो 'हिंदी' को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, उसे अपनाना ही पड़ेगा। बिना 'हिंदी' के उनका भारतीय बाजार में कोई मोल नहीं।यही कारण है कि आज अंग्रेजी के वर्चस्व के बावजूद भी हिंदी सशक्त और मजबूत होकर 'बाजार की भाषा' के रूप में विश्व पटल पर विद्यमान है। टीवी, इंटरनेट, विज्ञापन आदि में हिंदी का बहुतायत प्रयोग बिना किसी हिचकिचाहट के हो रहा है।परन्तु इस बाजारवाद कि तीव्र होती आँधी ने जहाँ भारतीय भाषाओं की सत्ता को हिला कर दिया वहीं उसकी बोलियों की बुनियाद को धूल–धूसरित कर दिया है। वैश्वीकरण की लहर ने हिंदी को उसकी बोलियों से दूर कर दिया। बोलियों से अलगाववाद के कारण ही हिंदी का स्वरूप अलग और कुलीन दिखाई देता है।

हिंदी की इस 'कुलीनतावाद' ने सिर्फ अपनी सगी बहनों– बोलियों को खुद से दूर किया नहीं किया बल्कि समाज के कुछ खास तपको से भी दूर कर दिया है।हिंदी के बोलियों के पिछड़ जाने में इस बाजारवाद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस बाजारवाद के कारण ही "भारत की कई भाषाएं विलुप्ति के

कगार पर है। एक आंकड़े के मुताबित 196 भाषाएं ऐसी है जिनके गायब होने का खतरा है और विलुप्ति की ये डर दुनियाँ में सबसे ज्यादा भारत में है; इनमें से अधिकांश क्षेत्रीय और कबीलाई भाषाएं है। ये भाषाएं अंग्रेजी और हिंदी के बढ़ते वर्चस्व के बीच हाशिए पर जा रहे हैं।"[4] हिंदी 'बाजार की भाषा' बनकर बच गई,पर उसकी बोलियाँ पर्याय 'मृत्यु' के कगार पर पहुंच गई है-"हिंदी के बढ़ते प्रचलन ने और हिंदी प्रदेशों के भीतर मुख्य भाषा के रूप में हिंदी की वर्चस्ववादी उपस्थिति ने उसी की उपभाषासाओं और बोलियों का गला घोंट दिया है।"[5]

हिंदी की बोलियों के पिछड़ने में 'हिंदी का बढ़ता प्रभाव' ही एक मात्र कारण नहीं है, अपितु उसमें शिक्षा और रोजगार का न होना सबसे बड़ा कारण है।

आजके इस बदलते भौगौलिक परिवेश में जहाँ अंग्रेजी ही सबकुछ है, लोगों के कैरियर, सुख -सुविधाएं, जिंदगी को रेखांकित करती है। उसके समक्ष विश्व में चौथी सबसे बड़ी बोली जाने वाली भाषा हिंदी भी रोजगार के लिए संघर्ष करती नजर आती है।उसे "राष्ट्रभाषा" का दर्जा प्राप्त करने के लिए लड़ाई लड़नी पड़ रही है। इस माध्यम से शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को अंग्रेजी के अभाव में अपने ही देश में जीवन यापन करने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। इतना ही नहीं नौकरी के लिए होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं के प्रश्न पत्र को हिंदी में कराने के लिए आंदोलन तक करना पड़ता हो, उस देश में अवधी, भोजपुरी, ब्रज, बघेली, कुमायनी, बुंदेली आदि बोलियों की क्या हैसियत?? अगर बोलियों में उचित शिक्षा की व्यवस्था मुहैया करा दी भी जाती है तो भी वही प्रश्न बना रहता है कि 'अब क्या?', क्योंकि "इन सारी बहस में बात वही अटक जाती है कि जो छात्र इन भाषाओं में पढ़ेंगे, इन्हें आखिरकार नौकरी तो मुख्यधारा की भाषाओं में ही मिलेगी।"[6]हिंदी की बोलियों के सिमटने के पीछे आज श्मॉर्डन कल्चरश भी कम उत्तरदायी नहीं है।नई संस्कृति ने बोलचाल की भाषा मे हिंदी के स्थान पर अंग्रेजी को अधिक गुरुत्व दिया, वहीं देशज भाषाएँ बोलने वालों को 'गंवार' और 'पिछड़ेपन' की संज्ञा। देशज भाषाएँ या क्षेत्रीय बोलियों को बोलने वालों को यह समाज स्वीकारता नहीं। ऐसे में अंग्रेजी और उससे उत्पन्न नई संस्कृति -'इंडो-वेस्टर्न-कल्चर' भारतीयों के हाथ में सिर्फ एक झुनझुना है, जिसे लेकर, बजाकर भारतीय खुश होने का स्वांग भरते हुए अपनी संस्कृति से कटते चले जा रहे हैं।

इस बाजारवाद ने न केवल हिंदी की बोलियों को क्षति पहुँचाया है बल्कि उसकी लोक संस्कृति - गीत, पर्व, नृत्य जैसे अद्वितीय धरोहर को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है। लोक संस्कृति या लोकगीत सिर्फ देश काल, परिस्थिति की चीज नहीं है,भारतीय जनमानस में यह जीवन की शैली भी है जिस पर उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपनी पैनी चोंच चुभो दी है।जो कजरी, विवाह गीत, बिरहा, सोहर, फगुआ घर -गाँव में गाए जाते थे, आज विलुप्ति के कगार पर पहुँच गई हैं। अगर यह थोड़ी बहुत बची हुई है तो वह लोक गायक - गायिकाओं -मालनी अवस्थी,शारदा सिन्हा और टीवी, फिल्मों, नाटकों में फिल्माए गए दृश्यों की वजह से। लोक गायिका 'मालनी अवस्थी' एनडीटीवी न्यूज चौलन की एक प्रस्तुति में कहती है, "ग्लोबलाइजेशन ने लोक संस्कृति का बहुत नुकसान किया है।हमलोगों ने तरक्की के लिए, आगे बढ़ने के लिए श्वो बुआश(लोकगीत गाने वाली) को गाँव में छोड़ दिया है। अब यह हालत है कि शादी-व्याह में गाने के लिए 'औरतों' को बाहर से बुलाने पड़ते हैं।"[7]

इस वैश्वीकरण की आँधी ने न केवल भारतीय भाषाओं, बोलियों पर भाषायिक संकट को ही जन्म दिया बल्कि एक नई समस्या 'पलायन या विस्थापन' को भी प्रश्रय दिया है। विकास के बढ़ते इस कदम ने सबसे अधिक क्षेत्रीय और आदिवासियों के जीवन- संस्कृति को प्रभावित किया है। कल-कारखानों की स्थापना के लिए आदिवासियों से उनकी जमीन, जंगल लेकर उन्हें उनकी ही विरासत से अलग कर दिया जा रहा है। ऐसे में 'वे' एक नए स्थान, नई संस्कृति, नई भाषा के बीच खुद को बचाये रखने की जद्दोजहद में अपनी संस्कृति, भाषा, बोली को छोड़ने के लिए विवश हो रहे हैं। ऐसे में अगर हिंदी और भारतीय भाषाओं की बोलियां 'सिकुड़ती' चली जा रही है तो कोई अचरज की बात नहीं है।

बल्कि होना तो यह चाहिए था कि हिंदी का विकास उसकी बोलियों,उपबोलियों के साथ होता, क्योंकि "लोक-भाषा को महत्व दिए बिना लोकतंत्र मजबूत नहीं हो सकता है।"[8] और हिंदी की बोलियाँ भारत के लोकतंत्र की बुनियाद है। परंतु हुआ यह कि अपनी लोकभाषा, बोलियों को दरकिनार कर विदेशी भाषा का हाथ थामकर हिंदी अपने विकास के पथ पर अग्रसर होती हुई अपने संसार का विस्तार कर रही है, वही उसकी बोलियाँ अपने छोटे से दायरे में सिमटी और सिकुड़ती चली जा रही है। हिंदी का सही मायने में विकास, उसे सम्मान तभी मिलेगा जब वह अपनी क्षेत्रिय बोलियों को आत्मसात कर इस वैश्वीकरण के दौर में आगे बढ़े। समाजशास्त्री सिद्धराज के शब्दों में कहे तो "ऐसे में हमें उपभोक्ता उत्पादनों का ग्लोबलाइजेशन नहीं, बल्कि स्वदेशी उत्पादनों का (लोकलाइजेशन) स्थानीयकरण चाहिए।"[9]

सन्दर्भ सूची

1. टण्डन पुरुषोत्तमदास, हिंदी के निर्माता, हिंदी के अग्रदूत; संकलन शर्मा कुमुद, पृष्ठ 117
2. सिंघवी डॉ लक्ष्मीमल्ल, संविधान में हिंदी (ई-मैगजीन:-अभिव्यक्ति)
3. कृष्णन मुरली, दम तोड़ती भाषाएँ, जटिल होता समाधान, वेब दुनियाँ।
4. कृष्णन मुरली, दम तोड़ती भाषाएँ, जटिल होता समाधान, वेब दुनियाँ।
5. कृष्णन मुरली, दम तोड़ती भाषाएँ, जटिल होता समाधान, वेब दुनियाँ।
6. कृष्णन मुरली, दम तोड़ती भाषाएँ, जटिल होता समाधान, वेब दुनियाँ।
7. 16 नवंबर, एनडीटीवी प्रस्तुति
8. http://himkarshayama.com
9. शर्मा डॉ ऋषभदेव,भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ : संचार माध्यम और हिंदी का सन्दर्भ।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों के पात्रों का चारित्रिक यथार्थ

किशोर कुमार शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, महाराजा सूरजमल बृज विष्वविद्यालय, भरतपुर (राज.)

प्रो० (डॉ०) अशोक कुमार गुप्ता

शोध निर्देशक, आचार्य, हिन्दी विभाग, महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

कथा-साहित्य में पात्र एवं चरित्र-चित्रण का स्थान सर्वोच्च है। कथानक की घटनाएँ जिन व्यक्तियों पर निर्भर होती हैं, वे पात्र कहलाते हैं, उनके व्यवहार तथा आचरण के सम्पूर्ण रूप को चरित्र-चित्रण कहते हैं। पात्रों के अभाव में कहानी की कल्पना नहीं की जा सकती है, क्योंकि वे ही कथा को संचालित करते हैं। अच्छी कहानियों में घटनाएँ, वर्णित पात्रों की प्रकृति से सहज एवं युक्तियुक्त रूप से नि:सृत होती हैं। वे व्यक्ति जिनके इर्द-गिर्द कथावस्तु गढ़ी होती है, कहानी के कार्य-व्यापारों के उद्‌भावक के रूप में अथवा उनसे प्रभावित होने के कारण अपने चरित्र के एक विशेष पक्ष को उद्‌घाटित करते हैं। चरित्र-चित्रण वह क्रिया है, जिसके द्वारा कहानी में उल्लिखित व्यक्तियों के अर्न्तजगत का बाह्यजगत से सम्बन्ध स्थापित होता है। कहानी-साहित्य का विकास इस बात का साक्षी है कि कहानी क्रमश: घटनाओं की प्रधानता के स्थान पर चरित्रों की प्रधानता को स्थान दे रही है।

कथा की दृष्टि से पात्रों के मुख्यत: दो भेद किए जा सकते हैं-प्रधान पात्र और गौण पात्र। वर्ग के विचार से भी उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-वर्ग प्रधान और व्यक्तिगत। दृष्टिकोण के अनुसार वे आदर्शवादी, यथार्थवादी, आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी और प्रकृतिवादी हो सकते हैं। उनके चरित्र-चित्रण की मुख्य चार प्रणालियाँ हैं- सांकेतिक ढंग से, वर्णन द्वारा, कथोपकथन द्वारा और घटनाओं के विकास द्वारा।

चरित्र-चित्रण की मुख्य विशेषताएँ हैं- अनुकूलता, स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता और मौलिकता। कथानक द्वारा वाह्य जगत् की स्थूल वास्तविकताओं का निरूपण किया जा सकता है, परन्तु चरित्र-चित्रण द्वारा ही मनोजगत् की सूक्ष्म वास्तविकताओं का आंकलन सम्भव है। 'जल्लाद', 'वीभत्स', 'मूर्खा', 'खुदाराम', 'मलंग', 'दितवारिया', 'उसकी माँ', 'अभागा किसान' तथा 'कला का पुरस्कार' जैसी चरित्र प्रधान कहानियों में कहानीकार ने चरित्र-चित्रण की सभी पद्धतियों का सम्यक् प्रयोग करके सशक्त एवं जीवंत पात्रों का निर्माण किया है। 'जल्लाद' नामक कहानी में कहानीकार 'रामरूप' नामक पात्र की आकृति व रूप का वर्णन इस प्रकार करता है-"न जाने क्यों उसका वह अलकतरा रंग, उसकी वह भयानक नैपालियों-सी नाटी काया, उसका वह मोटा, वीभत्स अधर और पतला ओष्ठ, जिस पर घनी काली, भायावती तथा अव्यवस्थित मूछों का भार अशोभायमान था, मुझे कुछ अपूर्व-सा मालूम पड़ता था। न जाने क्यों उसकी बड़ी-बड़ी डोरीली, नीरस और रक्तवर्ण आँखें मेरे मन में एक तरह की सिहर-सी पैदा कर देती थीं, पर आश्चर्य! इतने पर भी में उसे अधिक से अधिक देखना और समझना चाहता था।"[1]

आकृति-वर्णन करते हुए भी कहानीकार रामरूप के मनोजगत् की गहराई की ओर संकेत करता है, क्योंकि उसी गहराई में, रामरूप के चरित्र का वह कोमल पक्ष छिपा हुआ है, जो कहानी में वर्णित घटनाओं द्वारा अधिकाधिक प्रकाश में आता है। संतानहीनता के कारण क्रूर रामरूप के जीवन से स्नेह का लगभग तिरोभाव हो जाता है, परन्तु जब से किशोरवय अनाथ अलियार को वह अपने घर में रख लेता है, उसके हृदय में सहज वात्सल्य का उद्रेक होता है। अलियार को वधिक रामरूप से उसके क्रूर-कर्म के कारण इतनी अधिक घृणा है कि वह एक मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधी को जेल से भगाने में सहायता करता है। कदाचित् वह स्वयं नहीं जानता कि अलियार के प्रति उसका स्नेह कितना गहरा है। वह अर्द्धविक्षिप्त-सा एक हांडी में फाँसी की रस्सी लिए हुए नगर की एक चौमुहानी पर लड़कों द्वारा देखा जाता है। हांडी के विषय में लड़कों के प्रश्न का जो उत्तर वह देता है, उससे उसके हृदय में होने वाले भयंकर उद्वेलन का कुछ आभास मिलता है-"यह हांडी, फाँसी की रस्सी जरूर है, पर यह असली नहीं है। असली रस्सी तो दुरुस्त करके आज ही जेल से ऐसे ही एक बर्तन में रख आया हूँ। वह रस्सी इससे कहीं सुन्दर, कहीं मजबूत है। इसको तो केवल अभ्यास के लिए अपने साथ लेता आया हूँ। आज रातभर इन उस्ताद हाथों को फाँसी देने का अभ्यास जोर-शोर से कराऊँगा, क्योंकि इस बार कोई मामूली आदमी को नहीं लटकाना है।"[2] इससे प्रतीत होता है कि रामरूप अलियार को अपने हाथों से फाँसी देने का निश्चय कर चुका है, परन्तु वास्तविकता यह है कि रामरूप का फाँसी की रस्सी लिए हुए चौमुहानी पर खड़े रहना उसके हृदय में चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व का द्योतक है, जिसे शब्दों द्वारा अभिव्यक्त न करके कहानीकार, पाठकों की कल्पना पर छोड़ देता है।

'मलंग' नामक अन्य चरित्र प्रधान कहानी में कहानीकार ने एक अन्य विशिष्ट पात्र की कल्पना की है, जिसका नाम है 'चाचाजी', लम्बी नाक, बड़ी खोपड़ी, चमगीदड़ी चीमड़ काया, नाद सा पेट, छोटी कौड़िया आँखों वाले चाचाजी का बहिरंग अत्यन्त कुरुप होने पर भी अंतरंग मानवीय गुणों से सुशोभित

है। वह सर्वहित चिन्तक, सेवाभावी, त्यागी और सभी संकीर्णताओं से परे हैं। उनके रूप में कहानीकार ने एक ऐसे जीवंत चरित्र का निर्माण किया है, जो उनके कहानी-साहित्य की चरित्र वीथी में सबसे अधिक सशक्त एवं अविस्मरणीय है। आदर्शवाद के प्रतिमूर्ति चाचाजी के चरित्र को यथार्थ बनाया है और उन्हें अपनी लावण्यमयी पत्नी की घोर घृणा का लक्ष्य दर्शाया है। ऐसी अवस्था में उनकी असांसारिकता और आदर्शवादिता उन्हें पूर्णतया 'मलंग' बनने के लिए प्रोत्साहित करे तो यह स्वाभाविक ही रहेगा। चाचाजी की कोटि के एक अन्य असाधारण पात्र की अवतारणा कहानीकार ने अपनी अन्य चरित्र-प्रधान कहानी 'खुदाराम' में की है। ऐसा प्रतीत होता है कि खुदाराम चाचाजी का ही परिवर्द्धित संस्करण है। चाचाजी अपनी अतुल सम्पत्ति को त्यागकर, धर्मशालाओं, मन्दिरों अथवा मस्जिदों में या उनके सम्मुख खुले स्थानों पर रात बिताते हैं। खुदाराम अपरिग्रह में चाचाजी से भी कुछ आगे निकल जाता है। वह अपने शरीर पर एक लंगोटी के अतिरिक्त कोई वस्त्र धारण नहीं करता। चाचाजी वैद्यक और हिकमत के ज्ञान द्वारा रोगियों की सेवा करते हैं, परन्तु खुदाराम आधिदैविक शक्ति द्वारा रोगियों को रोग मुक्त करता है। चाचाजी अपने नैतिक प्रभाव द्वारा साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने में सफल होते हैं, परन्तु खुदाराम बालकों और माताओं का दल लेकर उपद्रवोन्मुख हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य पहुँचकर इन्हें श्रीहत और निरुपाय कर देता है। चाचाजी के चरित्र में एक आकर्षक गम्भीरता है, परन्तु खुदाराम के कार्यों और मुद्राओं में एक विचित्र अल्हड़पन है, जिसे हम बालकों के साथ बालोचित व्यवहार एवं अर्द्धरात्रि में मुक्त कण्ठ से गीत गाना आदि कार्यों में देख सकते हैं। फिर भी इन दोनों अविस्मरणीय पात्रों के जीवन का लक्ष्य एक ही है-मानवमात्र का हित, जिसे ये दोनों अपने विशिष्ट मार्गों द्वारा सम्पन्न करते हैं।

'वीभत्स' कहानी में 'उग्र' ने सुमेरा नामक एक ऐसे पात्र की कल्पना की है, जो अपने विचार और व्यवहार द्वारा पाठकों के हृदय को जुगुप्सा से भर देता है। सुमेरा में अनेक अवगुण हैं, यथा- मिथ्या-भाषण और धूर्तता, परन्तु उसका सबसे बड़ा अवगुण है उसकी असाधारण कृपणता। कहानीकार ने यह दर्शाया है कि किस प्रकार असीमित कृपणता मनुष्य को अत्यन्त घृणित कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। 'नौ हजार नौ सौ निन्यानबे' नामक कहानी में एक अन्य अतिकृपण पात्र त्रिभुवन नाथ की उपहास्य है। वस्तुतः कृपण मनुष्य के चरित्र को दो विभिन्न प्रकारों से प्रस्तुत करना 'उग्र' के रचना कौशल का प्रमाण है। कृपण व्यक्ति के चरित्र को उपहास्य घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करना अपेक्षाकृत सरल कार्य है, परन्तु प्रस्तुतीकरण की इस प्रणाली का सम्भावित अवगुण यह है कि साधारण लेखक कृपण व्यक्ति को दण्डित दिखाकर काव्यगत न्याय के रुढ़ि की स्थापना के लोभ का संवरण नहीं कर पाता है। काव्यगत न्याय की स्थापना से पाठक का अनुरंजन तो अवश्य हो जाता है, परन्तु लेखक हास्य की उत्पत्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के कारण ऐसे पात्र के मनोजगत् के विश्लेषण का एक स्वर्णित अवसर खो देता है। इस दृष्टि से देखने पर आलोच्य कहानी के उच्च साहित्यिक स्तर का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। सात फीट, दो इंच लम्बा, काला, रूखा और परम भयानक दैत्याकार सुमेरा 'उग्र' के पात्रों की चित्र विधी में सर्वाधिक अविस्मरणीय पात्र है।

सुमेरा की अमानवीयता का एक अन्य दृष्टांत है-उसका इन्फ्लुएंजा के भयंकर प्रकोप से मरे व्यक्तियों को गाड़ी में लादकर गंगा में बहाने का लाभकर धन्धा प्रारम्भ करना। ऐसे समय में जबकि कोई भी व्यक्ति शवों के पास जाने तक के लिए तैयार नहीं था, सुमेरा निर्विकार भाव से शवों की खेपें गंगा तट पर ले जाता था। भय की साक्षात् मूर्ति सुमेरा स्वयं उस समय भयभीत हो उठा, जब गाड़ी में लदे हुए 11 शवों में से गंगा तक पहुँचते-पहुँचते 10 ही रह गए। लुप्त शव के प्रेतबाधित होने की कल्पना से वह सिहर उठा। लौटते समय उसने एक नंग-धड़ंग, दढ़ियल राक्षसवत् प्राणी को अग्नि के प्रकाश के पास नाचते देखा। वह भयानक व्यक्ति पास में पड़े हुए शव से चिमटे से मांस निकालकर आग पर सेंक-सेंककर खा रहा था। इस राक्षसीय दृश्य को देखकर सुमेरा थर-थर कांपने लगा। उसकी पशुता अघोरी के राक्षसत्व के सम्मुख पराजित हुई। इस वीभत्स दृश्य से वह इतना आतंकित हुआ कि घर पहुँचने पर भी वह उसके विभ्रम से मुक्त नहीं हुआ। अन्ततः वह इन्फ्लुएंजा से पीड़ित हुआ और उसका निधन हो गया। तीन दिन बाद जब पड़ोसी उसके शव की नारकीय दुर्गन्ध से पीड़ित होकर उसके घर में घुसे तो उन्होंने देखा कि उसका पेट फूलकर विदीर्ण हो गया था और अंतड़ियाँ बाहर दिखाई दे रही थीं। हिन्दी साहित्य में 'वीभत्स' का चित्रण बहुत कम हुआ है। वीभत्स का प्रस्तुतीकरण 'उग्र' ने ही किया है। इस दृष्टि से सुमेरा 'उग्र' के पात्रों में ही नहीं प्रत्युत हिन्दी कहानी के अमर चरित्रों में स्थान पाने का अधिकारी है।

'उग्र' ने अपनी अन्य प्रधान कहानियों में 'उसकी माँ' और 'मेरी माँ' में भी दो अविस्मरणीय पात्रों की कल्पना की है। 'उसकी माँ' की प्रमुख पात्र जानकी के उदात्त चरित्र को प्रस्तुत करते हुए लेखक उसकी तुलना भारत माता से करवाता है-"माँ! तू तो ठीक भारत माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी, उसका उजला हिमालय है, तेरे केश। हाँ, नक्शे से साबित करता हूँ तू भारत माता है। सिर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना, यह नाक विन्ध्याचल, दाढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ, वह बर्मा बन जाएगा, बिना उसके भारत माता का शृंगार शुद्ध न होगा।"[3]

जानकी के इस उदात्त, धीर और वात्सल्यपूर्ण चित्र को कहानी की घटनाओं से और स्पष्ट किया गया है। राजकमल चौधरी ने 'उग्र' कृत 'उसकी माँ' की तुलना मैक्सिम गोकी की 'माँ' से की है। 'मेरी माँ' नामक कहानी में बाहर से महाकाली, भीतर से गौरी प्रलयंबाहु एवं तेजोमयी क्षत्राणी के व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत किया गया है। शिल्पी द्वारा इसी कांस्यमूर्ति-सी काया वाली, फौलादी रंग वाली बलिदानी रणवीर सिंह की पत्नी के रौद्र रूप को इस कहानी में दिखाया गया है। उसकी वीरता के विषय में कहानीकार कहता है- "जैसे निदान में माधव, सूत्र, कहने में वाग्भट्ट, शरीर विज्ञान में सुश्रूत और चिकित्सा शास्त्र में चरक बेजोड़ है, वैसे ही मेरे मोहल्ले में मेरी माँ है।"[4] उसका बड़ा पुत्र वीरेन्द्र सिंह अंग्रेज सरकार की जेल में है। अपने छोटे पुत्र भीम का वह बार-बार देश के लिए आत्मोत्सर्ग की अपने पूर्वजों की परम्परा का स्मरण कराती है। अन्ततः मद्यपानरत अपने 28 वर्षीय पुत्र भीम को दण्डित करने के लिए उद्यत होती है। हाथ में चाबुक लिए महाराष्ट्रिनों-सी कसी साड़ी पहने, बिखरे बाल, रक्त नेत्र, स्फुरित अधरोष्ठ, तप्त तेजोमय रूप का सामना करना उसके लिए असम्भव हो जाता है।

'दितवारिया' कहानी में 80 वर्षीय दितवारिया के आत्माभिराम का प्रभावपूर्ण अंकन हुआ है। लोनाघाट की इस प्रसिद्ध क्षत्राणी के नाम पर इन्दौर का दितवारिया बाजार लगा करता है। दितवारिया की पुत्री सीता बीमार है और अर्थाभाव के कारण वह उसका उचित उपचार भी नहीं करा सकती है। उसे अभी-अभी दो मन मूंग प्राप्त हुए हैं, जिन्हें वह उठाकर दितवारिया बाजारमें बेचने लाई है। लेखक उसकी दुरवस्था से द्रवित होकर सहायतार्थ चार रुपए देना

चाहता है, परन्तु दितवारिया किसी प्रकार का दान नहीं ले सकती। अन्ततः लेखक मूंग खरीद लेता है और दितवारिया मूंग के मूल्य के तीन रुपए लेकर चली जाती है।

'मूर्खा' नामक कहानी में लेखक ने 85 वर्षीया गुलाबो के चरित्र की एक झलक प्रस्तुत की है। कहानी का प्रारम्भ इस प्रकार होता है-"अम्मा का नाम गुलाबो, मुँह देखो तो छुहारा, आकृति धनुष की तरह। गुलाबो अम्मा की अवस्था अस्सी और पाँच पिचासी वर्ष।" गुलाबो वृद्धा गाय को घर में रखने के पक्ष में है और उसके पुत्र उस गाय को बेचने के पक्ष में, पिंजरा पोल बेचने अथवा कसाई के हाथों बेचने के पक्ष में हैं। गुलाबो का मत न्याय, धर्म और कृतज्ञता पर आधारित है और वह गाय को रखने के लिए कोई भी बलिदान करने को उद्यत है। एक रात जब उसका सबसे छोटा पुत्र गाय को घर से निकालने के उद्देश्य से उसके थान पर पहुँचता है, तो वह अपने पुत्र को इस प्रकार चेतावनी देती है, "में आज अन्तिम बार कहे देती हूँ, गाय घर के बाहर निकली, तो दाना-पानी छोड़ मैं भी प्राण देने का निश्चय करूँगी। मेरी जिन्दगी में इस बेइंसाफी नहीं हो सकती कि जिसने हमारे लिए सारी जिन्दगी खून का पानी नहीं, दूध बनाया, इस अनबोले पशु को बुढ़ापे में घर से बाहर निकाल दिया जाय।"5 गुलाबो अन्त तक अपने निश्चय पर दृढ़ रहती है। 'मेरी माँ, उसकी माँ', 'दितवारिया', 'मूर्खा' नामक कहानियों के अध्ययन से प्रकट होता है कि इन कहानियों में वर्णित सभी नारियाँ दृढ़ चरित्र की वृद्धाएँ हैं, जो आर्य धर्म के किसी न किसी सिद्धान्त पर डटी रहती हैं। चाहे उन्हैं उसका कितना भी मूल्य चुकाना पड़े। 'उग्र' ने अपनी कहानियों में चित्रित युवा स्त्रियों को इस प्रकार की उदात्त भूमिकाओं में नहीं दिखाया है, प्रत्युत उन्हैं सामाजिक और वैयक्तिक अत्याचारों से पीड़ित होते हुए दिखाया गया है।

'विधवा' कहानी की नायिका रमा बाल वैधव्य के दुःखों से पीड़ित होकर वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेती है, दिल्ली की चाल की उपेक्षित हिन्दू विधवा पार्वती इस्लाम धर्म ग्रहण कर अपने पुत्र मौला द्वारा हिन्दू समाज से प्रचण्ड प्रतिशोध लेती है। 'चाँदनी' की नायिका चाँदनी अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए किसी राज्य के शासक द्वारा मारी जाती है। 'करुण कहानी' की नायिका लीला अपने वेश्यागामी पति द्वारा दुश्चरित्रता के सन्देह में मौत के घाट उतारी जाती है। 'रमा बी.ए.' की नायिका रमा मुस्लिम धर्मान्धों द्वारा अपहृत एवं शीलभ्रष्ट नारी है, जो अपने कायर पुरुष पति उल्फतराय उर्फ 'वफा' लाहौरवी से घृणा करती है और उनके साथ न रहकर नारी उद्धार के कार्य को अपनाती है। स्पष्ट है कि 'उग्र' की इन नारियों को स्वतंत्रता और समानता के वातावरण में रहकर अपने व्यक्तित्व को उन्नत करने का अवसर नहीं मिला।

'उग्र' की कहानियों की उपर्युक्त युवा स्त्रियाँ रुढ़िग्रस्त परिवारों की अविमुक्त कुलवधुएँ अथवा पुत्रियाँ हैं, जिनका जीवन समाज एवं परिवार के अत्याचारों और रुढ़ियों के कारण विषादयुक्त बन गया है। कदाचित् अपनी एक कहानी 'राष्ट्रीय पोशाक' में 'उग्र' ने कहानी की नायिका मंजुला माथुर को एक सुशिक्षिता, सबला एवं आत्मनिर्भर नारी के रूप में चित्रित किया है। विवाह के सम्बन्ध में उसे आत्म निर्णय का अधिकार प्राप्त है। वह क्लब के सदस्यों को सम्बोधित करती हुई कहती है, "नारी शक्ति देखती है, आप लोगों में से कोई अगर पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी भी होता, तो मेरे दिल में उसके लिए जगह होती।"[6] क्लब के सदस्यों में से कुरुप रिसर्च स्कॉलर रामन्ना ही ऐसा व्यक्ति है, जो उसे पसन्द नहीं आता है। निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम आने के फलस्वरूप जब रामन्ना प्रांत के शिक्षा मंत्री का संसदीय सचिव नियुक्त किया जाता है, तो क्षणभर के लिए वह श्रीहत-सी हो जाती है। परन्तु रामन्ना द्वारा अपने वचन का स्मरण कराने पर वह अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर उसका अभिवादन करती है।

'उग्र' की कहानियों में नारी चरित्र का अध्ययन कतिपय सीमित दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक पुरुष पात्रों के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है, उन्होंने पात्र चयन में वैविध्य और प्रस्तुतीकरण में सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। जहाँ उन्होंने खुदाराम, मलंग (चाचाजी) जैसे आदर्शवादी पात्रों का सृजन किया है, वहाँ उन्हो ने सेठ भारत भूषण, चौधरी रणजीत राय जैसे धनिक चरित्रों, जटाशंकर शास्त्री और पण्डित कल्पनाथ जैसे रुढ़िवादी, गंगदत्त, जामवंत सिंह, कमलनयन, त्रिभुवन नाथ, सेठ करोड़ीमल एवं त्रिलोचन तिवारी जैसे उपहास्य पात्रों का भी सृजन किया है। इन सभी पात्रों को सुस्पष्ट और चारो ओर से पूर्ण कहा जा सकता है। पात्रों की सृष्टि में कथाकार पूर्ण स्वतंत्र होता है, वह काल्पनिक पात्रों की सृष्टि भी कर सकता है। किन्तु यथार्थ जीवन से लिए गए पात्र अधिक सजीव तथा प्रभावोत्पादक होते हैं। चरित्र चित्रण से अभिप्राय पात्रों के व्यक्तित्व के वाह्य तथा आन्तरिक स्वरूप के उद्घाटन से है। इसकी दो विधियाँ प्रचलित हैं-प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक। चरित्र चित्रण की मुख्य विशेषताएँ हैं-अनुकूलता, स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता और मौलिकता।

'उग्र' यथार्थ जीवन से सम्बन्ध रखते हुए भी आदर्शवादी हैं और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति गहन आस्था रखते हैं। ये पात्र गौरवशाली परम्पराओं तथा मर्यादापूर्ण मान्यताओं के पोषण और प्रसार के लिए प्रयत्नशील है। 'उग्र' जी मुख्यतः सामाजिक कथाकार हैं, इसलिए उनके अधिकांश पात्र वर्गगत हैं। वे भारतीय समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। उच्च वर्ग के पात्र, अपने वर्ग के तत्कालीन भ्रष्टाचार, शोषण वृत्ति तथा विलासिता का उद्घाटन करते हैं। मध्य वर्ग के पात्र, उस समय की सामाजिक असंगतियों और उनसे होने वाले दुष्परिणामों की कथा कहते हैं। निम्न वर्ग के पात्र अज्ञानता, विवशता और नीचता के सभी व्यापारों को प्रकाश में लाते हैं। इसी प्रकार हिन्दू पात्रों में आर्य समाजी पात्र तर्क-वितर्क, सुधार एवं आर्य धर्म के प्रचार मे तल्लीन हैं और सनातन धर्मी पात्र पुरातन परम्पराओं, रुढ़िवादी मान्यताओं अंधविश्वासमीय धार्मिक वृत्तियों पर प्राण न्यौछावर करते हैं। मुसलमान पात्रों में संकीर्ण विचारों के मुसलमान धार्मिक उन्माद से अन्धे होकर हिंसा वृत्ति का आश्रय लेते हैं और उदार मुसलमान मानवता के ऊँचे आदर्शों के अनुसार आचरण करते हैं। 'उग्र' की नारी पात्र मध्य वर्ग तथा निम्न वर्ग से सम्बन्धित है। मध्य वर्ग की नारी पात्र अपने वर्ग के कठोर बन्धनों, पुरुषों के अन्यायपूर्ण व्यवहार तथा निजी वेदना को व्यक्त करती हैं। निम्न वर्ग की नारियाँ प्रायः वेश्याएँ हैं, जो अपने नैतिक पतन और उसके मूल कारणों का उद्घाटन करती हैं। कथाकार ने घटनाओं के संचालन और मूल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मुख्य पात्रों के साथ अनेक गौण पात्रों की सृष्टि भी की है। उसके गौण पात्र आवश्यक नहीं हैं, वे वातावरण के निर्माण में सहायता देते हैं, कथानकों को सरस तथा सबल बनाते हैं। उनके माध्यम से प्रधान पात्रों के चरित्र पर प्रकाश भी पड़ता है। 'उग्र' के प्रधान पात्रों में नायक-नायिका, प्रतिनायक, प्रतिनायिका, पताका नायक, पताका नायिका आदि का निर्वाचन करना कठिन है। वे पुरातन मान्यताओं में अधिक विश्वास नहीं रखते हैं।

'उग्र' की कथा कृतियों के पात्रों का विभाजन करें, तो सुमेरा, रामरूप, त्रिभुवन नाथ, भिक्खन, ज्ञानू, मलंग आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं जबकि दितवारिया, तुलसा, चाँदनी, जमालो, गुलाबो, सुरूपा, रमा आदि प्रमुख स्त्री पात्र हैं। 'उग्र' की कहानियों के ये चरित्र वाह्य परिस्थितियों के अनुसार संवेदनशील हैं, उनके

जीवन में उत्थान-पतन के अवसर पग-पग पर आते हैं, वे उठते भी हैं और गिरते भी हैं। उनमें मानवीय गुण-दोषों का प्रदर्शन अधिक सफलता से हुआ है, इसी से वे पाठकों को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित भी कर सके हैं।

'उग्र' जी का चरित्र चित्रण कला पात्रों के आंतरिक पक्ष की सर्वथा उपेक्षा करती है या उसकी अभिव्यक्ति में असमर्थ है। वे अपनी कुछ कृतियों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को भी प्रश्रय देते हैं, उनमें वे ऐसी परिस्थितियों का सृजन करते हैं, जिनसे पात्रों का संघर्षण होता है और उनके दमित गुण-दोष स्वत: अपने स्वाभाविक रूप से बाहर उभर आते हैं। 'उग्र' जी अपने प्रतिपाद्य विषय, कथानकों आदि के अनुरूप पात्रों के व्यक्तित्व को उभारते हैं। उनका उद्देश्य प्राय: वाह्य व्यभिचार को चित्रित करना है और उनके कथानक वाह्य जीवन के यथार्थ को लेकर चलते हैं, इसलिए पात्रों के चरित्र चित्रण में यदि उनकी कला, वाह्य व्यक्तित्व को प्रधानता दे, तो यह स्वाभाविक है।

'उग्र' चरित्र चित्रण की प्रचलित दोनों पद्धतियों-प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक का अवसरानुसार उपयोग करते हैं। प्रथम पद्धति का आश्रय लेते हुए, वे स्वयं पात्रों के गुण-दोषों, आचार-विचारों तथा दृष्टिकोण का परिचय देते हैं और द्वितीय पद्धति को अपनाते समय, वे अपने पात्रों के कतिपय गुणों से विभूषित करके, उनसे होने वाली प्रतिक्रियाओं आदि के माध्यम से चरित्रों को प्रकाश में आने देते हैं। प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक पद्धति द्वारा किए गए चरित्र चित्रण का एक उदाहरण देखिए-"भिक्खन बहादुरपुर गाँव (जिला गोरखपुर) का एक गरीब किसान है, जो अपनी माँ, पत्नी और दो बच्चो ं के साथ एक झोपड़ी में रहता है। बड़ी बेटी के ब्याह के लिए उसे महाजन से कर्ज लेना पड़ता है और कर्ज चुकाने के लिए वह दिन-रात मेहनत भी करता है मगर ईश्वर को कुछ और ही मंजूर होता है, उसकी सारी फसल नष्ट हो जाती है जिससे अब उसके पास कोई साधन शेष नहीं होता कि वह कर्ज चुका सके और इसी बीच देवन सिंह के प्यादे भी मालगुजारी लेने आ जाते हैं। कैसी विडम्बना है कि एक तरफ वह और उसका परिवार भूख से पीड़ित है, उसके पास कुछ खाने तक के लिए नहीं है, दूसरी तरफ मालगुजारी।"

'अभागा किसान' कहानी के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि चरित्र चित्रण की यह पद्धति अपेक्षाकृत बहुत सरल है, किन्तु इसका अधिक प्रयोग कथाकार की चरित्र चित्रण कला में पटुता के अभाव का सूचक भी हो सकता है। इसलिए सजग कलाकार अप्रत्यक्ष या अभिनयात्मक पद्धति का अधिक आश्रय लेते हैं। 'उग्र' जी की रचनाओं में इस पद्धति का उपयोग भी यत्र-तत्र हुआ है। 'रेन ऑफ टेरर' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-"राक्षसों! यह तुमने क्या किया? ऐसे असमर्थ, वृद्ध और निरीह पर यह पाशविक अत्याचार! तुम अंग्रेज हो? धिक्कार! मैं भी तुम्हारी बहन हूँ, पर इस वृद्ध ने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया है, सुनोगे ? नहीं, नहीं सुनाऊँगी। वह पवित्र नाम तुम राक्षसों के कानों के स्पर्श मात्र से अपवित्र हो जायेंगे। हाय! हाय!! पिता! प्यारे पिता!!"[7] कथाकार 'उग्र' अंग्रेज विधवा स्त्री के उपर्युक्त संवाद, आचार-विचार तथा हाव-भाव से उसके चारित्रिक स्वरूप का उद्घाटन करते हैं। यहाँ कथाकार तटस्थ है, वह अंग्रेज विधवा स्त्री के उपर्युक्त संवाद द्वारा आतातायी अंग्रेजों के शोषण व अत्याचार को प्रकाशित होने देता है। 'उग्र' के पात्र निजी आचार-विचार, आदर्श तथा व्यवहार लिए हुए हैं। इसलिए उन्हें अनुकृति न कहकर, मौलिक मानना अधिक उपयुक्त है। वे अपने सद्गुणों से अच्छे और दुर्गुणों से बुरे हैं, उनका आचरण 'अपनापन' सूचित करता है। वे हमारे सम्मान के पात्र भी हैं और उपेक्षा के कारण भी हैं। भिक्खन, ज्ञानू, रामरूप, दितवारिया, कमलनैन आदि सभी पात्र निजी कार्य-कलाप, चाल-ढाल तथा बोल-चाल की विशिष्टता रखते हैं। ये स्वस्थ हों या अस्वस्थ, किन्तु मौलिक हैं। उन्हें प्राचीन पात्रों की अनुकृति या विदेशी पात्रों की प्रतिछाया नहीं माना जा सकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'उग्र' के पात्र तत्कालीन सामाजिक जीवन की अच्छाईयों और बुराईयों के सूचक हैं, उनके कार्य-व्यापार घटनाओं का संचालन करते हैं और कथाओं की मूल संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। वे सजीव शब्द मूर्तियों के समान हैं और वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें कुछ स्थिर चरित्र हैं और कुछ गतिशील चरित्र हैं। गतिशील पात्र उठते भी हैं और गिरते भी हैं। उत्थान और पतन की सीढ़ियों पर चढ़ने और उनसे गिरने में उनकी गतिशीलता बड़ी प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। कथाकार उनके वाह्य व्यक्तित्व का ही विशेषज्ञ है, उनके आंतरिक व्यक्तित्व के विश्लेषण की अधिक आवश्यकता उसे अनुभव नहीं होती है। कतिपय पात्रों की मानसिक हलचलों से ही वह हमारा परिचय कराता है। उसने चरित्र चित्रण के लिए प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक और परोक्ष या अभिनयात्मक पद्धतियों का यथोचित उपयोग किया है। उसे चरित्र चित्रण में अनुकूलता, स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता आदि गुण मिलते हैं। उसके पात्र मौलिक हैं और अपने समय के अस्वस्थ समाज की कथा कहते हैं। वे काम-कुण्ठाओं से ग्रस्त न होकर, अन्य कुकर्मों, कुरीतियों तथा विसंगतियों से घिरे हुए हैं। उनमें मानव-पात्र, दानव-पात्रों की पाशविकता का घोर विरोध है। दुष्ट तथा दुराचारी पात्रों के प्रति घृणा एवं विद्रोह का भाव जगाना ही कथाकार को अभीष्ट है। वह इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यभिचारी पात्रों को नग्न रूप में चित्रित करता है। उसके ये पात्र शरीर से मनुष्य होकर भी, पशु हैं और कठोर से कठोर दण्ड के अधिकारी हैं। कथाकार उनके प्रति सहानुभूति दिखाना अनुचित समझता है।

संदर्भ-

1. 'उग्र', पाण्डेय बेचन शर्मा, श्रेष्ठ रचनाएँ (भाग-1), आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 47
2. वही, पृ. 53
3. वही, पृ. 355
4. वही, पृ. 366
5. वही, पृ. 32
6. 'उग्र', पाण्डेय बेचन शर्मा राष्ट्रीय पोशाक: जब सारा आलम सोता है, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1964, पृ. 99
7. 'उग्र', पाण्डेय बेचन शर्मा, श्रेष्ठ रचनाएँ (भाग-1), आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 282

21वीं सदी में भारत-अमेरिका संबंधः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पवन कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी बंसी लाल विश्वविद्यालय, भिवानी

शोध सार

वर्तमान समय में भारत व अमेरिका दोनों ही शक्तिशाली देश हैं। दोनों ही देशों ने औपनिवेशिक सरकारों के खिलाफ संघर्ष करके स्वतंत्रता प्राप्त की। अमेरिका 1776 ई0 में आजाद हुआ, वहीं भारत को 1947 ई0 में स्वतंत्रता मिली। 1947 से पहले भारत और अमेरिका के बीच इतने अच्छे संबंध नहीं थे। परंतु 1947 के बाद इनके बीच संबंधों में सुधार होता गया। लेकिन 2014 के बाद, मोदी सरकार आने के बाद दोनों देशों के बीच संबंध बहुत अच्छे हो गये। वर्तमान समय में अमेरिका एक बहुत शक्तिशाली विकसित देश है, जिसका संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन में पूरा दबदबा है और यह संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य भी है। इसके विपरीत भारत एक शक्तिशाली देश तो परंतु अमेरिका की तरह विकसित न होते हुए विकासशील है और भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य भी नहीं है। अमेरिका पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का समर्थक है वहीं भारत ने विकास के संदर्भ में समाजवादी अर्थव्यवस्था को महत्त्व दिया है। वर्तमान समय में भारत और अमेरिका दोनों ही लोकतांत्रिक देश है। वर्तमान समय में भारत और अमेरिका के बीच आर्थिक सहयोग बढ़ता जा रहा है और आने वाले वर्षों में और अधिक बढ़ने की संभावना है। इसी प्रकार सैन्य सहयोग, राजनीतिक सहयोग, सांस्कृतिक सहयोग भी बढ़े हैं। भारत-अमेरिका संबंधों के लिहाज से साल 2020 मील का पत्थर साबित हुआ है। साल 2020 में दोनों देशों ने COVID-19 महामारी और यहाँ हुए राष्ट्रपति चुनाव के चलते पैदा घरेलू राजनीतिक गतिरोध के बावजूद अभूतपूर्व ऊँचाई और गति प्रदान की। साल 2020 में भारत और अमेरिका के बीच संबंध हर तरह से खूब मजबूत हुए हैं। भारत और अमेरिका के बीच महत्त्वपूर्ण श्वेकार समझौता हुआ जिससे दोनों देशों ने अपने रक्षा संबंधों को और प्रगाढ़ बनाने की तरफ कदम बढ़ाए। COVID-19 वैक्सीन तैयार करने से लेकर हिंद-प्रशांत की सुरक्षा तक दोनों देशों ने 2020 में रणनीतिक सांझेदारी को मजबूत बनाने के लिए मिलकर काम किया है। इसी के साथ-साथ पूरे विश्व पर चीनी प्रभाव को कम करने के लिए भी भारत-अमेरिका ने क्वाड के माध्यम से वर्तमान में अपने संबंधों को और प्रगाढ़ किया है।

मुख्य शब्दः- गुट-निरपेक्ष, रणनीतिक सहयोग, अधिकृत, CAATSA, I2U2 वार्ता, क्वाड, लोकतन्त्र, संयुक्त राष्ट्र संघ।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र को पूरा करने के लिए द्वितीय आँकडों का प्रयोग किया गया है। जिसमें मुख्यतः पुस्तकें, समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, लोकसभा चौनल व पहले से लिखे गए शोध पत्र आदि शामिल हैं।

शोध उद्देश्य

''भारत की स्वतंत्रता के बाद भारत-अमेरिकी संबंधों का अध्ययन करना।''

प्रस्तावना

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच संबंध भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन से ही हैं और ये 1947 के बाद यूनाइटेड किंगडम से आजादी के बाद भी रहे। वर्तमान में, संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के बीच घनिष्ठ संबंध हैं और उन्होंने आतंकरोधी और हिंद प्रशांत क्षेत्र में चीनी प्रभाव का मुकाबला करने जैसे मुद्दों पर सहयोग को गहरा किया है लेकिन आजादी के बाद प्रारंभिक वर्षों में जैसे- 1954 में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने पाकिस्तान को एक केंद्रीय संधि संगठन (CENTO) का सहयोगी बनाया। परिणामस्वरूप भारत ने पाकिस्तान-अमेरिकी संबंधों का मुकाबल करने के लिए सोवियत संघ के साथ रणनीतिक और सैन्य संबंध स्थापित किये। 1961 में, भारत शीत युद्ध में अमेरिका या सोवियत संघ के साथ गठबंधन करने से दूर रहने के लिए गुटनिरपेक्ष आंदोलन का संस्थापक सदस्य बन गया। 1965 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान निक्सन प्रशासन के पाकिस्तान के समर्थन ने 1991 में सोवियत संघ के विघटन तक संबंधों को प्रभावित किया। 1990 के दशक में, भारतीय विदेश नीति एक-ध्रुवीय दुनिया के अनुकूल हो गई और भारत ने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ घनिष्ठ संबंध विकसित किये।

21वीं सदी में, भारतीय विदेश नीति ने बहुध्रुवीय दुनिया में संप्रभु अधिकारों की रक्षा और राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने के लिए भारत की रणनीतिक स्वायत्तता का लाभ उठाने की कोशिश की है। राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू. बुश (2001-09) और बराक ओबामा (2009-17) के प्रशासन के तहत, अमेरिका ने

भारत के मूल राष्ट्रीय हितों के लिए समायोजन का प्रदर्शन किया है। द्विपक्षीय व्यापार और निवेश में वृद्धि, वैश्विक, सुरक्षा मामलों पर सहयोग, वैश्विक शासन के मामलों (संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद्) पर निर्णय लेने में भारत को शामिल करना, व्यापार और निवेश मंचों (WB, IMF, APEC) में उन्नत प्रतिनिधित्व, परमाणु आपूर्तिकर्त्ता समूह में प्रवेश के लिए समर्थन मुख्य मील के पत्थर बन गए हैं ओर अमेरिका-भारत के संबंधों पर गति और प्रगति का एक उपाय है। 2014 से दोनों देशों के बीच रणनीतिक सहयोग गहरा हुआ है और भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका का ''प्रमुख रक्षा सांझेदार'' घोषित किया गया। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका ने क्वाड और I2U2 समूह जैसे बहुपक्षीय समूहों के बीच अपने सहयोग को भी आगे बढ़ाया है।

भारत-अमेरिका संबंध: 1947-1965

टूमैन प्रशासन के तहत संयुक्त राज्य अमेरिका 1940 के दशक के अंत में भारत के पक्ष में झुक गया था, जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश अमेरिकी योजनाकारों ने पड़ोसी पाकिस्तान की तुलना में कूटनीतिक रूप से भारत को अधिक मूल्यवान माना। हालाँकि, शीत युद्ध के दौरान, नेहरू की तटस्थता की नीति कई पर्यवेक्षकों के लिए बोझिल थी। अमेरिकी अधिकारियों ने भारत की गुट-निरपेक्षता की नीति को नकारात्मक रूप से देखा। सन् 1948 में, नेहरू ने तीसरे पक्ष की मध्यस्थता के माध्यम से कश्मीरी संकट को हल करने के अमेरिकी सुझावों को अस्वीकार कर दिया। नेहरू का सन् 1949 का अमेरिकी दौरा ''एक गैर-कूटनीतिक आपदा'' था। जिसने दोनों पक्षों में बुरी भावनाएँ पैदा कीं। भारत ने अमेरिका की इस सलाह को अस्वीकार कर दिया कि उसे चीन पर साम्यवादी विजय को मान्यता नहीं देनी चाहिए, लेकिन उसने अमेरिका का समर्थन किया जब उसने कोरियाई युद्ध में उत्तर कोरिया के आक्रमण की निंदा करते हुए सन् 1950 के संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव का समर्थन किया। सन् 1959 में, आइजन हावर दोनों देशों के बीच आश्चर्यजनक संबंधों को मजबूत करने के लिए भारत का दौरा करने वाले पहले अमेरिकी राष्ट्रपति बने। सन् 1961 में जब भारत ने गोवा में पुर्तगाली उपनिवेश पर कब्जा कर लिया, तब संबंधों में गिरावट आई। जिसमें कैनेडी प्रशासन ने भारतीय सरकार की सशस्त्र कार्यवाही की निंदा की और माँग की कि सभी भारतीय सेनाएँ बिना शर्त गोवा की धरती से वापिस आ जाएँ, साथ ही भारत को दी जाने वाली सभी विदेशी सहायता में 25 प्रतिशत की कटौती की। कैनेडी प्रशासन ने सन् 1962 के चीन-भारतीय युद्ध के दौरान भारत का खुलकर समर्थन किया और चीनी कार्यवाही को ''भारत के खिलाफ स्पष्ट चीनी कम्युनिस्ट आक्रमण'' माना।

भारत-अमेरिका संबध: 1965-1992

सन् 1963 में कैनेडी की हत्या के बाद भारत अमेरिका के संबंध धीरे-धीरे खराब होने लगे। सन् 1970 में निक्सन प्रशासन के तहत संबंध सबसे निचले स्तर पर पहुँच गए। उन्होंने पाकिस्तान के साथ बहुत करीबी संबंध स्थापित किये। उसे सैन्य और आर्थिक रूप से मदद की, क्योंकि भारत अब इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में सोवियत संघ की ओर झुक रहा था। सन् 1974 में भारत ने अपना पहला परमाणु परीक्षण, स्माइलिंग बुद्धा किया, जिसका अमेरिका ने विरोध किया। सन् 1970 के दशक के अंत में, जनता पार्टी के नेता मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्री बनने के बाद, भारत ने जिमी कार्टर के नेतृत्व में अमेरिका के साथ अपने संबंधों में सुधार किया। सन् 1980 में इंदिरा गाँधी की सत्ता में वापसी के बावजूद, दोनों देशों के बीच संबंधों में धीरे-धीरे सुधार जारी रहा। सन् 1984 में, वाशिंगटन ने भारत को नौसेना के फ्रिगेट के लिए गैस टर्बाइन और भारत के हल्के लड़ाकू विमानों ने प्रोटोटाइप के इंजन सहित चयनित प्रौद्योगिकी की आपूर्ति को मंजूरी दी।

भारत-अमेरिका संबंध: 1993-1997

राष्ट्रपति बिल क्लिंटन (1993-2001) और पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव (1991-1996) के कार्यकाल में दोनों देशों ने संबंधों को ठीक से नहीं सँभाला। ब्राउन संशोधन जिसने सन् 1995 में पाकिस्तान को अमेरिकी सहायता बहाल की जो एक चिंता पैदा करने वाला था।

NDA (I) और NDA (II) सरकारें (1998-2004)

अटल बिहारी वाजपेयी के भारतीय प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने पोखरण में परमाणु हथियार परीक्षण को अधिकृत किया। अमेरिका ने इस परीक्षण की कड़ी निंदा की, प्रतिबंध लगाने का वादा किया। राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने भारत पर आर्थिक प्रतिबंध लगाए। सभी सैन्य और आर्थिक सहायता में कटौती, अमेरिकी बैंकों द्वारा राज्य के स्वामित्व वाली भारतीय कंपनियों को ऋण फ्रीज करना, खाद खरीद को छोड़कर सभी के लिए भारत को ऋण देना प्रतिबंधित करना आदि प्रतिबंध लगाएं ये प्रतिबंध अप्रभावी साबित हुए। भारत एक मजबूत आर्थिक वृद्धि का अनुभव कर रहा था। बुश प्रशासन के साथ बेहतर कूटनीतिक संबंध स्थापित हुए। सन् 2004 में, अमेरिका ने पाकिस्तान को प्रमुख गैर-नाटो सहयोगी (MNNA) का दर्जा देने का फैसला किया। सन् 2001 में अमेरिका के खिलाफ 11 सितंबर के हमले के बाद, राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने स्वेज नहर से सिंगापुर तक रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण हिंद महासागर के समुद्री मार्गों को नियंत्रित करने में भारत के साथ मिलकर काम किया।

UPA (I) और UPA (II) सरकारें (2004-2014)

जॉर्ज डब्ल्यू बुश प्रशासन के दौरान, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच संबंध मुख्य रूप से बढ़ते इस्लामी चरमपंथ, ऊर्जा सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन से संबंधित आम चिंताओं के कारण फले-फूले। दिसंबर 2004 की सुनामी के बाद, अमेरिकी और भारतीय नौसेनाओं ने खोज और बचाव कार्यों तथा प्रभावित क्षेत्रों ने पुनर्निर्माण में सहयोग किया। सन् 2005 में, संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत ने द्विपक्षीय सुरक्षा सहयोग का विस्तार करने के लक्ष्य के साथ एक दसवर्षीय रक्षा रुपरेखा समझौते पर हस्ताक्षर किये। अप्रैल, 2005 में एक ओपन स्काईज समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसने उड़ानों की संख्या में वृद्धि के माध्यम से, व्यापार, पर्यटन और व्यवसाय को बढ़ावा मिला और एयर इंडिया ने 8 बिलियन डॉलर की लागत से 68 अमेरिकी बोइंग विमान खरीदे। नवंबर 2010 में, राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारत का दौरा किया और भारतीय संसद के संयुक्त सत्र को संबोधित किया। जहाँ उन्होंने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद्

में स्थायी सीट के लिए भारत की बोली का समर्थन किया। दिसंबर 2013 में, न्यूयॉर्क में भारत की उप महा वाणिज्य दूत देवयानी खोबरागड़े को गिरफ्तार किया गया और अमेरिकी अभियोजकों ने उन पर झूठे कार्य वीजा दस्तावेज जमा करने और अपने घर की नौकरानी को न्यूनतम कानूनी मजदूरी से बहुत कम भुगतान करने का आरोप लगाया। इस घटना के बाद भारत सरकार ने विरोध किया और संबंधों में दरार पैदा हो गई।

NDA सरकार (2014 से वर्तमान तक)

2014 में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल के दौरान भारत-संयुक्त राज्य अमेरिका संबंधों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। वर्तमान में, भारत और अमेरिका एक व्यापक और विस्तारित सांस्कृतिक, रणनीतिक, सैन्य और आर्थिक संबंध सांझा करते हैं। हाल ही में प्रमुख घटनाक्रमों में भारत की अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास, इंजीनियरिंग और चिकित्सा क्षेत्रों में घनिष्ठ संबंध, तेजी से मुखर होते चीन को प्रतिबंधित करने के लिए लंबे समय से चले आ रहे अमेरिका विरोध का उलट होना शामिल है। अक्टूबर 2018 में, भारत ने अमेरिका ब।जै। अधिनियम की अनदेखी करते हुए, दुनिया की सबसे शक्तिशाली मिसाइल रक्षा प्रणालियों में से एक, चार S-400 ट्रायम्फ सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइल रक्षा प्रणाली खरीदने के लिए रूस के साथ 5.43 बिलियन अमेरिकी डॉलर का ऐतिहासिक समझौता किया। इस पर अमेरिका ने भारत को प्रतिबंधों की धमकी दी। ईरान से तेल खरीदने के फैसले पर भी भारत को अमेरिका ने प्रतिबंधों की धमकी दी। 21 दिसंबर 2020 को, संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने भारत-अमेरिकी संबंधों को मजबूत बनाने के लिए प्रधानमंत्री मोदी को लीजन और मेरिट से सम्मानित किया। अप्रैल 2021 में अमेरिकी-भारत संबंधों में तनाव तब शुरू हुआ जब भारत को COVID-19 वैक्सीन पेटेंट सांझा करने से इंकार कर दिया। लेकिन, अप्रैल के अंत में भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार, अजीत डोभाल के साथ एक फोन कॉल के बाद, बाइडेन प्रशासन ने कहा कि वह भारत को ऑक्सफोर्ड-एस्ट्रजेनेका कोविड-19 वैक्सीन के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध कराएगा और भारत को वैक्सीन के निर्माण के लिए आवश्यक रुपये 714 करोड़ (2023 में रुपये 801 करोड़) से अधिक मूल्य के दवा उपचार, वेंटिलेटर, व्यक्तिगत सुरक्षात्मक उपकरण और यांत्रिक भाग भेजना शुरू कर दिया। वर्तमान में यूक्रेन पर रूसी आक्रमण को लेकर कुछ मतभेद हैं, जो बाइडेन प्रेसीडेंसी के दौरान अमेरिका और भारत ने रक्षा, महत्त्वपूर्ण खनिज, अंतरिक्ष, जलवायु, स्वास्थ्य सेवा और अन्य क्षेत्रों के सहयोग को मजबूत किया है। मोदी और बाइडेन ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा आतंकवादी संगठनों के रूप में पहचाने गए सभी समूहों के खिलाफ ठोस कार्यवाही का आह्वान दोहराया। वर्तमान में, डोनाल्ड ट्रम्प के अमेरिका के राष्ट्रपति बनने से यही आशा की जाती है कि भविष्य में भारत-अमेरिकी संबंधों को नई राह मिलेगी।

सैन्य संबंध

अमेरिका ने अपने रक्षा सांझेदारों के साथ चार ''आधारभूत'' समझौते किये। चार समझौतों में से पहला है, जनरल सिक्योरिटी ऑफ मिलिट्री इंफोर्मेशन एग्रीमेंट (GSOMIA), 2002 में भारत और अमेरिका द्वारा हस्ताक्षर किये गए थे। यह समझौता दोनों देशों के बीच सैन्य खुफिया जानकारी को सांझा करने में सक्षम बनाता है।

दूसरा समझौता, लॉजिस्टिक्स एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट (LEMOA), दोनों देशों द्वारा 29 अगस्त, 2016 को हस्ताक्षरित किया गया। यह समझौता किसी भी देश को सेना को फिर से आपूर्ति करने या मरम्मत करने के लिए दूसरों के ठिकानों को उपयोग करने की अनुमति देता है।

तीसरा समझौता, संचार संगतता और सुरक्षा समझौता (COMCASA) सितम्बर, 2018 में 2+2 वार्त्ता के दौरान हस्ताक्षरित किया गया। यह समझौता दोनों देशों को द्विपक्षीय और बहुराष्ट्रीय प्रशिक्षण अभ्यास और संचालन के दौरान सुरक्षित संचार सांझा करने और अनुमोदित उपकरणों पर जानकारी का आदान-प्रदान करने में सक्षम बनाता है।

चौथा समझौता, बेसिक एक्सचेंज एंड कॉ-ऑपरेशन एग्रीमेंट (BECA), जिस पर सन् 2020 में हस्ताक्षर किये गए थे, भारत और अमेरिकी भू-राष्ट्रीय भू-स्थानिक, खुफिया एजेंसी के बीच अवर्गीकृत और नियंत्रित भू-स्थानिक उत्पादों, स्थलाकृतियों, समुद्री और वैमानिकी डेटा, उत्पादों और सेवाओं के आदान-प्रदान की अनुमति देता है। भारतीय सेना और अमेरिकी सेना सन् 2002 से युद्ध अभ्यास नामक एक वार्षिक प्रशिक्षण अभ्यास आयोजित करती है। भारत ने CTBT या परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं, क्योंकि भारत का दावा है कि यह संधि भेदभावपूर्ण प्रकृति की है, जो दुनिया के पाँच देशों को अपने परमाणु शस्त्रागार रखने की अनुमति देती है। सन् 2005 में, अमेरिका ने भारत के साथ एक परमाणु सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर किये, भले ही भारत परमाणु अप्रसार संधि का हिस्सा नहीं है। 2023, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की यात्रा के दौरान, अमेरिका और भारत इस बात पर सहमत हुए कि हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स संयुक्त रूप से GEF-414 जेट इंजन का उत्पादन करेगा। दोनों देशों ने MiQ-9B ड्रोन खरीदने के लिए भी समझौता किया। सन् 2024 में, दोनों देशों ने अपने रक्षा सहयोग को मजबूत करने के लिए दो प्रमुख समझौतों पर हस्ताक्षर किये। पहला, आपूर्ति व्यवस्था की सुरक्षा (SOSA), जो रक्षा संबंधी वस्तुओं और सेवाओं के लिए पारस्परिक प्राथमिकता समर्थन की अनुमति देता है और अमेरिका स्पेशल ऑपरेशन कमांड से शुरू होने वाले प्रमुख अमेरिका कमांड में भारतीय संपर्क अधिकारियों को तैनात करने के लिए समझौता ज्ञापन।

आर्थिक संबंध

अमेरिका भारत के सबसे बड़े प्रत्यक्ष निवेशकों में से एक है। सन् 1991 से 2004 तक, FDI प्रवाह का स्टॉक 11 मिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 344.4 मिलियन डॉलर हो गया है। यह सालाना 57.5 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर से वृद्धि है। वाणिज्य मंत्रालय के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2021-22 में दोनों देशों के बीच वस्तुओं का द्विपक्षीय व्यापार 119.42 बिलियन डॉलर को पार कर गया। अमेरिका को निर्यात वर्ष 2021-22 में बढ़कर 76.11 बिलियन डॉलर हो गया, जबकि आयात 43.31 बिलियन डॉलर हो गया। भारत से निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तओं में प्रौद्योगिकी सेवाएँ, वस्त्र, मशीनरी, रत्न और हीरे, रसायन, लोहा और इस्पात उत्पाद, कॉफी, चाय और अन्य खाद्य उत्पाद शामिल हैं। भारत द्वारा आयात की जाने वाली वस्तुओं में विमान, उर्वरक, कम्प्यूटर हार्डवेयर, चिकित्सा उपकरण आदि शामिल हैं। 3 अगस्त, 2018 को भारत-अमेरिका द्वारा सामरिक व्यापार प्राधिकरण-1 (STA-1) का दर्जा प्राप्त करने वाला

तीसरा एशियाई राष्ट्र बन गया। STA-1 अमेरिका से भारत को नागरिक अंतरिक्ष और रक्षा में उच्च प्रौद्योगिकी उत्पादों के निर्यात को सक्षम बनाता है। जनवरी 2023 में, अमेरिका भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकारों ने महत्त्वपूर्ण और उभरती हुई प्रौद्योगिकीयों पर अमेरिका-भारत पहल (ICET) शुरु करने की घोषणा की। ICET के तहत दोनों पक्ष आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, क्वांटम टेक्नोलॉजी, एडवांस वायरलैस टेक्नोलॉजी, स्पेस के क्षेत्र में मिलकर काम करेंगे। सन् 2016 में भारत और अमेरिका ने लॉजिस्टिक्स एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर किये और भारत को अमेरिका का प्रमुख रक्षा सांझेदार घोषित किया गया। सन् 2023-24 में भारत और अमेरिका के बीच निर्यात और आयात 118.3 बिलियन डॉलर था। भारत और अमेरिका के बीच निर्यात 2023-24 में 1. 32 प्रतिशत घटकर 77.5 अरब डॉलर हो गया है। जबकि आयात लगभग 20 प्रतिशत घटकर 40.8 अरब डॉलर रह गया।

सांस्कृतिक संबंध

हाल ही के वर्षों में भारतीय फिल्में अमेरिका में अधिक लोकप्रिय हो गई है। जैसे: RRR जैसी भारतीय फिल्मों को 21वीं सदी में अभूतपूर्व सफलता मिली। हॉलीवुड फिल्में भी भारत में अधिक लोकप्रिय हो रही हैं। भारत देश अमेरिकी फिल्मों के लिए शीर्ष पाँच सबसे ज्यादा कमाई करने वाले स्थानों में से एक के रूप में उभर रहा है। योग और ध्यान भारत से अमेरिका में उल्लेखनीय निर्यात रहे हैं। 20वीं सदी के अंत में स्वामी विवेकानंद ने भारतीय आध्यात्मिकता के इन पहलुओं को पेश करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत अमेरिकी संबंधों को और भी प्रगाढ़ बनाने के लिए 22 सितंबर 2019 को संयुक्त राज्य अमेरिका के टेक्सांस के ह्यूसटन में NRG स्टेडियम में एक सामुदायिक शिखर सम्मेलन और मेगा इवेंट का आयोजन किया गया, जिसे हाउडी मोदी कार्यक्रम नाम दिया गया। यह कार्यक्रम भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के संयुक्त संबोधन के लिए उल्लेखनीय था, जिसमें दोनों देशों के बीच मजबूत संबंधों और रणनीतिक सांझेदारी को प्रवावित किया गया था। इस कार्यक्रम की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत के अहमदाबाद (गुजरात) में 20 फरवरी 2020 को ''नमस्ते ट्रम्प" कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम के द्वारा अहमदाबाद के सरदार पटेल स्टेडियम में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की उपस्थिति में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की मेजबानी की गई। भारत और अमेरिका के सांस्कृतिक संबंधों में सुधार को इसी बात द्वारा समझा जा सकता है कि अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर के स्कूलों में इस साल (2024 में) 1 नवंबर को हिंदू त्यौहार दिवाली के उपलक्ष्य में अवकाश रखा गया। यह पहली बार है जब अमेरिकी शहर के स्कूलों ने इस छुट्टी को मान्यता दी है।

राजनयिक आदान-प्रदान

वैसे तो भारत-अमेरिका के बीच राजनयिक संबंधों की शुरुआत सन् 1952 से ही हो चुकी थी लेकिन सन् 1990 के बाद अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन, मार्च 2000 में भारत की भात्रा पर आए। सन् 2010 और 2015 में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा भारत की यात्रा पर आए। उन्होंने भारत की संसद को संबोधित भी किया और इसी दौरान ओबामा ने संयुक्त राष्ट्र की सुराम परिषद् में भारत की स्थायी सदस्यता का समर्थन किया था। मई 2015 में ओबामा गणतंत्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि बनकर दूसरी बार भारत पहुंचे थे। जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने प्रोटोकॉल तोड़कर एयरपोर्ट पर ओबामा का स्वागत किया था। बराक ओबामा के भारत दौरे के पाँच साल बाद यानि साल 2020 में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प भारत की दो दिन की यात्रा पर आए थे। इसी प्रकार भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी वर्ष 2000, 2001, 2002, 2003 में अमेरिका की यात्रा पर गए। इसके बाद पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह वर्ष 2004 से 2014 तक 8 बार अमेरिका की यात्रा पर गए। वर्तमान में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 21 से 23 सितंबर तक अमेरिकी जनवर दौरे पर गए। पहले क्वाड की बैठक में भारत में जनवरी 2024 में होनी थी। लेकिन किसी कारण से इस समिट को सितंबर तक टाल दिया गया था। भारत 2024 में क्वाड संगठन की मेजबानी करेगा। इसी प्रकार भविष्य में भी भारत-अमेरिका के राजनत्रिक संबंधों में सुधार होगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में भारत-अमेरिकी संबंधों में प्रगाढ़ता आई है और पहले से मजबूत हुए हैं। अमेरिका 1776 ई0 में आजाद हो गया था जिसके कारण वह ब्रिटिश उपनिवेश से भारत की आबादी के समय (1947 में) एक विकसित राष्ट्र बन चुका था। परंतु 1947 में भारत आर्थिक रूप से बहुत ही पिछड़ा हुआ और सामाजिक व राजनीतिक रूप से बिखरा हुआ और अव्यवस्थित राष्ट्र था। जिसके कारण अमेरिका ने भारत के महत्त्व को नहीं समझा। लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे भारत ने अपनी स्थिति में सुधार किया, वैसे-वैसे अमेरिका के साथ संबंध अच्छे होते चले गए। समय-समय पर अमेरिका ने अपनी आर्थिक और सैन्य शक्ति के बल पर भारत पर अपना दबदबा बनाने की कोशिश की, परंतु भारत अमेरिका की नीति के अनुसार कभी नहीं चला। हालाँकि भारत-अमेरिका के बीच NPT, CTBT, NSG व परमाणु हथियारों को लेकर दोनों देशों के बीच विरोधाभास रहा लेकिन, वर्तमान में दोनों देश क्वाड व मालाबार तथा बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के कारण एक-दूसरे के काफी नजदीक आए और 21वीं सदी के प्रमुख सहयोगी राष्ट्र बने। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि भारत व अमेरिका के संबंधों में एक नयी दिशा के साथ मजबूती आई है और यह आशा भी की जाती है कि भविष्य में भी दोनों देशों के संबंध मजबूती के साथ आगे बढ़ेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सीकरी, राजीव, ''भारत की विदेश नीति: चुनौती और रणनीति'' सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ0 संख्या- 173
2. सिंह, रहीस, ''अंतर्राष्ट्रीय संबंध, लेक्सिसनेक्सिस प्रकाशन, नागपुर, पृ0 संख्या- 467
3. गांगुली, सुमित, ''भारत की विदेश नीति: पुनरावलोकन एवं संभावनाएँ'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 2018, पृ0 संख्या- 296
4. खन्ना, वी.एन., ''अंतर्राष्ट्रीय संबंध'' विकास प्रकाशन, 2019, पृ0 सं0- 344
5. कौल, टी.एन, ''भारत और नई विश्व व्यवस्था'', ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ0 संख्या- 65-72

6. प्रकाश वेद और गुप्ता के आर, ''भारत-अमेरिका नागरिक न्यूक्लियर डील,'' अंटलांटिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
7. यादव, आर.एस, ''भारत की विदेश नीति'' पियर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013
8. श्रीवास्तव, दीप कुमार, ''भारत-अमेरिका का संबंध'', प्श्रैप्ए टवसनउम 8ए अप्रैल 2019, पृ0 संख्या- 72
9. https://www.drishtiias.com, Drishti IAS, 29 February 2020
10 https://m.economictimes.com, The Economic Times, 12 May, 2024
11. भारत-अमेरिका संबंधः इतिहास के आइने में, ठठब् छमू
12. पन्त, पुष्पेश, ''21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध, टाटा मैग्राहिल एजुकेशन, नई दिल्ली, 2013
13. निरंजन नेहा, ''भारत अमेरिका के बढ़ते कदम'', समकालीन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

સમયસંકલના અને કથનકેન્દ્રની કલાત્મક ગૂંથણીઃ 'તાકુંઃ બાપદાદા વારીનું'

આશકા દેવમુરારી

રિસર્ચ સ્કોલર, એચ.એન.જી.યુનિવર્સિટી, પાટણ. માગદર્શકઃ ડો. પ્રભુદાસ પટેલ શેઠ શ્રી બી.સી.શાહ આર્ટ્સ કોલેજ, વડાલી.

નવનીત જાની અનુઆધુનિક ગુજરાતી સાહિત્યના મહત્ત્વના વાર્તાકાર છે. તેમની પાસેથી 'તિરાડનો અજવાસ', 'સામા કાંઠાની વસ્તી', 'રિઆલિટી શો' અને 'કાલની ઘડી ને આજનો દિ' આ ચાર વાર્તાસંગ્રહો મળે છે. ચુસ્ત સમયસંકલના, કથનકેન્દ્રની યોગ્ય પસંદગી, પરિવેશની ગૂંથણી તથા વિષયવસ્તુને અનુરૂપ ભાષાશૈલી એમની વાર્તાઓની ખાસિયત છે. અહીં તેમની પ્રખ્યાત વાર્તા 'તાકુંઃ બાપદાદા વારીનું'ની સમયસંકલના અને કથનકેન્દ્રના આધારે વિગતે તપાસવાનો પ્રયાસ કર્યો છે. આ વાર્તા તેમના વાર્તાસંગ્રહ 'કાલની ઘડી ને આજનો દિ'માં (ઈ૨૦૧૯) સંગ્રહિત છે.

'તાકુંઃ બાપદાદા વારીનું' વાર્તામાં પેઢી વચ્ચેના અંતર, દાદાજીનું પાત્રાલેખન અને કૌટુંબિક પરિવેશના વાસ્તવિક ચિત્રણના લીધે આસ્વાદ્ય બની છે. દાદાજી અને પૌત્ર-પ્રપૌત્રના પાત્રો વડે બે જુદાં જ સમયને એક જ ફ્રેમમાં ગૂંથી લેવાની વાર્તાકાર નવનીત જાનીની કુશળતાને લીધે ભાવકને અતીત અને વર્તમાન બંનેની એક સાથે અનુભૂતિ થાય છે.

'તાકુંઃ બાપદાદા વારીનું'માં કથક ભનુ પોતાના ચોરાણું વર્ષના દાદાજી જયસુખ વિશે અને તાકા વિશે વાત કરે છે. વિદેશી જોન (ભનુનો ફેસબુક ફ્રેન્ડ) ભનુના ઘરે આવે છે. તેની ડાયરીની નોંધરૂપે તાકું, દાદાજીની વાત આવે છે. એટલે અહીં બે કથક છેઃ એક ભનુ અને બીજો જોન. જોનની ડાયરીમાં નવ ઓગસ્ટથી તેર ઓગસ્ટ એમ પાંચ દિવસની નોંધ છે. આ ડાયરી ભનુ વાંચતો હોય તે રીતે નોંધના ઉલ્લેખ આવે. ડાયરી વાંચતાં વાંચતાં ભનુ પ્રતિક્રિયારૂપે ટિપ્પણીઓ કરે. આ રીતની કથનરીતિ વાર્તાને ઉપકારક બની છે. ભનુ દાદા જયસુખભાઈ, બાપા માવજીભાઈ તથા મોટાભાઈ-ભત્રીજા વિશે વાત કરે. દાદા પોતાની સ્મૃતિઓમાંથી પોતાના બાપા-નાનજીબાપાની વાતો ખોળી લાવે. એ રીતે સર્જક ચાર પેઢીની વાત વણી લે છે. જોન અને ભનુ વડે બે જુદી સંસ્કૃતિના 'ઈતિહાસ' વિશેના દૃષ્ટિકોણને ગૂંથી લીધો છે. વાર્તાના આરંભે ભનુ તાકુંનું વર્ણન નીચેના શબ્દોમાં કરે છે.

'વર્ષો જૂનું તાકું, આડાંઊભાં ખપાટિયાંના ટેકે ઊભું થયેલું. છત, દીવાલો અને પાયો ખપાટિયાંનો. માટી, પાણી અને વિવિધ ધાન્યનાં કૂંવળ-ભૂસાં ભળતાં એનું મૂળ રૂપ ઢંકાઈ ગયેલું. માટીની ભીંતોએ તાકાને પોતાના રંગમાં એવું રંગી નાંખેલું કે ભાગ્યે જ કોકને ખ્યાલ આવે કે એનાં ઊર્ધ્વમૂળ ખપાટિયાંના બનેલાં છે અને એ ખપાટિયાં હવા, પાણી અને ઉજાસથી સીંચાયા છે.' (પૃ-૯૭)

તાકુંનું જોનની નજરે થયેલું ડાયરીની પ્રથમ દિવસની નોંધરૂપે આવતું (૯ ઓગસ્ટ, સમય- રાત્રિના ૧૦:૨૦) વર્ણન જુઓ.

'વર્ષો જૂનું એટલે... બાપદાદા વારીનું. મજબૂત લાકડાની ફ્રેમવાળું. કલાત્મક નકશીકામ. ફૂલબુટ્ટા, વેલ, વૃક્ષ, પાન બેસુમાર, બે નકુચાવાળું એનું બારણું. એની ઉપરેય નકશીકામ, કેટલુંક ખંડિત. હાથીઘોડા, છત્ર. ખાસ દરકારના અભાવે એક નકૂચો ઢીલો પડી ગયો છે. બારણું જરા ત્રાંસુ. આંકડી ઓરિજિનલ નથી જણાતી. લીખંડનો સળિયો આંકડીની જગ્યાએ લાગેલો છે, સળિયો સેરવી લઈએ તો તાકું આપમેળે ખૂલી જાય. એમ લાગે કે ખોલારનો આધાર પામવા એના તરફ ઢળી પડ્યું છે. ભીંત પર ગાર-માટી-ઘોળ કરતાં ધ્યાન નથી રખાયું. એથી એના રેલા તાકા પર ઊતરી આવ્યા છે. એ રેલા-ડાઘને ભીંતનો જ એક ભાગ ગણી એની ઉપર લીંપણના થર થતા ગયા છે. એ લીંપણને સિફતથી ઉખાડવામાં આવે તો તાકાનો ખરો નકશો મળે. એની લંબાઈ-પહોળાઈનું માત્ર અનુમાન જ કર્યું છે... ત્રણ બાય બે ફૂટ... કોણે બનાવ્યું એ અલગ સંશોધનનો મુદ્દો છે. પણ કોઈ એની ઐતિહાસિકતા સ્વીકારવા તૈયાર નથી. સ્વીકારની વાત છોડો; સમજવાનો પ્રયાસ નથી.' (પૃ-૧૦૪,૧૦૫)

તાકાને જોવાનો બંનેનો દૃષ્ટિકોણ કેટલો જુદો છે તેનો ખ્યાલ આવી જાય. ભનુનું વર્ણન સાવ શુષ્ક અને નીરસ છે. જે પોતાના વારસા વિશેનું તેનું અજ્ઞાન દર્શાવે છે. જોનનું વર્ણન કલાપ્રેમી અને સંશોધકની નજરે થયું છે. એ જ તાકાની વાતે દાદાજી પોતાના બાપા વિશે વાત કરે છે. ઓગસ્ટ ૧૧, રાત્રિના ૧૦:૪૦ની નોંધમાં જોન દાદાજીની સ્મૃતિઓ નોંધી લે છે.

'દાદાજીની સ્મૃતિને હજી કાટ નથી લાગ્યો. આંખો ગઈ છે પણ દૃષ્ટિ જાણે સ્મૃતિ સાથે જોડાઈ ગઈ હોય એવું લાગે. અંધારું એમના માટે ભૂતકાળનો વિશાળ પટ છે. ક્યાંય અથડાયા વગર સ્વૈરવિહાર કરી શકે. એમનું તાકા વિશે એવું કહેવું છે કે એમણે લાઈફમાં બે વાર તાકાને ઉઘાડબંધ થતાં જોયું છે. પહેલી વાર જોયું ત્યારે એમના પિતાજી નાનજીબાપા એ તાકામાં રાણીછાપ રૂપિયાનો સિક્કો મૂકવાનો પ્રયત્ન કરતા હતા. આખું તાકું સિક્કાઓથી ભરાઈ ગયું હતું અને એમાં એક પણ સિક્કો સમાવવાની જગ્યા નહોતી. બીજી વાર એ તાકાને જોયું ત્યારે નાનજીબાપાએ તાકામાંથી બચેલો છેલ્લો સિક્કો કાઢી દાદાજીના હાથમાં આપતા કહેતા હતાઃ જયસુખ, આ બચેલા સિક્કામાં તારે ભણવાનું-ગણવાનું-પૈણવાનું ને ચરવાનું છે. આ બધું કરવું નિર્વિકલ્પ છે, સિક્કાની બેય બાજુ જેમ. સિક્કો આપીને નાનજીબાપા હાથ ધોઈ નાંખ્યા હોય એમ હળવા થઈ ગયેલા. ખાલી તાકની શી ચિંતા? ન ચિંતા અશરફીની, ન કોરીની, ન મહોરની, ન પંચમ જ્યોર્જની, ન એલિઝાબેથની, ન વિકટોરિયાની... મોટું મોટું સમજાયેલું કે એ સમયે નાનજીબાપા હળવા નહોતા થયા પણ રાંક થયા હતા.' (પૃ-૧૦૭)

આટલું ઓછું હોય તેમ દાદાને માનસિક સંતુલન ગુમાવી બેઠેલા નાનજીબાપા જે જોડકણું ગાતા તે પણ શબ્દશઃ યાદ છે. એ સમયે ભનુને લાગે છે કે દાદા નકામો બબડાટ કરી રહ્યાં છે. જો તાકામાં સિક્કા હોત તો પોતે જાહોજલાલીમાં ન જીવ્યો તોય એમ ભનુ કહે છે. તાકું ઊઘડતાંની સાથે દાદાની સ્મૃતિઓનો પટારો પણ ખૂલે છે. નજર સામે તાકું હોવા છતાં ભનુનો ભત્રીજો ગૂગલમાં તેનો કોઈ અર્થ ન મળવાથી બોલી ઊઠે છે, કે તાકા જેવું કશું જ ઓલ વર્લ્ડમાં નથી. જવાબમાં દાદા કહે છે, 'અલ્યા, તારી જેવા ઊગીને ઊભા થનારને શું ખબર કે પહેલાં આખા ભારતમાં આવા તાકાંઓ હતાં. જૂનાં ઘર-સ્થળને ખોતરો જરા, પત્તો લાગશે.' (પૃ-૧૦૬) જેની જેવા યુવાનને પણ તાકામાં રસ નથી એ વાતે જોનને આઘાત લાગે છે. એક તાકા વિશેની ભનુ, જોન, દાદાજી, જેની અને ભનુના બાપાની વાતચીત વડે સર્જક ભૂતકાળ અને વર્તમાન, એક વેળાની સમૃદ્ધિ અને ભવ્યતા તથા વર્તમાનની અવદશા; ઈતિહાસ અને વારસા પ્રત્યેની ક્રમશઃ કેળવાતી ઉદાસીનતા - આ બધું જ સૂચવી દે છે. સૌથી વિશેષ તો જોવા મળે છે દૃષ્ટિકોણ. આ દૃષ્ટિકોણ પણ કેવો? રુડોલ્ફ અર્નહેમના શબ્દોમાં કહીએ તો,

"However, Perception cannot be confined to what the eyes record of the outer world A perceptual act is never isolated; it is only the most recent phase of a stream of immunerable similar acts. Performed in the past and surviving in memory.' (પૃ-૮૦)

દાદાને તાકામાં માત્ર એક સિક્કો વારસારૂપે મળ્યો હતો. માવજીભાઈને તો ખબર જ નથી કે તાકામાં શું હતું? તેમની પત્ની અને ભનુની મા લક્ષ્મીબેને તાકામાં પુસ્તકો જોયા હતા. થોડું ઘણું ભણેલી લક્ષ્મી એ પુસ્તકો વાંચવા મથે છે ત્યારે માવજીભાઈ 'મે'તી બનવું છે? મૂકી દે બધું. તારા કામનું નથી.' કહીને પુસ્તકો પાછા મુકાવી દે છે. લક્ષ્મીએ ચરકસંહિતા, રામાયણ, મહાભારત, ગીતા, કામસૂત્ર જેવાં ગ્રંથો તાકામાં જોયા હતા એમ જોન નોંધે છે. સુજ્ઞ ભાવક સમજી જાય કે આ પુસ્તકોનો વાચક દાદાજી છે. અહીં ખ્યાલ આવે કે દાદા જોનની સાથે કડકડાટ અંગ્રેજીમાં કેવી રીતે વાત કરી શક્યા. બાપા અને ભાઈને વેપાર-ધંધો, શેરબજાર સિવાય કશામાં રસ નથી. આ સૂક્ષ્મ સંકેતોને સમજીએ તો ખ્યાલ આવે કે નવી પેઢી દાદાજી અને તાકાની સાથે સાથે ઈતિહાસ, સંસ્કૃતિ, વારસાને પણ ભૂલી રહી છે. તાકું અને દાદાજી બંને ખૂલે છે. એ રીતે અતીત વર્તમાન સાથે જોડાય છે. કહો કે, ઈતિહાસના પાનાં ફરી ખુલે છે. ભનુના બાપા, ભાઈ, ભત્રીજાને ભલે ઈતિહાસમાં રસ ન હોય પણ જોનની મુલાકાત ભનુના સંવેદનતંત્રને દાદાજી, તાકું વિશે (અને એ દ્વારા ઈતિહાસ વિશે) ઝંકૃત કરી દે છે. એ રીતે નિર્જીવ તાકું અને સજીવ દાદાજી બંને એકરૂપ થઈ જાય છે. વિદાય લઈ રહેલા જોનને દાદાજી તાકું ખુલ્લું રાખવા કહે છે. જોન ૧૩ ઓગસ્ટની અંતિમ નોંધમાં દાદાજી સાથેની છેલ્લી મુલાકાત વિશે વાત કરે છે અને તેમાં જ તે લખે છે,

'આ તાકામાં હવે કશુંય નથી. કોઈએ કશું રહેવા નથી દીધું. ખાલી અને ખોખલું બનાવી ખૂણામાં છોડી દેવામાં આવ્યું છે. નજરની અડફેટે ચડે છે પણ લોહીની આંચ પહોંચતી નથી. હૃદયનો ધબકાર તો દૂરની વાત છે.' (પૃ-૧૦૯,૧૧૦)

આ વર્ણન દાદાજી સાથેના વર્તનને પણ લાગુ પડે છે. જોનના આગમનથી ભનુ અને દાદાજી વચ્ચેનું અંતર કંઈક અંશે ઘટતું અનુભવાય છે. ભનુ પોતે જ પોતાના બાપા, ભાઈ અને ભત્રીજાને અનુક્રમે થડાવાળા, બજારવાળા અને નેટવાળા કહીને ઓળખાવે છે. મોટોભાઈ 'મેક ઈન ઈન્ડિયા'ની અને ભત્રીજો 'ડિજિટલ ઈન્ડિયા'ની બૂમો પાડે છે, પણ બેમાંથી એકેયને ઈન્ડિયાના તો દૂર પોતાના જ ઈતિહાસમાં રસ નથી. ભનુ થોડો જુદો છે. કથક તરીકે ભનુની ભાષામાં વ્યંગનો પુટ અનુભવાય. એકાદ-બે ઉદાહરણો જોઈએ. ભનુ બાપા અને ભાઈની ઓળખાણ આપતા કહે છે,

'હું જાણું છું કે પિતાજીને ઈતિહાસ પ્રત્યે કોઈ ભાવ નહીં. હસી પડે. ધૂળ-ઢેફામાં શું લેવાનું? નામું શીખો... એમની આગળ ઈતિહાસની વાત કરવી નકકામી, કેમ કે એમની તાસીર ત્રાજવાં-કાટલાંની... મોટાભાઈ તો એમનાથીય બેટ. શબ્દોના લવિંગિયા ફોડે.... બાપ-દીકરો પાકા વેપારી. હરીફરીને પૈસાના ઈન્વેસ્ટમાં ઈન્ટરેસ્ટ દેખાડે.' (પૃ-૧૦૧)

આવા બાપા-ભાઈને જોનનો પરિચય ભનુ શી રીતે કરાવે છે?

'એ અંગ્રેજ છે પણ વેપારી નથી. એના ફાધર કોઈ મલ્ટિનેશનલ કંપનીના માલિક નથી. એને ચા-તેજાના સાથે કોઈ નાતો નથી. એ કોન્સ્ટેટિનોપલથી આવ્યો નથી કે એને કોઈ પરવાનો લેવાનો નથી. એને તમારી લેવાલી-વેચાલી કે પાશેર-અધશેરમાં કોઈ ગતાગમ નથી.' (પૃ-૧૦૧)

જોનના થેલામાંથી ખજૂરાહોના ચિત્રોવાળું પુસ્તક પડી જાય ત્યારે કથક ઘરનાં સભ્યોની પ્રતિક્રિયા પણ કટાક્ષમય વાણીમાં જ વર્ણવે છે. પોતાના જ વારસાથી અભાન બાપુજીનું તતડી ઊઠવું, વહુઓના ખિખિયાટા અને ટેણિયાઓની જિજ્ઞાસા કથક જુએ છે. ઘરનો પરિવેશ પણ ચાર પેઢીના અંતરને સૂચવી દે છે. ઘરનાં ચાર ઓરડાનું વર્ણન જુઓ.

'એક ઓરડામાં સરસ ઠંડી લાદી હતી અને હવે એના સ્થાને કોટાસ્ટોન જેવુ સમયની માંગ પ્રમાણેનું તળિયું નાંખવાની તજવીજ ચાલતી હતી. બીજા ઓરડામાં મોટી મોટી જસતની તિજોરીઓ હતી. ત્યાં લાકડાના બે'એક કબાટોય હતા. ત્રીજા ઓરડામાં સોફાસેટ હતો અને ટી.વી. હતું. મોટાભાઈના મોટા દીકરા જૈનિત ઉર્ફે જેનીએ વધારાનું ખ્લગબોર્ડ ઈચ્છેલું એટલે એક જગ્યાએ કમ્પ્યુટરનું ટેબલ પણ આવી ગયેલું... આ ચોથા ઓરડામાં તાકું હતું; બાપદાદાની મીંચાયેલી આંખ જેવું અદ્ધલ... એમાં જૂની ઘરવખરી અને જૂનાં ગાભાં-ગોદડાં રહેતાં.' (પૃ-૯૮)

ભનુ પોતે જ દાદા માટેના ઓછા લગાવ વિશે વાત કરતાં કહે છે કે,

'પાછળવાળા માટે માનબાન, મમતા-બમતા, લગાવ-બગાવ એવું બધું થોકું થોકું ને આઘુંપાછું ને ઉપરછલ્લું મૂળ તો, પાછળવાળા પાછળ ટાઈમ ક્યાં બગાડવો એવી સમજ.' (પૃ-૧૦૨)

ફોરવર્ડ ગણાતા જેની, માવજીભાઈની સામે બેકવર્ડ દાદાજી અંગ્રેજી અને ઈતિહાસના જાણકાર છે! એ જોઈ ભાવક સમજી જાય કે કોણ બેકવર્ડ છે અને કોણ ફોરવર્ડ? ચાર પેઢીનું નિરૂપણ, બેવડી કથનરીતિ, ચુસ્ત સમયસંકલના, ભનુની વ્યંગવાણી, દાદાજીનું ઊપસતું, જીવંત થતું પાત્ર, તાકુંના બહાને ઈતિહાસ અને વર્તમાનને ગૂંથી લેવાની કુશળતા, ઘરનો પરિવેશ અને એ બધાં વડે તાકું અને દાદાજીની એકરૂપતા - આ બધી વિશેષતાઓને લીધે આ વાર્તા અવિસ્મરણીય બની રહે છે.

સંદર્ભઃ

૧. 'કાલની ઘડી ને આજનો દિ', નવનીત જાની, લટૂર પ્રકાશન, પ્ર.આ.૨૦૧૯.

૨. "Visual Thinking', Rudolf Arnheim, University of California Press, London, 1969.

दिल्ली के प्रमुख तन्त्री वाद्य निर्माता

डॉ० सुरेन्द्र कुमार

सहायक प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

भूमिका

तन्त्री वाद्य भारतीय शास्त्रीय संगीत में अपना विशेष स्थान रखते हैं। प्राचीन काल से ही धार्मिक आयोजनों अथवा धार्मिक स्थानों पर वादन किए जाने वाले वाद्यों में अनेक प्रकार की वीणाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

जितना महत्व, किसी भी वाद्य का होता है उतना ही महत्व वाद्य निर्माताओं का भी होता है। अच्छे वाद्य निर्माता प्रायः पहले उस वाद्य का वादन करना सीखते है और उस वाद्य की बारीकियाँ सीखते है उसके पश्चात् उस वाद्य का निर्माण करना सीखते हैं। इससे उन्हें उत्तम किस्म के वाद्य का निर्माण करने में सहायता मिलती है। विश्व भर में दिल्ली के वाद्य निर्माताओं को योगदान रहा है। दिल्ली के प्रमुख वाद्य निर्माता इस प्रकार हैं-

1. रिक्खी राम एवं बिशन दास शर्मा:

भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में 'मैसर्स रिक्खी राम एंड संस' इस नाम की प्रसिद्ध भारतवर्ष ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में है। नवीनता में विश्वास रखने और अपनी चिंतनशील प्रवृत्ति के कारण वर्तमान समय में सभी वाद्य प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित किया।

पं० रिक्खी राम के पिता श्री गोविन्द राम जी संगीत के शौकीन थे। रिक्खी राम जी आरम्भ में लाहौर (पाकिस्तान) के एक संग्रहालय में काम करते थे। रिक्खी राम जी अपने कार्य में कुशल थे। उन्होंने अब्दुल रहीम पूँछवाले से गायन और सितार वाद्य की शिक्षा ली। संगीत में गहन रुचि और ज्ञान होने के कारण इनकी अनेक संगीतकारों से घनिष्ठता थी। अपने मित्रजनों से विचार-विमर्श और परामर्श से रिक्खी राम जी ने सितार और हारमोनियम वाद्य का निर्माण आरम्भ कर दिया। सन् 1928 ईस्वी में वाद्यों के निर्माण के लिए इन्होंने 'अनारकली' क्षेत्र की स्थापना की। उस समय के सुप्रसिद्ध कलाकारों के वाद्य इन्होंने बनाए। इनकी दुकान पर बड़े गुलाम अली खां, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, उस्ताद सलामत-नजाकत अली खां, बरकत अली खां, पंडित नारायण व्यास एवं गुलाम हैदर जैसे बड़े कलाकारों का इनकी दुकान पर आना-जाना होता रहता था।

1947 में भारत-पाकिस्तान विभाजन के पश्चात् पंडित रिक्खी राम दिल्ली आ गए। दिल्ली आने पर बड़े-बड़े कलाकारों पंडित रवि शंकर, उस्ताद विलायत खां, अली अकबर खां का सानिध्य प्राप्त हुआ।

रिक्खी राम जी के पुत्र बिशन दास का जन्म 1929 में लाहौर में हुआ। इन्होंने अपने पिता से वाद्य निर्माण की कला सीखी और इसके साथ-साथ पंडित रविशंकर जी से 14 वर्ष की आयु में सितार की शिक्षा लेनी आरम्भ कर दी।

इसी समय पंडित रविशंकर जी ने इनको (All India Radio) आकाशवाणी केंद्र पर वाद्यों के रखरखाव के लिए नियुक्त किया। इस दौरान यह बड़े-बड़े कलाकारों के संपर्क में आए। कलाकारों से इन्होंने वाद्यों की ध्वनि गुणवत्ता और वाद्यों की तकनीकी के बारे में सूक्ष्म जानकारियाँ प्राप्त हुई। कुछ समय वहाँ नौकरी करने के उपरांत बिशन दास जी ने वहाँ से त्यागपत्र दे दिया और वाद्यों के निर्माण कार्य में व्यस्त हो गए। 1960 में रिक्खी राम जी की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् सारा उत्तरदायित्व बिशन दास जी के कंधों पर आ गया।

बिशन दास ने कलाकारों से जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया, उससे गुणवत्ता युक्त और उत्तम ध्वनि के वाद्य बनाने की लगन और प्रयोगात्मक प्रवृत्ति से धीरे-धीरे विकास की यात्रा आगे बढ़ी।

वैसे तो आरम्भ से ही रिक्खी राम एण्ड सन्स सभी प्रकार के वाद्यों का निर्माण करते रहे हैं लेकिन तंत्री वाद्यों में सितार, विचित्र वीणा, सरोद, संतूर, रूद्रवीणा, इसराज, सारंगी और दिलरूबा जैसे तंत्री वाद्यों का निर्माण इनके द्वारा किया जाता है।

सितार वाद्य में मीन्ड के विस्तार के लिए इन्होने कुछ नवीन प्रयोग किए जैसे सितार के निर्माण के समय डाँड और तबली को गुल्लू से जोड़ते वक्त डाँड को थोडा सा झुकाया जाता है। टेढ़ी डाण्ड से मीण्ड ज्यादा खींची जा सकती है।

पुरानी सितारें वजन में बहुत हल्की होती थी। वजन में हल्की होने की वजह से आवाज तो अच्छी निकलती थी। लेकिन कुछ साल बाद वो सितार खराब हो जाती थी। कभी उनकी डाण्ड मुड जाती या तबली बैठ जाती या फिर सितार बेसुरा हो जाता था। इन कमियों को दूर करने के लिए बिशनदास जी ने नई सितारों की बनावट एवं आकृति में संशोधन किए। ढांचे की लकड़ी को अच्छे से सिजन्ड़ किया जाने लगा। सिजन्ड़ करके बनाए गए ढ़ाँचे से ज्यादा अच्छे टोन प्राप्त हुए।

भारत सरकार द्वारा लकड़ी की सीजनिंग हेतु बड़े प्लांट स्थापित किए गए है। फलस्वरूप लकड़ी को सीजन करना सुविधाजनक हो गया है।

श्री बिशनदास के दो पुत्र अजय एवम् सजंय ने 'बिजनेस मैनेजमेंट' करने के पश्चात् सितार सम्राट पं० रविशकंर से संगीत सीखा। बिशन दास जी के बड़े बेटे अजय ने क्नॉट प्लेस और संजय ने गोल मार्केट के पास भगत सिंह मार्केट में दुकान खोली हुई है। बिशन दास शर्मा ने वाद्यों के मापदण्ड़ जैसे लंबाई-चौड़ाई, रूप-आकार, ध्वनि गुणवत्ता (Tonal iQuality) को स्थापित करने के लिए काफी बारीकी से खोजबीन की। अपने कार्य के प्रति उनकी गहन निष्ठा के कारण ही खुद को उत्कृष्ट ध्वनि गुणवत्ता युक्त वाद्य निर्माता के रूप में इन्होंने खुद को स्थापित किया।

इनके द्वारा वाद्यों के लिए किए गए सफल प्रयोग इस प्रकार है - ब्रिज-सितार वाद्य के लिए पहले हाथी दाँत या बारहसिंघा के सिंग का उपयोग किया जाता था लेकिन हाथी दाँत अथवा बारहसिंघा की हड्डी बैन होने के कारण इन्होंने एबोनी लकड़ी अथवा डार्लेन प्लास्टिक के ब्रिज का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने कलाकारों के निर्देश से एवं आवश्यकतानुसार नवीन प्रयोग करके कई वाद्यों का निर्माण किया।

रिक्खी तम्बूरी, रिक्खी सुरनिखार, रिक्खी तानपुरा, रिक्खी वीणा, रिक्खी झंकार, रिक्खी हंस वीणा, रिक्खी विश्व वीणा, रिक्खी स्वरसंगम, रिक्खी शृंगार वीणा, रिक्खी शंकर वीणा इत्यादि।

2. करतार चन्द एवं हरीचन्द

तंत्री वाद्यों के निर्माण में दिल्ली के श्री आर० के० मोहन मैसर्स का नाम भी उल्लेखनीय है, जिसके संस्थापक श्री मोहन सिंह हैं। करतार चन्द जी के पिता 'नंदूराम' जी एक कुशल बढ़ई थे। वे हिमाचल प्रदेश के ऊना जिले में रहने वाले थे। हिमाचल प्रदेश के जिलों बिलासपुर, मंडी और रायपुर इत्यादि में इनके द्वारा बनाया गया फर्नीचर दरवाजों का काम और फर्नीचर इत्यादि का काम प्रशंसनीय था। करतार चन्द जी का जन्म 1926 ईस्वी एवं हरीचन्द जी का जन्म 1936 में हुआ।

करतार चंद जी कुशाग्र बुद्धि और चित्रकारी के धनी थे। अपनी कक्षा में हमेशा प्रथम आते थे। आठवीं कक्षा के बाद अपने मामा जी से रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हारमोनियम और ग्रामोफोन की मरम्मत का काम सीखा। इस समय इनकी बातों में रुचि बढ़ गई। इनकी बारह वर्ष की उम्र में इनके पिताजी का देहांत हो गया।

1943 ई० में चाचा श्री 'रून्कुराम' के पास लाहौर चले गए। इनके चाचा प्रसिद्ध वाद्य निर्माता 'श्री रिक्खी राम' की दुकान में कारीगर थे। करतार चन्द जी ने भी अपने चाचा के साथ से दुकान में काम करना आरम्भ कर दिया जो कि लाहौर में स्थित थी।

आजादी के बाद रिक्खी राम जी दिल्ली आ गए। कुशाग्र बुद्धि के धनी होने के कारण तीन-चार सालों में ही इन्होंने वाद्य निर्माण कला में सिद्धि प्राप्त कर ली। रिक्खी राम जी के साथ सत्रह-अठारह वर्ष काम करके उन्होंने 1960 में अपने छोटे भाई हरीचंद के साथ अलग से दुकान करके वाद्य निर्माण कार्य आरम्भ कर दिया।

सन 1954 में हरीचंद ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और दिल्ली के जसवंत सिंह के साथ हारमोनियम बनाने का काम सीखते रहे। 1956 से 1962 तक रेलवे में कार्यरत रहे। साथ ही साथ करतार चन्द जी के काम में भी हाथ बँटाते रहे। कुछ समय बाद नौकरी से त्यागपत्र देकर करतार चन्द जी के साथ वाद्य निर्माण कार्य में जुट गए।

श्री करतार चन्द ने सितार, तानपुरा, रूद्रवीणा, विचित्र वीणा, दिलरूबा, इसराज, सरोद, सुरमण्ड़ल, सतूंर इत्यादि वाद्यों का निर्माण किया। इन्होंने बड़े-बड़े कलाकारों के लिए वाद्यों का निर्माण किया है जैसे बलराम पाठक जी। फ्रांस, बेल्जियम और हालैंड इत्यादि देशों में इनके द्वारा निर्मित वाद्य की आज भी माँग है।

इनके वाद्यों की विशेषता यह है कि लकड़ी के कटाव से लेकर, उसकी पॉलिश, नक्काशी एवम् खुदाई का डिजाईन स्वयं बनाते हैं। इनके द्वारा निर्मित वाद्य बड़े-बड़े कलाकारों और विद्यार्थियों की आर्थिक आवश्यकता अनुरूप होते हैं।

3. आर० के० मोहन

तंत्री वाद्य निर्माता के रूप में आर० के० मोहन मैसर्स का भी प्रशंसनीय योगदान रहा है। जिसकी स्थापना स्वयं मोहन सिंह द्वारा की गई। मोहन सिंह जी के पिता श्री गंगा सिंह एक बढ़ई थे, जो कि जालंधर के पास एक गाँव कालसिंध में बैल गाड़ियों एवं अन्य लकड़ी का काम करते थे। मोहन सिंह भी पिता के साथ लकड़ी के काम में सिद्धहस्त थे। समय परिवर्तन के साथ इनका झुकाव वाद्यों की ओर हो गया और सन् 1940 के लगभग इन्होंने पाश्चात्य वाद्य पियानो और डबल बास इत्यादि का निर्माण करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने सांगीतिक वाद्य बनाने की कोई शिक्षा विधिवत रूप से ग्रहण नहीं की, बल्कि संगीतकारों से बातचीत परामर्श करके और उनके अनुभवों के आधार पर धीरे-धीरे उच्च स्तरीय ध्वनि गुणवत्ता के वाद्यो का निर्माण करना आरम्भ कर दिया।

सन् 1947 के बाद इन्होंने अन्य वाद्यों का विशेषकर तंत्री वाद्य का निर्माण आरम्भ कर दिया। श्री मोहन सिंह ने वर्ष 1947 के बाद शनैः शनैः भारतीय शास्त्रीय संगीत के वाद्यों का भी निर्माण प्रारम्भ कर दिया। जिनमें सितार, सरोद, तानपुरा, सारंगी, गिटार, वॉयलिन आदि प्रमुख वाद्य हैं। इनके दो पुत्र हैं - सरबजीत सिंह और दलजीत सिंह। ये दोनों ही इनके काम को वर्तमान में आगे बढ़ा रहे हैं।

आर० के० मोहन मैसर्स ने एक ऐसे सितार वाद्य का निर्माण किया, जिसमें कहीं भी कोई जोड़ नहीं है। साधारणतः सितार वाद्य का निर्माण डाण्ड, गुल्लू और तुम्बा इन तीनों को जोड़कर किया जाता है और कई बार सितार का जोड़ खुल जाता है या गुल्लू की लकड़ी भी चटक जाती है। इन सब बातों का ध्यान में रखकर मोहन सिंह और उनके दोनों बेटों ने ये प्रयोग किया है कि सितार एक ही लकड़ी के टुकड़े से बना दिया। इसकी अनुनादक भी लकड़ी ही है। इस सितार की ध्वनि सितार से कुछ अलग होती है। इनकी ध्वनि गंभीर होती है। मोहन सिंह जी ने तानपुरे का छोटा और परिशोधित रूप तैयार किया है इसमें गिटार के तारों का प्रयोग किया है क्योंकि गिटार के तार मोटे होते हैं और सितार की अपेक्षाएं इनमें लचक भी अधिक होती है। ये सब देखकर ही तानपुरे में गिटार की तारों का प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने 'सारंगी डी मोड' नाम के एक वाद्य का निर्माण किया है यह वाद्य सारंगी की तरह ही बजाया जाता है। आकार में यह वाद्य कुछ-कुछ वॉयलिन के समान दिखता है। इसमें तरब की तारें भी लगाई गई हैं। इनकी ध्वनि वॉयलिन की तरह ही है। 20वीं शताब्दी के बहुत से बड़े कलाकारों के लिए इन्होंने वाद्यों के निर्माण किया है जैसे बड़े गुलाम अली खां के लिए स्वरमंडल, कैलाश चंद्र बृहस्पति और सुलोचना बृहस्पति के लिए तानपुरा, पं० राम नारायण और उस्ताद कमाल खां के लिए सारंगी वाद्य की क्रमशः निर्माण एवं मरम्मत कार्य किया है।

आरङ्क केङ्क मोहन जी द्वारा निर्मित वाद्यों की माँग इंग्लैंड, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, फ्रांस और कनाडा जैसे देशों में बहुत रहती है।

निष्कर्ष

दिल्ली के तन्त्री वाद्य निर्माताओं का भारतीय शास्त्रीय संगीत में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। रिक्खी राम एवं बिशन दास शर्मा, करतार चन्द एवं हरीचन्द, तथा आर. के. मोहन जैसे शिल्पियों ने न केवल वाद्यों का निर्माण किया, बल्कि उनकी ध्वनि गुणवत्ता, टिकाऊपन एवं रूपविन्यास में निरंतर सुधार कर भारतीय वाद्य शिल्प को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाया। इन निर्माताओं ने वादन की तकनीकी बारीकियों को समझते हुए अनेक नवाचार किए – जैसे सितार की डाँड में झुकाव, लकड़ी की सीजनिंग, एकल लकड़ी से बने वाद्य, और प्लास्टिक या एबनी ब्रिज का प्रयोग, जिससे वाद्यों की ध्वनि और स्थायित्व में गुणात्मक सुधार हुआ। इन्होंने न केवल महान कलाकारों के लिए उत्कृष्ट वाद्य बनाए बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी भारतीय वाद्यों की माँग को स्थापित किया। इनकी कार्यशैली में परंपरा और नवाचार का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। वाद्य निर्माण में इनकी प्रतिबद्धता, रचनात्मक सोच और संगीतप्रेम की भावना ने इन्हें एक विशिष्ट स्थान दिलाया है। निष्कर्षतः, दिल्ली के ये वाद्य निर्माता न केवल कारीगर हैं, बल्कि वे संगीत की आत्मा को मूर्त रूप देने वाले सच्चे साधक हैं जिन्होंने भारतीय संगीत परंपरा को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठा दिलाई है।

संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ० योगिता शर्मा, 'हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों में परिवर्तन एवम् प्रवृत्तियाँ'

अठाहरवीं शताब्दी की किशनगढ़ चित्रकला: 'बनी-ठनी' का सौन्दर्यात्मक अध्ययन

प्रवीन कुमार

टीचिंग असिस्टेंट, दृश्य कला विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध सार

भारतीय कला एवं सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से 'श्रृंगार रस' सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। श्रृंगार का मूल भाव 'सौन्दर्य' होता है जो प्रेम से उत्पन्न होता है। प्रेम के द्वारा ही सौन्दर्य की भावना उदत होती है। नागरीदास के इसी गहरे प्रेम के कारण ऐसी नारी कृति निर्मित हुई, जिसे आज विश्व में बणी-ठणी का नाम दिया जाता है। यह सुकोमला विश्व में 'भारतीय मोनालिसां' के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। बणी-ठणी का शारीरिक सौन्दर्य खिले-पुष्प के समान आकर्षक है। अगर आभूषण न भी पहने होते तो भी उनके रूप सौन्दर्य में तनिक भी फर्क न पड़ता। वह तो हर वेशभूषा में मनोरम लगती है, वर्ण-प्रभा, राग, अभिजात्य, लावण्य, लक्षण और सौभाग्य के मुखरीत रूप में बणी-ठणी चरमोत्कर्ष पर है। राजस्थान की किशनगढ़ चित्र शैली के चित्रों में उतरी बनी-ठणी के यथार्थ-रूप को चित्रकारों ने अपने कल्पित सौन्दर्य से समावेशित कर इस नायिका के अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्यपूर्ण चित्रण किया है। इसे पंक्तिबद्ध इस प्रकार किया गया है-

उस कनक लता सी कोमल का अंग-प्रत्यंग रस-भावपूर्ण।
राधा रूपी उस रमणी का, हर रोम-रोम श्रृंगारपूर्ण।।

इस शोध पत्र को शोध की ऐतिहासिक, वर्णात्मक विधियों द्वारा सम्पन्न किया गया है और इसमें मैनें पुस्तकें ूमइेपजम व शोधपत्र इत्यादि, शोध उपकरणों के द्वारा इसको पूर्ण किया गया है।

मूलशब्दः- बणी-ठणी, लावण्य, कौशल, सुकुमारता, संस्कृति ।

शोध बिन्दुः -

1. बणी-ठणी राजा सावंत सिंह की प्रेरणा।
2. निहाल चंद का कौशल और एक अमर कृति।
3. बणी-ठणी चित्र में निहित सौन्दर्य का आदर्श पक्ष।

प्रस्तावना

राजस्थानी चित्रकला को अपनी विशेष शैली प्रदान करने वाला किशनगढ़ राज्य राजस्थान के लगभग मध्य में स्थित है। इस राज्य की स्थापना किशनसिंह (1609-1615) ने की थी। इन्ही के नाम पर इस नगर का नाम किशनगढ़ पड़ा। किशनगढ़ के सभी उत्तराधिकारी भक्ति-भाव से परिपूर्ण कवि तथा कला मर्मज्ञ थे। इन्ही में से एक हुये महाराजा राजसिंह के पुत्र सावन्त सिंह जिनका 1748 में राज्यभिषेक हुआ। इनके समय में किशनगढ़ चित्र शैली को उत्कृष्ट स्वरूप प्रदान करने का श्रेय तीन व्यक्तियो को हैं प्रथम कवि, चित्रकार, भक्त और कलाप्रेमी 'राजा सावन्त सिंह' इनके शासन काल मे किशनगढ़ की कलात्मक गतिविधियों इस तरह खिल उठी की असाधारण सौन्दर्य वाली कृतियों का निर्माण हुआ। द्वितीय-महाराजा सावन्त सिंह की प्रिया बणी-ठणी तथा तृतीय महाराजा सांवत सिंह का आश्रित चित्रकार 'मोरध्वज निहालचन्द'।

1720 में सावन्तसिह का विवाह भावनगर नरेश जसवन्त सिंह की पुत्री से हुआ किन्तु अपना सम्पूर्ण जीवन उन्होंने अपनी प्रेयसी बणी-ठणी संग व्यतीत किया। बणी-ठणी इनकी सौतेली माँ बकायत जी की दरबार गायिका थी। इनका गायिका रूप सावन्तसिह की आँखों में समा गया। यही कोकिलाकण्ठी अपने अद्वितीय रूप सौन्दर्य के कारण रूप चित्रण का आदर्श बन गयी। स्वयं कवयित्री एंव कला प्रेमिका होने के साथ-साथ सावंतसिंह प्रिया होने में अपनी आराध्या राधा देवी को प्राप्त कर लिया।

किशनगढ़ के चित्र विशेष रूप से जो नागरीदास के काव्य पर आधारित हैं, महत्वपूर्ण हैं, उनमें आध्यात्म की गहराई है, सौन्दर्य की मिठास है और रेखाओं का लास्य है। किशनगढ़ के चित्रो में बणी-ठणी का बहुत ही मनोहारी चित्र है जिसे राधा के रूप में चित्रित किया गया है। 'संस्कृत काव्य' में वर्णित आदर्श नायिका को आधार मानकर निहालचन्द ने 'बणी-ठणी के रूप में नागरीदास की राधा रानी रचि। राजस्थानी भाषा के शब्द बणी-ठणी का मतलब होता है, ''सजी संवरी", सजी-धजी। इसके रूप लावण्य का चित्रण ऐसा हुआ जिससे आलौकिक सौन्दर्य का चित्रात्मक मूर्तरूप स्वर्गिक आनन्द का अनुभव कराता है। सर्वत्र सुकुमारता, दिखाई देती है," बणी-ठणी का चित्रकला संसार में उतना ही आदरपूर्ण स्थान है जितना राधा-रानी और मोनालिसा का है।

कलाकारः प्रवीन कुमार (कोपी वर्क)

बणी-ठणी का गौर वर्ण, सघन सुसज्जित केशराशि, ढलता हुआ माथा, माथे पर बिन्दी और उसके साथ गोलबन्दा-श्वेत मोतियों की लड़ी से माँग पर श्वेत आभा की रेखा बिखेरता हुआ, घने कजरारे कमल नयन जो सुख समृद्धि के प्रतीक है। तीखी नाक, नाक में सुन्दर नथ, उसके नीचे लाल अधर की रेखा जिसको, देखने से लगता है, कि प्रकृति में खिलें पुष्पों की पंखुड़ियों ने एक कतार सवार दी हो। गोल तीखी चिबुक लम्बी गर्दन जो सुन्दर, मुक्ताओं से सज्जित है, फूलों से भरी चुनरी से आधे ढके केश तथा शेष एक लट कपोल की तरह सुन्दरता को बढ़ा रही है, गर्दन पतली और लम्बी है। कानों में सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। हाथों में अलखतख लगा है और अंगुलियों को भावपूर्ण ढंग से सजाया गया है, एक हाथ में कमल और दूसरे हाथ मे घूंघट को पकड़ रखा है जो कुछ-कुछ आगे की और ढलता हुआ है जिससे यह रूप मनोहारी बन गया है। इस चित्र में रंग, रेखाओं ने अपने अद्‌भूत सौन्दर्य को प्रकट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की हैं।

किशनगढ़ शैली के चित्रांकन की आत्मा राधा है, जिसे पूरे भारतीय सौन्दर्य में डूबकर किशनगढ़ के चित्रकारों ने अटल धरोहर के रूप में रच दिया है। बणी-ठणी वास्तव में एक निष्पाप के शौर्य के सौन्दर्य का चित्रण है। चित्र, चित्र नहीं बल्कि कला के आकाश से टपकी ऐसी स्वाति बूंद हैं, जो किशनगढ़ शैली की शीप मे समाकर कला की अमूल्य मोती बन गई। राधा के रूप-लावण्य को अपने चरम में छुने वाला यह एकमात्र अग्रतिम और अतुलनीय चित्र है। इस चित्र को देखकर ऐसा लगता है, कि क्षितिज के फलक पर अनायास ही उषा के रंग अंगड़ाई लेकर जाग रहे हैं। इस चित्र के विषय में जितना भो कहा जाये वह कम है, "इस चित्र में भोली और सोम्य राधा का सौन्दर्य नहीं, बल्कि साक्षात सौन्दर्य की ममता झांकती है, यह वास्तव में राधा के सौन्दर्य का चित्रांकन नही, सौन्दर्य का राधाकंन है।"

किशनगढ़ शैली में राधा का यही रूप एक मॉडल चित्र के रूप में तैयार कर लिया गया था। इसके निर्माता निहालचन्द जी थे जिन्होंने अन्य चित्रों में राधा की इसी छवि को चित्रित किया है जो 'कनक छरी-सी कामिनी' के समान मोह लेती है। इनका रूप सौन्दर्य से भरा यौवन कल्पना के मधुर लोक में पहुँचा देता है।

इसी प्रकार ''श्री कृष्ण की अजस्र भक्तिधारा से सनी भक्त कवि नागरीदास की रासिकता एंव भावुकता से सम्पन्न बणी-ठणी के अनिध रूपा सौन्दर्य की प्रेरणा से पल्लवित विश्व प्रसिद्ध कृति को एरिक डिकन्सन ने राजस्थान की 'मोनालिसा' कहा है। यही कृष्ण की राधा भी है। बणी-ठणी का यह चित्र जो कि समस्त राजस्थानी शैली के उत्कृष्ठ चित्रो में गिना जाता है। यह चित्र किरानगढ़ शैली की सर्वोतम देन है। इस चित्र में कविता का भावमय सौन्दर्य साकार हो उठा है। उनकी शुक नासिका, कमान की तरह बनी भौहें, पीछे की ओर हुई ढलता हुआ त्रिकोणाकार माथा, मत्साकार आँखे और भावों को अभिव्यक्त करने वाली अंगुलियों सभी मिलकर श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक करने में सक्षम है। यह चित्र श्रृंगार रस, आध्यात्मिकता के ताने बाने मे बुना हुआ है।

इस चित्र को देखने के पश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि रंग और रेखाएं कोमलता के साथ आराध्क और आराध्य के मध्य सेतु का काम कर रही हैं और दर्शकगण इस भक्तिमय सौन्दर्य का रसपान कर रहें हैं। इस चित्र में नवीनता है और बृजभाषा के लोक साहित्य की कल्पना है। इस चित्र में सजीवता तथा सुन्दरता है जिससे भावाभिव्यक्ति और प्रबल हो गई है। यह चित्र दर्शको को इस कदर अपनी और आकर्षित करता है कि कोई भी पर्यटक इसे देखे बिना नहीं रह सकता। यह कहना असत्य न होगा कि किशनगढ़ का यह प्रसिद्ध चित्र प्रत्येक पर्यटक को आध्यात्मिक अनुभति कराते हुए कलात्मक सौन्दर्य का विकास करता है। बणी-ठणी के रूप रंग (सुवर्ण) को देखकर स्वर्ण का रंग भी फीका लगता है। जैसे-जैसे अपने नैनों से निहारते हैं वैसे-वैसे उसका रूप सौन्दर्य निखरता जाता है। इतना ही नहीं भारत सरकार ने 'बणी-ठणी' के इस चित्र को 5 मई, 1973 को एक डाक टिकट के रूप में जारी किया था।

भारतीय मोनालिसा रूपक समकालीन कला को प्रेरित करता रहता है, जैसा कि जयपुर के गोपाल स्वामी खेतानची की बनी ठनी में देखा जा सकता है। इस आधुनिक कला कृति के बारे में लोकप्रिय राय यह संकेत देती है कि रूपक को नारीत्व, सौंदर्य और कला के आदर्शों में पश्चिम पर भारतीय श्रेष्ठता का दावा करने के तरीके के रूप में माना जाता है, इस प्रकार वास्तव में औपनिवेशिक प्रवचन को उलट दिया जाता है एक प्राच्यवादी निर्माण प्रतीत होने पर, रूपक के इतिहास का पता लगाने से विभिन्न एजेंटों की एक जटिल परस्पर क्रिया दिखाई देती है। ब्रिटिश शिक्षक एरिक डिकिंसन ने ए.के. कुमारस्वामी

के कला-ऐतिहासिक प्रवचनों से प्रभावित होकर "लेडी विद वील" को "राजपूत कला के आध्यात्मिक सार" के रूप में बढ़ावा दिया। फिर भी भारतीय मोनालिसा की अवधारणा तब तक पूरी तरह से जम नहीं पाई जब तक कि कार्ल खंडालावाला से लेकर रंधावा तक के राष्ट्रवादी कला इतिहासकारों ने तुलना को लोकप्रिय नहीं बनाया, भले ही कुछ हद तक अनिच्छा से। यह राष्ट्रीय कला संग्रहालय के प्रक्षेप पथ से बहुत करीब से जुड़ गया, जिसमें कला के प्रति एक नया उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवादी दृष्टिकोण शामिल था, लेकिन क्षेत्रीय केंद्रों के साथ तनाव भी था। भारतीय राष्ट्र राज्य और पूर्व राज्यों के बीच विवादास्पद संबंधों के बीच, 1973 में जारी किए गए डाक टिकट में एक चरमोत्कर्ष प्राप्त हुआ। राधा-किशनगढ़ के रूप में टिकट का आधिकारिक नामकरण क्षेत्रीय संबंध की पुष्टि करता है, लेकिन मॉडल के रूप में बनी-ठनी की भूमिका को स्वीकार नहीं करता। खंडालावाला के अनुमान के बारे में किशनगढ़ दरबार की चुनौती को दरबारी-विद्वान फैयाज अली खान ने सबसे तीखे ढंग से तैयार किया था। फिर भी, एक लोकप्रिय स्तर पर, सावंत सिंह के साथ बनी-ठनी के "रोमांस" की कहानी असाध्य साबित हुई क्योंकि पर्यटन क्षेत्र के साइबर-ओरिएंटलिस्ट दृष्टिकोण ने इसे जीवित रखा। इस सूक्ष्म समझ के साथ, हम वास्तव में उन महत्वपूर्ण समानताओं की पहचान करने की स्थिति में हैं जो इतालवी मोनालिसा और "भारतीय मोनालिसा" की तुलना करने में सहायक हैं। यह कई स्तरों पर किया जा सकता है, जैसे कि प्रसिद्ध चित्रों के लिए कथित मॉडल कौन थे, संरक्षक कौन थे, उनका जीवन कैसा था, और इसने आदर्श चित्रण को कैसे प्रभावित किया? साथ ही तकनीकी पहलुओं के संबंध में, चित्रित महिलाओं का जीवन उनके गृहनगर के इतिहास के कुछ सबसे उथल-पुथल भरे वर्षों में फैला हुआ है, चाहे वह पंद्रहवीं सदी के अंत से सोलहवीं सदी की शुरुआत में मोनालिसा का फ्लोरेंस हो या अठारहवीं सदी के मध्य में बनी-ठनी का किशनगढ़। फिर भी उनके चित्र उच्च गुणवत्ता वाले सांस्कृतिक उत्पादन के प्रवाह का हिस्सा हैं, यकीनन शिखर भी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पड़ोसी रियासतों के साथ बहुत ही प्रतिद्वंद्विता ने प्रत्येक उत्कृष्ट कृति की विशिष्ट शैली के प्रायोजन और प्रचार में कारक बनाया यहां तक कि प्रश्न जबकि "बानी-ठनी", उस उपनाम के अनुरूप, पूरी तरह से तैयार है और पारंपरिक आभूषणों से सुसज्जित है, घूंघट में है, हालांकि शायद ढकने के बजाय कोमलता से उजागर कर रही है। प्रत्येक मामले में चित्रों में अधिक रूपक भिन्नता थी।

निष्कर्ष

अठारहवीं शताब्दी की किशनगढ़ चित्रकला, विशेष रूप से "बनी-ठनी" का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन, इस शैली की अद्वितीय कलात्मक विशेषताओं और सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालता है। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजा सावंत सिंह के संरक्षण और चित्रकार निहाल चंद की असाधारण प्रतिभा के संगम ने एक ऐसी चित्रकला शैली को जन्म दिया जो अपने विशिष्ट सौंदर्य आदर्शों, भावनात्मक गहराई और तकनीकी उत्कृष्टता के लिए जानी जाती है।

"बनी-ठनी" का चित्रण मात्र एक व्यक्ति का चित्र नहीं है, बल्कि यह किशनगढ़ शैली के सौंदर्य दर्शन का मूर्त रूप है। इसकी लंबी गर्दन, धनुषाकार भौहें, कमल जैसी आँखें और पतले होंठ एक आदर्श नारी सौंदर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो तत्कालीन साहित्यिक और काव्यात्मक कल्पनाओं से प्रेरित है। निहाल चंद ने रंगों के सूक्ष्म प्रयोग, रेखाओं की लयबद्धता और चेहरे के भावों की नाजुक अभिव्यक्ति के माध्यम से इस कृति में जान डाल दी है।

यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि "बनी-ठनी" किशनगढ़ के कलात्मक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रतीक है। राजा सावंत सिंह के भक्तिमय और प्रेमपूर्ण विचारों ने निहाल चंद की कला को एक नई दिशा दी, जिसके परिणामस्वरूप "बनी-ठनी" जैसी उत्कृष्ट कृतियों का निर्माण हुआ। यह चित्र न केवल कला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, बल्कि यह उस समय के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी दर्शाता है।

अतः, अठारहवीं शताब्दी की किशनगढ़ चित्रकला, जिसमें "बनी-ठनी" एक अनुपम उदाहरण है, भारतीय कला के इतिहास में एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण अध्याय है। इसका सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन हमें उस युग की कलात्मक संवेदनशीलता, कलाकार की कुशलता और आश्रयदाता के दृष्टिकोण को समझने में मदद करता है, जिससे इस शैली की अद्वितीयता और स्थायी महत्व स्थापित होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 'प्रताप' रीता, "भारतीय चित्रकला एंव मूर्तिकला का इतिहास," राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, तृतीय संस्करण 2013
- 'अग्रवाल', आर०ए०, "भारतीय चित्रकला का वैभव (प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान तक) रूपसागर, स्वाति पब्लिकेशन, दिल्ली 110005
- 'शुक्ला', अन्नपूर्णा, "किशनगढ़ चित्र शैली, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी"
- 'अग्रवाल', आर०ए० भारतीय चित्रकला का विवेचन, लायल बुक्स, मेरठ
- भारतीय लघुचित्र वीचिका फलक, published by. National museum, Janpath New Delhi-110001
- 'भार्गव, सरोज, भारतीय कला का इतिहास, ओसवाल पब्लिसर्स, आगरा - 282002
- 'वालिया', जे०एस०, "भारतीय चित्रकला का आलोचनात्मक इतिहास, अहम् पाल पब्लिशर्स, जालन्धर (पंजाब)
- नीरज', 'जयसिंह', राजस्थानी चित्रकला, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- 'शेखावत', प्रमोद, "भारतीय चित्रकला' शिक्षा दीप प्रकाशन, वैशाला, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश - 201010
- https://doi.org/10.1017/9781009201698.007 Published online by Cambridge University Presshttps://doi.org/10.1017/9781009201698.007 Published online by Cambridge University PressV

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के युग में पुस्तकालयों की शाश्वत प्रासंगिकता: एक समीक्षा

डॉ० अंजनी सराफ

सहायक प्राध्यायक, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान-विभग, डॉ०सी०वी० रमन विश्वविद्यायल, बिलासपुर, छ.ग.

शोध सारांश

पुस्तकालयों का इतिहास सदियों पुराना है, जो ज्ञान के संरक्षक और बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने का काम करते हैं। पुस्तकालय लंबे समय से मानव सभ्यता की आधारशिला रहे हैं, जो ज्ञान के भंडार, सांस्कृतिक केंद्र और सीखने के केंद्र के रूप में काम करते हैं। हालाँकि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के युग में, कुछ लोगों ने पुस्तकालयों की प्रासंगिकता पर सवाल उठाए हैं। यह लेख तेजी से तकनीकी प्रगति वाले युग में पुस्तकालयों की कालातीत प्रासंगिकता का पता लगाता है।

पुस्तकालय इन कौशलों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, व्यक्तियों को डिजिटल परिदृश्य को प्रभावी ढंग से नेविगेट करने में मदद करने के लिए संसाधनों और शैक्षिक कार्यक्रमों की एक श्रृंखला प्रदान करते हैं। लाइब्रेरियन, अपनी विशेषज्ञता के साथ, ऑनलाइन स्रोतों की विश्वसनीयता का आकलन करने, डेटा गोपनीयता को समझने और सूचना साक्षरता कौशल विकसित करने में उपयोगकर्ताओं का मार्गदर्शन करते हैं। डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देकर, पुस्तकालय व्यक्तियों को एआई के युग में सूचित निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाते हैं, जिससे गलत सूचना और एल्गोरिदम संबंधी पूर्वाग्रहों से जुड़े जोखिम कम होते हैं।

पुस्तकालय हमारे समाज में प्रासंगिक और आवश्यक बने हुए हैं। ज्ञान के भंडार के रूप में अपनी भूमिका से परे, पुस्तकालय आलोचनात्मक सोच, डिजिटल साक्षरता, सामुदायिक जुड़ाव और सूचना तक समान पहुँच को बढ़ावा देते हैं। जैसे-जैसे हम डिजिटल युग की जटिलताओं से निपटते हैं, पुस्तकालय बौद्धिक और सामाजिक अभयारण्य के रूप में काम करना जारी रखते हैं, मानवीय संबंधों को बढ़ावा देते हैं और उन मूल्यों को संरक्षित करते हैं जो हमें विशिष्ट रूप से मानव बनाते हैं।

मूल शब्द: कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), पुस्तकालय, कुसमय, प्रासंगिकता, पुस्तकालय, कृत्रिम बुद्धि का युग, सूचना तक पहुंच

परिचय

पुस्तकालय सदियों से ज्ञान की रक्षा और बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने के लिए मौजूद हैं। प्रौद्योगिकी में तेजी से हो रही प्रगति, विशेष रूप से AI के उदय के साथ, डिजिटल युग में पुस्तकालयों की भूमिका को स्पष्ट करने की आवश्यकता हो सकती है। इस लेख का उद्देश्य पुस्तकालयों के स्थायी महत्व की जांच करना है, AI के परिवर्तनकारी प्रभाव के बावजूद उनकी निरंतर प्रासंगिकता पर जोर देना है। AI की क्षमताओं को समझकर और उनका लाभ उठाकर, पुस्तकालय अपने मिशन को सुदृढ़ कर सकते हैं और महत्वपूर्ण सामुदायिक संसाधन बने रह सकते हैं। जबकि AI ने निस्संदेह हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को बदल दिया है, पुस्तकालय कई कारणों से महत्वपूर्ण बने हुए हैं। सबसे पहले, पुस्तकालय पुस्तकों, पत्रिकाओं और मल्टीमीडिया सामग्रियों सहित संसाधनों की एक विविध श्रेणी तक पहुँच प्रदान करना जारी रखते हैं। यह पहुँच समावेशिता को बढ़ावा देती है और यह सुनिश्चित करती है कि ज्ञान केवल डिजिटल साधनों वाले लोगों तक ही सीमित न रहे। पुस्तकालय सहयोग, बातचीत और जुड़ाव को बढ़ावा देने वाले आवश्यक सामुदायिक स्थान हैं। डिजिटल संचार के प्रभुत्व वाले युग में, पुस्तकालय भौतिक वातावरण प्रदान करते हैं जहाँ व्यक्ति सीख सकते हैं, विचार साझा कर सकते हैं और सार्थक चर्चाओं में संलग्न हो सकते हैं। पुस्तकालय सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे ऐतिहासिक दस्तावेजों, पांडुलिपियों और अन्य मूल्यवान कलाकृतियों के संरक्षक के रूप में कार्य करते हैं, जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए उनकी दीर्घायु सुनिश्चित करते हैं। इसके अतिरिक्त, पुस्तकालय डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों की सुविधा प्रदान करते हैं, जिससे व्यक्तियों को डिजिटल दुनिया की जटिलताओं को समझने और व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के लिए एआई की शक्ति का उपयोग करने में मदद मिलती है।

सूचना पुनर्प्राप्ति और ज्ञान संगठन

पुस्तकालयों ने लंबे समय से ज्ञान के भंडार के रूप में काम किया है, जो उपयोगकर्ताओं को विशाल पुस्तकों, पत्रिकाओं और अन्य संसाधनों तक पहुँच प्रदान करते हैं। एआई के युग में, एल्गोरिदम और खोज इंजनों ने सूचना पुनर्प्राप्ति को सहज बना दिया है। हालाँकि, इन स्वचालित प्रक्रियाओं के लिए अक्सर पुस्तकालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली अधिक गहराई और प्रासंगिक समझ की आवश्यकता होती है।

ज्ञान संगठन और वर्गीकरण में लाइब्रेरियन की विशेषज्ञता बेजोड़ है, जो उपयोगकर्ताओं को अधिक प्रभावी ढंग से नेविगेट करने और जानकारी खोजने में सक्षम बनाती है।

डिजिटल साक्षरता और पहुँच

जबकि AI प्रौद्योगिकियों ने सूचना तक डिजिटल पहुँच को बढ़ाया है, डिजिटल विभाजन बना हुआ है, जो ज्ञान तक समान पहुँच को सीमित करता है। पुस्तकालय इस विभाजन को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति की परवाह किए बिना सभी को सूचना और डिजिटल संसाधनों तक पहुँच प्राप्त हो। सार्वजनिक कंप्यूटर केंद्रों और डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों जैसी पहलों के माध्यम से, पुस्तकालय व्यक्तियों को आवश्यक डिजिटल कौशल विकसित करने, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर नेविगेट करने और सूचना का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सक्षम बनाते हैं। इस प्रकार, पुस्तकालय AI युग में डिजिटल समावेशन को बढ़ावा देना और समान ज्ञान पहुँच को बढ़ावा देना जारी रखते हैं।

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण

पुस्तकालय लंबे समय से सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक रहे हैं, ऐतिहासिक दस्तावेजों, पांडुलिपियों और दुर्लभ कलाकृतियों को संरक्षित करते रहे हैं।

सामुदायिक सहभागिता और आजीवन शिक्षा

ज्ञान के भण्डारों से परे, पुस्तकालय जीवंत सामुदायिक स्थानों के रूप में कार्य करते हैं जो जुड़ाव, सीखने और सहयोग को बढ़ावा देते हैं। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के प्रसार के बावजूद, भौतिक पुस्तकालय महत्वपूर्ण सामुदायिक केंद्र बने हुए हैं जहाँ व्यक्ति इकट्ठा हो सकते हैं, कार्यशालाओं में भाग ले सकते हैं, व्याख्यान में भाग ले सकते हैं और सार्थक चर्चाओं में शामिल हो सकते हैं (गोस्टिमिरोविक, 2023)। पुस्तकालय आजीवन सीखने के लिए मंच प्रदान करते हैं, सभी उम्र के व्यक्तियों को उनकी शैक्षिक गतिविधियों में सहायता करते हैं। पुस्तक क्लबों, लेखक वार्ताओं और शैक्षिक कार्यक्रमों के माध्यम से, पुस्तकालय सामाजिक संबंध बनाते हैं और विचारों के आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान करते हैं, जिसे AI दोहरा नहीं सकता।

एआई के आगमन ने भले ही सूचना तक पहुँचने और उससे बातचीत करने के हमारे तरीके को बदल दिया हो, लेकिन पुस्तकालय एआई-संचालित समाज में कालातीत प्रासंगिकता को मूर्त रूप देते हैं। सूचना पुनर्प्राप्ति और संगठन में अपनी विशेषज्ञता के माध्यम से, पुस्तकालय संसाधनों की विश्वसनीयता और सटीकता सुनिश्चित करते हैं। पुस्तकालय डिजिटल साक्षरता और ज्ञान तक समान पहुँच को बढ़ावा देकर डिजिटल विभाजन को पाटते हैं। वे सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हैं और ऐसी अप्रत्याशित खोजें प्रदान करते हैं जो हमारी विश्व समझ को समृद्ध करती हैं। इसके अलावा, पुस्तकालय अपरिहार्य सामुदायिक स्थान बने हुए हैं जो जुड़ाव, सीखने और सहयोग को बढ़ावा देते हैं। जैसा कि इस लेख में समीक्षा किए गए साहित्य में बताया गया है, पुस्तकालयों में स्थायी गुण होते हैं जो उन्हें एआई के युग में अपरिहार्य बनाते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणाएँ

"कृत्रिम बुद्धिमत्ता" वाक्यांश अक्सर बात करने वाले रोबोट या कंप्यूटर की तस्वीरें पेश करता है। कंप्यूटर विज्ञान का एक क्षेत्र जिसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता के रूप में जाना जाता है, इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि कंप्यूटर कैसे सीखते हैं (मशीन लर्निंग), जानकारी की व्याख्या करते हैं, और अपनी आँखों से दुनिया को देखते हैं, जिसमें चरित्र पहचान, छवि विश्लेषण, 3D धारणा और नेत्र कार्य मॉडलिंग शामिल है। इसमें भाषण पहचान, भाषण उत्पादन, प्राकृतिक भाषा की समझ और उपयोग (मूल भाषा प्रसंस्करण), और विशेषज्ञ प्रणालियाँ भी शामिल हैं, जो अधिक से अधिक ध्यान आकर्षित कर रही हैं। विलियम्स (2019, लाइब्रेरी सेवाओं, सूचना प्रौद्योगिकी और पुस्तकालयों पर एआई का प्रभाव) के अनुसार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव बुद्धि की आवश्यकता वाले कार्यों को निष्पादित करने के लिए कंप्यूटर की प्रोग्रामिंग और विकास है, जैसे भाषण पहचान, निर्णय लेना, दृश्य धारणा, भाषा अनुवाद, बातचीत और भावनात्मक भावनाएँ।

(केशव, 2020) ने दावा किया कि कंप्यूटर सिस्टम या मशीनों का अनुसंधान और विकास कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विषय का हिस्सा है। यह मानवीय जानकारी के कुछ पहलुओं को प्रदर्शित करता है, जैसे कि नए विचारों और कार्यों को सीखना, किसी कार्य के बारे में तर्क करना और लाभकारी निष्कर्ष पर पहुँचना, प्राकृतिक भाषा को संसाधित करना, दृश्य दृश्यों को समझना और समझना आदि। 1950 के दशक में एलन ट्यूरिंग द्वारा बनाए गए ट्यूरिंग टेस्ट का उपयोग कंप्यूटर की बुद्धिमत्ता को मापने के लिए किया जा सकता है, भले ही इस दृष्टिकोण में समस्याएँ और आलोचनाएँ हों। हालाँकि, (कुन्हा, 2018) के अनुसार, कंप्यूटर या अन्य मशीनों की कृत्रिम बुद्धिमत्ता शक्तिशाली या कमजोर हो सकती है। आर्टिफिशियल सॉलिड इंटेलिजेंस कंप्यूटर को लोगों की तरह सोचने और कार्य करने की अनुमति देता है, और यह उन्हें अपनी गलतियों से सीखने की भी अनुमति देता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में पुस्तकालयों की चिरस्थायी प्रासंगिकता

1. पुस्तकालय समाज के आवश्यक स्तंभ हैं: पुस्तकालय हमेशा से समाज के आवश्यक स्तंभ रहे हैं, जो सभी व्यक्तियों को सूचना और ज्ञान तक पहुँच की सुविधा प्रदान करते हैं। एआई युग में, पुस्तकालय कई मायनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सबसे पहले, वे मानव ज्ञान के संरक्षक के रूप में कार्य करते हैं, सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि ऐतिहासिक अभिलेख भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें। डिजिटल अभिलेखागार के प्रचलन के बावजूद, भौतिक पुस्तकालय मूर्त अनुभव प्रदान करते हैं, अतीत से जुड़ाव की भावना को बढ़ावा देते हैं और मानव इतिहास की गहरी समझ को सक्षम करते हैं।
2. पुस्तकालय सामुदायिक सहभागिता और सामाजिक सामंजस्य में योगदान देते हैं: वे समावेशी स्थानों के रूप में कार्य करते हैं जहाँ लोग एकत्रित हो सकते हैं, बातचीत कर सकते हैं और विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। पुस्तकालय ऐसे कार्यक्रम और आयोजन प्रस्तुत करते हैं जो विविध

समुदायों को एकजुट करते हैं, संवाद, समझ और सांस्कृतिक समृद्धि को बढ़ावा देते हैं। एआई-संचालित दुनिया में, जहाँ मानवीय संबंधों को कभी-कभी अनदेखा कर दिया जाता है, पुस्तकालय पारस्परिक संबंधों को बढ़ावा देने और अपनेपन की भावना को पोषित करने के लिए महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में कार्य करते हैं।

3. पुस्तकालय एआई सिस्टम के संभावित पूर्वाग्रहों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं: जैसे-जैसे एआई एल्गोरिदम निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में तेजी से प्रचलित होते जा रहे हैं, इन प्रणालियों के भीतर पूर्वाग्रहों के बने रहने के बारे में चिंता बढ़ रही है। पुस्तकालय विश्वसनीय मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकते हैं, विभिन्न स्रोतों से जानकारी एकत्र कर सकते हैं और निष्पक्ष दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं। संसाधनों की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुँच प्रदान करके, पुस्तकालय व्यक्तियों को जानकारी का गंभीर रूप से मूल्यांकन करने और सूचित निर्णय लेने में सक्षम बनाते हैं, इस प्रकार एआई-जनित सामग्री के संभावित नुकसानों का प्रतिकार करते हैं।
4. पुस्तकालय आलोचनात्मक सोच और आजीवन सीखने को बढ़ावा देकर व्यक्तियों को सशक्त बनाते हैं: ऐसे युग में जहाँ जानकारी प्रचुर मात्रा में है लेकिन अक्सर खंडित होती है, पुस्तकालय ज्ञान के प्रवेश द्वार के रूप में कार्य करते हैं, उपयोगकर्ताओं को विशाल डिजिटल परिदृश्य के माध्यम से मार्गदर्शन करते हैं। वे व्यक्तियों को जानकारी को प्रभावी ढंग से नेविगेट करने और उसका आकलन करने, बौद्धिक जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने और आजीवन सीखने की आदतों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कौशल से लैस करते हैं। पुस्तकालय मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि व्यक्ति तकनीकी प्रगति के अनुकूल हो सकें और मानव-केंद्रित दृष्टिकोण बनाए रखते हुए AI के लाभों का दोहन कर सकें।

परिणाम

1. मानव ज्ञान का संरक्षण: पुस्तकालय सदियों से मानव ज्ञान के संरक्षक रहे हैं और डिजिटल युग में भी इनका बहुत महत्व है। जबकि इंटरनेट बहुत सारी जानकारी तक तुरंत पहुँच प्रदान करता है, यह अक्सर अशुद्धियों, पूर्वाग्रहों और ऑनलाइन सामग्री की क्षणभंगुर प्रकृति से ग्रस्त होता है। दूसरी ओर, पुस्तकालय सावधानीपूर्वक चयनित संसाधनों को क्यूरेट करते हैं, जिससे सटीक, विश्वसनीय और सत्यापित जानकारी का संरक्षण सुनिश्चित होता है। वे हमारे सामूहिक इतिहास, संस्कृति और वैज्ञानिक उपलब्धियों के भंडार के रूप में काम करते हैं, उन्हें भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखते हैं। एआई-जनरेटेड कंटेंट के युग में, पुस्तकालय सच्चाई और प्रामाणिकता का एक सहारा प्रदान करते हैं।
2. डिजिटल साक्षरता और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देना: जैसे-जैसे AI हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं में तेजी से एकीकृत होता जा रहा है, डिजिटल साक्षरता और आलोचनात्मक सोच कौशल पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। पुस्तकालय इन कौशलों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, व्यक्तियों को डिजिटल परिदृश्य को प्रभावी ढंग से नेविगेट करने में मदद करने के लिए संसाधनों और शैक्षिक कार्यक्रमों की एक श्रृंखला प्रदान करते हैं। लाइब्रेरियन, अपनी विशेषज्ञता के साथ, ऑनलाइन स्रोतों की विश्वसनीयता का आकलन करने, डेटा गोपनीयता को समझने और सूचना साक्षरता कौशल विकसित करने में उपयोगकर्ताओं का मार्गदर्शन करते हैं। डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देकर, पुस्तकालय व्यक्तियों को AI के युग में सूचित निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाते हैं, जिससे गलत सूचना और एल्गोरिदम संबंधी पूर्वाग्रहों से जुड़े जोखिम कम होते हैं।
3. सामुदायिक जुड़ाव और सहयोग: पुस्तकालय लंबे समय से सामुदायिक केंद्र रहे हैं, जो सभी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों के लिए एकत्रित होने के स्थान के रूप में काम करते हैं। एआई के युग में, जहाँ तकनीक कभी-कभी लोगों को अलग-थलग कर सकती है, पुस्तकालय अपनेपन और समुदाय की भावना को बढ़ावा देते हैं। वे भौतिक स्थान प्रदान करते हैं जहाँ लोग आमने-सामने बातचीत कर सकते हैं, विचारों को साझा कर सकते हैं और परियोजनाओं पर सहयोग कर सकते हैं। पुस्तकालय विभिन्न कार्यक्रम, कार्यशालाएँ और चर्चाएँ भी आयोजित करते हैं, बौद्धिक चर्चा को प्रोत्साहित करते हैं और सामाजिक संबंधों को बढ़ावा देते हैं। सामुदायिक केंद्रों के रूप में अपनी भूमिका को बनाए रखते हुए तकनीक को अपनाकर, पुस्तकालय डिजिटल और भौतिक दुनिया के बीच की खाई को पाटते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि डिजिटल क्रांति में कोई भी पीछे न छूट जाए।
4. ज्ञान तक समान पहुँच: ऐसी दुनिया में जहाँ तकनीक और सूचना तक पहुँच समान रूप से वितरित नहीं है, पुस्तकालय महत्वपूर्ण तुल्यकारक के रूप में कार्य करते हैं। वे पुस्तकों, ई-पुस्तकों, शोध डेटाबेस और डिजिटल उपकरणों सहित संसाधनों की एक विस्तृत श्रृंखला तक निःशुल्क पहुँच प्रदान करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि हर कोई, चाहे उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, उपलब्ध ज्ञान से लाभ उठा सकता है। पुस्तकालय उन लोगों के लिए जीवन रेखा प्रदान करते हैं जिनके पास इंटरनेट की पहुँच नहीं है या जो महंगे डिजिटल सब्सक्रिप्शन का खर्च नहीं उठा सकते हैं। एआई के युग में, जहाँ एल्गोरिदम पूर्वाग्रहों और असमानताओं को बनाए रख सकते हैं, पुस्तकालय समान अवसर के प्रकाश स्तंभ के रूप में खड़े हैं, समावेशिता को बढ़ावा देते हैं और डिजिटल विभाजन को पाटते हैं।

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में, पुस्तकालयों ने अपनी स्थायी उपयोगिता का प्रदर्शन किया है। डिजिटल क्रांति के परिणामस्वरूप हम जिस तरह से जानकारी तक पहुँचते हैं और उसका उपभोग करते हैं, वह बदल गया है, लेकिन पुस्तकालयों ने प्रौद्योगिकी को अपनाया है और हमारे समाज में महत्वपूर्ण संस्थान बने रहने के लिए समायोजन किया है। वे विशाल डिजिटल अभिलेखागार तक पहुँच बिंदुओं के रूप में विकसित हुए हैं, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता की शक्तियों को पूरक करने के लिए सामग्री और सेवाओं का खजाना प्रदान करते हैं।

हमारे समाज के इतिहास और संस्कृति को संरक्षित करने वाले संग्रहों के क्यूरेटर के रूप में, पुस्तकालय ज्ञान के संरक्षक के रूप में कार्य करते हैं। समुदाय और बौद्धिक खोज की भावना को प्रोत्साहित करने के अलावा, वे लोगों को एक भौतिक स्थान प्रदान करते हैं जहाँ वे पुस्तकों, अध्ययन सामग्री और इंटरैक्टिव

प्रौद्योगिकियों के साथ बातचीत कर सकते हैं। पुस्तकालय भरोसेमंद स्रोतों के रूप में खड़े हैं, जो अपने उपयोगकर्ताओं को सूचना अधिभार और एल्गोरिदम संबंधी पूर्वाग्रह के युग में निष्पक्ष और भरोसेमंद जानकारी प्रदान करते हैं।

संदर्भ

1. जे एंडरसन लाइब्रेरीज क्यूरेटेड और संगठित सूचना प्रदाता के रूप में: उपयोगकर्ताओं के लिए विश्वसनीय और सटीक स्रोत सुनिश्चित करना 201945 https://files.eric.ed.gov/fulltext/ED570948.pdf
2. एस ओमरान वास्तविकता और भविष्य के बीच स्मार्ट अनुप्रयोगों के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन और प्रकाशन संस्थानों पर इसका प्रभाव Int J Libr Inf Sci 202072248302
3. बीआर स्मिथ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और लाइब्रेरियनशिप का भविष्य Libr Q2020752187202
4. एल गोस्टिमिरोविक, एस गोस्टिमिरोविक, उच्च-शिक्षा संस्थानों और पुस्तकालयों में नवीनता और आधुनिक रुझान उनकी संरचना की इकाइयों के रूप में, TemeJ Soc Sci 20231641089101
5. सीडी विलियम्स, ईएफ मिलर; लाइब्रेरी सर्व इन्फ टेक्नोलॉजी पर एआई का प्रभाव लाइब्रेरी 201935456778
6. जॉनसन लाइब्रेरीज इन द डिजिटलएज जे इन्फ साइ 202145332135
7. एम केशव एल जूलियन जे मिजेल, शिक्षा जगत में अरबी भाषा के विकास में युग 5.0 में प्रौद्योगिकी की भूमिका जे इंट लिंगुआ टेक्नोलॉजी 2022127998
8. एमबी कुन्हा टी अपाराक-जेलुसिक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के युग में पुस्तकालय डिजिटल पुस्तकालयों के सिद्धांत और व्यवहार पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 2018113
9. ए गैसपरिनी एच कौटोनन रिसर्च लाइब्रेरीज में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को समझना: - व्यापक साहित्य समीक्षा लिबर क्वार्टरली: जे एसोच यूर रेस लिब्र 2022321136
10. जे पर्ल कारण संबंधी अनुमान के सात उपकरण, मशीन लर्निंग पर विचार के साथ Commun ACM20196235460
11. डी बेकर डीप वेब में डेटा पोर्टल्स का आकलन करने के लिए एक स्वचालित विधि की ओरसरकारी जानकारी ₹20193634352
12. टीएस मुनयेन्गेटेर्वा एमबी रिचड्र्स जेबी ईटन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ट्रेंड्स एंड पर्सेप्शन्स: कंटेंट स्ट्रैटेजी एंड द कस्टमर जर्नीइन्फ रिसोर्स मैनेजमेंट एसोसिएशन202333 10.4018/978-1-6684-6366-6.बी006
13. पीजे डेनिंग आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की चुनौतियांकम्युन ACM20186110138
14. अंतर्राष्ट्रीय पुस्तकालय संघ और संस्थान महासंघ (आईएफएलए) 2020 https://www.loc.gov/item/lcwaN0022565/
15. डी जॉनसन द लाइब्रेरी इन द मशीन: एआई, बिग डेटा, एंड मीनिंग जे डॉक्यूमेंटेशन201975131942
16. टी जांग टी झोउ एक्स हे एक्स यांग के इकेबे समय के परिप्रेक्ष्य से जापानी सार्वजनिक पुस्तकालयों पर पुनर्विचार टिकाऊ शहर और समाज टिकाऊ शहर समाज 202287104222
17. https://www.ifla.org/files/assets/hq/topics/e-lending/thinkpiece-on-libraries-elending.pdf.20.(26.07.2023
18. 2021 https://www.ifla.org/files/assets/hq/topics/libraries-development/documents/libraries-un-

"21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य एवं पर्यावरण चेतना: एक अध्ययन"

डॉ० बबलू सिंह

एसो. प्रोफेसर हिन्दी विभाग, जे. एस. हिन्दू पी०जी० कालेज, अमरोहा, सम्बद्ध-एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश (Abstract):

वर्तमान हिन्दी कविता में उभरती पर्यावरणीय चिन्ताओं, संकटों और संरक्षण की चेतना आज प्रथम प्रासंगिकता हो गई है। अत: इक्कीसवीं सदी के कवियों की दृष्टि उन विषमताओं की ओर गई है, जो मनुष्य की स्वार्थपूर्ण गतिविधियों के कारण प्रकृति के मूल तत्त्वोंख्जल, वायु, आकाश, पृथ्वी आदिख्के क्षरण से उत्पन्न हुई हैं। यह चेतना आधुनिक हिन्दी कविता को केवल प्रकृति-प्रेम तक सीमित नहीं रखती, बल्कि पर्यावरणीय संकट के विरुद्ध एक सशक्त नैतिक प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत करती है।

प्राचीन भारतीय परंपरा में जहाँ प्रकृति को दैवीयता और पूजनीयता के साथ देखा गया, वहीं 21वीं सदी की कविता में पर्यावरण के प्रति यह सम्बन्ध आस्था से अधिक जिम्मेदारी और चेतना के रूप में परिलक्षित होता है। आधुनिक कवि औद्योगिकीकरण, पूंजीवाद, शस्त्रीकरण और अनियंत्रित विकास की उस त्रासदी को उजागर करते हैं, जिसने प्रकृति को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है।

यह संचेतना हिन्दी काव्य में आए उन परिवर्तनों को रेखांकित करती है, जिनके माध्यम से कवि न केवल पर्यावरणीय संकट का चित्रण करते हैं, बल्कि मानव जाति को सचेत करते हुए भावी विनाश से बचने की दिशा भी दिखाते हैं। उदाहरणत:, समकालीन कविताओं में नरेश सक्सेना की सुनो चारूशीला से उद्धृत ये पंक्तियां "हम तो होंगे नहीं, पता नहीं पृथ्वी पर जीवन भी होगा या नहीं" उस भयावह भविष्य की ओर संकेत करती हैं, जहाँ आणविक युद्ध और प्रदूषण के कारण पृथ्वी पर जीवन की संभावना ही क्षीण हो चुकी होगी।

यह अध्ययन हिन्दी कविता में प्रकृति के चित्रण की पारम्परिक भूमिका से उसकी समकालीन भूमिका के विकास को स्पष्ट करता है-जहाँ कविता केवल सौन्दर्याभास नहीं, अपितु संघर्ष और चेतना का माध्यम बन गई है।

मुख्य शब्द (Key Words): पर्यावरण चेतना, 21वीं सदी की कविता, हिन्दी काव्य, औद्योगीकरण, पूँजीवाद, प्रकृति संरक्षण, प्रदूषण, जैव विविधता, विनाश बोध, समकालीन कविता।

परिचय (Introduction):

इक्कीसवीं सदी का आरम्भ वैश्विक संकटों और असंतुलनों के साथ हुआ है। इनमें सबसे विकराल संकट पर्यावरणीय असंतुलन का है, जिसने सम्पूर्ण मानवीय सभ्यता को गम्भीर चुनौती दी है। हिन्दी काव्य साहित्य, जो सदैव समाज और प्रकृति के प्रति संवेदनशील रहा है, अब इस चुनौती को अत्यन्त गम्भीरता से ग्रहण कर रहा है।

यद्यपि प्रकृति और पर्यावरण के प्रति श्रद्धा, संवेदना और आत्मीयता का भाव भारतीय काव्य परंपरा में प्राचीन काल से ही विद्यमान है- ऋग्वेद से लेकर आदि कवि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भारवि, दण्डी से होते हुए हिन्दी साहित्य के कबीर, जायसी, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, और आधुनिक युग के कवियों तक प्रकृति के प्रति अति शुद्ध, शुभ चिंतन व्याप्त है। किन्तु 21वीं सदी में यह भाव मात्र सौंदर्य-चित्रण या अध्यात्म नहीं रह गया है, बल्कि यह गहन अध्ययन के उपरान्त संरक्षण, प्रतिरोध और चेतावनी के रूप में विकसित हुआ है।

वर्तमान कवि यह अनुभव कर रहे हैं कि औद्योगिक विस्तार, पूँजीवादी लालसा, अंधाधुंध शहरीकरण, और युद्धोन्मादी प्रवृत्तियों ने पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का विनाश कर दिया है। नदियों का प्रवाह बाधित हुआ है, वनों की कटाई से जैव विविधता पर संकट आया है, वायु और जल में विषाक्तता बढ़ी है, और जलवायु परिवर्तन के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण तंत्र विकृत हो चुका है।

समकालीन हिन्दी कविता में यह चेतना अत्यन्त गहराई से प्रकट हुई है। कवि केवल पर्यावरणीय संकट को शब्दबद्ध नहीं करते, बल्कि मनुष्य की भूमिका, उसकी भूलों और उत्तरदायित्व की गूढ़ अभिव्यंजना भी करते हैं। नरेश सक्सेना की सुनो चारूशीला से उद्धृत ये पंक्तियां चेतावनी भी देती है और वैकल्पिक नैतिक मार्ग की खोज भी करती है-

"शायद आणविक राख से सनी
ईंट ही कहेगी कथा
और ईंटें ही सुनेंगी।"

वर्तमान साहित्य इसी चेतना के विविध आवरणों को प्रत्यक्ष करता है और यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार 21वीं सदी का हिन्दी कवि पर्यावरणीय प्रश्नों को साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बना रहा है। आज कवि की संचेतना मात्र मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है; प्राकृतिक सौन्दर्य के क्षरण के प्रति गहन चिंतन भी है क्योंकि यह तो अकाट्य सत्य है कि, यदि प्रकृति नहीं तो मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अत: यह लेखन विश्लेषित करता है कि, कैसे हिन्दी कविता आज के भयावह यथार्थ को सौन्दर्यबोध और नैतिक चेतना के साथ प्रस्तुत कर रही है।

कवि का चिंतन उन मानवों के प्रति है जो इस प्राकृतिक कोप के अनायास ही भागी हुए हैं। सत्य ही प्रदूषण की सबसे ज्यादा मार उन गरीबों पर पड़ी जो न तो औद्योगिक विकास का लाभ ले सके और न ही धनाभाव के कारण इनके कुप्रभाव से बच सके। अत: अनायास निर्दोष मानव सभ्यता को सचेत करते हुए कवि विजय राठौर, की 'इत्यादि के पहले', कविता की पंक्तियां उद्घोष करती हैं-

"अगर हमें नहीं बनना है पुरावशेष
तो बचाएँ जल को
वृक्षों को बढायें
आइये सृष्टि की सुरक्षा के लिए
जनसंख्या को घटाएँ"।

इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण की क्षति एक ऐसी वैश्विक समस्या बनकर उभरी है, जिसने मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। जिसका सबसे बड़ा कारण व्यापक स्तर पर प्रौद्योगिकी का विकास एवं नवीनीकरण है जो ई- कचरे को तेजी से बढ़ा रहा है। "नये उपकरण जल्दी ही पुराने पड़ जाते हैं तथा कई उपकर्ण खराब हो जाते हैं। इन सबका नतीजा है, ई वेस्ट, यानी ई कचरा। इससे न सिर्फ हमारा पर्यावरण खतरे में है बल्कि लोगों के स्वास्थ्य के लिए भी गम्भीर खतरा पैदा हो गया है।... ई-कचरे में मौजूद शीशा, पारा, आर्सेनिक, कैडमियम, सेलेनियम, होक्सावैलेंट, क्रोमियम और फ्लेम रिटार्डेट की सीमा से अधिक मात्रा उन्हें खतरनाक बनाती है।" हिन्दी काव्य साहित्य में इस संकट को गहराई से अनुभव किया गया है और कई समकालीन कवियों ने पर्यावरणीय क्षरण के विभिन्न पहलुओं को अपनी कविताओं में गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। डॉ. उमराव सिंह चौधरी, का 'वीणा', के माध्यम से स्पष्ट मत है कि, हमारे जीवन संस्कृति और सभ्यता के मूल में यदि कोई है तो वह प्रकृति है-

"प्रकृति- उतरती है मनुष्य में,
बनकर आत्मचेतना/और यही आत्मचेतना,
होती है मुखर/उसकी स्वाधीनता में,
विवरण है इतिहास
मनुष्य की स्वाधीनता के विकास का,
वह शुरु होता है तब/ जब जगती है,
आध्यात्मिक चेतना मनुष्य में"।

पर्यावरणीय प्रदूषण और सामाजिक विषमता

प्रकृति हमारी संस्कृति, सभ्यता और समाज का मूल है। प्राकृतिक पर्यावरण के विकृत स्वरूप में मनुष्य का जीवित रहना ही जब सन्देहास्पद है तब संस्कृति, सभ्यता और समाज किस प्रकार अपना अस्तित्त्व बनाए रख सकते हैं? मनुष्य ने अपनी शक्ति को बढ़ाने की लालसा में ऐसे अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया है. जो सम्पूर्ण प्राणी जगत को भस्म करने में सक्षम है। हिरोशिमा, नागासाकी व भोपाल की विभीषिका को भूला नहीं जा सकता। आज का हिन्दी कवि जन-जन से प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा का आहवान करता है।

यह सोच आम जन को भावात्मक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर प्रेरित करती है कि वे अपनी जीवनशैली में बदलाव लाकर प्रकृति की रक्षा करें।

औद्योगीकरण, जनसंख्या और संसाधनों का अति-दोहन

तेजी से बढ़ती जनसंख्या और औद्योगीकरण ने प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डाला है। कवियों ने इस त्रासदी को तीव्र सामाजिक चेतना के साथ रेखांकित किया है। कवि विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ अक्सर मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक संतुलन को जोड़ती हैं। समकालीन कविता में स्पष्ट संकेत मिलता है कि:

"पर्वत, समुद्र, नदियाँ, कुएँ, तालाब, वन, मैदान
सभी इलैक्ट्रॉनिक, प्लास्टिक व रासायनिक
कचरे से पट से गए।"

यह चित्रण केवल दृश्य गंदगी की नहीं, बल्कि मानवीय दृष्टिकोण के पतन की भी आलोचना करता है।

रासायनिक प्रदूषण और अन्न संकट

खेती में अत्यधिक रसायनों का प्रयोग, भूमिगत जल का दूषण और अन्न की गुणवत्ता में गिरावट जैसे संकटों को भी कवियों ने गम्भीरता से उठाया है। यह संकट न केवल शरीर को रोगग्रस्त कर रहा है, बल्कि भूमि की उर्वरता भी समाप्त कर रहा है। कविता के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया:

"जैसे-जैसे खेतों में रसायन बढ़े
वैसे-वैसे हमारे रक्त में जहर पनपा।
न भोजन शुद्ध रहा, न जल
और हम बस आंकड़ों में जीते रह गए।"

तकनीक, ई-कचरा और नवीन आपदाएँ

सूचना तकनीक के विकास से उत्पन्न "ई-वेस्ट" की समस्या को भी समकालीन कवियों ने अपने लेखन का विषय बनाया है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का तीव्र उपभोग और उनका जल्द अनुपयोगी हो जाना एक नया संकट है। कवि उदय प्रकाश का लेखन उपभोक्तावादी समाज पर तीव्र प्रहार करता है। एक अन्य कविता से उदाहरण:

"नये उपकरण जल्दी ही पुराने पड़ जाते हैं,
जो ई-कचरे के रूप में
जमीन में जहर घोल देते हैं-
हमारी सभ्यता अब सिले हुए जहर का मुखौटा है।"

वैश्विक संकट, युद्ध और जैविक अस्त्र

पर्यावरणीय विनाश का सबसे भयावह स्वरूप युद्ध और जैविक हथियारों के माध्यम से दिखाई देता है। समकालीन कवियों ने भोपाल गैस त्रासदी, नागासाकी-हिरोशिमा की विभीषिकाओं को याद करते हुए चेतावनी दी है। एक प्रसिद्ध समकालीन राघवेन्द्र कवि, 'एक चिट्ठी की आस में', कविता के माध्यम से कहते है:

"बचा सको तो बचालो
यह सभ्यता उस नजर से
जिसमें जैविक हथियारों की मिसाइले हैं-
जो हजारों मील दूर राष्ट्र को कर देती है
नेस्तनाबूद।"

यहाँ कवि की वाणी में वेदना और आक्रोश एक साथ मुखर हैं, जो केवल भय नहीं उत्पन्न करती, बल्कि आत्म-जागरण की भी माँग करती है।

पर्वतीय पारिस्थितिकी और पूँजीवादी दोहन

विकास के नाम पर पर्वतों को बारूद से उड़ाकर कंक्रीट के जंगल बसाए जा रहे हैं। हिन्दी कवि इस पर्यावरणीय हिंसा को 'प्राकृतिक सौंदर्य की हत्या' के रूप में देखते हैं। नरेश सक्सेना, 'कवि ने कहा, कविता में इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति करते है:

"चट्टानें उड़ रही हैं
बारूद के धुएँ और धमाकों के साथ।
पहाड़ जो चुप थे,
अब बिखर रहे हैं अपने ही कणों में।[8]"

यह बिम्ब पूँजीवादी अंधता और प्रकृति के दर्द की सीधी भिड़ंत कराता है।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा या विनाश: पर्यावरणीय त्रासदी का काव्यात्मक चित्रण

विकास और विनाश का यह द्वन्द्व 21वीं सदी के हिन्दी कवियों के लिए मात्र सामाजिक यथार्थ नहीं, बल्कि रचनात्मक चुनौती बनकर सामने आया है। असंतुलित विकास की वैश्विक प्रतिस्पर्धा, औद्योगीकरण और शहरीकरण के नाम पर पर्यावरण का जो विनाश हो रहा है, उसका मर्मस्पर्शी चित्रण आज के हिन्दी काव्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

कविता अब केवल प्रकृति की सौन्दर्यवत्ता का वर्णन करने तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह पर्यावरणीय दोहन और प्रकृति के विरुद्ध हो रहे षड्यंत्रों की आलोचना का माध्यम बन चुकी है। 21वीं सदी के कवि जंगलों के कटने, नदियों के सूखने, पक्षियों के विलुप्त होने, पहाड़ों के टूटने और समुद्रों के प्रदूषण को केवल तथ्य नहीं मानते, बल्कि उसे मानवीय संवेदना, स्मृति और उत्तरदायित्व के स्तर पर देखना चाहते हैं।

कवियों की दृष्टि में यह विकास दरअसल एक योजनाबद्ध विनाश है, जहाँ भावी पीढ़ियों के जीवन से खिलवाड़ हो रहा है। इस त्रासदी के विरुद्ध कवि की चेतावनी, कविता में प्रतिरोध के स्वर के रूप में उभरती है। शहंशाह आलम कहते हैं-

"पृथ्वी धीरे-धीरे नष्ट हो रही है
जैसे नष्ट हो रहा है घर
जैसे नष्ट हो रहा है जंगल"

इस काल की कविताएँ केवल आलोचना नहीं करतीं, बल्कि यह भी रेखांकित करती हैं कि आधुनिक मनुष्य किस प्रकार 'प्रकृति-विरोधी उपभोक्ता' बनता जा रहा है। उसकी दृष्टि में अब वृक्ष 'लकड़ी', नदियाँ 'बोतलबंद पानी', और पशु-पक्षी श्मनोरंजन की वस्तुश बन चुके हैं। कवि भट्ट, 'अक्षरों का पुल', में इस विघटन को भावात्मक गहराई से अनुभव करता है-

"बाढ़ आये बिना घटना नहीं बनता नदी का बहना
खड़े पेड़ को कोई नहीं पहचानता
टूटता पर्वत ही होता है मुख्य समाचार
इसलिए गिलहरी !
तू गिर, टूट, हो जा चकनाचूर
बहक और बहा खून
अन्यथा कभी नहीं बन पाएगा घटना
तेरा फुदकना।"

21वीं सदी के कवियोंख्जैसे विनोद कुमार शुक्ल, मंगलेश डबराल, कुमार अंबुज, ज्ञानेन्द्रपति, और कई नव्य रचनाकारों की कविताओं में यह पीड़ा बार-बार मुखर होती है। उनकी कविताएँ श्प्रकृति के पक्ष मेंश खड़ी हैं और श्विकास के नाम पर हो रहे विनाशश के विरुद्ध एक सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप बनती हैं।

इस प्रकार, हिन्दी कविता आज केवल सौंदर्य का रस नहीं रही, वह "पर्यावरणीय नैतिकता का घोषणापत्र" बन चुकी है। यह कविता प्रकृति के लिए, प्रकृति के साथ और प्रकृति के पक्ष में खड़ी सृजनात्मक चेतना का परिचायक है।

प्रकृति के ह्रास पर हिन्दी कविता में पर्यावरणीय चेतना

21वीं सदी का हिन्दी कवि असंतुलित विकास और अन्धाधुंध तकनीकी प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय संकट से अत्यंत चिन्तित है। उसकी कविता में केवल प्रकृति की सुंदरता नहीं, बल्कि उसका अव्यवस्थित दोहन और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न करुण स्थितियाँ उभर कर सामने आती हैं। कवि इस विनाश को केवल दृश्य रूप में नहीं देखता, वह उसमें भविष्य की पीड़ा और चेतावनी का बोध भी जोड़ता है।

उदाहरण के लिए, नरेश सक्सेना की सुनो चारूशीला से उद्धृत ये पंक्तियां भविष्य की भयावह स्थिति का कल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करती है:

"देखना जो ऐसा ही रहा तो, एक दिन
बस्तियाँ नहीं होंगी,
मनुष्य नहीं होंगे,
सिर्फ बाजार होंगे,
जहाँ होंगी कविताएँ
पेड़ों, नदियों, चिड़ियों, मछलियों और श्खरगोशोंश का
विज्ञापन करती हुई।"

यह दृश्य केवल भावी संकट की कल्पना नहीं, बल्कि बाजारवादी दृष्टिकोण की आलोचना है जो प्रकृति को केवल उत्पाद बनाकर देखती है। यहाँ कविता सीधे पर्यावरणीय चेतना को जनचेतना में बदलने का प्रयास कर रही है।

दूसरी ओर, प्रकृति के दोहन का व्यावहारिक दृश्य 'चीड लदे ट्रक' कविता में दिखता है:

"हैं डिंग सौंग औं चीड़ लदे ट्रक पर
कितनी चिडियों के नीड लदे ट्रक पर
पर्वत नदियां झरने हिरने
लद कर बाजार चले बिकने
है हत्यारों की भीड़ लदे ट्रक पर
कितनी चिडियों के नीड लदे ट्रक पर।"

यह कविता पेड़ों की कटाई, पक्षियों के घर उजाड़े जाने और पहाड़ों को बाजार में ले जाए जाने जैसी प्रक्रियाओं का यथार्थवादी चित्रण करती है। कवि इसे "हत्या" की संज्ञा देकर स्पष्ट कर देता है कि यह केवल विकास नहीं, बल्कि जीवन के मूल तत्वों की निर्मम समाप्ति है।

राजेश मोहता की कविता 'बहुत जल्द', भावी पीढ़ियों की दुर्गति और वर्तमान पीढ़ी की मूर्खताओं की ओर संकेत करती है:

"हमारी सफलताओं का विशाल ढेर
भावी पीढ़ियों का नरक है।"

यह कविता मनुष्य की तथाकथित प्रगति पर व्यंग्य करती है, जहाँ वर्तमान की सुविधाओं की कीमत भविष्य के जीवन से चुकाई जा रही है। यह पर्यावरण चेतना का सबसे संवेदनशील बिंदु है- पीढ़ियों की उत्तरदायित्व भावना।

कवि नरेन्द्र इस भयावह स्थिति के प्रति सचेत करते हुए यह उद्घोष करते है:

"कह रहे हैं लोग हम आगे बढ़े हैं
ज्ञान औ विज्ञान के ऊँचे शिखर हमने चढ़े हैं
अग्नि, जल, वायु, धरित्री और यह विस्तृत गगन"

यह पंक्तियाँ उस विडम्बना को रेखांकित करती हैं कि भले ही विज्ञान और तकनीक में हम ऊपर चढ़े हों, लेकिन धरती, जल, वायु और आकाशख़इन पंचतत्वों का संतुलन बिगाड़कर हम एक खोखली उन्नति की ओर बढ़ रहे हैं।

नैसर्गिक तत्वों की पीड़ा और संरक्षण की पुकार

21वीं सदी का हिन्दी कवि केवल पर्यावरणीय संकट को तथ्यात्मक रूप में नहीं देखता, वह उसके भीतर छिपे सौंदर्य, कोमलता, और जीवंतता को भी अत्यंत संवेदनशील दृष्टि से महसूस करता है। उसकी कविता में पेड़-पौधे, नदियाँ, पक्षी, पर्वत और झरने केवल प्राकृतिक वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि जीवंत प्राणी हैं जिनका क्षरण कवि के हृदय में गहरी टीस उत्पन्न करता है। इस दृष्टिकोण से समकालीन कवि एक सजग साक्षी के रूप में पर्यावरणीय चेतना का वाहक बनता है।

कवि प्रमोद कुमार शर्मा, 'कोसों दूर', मार्मिक कविता में इस प्राकृतिक सौंदर्य की हत्या को बखूबी अभिव्यक्त करते है:

"जल रही है पृथ्वी / जल रहे हैं ज्वालामुखी
नहीं तुम ज्वालामुखियों के मुँह पर / हाथ मत रखो वे जरूर फटेंगे / और तब-
सब चिथड़े-चिथड़े हो जाएगा
आओ / मरने से पहले-
पृथ्वी पर थोड़ा-सा प्रेम तो कर लें!"

इन पंक्तियों में अभिव्यक्त वेदना प्रकृति के कोप से सबको न केवल अगाह कर रही है वरन् भावी दुर्दान्त की भयावहता को भी चित्रित करती है। यह केवल व्यापार नहीं, प्रकृति की आत्मा की नीलामी है। कवि यहाँ एक द्रष्टा के रूप में नहीं, अपितु एक सहभागी, पीड़ित की भाँति शब्दों के माध्यम से विलाप करता है।

इसी प्रकार कवि यह भी दर्शाता है कि मनुष्य अब ग्राहक बन चुका है, उसका प्रकृति से रिश्ता अब सृजनात्मक नहीं, बल्कि उपभोक्तावादी है। यह भाव 'देखना जो ऐसा ही रहा...' राजश्री की 'मैं जीतूंगी' कविता में व्यक्त होता है:

"आयेगा एक दिन
जब प्रकृति के कोप के आगे
हम नतमस्तक हो जायेंगे
लाख चाहकर भी अपने बचाव के लिए
हम कुछ नहीं कर पायेंगे...।"

यहाँ कवि इस बात की चेतावनी देता है कि यदि मानव का दृष्टिकोण न बदला गया, तो प्रकृति कुपित हो नरसंहार का विषय रह जाएगी - अनुभूति का नहीं।

इस संवेदनशीलता की चरम सीमा तब देखी जा सकती है जब कवि भरत प्रसाद प्रकृति के सौंदर्य से आत्मविभोर होकर उसकी महानता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है:

"आत्मविभोर कर देने वाला यह विस्मय
मुझे प्रकृति के प्रति अथाह कृतज्ञता से भर देता है।"

यह वाक्य समकालीन हिन्दी कविता के पर्यावरणीय विमर्श में एक सकारात्मक स्वर जोड़ता है। यह केवल संकट और चेतावनी की भाषा नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा और उत्तरदायित्व की भावभूमि भी निर्मित करता है।

इस बिंदु से स्पष्ट होता है कि 21वीं सदी के कवि की पर्यावरणीय चेतना केवल विरोध या चेतावनी तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक सांस्कृतिक मूल्य के रूप में प्रकृति को स्वीकार करता है और उसकी रक्षा को मानवता का परम कर्तव्य मानता है। वह चाहता है कि मनुष्य केवल उपयोगकर्ता न रह जाए, बल्कि संवेदनशील संरक्षक बने।

निष्कर्ष

21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य पर्यावरणीय चेतना के व्यापक स्वर को लेकर अत्यंत सक्रिय, संवेदनशील और प्रतिबद्ध दिखाई देता है। वर्तमान युग में जहाँ एक ओर विज्ञान और तकनीक ने जीवन को सुविधाजनक बनाया है, वहीं दूसरी ओर इसी विकास ने प्रकृति को अप्राकृतिक रूप से दोहन और विनाश

के कगार पर पहुँचा दिया है। हिन्दी का समकालीन कवि इस संकट से आँख नहीं चुराता, वह इसके विरुद्ध स्वर उठाता है - कभी प्रतिरोध की शैली में, कभी करूणा और चेतावनी के स्वर में, तो कभी आत्मस्वीकृति और कृतज्ञता के भाव से।

कविता "देखना जो ऐसा ही रहा तो..." जैसे उदाहरणों में कवि यह स्पष्ट करता है कि यदि पर्यावरण के प्रति मनुष्य का व्यवहार नहीं बदला, तो आने वाला समय केवल बाजार और विज्ञापन का होगा, जिसमें न प्रकृति बचेगी, न मनुष्यता। वहीं "आयेगा एक दिन" कविता के माध्यम से वह सीधे-सीधे प्रकृति के व्यापारिक शोषण और उसके रक्तरंजित परिणामों की ओर संकेत करता है। प्रकृति के साथ खिलवाड़ का यह सिलसिला केवल पर्यावरण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की भी क्षति है।

इस युग का कवि प्रकृति को केवल दृश्य सौंदर्य के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसके जीवंत, संवेदनशील और समानाधिकार युक्त अस्तित्व को स्वीकार करता है। वह प्रकृति के प्रत्येक घटक - पेड़, नदियाँ, पर्वत, चिड़ियाँ, हिरन, मछलियाँ - को कविता में सजीव पात्र की तरह स्थान देता है। कवि यह भी जानता है कि आज का मानव अपनी भोगवादी दृष्टि में उलझकर आगामी पीढ़ियों के लिए केवल विशैली विरासत छोड़ रहा है - जहरीली हवा, बंजर धरती, गंदी नदियाँ और संवेदनशून्य सभ्यता।

लेकिन यह कविता केवल आक्रोश या विरोध का माध्यम नहीं है, यह प्रेम, संरक्षण और दायित्वबोध की प्रेरणा भी है। समकालीन हिन्दी कवि एक जागरूक नागरिक, एक संवेदनशील रचनाकार और एक सजग पर्यावरण प्रहरी के रूप में पर्यावरणीय चेतना का वाहक बनकर उभरता है। वह न केवल पर्यावरण की क्षति पर शोक व्यक्त करता है, बल्कि पाठक को यह सोचने पर भी विवश करता है कि विकास की यह अंधी दौड़ किस दिशा में जा रही है।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य केवल साहित्यिक सौंदर्य का दर्पण नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक जागरूकता और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की चेतना से युक्त एक प्रभावी माध्यम बनकर सामने आया है। यह पंक्तियां हमें यह स्मरण कराती है कि -"प्रकृति हमारी धरोहर है, इसे बचाना केवल कर्तव्य नहीं, अस्तित्व की अनिवार्यता है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ

'कुसुम' नरेन्द्र : अन्तराल, बोधि प्रकाशन, जयपुर, जुलाई 2009.

गौड़ नरेन्द्र झोले से झांकती हरी पत्ती, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2013.

शर्मा प्रमोद कुमार कोसों दूर, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 20द7.

शिवराम, कुछ तो हाथ गहो!, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2009.

शुक्ल विनोद कुमार आकाश धरती को खदखटाता है, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2006.

सक्सेना नरेश सुनो चारुशीला, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012.

सक्सेना नरेश कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली.

कुमार अरुण (सं.) पर्यावरण चेतना, दिव्यांश पब्लिकेशन्स, लखनऊ, 2012.

खण्डेलवाल अनिरुद्ध सामाजिक पर्यावरण, कमल पुस्तक केन्द्र, दिल्ली, 2006.

खानकाही निश्तर, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल व डॉ० मीना, पर्यावरण दशा और दिशा, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011.

गुप्त राकेश (सं.) निबंधायन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1996.

भट्ट दिवा : उत्तराखण्ड के हिन्दी कवि, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013.

वीणा, सं. राजेन्द्र मिश्र, इंदौर, अंक जनवरी 2009, जनवरी 2010, अक्टूबर 2012.

"आधुनिक कविता में यथार्थ बोध"

डॉ० शिव कुमार व्यास

सह प्राध्यापक, जी. एस. कॉलेज, जबलपुर, मध्य प्रदेश

सारांश

वर्तमान साहित्यिक विमर्श में अत्यंत प्रासंगिक और गूढ़ विषयवस्तु है आधुनिक यथार्थ बोध। साहित्य में श्बोधश शब्द केवल ज्ञान या जानकारी मात्र नहीं, अपितु एक व्यापक और संवेदनशील चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो समय, समाज, संस्कृति और मानवीय मूल्यों की बहुआयामी सत्यों से जुड़ा होता है। श्यथार्थ-बोधश उस काव्य-दृष्टि का द्योतक है, जो जीवन की असलियों को उनके वास्तविक रूप में देखने, समझने और व्यक्त करने की साहित्यिक प्रक्रिया है।

आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध का स्वर समकालीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आत्मबोधात्मक अनुभवों से गहराई से जुड़ा है। यह कविता कल्पना की उन्मुक्त उड़ान के बजाय जमीन से जुड़ी हुई संवेदनाओं, संघर्षों और विडम्बनाओं को स्वर देने का माध्यम बनती है। बोध, विशेषकर यथार्थ-बोध, न केवल किसी विचार की उपस्थिति है, बल्कि यह एक अंत:प्रवृत्त अनुभवात्मक प्रक्रिया भी है, जो कवि की संवेदना, विवेक और विमर्शशक्ति के सम्मिलन से उपजती है।

डा. रमेश कुण्तल मेघ ने 'बोध' को केवल ^Sense' का पर्याय न मानकर, उसे दिव्यात्मक चेतना के रूप में देखा है, जो श्बोधकताश से भिन्न एक गहन अनुभूतिपरक स्थिति है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि यथार्थ-बोध कविता में केवल दृश्य सत्य की अभिव्यक्ति नहीं, अपितु अनुभूत सत्य का कलात्मक निरूपण है।

इस शोध में 'आधुनिक कविता' को एक ऐसे प्रतिबिंब के रूप में देखा गया है जो अपने समय की सच्चाइयों को रचनात्मकता के माध्यम से आत्मसात कर पाठक के अंतर्मन तक पहुँचाने में सक्षम है। आधुनिक हिंदी कवियों - जैसे कि अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, दुष्यंत कुमार, और केदारनाथ सिंह ख्र की काव्य-रचनाओं में यथार्थ-बोध विभिन्न रूपों में विद्यमान है, जो उनके सामाजिक सरोकारों, मानव-विमर्श, जन-जागरण और अस्तित्ववाद से जुड़ते हैं।

संचेतन शब्द: यथार्थ-बोध, आधुनिक कविता, साहित्यिक यथार्थवाद, मानव जीवन और समाज, दर्शन और बौद्धिक चेतना, कलात्मक अनुकरण, भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण।

भूमिका

"यथार्थ" केवल एक वस्तुनिष्ठ स्थिति का बोध नहीं है, अपितु यह एक व्यापक जीवन-दृष्टि है, जो साहित्य में अनुभव, संवेदना और विवेक के समन्वय से उपजती है। आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध का प्रसंग, केवल 'जो है' उसकी अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि 'जैसा है' उस जीवन-तथ्य की संश्लिष्ट, आलोचनात्मक और अनुभवसिद्ध प्रस्तुति है। यह न केवल दृश्य जगत की व्याख्या करता है, बल्कि उससे जुड़े हुए मूल्यात्मक, सामाजिक और मानसिक स्तरों पर भी गहन दृष्टिपात करता है।

भारतीय साहित्यिक परंपरा में साहित्य को केवल मनोरंजन का माध्यम न मानकर, उसे आत्मबोध, सत्य-बोध और आनंद-प्राप्ति का साधन माना गया है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से लेकर आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक', अभिनवगुप्त की व्याख्याओं तक, 'रस' को साहित्य की आत्मा स्वीकार किया गया। रसात्मक आनन्द ही ब्रह्मानंद का सहोदर है - यह विचार 'वेदान्त' से प्रभावित साहित्याचार्यों के चिंतन में स्पष्ट है।

जहाँ भारतीय दर्शन में रस और सौन्दर्य से उत्पन्न आनन्द को ब्रह्मसाक्षात्कार के समतुल्य माना गया है, वहीं पाश्चात्य चिन्तन - विशेषत: अरस्तू (Aristotle) के 'अनुकरण सिद्धांत' में - कला को यथार्थ का अनुकरण (mimesis) कहा गया है, जो आनन्द का कारण बनता है। अरस्तू के अनुसार, "मनुष्य में बाल्यकाल से ही अनुकरण की प्रवृत्ति होती है, और वह अनुकरण से न केवल ज्ञान अर्जित करता है, अपितु आनन्द भी प्राप्त करता है।" इसी प्रकार श्लायरमाकर जैसे जर्मन चिन्तक सौन्दर्य को कलात्मक आनन्द की अनिवार्य शर्त मानते हैं।

साहित्य, विशेषत: कविता, केवल सत्य की घोषणा नहीं करती, वह यथार्थ की अनुभूति कराती है। इस संदर्भ में श्सत्यश और 'यथार्थ' के अंतर को स्पष्ट करना आवश्यक है। सत्य वह है जिसका 'होना' है - जो नित्य और अपरिवर्तनशील है; जबकि यथार्थ वह है जो 'जैसा है वैसा' दिखे। प्लेटो ने हमारे भौतिक जगत को सत्य का 'प्रतिबिम्ब' कहा, न पूर्ण सत्य, न ही पूर्ण मिथ्या - इसे 'अर्धसत्-अर्धासत्' की स्थिति कहा। यह विचार भारतीय दर्शनों, विशेषत: वेदान्त और चार्वाक में भी विद्यमान है। जहाँ वेदान्त इस जगत को मिथ्या मानते हुए ब्रह्म को सत्य कहता है, वहीं चार्वाक दर्शन प्रत्यक्ष को ही यथार्थ मानकर भौतिक जीवन को ही सत्य का पर्याय मानता है।

आधुनिक कविता ने इस यथार्थ की अवधारणा को और भी विस्तार दिया है। यह कविता अब कल्पनालोक से उतरकर जीवन की ठोस जमीन पर खड़ी होती है – वह भूख, बेरोजगारी, सामाजिक असमानता, राजनीति, युद्ध, सांस्कृतिक विघटन और आत्म-संघर्ष की स्थितियों को न केवल व्यक्त करती है, अपितु पाठक को उस पीड़ा में सहभागी बनाती है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, दुष्यंत कुमार, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह जैसे रचनाकारों की कविताएँ इस यथार्थ-बोध की उत्कृष्ट मिसालें हैं।

यथार्थवाद, जो साहित्य में आदर्शवाद के स्थान पर वास्तविक जीवन-संदर्भों की प्रतिष्ठा करता है, वह आधुनिक कविता का मूल स्वर बन चुका है। आधुनिक कवि अब 'जो होना चाहिए' नहीं, बल्कि 'जो हो रहा है' – उसी को अपनी चेतना का केन्द्र बनाते हैं। इसीलिए आज की कविता में बिंब, प्रतीक और शैली भले ही विकसित हों, पर अंतर्वस्तु का लक्ष्य यथार्थ को पहचानना और व्यक्त करना ही है।

यह अन्वेषण आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध की विविध धाराओं, उसके दार्शनिक व सामाजिक आधारों, और रचनात्मक परिणतियों का गहन विश्लेषण है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि, किस प्रकार यह यथार्थ-बोध कविता को केवल रचना नहीं, बल्कि प्रतिरोध, परिवर्तन और चेतना का माध्यम बनाता है।

1. आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध की वैचारिक पृष्ठभूमि

आधुनिक कविता का मूल स्वर यथार्थ के प्रति सजग और उत्तरदायी चेतना में निहित है। यह चेतना मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है, जो केवल सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियों को उद्घाटित ही नहीं करती, बल्कि उनके समाधान की बेचैनी भी व्यक्त करती है। आधुनिक काल में यह यथार्थ-बोध औद्योगिक विकास, राजनीतिक छल, सामाजिक विषमता, वर्ग संघर्ष और सांस्कृतिक क्षरण जैसे विविध आयामों से जुड़ता है।

भारतीय काव्य-परंपरा में मानवतावाद की जड़ें अत्यंत प्राचीन हैं – जहाँ अहिंसा, करुणा, सहिष्णुता, समता, और विवेक जैसे मूल्यों को सार्वभौमिक नैतिकता के रूप में प्रतिष्ठा मिली। आधुनिक कविता ने इन्हीं मानवीय मूल्यों को नये संदर्भों में स्वर देने का कार्य किया। यह साहित्यिक दृष्टिकोण यथार्थवाद की उस धारा को पुष्ट करता है जो "आदर्श से पलायन नहीं, बल्कि यथार्थ के ठोस धरातल पर जीवन को देखने की कोशिश है।"

डा० हरिवंश राय बच्चन की कविता "खून के छापे" में दलित वर्ग की निष्क्रियता नहीं, बल्कि वर्षों के दमन और भय से उत्पन्न हुई मौन असहायता का चित्रण है। यह यथार्थ न केवल एक ऐतिहासिक पीड़ा का दस्तावेज बनता है, बल्कि मानवतावादी चिंता का भी सशक्त प्रमाण है:

"दु:ख सहने के इतने आदी हो गये
कि विद्रोह के सारे भाव ही खो गये...
और जब मौत के मुहं में
जान का हुक्म हुआ
निर्विरोध चुपचाप चले गये।।"(डा० बच्चन,)

यहाँ विद्रोह का न होना, यथार्थ का सबसे बड़ा संकेत बनकर उभरता है ख एक ऐसा यथार्थ जो चेतना की मृत्यु से उपजा है।

दुष्यंत कुमार की कविता "जलते हुए वन का वसन्त" में आधुनिक लोकतंत्र की खोखली संरचना को विद्रूप कर दिया गया है, जहाँ जनता केवल एक औजार बनकर रह गई है:

"भूख की शिकायत नहीं की
बड़ी श्रद्धा से थालों में सजे हुए भाषण
और प्रेस की कतरन खाते रहे... "(दुष्यंत कुमार,)

यह कविता राजनीतिक ढकोसलों पर करारा प्रहार करते हुए यथार्थ-बोध को तीखे स्वर में प्रकट करती है।

डॉ. उमाशंकर तिवारी की कविता "जलते शहर में" शहरीकरण और उद्योगवाद के भयावह परिणामों को रेखांकित करती है, जहाँ मनुष्य अब 'मनुष्य' नहीं, एक भयभीत और दमित जीव बन चुका है:

"हर घर है बना हुआ एक मौत घर
सभी ओर धुएं के पहाड
जलते फुटपाथों के झाड
लपटों की लहरें उची
सड़कों पर खा रही पछाड.. " (डॉ. उमाशंकर तिवारी,)

यह चित्रण न केवल शहरी जीवन की त्रासदी है, बल्कि मानवीय अस्मिता के पतन का भी संकेत है। यह दृश्यात्मक यथार्थ नहीं, संवेदनात्मक और बौद्धिक यथार्थ है।

इन कविताओं में यथार्थ-बोध केवल जीवन की स्थितियों का बयान भर नहीं, बल्कि उनसे उपजी संवेदना और मूल्य-संकट की अनुभूति है। यह बोध भारतीय काव्य-परंपरा के 'रस' और 'अनुभूति' को आधुनिक सामाजिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करता है। आधुनिक कविता का यथार्थ न तो केवल बाह्य दृश्य है, न ही आदर्श का निषेध – वह विवेक, मूल्य और संघर्ष की त्रयी में जन्मा हुआ चेतन अनुभव है।

2. प्रमुख आधुनिक कवियों की काव्य-दृष्टि में यथार्थ की अभिव्यक्ति

आधुनिक कविता केवल शिल्प और भाषा की नवीनता नहीं, बल्कि विचार, दृष्टिकोण और मूल्य चेतना की नई संरचना है। इसमें यथार्थ की पहचान एक संवेदनात्मक अनुभव के रूप में होती है, न कि मात्र दृश्य विवरण के रूप में। आधुनिक कवि यथार्थ को मात्र चित्रित नहीं करते, वे उसमें उतरकर उसे मानव अस्तित्व, करुणा, संघर्ष, अन्याय, और अधिकार जैसे बिंदुओं से जोड़ते हैं।

मानवतावादी जीवन-दृष्टि में करुणा एक केंद्रीय मूल्य है। आधुनिक कवि इस मूल्य को केवल आदर्श नहीं, बल्कि प्रतिरोध और परिवर्तन का आधार बनाते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में यही करुणा एक व्यावहारिक मूल्य बनकर उभरती है:

"तापित को स्निग्ध करे प्यासे को चौन दे

सूखे हुए अधरों को फिर से जो बैन दे..." (भवानी प्र. मि.)

यहाँ कवि पानी को प्रतीक बनाकर उस करुणा की बात करता है जो पीड़ित को सहारा देती है और नैतिकता के धरातल पर मानवता की पुनर्परिभाषा करती है। 'प्राणी वही प्राणी है' कहकर कवि उस नैतिक मानदंड की ओर संकेत करता है जो व्यवहार से तय होता है, जाति या वर्ग से नहीं।

आधुनिक कविता का एक महत्वपूर्ण स्वर सामाजिक असमानता, शोषण और वर्गीय संघर्ष के विरुद्ध है। गिरिजा कुमार माथुर की कविता में यह स्वर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है:

"दूं उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान

दु:ख-दर्द-अभाव भोगकर भी जो झुके नहीं..." (गिरिजा कु. मा.)

यहाँ 'मैं' का भाव सामूहिक बन जाता है - एक ऐसा व्यक्ति जो समस्त पीड़ितों का प्रतिनिधि है। यह यथार्थ-बोध आत्मगत न होकर समाजगत है।

धर्मवीर भारती की 'कृषि' कविता में विषमता के बीजों को उखाड़ फेंकने और एक समतामूलक समाज की स्थापना की आकांक्षा व्यक्त होती है:

"फसलें काटो...

बीज जो बोये विषमता के

आज वही साँपों की खेती उग आई है..."

यहाँ यथार्थ केवल आलोचना नहीं, एक क्रांतिकारी विकल्प है। कवि इस विषैले यथार्थ के स्थान पर श्रम, प्रेम और करुणा की भूमि पर नव-समाज की कल्पना करता है।

रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता एक भयानक यथार्थ की ओर संकेत करती है जहाँ पूंजीवाद और नौकरशाही का मिलाजुला ढाँचा मानव को वस्तु में बदल देता है:

"दर्द, खैराती अस्पताल में डॉक्टर ने कहा

वह मेरा काम नहीं ख़ वह मुसद्दी का है..."

यह यथार्थ आज के शहरी जीवन का वह कटु चेहरा है, जहाँ मनुष्य की पीड़ा किसी प्रणाली का उत्तरदायित्व नहीं बनती, बल्कि उसे दोषी ठहराया जाता है। कविता में यह संवेदना नहीं, बल्कि विचारोत्तेजक व्यंग्य के रूप में सामने आती है - जो यथार्थ को सीधे चुनौती देता है।

आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध की अभिव्यक्ति केवल घटनाओं या अनुभवों का विवरण नहीं, बल्कि एक दार्शनिक, मानवतावादी, और सामाजिक दृष्टिकोण की सक्रिय उपस्थिति है। इन कवियों की रचनाओं में यथार्थ-बोध करुणा के माध्यम से मूल्य-संरचना करता है, विषमता के विरुद्ध संघर्ष का उद्घोष करता है, और पूंजीवादी जीवन-प्रणाली के ढाँचे में फँसे मानव की पीड़ा को रेखांकित करता है।

3. यथार्थ-बोध के सौन्दर्यशास्त्रीय व दार्शनिक आयाम

आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध केवल सामाजिक संरचना और जीवन की वस्तुगत स्थितियों का चित्रण नहीं है, बल्कि यह अनुभूति, संवेदना और आत्मान्वेषण के माध्यम से अंतर्जगत के यथार्थ को भी उजागर करता है। आधुनिक कवियों ने केवल दृश्य यथार्थ नहीं, अपितु अदृश्य मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और सौन्दर्यशास्त्रीय यथार्थ की भी गहराई से पड़ताल की है।

आधुनिक हिन्दी कविता में 'क्षण की अनुभूति' और 'क्षण की सवेदना' को विशेष स्थान मिला है। यह मनोविज्ञान के उस सिद्धांत से मेल खाता है जिसमें क्षणिक अनुभूतियाँ मनोभावों और चेतना के स्तर पर स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं।

अज्ञेय की कविताएँ क्षणिक सवेदनाओं को प्रतीकों और सूक्ष्म बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं:

"तुम्हारी पलकों का कंपना

तनिक सा चमक खुलना, फिर झपना

मानों दिखा तुम्हें लजीली किसी कली के खिलने का सपना..."(अज्ञेय)

यह कविता न केवल प्रेम की कोमल अनुभूति है, बल्कि मन की क्षणिक, चेतन और अवचेतन प्रतिक्रियाओं का बिम्बात्मक प्रदर्शन है। यहाँ यथार्थ केवल दृश्य में नहीं, अनुभूति के सूक्ष्म धरातल पर है।

डा० शम्भुनाथ सिंह का मानना है कि काव्य केवल सवेदनाओं की यथातथ्य अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि अनुभूत भावों का रचनात्मक, प्रतीकात्मक, और सौंदर्यपरक रूपांतरण है, उनके अनुसार: "सामान्य सवेदना कविता नहीं होती, जब तक वह अनुभूति में न बदल जाए और प्रतीकात्मक या बिम्बात्मक रूप न धारण कर ले।"

यही कारण है कि आधुनिक कविता में अनुभव की गहराई और शैली की सांकेतिकता- दोनों का सामंजस्य दिखाई देता है।

आधुनिक कविता केवल बाह्य स्थितियों की नहीं, बल्कि आत्म-चिंतन, आत्मसंदेह और आत्मसंघर्ष की भी काव्यात्मक प्रस्तुति है। मुक्तिबोध की कविता में यह बौद्धिक बेचैनी आक्रोश का रूप लेती है, तो वहीं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में यह घृणा और अविश्वास के रूप में सामने आती है:

"प्रार्थना घरों के घंटे तक
जंगली जानवरों की तरह
दुर्गन्ध सूंघते मिलते हैं
और ईश्वर का नाम
हर कमीने चेहरे पर मुखौटा बन जाता है... "(-सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)

यह यथार्थवाद जीवन की उस गहरी पीड़ा की ओर संकेत करता है, जहाँ सांस्कृतिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है और कवि स्वयं उस व्यवस्था में विश्वास खो बैठता है। यह दार्शनिक यथार्थ आधुनिक मनुष्य की असुरक्षा, अस्मिता संकट और विघटित चेतना का काव्य-रूप है।

आधुनिक हिन्दी कविता में यथार्थ-बोध केवल वस्तुगत जीवन-स्थितियों का चित्रण नहीं है, बल्कि यह एक बहुस्तरीय बौद्धिक, भावनात्मक और दार्शनिक प्रक्रिया है। इसमें सामाजिक विषमता, करुणा, संघर्ष, क्षोभ, विद्रोह और आत्मसंदेह ख्र सभी का यथार्थ रूप विविध कवियों द्वारा अलग-अलग दृष्टिकोणों से प्रस्तुत हुआ है।

निष्कर्ष

"आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध" शीर्षक शोध-पत्र का यह समग्र अध्ययन स्पष्ट करता है कि आधुनिक कविता मात्र सौन्दर्याभिरुचि या कल्पनालोक तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने समाज, व्यक्ति और युग की जटिल सच्चाइयों से गहरे स्तर पर संवाद स्थापित किया है। आधुनिक कविता का यथार्थ-बोध बहुआयामी हैख्रयह न केवल सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है, बल्कि मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक धरातलों पर भी उसे रूपायित करता है। इस यथार्थबोध ने मानवतावादी दृष्टिकोण को केन्द्र में रखकर शोषित, पीड़ित और उपेक्षित वर्गों की पीड़ा को स्वर दिया है, जिससे कविता सामाजिक चेतना का माध्यम बन सकी।

आधुनिक हिन्दी कविता में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मुखर हुई, जहाँ कवियों ने व्यक्तिगत अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक विसंगतियों, अन्यायों और विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। कवि बच्चन, दुष्यंत कुमार, उमाशंकर तिवारी, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे रचनाकारों ने कविता को समय की अन्तर्ध्वनियों का संवाहक बनाया और उसमें क्षणिक संवेदनाओं को भी एक गहरी अनुभूति में रूपांतरित कर पाठकों तक पहुँचाया। उनकी रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि कविता यथार्थ की मात्र नकल नहीं, बल्कि उसका पुनर्रचना हैख्रएक ऐसा सांस्कृतिक प्रतिरोध जो सौन्दर्यशास्त्र और नैतिक चेतना से संयुक्त होता है।

दार्शनिक दृष्टिकोण से देखें तो आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध ने प्लेटो के अनुकरणवाद से आगे बढ़कर, अरस्तू के अनुभववादी दृष्टिकोण और भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के आलोक में नवीन अर्थवत्ता अर्जित की है। संवेदना, अनुभूति और प्रतीकात्मकता के माध्यम से कवि अपने अनुभवों को सार्वभौमिक बनाता है। यह कविता केवल भावुकता या सजावटी भाषा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि युगबोध की जागरूक प्रस्तुति है।

अत: यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कविता का यथार्थ-बोध न तो केवल तात्कालिकता से बँधा हुआ है, न ही केवल वैचारिक प्रतिरोध का औजार; वह एक समग्र सौंदर्यशास्त्रीय, नैतिक और दार्शनिक उपस्थिति है, जो हिन्दी कविता को आधुनिक काल की सशक्त सांस्कृतिक अभिव्यक्ति बनाता है। यथार्थ-बोध के इसी रचनात्मक और विवेकशील स्वरूप के कारण आधुनिक कविता आज भी प्रासंगिक है और समाज के अंत:करण को उद्वेलित करने की शक्ति रखती है।

इस प्रकार, आधुनिक कविता में यथार्थ-बोध केवल दृश्य-सत्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि वह एक आध्यात्मिक, संवेदनात्मक और वैचारिक जागरूकता का प्रतिफल है, जो न केवल कविता को अर्थगर्भित बनाता है, बल्कि पाठक को भी आत्मावलोकन के लिए प्रेरित करता है।

संदर्भ सूची

- बच्चन, ह. र. (1964). कविताएँ. अजीत कुमार (संपा.). दिल्ली: साहित्य अकादमी।
- सक्सेना, स. द. (1971). खुली आँखों में आकाश. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- मिश्र, भ. प. (1975). गीतफरोश. दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

- भारती, ध. (1959). नई कविता का आत्मसंघर्ष. नई दिल्ली: राजपाल एंड सन्स।
- माथुर, ग. क. (1974). धूप के धब्बे. लखनऊ: साहित्य भवन।
- अज्ञेय. (1970). इत्यलम. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।
- मुक्तिबोध, ग. (1973). चाँद का मुँह टेढ़ा है. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- तिवारी, उ. श. (1968). जलते शहर में. वाराणसी: भारती प्रकाशन।
- सिंह, श. न. (1976). हिंदी कविता: नयी प्रवृत्तियाँ. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- सहाय, र. (1978). आत्महत्या के विरुद्ध. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- वाचस्पति मैरोला. (2017). संस्कृत साहित्य का इतिहास (पृ. 456). वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन।
- Plato. (1955). The Republic (Trans. by B. Jowett). London: Oxford University Press. (हिंदी संदर्भ हेतु: प्लेटो का आदर्शवाद)
- Aristotle. (1951). Poetics (Trans. by S.H. Butcher). London: Macmillan. (हिंदी संदर्भ हेतु: अरस्तू का अनुकरणवाद)

परिवार का बच्चों के विकास पर प्रभाव

सोनी कुमारी

शोध-छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

परिवार एक समूह है जो रक्त संबंधों, विवाह या अन्य बंधनों के कारण एक घर में रहता है, जो एक परिवार के मुखिया द्वारा संचालित होता है और एक बर्तन में भोजन करता है। वे एक-दूसरे के साथ बातचीत करते हैं, अपनी भूमिकाएँ होती हैं और एक संस्कृति का निर्माण और रखरखाव करते हैं। परिवार की भूमिका को मुख्य शिक्षक के रूप में माना जाता है जो अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए एक साथ काम करते हैं। बच्चों को शिक्षित करने में परिवार की मुख्य भूमिका नैतिक शिक्षा और धार्मिक जीवन के लिए एक आधार के रूप में होती है। बच्चों की प्रकृति और स्वभाव मुख्य रूप से दोनों माता-पिता और अन्य परिवार के सदस्यों से प्राप्त होता है। परिवार का वातावरण पहला शैक्षिक वातावरण है, क्योंकि इस परिवार में हर व्यक्ति या बच्चा सबसे पहले शिक्षा और मार्गदर्शन प्राप्त करता है। शिक्षा प्रदान करते समय बच्चों के विकास पर ध्यान देना चाहिए। बच्चे का विकास बच्चे में एक परिवर्तन है जहाँ विकास की अनंत भावना का विकास होता है, लेकिन इसमें निरंतर होने वाले परिवर्तनों की एक श्रृंखला भी शामिल होती है और यह व्यक्तिगत के शारीरिक और आध्यात्मिक कार्यों से परिपक्वता के चरण तक बढ़ने, परिपक्वता और सीखने के माध्यम से निश्चित होती है, विकास के कई चरण होते हैं जिन्हें बच्चे को प्राप्त करना चाहिए। इसलिए परिवार का बच्चों के विकास के चरण में बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव होता है ताकि वे समुदाय में प्रचलित नैतिकता और मानदंडों का मूल ज्ञान प्राप्त कर सकें।

मुख्य शब्द: परिवार, बच्चे का विकास काल।

परिचय

परिवार का वातावरण पहला शैक्षिक वातावरण है, क्योंकि इस परिवार में हर व्यक्ति या बच्चा सबसे पहले शिक्षा और मार्गदर्शन प्राप्त करता है। यह कहा जाता है कि यह मुख्य वातावरण है, क्योंकि व्यक्ति या बच्चे का अधिकांश जीवन परिवार में होता है, इसलिए जो शिक्षा बच्चे द्वारा सबसे अधिक स्वीकार की जाती है, वह परिवार में होती है और परिवार के माध्यम से नैतिकता और मानदंडों का मूल ज्ञान भी स्थापित होता है। आज के समय में उन्नत तकनीक और उच्च शिक्षा की भूमिका बढ़ती जा रही है। वास्तव में, आज के माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा में अपनी भूमिका के महत्व के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। माता-पिता द्वारा अपने बच्चों की शिक्षा का समर्थन करने के लिए कई प्रयास किए जा रहे हैं। घर पर अनुकूल शिक्षण वातावरण बनाने, बच्चों के लिए विशेष अध्ययन समय लागू करने और जब बच्चे सीखते हैं तो मार्गदर्शन करने के लिए कई प्रयास किए जा रहे हैं, यहां तक कि कुछ माता-पिता अतिरिक्त ट्यूशन के लिए विशेष बजट भी आवंटित करते हैं, जिससे बच्चों की स्कूल में उपलब्धियों में सुधार की उम्मीद होती है। जो भी प्रयास किए जाते हैं, उनका एक ही उद्देश्य होता है, और वह है बच्चों को शिक्षित करना।[1]

परिवार की समझ

सोफंडी और प्रमुद्या (2009) के अनुसार, परिवार एक सामाजिक समूह है जिसमें दो या दो से अधिक लोग होते हैं जिनके बीच रक्त संबंध, विवाह या गोद लेने के संबंध होते हैं। परिवारों को छोटे सामाजिक समूहों के रूप में भी समझा जा सकता है, जो मुख्य रूप से पिता, माता और बच्चों से मिलकर बनते हैं, और यह बच्चों की सामाजिककरण प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव डालते हैं।[2] परिवार एक घरेलू वातावरण है जहाँ कुछ लोग अभी भी रक्त या वैवाहिक संबंध रखते हैं।

सामाजिक विज्ञान में परिवार की परिभाषा उन क्षेत्रों में से एक बन जाती है जो विशेष ध्यान प्राप्त करते हैं, सामान्यत: परिवार को समुदाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी माना जाता है। परिवार का निर्माण सामाजिक विचार से शुरू होता है, जो कहता है कि परिवार समाज में पहला इकाई और पहला संस्थान है जहाँ इसमें निहित संबंध मुख्यत: प्रत्यक्ष संबंध होते हैं। यहीं पर व्यक्ति सामाजिककरण की प्रारंभिक प्रक्रियाओं का विकास करते हैं, और व्यक्तिगत अंत:क्रिया के माध्यम से अपने ज्ञान, कौशल, रुचियों, मूल्यों, भावनाओं और जीवन में दृष्टिकोण को प्राप्त करते हैं।

पुस्तकालय समीक्षा (2012) के अनुसार, परिवार की कई परिभाषाएँ विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होती हैं, अर्थात-

1. परिवार उन लोगों का समूह है जिनके बीच विवाह, जन्म और गोद लेने के संबंध होते हैं, जिसका उद्देश्य संस्कृति का निर्माण, रखरखाव करना और प्रत्येक परिवार के सदस्य के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को सुधारना है।
2. परिवार दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह है जो रक्त, विवाह या गोद लेने के संबंधों के कारण एक ही घर में रहते हैं। वे एक-दूसरे के साथ बातचीत करते हैं, अपनी भूमिकाएँ होती हैं और एक संस्कृति का निर्माण और रखरखाव करते हैं।

3. परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है जिसमें परिवार का मुखिया और कई लोग एक छत के नीचे एकत्रित होकर रहते हैं, जो आपसी निर्भरता की स्थिति में होते हैं।

परिवार की विशेषताएँ पुस्तकालय समीक्षा (2012) के अनुसार इस प्रकार हैं-

1. यह उन लोगों से मिलकर बना है जिनके रक्त संबंध या गोद लेने के संबंध हैं।
2. परिवार के सदस्य आमतौर पर एक ही घर में रहते हैं और वे एक घरेलू इकाई बनाते हैं।
3. इनमें ऐसे लोगों की एकता होती है जो एक-दूसरे के साथ बातचीत और संवाद करते हैं, जो पति और पत्नी, पिता और माता, बच्चों और रिश्तेदारों की भूमिका निभाते हैं।
4. वे एक सामान्य संस्कृति बनाए रखते हैं जो मुख्यत: एक व्यापक सामान्य संस्कृति से निकली होती है।

उपरोक्त समझ से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि परिवार एक समूह है या एक ऐसा समूह है जिसमें लोग एक ही घर में रहते हैं, जो रक्त संबंध, विवाह या गोद लेने के कारण एक साथ रहते हैं, जो समाज की सबसे छोटी इकाई है। आमतौर पर, हमेशा एक रक्त संबंध, वैवाहिक बंधन या अन्य बंधन होते हैं, जो एक घर में एक परिवार के मुखिया द्वारा संचालित होते हैं और एक बर्तन में भोजन करते हैं। वे एक-दूसरे के साथ बातचीत करते हैं, अपनी-अपनी भूमिकाएँ होती हैं और एक संस्कृति का निर्माण और रखरखाव करते हैं।[3]

बच्चों के विकास को समझना

विकास का अर्थ मूलत: शारीरिक और मानसिक कार्यों में एक व्यवस्थित परिवर्तन है। शारीरिक परिवर्तन में गर्भाधान के परिणामस्वरूप बुनियादी जैविक विकास शामिल हैं, और जैविक प्रक्रियाओं और आनुवंशिकी के पर्यावरण के साथ अंत:क्रियाओं का परिणाम है। जबकि मानसिक परिवर्तन समग्र व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से संबंधित होते हैं, जैसे कि संज्ञानात्मक, भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास। विकास को जीवनकाल में व्यक्तियों के मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है, गर्भाधान के समय से लेकर, शैशव, बचपन, किशोरावस्था, और वयस्कता तक। विकास को व्यक्ति या जीव में परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रूप में भी व्याख्यायित किया जा सकता है, जो शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर परिपक्वता या परिपक्वता के स्तर तक होती है, जो एक व्यवस्थित, प्रगतिशील और सतत प्रक्रिया में होती है।

सयाम्सु यूसुफ और नानी एम. सुगंधी (2011)[4] के अनुसार, यह समझाना कि व्यवस्थित, प्रगतिशील और सतत का क्या अर्थ है, निम्नलिखित है-

1. व्यवस्थित का अर्थ है कि विकास में परिवर्तन एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं या जीव के (शारीरिक और मनोवैज्ञानिक) हिस्सों का आपस में संबंध होता है और यह एक सामंजस्यपूर्ण एकता है। इस सिद्धांत के उदाहरण, जैसे कि चलने की क्षमता का विकास पैर की मांसपेशियों के परिपक्व होने के साथ-साथ होता है, या विपरीत लिंग पर ध्यान देने की बढ़ती रुचि यौन हार्मोनों के परिपक्व होने के साथ होती है।
2. प्रगतिशील का अर्थ है कि जो परिवर्तन होते हैं वे आगे की ओर, बढ़ते, गहरे या व्यापक होते हैं, दोनों मात्रात्मक (शारीरिक) और गुणात्मक (मनोवैज्ञानिक) रूप से। उदाहरण के लिए, जैसे कि बच्चे के शारीरिक आकार में परिवर्तन (छोटे से लंबे, छोटे से बड़े); और बच्चों की क्षमताओं में परिवर्तन, सरल से अधिक जटिल (अक्षरों और संख्याओं को जानने से पढ़ने, लिखने और गिनने की क्षमता तक)।
3. सतत का अर्थ है जीव के किसी भाग या कार्य में परिवर्तन जो नियमित रूप से या अनुक्रम में होते हैं, यह संयोग से या कूदने-फांदने से नहीं होते। उदाहरण के लिए, चलने के लिए, एक बच्चे को विकास के पिछले चरणों को पार करना आवश्यक है, अर्थात् पीठ के बल, पेट के बल, बैठना, रेंगना और खड़ा होना। बोलने के लिए बच्चे को छूने के चरण से गुजरना होगा या वयस्कता तक पहुंचने के लिए, व्यक्ति को किशोरावस्था, बचपन, शिशु और गर्भाधान के चरणों से गुजरना होगा।

विधि

इस शोध में उपयोग की गई विधि वर्णात्मक विधि है। यह अध्ययन केवल प्राथमिक विद्यालयों में सीखने के महत्व की जांच करता है।

परिणाम और चर्चा

परिवार का प्रभाव बाल विकास में

परिवार का वातावरण बाल विकास का एक प्रमुख निर्धारक माना जाता है। क्योंकि प्रारंभिक वातावरण मुख्यत: पारिवारिक वातावरण होता है। परिवारों के बीच के संबंध बच्चों के बाद में दूसरों के प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार के पैटर्न को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि यह पैटर्न बच्चों की संख्या बढ़ने और वातावरण के विस्तार के साथ बदलता है, लेकिन मूल पैटर्न आमतौर पर बना रहता है। इसके अलावा, परिवार या माता-पिता को बच्चों की देखभाल, सुरक्षा और सामाजिककरण बनाए रखने की आवश्यकता होती है ताकि वे सामाजिक जीवन में आत्म-नियंत्रण कर सकें। बच्चे का पूरे परिवार के साथ संबंध बच्चे के दूसरों के प्रति दृष्टिकोण को सामान्य रूप से प्रभावित करता है।

परिवार के प्रभाव के महत्व के कारणों में शामिल हैं (क) परिवार वह पहला सामाजिक समूह है जो बच्चे की पहचान का केंद्र बनता है; (ख) परिवार वह पहला वातावरण है जो बच्चे को जीवन के मूल्यों से परिचित कराता है; (ग) माता-पिता और अन्य परिवार के सदस्य बच्चे के व्यक्तिगत विकास के लिए 'महत्वपूर्ण लोग' होते हैं; (घ) परिवार एक ऐसा संस्थान है जो मानव (मानव) आवश्यकताओं को, शारीरिक-जीवविज्ञानिक और समाज-मानसिक दोनों, पूरा करता है; और (ङ) बच्चा अपने अधिकांश समय परिवार के वातावरण में बिताता है। परिवार का वातावरण पहला शैक्षिक वातावरण है, क्योंकि इसी परिवार में पहले बच्चे को पालन-पोषण और मार्गदर्शन मिलता है। यह मुख्य वातावरण में भी है, क्योंकि बच्चे का अधिकांश जीवन परिवार में होता है, इसलिए बच्चे की शिक्षा के लिए सबसे प्रमुख और बच्चे द्वारा सबसे व्यापक रूप से स्वीकार किया जाने वाला आधार तैयार करने में परिवार की भूमिका होती है।

बच्चों का विकास क्रम में या निरंतरता के माध्यम से होता है। संत्रोक के अनुसार, विकास की अवधि तीन चरणों में विभाजित होती है, अर्थात् बचपन, किशोरावस्था, और वयस्कता। इनमें से तीन को कई चरणों में वर्गीकृत किया गया है, अर्थात।

प्रसव से पहले की अवधि (प्रणातल) यह अवधि एक व्यक्ति के जीवन की शुरुआत है, जो गर्भाधान के समय से लेकर जन्म तक होती है, जो लगभग 9 महीने तक गर्भ में रहती है। हलाँक के अनुसार, प्रसव-पूर्व विकास पर ध्यान 1940 में शुरू हुआ, जो पहले विशेषज्ञों का अध्ययन नहीं था। यह अवधि, हालांकि अपेक्षाकृत छोटी है, लेकिन आगे के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। प्रसव-पूर्व अवधि की छह महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं।

1. इस समय मिश्रण की प्रकृति, जो आगे के विकास के लिए आधार के रूप में कार्य करती है, एक बार के लिए कम हो जाती है।
2. माँ के शरीर में अच्छे हालात जन्मजात गुणों के विकास का समर्थन कर सकते हैं, जबकि प्रतिकूल परिस्थितियाँ इसके विकास में बाधा डाल सकती हैं, यहाँ तक कि भविष्य के विकास के पैटर्न को भी प्रभावित कर सकती हैं।
3. नव निर्मित व्यक्ति का लिंग गर्भाधान पर पुष्टि हो जाता है, और पइप के शरीर में स्थितियाँ इसे प्रभावित नहीं करेंगी, साथ ही जन्मजात गुणों को भी।
4. सामान्य वृद्धि और विकास प्रसव-पूर्व अवधि में अन्य जीवन काल की अवधि की तुलना में अधिक बार होता है।
5. प्रसव-पूर्व अवधि एक बड़ी खतरे की अवधि है, दोनों शारीरिक और मनोवैज्ञानिक।
6. प्री-नैटल का समय वह अवधि है जब इच्छुक लोग नवजात व्यक्ति के प्रति अपने दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

इस अवधि में परिवार की भूमिका, विशेष रूप से माँ की, बच्चे पर ध्यान केंद्रित करना है, जैसे कि वैध और पौष्टिक खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों का सेवन करना, मरोको का सेवन न करना, सुस्ती और अवैध दवाओं का सेवन न करना और नियमित रूप से डॉक्टरों द्वारा गर्भावस्था की जांच कराना।

शिशु काल

शिशु काल वह विकास का चरण है जो जन्म से लेकर 18 या 24 महीनों तक फैला होता है। इस अवधि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. व्यवहार पैटर्न, दृष्टिकोण और भावनात्मक अभिव्यक्तियों के निर्माण की मूल अवधि।
2. विकास और परिवर्तन की अवधि तेजी से होती है, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों रूपों में।
3. निर्भरता की कमी की अवधि।
4. व्यक्तित्व की वृद्धि की अवधि, अर्थात् जब बच्चा उन चीजों का विकास करता है जो उसकी रुचियों और क्षमताओं के अनुरूप होती हैं।
5. सामाजिककरण की शुरुआत।
6. लिंग की भूमिका के वर्गीकरण के विकास की शुरुआत, जो उसके कपड़ों से संबंधित है।
7. शारीरिक रूप और व्यवहार दोनों में रुचि की अवधि।
8. रचनात्मकता की शुरुआत।
9. हानिकारक अवधि, चाहे वह शारीरिक (जैसे दुर्घटनाएँ) हो या मनोवैज्ञानिक (खराब व्यवहार के कारण)।

इस अवधि में हैमर और टर्नर के अनुसार परिवार का प्रभाव बहुत महत्वपूर्ण है। परिवार एक देखभाल करने वाले के रूप में कार्य करता है। जहाँ माँ और पिता का बच्चों की स्वच्छता और स्वास्थ्य बनाए रखने में एक भूमिका होती है, जैसे कि पौष्टिक भोजन प्रदान करना, स्नान कराना और साफ-सुथरे कपड़े पहनाना। और परिवार एक रक्षक के रूप में भी कार्य करता है। इस समय बच्चा रेंगना और चलना शुरू करता है, परिवार या माता-पिता को अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता होती है, ताकि उसकी रक्षा की जा सके, क्योंकि उस समय बच्चा अपने वातावरण का अन्वेषण करना शुरू कर देता है, वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है, और वस्तुओं को छूने, खींचने, धक्का देने या खरोंचने की कोशिश कर सकता है, इसलिए जब माता-पिता ध्यान नहीं दे रहे होते हैं, तो बच्चे के चोटिल होने, फिसलने या गिरने की संभावना होती है।

शैशव काल

बच्चे का प्रारंभिक काल एक विकास का चरण है जो शिशु अवस्था के अंत से लेकर 5 या 6 वर्ष की आयु तक फैला होता है, इस काल को कभी-कभी प्रीस्कूल वर्ष कहा जाता है। इस अवधि के दौरान, बच्चा अधिक स्वतंत्र बनना सीखता है और अपनी देखभाल करता है। वे स्कूल के लिए तैयार होने का विकास करते हैं (जैसे आदेशों का पालन करना और अक्षरों को जानना) और अपने समवयस्कों के साथ खेलने में अपना अधिकांश समय बिताते हैं।

जहां हुमर और टर्नर के अनुसार, परिवार एक नानी की तरह कार्य करता है। जब बच्चा प्रीस्कूल की आयु में होता है, सामान्यत: (विशेषकर शहरी क्षेत्रों में रहने वाले) बच्चा किंडरगार्टन या त। में प्रवेश कर चुका होता है।[5] इसके लिए परिवार या माता-पिता को बच्चों की देखभाल या मार्गदर्शन प्रदान करने की आवश्यकता होती है, जैसे-

1. बच्चों को अपने कपड़े पहनने और खुद को खाना खिलाने के लिए परिचित कराना,
2. व्यक्तिगत स्वच्छता और पर्यावरण को बनाए रखना,
3. स्कूल में दोस्तों के साथ सामाजिक संबंधों के तरीकों को सिखाना,
4. बच्चे को अपना होमवर्क खुद करने के लिए परिचित कराना।

मध्य और देर बचपन का काल

यह काल विकास का एक ऐसा चरण है जो लगभग 6 से 10 या 11 वर्ष की आयु तक फैला होता है। इस काल को अक्सर प्राथमिक विद्यालय के वर्षों के रूप में जाना जाता है। इस समय बच्चे पढ़ाई, लेखन और गणित की मूलभूत क्षमताओं में निपुण हो जाते हैं। इस काल का केंद्रीय विषय उपलब्धि और आत्म-नियंत्रण का विकास है।

इस काल में, हुमर और टर्नर के अनुसार, परिवार एक प्रेरक के रूप में कार्य करता है। जहाँ जब बच्चे पहले से ही कई गतिविधियों में संलग्न होते हैं, विशेष रूप से शैक्षणिक और सामाजिक (अतिरिक्त पाठ्यक्रम) गतिविधियों में जो विद्यालय में निर्धारित होती हैं। इस संदर्भ में, परिवार, विशेष रूप से माता-पिता को बच्चे की गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने की आवश्यकता होती है, अर्थात् उसे प्रेरित या प्रोत्साहित करना ताकि वह विद्यालय द्वारा निर्धारित गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए उत्साहित रहे।

किशोरावस्था का काल

किशोरावस्था एक संक्रमण काल है जो बचपन और वयस्कता के बीच होता है, जो लगभग 12-13 वर्ष से लेकर 19-20 वर्ष तक फैला होता है, जिसमें जैविक, संज्ञानात्मक और सामाजिक-भावनात्मक पहलुओं में परिवर्तन होता है। किशोरों का मुख्य कार्य वयस्कता के लिए तैयारी करना है। इस अवधि में, हुमर और टर्नर के अनुसार, परिवार, विशेष रूप से माता-पिता, एक सलाहकार की भूमिका निभाते हैं। यहां सलाहकार का अर्थ एक पेशेवर सलाहकार नहीं है जो स्कूल में मार्गदर्शन और परामर्श सेवाएं प्रदान करता है, बल्कि यह है कि परिवार या माता-पिता बच्चे के प्रति उस तरह का व्यवहार और दृष्टिकोण अपनाते हैं जैसे एक सलाहकार जो बच्चे के विकास में सहायक और प्रेरक होता है। किशोरावस्था में, बच्चे का विकास एक स्वतंत्र दृष्टिकोण की ओर बढ़ता है, दूसरों के हस्तक्षेप से मुक्त होने की इच्छा होती है, जिससे बच्चे नहीं चाहते कि उन्हें बच्चे की तरह व्यवहार किया जाए।[6] इसलिए, किशोरों के साथ निपटने के लिए एक अधिक उपयुक्त दृष्टिकोण संवाद है।

वयस्क अवधि (वयस्कता)

यह अवधि तीन चरणों में विभाजित होती है, अर्थात् वयस्कता की शुरुआत, मध्य और अंत। प्रारंभिक वयस्क अवधि लगभग 20 वर्ष की आयु से शुरू होकर 30-35 वर्ष की आयु तक चलती है। यह वह समय है जब व्यक्तियों को व्यक्तिगत और आर्थिक स्वतंत्रता तथा करियर विकास का निर्माण करना होता है। मध्य वयस्क अवधि लगभग 35 से 45 वर्ष की आयु में शुरू होती है, और 55 से 65 वर्ष की आयु में समाप्त होती है। यह अवधि अगली पीढ़ी में मूल्यों को स्थापित करने, जीवन के अर्थ पर विचार करने और अपने शरीर पर ध्यान देने के लिए बढ़ती रुचि का समय है।7 जबकि वयस्कता का अंत 60 या 70 वर्ष की आयु से लेकर मृत्यु तक का होता है। यह अवधि शक्ति और शारीरिक स्थिति के कमजोर होने, सेवानिवृत्ति और आय में कमी के अनुकूलन का समय है।

यानी, विकास का कार्य एक ऐसा कार्य है जो व्यक्ति के जीवन काल में एक निश्चित अवधि में उत्पन्न होता है, जिसे यदि सफलतापूर्वक पूरा किया जाए तो यह अगले कार्य को पूरा करने में खुशी और सफलता लाएगा; जबकि असफलता के परिणामस्वरूप, यह संबंधित व्यक्ति में असंतोष, समुदाय द्वारा अस्वीकृति और अगले कार्यों को पूरा करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न करेगा।

निष्कर्ष

एक प्राथमिक शिक्षक के रूप में, परिवार में माता-पिता को विकास पर प्रभाव डालने के कई लाभ मिलते हैं। बच्चों की शिक्षा में यह पहला अवसर है, जिसमें वे बच्चों को मूल्यों और मानदंडों की एक तस्वीर प्रदान कर सकते हैं, जो उनके लिए एक बुनियादी मजबूती है। अवसरों को सफेद कागज पर रंग भरने के रूप में वर्णित किया जा सकता है, जो रंगीन कागज पर सफेद भागों को खोजने से कहीं अधिक आसान है। यहाँ, परिवार या माता-पिता पहले व्यक्ति होते हैं जिन्हें बच्चे के चरित्र को आकार देने का अवसर मिलता है। इसलिए, माता-पिता के परिवार की भूमिका बच्चों की शिक्षा के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए, अवसरों को माता-पिता के परिवारों से बाहर नहीं रखा जाना चाहिए, जो बच्चों के विकास पर प्रभाव डालने में सहायक होते हैं, ताकि उनके बच्चे को उनकी शिक्षा को मजबूत करने की प्रक्रिया में संभवत: सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त हो सके।

संदर्भ

1. हरावी, अकबर (2001), बच्चों का विकासात्मक मनोविज्ञान: गुण, प्रतिभा, और बच्चों की क्षमताओं को जानना, जकार्ता, ग्रासिंडो।
2. डेसमिता (2008), विकासात्मक मनोविज्ञान, बंडुंगरू पीटी रेमाजा रोसदकार्या ऑफसेट।
3. हर्लॉक, एलिजाबेथ बी (1980), विकासात्मक मनोविज्ञान, जकार्ता, एर्लांगगा।
4. रेजा, एम (2017) बच्चों को शिक्षित करने में परिवार की भूमिका।
5. सैंट्रॉक, जॉम डब्ल्यू (1996), बाल विकास, बोस्टन, मैसाचुसेट्स, मैकग्रा हिल कंपनियाँ।
6. सोफंदी, आई और प्रामुद्या, ए (2009), बच्चों की बुद्धिमत्ता की क्षमता को विकसित करने की रणनीतियाँ।
7. यूसुफ, नानी, (2011) छात्रों का विकास, जकार्ता, पीटी राजा ग्राफिंडो पर्सादा।

नारी अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में महादेवी वर्मा का साहित्य

डॉ० रावेन्द्र कुमार साहू

सहायक प्राध्यापक-हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय सेमरिया, जिला रीवा (म.प्र.)

"बाँचली मैनें व्यथा की बिन लिखी पाती नयन में!
कौन पंथी खो गया अपनी
स्वयं परछाइयों में
कौन डूबा है स्वयं कल्पित
पराजय खाइयों में
लीक-जय-रथ की इसे तुम हार जीवन की न मानों
कौंधकर यह सुधि किसी को आज कह जाती नयन में!"

महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य साहसी, स्वाभिमानी और कर्मठ नारियों का ऐसा जीवन्त दस्तावेज हैं जिसके माध्यम से उन्होनें परंपराओ की बेड़ियो में जकडी भारतीय नारी को मुक्त करने का प्रयास किया हैं। परंपरा से मतलब "समाज के विकास क्रम में बने रीति-रिवाजों और सामाजिक मूल्यों से हैं, जिन्हें मानते हुए कोई समाज चलता हैं।"[2] भारतीय स्त्रियों के संदर्भ में अगर परंपरा का अर्थ निकाला जाए तो यह उनकी गुलामी की कहानी हैं। इन परंपराओ की वजह से भारतीय नारी घूंघट में सिमट घर की चार दीवारी में कैद हो गई, घर की खुशहाली और पति, बच्चों की लम्बी उम्र के लिए सारे व्रत उपवास उसकी झोली में आ गए। अगर महिला कामकाजी है तो भी घर के साथ बच्चे की जिम्मेदारी उसी की हैं। सहनशीलता, लज्जा, कोमलता, पर-निर्भरता आदि औरत के विशेष गुण हैं जो वो परंपरागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वयं पहुँचाती जाती है। समय, समाज और जीने का अंदाज भले ही आधुनिक महौल में बदल गया, मगर परम्पराएँ लगभग वही हैं जो हमारी दादी-नानी और बड़ी-बूढियों के समय थी।

"जैसे बड़ी मछलियां छोटियों को अपना शिकार बना कर जीवन चलाती है ठीक वैसे ही बड़ी बूढियाँ समाज में अनहोनी और खौफ का वातावरण बना कर बच्चियों के दिमाग में परंपराओ का बीज बोती हैं।"[3] और ये प्रक्रिया पीढी दर पीढी चलती रहती हैं। आर्थिक रूप से सक्षम न होने पर भी कन्यादान की परंपरा निभानें के लिए पिता को बेटी के ब्याह पर परंपरागत रूप से दहेज देना पडता है। अगर वह दहेज में मोटी रकम की व्यवस्था नहीं कर पाता तो उसकी बेटी कब दहेज की बलि बेदी में चढ़ जाए कहा नहीं जा सकता। वर्तमान समय में विश्व के हर मंच पर परंपरा एवं आधुनिकता के द्वद्धं में फंसी स्त्री की मुक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण विषय है जिससे नारी स्वतंत्र ढंग से जी सके, सोच सके इसके सामने न पितृक अनुशासन की दीवारे हो न ससुराल की मर्यादाओ की जंजीरे हो। वह वूर्ण स्वाधीन हो, समाज की निर्णायक शक्ति हो। आज से लगभग सात से आठ दशक पहले महादेवी का सम्पूर्ण कृतित्व नारी के प्रति ऐसी ही सोच का उत्कृष्ठ उदाहरण है। उन्होने भारत में स्त्री संदर्भित समस्याओं जैसे अशिक्षा, अंधविश्वास, कुरीतियाँ, विधवा जीवन, दहेज प्रथा और महत्वपूर्ण कानूनो की भूमिका को लेकर गहन चिंतन किया है महादेवी का यह चिंतन इतना गहरा और प्रभावशाली हैं कि वर्तमान स्त्रीवादी नारे उनके आगे अर्थहीन हो जाते है। उन्होने आजादी के पहले और आजादी के बाद दोनों परिवेश में परम्पराओ में जकडी नारी की पीड़ा को, यातना को बड़ी करीब से देखा, झेला, महसूस किया तत्पश्चात पुरुष प्रधान और शोषण युक्त व्यवस्था के विरूद्ध भारतीय नारी को शंखवाद करने के लिए प्रेरित किया। परम्परा और आधुनिकता में ताल मेल बिठाती महादेवी एक ऐसी दुनिया चाहती हैं जहां पुरुष स्त्री का सहचर हो सर्जक नहीं। महादेवी का लेखन नारी को दुर्बल और असहाय बनाने की दुष्प्रेरणा न देकर उसे मनुष्य, नागरिक और सामाजिक प्राणी के रूप में प्रस्थापित करके उसके मानवीय अधिकारो की मांग करने वाला लेखन हैं। डॉ. राजेन्द्र गौतम के शब्दो में "महादेवी ने स्त्री हक के लिए जो आवाज उठाई उसमे दृढता तो है ही, जड़ संस्कारो एवं परम्पराओं पर चोट भी हैं"[4]

महादेवी ने देखा कि स्त्रियां स्वतंत्र नहीं हैं बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन है बच्चे के जन्म से लेकर परिवार की सेवा की जिम्मेदारी उसकी हैं परन्तु अपनी इच्छा से कुछ भी कहने, करने अर्थात निर्णय लेने की, कहीं अकेले जाने की स्वतंत्रता उसे नहीं हैं। सैकडों हजारो साल से पुरुषवादी समाज ने अपनी सुविधा के अनुसार स्त्रियो के लिए जो मानचित्र तैयार किये जो परम्परायें बनाई वह उनकी आँचल से चिपकती चले गये। सदियां बीतती गयी, हर क्षेत्र में उन्नति हुई फिर भी वह सैकडो वर्ष पहले बनाये गए खुद के प्रति मानचित्रो से आज भी पूरी तरह बाहर न आ सकी। पुरुष ने उसे मंदिर की एक ऐसी देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था जिसे न कुछ बोलने का अधिकार था, ना निर्णय का, ना किसी प्रकार की प्रतिक्रिया का। जिस प्रकार मंदिर की देवी रोली चंदन, फूल और प्रसाद से खुश हो जाती हैं उसी प्रकार घर में स्त्री कपड़े, गहने, भोजन और सुख सुविधा की वस्तु को ही सर्वस्व मान अपने व्यक्तिगत मूल्यो की परवाह नहीं करती। स्त्रियो के ऑचल से चिपकी ये रूढीवादी परम्पराये ऊपर से स्त्री का आभूषण तो दिखती है पर वह असल में है बेड़ियाँ। महादेवी का साहित्य इन्हीं बेड़ियों को उखाड फेक स्त्री को समाज में सक्रिय प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित करने की सोच रखने वाला है। उनका मानना हैं कि "आधुनिक युग में घर से बाहर भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जो स्त्री के सहयोग की उतनी ही अपेक्षा रखते हैं जितनी पुरूष के

सहयोग की"[5] आवश्यक्ता केवल इस बात की हैं कि "पुरूष पंख काटकर सोने के पिंजरे में बन्द पक्षी के समान स्त्री को अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा की बन्दिनीं न बनावे"[6] स्त्री की दशा पर विचार करते हुए महादेवी लिखती हैं- "आज हमारी सामाजिक परिस्थिति कुछ और ही हैं। स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर रहना चाहती है, न देवता की मूर्ति बनकर प्राण-प्रतिष्ठा चाहती है कारण वह जान गई है कि एक का अर्थ अन्य की शोभा बढाना तथा उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाना है तथा दूसरे का अभिप्राय दूर से उस पुजापे को देखते रहना है जिसे उसे न देकर उसी के नाम पर लोग बाँट लेंगे"[7] महादेवी ने स्त्री पराधीनता की समस्या पर सिर्फ करूणीय दृष्टि से नहीं सोचा वरन एक सधे हुए समाजशास्त्री की दृष्टि से विचार किया है उन्हें विश्वास है कि स्त्रियों की दशा में सुधार अवश्य होगा बस जरूरत हैं तो एक देशव्यापी आंदोलन की जो सबको सजग कर दे। महादेवी को यकीन भी है कि "भारतीय नारी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति को रोक पाना किसी के लिए संभव नहीं होगा"[8] इसी उद्देश्य से वो नारी के बाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन की ओर न ध्यान देकर उनकी शक्तियों को जाग्रत करने की कोशिश करती हैं जिससे भारतीय नारी, सदियो से चली आ रही परम्पराओ से मुक्ति पा अपने मूल्यों, अधिकारो एवं कर्तव्यों को जान सके।

भारतीय समाज में नारी को बहुत सम्मान दिया गया हैं परन्तु यह सम्मान तभी तक है जब तक वह समाज द्वारा प्रतिष्ठित परम्पराओं को निभाती हैं। इसका मुख्य कारण ये हैं कि यह दुनिया उसी के लिए है जो शक्ति संपन्न है- मनुष्य की यह मान्यता आदिम अवस्था से सभ्यता की चरम अवस्था तक ज्यों की त्यों बनी हुई है। पशु से मनुष्य बनने के क्रम में प्रत्येक स्थिति में पुरुषो ने स्त्री को असहाय व अबला ही माना और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जो कमजोर प्राणियों के साथ किया जाता है। पुरूष ने स्त्री को गाय या भेंड बनाकर खुटे से बांधा, उसके अधिकार छीन लिये, उसे असहाय व बंदिनीं बना दिया। जिससे स्त्रियो का अस्तित्व मात्र पुरूष की छाया बनकर रह गया। उसकी अपनी व्यक्तिगत सोच का पुरुषवादी सोच के आगे कोई मूल्य नहीं रहा। परन्तु वहीं महादेवी वर्मा भारतीय नारी को उसकी इस स्थिति से बाहर लाने के लिए घोषणा करती है कि "पुरूष के समान स्त्री भी कुटुम्ब, समाज, नगर तथा राष्ट्र की विशिष्ट सदस्य है उसकी प्रत्येक क्रिया का प्रतिफल सबके विकास में बाधा भी डाल सकता है और उनके मार्ग को प्रशस्त भी कर सकता है।"[9] महादेवी मानती हैं कि स्त्री की समाज में इस दयनीय स्थिति का कारण उनका स्वयं अपने व्यक्तित्व को भूलकर विवेक शक्ति को खो देना है जिस कारण पुरूष द्वारा ष्उसके बिना जाने ही उसका कर्त्तव्य पथ निश्चित हो चुकता है जिस पर चल कर न उसे सफलता जनित गर्व का अनुभव होता है, न असफलता जनित ग्लानि का। वह अपने सफलता या असफलता की छाया पुरूष की आत्मसंतुष्टि या असन्तोष में देखने का प्रयत्न करती हैं, अपने हृदय मे नहीं।"[10]

महादेवी चाहती है कि भारतीय नारी अपने व्यक्तित्व को समझे, विकास करे पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चले और देश की प्रगति में सहायक हो क्योंकि "वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्त्वपूर्ण नागरिक हैं अत: उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया है।"[11] परन्तु वहीं पर महादेवी ये भी चाहती है कि नारी अपने व्यक्तिगत मूल्यों को ना भूले पुरूष का अंधानुकरण ना करे, अनर्थमय अनुकरण ना करे क्योंकि ये सब नारी के व्यक्तित्व को संकुचित करते जा रहे हैं। उनके अनुसार "स्त्री के व्यक्तित्व में कोमलता और सहानुभूति के साथ साहस तथा विवेक का एक ऐसा सामंजस्य होना आवश्यक हैं जिससे हृदय के सहज स्नेह की अजस्त्र वर्षा करते हुए भी वह किसी अन्याय को श्रेय न देकर उसके प्रतिकार में तत्पर रहे।"[12]

श्रृंखला की कड़ियों के साथ-साथ महादेवी के पूरे साहित्य में स्त्री के प्रति हो रहे आर्थिक, सामाजिक अन्याय और शोषण की चिंता दिखाई देती हैं। उनके रेखाचित्रो में गुगिंया, बिबिया, सबिया, बिंदा, लक्षमा, भाभी, मुन्नू की माई आदि सभी नारी पात्रों में विद्रोह का स्वर मुखर दिखाई देता हैं। नारी की इस पीड़ा को महादेवी काव्य के माध्यम से भी व्यक्त करते हुए कहती है-

"पीड़ा मेरे मानस से, भीगे पट सी लिपटी हैं,
डूबी सी यह निश्वासे, ओठो में आ सिमटी हैं।"[13]

वैसे स्त्रियों का संघर्ष तो जन्म से ही प्रारंभ हो जाता है। वास्तव में नारी समाज का एक अविभाज्य अंग हैं। सामाजिक व्यवस्था में उसका एक निश्चित स्थान हैं फिर भी उसका जन्म शुभ नहीं माना जाता। लड़की जन्म ले तो परिवार में निराशा छा महौल गमकीन हो जाता है परन्तु वहीं लड़का जन्म ले तो उत्सव का महौल बन जाता हैं। सोहर गाये जाते हैं, लड्डू बांटे जाते हैं। पुत्रो को आज भी समाज में कुलदीपक वंश, घर का कर्ताधर्ता मान उसके जन्म पर बैंड बाजा के साथ उल्लास भरा वातावरण निर्मित किया जाता है जबकि पुत्री के जन्म पर फैली चारो ओर निराशा उसके अस्तित्व पर ऊँगली उठाने के साथ उसे जन्म से ही अभिशप्त बना देती हैं। अपने समय की इस मानसिक प्रवृत्ति के विषय में महादेवी लिखती हैं "आंगन में गाने वालियां द्वार पर नौबत वाले और परिवार के बूढे से लेकर बालक तक सब पुत्र की प्रतीक्षा में बैठे रहते थे। जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार मिला वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी बूढियां संकेत से मूक गाने वालियो को जाने के लिए कह देती और बड़े-बूढे इशारे से नीरव बाजे वालो को विदा देते-यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।"[14] महादेवी के समकालीन नारी की जो स्थिति थी उसमे आज भी कोई खास अंतर नहीं आया हैं। आज हम वैज्ञानिक युग में है। विज्ञान ने जहां हमारे जीवन की जटिल से जटिल समस्याये पलक झपकते ही हल की हैं वहीं उसके दुरउपयोग से मानवता भी समाप्त हुई है। स्थितियाँ इतनी गंभीर हो गई हैं कि कलियों पुत्रियों को खिलने से पहले ही कोख में मसल दिया जा रहा हैं। पुत्र प्रप्ति के लिए तरह-तरह व्रत-उपवास, अनुष्ठान किए जा रहे हैं। और अगर कोई स्त्री लड़की को जन्म देती हैं तो परिवार में उसे प्रताड़ना ही मिलती है। महादेवी की सेविका कम अविभाविका भक्तिन समाज की इसी मानसिकता की सताई हुई हैं क्योकि उसको जब पुत्र की जगह बेटियाँ होती हैं तो परिवार के सभी सदस्य उसके साथ उपेक्षा भरा व्यवहार करते हैं- तीन-तीन बेटियों को जन्म देने के कारण उसे दंड भी मिलता हैं। उसकी "जेठानियाँ बैठकर लोक चर्चा करती और उनके कलूटे लड़के धूल उडाते, पर भक्तिन मट्ठा फेरती कूटती, पीसती, रौंधती और उसकी नन्हीं लडकियों गोबर उठाती कंडे पाथती। जेठानियाँ अपने भात पर सफेद राब रखकर गाढ़ा दूध डालती और अपने लड़को को औटते हुए दूध पर से मलाई उतार कर खिलाती। बेचारी भक्तिन काले गुड़ की डली के साथ कठौती से मट्ठा पीती और उसकी लड़कियाँ चने बाजरे की घुंघरी चबाती।"[15] महादेवी समाज में

व्याप्त लिंग भेद की दशा स्पष्ट करने के साथ जन्म से अभिशप्त नारी के विभिन्न कष्टों पर प्रकाश डालते हुए व्यंगात्मक ढंग से कहती हैं, यदि स्त्री पति कामना का विचार करके सन्तान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती तो उसे उस घर में दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।"[16] अभिनेता अमिर खान ने शो सत्यमेव जयते में समाज की इस मानसिकता को दर्शाया भी है कि वर्तमान समय में भी नारी की ये समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। भारत में आज भी ऐसे परिवारो की संख्या अधिक है जहाँ दंपत्ति परिवार को सीमित रखना चाहते हैं पर लड़के की अनिवार्यता का प्रभाव उन पर हावी रहता है। अधिकांश परिवारों में यदि किसी की दो संताने लड़के हैं तो वे तीसरा बच्चा नहीं चाहती, लेकिन यदि वहीं पर दोनो संताने लड़कियाँ हैं तो वो तीसरे बच्चे के रूप में लड़के को जन्म देना चाहते हैं क्योकि "हिन्दू समाज में एक बलशाली परंपरा है दाह संस्कार की। इसे पुत्र ही संपन्न करवाता हैं। पुत्र को जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह अंतिम संस्कार के वक्त पंडो की मदद से माँ बाप को मुखग्नि दें और उनकी कपाल क्रिया करे। बेटी और दमाद इस प्रकिया से अछूते मानें जाते हैं। जिन परिवारों में पुत्राभाव है, वहाँ रिश्ते -नातेदार से क्रिया करवाई जाती हैं। अब यह परंपरा इतनी गूढ और दबावो से भरी है कि अव्वल तो बेटी दमाद इसे संपन्न करने की कल्पना ही नहीं कर सकते। मान लीजिए कुछ अति विकासवादी दंपति तैयार भी हो जाए, तो पंडे, परिवार और रिश्तेदार इसे कैसे स्वीकार कर सकते हैं?" इसी रूढीवादी परम्परागत सोच के कारण ही आज भारत में लिंगानुपात कम हो गया हैं। वर्तमान समय में पाँच साल के बच्चों में लड़के और लड़कियो का अनुपात तो और भी चिंता जनक हैं। "इस उम्र वर्ग में 1000 लडको पर मात्र 918 लड़कियाँ हैं"[17] सिर्फ गरीब और अनपढ़ परिवारों में ही नहीं बल्कि संपन्न और पढे लिखे तबको में भी लड़कियो की तुलना में लड़को को शिक्षा, पोषण और चिकित्सा सुविधाओ में प्राथमिकता दी जाती हैं क्योकि वह कुल दीपक हैं। पुत्र को परिवार में अधिक महत्व देने वाले लोगो की रूढीग्रस्त पारम्परिक सोच के प्रति रोष प्रगट करने के साथ उन्हे समझाती हुई महादेवी कहती हैं- "चाहे राम हो चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध हो चाहे महात्मा गांधी। कोई आकाश से नहीं उतरा। किसी न किसी के कोमल अंक से उतरा हैं। किसी न किसी के आँचल की छाया में पला हैं किसी स्त्री की अंगुली पकडकर चलना सीखा है, किसी स्त्री की लोरी से सोया है प्रभाती से जागा है।"[18] अर्थात महान से महान व्यक्ति का अस्तित्व स्त्री के बिना संभव नहीं है। अगर इस सृष्टि की रचयिता को जन्म ही लेने न दिया जाएगा तो सृष्टि गतिहीन हो जाएगी। स्त्री को समाज, परिवार, एवं राष्ट्र का अभिन्न अंग घोषित करते हुए महादेवी कहती है।

"तेरे बिना संसार में
मानव हृदय स्मशान हैं
तेरे बिना हे सांगिनी
अनुराग का क्या मान हैं।"[19]

प्राचीन समय से ही भारत में महिलाओं के प्रति एक खास प्रकार का पूर्वाग्रह स्थापित कर दिया गया हैं जो उनके विकास क्रम में बाधक बनते रहते हैं। बेटियों को लेकर सदियो से चली आ रही परम्पराओं के कारण वो शिशुवस्था से ही लिंग भेदभाव का शिकार हो जाती हैं इन परम्पराओ में मुख्य हैं- बेटी को पराया धन मानना और बेटे को कुल दीपक, बेटी के जन्म से ही उनके विवाह की चिंता करना, समाज में अपनी झूठी आन बान और शान के लिए अधिक से अधिक दहेज लेना और देना, बेटी का कन्या दान कर पुण्य कमाना वगैरह-वगैरह। आज के वैज्ञानिक युग में जहाँ स्त्रीयाँ धरती से चांद तक अपनी योग्यता का झंडा फहरा रही हैं वहीं समाज में लोगों की मानसिकता से घुन की तरह चिपकी इन मान्यताओं में विशेष परिवर्तन नहीं होने से स्त्रीयाँ प्रचलित परम्पराओं से बाहर नहीं आ पा रही हैं। बेटी का कन्यादान कर पुण्य कमाने वाले लोगो की सोच एवं अपने जीवन के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर महादेवी व्यंगात्म ढंग से कहती है "जैसे अश्व के बिना अश्वमेध नहीं हो सकता, वैसे ही कन्या के बिना कन्यादान का महायज्ञ सम्भव नहीं।"[20] कन्या के जन्म पर माता पिता का ध्यान सबसे पहले उसके विवाह की कठिनाइयों की और जाता है, वहीं पुत्र के जन्म पर भावी वधु मरण-पोषण का भार ग्रहण करने से पहले उसके माता- पिता से उसे जन्म देने का भारी कर वसूलने की ओर जाता है। महादेवी इस स्थिति पर पूछती है कि ष्क्या यह क्रय-विक्रय यह व्यवसाय स्त्री के जीवन का पवित्रतम बंधन कहा जा सकेगा?"[21] उन्हें दुख है कि दहेज की रूढीवादी परम्परा के कारण ही "पितृगृह में स्त्री को वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दुकान में उस वस्तु को प्राप्त होता हैं जिसके रखने और बेचने दोनो ही में दुकानदार को हानि की सम्भावना रहती है।"[22] महादेवी स्पष्ट रूप से कहती हैं कि हम स्त्रियों के विवाह की चिंता इसलिए नहीं करते कि देश या जाति में सुयोग्य माताओं और पत्नियों का अभाव हो जाएगा, वरन इसलिए कि उनकी अजीविका का हम कोई और सुलभ साधन नहीं सोच पाते। माता-पिता चाहे सम्पन्न हो चाहे दरिद्र, कन्या का कोई उत्तरदायित्व प्रसन्नता से अपने ऊपर नहीं लेना चाहते, न विवाह के अतिरिक्त उससे छुटकारा पाने का मार्ग ही पाते हैं। परन्तु सबसे बड़ी विडम्बना ये है कि विवाह के बाद स्त्रियों की दशा सुधर जाएगी यह स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता। क्योंकि यदि वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी या सौन्दर्यपार्जक, पति की कल्पना के अनुरूप अफ्सरा नहीं है तो उसका स्थान पति सहज ही किसी दूसरी स्त्री को दे देता है। और इस तरह पुरुष दो स्त्रियों की भावनाओं के साथ खेलता है। विवाह के समय यदि स्त्री पति और सास ससुर के इच्छानुकूल दहेज नहीं लाती है, तो उसे प्रताडित किया जाता है और यदि दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिंदूर धुल गया तो उसके लिए संसार ही नष्ट हो जाता है। महादेवी के अनुसार "यह एक ऐसा अपराध हैं जिसके कारण उसे मृत्यु से भीषणतर दण्ड भोगते हुए तिल - तिल घुलकर जीवन के शेष युग, न जाने वाले क्षण व्यतीत करने पड़ते हैं।"[23] हमारे भारतीय समाज की परम्परा के अनुसार यदि किसी पुरूष की पत्नी नहीं रहती तो उसे दूसरा घर बसाने की पूर्ण स्वतंत्रता हैं चाहे उस पुरुष की पहली पत्नी से संताने क्यों ना हो। परन्तु वहीं स्त्री के लिए इस प्रकार की कल्पना ही व्यर्थ हैं। उसे हर मांगलिक कार्यों से दूर कर दिया जाता है। उसके सजने-संवरने, रंगीन वस्त्र (खासकर लाल रंग) पहनने के अधिकार छीन लिए जाते हैं। स्वर्गीय पति की संतान की सुरक्षा उसका मुख्य कर्त्तव्य बन जाता हैं। चाहे इसके लिए वो अर्थिक रूप से सक्षम हो चाहे न हो, उसे कर्तव्य निभाना ही पड़ेगा वो भी अकेले ही। अतीत के चलचित्र में महादेवी ने विट्टो के साथ 19 वर्षीय भाभी के वैधव्य जीवन पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार वो धर्म, मान, मर्यादा, कुल, संस्कार या फिर रीतिरिवाजों के नाम पर सताई जाती हैं। मानवता विरोधी परंपराओ को झेलते हुए "भाभी समाधी जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान बिना किसी संगी साथी, बिना किसी अमोद प्रमोद के निरन्तर वृद्ध होने की साधना में लीन हो जाती हैं"[24] भाभी महिला हैं ऊपर से विधवा इसलिए समाज के सारे नियम उस पर लागू होते हैं। दूसरी तरफ विट्टो संस्मरण में 54 वर्षीय विधुर वृद्ध के लिए समाज में किसी प्रकार

की पाबंदी नहीं हैं। महादेवी के अनुसार ष्जिस समाज में 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता हैं, वहाँ 54 वर्ष के बाबा ने 32 वर्ष की बाल विधवा विट्टो से विवाह कर उसका उद्धार ही किया है।"[25] भाभी और विट्टो की इस स्थिति के पीछे भाभी की ननद और विट्टो भाभियों के रूप में स्त्री समाज का हाथ होने के कारण महादेवी कहती हैं। "एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता हैं और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पा कर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहती"[26]

ऐसी स्थिति में देश, समाज के विकास के साथ स्त्रियों की जीवन दशा सुधारने के लिए उनकी शिक्षा एवं आर्थिक सशक्तीकरण पर विशेष जोर देते हुए महादेवी उनके माता पिता को सुझाव देती हैं कि यदि "कन्या के जन्म के साथ विवाह की चिंता न कर उनके विकास के साधनो की चितां की जाए, उनके लिए रूचि के अनुसार कला, उद्योग धन्धे तथा शिक्षा के द्वारा खुले हो, जो उन्हे स्वावलंबी बना सके और तब अपनी शक्ति और इच्छा को समझकर वो जीवनसंगी चुन सके तो विवाह उनके लिए तीर्थ कर होगा।"[27] महादेवी का स्त्री मुक्ति का रास्ता गहन करूणा और वात्सल्य बोध से अनुप्राणित हैं। जब वह कहती हैं।

"इन आँखो के रस से गीली!
रज भी हैं दिव से गर्वीली
मैं सुख से चंचल दुख - बोझिल
क्षण - क्षण का जीवन जान चली
मिटनें को कर निर्माण चली"[28]

संदर्भ ग्रंथ -

1. अग्निरेखा - महादेवी वर्मा, पृ. 27, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, तीसरी आवत्ति 2012
2. स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, सम्पादक राजकिशोर पृ. 40, लेख-सत्येन्द्र रंजन, वाणी प्रकाशन, आवत्ति 2010
3. स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, सम्पादक राजकिशोर पृ. 72, लेख-मनीषा मिश्रा, वाणी प्रकाशन, आवत्ति 2010
4. स्त्री विमर्श-महादेवी वर्मा, डॉ. ऊषा मिश्रा, लेख-रामजनम सिंह, प्रदीप अवस्थी, पृ. 134, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, सं. 2009
5. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 55, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
6. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 62, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
7. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 105, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
8. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, अपनी बात से, पृ. 09, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
9. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 17, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
10. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 14, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
11. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 49, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
12. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 17, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
13. नीहार - महादेवी वर्मा पृ. 36, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद सं. 1988
14. अतीत के चलचित्र पृ. 18, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं. 2010
15. स्मृति की रेखाएं - महादेवी वर्मा - पृ. 11, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
16. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 34, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
17. कुरूक्षेत्र-मासिक पत्रिका, पृ. 12, मार्च 2015, संपादक-दीपिका कच्छल।
18. चिंतन के क्षण - महादेवी वर्मा पृ. 14 भारती भंडार लीडर भवन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1986
19. नीहार - महादेवी वर्मा पृ. 68, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद सं. 1988
20. अतीत के चलचित्र पृ. 18, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं. 2010
21. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 68, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
22. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 34, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
23. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 35, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
24. अतीत के चल चित्र - महादेवी वर्मा, विट्टो संस्मरण पृ. 27, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं. 2010
25. अतीत के चल चित्र पृ. 47, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं. 2010
26. अतीत के चल चित्र पृ. 97, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं. 2010
27. श्रृंखला की कड़ियाँ-महादेवी वर्मा, पृ. 68, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010
28. दीपशिखा - महादेवी वर्मा, पृ. 147, लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010

बंगाल का गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय

रजनी सोनी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

डॉ० ब्रजलता शर्मा

शोध निर्देशिका, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की आधारशिला चौतन्य महाप्रभु के द्वारा रखी गई। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए महामंत्र नाम संकीर्तन का अत्यंत व्यापक व सकारात्मक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में है। कृष्णकृपामूर्ती श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद को गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के पश्चिमी जगत के आज तक के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक माने जाते हैं। राधा रमण मन्दिर वृंदावन में श्री राधा रमण जी का मन्दिर श्री गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मन्दिरों में से एक है। श्री गोपाल भट्ट जी शालिग्राम शिला की पूजा करते थे। एक बार उनकी यह अभिलाषा हूई की शालिग्राम जी के हस्त-पद होते तो मैं इनको विविध प्रकार से सजाता एवं विभिन्न प्रकार की पोशाक धारण कराता। भक्त वत्सल श्री कृष्ण जी ने उनकी इस मनोकामना को पूर्ण किया एवं शालिग्राम से श्री राधारमण जी प्रकट हुए। श्री राधा रमण जी के वामांग में गोमती चक्र सेवित है। इनकी पीठ पर शालिग्राम जी विद्यमान हैं।

चंडीदास

चंडीदास राधकृष्ण लीला संबंधी साहित्य का आदिकवि माने जाते हैं। इनका बंगाली वैष्णव समाज में बड़ा मान है। बहुत दिनों तक इनके बारे में कुछ विशेष ज्ञात नहीं था। चंडीदास को द्विज चंडीदास "दीन चंडीदास" बडु चंडीदास" अनंतबडु चंडीदास इन कई नामों से युक्त पद प्राप्त थे। इनकी पदावली को प्राय: कीर्तनियाँ लोग गाया करते थे। चन्डीदास इसके पदो का सर्वप्रथम आधुनिक संग्रह जगद्बंधु भद्र द्वारा 'महाजन पदावली' नाम से किया गया। इस संग्रह ग्रंथ की द्वितीय संख्या में चंडीदास नामांकित दो सौ से अधिक पद संग्रहीत हैं। यह संग्रह सन् 1874 ई. में प्रकाशित हुआ था। सन् 1916 ई. तक चंडीदास के परिचय" समय इत्यादि के संबंध में कोई निश्चित मत न होते हुए भी इस बात की कोई समस्या नहीं थी कि चंडीदास नाम के एक ही व्यक्ति थे या अनेक। इसी समय वसंतरंजन राय ने स्वयं प्राप्त की हुई 'श्रीकृष्णकीर्तन' नाम की हस्तलिखित ग्रंथ की प्रति को संपादित कर प्रकाशित किया। यह ग्रंथ कृष्णलीला काव्य है। प्रचलित पदावली की भाषा और वर्ण्य विषय से ष्श्रीकृष्णकीर्तनष् की भाषा एवं वर्ण्य विषय में अंतर होने के कारण इस बात की संभावना जान पड़ी कि चंडीदास नाम के एकाधिक व्यक्ति अवश्य थे। बहुत छानबीन के उपरांत प्राय: सभी विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दो चंडीदास अवश्य थे। चौतन्यदेव के पूर्ववर्ती एक चंडीदास थे। इस बात का निर्देश 'चेतन्य-चरितामृत' एवं 'चौतन्यमंगल' में मिलता है। चौतन्यचरितामृत में बताया गया है कि चौतन्य महाप्रभु चंडीदास एवं विद्यापति की रचनाएँ सुनकर प्रसन्न होते थे। जीव गोस्वामी ने भागवत की अपनी टीका 'वैष्णव तोषिनी' में जयदेव के साथ चंडीदास का उल्लेख किया है। नरहरिदास और वैष्णवदास के पदों में भी इनका नामोल्लेख है। इन चंडीदास का जो कुछ परिचय प्राप्त है वह प्राय: जनश्रुतियों पर ही आधारित है। ये ब्राह्मण थे और वीरभूम जिले के नामूर ग्राम के निवासी थे। 'तारा' 'रामतारा' अथवा 'रामी' नाम की धोबिन इनकी प्रेमिका थी" यह एक जनश्रुति है। दूसरी जनश्रुति के अनुसार ये बाँकुड़ा जिले के छातना ग्राम के निवासी थे। ये ष्वाशुलीष् देवी के भक्त थे। इनके नाम से प्रकाशित ग्रंथ 'श्रीकृष्णकीर्तन' में प्रबंधात्मकता है। यह प्राचीन यात्रानाट्य और पांचाली काव्य का मिलाजुला रूप है। दीन चंडीदास नामक एक व्यक्ति चौतन्यदेव के परवर्ती थे" इस बात का भी पता चलता है। दीन चंडीदास के नाम से नरोत्तमदास का वंदना संबंधी एक पद प्राप्त है। इससे वे नरोत्तमदास के शिष्य ज्ञात होते हैं। दीन चंडीदास नांमाकित बहुत से पद प्राप्त हैं। इनका संपादित संग्रह श्री मणींद्रमोहन वसु ने प्रकाशित किया है।

चौतन्य महाप्रभु

चौतन्य महाप्रभु (१८ फरवरी १४८६-१५३४) वैष्णव धर्म के भक्ति योग के परम प्रचारक एवं भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने वैष्णवों के गौड़ीय संप्रदाय की आधारशिला रखी। भजन गायकी की एक नयी शैली को जन्म दिया तथा राजनैतिक अस्थिरता के दिनों में हिंदू-मुस्लिम एकता की सद्भावना को बल दिया, जाति-पांत" ऊंच-नीच की भावना को दूर करने की शिक्षा दी तथा विलुप्त वृंदावन को फिर से बसाया और अपने जीवन का अंतिम भाग वहीं व्यतीत किया। "उनके द्वारा प्रारंभ किए गए महामंत्र नाम संकीर्तन का अत्यंत व्यापक व सकारात्मक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में है। यह भी कहा जाता है कि यदि गौरांग ना होते तो वृंदावन आज तक एक मिथक ही होता। वैष्णव लोग तो इन्हें श्रीकृष्ण का राधा रानी के संयोग का अवतार मानते हैं। गौरांग के ऊपर बहुत से ग्रंथ लिखे गए हैं" जिनमें से प्रमुख है "श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी विरचित चौतन्य चरितामृत। इसके अलावा श्री वृंदावन दास ठाकुर रचित चौतन्य भागवत तथा लोचनदास ठाकुर का चौतन्य मंगल भी हैं।"

दूतकाव्य

यह लेख संस्कृत के महाकवि भास की रचना दूतवाक्य के बारे में नहीं है। दूतकाव्य संस्कृत काव्य की एक विशिष्ट परंपरा है जिसका आरंभ भास तथा घटकर्पर के काव्यों और महाकवि कालिदास के मेघदूत में मिलता है तथापि इसके बीज और अधिक पुराने प्रतीत होते हैं। परिनिष्ठित काव्यों में वाल्मीकि द्वारा वर्णित वह प्रसंग जिसे राम ने सीता के पास अपना विरह संदेश भेजा। इस परंपरा की आदि कड़ी माना जाता है। स्वयं कालिदास ने भी अपने 'मेघदूत' में इस बात का संकेत किया है कि उन्हें मेघ को दूत बनाने की प्रेरणा वाल्मीकि 'रामायण' के हनुमानवाले प्रसंग से मिली है। दूसरी और इस परंपरा के बीज लोककाव्यों में भी स्थित जान पड़ते हैं "जहाँ विरही और विरहिणियाँ अपने अपने प्रेमपात्रों के पति भ्रमर" शुक "चातक" काक आदि पक्षियों के द्वारा संदेश ले जाने का विनय करती मिलती हैं।

नरसिंह

"प्रहलाद एवं उसकी माता नरसिंहावतार को हिरण्यकश्यप के वध के समय नमन करते हुए नरसिंह नर + सिंह ('मानव-सिंह') को पुराणों में भगवान विष्णु का अवतार माना गया है। जो आधे मानव एवं आधे सिंह के रूप में प्रकट होते हैं जिनका सिर एवं धड तो मानव का था लेकिन चेहरा एवं पंजे सिंह की तरह थे वे भारत में खासकर दक्षिण भारत में वैष्णव संप्रदाय के लोगों द्वारा एक देवता के रूप में पूजे जाते हैं जो विपत्ति के समय अपने भक्तों की रक्षा के लिए प्रकट होते हैं।"[3]

नित्यानंद प्रभु

नित्यानंद प्रभु (जन्म:१४७४) चौतन्य महाप्रभु के प्रथम शिष्य थे। इन्हें निताई भी कहते हैं। इन्हीं के साथ अद्वैताचार्य महाराज भी महाप्रभु के आरंभिक शिष्यों में से एक थे। "इन दोनों ने निमाई के भक्ति आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। निमाई ने अपने इन दोनों शिष्यों के सहयोग से ढोलक" मृदंग "झाँझ" मंजीरे आदि वाद्य यंत्र बजाकर व उच्च स्वर में नाच-गाकर हरि नाम संकीर्तन करना प्रारंभ किया। नित्यानन्द जी का जन्म एक धार्मिक बंध्यगति" मुकुंद पंडित और उनकी पत्नी पद्मावती के यहां १४७४ के लगभग वर्तमान पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले के एकचक्र या चाका नामक छोटे से ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता वसुदेव रोहिणी के तथा नित्यानंद बलराम के अवतार माने जाते हैं।"[4] बाल्यकाल में यह अन्य बालकों को लेकर कृष्णलीला तथा रामलीला किया करते थे और स्वयं सब बालकों को कुल भूमिका बतलाते थे। इससे सभा को आश्चर्य होता था कि इस बालक ने यह सारी कथा कैसे जानी। विद्याध्ययन में भी यह अति तीव्र थे और इन्हें न्यायचूड़ामणि की पदवी मिली। यह जन्म से ही विरक्त थे। जब ये १२ वर्ष के ही थे माध्व संप्रदाय के एक आचार्य लक्ष्मीपति इनके गृह पर पधारे तथा इनके माता पिता से इस बालक का माँगकर अपने साथ लिवा गए। मार्ग में उक्त संन्यासी ने इन्हें दीक्षा मंत्र दिया और इन्हें सारे देश में यात्रा करने का आदेश देकर स्वयं अंतर्हित हो गए। नित्यानंद ने कृष्णकीर्तन करते हुए २० वर्षों तक समग्र भारत की यात्राएँ कीं तथा वृंदावन पहुँचकर वहीं रहने लगे। जब श्रीगौरांग का नवद्वीप में प्रकाश हुआ। यह भी संवत् १५६५ में नवद्वीप चले आए। यहाँ नित्यानंद तथा श्री गौरांग दोनों नृत्य कीर्तन कर भक्ति का प्रचार करने लगे। इनका नृत्य कीर्तन देखकर जनता मुग्ध हो जाती तथा जै निताई-गौर कहती। नित्यानन्द के सन्यास ग्रहण करने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता पर यह जो दंड कमंडलु यात्राओं में साथ रखते थे उसे यही कहकर तोड़ फेंका कि हम अब पूर्णकाम हो गए। यह वैष्णव संन्यासी थे। नवद्वीप में ही इन्होंने दो दुष्ट ब्राह्मणों जगाई-मधाई का उद्धार किया जो वहाँ के अत्याचारी कोतवाल थे। जब श्री गौरांग ने सन्यास ले लिया वह उनके साथ शांतिपुर होते जगन्नाथ जी गए। कुछ दिनों बाद श्री गौरांग ने इन्हें गृहस्थ धर्म पालन करने तथा बंगाल में कृष्णभक्ति का प्रचार करने का आदेश दिया। यह गौड़ देश लौट आए। अंबिका नगर के सूर्यनाथ पंडित की दो पुत्रियों वसुधा देवी तथा जाह्नवी देवी से इन्होंने विवाह किया। इसके अनंतर खंडदह ग्राम में आकर बस गए और श्री श्यामसुंदर की सेवा स्थापित की। श्री गौरांग के अप्रकट होने के पश्चात् वसुधा देवी से एक पुत्र वीरचंद्र हुए जो बड़े प्रभावशाली हुए। संवत् १५९९ में नित्यानंद का तिरोधान हुआ और उनकी पत्नी जाह्नवी देवी तथा वीरचंद्र प्रभु ने बंगाल के वैष्णवों का नेतृत्व ग्रहण किया।

प्रियादास

प्रियादास नाभाजी द्वारा रचित भक्तमाल की कवित्तोंवाली प्रसिद्ध टीका भक्तिरसबोधिनी के रचयिता हैं। इनका उपनाम रसरासि था। इनके दीक्षागुरु मनोहरराम चौतन्य संप्रदाय की राधारमणी शिष्यपरंपरा में थे। भक्तिरसबोधिनी की रचना संवत १७६९ में पूर्ण हुई थी। इनकी अन्य रचनाएँ रसिकमोहिनी (सं. 1794 अनन्यमोहिनी" चाहवेली तथा भक्तसुमिरनी हैं।

बल्लभ रसिक

बल्लभ रसिक गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्त कवि हैं। गदाधर भट्ट के वंशजों के अनुसार वल्लभ रसिक,गदाधर भट्ट के द्वितीय पुत्र थे। इनके बड़े भाई का नाम रसिकोत्तंस था। भट्ट जी अपने दोनों पुत्रों को स्वयं शिक्षा और दीक्षा दी। इस आधार पर वल्लभ रसिक का कविताकाल वि० सं० १६५० के आस पास स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि गदाधर भट्ट का समय वि० सं० १६०० से कुछ पूर्व का अनुमानित किया गया है। भट्ट जी के पुत्र होने के कारण ये भी दक्षिणात्य ब्राह्मण हैं। किन्तु इन सभी तथ्यों समय" वंश सम्प्रदाय आदि के विषय में वल्लभ रसिक ने स्वयं कुछ नहीं लिखा। अपनी वाणी में तो महाप्रभु चौतन्य अथवा षट्गोस्वामियों की उन्होंने वन्दना भी नहीं की।

ब्रह्मसंहिता

ब्रह्मसंहिता एक संस्कृत पंचरात्र ग्रन्थ है जिसमें सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा द्वारा भगवान कृष्ण या गोविन्द की स्तुति की गयी है। गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में इस ग्रन्थ की बहुत प्रतिष्ठा है।

ब्रजबुलि

ब्रजबुलि उस काव्यभाषा का नाम है जिसका उपयोग उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों अर्थात् मिथिला "बंगाल" आसाम तथा उड़ीसा के भक्त कवि प्रधान रूप से कृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिए करते रहे हैं। नेपाल में भी ब्रजबुलि में लिखे कुछ काव्य तथा नाटकग्रंथ मिले हैं। इस काव्यभाषा का उपयोग शताब्दियों तक होता रहा है। ईसवी सन् की 15वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक इस काव्यभाषा में लिखे पद मिलते हैं। यद्यपि 'ब्रजबुलि साहित्य' की लंबी परंपरा रही हैं फिर भी 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग ईसवी सन् की 19वीं शताब्दी में मिलता है। इस शब्द का प्रयोग अभी तक केवल बंगाली कवि ईश्वरचंद्र गुप्त की रचना में ही मिला है।

मायापुर

मायापुर पश्चिम बंगाल के नदिया जिला में गंगा नदी के किनारे उसके जलांगी नदी से संगम के बिंदु पर बसा हुआ एक छोटा सा शहर है। यह नवद्वीप के निकट है। ष्यह कोलकाता से १३० कि०मी० उत्तर में स्थित है। यह हिन्दू धर्म के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के लिए अति पावन स्थल है। यहां उनके प्रवर्तक श्री चौतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ था। इन्हें श्री कृष्ण एवं श्री राधा का अवतार माना जाता है। यहां लाखों श्रद्धालु तीर्थयात्री प्रत्येक वर्ष दशनों हेतु आते हैं। यहां इस्कॉन समाज का बनवाया एक मंदिर भी है। इसे इस्कॉन मंदिर मायापुर कहते हैं। मायापुर में जलांगी नदी को नाव द्वारा पार करते हुए लोग भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा १८८० में चौतन्य महाप्रभु की जन्मस्थली पर निर्मित मंदिर श्रीला प्रभुपाद का समाधि मंदिर मायापुर अपने शानदार मन्दिरों के लिए पूरे विश्व में जाना जाता है।"[5] इन मन्दिरों में भगवान श्री कृष्णको समर्पित इस्कान मन्दिर प्रमुख है। मन्दिरों के अलावा पर्यटक यहां पर सारस्वत अद्वैत मठ और चौतन्य गौडिया मठ की यात्रा भी कर सकते हैं। होली के दिनों मे मायापुर की छटा देखने लायक होती है क्योंकि उस समय यहां पर भव्य रथयात्रा आयोजित की जाती है। यह रथयात्रा आपसी सौहार्द और भाईचारे का प्रतीक मानी जाती है।

राधा कृष्ण

राधा कृष्ण एक हिंदू देवता हैं। कृष्ण को गौड़ीय वैष्णव धर्मशास्त्र में अक्सर स्वयं भगवान के रूप में सन्दर्भित किया गया है और राधा एक युवा नारी हैं। एक गोपी जो कृष्ण की सर्वोच्च प्रेयसी हैं। कृष्ण के साथ राधा को सर्वोच्च देवी स्वीकार किया जाता है और यह कहा जाता है कि वह अपने प्रेम से कृष्ण को नियंत्रित करती हैं। यह माना जाता है कि कृष्ण संसार को मोहित करते हैं लेकिन राधा "उन्हें भी मोहित कर लेती हैं। इसलिए वे सभी की सर्वोच्च देवी हैं।

सन्दर्भ-सूची %-

1. भद्र जगद्बंधु "महाजन पदावली" प्रकाशन सन् 1874 पृ0-81
2. कृष्णदास सं०-] 1590 पृ0- 28
3. भक्तिरसामृतसिन्धु सं0-1998 पृष्ठ 22
4. श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी] श्री चौतन्य-चरितावली" गीता प्रेस गोरखपुर सं० 2011] पृ० 234
5. नागर "अमृतलाल" जीवनी चौतन्य महाप्रभु (हिन्दी भारतीय साहित्य संग्रह "प्रकाशन 2015" पृ-45

विभेदीकृत विकास एवं पर्यावरण जनजातीय अस्मिता का एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

डॉ० कान्ता मीणा

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, आईसीएसएसआर, नई दिल्ली

इस पेपर में आधुनिक समय में विभेदीकृत विकास एवं पर्यावरण का जनजातीय अस्मिता के सामाजिक घटकों एवं उत्प्रेरक कारकों पर प्रकाश ड़ाला गया है। आज भले ही मानव ने सभ्य तरीकों से जीवनयापन का तरीका विकसित किया हो पर साथ ही साथ ऐसी जटिल सामाजिक समस्याओं को भी जन्म दे दिया है कि ये समस्याएँ अब परिपक्व होकर अपना प्रभाव पर्यावरण विघटन के रूप में प्रदर्षित करने लग गई हैं। संसाधनों के असमानतामूलक वितरण ने विकास को एकपक्षीय बनाया है। यह असंतुलित विकास निर्धनता बनाम समृद्धि की स्थितियों को उत्पन्न करता है और जनजातियों में संघर्षमूलक व तनावपूर्ण अन्त:क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण कारण बनता है। इस कारण जनजातीय विकास का समूचा पक्ष ''विभेदीकृत वर्गीय विकास'' का रूप ग्रहण कर लेता है। मानव भले ही प्रगति के कई पहलुओं पर दंभ भरता हो परन्तु आज भी जिस समाज के ''मूल निवासियों/जनजातियों'' को यदि उसके सामाजिक विकास के पूरे अवसर नहीं दिये जावें तो ऐसे समाज को सभ्यता की श्रेणी में लाना कतई बेमानी हैं। ''जनजातियों को यदि पूर्ण आवष्यक षिक्षा, व्यक्तित्व विकास के अवसर, व मानवाधिकार नहीं मिल पायेंगें तो इस बात का प्रभाव हमारी आने वाली हजारों पीढ़ियों तक पड़ेगा तथा सामाजिक विकास की एक औसत दर अपेक्षाकृत कम हो जावेगी तथा वह देश सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से अन्य देशों से पिछड़ जायेगा।

डेविड हार्डिमैन के अनुसार उपनिवेशिक नीति एवं उपनिवेशिक प्रशासन के विभेदीकृत वर्गीय विकास, निरंकुश तथा गैर सहानुभूति मूलक व्यवहार ने वन्य जनसंख्या के लिए जनहानि, सांस्कृति विसंगति/संकट जैसी स्थितियाँ उत्पन्न की जिनके परिणामस्वरूप प्रतिरोध व विद्रोह जैसे परिणाम भी उभरकर आये थे। इस उपनिवेशिक नीति ने जंगलों से सम्बद्ध संसाधनों का यहाँ दोहन किया, वही वन्य जनसंख्या की संस्कृति के विषय में पर्यावरण उपेक्षा की नीतियों को निर्मित किया। डेविड हार्डिमैन का मत है कि प्राचीन भारतीय साहित्य जैसे अग्निपुराण एवं जनजातियों की जीवन पद्धति जंगलों के संरक्षण पर बल देती है। भारत की प्राचीन परम्परायें संकेत देती है कि तात्कालीन जनसंख्या को जंगलों के विषय में गहन ज्ञान प्राप्त था। यह ज्ञान वस्तुत: जनजातियों एवं कृषक समाजों के दिन-प्रतिदिन के विश्वास को व्यक्त करता है। इनका मत है कि भारत की सभ्यता जंगलों के संरक्षण पर बल देती है जबकि पश्चिम की सभ्यता पर्यावरण के दोहन को प्रस्तुत करती है डेविड हार्डिमैन ने यह मत भी व्यक्त किया है कि मानव संस्कृति में आयु, यौनिक प्रस्थिति, नातेदारी एवं वर्ग के आधार पर असमानता की इस संस्कृति तथा पर्यावरण एवं संसाधनों के वितरण के मध्य एक विभेदीकृत सम्बन्ध है। राजस्थान के बारां एवं मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले में नदियो से बजरी खनन, सागवान की कटाई के रप में पर्यावरण का दोहन पाया गया है। यह पर्यावरण की उपेक्षा कुपोषण, प्रोटीन की कमी एवं निम्न स्वास्थ्य की स्थितियों को उत्पन्न करता है। जो जनजातियों की अस्मिता/पहचान का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया।

विभेदीकृत विकास एवं पर्यावरण के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि विकास के क्रम के साथ ही मानवीय समस्याओं का भी उदय हुआ हैं। मनुष्य निर्मित यह समाज क्रमष: सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत रहने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि व्यवस्था की इस सुन्दर नवीन श्रृंखला में जीवनयापन के उसके प्रयास ने पर्यावरण की नूतन समस्याओं को जन्म नहीं दिया। विष्व स्तर पर चाहे कोई भी राष्ट्र राज्य कितना ही विकसित क्यों न हो उसकी समस्याएं उसी अनुपात में जटिलतम होती जाती हैं। विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा विकासशील राष्ट्रों की समस्याएं भी अनेक जटिलताओं को अपने में समेटे हुए हैं। इन्हीं जटिलतम समस्याओं की श्रृंखला की कड़ी में ''जनजातियों'' की समस्याएँ भी पर्यावरण से जुड़ी हुई हैं।

किसी भी राष्ट्र की उन्नति का आंकलन उस राष्ट्र में रहने वाले लोगों में अन्तर्निहित होता हैं। लोग राष्ट्र के स्वरूप के प्रतीक ही नहीं बल्कि उस राष्ट्र की सम्पदा हैं, जिन पर राष्ट्र की आधारशिला सुरक्षित रहती है। किसी भी देश का समाज जितना अनुशासित, क्रियाशील, स्वस्थ, शिक्षित और प्रशिक्षणयुक्त होगा उस देश का भविष्य उतना ही उज्जवल और उन्नतिशील होगा। निष्चय ही पर्यावरण भी किसी राष्ट्र की अत्यन्त बहुमूल्य धरोहर है और यह पारम्परिक निधि या सम्पदा समाज के भविष्य को निर्धारित करती है। जिनसे राष्ट्र या समाज समय-समय पर सामना करने के लिए बाध्य होते हैं। अत: पर्यावरण प्रक्रिया को कोई भी राष्ट्र या समाज नजर अन्दाज नहीं कर सकता।

पर्यावरण एवं मानव विकास सूचकांक के आधार पर किसी देश में विकास की स्थिति को जाना जा सकता है, इसके अंतर्गत जीवन प्रत्याक्षा, प्रौढ़ साक्षारता व जीवन स्तर के पक्ष सम्मिलित किए जाते हैं। एक राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति उसके लोग हैं और विकास का उद्देश्य लोगों को लंबी आयु, स्वस्थ्य व सृजनात्मक जीवन प्रदान करना है''। धीरे-धीरे लाभ व हानि की व्यक्तिगत चेतना ने अनौपचारिक समूहों व संस्थाओं के महत्व को कम करना प्रारम्भ किया है। इन स्थितियों ने जनजातीय-समाज नातेदारी, परिवार, जाति एवं समुदाय के प्रति भी भारतीयों की सोच में परिवर्तन किया है। यहां यह तर्क दिया जा सकता है कि प्रौद्योगिकीय क्रांति ने सामाजिक सम्बंधों को पुन: परिभाषित किया है। इसने जनजातीय-समाज की पारम्परिक विनिमय प्रणाली को भी नवीन अर्थ दिए

हैं और इनको मशीनीकृत जीवन का भाग बनने के लिए बाध्य किया है। इस प्रकार के सम्बंधों ने समूचे विश्व में ऐसा नेटवर्क निर्मित किया है जहां विभेदीकृत विकास एवं काल्पनिक व मिथकीय सम्बंध एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हुए हैं। कुछ लोगों ने केवल प्रौद्योगिकी/टैक्नोलॉजी को स्वीकारा और उसे विज्ञान मान लिया जबकि विज्ञान ''तार्किकता की विचारधारा'' है जिसके माध्यम से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न समस्या का तार्किक समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान की तरह प्रौद्योगिकी मूल्य निरपेक्ष नहीं होती। इसलिए प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण मूल्यों का हस्तांतरण भी है। जनजातीय-समाज की संस्कृति के समरूपीयकरण में भी प्रौद्योगिकी विभेदीकृत विकास एवं पर्यावरण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में अधिकांश प्रौद्योगिकी पर विकसित तथा गैर जनजातीय समाजों का ही नियंत्रण है।

आज भी विश्व के सभी समाजों में जनसंख्या का एक बहुत छोटा हिस्सा ही विकसित हुआ है जिसने सही अर्थों में तार्किक-वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है। यही हिस्सा सफल भी हुआ है, इसलिए पर्यावरण एवं संसाधनों पर इसका अधिकार है। इसके पास सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक पूंजी भी है, ये जीवन में वास्तविक स्वतंत्रता का अनुभव भी करते हैं। अर्थात् ये वर्ग इतना सजग है कि उसके लिए प्रजातीय, जातीय, लैंगिक पूर्वाग्रह व असमानताएं कोई महत्व नहीं रखती। दूसरी तरफ वे जनजातीय-समाज के लोग हैं जो तार्किक-वैज्ञानिक चिंतन नहीं अपना पाए हैं। इसलिए वे संकीर्ण सीमाओं को भी नहीं तोड़ पाए हैं, इनकी चेतना में हर प्रकार के भेदभाव विद्यमान हैं। ये वर्ग साक्षर होते हुए भी अशिक्षित है क्योंकि शिक्षा से पनपी उदारता, सहनशीलता एवं लोकतांत्रित जीवन शैली इनके जीवन का हिस्सा नहीं बन पायी है। वे खुलेपन में सांस लेने के इच्छुक तो हैं परन्तु परम्पराओं व संकीर्णताओं के अवरोध इन्हें रोकते हैं। चूंकि इनके लिए किसी भी स्तर पर विकास का अर्थ स्वतंत्रता नहीं बन पाता। ये वर्ग इतने अधिक अतीतोन्मुखी हैं कि ऐसा संस्कृति रूपांतरण नहीं चाहते जो आज के आर्थिक विकास की जरूरत है। परिणामस्वरूप अलगाव की स्थितियां उत्पन्न होती है। फलस्वरूप जनजातीय लोगों की जीवन पद्धति अनेक विसंगतियों का शिकार हो जाती है। समाजशास्त्री आगबर्न के मतानुसार आज भी जनजातीय-समाज की संस्कृति विलम्बन के दौर से गुजर रही है विभेदीकृत विकास का यह सांस्कृतिक पक्ष जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तनाव उत्पन्न कर रहा है। इस स्वरूप के आधार पर पर्यावरण एवं विकास प्रक्रिया को समझा जाना चाहिए।

सहरिया जनजाति, जो कि भारत की सबसे पिछड़ी आदिम जाति है का अध्ययन लेखिका द्वारा किया गया है जिसमें पारिवारिक स्थिति के अध्ययन की पुष्टि में साक्षात्कार के दौरान अधिकतर परिवारों की सदस्य संख्या 5 से 10 के बीच पाये गये हैं जो परिलक्षित करता है कि माता-पिता बच्चों को सम्पति के रूप में देखते है तथा बच्चा एक तरह से आर्थिक उत्पादन की इकाई माना जाता है जो परिवार के भरण-पोषण में अल्प आयु से ही सहायक हो जाता है। षिक्षा संबधी एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह सामने आया है कि उत्तरदाताओं की शत् प्रतिशत माताएँ अषिक्षित है। किसी भी उत्तरदाता कि माता को अक्षर ज्ञान तक नहीं था। साक्षात्कार के दौरान यह भी पता चला है कि आम सहरिया आदिवासी परिवार के पास अपनी खातेदारी की जमीन नहीं है। कुछ लोगों के पास यदि है भी तो 2-3 बीघा औसतन है। जिस पर नियोक्ता द्वारा ही खेती की जाती है। अतः यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि सहरिया आदिवासी क्षेत्रों के नियोक्ता व प्रभावषाली लोगों द्वारा इस जनजाति को आवंटित जमीनों पर कब्जा कर लिया गया है। या फिर कर्ज के बदले में उस जमीन को सेठ साहूकारों द्वारा गिरवी रख लिया जाता है। जिससे यह जनजाति जंगल आधारित उत्पादों पर व मजदूरी पर आजीविका पालने हेतु बाध्य कर दी गई है। गरीबी व भुखमरी का चक्र इस जनजाति के बालकों को काम पर जाने हेतु बाध्य कर देता है। यही कारण है कि पीढ़ियों से इस जनजाति में संस्थागत बाल श्रमिकों का जन्म होता चला आ रहा है जो धीरे-धीरे बंधुआपन व सामाजिक अपराधों का महत्वपूर्ण व प्रमुख कारण बन गया है। सहरिया जनजातीय-समाज में फैली अषिक्षा तथा अंधविष्वासों ने भी जनसंख्या नियंत्रण कार्य को प्रभावित किया है। कुछ विषेष व्यक्ति परिवार नियोजन कार्यक्रमों को धार्मिक आधार पर गलत ठहराते है। जो कि पूर्णतः असत्य है। इस प्रकार कुप्रचार के शिकार प्रमुखतः गरीब जनजातीय लोग तथा अषिक्षित व्यक्ति होते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सहरिया जनजाति में विभेदीकृत विकास के प्रमुख उत्प्रेरक कारकों में उच्च प्रजनन-दर, निम्न मृत्युदर, व्याप्त अषिक्षा, गरीबी, शहरीकरण, जनसंख्या विस्फोट, परिवार नियोजन कार्यक्रम की धीमी प्रगति, परिवार नियोजन के प्रति व्याप्त भ्रांतियां तथा जनता में फैला धार्मिक अंध-विश्वास आदि सम्मिलित है।

विभेदीकृत विकास प्रक्रिया एवं वैश्वीकरण के नवीन पक्षों ने पर्यावरण पर आक्रमण किया है। राज्य आर्थिक जीवन पर प्रभावी नियंत्रण कर पाने में असमर्थ है। भारत में आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया को सामाजिक विकास के उन पक्षों से जोड़ा है जिनका सीधा सम्बंध जनजातीय निर्धनता एवं सामाजिक अवसरों में विभेदीकरण से है। विद्यालयी शिक्षा में विभेदीकरण, साक्षरता की दर में विभेदीकरण, अच्छी स्वस्थ सुविधाएं में विभेदीकरण, व्यापक स्तर पर भूमि सुधार में विभेदीकरण, जीवन स्तर में तार्किक चयन में विभेदीकरण, खुलेपन व उदारवाद का समावेश तथा लैंगिक समानता में विभेदीकरण के सवाल वे हैं जिन्हें केन्द्र में रखकर जनजातीय सामाजिक विकास की प्रक्रिया को मूल्यांकित किए जाने की जरूरत है। कहा जाए तो आधुनिकीकरण व वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं ने पर्यावरण की अवधारणा को न केवल विस्तार दिया है अपितु विवादास्पद भी बनाया है। जहां एक तरफ विकास ने मानव जीवन में गुणात्मक बदलाव किए हैं वहीं जनजातीय लोगों के बीच दूरियां भी बढायी हैं। आज मनुष्य भावनात्मक सम्बंधों से दूर यांत्रिक सम्बंधों में जीवन बिताने लगा है जसने भौगोलिक दूरियां तो समाप्त कर दी पर भावनात्मक दूरियां भी बढाघ दी हैं। यह विकास का एक ऐसा प्रारूप है जो पर्यावरण के सामने अनेक प्रश्नों को उत्पन्न करता है, जैसे क्या विकास मूल्यपरक अवधारणा है जहां मत-भिन्नता पायी जाती है? या फिर विकास एक भ्रम है, ये ऐसे पक्ष हैं जिन्होंने विकास को विवादास्पद बना दिया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो आधुनिकीकरण व वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं ने जनजातीय अस्मिता एवं पर्यावरण की अवधारणा को न केवल विस्तार दिया है अपितु विवादास्पद भी बनाया है। जहां एक तरफ विभेदीकृत विकास ने चंद लोगों के मानव जीवन में गुणात्मक बदलाव किए हैं वहीं अधिकतर लोगों के बीच दूरियां भी बढायी हैं। आज मनुष्य भावनात्मक सम्बंधों से दूर यांत्रिक सम्बंधों में जीवन बिताने लगा है वहीं दूसरी ओर विकास से महरूम जनजातीय समाज दो वक्त की रोटी के लिए भी मोहताज है। राजस्थान के बारां एवं मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले में रहने वाली सहरिया जनजाति का अध्ययन किया गया है जिसमें भी विभेदीकृत विकास के निम्न तथ्य पाये गये हैं:-

1. सहरिया जनजातीय समाज में बालश्रम एक सामाजिक बुराई के रूप में स्थापित है जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित है जिसे बंधुआ मजदूरी का स्वरूप माना जा सकता है एवं बालिका मजदूरों की स्थिति तो और भी दयनीय है। पिता की जगह पुत्र व माता की जगह बेटी / पुत्र वधु जनजातीयों में बंघुआ मजदूरी प्रथा की संस्थागत उपस्थिती के प्रमाण है।
2. जहॉ एक ओर बाल मनोरंजन क्षेत्र में वीडियो गेम्स ने विकास का आयाम स्थापित किया है वहीं सहरिया बालक व बालिका इन समस्त मनोरंजन के साधनों से अनभिज्ञ जंगल में लकड़ी काटना, गायें चराना, धान के पौधे लगाना व तेंदू पत्ता काटकर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। यह तथ्य जनजातीय क्षेत्रों में विकास की अवधारणा पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है। यह बताता है कि जनजातीय क्षेत्रों में सामाजीक विभेदीकरण व्यापक रूप में उपस्थित है।
3. जहॉ पर भारत सरकार द्वारा सर्व शिक्षा अभियान का राष्ट्रीय स्तर पर सफल घोषित करने के विज्ञापन प्रसारित होते हैं दूसरी ओर सहरिया आदिवासी क्षेत्रीय विद्यालयों के द्वारों पर ताले लगे हुए पाये जाते हैं यह बड़ा ही भ्रामक व विरोधाभासी तथ्य है कि सबके लिए शिक्षा है पर सहरिया जनजातियों के लिए नहीं।
4. जहां भारत में बालिका/महिला शिक्षा को भी शैक्षिक अभियानों का एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है सहरिया जनजाती की बालिका/महिला साक्षरता का प्रतिशत शायद समस्त भारत के न्यूनतम स्तर पर है। जो कि जनजातीय विभेदीकरण के साथ साथ लिंग भेदीय स्वरूप को प्रदर्शित करता हैं।
5. भारत सरकार द्वारा निर्धारित वैवाहिक आयु क्रमशः 21 व 18 वर्ष, बालक व बालिका की रखी गयी है। सहरिया क्षेत्रों में शारदा एक्ट की सरेआम धज्जियॉ प्रशासन की उपस्थिति में उड़ती देखी जा सकती है। कि बाल विवाह एक संस्थागत सामाजिक बुराई के रूप में उपस्थित है।
6. भारत सरकार द्वारा फैक्ट्री अधिनियम 1953 में निर्धारित न्यूनतम मजदूरी के माप दण्डों का सरे आम उल्लंघन सहरिया जनजाति के मजदूरों के लिए किया जाता है।
7. सरकार द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में शराब निषेध (सूखा क्षेत्र) घोषित कर रखा है परन्तु सहरिया जनजाति के महिला-पुरूष शाम को घर पर ताड़ी पीकर ही पहुंचते हैं। यह तथ्य जनजातीय क्षेत्रों में शराब निषेध कानूनों (सूखा क्षेत्र) एवं सामाजिक विकास की अवधारणा पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है। यह बताता है कि जनजातीय क्षेत्रों में सामाजिक विभेदीकरण आबकारी कानूनों के भेदीय स्वरूप में उपस्थित है।

अतः यह जनजातीय विकास का एक ऐसा प्रारूप है जो हमारे सामने अनेक प्रश्नों को उत्पन्न करता है, जैसे क्या इसे जनजातीय जीवन में गुणात्मक बदलाव की संज्ञा की जा सकती है? क्या विकास मूल्यपरक अवधारणा है जहां मत-भिन्नता पायी जाती है? या फिर विकास एक भ्रम है, ये ऐसे पक्ष हैं जिन्होंने विकास को विवादास्पद व विभेदीकृत बना दिया है। अतः आवश्यक है कि जनजातीय विकास का ऐसा मार्ग विकसित किया जाए जिसमें:- पर्यावरण संसाधनों का तार्किक व समानतामूलक वितरण हो। प्रौद्योगिकी व वित्तीय एकाधिकार समाप्त किया जा सके। कुछ समाजों के स्थान पर सर्व समाज के हितों को महत्व दिया जाए। निजीकरण के स्थान पर साझेदारी/पार्टनरशिप को स्थापित किया जाए। विकास व्यक्ति अथवा समूह केन्द्रित न होकर ''पर्यावरण केन्द्रित'' बने।

विकास की दिशा क्या होनी चाहिए, इस पर व्यापक बहस की जरूरत है, क्योंकि विभेदीकृत असमान विकास मानव सभ्यता के लिए एक संकट है जो राजनीतिक व आर्थिक अस्थिरता के रूप में नक्सलवाद, माओवाद, नागा जनजाति आंदोलनों के द्वारा उभरता हुआ स्पष्ट नजर आने लगा है।

संदर्भ ग्रंथः-

1. टी.बी.वाटोमोर, समाज शास्त्र, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, जनवरी 1968, पृष्ठ संख्या 299
2. वी.गार्डन, मैन मैक्स हिमसेल्फ (तृतीय संस्करण), लन्दन, 1956 पृष्ठ संख्या 16-17
3. आर.एस.मैकाइवर और सी.एच.पेज, सोसाइटी (लन्दन, 1952) पृष्ठ संख्या 27
4. सामिन आमिर,, अनइक्यूवल डेवलपमेन्टः एन ऐस्से ऑन दी सोशल फारमेशनस ऑफ पेरीफेरल केपिटलइज्म, मंथली रिव्यू प्रेस, न्यू यार्क, 1977 पृष्ठ संख्या 2-7
5. हेमराज मीणा (आर.पी.एस.), संयुक्त राष्ट्र संघ के यू.एन.मिशन कोसोवो (2008-09) में पदस्थापित भारतीय पुलिस के अधिकारी से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
6. सामिन आमिर, अनइक्यूवल डेवलपमेन्टः एन ऐस्से ऑन दी सोशल फारमेशनस ऑफ पेरीफेरल केपिटलइज्म, मंथली रिव्यू प्रेस, न्यू यार्क, 1977, पृष्ठ संख्या 3-14
7. डेलवर्ट सी मिलर, विलियम एच. फोर्म, इन्डस्ट्रीयल सोशियोलोजी, हार्बर एण्ड रो, न्यूयार्क 1994, पृष्ठ संख्या 6-8
8. महेन्द्र नारायण कर्ण, भारत में सामाजिक परिवर्तन, प्रथम संस्करण, एन.सी.ई.आर.टी. 2003 नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 13-14
9. अमर्त्य सेन, डेवलपमेन्ट एज फ्रीडम, रेन्डम हाउस इनकारपोरेशन, 2000, पृष्ठ संख्या 3-4
10. टालकट पारसन्स दा सोशल सिस्टम, एमरिन्द पब्लिशिग कम्पनी प्रा.लि. नई दिल्ली 1951, पृष्ठ संख्या 9-10
11. डॉ. कान्ता मीणा, बाल श्रम, सहरिया जनजाति बाल श्रमिकों का बारां जिले के किशनगंज व शाहबाद क्षेत्रों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 2012

रेत समाधिः स्त्री विमर्श के विशेष संदर्भ में

सरदार जाट

हिन्दी विभाग शोधार्थी, महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर

स्त्री विमर्श आधुनिक समाज की प्रगति का पैमाना मापने की आधारशिला होती है। गीतांजलि श्री का रेत समाधि उपन्यास इसी आधारशिला के नींव का पत्थर है। इस उपन्यास में माँ और बेटी के रूप में दो औरतें समसामयिक संदर्भ में स्त्री विमर्श को उद्घाटित करती हैं, साथ ही साथ रोजी और बहू स्त्री विमर्श को पुष्ट करती हैं। रेत समाधि उपन्यास का कथानक तीन पड़ावों में विभक्त है-पीठ, धूप और हद सरहद। पीठ पड़ाव में माँ और उसकी बेटी वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत करती है। माँ के माध्यम से स्त्री के वैधव्य जीवन की पीड़ा को प्रस्तुत किया गया है। माँ के विधवा होते ही जिंदा लाश सदृश जीवनयापन को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है तथा माँ अपने भविष्य को पीठ दिखाते हुए चित्रित किया गया है इसके ठीक विपरीत बेटी की जिद् और जुनून ने माँ को तब नव जीवन की संजीवनी दी है जब माँ ने यह ठान रखा था यथा- "नहीं-नहीं मैं नहीं उठूँगी। अब तो मैं नहीं उठूँगी।"[1]

प्रस्तुत उपन्यास सांस्कृतिक संदर्भ को पार करके सार्वभौमिक और मानवीयता को स्पर्श करती, दो औरतों की कहानी है। यह उपन्यास रिश्तों के ताने-बाने में गुंफित है, जो स्त्री से कई उम्मीदें रखता है और स्त्री को एक निश्चित दायरे में बांधकर नहीं रखना चाहता है। जिस समाज मे बेटी के विवाह में विदा के पश्चात् उसके ससुराल के घर में माता-पिता का रहना तो दूर उसके घर का पानी पीना भी पाप माना जाता था। ऐसे समाज में रहती स्त्री अपनी आजादी के लिए लड़ती है। वह अपनी बेटी के यहाँ रहने आती है। वह आजाद विचारों वाली लड़की है। दोनों माँ बेटी पूरे दिन बैठकर अटखेलियाँ करती हुई बतलाती हैं, एक साथ रहती हैं, बेटी माँ बन जाती है, माँ बेटी बन जाती है। माँ की दोस्ती समलैंगिक औरत से होती है, जिससे वह नई उमंग और इच्छा के साथ जीवन को जीती है। इस प्रकार हर साधारण औरत में छिपी एक असाधारण औरत की महागाथा है, 'रेत समाधि' साथ ही साथ अमर प्रेम प्रसंग व रोजी जैसा अविस्मरणीय चरित्र का वृत्तांत भी है।

धूप पड़ाव में अम्मा बेटी के घर पहुँच जाती है। यहाँ प्रतिबंध लगाने वाला कोई नहीं अर्थात् न नियमों का बंधन न कोई बहाना। यहाँ माँ आजादी का अनुभव करती है, अम्मा जिस बालकनी में बैठती है, उसमें धूप भी आती है। बेटी की देखरेख में अम्मा जल्दी स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त कर लेती है, माँ देख-रेख पाकर और छोटी हो जाती है तथा बेटी दिन-रात सेवा शुश्रूषा करके बड़ी होती जाती है अर्थात् जिम्मेदारियों को समझने और निभाने लग गई है यथा-"बेटी ने माँ बनकर माँ को बेटी बनाया, और उनके माथे पर हाथ फेरा, आ गयी यहाँ अब नहीं जाने दूंगी। कैसी कमजोर हो गई है। धीरे-धीरे जिला ना दूं तो देखना।"[2]

माँ की परवरिश में बेटी अपने स्वाभाविक जीवन से कट जाती है, यहाँ तक की वह अपने प्रेमी से भी दूर हो जाती है। जबकि अम्मा इस अवस्था में भी अपने प्रेमी से मिलने सरहद को लाँघ जाती है। कुछ समय माँ अनिच्छा से बेटे और बहू के साथ भी व्यतीत करती है। परन्तु वहाँ अधिक समय तक नहीं टिकती इसका कारण यह है कि अस्सी साल की अम्मा मन माफिक जिंदगी जीना चाहती है, अंत में गोली लगने पर भी अपनी पसंद के अनुरूप प्राण त्यागना चाहती है "गोली आई और छेद करती हुई निकल गई। कोई भी दूसरा मिट्टी में मुँह सने लौट जाता परंतु माँ पीछे को उछली ज्यों कलाबाजी लगाती आसमान ऊपर लिए और फतेह के अंदाज में धरती पर लेट गई।"[3]

संपूर्ण उपन्यास जिन रिश्तों के इर्द-गिर्द कथाक्रम को नाटकीयता से घूमाता है उनमें एक स्त्री दूसरी स्त्री के साथ स्त्री विमर्श की वृहद् आधारशिला की नींव भी रखती है। जिस बेटी को अम्मा ने लाड़-प्यार से बड़ा किया, वक्त आने पर वही बेटी माँ की दुर्दशा के समय अपनी भूमिका व दायित्वों के निर्वहन के लिए कमर कसकर खड़ी होती है। अर्थात् एक स्त्री दूसरी स्त्री की पीड़ा को समझकर सहयोगी की भूमिका में अपने को खड़ा करती है- "माँ अभी झुकने मुड़ने लायक नहीं है जरा जरा में थक जाती है। बेटी उसे ....अरे में पीछे हूँ, देख थोड़े ही रही हूँ, वैसे इसमें क्या बेटी हूँ, अम्मा बेटी ने डपटा।"[4]

रोजी बुआ के निर्मम अंत के पश्चात् उपन्यास का तृतीय पड़ाव हद-सरहद आता है उपन्यास के इस भाग में चंद्रप्रभा के पाकिस्तान जाने के राज से पर्दा उठाता है कि वो पहले प्रेमी से मिलने और वहीं मरने की ईच्छा को संजोकर ही पाकिस्तान गयी थी। यहाँ स्त्री स्वातंत्र्योता या मुक्ति की कामना को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ यह भी उद्घाटित किया गया है कि स्त्री को कभी जीवन में हार नहीं माननी चाहिए-"गोली उसे पीछे से लगी मगर उसकी पीठ पलटवार में माहिर हो चुकी थी और उसके मुँह के बल गिरने का सवाल ही नहीं था।"[5]

कोई अनुभव नितांत एक का नहीं होता निजी से निजी भी। एक प्रसंग में स्त्री विमर्श को लेकर बताया गया है कि "कट्टरतंत्र और शासनतंत्र को समाधियाँ रास नहीं आती न भूपेन खक्कर। उन्हें बंद करना रास आता है। कहानियों पर खासकर औरताना हो तो ये न हिले तो ठीक। कब्र बना दो वो भी ऐसी की कभी न फटे।"[6]

प्रस्तुत उपन्यास की कथा के केन्द्र में दो औरतें हैं। एक बड़ी हो रही है दूसरी छोटी। बेटी हर सीमा को लांघना चाहती है पर सरहद से डरते हुए, वहीं माँ जो सदैव बंधन में जकड़े हुए रही अंत समय में सरहद को लाँघ जाती है वो भी बिना डरे हुए। माँ घर की दहलीज, संस्कार, देश सभी की सरहदों को बौनी साबित करके ही दम लेती है, इस प्रकार हर संभव रूप में आधुनिक युग के अनुरूप स्त्री विमर्श को पुष्पित एवं पल्लवित करती है। रेत समाधि।

संदर्भः-

1. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, मार्च 2022, पृष्ठ-13
2. वही, पृष्ठ 125
3. वही, पृष्ठ 10-11
4. वही, पृष्ठ 131
5. वही, पृष्ठ 300
6. वही, पृष्ठ 31

गुप्तकाल में चकित्सिा विज्ञान का विकास

पंकज कुमार

ए. आई. एच. सी. एण्ड आर्कियोलॉजी, टी.एम.बी.यू., भागलपुर

कहा जाता है कि मानव है, तो रोग है, और रोग है तो चिकित्सा है। मानव सभ्यता की सबसे प्राचीन चिकित्सा पद्धति 'आयुर्वेद' का जन्म भारत में वैदिक काल में हीं हो गया था। इस आयुर्वेद को जन्म् वैदिक काल में ही हो गया था और आयुर्वेद चिकित्सा का प्रमुख ग्रंथ अथर्ववेद थे। आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। अथर्ववेद में शरीर रचना, शारीरिक रोग, रोगों के कारण, उसके निदान, जड़ी-बूटी के औषद्यीय गुण, अहार-निहार, आदि के विषय में चर्चा है। अथर्ववेद विभिन्न रोग जैसे - शीर्षामन, (सिरदर्द), कर्णशूल (कान का दर्द), यक्ष्मा या बलास, अंगज्वर (बुखार), अस्त्राव (अतिसार), कासिना (खाँसी), अपयित (जख्म), स्नायु वेदना जैसे अनेकों रोगों का उल्लेख अथर्ववेद के नवें मण्डल के चौदहवाँ सूक्त में मिलता है।[1] इन रोगों के निदान से सम्बन्धित जड़ी-बूटियों, कंद-मूल, फल-फूल, जड़-छाल, रस, गोंद, स्वरस, मृदु पत्तियों आदि का उल्लेख हर्बल उपचार के रूप में उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।[2] अथर्ववेद में जल चिकित्सा का उल्लेख मिलता है।[3] यानि वैदिक काल में प्राकृतिक चिकित्सा का एक महत्त्वपूर्ण अंग जल चिकित्सा माना गया है। जल को सभी रोगों के निवारक माना है, जल को अमृत बताया है। जल को हितकारक रोगनाशक[4] और सभी औषद्यीय गुण होने के कारण 'दिव्य औषधी' कहा है।[5] अथर्ववेद में जल द्वारा अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा करने का उल्लेख किए है।[6] आज भी जल चिकित्सा के रूप में टब, बाथ, ज्वर ताप, नेत्र रोग दूर करने में करते है। अथर्ववेद में सूर्य की किरणों से चिकित्सा का विस्तृत वर्णन मिलता है। कुल मिलाकर वैदिक काल में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का विकास हुआ।

वैदिक काल के बाद में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का अवनति हुआ, आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के विकास का महत्त्वपूर्ण चरण गुप्तकाल के उदय के बाद शुरू हुआ। गुप्त शासकों के उदारतापूर्ण व्यवहार व नीति आचार्यो, वैद्यों, चिकित्सकों, ज्योतिषाचार्य गणितज्ञों के प्रति अपनारखा था, जिसके कारण गुप्तकाल में चिकित्सा विज्ञान पुनः उद्धार हुआ और इस काल में धन्वतरी, वाग्भट्ट जैसे कोटी के आयुर्वेदाचार्य हुए, जिसने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के विकास में चार-चाँद लगा दिया। धन्वतरी के चिकित्सीय योगदानों के कारण दिपावली के धनतेरस में धन्वतरी दिवस भी मनाते है। गुप्तकाल में एक और प्रमुख चिकित्सक वाग्भट्ट ने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वाग्भट्ट ने भी जीवक, चरक, सुश्रुत आदि के समान आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वाग्भट्ट ने बौद्ध धर्म चिकित्सा पद्धति से प्रभावित होकर अपने ग्रंथ अष्टांगहृदय को बौद्ध प्रार्थना से प्रारंभ किया है। यहां तक कि चिकित्सीय ग्रंथ का नाम 'अष्टांगहृदय' और 'अष्टांगसंग्रह' रखा था। यानि आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के आठ (8) अंगों का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है। ये 8 अंगो का उल्लेख इस प्रकार किए है[8] -

(1) काय चिकित्सा (2) शल्य चिकित्सा (3) भूत विद्या (4) शलाक्य (5) अगदंतत्र (6) वाजीकरण (7) कौमारमृत्य (8) रसायन है। इसलिए वाग्भट्ट ने ऐसा नाम दिया होगा। अष्टांगहृदय तथा अष्टांगसंग्रह दोनों चिकित्सा ग्रंथों में रोगों के कारण, रोगों के निदान, रोगों के रोकथाम तथा औषधियों का उल्लेख किए है। इतना ही नहीं इन दोनों आयुर्वेदिक ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के रसायनों को बनाने की विधियों, रसायनशाला निर्माण भट्टियों (कोष्ठियों) का विवरण है।

अष्टागहृदय को वाग्भट्ट ने आयुर्वेद वाड्.मयरूपी समुद्र का हृदय कहा है। वाग्भट्ट की रचना में काय चिकित्सा तथा शल्यतंत्र के उपयोगी विषयों का वर्णन किया गया है।[9] वाग्भट्ट ने प्रत्येक रोग में एक-एक प्रमुख द्रव्यों के प्रयोग करने का निर्देश दिया है जैसे - ज्वर में नागरमोथा और पित्तपापड़ा, वमन में धान की खील, वस्तिगत रोगों में शिलाजीत, प्लीहा वृद्धि में पिप्पली, वातरक्त में गुडूची और प्रमेह में हल्दी तथा आँवला का योग बतलाया है।[10] अष्टागहृदय में प्रत्येक रोग के लिए एक-एक सर्वश्रेष्ठ द्रव्य का चुनाव किया गया है।[11]

अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदय दोनों चिकित्सा ग्रंथों में रोगों के कारण, रोगों के रोकथाम तथा औषधि का वर्णन किया है। इन ग्रंथों के 120 श्लोकों में औषधियों के निर्माण प्रक्रिया और गुणधर्म के विषय में जानकारी मिलती है।[6] अष्टांगहृदय के प्रामि भाग में प्राचीन आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदिक औषधि, विद्यार्थियों के लिए आवश्यक निर्देश, दैनिक एवं मौसमी निरीक्षण, रोगों की उत्पत्ति, विभिन्न प्रकार के खाद्य प्रदार्थो के गुण-दोष विषैले खाद्य पदार्थो की पहचान और उपचार व्यक्तिगत सफाई आदि का उल्लेख मिलता है।[12] इस ग्रंथ के द्वितीय भाग में उन्होंने मानव शरीर की रचना, शरीर के प्रमुख अंगो, मनुष्य स्वभाव, मनुष्य के विभिन्न रूप और उनके आचरणों का व्याख्या की है। इसके तीसरे भाग में ज्वार, मिर्गी, उल्टी, दमा, चर्म रोग आदि बीमारियों के कारण और उपचार, चौथे भाग में वमन और स्वच्छता के विषय में, पांचवे और अंतिम भाग में बच्चों और उनसे संबंधित रोगों, साथ हीं पागलपन, आँख, कान, नाक, मुख आदि के रोग और घाव आदि के उपचार, विभिन्न जानवरों और कीड़ों के काटने के उपचार का वर्णन किया है।[13] इस प्रकार वाग्भट्ट अपने ग्रंथ में पागलपन, चर्म रोग, विभिन्न प्रकार के ज्वर, नाक, कान, मुँह आदि रोगों के ईलाज के विषय में जानकारी दिए हैं।[14] उनकी रचना 'अष्टांगहृदय' में गर्भ में पल रहे और गर्भ

के दौरान होने वाले रोगों की भी चर्चा किये है और सरल और सुखद प्रसव का तरीका भी बताए हैं। आयुर्वेदिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि सरल; सुखद और प्राकृतिक तरीकों से प्रसव कराने के लिए महिला में घुटनों पर आगे की ओर की ओर झुकना चाहिए तथा इसी ग्रंथ में लिखा है कि नवजात शिशु को नरम रेशमी वस्त्र से लपेट कर रखना चाहिए। डूरेन्ट लिखें हैं कि हिन्दू चिकित्सा विधि में स्त्रियों के मासिक गर्भधारण के उपाय, भ्रूण का विकास, भ्रुण के लिंग का निर्धारण तथा संतान निरोध आदि के विषय में उल्लेख मिलता है।[15]

वाग्भट्ट अपने रचना में एक चिकित्सक के आदर्श और कर्तव्य का भी उल्लेख किया है। एक चिकित्सक और रोगी के बीच कैसे सम्बन्ध होना चाहिए, इसका उल्लेख मिलता है। लिखा है कि यह चिकित्सक रोगी को पुत्र की भाँति ईलाज व देखभाल करना चाहिए। वाग्भट्ट ने युद्ध भूमि में बिना भेदभाव या घायल शत्रु सैनिकों के ईलाज करना चिकित्सकों का कर्त्तव्य बताया है। उन्होंने चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन और चिकित्सीय कार्य करने के तौर तरीकों का वर्णन किये हैं। वाग्भट्ट अपनी रचना मे अपने पूर्व के चिकित्सक चरक, सुश्रुत, आत्रेय, कश्यप, हारीत आदि के चिकित्सीय विधि का वर्णन किये है। यानि आयुर्वेद के विकास में विभिन्न चिकित्सकों का इतिहास भी लिखे हैं। कुल मिलाकर वाग्भट्ट आयुर्वेद के प्रमुख चिकित्सक थे, वह चरक और सुश्रुत के समान हीं महान आयर्वेदाचार्य थे और प्राचीन भारत के सर्वश्रेष्ठ व प्रमुख आर्युवेदाचार्य में चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट को शामिल किया गया है।[16]

वाग्भट्ट की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। वाग्भट्ट के ग्रंथों के चिकित्सीय उपचार विधि इतना उपयोगी है कि 35 से अधिक टीकाएँ लिखी जा चुकी है। इनकी रचनाओं का सर्वप्रथम तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया था, बाद में अरबी और यूनानी भाषा में हुआ। 'विल डूरेन्ट' ने लिखा है कि तिब्बत के वैद्यों की यह ख्याति थी कि वह रोगी के अन्य परीक्षा के बिना केवल उसका मूत्र देखकर उसे रोग मुक्त करते थे।[17] शायद यह तकनीक गुप्तकाल में बौद्ध प्रचारकों के द्वारा तिब्बत गया होगा।

गुप्तकालीन आयुर्वेद से सम्बन्धित प्रमुख रचना 'नावनीतकम' है। इस आयुर्वेदिक ग्रंथ को तुर्किस्तान के एक बौद्ध स्तूप के खंडर से बावेर ने खोज निकाला था। ये ग्रंथ संस्कृत भाषा में ताड़पत्रों पर ईसा के चौथी सदी में लिखी गई थी। नावनीतकम में वात, पित्त, कफ का संतुलित रखने के लिए औषधियों का उल्लेख किया है। उन्होंने त्रिफला, ईलाइची, पुनर्नवा, काटफल और शक्कर को मिलाकर एक ऐसे औषधि का वर्णन किया है जो वात, पित्त, कफ को संतुलित करता है।[18] नावनीतकम घी, तेल, आँखों को औषधि, केश तेल तथा सफेद बाल को काला करने वाले 'खिजाब' बनाने की विधि का भी वर्णन है, जिसमें कछुए के पित्त, लौहचूर्ण, कसीस को बेहड़ा (अरंडी) के तेल के साथ गर्म करने पर एक सोढ़ा रस प्राप्त होता था। जिसको लगाने से बाल काला हो जाता था। नावनीतकम में खिजाब बनाने की विधि का उल्लेख इस प्रकार है[19] -

''तुत्यामुस्तं सकाक्षीसं कूभर्मपित्तमयो रजंती चसहदेवा भागो
भुजगरजष्य च विभीतकाला तैलने सिंद्ध पसितनाशवम
अभ्यंगं सततं कुर्याप्त् पक्षितं न भविष्यति।।''

'नावनीतकम्' में आयुर्वेद से संबंधित बस्तियाँ, एनिमा (मल मार्ग में पेट की गंदगी साफ करने की विधि) का वर्णन है। 'नावनीतकम्' में स्त्री और पुरूषों के यौन रोगों से सम्बन्धित दोषों को समाप्त कने के लिए अलग-अलग औषधियों का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में आँख रोगों से सम्बन्धित 'कज्जली' मलहम के बनाने की विधि का उल्लेख मिलता है कि समान मात्र में गेरू, सीसांजन, मनशिला ओर कॉस्य भस्म और दुगुनी गोलमिर्च मिलाकर आँखों के रोगी के लिए लाभदायक महलम तैयार होते है।[20] नवीनतकम में हृदय रोग, कुष्ट रोगों के ईलाज का भी वर्णन किया है। इसमें लहसून के प्रयोग से होने वाले स्वास्थ्य लाभों का भी वर्णन किया है और लिखा है कि इसके नियंत्रण और नियमित सेवन से मनुष्य सौ साल जी सकता है व निरोग रह सकता है।

इस प्रकार नावनीतकम् में वाजीकरण, रसायन आदि पर विस्तृत चर्चा है। यहां तक कि लहसुन के फायदे-नुकसान पर एक पूरा अध्याय हीं है। गुप्तकाल में वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' लिखा, जिसमें मानव के संभोग क्रिया पर विशद् चर्चा है। वात्स्यायन का एक मार्मिक सूत्र है 'शरीर स्थिति हेतुत्वादाहार सधर्माणो हि कामा:' अर्थात् शरीर की स्थिति बनाये रखने के लिए जिस प्रकार आहार आवश्यक है, उसी प्रकार काम क्रियाऐं।

निकर्ष:- कुल मिलाकर गुप्तकाल में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का भरपूर विकास हुआ। गुप्त शासकों के संरक्षण में धन्वन्तरी, वाग्भट्ट वात्स्यायन आदि आयुर्वेदाचार्य ने चिकित्सा विज्ञान को नई ऊँचाइयों तक ले गया। वराहमिहिर ने वृक्षायुर्वेद के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। यानि गुप्त काल में आयुर्वेद के सभी अंगों (जिसमें पशु चिकित्सा और वृक्षायुर्वेद भी) का भरपूर विकास हुआ। वाग्भट्ट के आषद्यीय ज्ञान का विदेशों में खूब प्रचार हुआ।

संदर्भ सूची ग्रंथ

1. प्रो ईश्वर शरण विश्वकर्मा, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में स्वास्थ्य, पृ० -22
2. अथर्ववेद, 2/24
3. अथर्ववेद, 1/5/1
4. अथर्ववेद, 1/6/3
5. अथर्ववेद 1/6/2 अथर्ववेद 1/5/4, अथर्ववेद 8/7/1
6. अथर्ववेद, 19/2/3
7. कृष्ण मुरारी लाल श्रीवास्तव, भारतीय वैज्ञानिक, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ० 52

8. हिमांशु शेखर, प्राचीन भारत में विज्ञान और तकनीक पृ० 200
9. विद्याधर शुक्ल एवं डॉ रविदत्त त्रिपाठी, आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, पृ० - 66
10. पूर्वोक्त, पृ० 87
11. पूर्वोक्त, पृ० 67
12. कृष्ण मुरारी लाल श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृ० 52
13. पूर्वोक्त, पृ० 52
14. सत्यप्रकाश, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, पृ० 229
15. विल डूरेन्ट, सभ्यता की कहानी, हिन्दी (अनु.) श्रीकान्त व्यास पृ० 116
16. डी पी चट्टोपाध्याय, प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज पृ० 128
17. विल डूरेन्ट, पूर्वोक्त, पृ० 117
18. गुणाकर मूले, भारतीय विज्ञान की कहानी, पृ० 57
19. एस. एन. सेन, पूर्वोक्त, पार्ट-II, पृ० 106-07
20. पूर्वोक्त

कृष्णा सोबती का पुरुष जाति के प्रति दृष्टिकोण

डॉ0 अरविन्द कुमार सिंह

शोध-निर्देषक (हिन्दी विभाग) सहकारी पी0जी0 कॉलेज मिहरावाँ, जौनपुर (उ0प्र0)

राधा सिंह

शोधार्थी (हिन्दी विभाग) सहकारी पी0जी0 कॉलेज, मिहरावाँ, जौनपुर (उ0प्र0)

''अगर हमने स्वयं अर्जित की हुई व्यक्तिगत आजादी को नहीं जिया तो कुढ़नभरी पशोपेश और कुंठाओं की मार से हम आजीवन भद्रलोक स्पेशल भंगिमा ही ओढ़े रहेंगे; अपने धुले धुलायें उजले कपड़ों को बचाने के लिए, आप अपने ही दिल को चीथड़ों में लपेट किसी कूड़े के ढ़ेर में छिपा देंगे और फिर निहायत भोलेपन से उसे दूसरों की अंटी में ढूढ़ते रहेंगे।''[1] सदियों से स्त्री और पुरूष के बीच शिक्त का एक विषम असंतुलन रहा है। जब भी मनुष्य समाज में एक वर्ग की स्वाधीनता और गरिमा घटती है, वहाँ कहीं-न-कहीं उनके क्षय से समाज के किसी दूसरे वर्ग को फायदा पहुँच रहा होता है। हमार समाज जाति, धर्म, परम्परा या कुदरती नियमों में नाम पर हम असंतुलन को कई तरह से जायज ठहराता आया है लेकिन पिछले अध्यायों के गंभीर अध्ययन-स्वरूप हम यह जानते हैं कि यह असंतुलन कुदरती या दैवी कारणों से नहीं उपजा, बल्कि ठोस भौतिक लाभ उठाने के लिए एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के विरूद्ध उपजाया गया है और इसे स्थायी रखने के लिए हर तरह के साम-दाम-दंड-भेद का इस्तेमाल किया जाता रहा है।

इस समाज में स्त्री के प्रति क्रूरता दिखाने को पुरुषों ने 'पुरुषत्व' की संज्ञा दी है और स्त्री को पिटते और दबे रहने को स्त्रीत्व की। स्त्री के प्रति असामाजिक अनाचारों को जायज ठहराने का एक तर्क यह भी दिया जाता है कि स्त्री जैविक रूप से दब्बू है जबकि पुरुष में पाश्विकता प्राकृतिक रूप से होती है। अत: स्त्री पर क्रोध आने से उत्तेजित होने पर पुरुष का हिंसक हो उठना कत्तई स्वाभाविक है। अमेरिका के प्रसिद्ध यौनशास्त्री 'किंसी' ने अपनी विश्व प्रसिद्ध रपट में इस धारणा को पूरी तरह खारिज करते हुए पुरुषों में व्याप्त हिंसक मानसिकता के पूरी तरह गलत सामाजिक धारणाओं और परिवेष की देन बताया। उन्होंने कहा कि, ''यदि हर मादा के पति नर में हिंसा और पाश्विकता कुदरती होती तो ऐसा क्यों है कि संसार के समस्त प्राणियों में स्त्री-हत्या या बलात्कार की घटनाएं सिर्फ मनुष्य जाति में ही होती हैं? स्त्री के प्रति सिफ इसलिए हिंसा है कि वह स्त्री है, यह तेवर मात्र मनुष्य जाति की ही खासियत है। सिंह जाति में तो नर अपने छौनों की देखभाल करता है। हाथियों में अक्सर बलिष्ठ हथिनी पूरे झुण्ड की अधिपति होती है और पर पंगुइन पक्षी अपनी संतान के पालन-पोषण का पूरा बीड़ा उठाते हैं।''[2]

दरअसल अपने धुले धुलायें उजले कपड़ों को बचाने की खातिर हमारे समाज के पुरुष समझदार, आत्म-सजग स्त्रियों के प्रति शीध्र आकृष्ट ही नहीं होते। उन्हें परम्परावादी लज्जा-शील की प्रतिमूर्ति, दबी-ढकी दब्बू स्त्री पत्नी-रूप में चाहिए होती है। यहाँ जो स्त्री लोकप्रिय होगी वह असामाजिक अनाचारों का प्रखर और तुरंत विरोध करने वाली नहीं बल्कि 'सब कुछ' चुपचाप झेलने और अंतत: अपनी 'इज्जत' बचाने के लिए आत्महत्या कर लेने वाली गुणों की पुतली होगी। स्त्री के प्रति इस प्रकार की धारणाएं एक प्रकार के ऐसे मिथक का निर्माण करती हैं जिसके दायरे में कैद होकर स्त्री स्वयं भी मानवीय रहकर ऐसी खासमखास बना दी जाती है जिससे अलग हटकर कोई भूमिका स्वयं उसे ही आश्चर्य में डाल देती है। उसकी सभी संवेदनाएं दिल-दिमाग से न जुड़कर अपने स्त्री होने के विशिष्ट अंगो से जुड़कर रह जाती है। उसके दिमाग और जननांग पर कुंडली मारकर बैठा पुरुष दर्प स्त्री को पूरी तरह अनुत्पादक करार देने के बावजूद उससे उत्पादन मे सहयोग लेता रहता है। इसी क्रम में समाज में उसे शिक्षा, सम्पत्ति और अन्य अधिकारों से भी वंचित होना पड़ा। यदि 'सामन्तवाद' ने उसे 'भोग' में बदल दिया तो पूंजीवाद ने 'उपभोग' या 'माल' में बदल कर रख दिया। उन पर असामाजिक अनाचारों की इंतहा तो तब हुई जब उन्हें यह स्वीकार न हुआ कि उनकी स्त्री के साथ कोई गैर भी संभोग करें। दूसरे की बेटी-बहन को भोगना प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया लेकिन अपनी बेटी और बहन कुनैन की गोली बन गई।

इस भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को हमेशा सुविधा के अनुसार दो खण्डों में बांटकर देखा गया-''कमर से ऊपर की स्त्री और कमर से नीचे की स्त्री। ऊपर की स्त्री तो महिमामयी, करूणामयी, सुंदरता और शील की देवी बनी पर कमर के नीचे वह काम-कंदरा, कुत्सित, अश्लील और ध्वंसकारिणी और राक्षसी बन गई। अर्थात् सब मिलकर वह नरक है। इसी बंटे और दूहरे रवैये से हम उसके शरीर के ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की यात्रायें करते हैं। उसके मातृत्व की भावना को गरिमा देते हैं।''[3]

कृष्णा सोबती के चरित्रों में स्वयं को दो खण्डों में बांटे जाने के अनाचार के विरूद्ध आक्रोष उत्पन्न होता है। वे सहज मानव की तरह उन्मुक्त और पूर्ण जीवन जीने के हिमायती हैं जिसमें पौरुषेय दंभ बाधा बनकर सामने आ खड़ा होता है। इस अमानवीय अनाचार के विरूद्ध सोबती के प्राय: सभी चरित्र अपनी परिस्थितियों से लड़ते हुए कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाते हैं, जिन्हें इस प्रकार देखा जा सकता है-

- क्या समाज में स्त्री जन्म इतना विध्वंसकारी है कि उसे 'मोहरा' देकर (या भ्रूण हत्या द्वारा) मार दिया जाये?
- उसे जीवित हाड़-मांस का प्राणी न मानकर खानदान की पत, मान, मर्यादा जैसे नश्वर प्रतीकों के रूप मंज क्यों अंकित किया जाय?
- योनि-भिन्नता के अतिरिक्त उसकी (सोच, मेधा, शक्ति में) अन्य भिन्नता कहाँ और कैसे है?
- स्त्री-देह अश्लील क्यों है?
- पति की अक्षमता के कारण नैसर्गिक इच्छाएं पूरी न होती हो तो ऐसी समस्या का समाधान क्या और कैसे हो?
- धर्म-कर्म, जप-तप पूजा के सारे कार्य-व्यापारों को जबरन स्त्री ही क्यों वहन करें।
- बलात्कार जैसा दुष्कर्म क्यों हो? हो भी जाये तो समाज इसे षारीरिक दुर्घटना मात्र मानकर सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार क्यों न करें?
- समाज में पुरुष के दिलजोई का साधन 'स्त्री अपने जीवन को सहज और संतुलित करने के लिए इच्छित पुरुष को चुनने की स्वतंत्रता नहीं पा सकती?
- विवाह होते ही पुरुष को पत्नी रूप में 'नि:शुल्क दासी' मिल जाती है तो स्त्री के लिये ऐसे विवाह दासता की जकड़न बनने के बावजूद अनिवार्य क्यों होते हैं?
- घर में एक स्त्री होने के बाद भी पुरुष बाहरी स्त्रियों के साथ 'शेयर' करने को तत्पर रहता है। स्त्री पत्नी या रखैल के रूप में ऐसे अनाचारों को सहने के लिए विवश क्यों है?
- मार-पिटाई स्त्रियों की ही नियति क्यों है? कुल की सरदारी बेटों को ही क्यों जाती है?

इत्यादि ज्वलंत प्रश्नों को मन में कुलबुलाता न छोड़ सोबती के चरित्र मुखरता से इनका प्रतिवाद और समाधान दोनो चाहते हैं। इनके प्राय: सभी चरित्र हालांकि परम्परावादी मध्यमवर्गीय परिवार से ही सम्बन्ध रखते हैं लेकिन समाज की दोरंगी नीतियों को समझने में गफलत नहीं करते। अब तक स्त्री 'भली' बनी सदियों से सामाजिक अनाचार सहती आई है अब उनका आक्रोश स्त्री-चेतना का आवेग बन उमड़ पड़ता है। अब उन्हें चिंता नहीं कि समाज उन्हें बुरी या बदजात कहेगा क्योंकि वे जान गई हैं कि अब तक इन्हीं गीदड़ भभकियों से वह उसे डराता, दबाता और कुचलता आया है-''मैं स्वयं को 'नष्ट' कहना पसंद करती हूँ क्योंकि यह सच है कि यदि कोई स्त्री अपने दुख, दैन्य, दुर्दशा को दूर करना चाहता है, धर्म, समाज और राष्ट्र के अभद्र नियमों के खिलाफ डटकर खड़ी होना चाहती है, हेय ठहराने वाली सभी प्रथाओं, व्यवस्थाओं का विरोध करके अपने अधिकारों के प्रति सगज होने लगती है तो समाज के भद्रपुरुष उसे नष्ट लड़की करार कर देते हैं। ठीक भी है। स्त्री के 'मुक्त' होने की पहली शर्त ही है नष्ट होना। 'नष्ट' हुए बिना इस समाज के नागपाश से किसी भी स्त्री को मुक्ति नहीं मिल सकती। वही स्त्री सचमुच सुखी और प्रबुद्ध सम्पन्न हैं, जिसे लोग नष्ट अथवा बदनाम करते हैं।''[4]

पुरुषवादी समाज के बनाये गये नैतिक मापदंडो के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाता है जिसमें पुरुष के लिए अलग निर्धारक तत्व हैं तो स्त्री के लिए अलग। इसीलिये कई बार जीवन की सार्थकता के लिये सामाजिक आचारों की थोथी दीवारों को लांघना अनिवार्य हो जाता है। अनेक समाजवादियों और 'पॉपर', ने भी इस बात को स्वीकार है कि सामाजिक परिवर्तन में आस्था और विश्वास विकास की पूर्व दशा है तथा सामाजिक स्थिरता से चिपके रहना विकास को रोक देना है।

चूँकि समाज पुरुष सत्ता प्रधान है अत: कर्त्ता पुरुष इस परिवर्तन की स्थिति को कत्तई नहीं स्वीकार करता। स्त्रियों की स्थिति आज भी जसकी तस बनी रहने के पीछे यह एक ठोस कारण है। इसी परिप्रेक्ष्य में सोबती के प्राय: सभी चरित्र हार नहीं मानते और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अपना योगदान देते हैं। अपने लिए अपेक्षाकत अधिक उन्मुक्त, सहज और कुंठारहित समाज की कल्पना करते हुए वे जीवन को सार्थकता की हदों तक ले जाना चाहते हैं। चाहे इसके लिए दुनिया उन्हें नष्ट या बुरी उपमाओं से ही नवाजती रहे वे इसकी परवाह नहीं दीखती।

'डार से बिछुड़ी' की पाशों 'कुलनासनी है, क्यों उसकी माँ ने मनमर्जी से अपना विवाह किया है। 'मित्रों मरजानी' मुंह खोल खोलकर अपनी दैहिक जरूरतों की बात करती है इसलिये वह 'मरजानी' है। रत्ती पर तो बलात्कार हुआ है वह 'बहिष्कृत' है। महक 'रखैल' है। अर्थात् ये सभी चरित्र नष्टप्राय: है। इनका दोष सिर्फ इतना है कि ये अमानवीय अनाचारों के प्रति चीख-चीख कर अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं और ऐसी स्त्रियों में समाज के संस्थागत मूल्य कहर बनकर उन पर टूट पड़ते हैं। समाज की जघन्य क्रूरताओं के विरूद्ध ये चरित्र अपना रजीवन बचाने को कैसे बार-बार संघर्षरत होते हैं।

सन्दर्भ-

1. कृष्णा सोबती, 'सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1989, पृ. 401
2. मृणाल पांडे, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1987, पृ. 66
3. राजेन्द्र यादव, कांटे की बात, तीसरा भाग, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 140
4. तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की नष्ट गद्य, अनुवपाद मुनमुन सरकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ. दो शब्द।
5. कृष्णा सोबती, 'डार से बिछुड़ी' (उपन्यास) राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 1984, पृ. 46

सामाजिक न्याय में पंचायतीराज की भूमिका

चन्दन प्रकाश

पीएचडी स्कोलर, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश

भारत का संविधान अपने शानदार सामाजिक सिद्धांत के लिए सबसे अधिक जाना जाता है, जो भव्य प्रस्तावना के साथ शुरू होता है जो देश के सभी लोगों को स्वतंत्रता, समानता, न्याय और भाईचारे जैसे मुख्य सिद्धांतों की गारंटी देता है। ये अभिव्यक्तियाँ एक अनकही प्रतिज्ञा का संकेत देती हैं कि हर कोई एक-दूसरे के प्रति न्याय करेगा, विशेष रूप से सामान्य आदमी के लिए - सड़क पर और खेत में रहने वाले व्यक्ति के लिए, बैल गाड़ी के चालक के लिए और अन्य दबाए गए और उपेक्षित वर्गों के लिए। यही कारण था कि संस्थापक पिता ने न्याय को स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे पर प्राथमिकता दी थी; फिर से सामाजिक न्याय को आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर प्राथमिकता दी गई थी। अन्यथा प्रस्तावना में अभिव्यक्ति - ष्हम भारत के लोग ... अपने लिए इस संविधान को देते हैंष अपना अर्थ और महत्व खो देती है, जैसे कि अनुच्छेद 38 में वादा - (राज्य) लोगों की भलाई को बढ़ावा देने के लिए प्रयास करेगा, एक सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए, जिसमें न्याय - सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी राष्ट्रीय जीवन के संस्थानों को सूचित करेगा। इस प्रकार, सामाजिक न्याय को एक व्यापक अर्थ में गहराई से प्रवेश करना चाहिए और इसके सबसे विस्तृत स्पेक्ट्रम में सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में समाहित होना चाहिए, जिसमें कलंकित अछूतता और तथाकथित पिछड़े वर्गों के सदस्य शामिल हैं। सामाजिक न्याय की अवधारणा को सभी असमानताओं को समाप्त करने और सामाजिक और आर्थिक मामलों में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करने के उद्देश्य को अपने दायरे में लेना चाहिए। हमारा देश एक उपयोगितावादी राज्य नहीं है, बल्कि एक लोकतांत्रिक गणराज्य है जो कल्याणवाद के प्रति प्रतिबद्ध है। उपरोक्त वर्णित समस्याएँ, जो नागरिकों की अत्यधिक बड़ी संख्या को प्रभावित करती हैं, को सफलतापूर्वक हल नहीं किया जा सकता जब तक कि राज्य अपने सबसे प्रभावी सुधारात्मक उपकरणों का उपयोग न करे, जो सामाजिक-आर्थिक और सामाजिक-वैधानिक साधनों के खिलाफ आवश्यक रूप से एक कुल सुधार की मांग करता है ताकि आर्थिक संरचना को संतुलित किया जा सके और इस प्रकार राजनीतिक शरीर को तनाव से मुक्त किया जा सके। इस प्रक्रिया में, भारत के लोकतांत्रिक गणराज्य में सामाजिक न्याय का नया युग निश्चित रूप से शुरू हो सकता है, जब हमारी स्थिति लोकतंत्र के जमीनी स्तर पर परिचय के लिए अनुकूल हो, अर्थात, पंचायत राज संस्थाओं (पीआरआई) का निर्माण जो संविधान के अनुच्छेद 40 में निहित है। यह मूल विश्वास है कि ग्राम पंचायतें सामाजिक परिवर्तन और विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। इस पत्र में, यह प्रयास किया गया है कि ग्राम पंचायत ने महिलाओं के सशक्तिकरण को प्राप्त करने में कितना योगदान दिया।

परिचय

मानव विकास के इतिहास में, महिला उतनी ही महत्वपूर्ण रही है जितनी कि पुरुष। वास्तव में, समाज में महिलाओं की स्थिति, रोजगार और कार्य एक राष्ट्र की समग्र प्रगति का संकेतक हैं। राष्ट्रीय गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी के बिना, किसी देश की सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक प्रगति ठप हो जाएगी। यह सच है कि अधिकांश महिलाओं की घरेलू भूमिका आर्थिक गतिविधियों के साथ जुड़ी हुई है और अपने कौशल और श्रम का उपयोग करके परिवार के लिए अतिरिक्त आय अर्जित करती हैं, जिससे परिवार एक सम्मानजनक जीवन जी सकता है। महिलाओं को समाज की ष्बेहतर आधीष माना जाता है और पुरुषों के बराबर।[1] यह समझने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं कि महिलाएं पुरुषों के जीवन में असली ष्बेहतर आधीष हैं। वे जिम्मेदारियों का भरपूर हिस्सा साझा करती हैं और परिवार चलाने, घरेलू गतिविधियों जैसे पालन-पोषण, भोजन देना, कृषि श्रम में सहायता करना, घरेलू जानवरों की देखभाल करना आदि में एक विस्तृत स्पेक्ट्रम के कर्तव्यों का पालन करती हैं, और अब सबसे महत्वपूर्ण भूमिका जो महिलाओं को अधिक जिम्मेदारी से निभानी है, वह है राजनीति में उनकी सक्रिय भागीदारी। महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण उसकी प्राथमिकताओं में से एक होना चाहिए और सरकारों तथा समाज को इस दिशा में कदम उठाने चाहिए ताकि महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में भाग ले सकें। इसके लिए, स्थानीय स्व-शासन में भागीदारी प्रारंभिक कदम प्रदान करती है क्योंकि ये ग्रामीण लोगों के करीब होती हैं। पंचायत राज संस्थाओं को हमेशा अच्छे शासन के एक साधन के रूप में माना गया है और 73वां संविधान संशोधन इस उम्मीद में लागू किया गया था कि यह बेहतर शासन की ओर ले जाएगा और समाज के वंचित वर्गों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं को राजनीतिक स्थान प्रदान करेगा। पंचायत राज संस्थाएं, जो विकेंद्रीकृत लोकतांत्रिक स्व-शासन की जड़ स्तर की इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं, ग्रामीण भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के एक उपकरण के रूप में मानी जाती हैं। स्थानीय स्तर पर 1992 का 73वां संविधान संशोधन अधिनियम महिलाओं की निर्णय लेने और विकास की योजना बनाने में भागीदारी के लिए दो महत्वपूर्ण प्रावधानों को लागू करता है। इस संशोधन ने यह प्रावधान किया है कि कम से कम एक तिहाई महिलाएं पंचायतों की सदस्य और अध्यक्ष होंगी। जमीनी स्तर पर लोगों की भागीदारी सामाजिक-आर्थिक विकास लाने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।[2] पंचायतों को शक्ति का विकेंद्रीकरण लोगों को सशक्त बनाने और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करने के एक साधन

के रूप में देखा जाता है। स्थानीय सरकारें लोगों के करीब होने के कारण स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकती हैं और संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सकती हैं। किसी देश में लोकतांत्रिक प्रणाली को केवल तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब शासन में जन भागीदारी हो। इसलिए, इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की एक प्रणाली जिसे पंचायत राज के नाम से जाना जाता है, को पेश किया गया है।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर का मानना था कि गाँव भारत की प्रगति में बाधा डालते हैं, और ये उत्पीड़न का स्रोत हैं। उन्होंने पंचायतों के खिलाफ तर्क दिया क्योंकि उन्हें जाति हिंदुओं की प्रभुत्वता के जारी रहने की चिंता थी। इसके अलावा, उन्होंने यह भी कहा कि भारत के गाँव जाति के बंधनों में जकड़े हुए हैं और आत्म-शासन के संस्थानों के रूप में सफल होने की संभावनाएँ बहुत कम हैं। उनका हिंदू कोड बिल समाज में समानता और न्याय लाने का एक विचार था, जिसमें महिलाओं को समान संपत्ति के अधिकार देकर उन्हें स्वतंत्रता प्रदान की जानी थी। उन्होंने यह माना कि भारत में दलितों की मुक्ति केवल शिक्षा, आंदोलन और संगठन के तीन-तरफा दृष्टिकोण के माध्यम से संभव है। उन्हें मुख्य रूप से एक समानतावादी और सामाजिक सुधारक के रूप में देखा गया, न कि एक राष्ट्रवादी के रूप में। 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन अधिनियमों के संदर्भ में, हम उनकी इस राय को याद कर सकते हैं कि "उपाय एक समानतावादी और वास्तव में लोकतांत्रिक पंचायत राज प्रणाली का निर्माण करने में निहित है।" उन्होंने सभी पिछड़े वर्गों को ग्रामीण शासन में शामिल करने के लिए पंचायतों में आरक्षण प्रदान करने के लिए भी संघर्ष किया। विकेंद्रीकरण (स्वशासन) के संबंध में अंबेडकर ने कहा- "जब तक मैं संतुष्ट नहीं हो जाता कि हर स्वशासी संस्था में ऐसे प्रावधान हैं जो पिछड़े वर्गों को उनके अधिकारों की रक्षा के लिए विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं, तब तक मुझे डर है कि मैं विधेयक के पहले भाग पर सहमति देने में असमर्थ रहूंगा।" अब, अंबेडकर विचारधारा की चिंता को वर्तमान संदर्भ में पुनः देखने का समय आ गया है।[3]

चर्चा

पंचायती राज में सामाजिक न्याय ने संविधान के तिहत्तरवें संशोधन (अधिनियम), 1992 के प्रकाश में एक प्रमुख दिशा परिवर्तन किया है। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में, सभी आयामों में सामाजिक न्याय, अर्थात्, निष्पक्षता, अधिकार, समानता, और निष्पक्षता को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के माध्यम से लागू किया गया है। मानव अधिकारों के संरक्षण और कार्यात्मक लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए, यह अध्ययन राजनीतिक पुनर्गठन की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है और विकास के नए पैराजाइम में संस्थागत परिवर्तनों की जांच करता है। नीति-निर्माण और नीति-कार्यन्वयन के बीच के अंतर को जानने के लिए, नए पंचायती राज अधिनियम की परिचालन गतिशीलता का अध्ययन किया गया है। इसके अलावा, वितरणात्मक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, कमजोर वर्गों के पक्ष में शक्ति हस्तांतरण को पुनर्जीवित करने के लिए संरचनात्मक और संदर्भात्मक कारकों का पालन करना आवश्यक है। एक सशक्त लोकतांत्रिक सरकार की आधारभूत संरचना को विकसित करने के लिए, सामाजिक विकास के समर्थन से, एक नए लोकतांत्रिक शासन और शासित प्रणाली का पुनः आविष्कार करना आवश्यक है। गरीबी उन्मूलन के लिए सड़क स्तर के नौकरशाहों और स्थानीय राजनीतिक कार्यकारियों की भूमिका का प्रदर्शन एक एकीकृत विकेन्द्रीकृत प्रशासन प्रणाली के डिजाइन के उद्देश्य से जांचा गया है। यह अध्ययन प्रभावी विकास और पंचायत राज संस्थानों के प्रबंधन के लिए नए उपायों का सुझाव भी देता है। नीति निर्माता, योजनाकार और प्रशासक वर्तमान अध्ययन को अत्यधिक मूल्यवान पाएंगे।

पंचायते भारतीय गाँवों की रीढ़ की हड्डी रही हैं, जब से लिखित इतिहास की शुरुआत हुई है। गांधीजी का सपना था कि हर गाँव एक गणतंत्र हो या पंचायते शक्तियों से संपन्न हों, जिसे तीन-स्तरीय पंचायती राज प्रणाली के माध्यम से वास्तविकता में बदला गया है, ताकि ग्रामीण पुनर्निर्माण में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।

24 अप्रैल, 1993 भारत के पंचायती राज के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिन था क्योंकि इस दिन संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 लागू हुआ जिससे पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।

1. सभी राज्यों के लिए 20 लाख से अधिक जनसंख्या वाले पंचायती राज की तीन-स्तरीय प्रणाली प्रदान करना।
2. हर 5 वर्ष में नियमित रूप से पंचायत चुनाव कराना।
3. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण प्रदान करना (कम से कम 33 प्रतिशत)।
4. पंचायतों के वित्तीय अधिकारों के संबंध में सिफारिशें करने के लिए राज्य वित्त आयोगों की नियुक्ति करना।
5. जिले के समग्र विकास योजना का मसौदा तैयार करने के लिए जिला योजना समितियों का गठन करना।

संविधान के अनुसार, पंचायतों को स्व-शासन के संस्थानों के रूप में कार्य करने के लिए शक्तियाँ और अधिकार दिए जाएंगे।

73वें संविधान संशोधन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह आरक्षण की मदद से समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के बीच सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय को सुविधाजनक बनाता है। यह वास्तव में एक समानता आधारित समाज के विकास की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। आरक्षण पंचायत राज संस्थाओं को अधिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। ग्रामीण समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता है और स्थानीय संस्थाएं अधिक लोकतांत्रिक प्रतीत होती हैं। आरक्षण ने न केवल इन वंचित समूहों को शासक वर्ग में प्रवेश करने का अवसर दिया है, बल्कि उन्हें गरिमामय जीवन सुनिश्चित किया है। वे धीरे-धीरे नेतृत्व क्षमताओं का विकास कर रहे हैं, जो SCs, STs, OBCs और महिलाओं के लिए उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित करेगा।[4]

73वें संविधान संशोधन के कार्यान्वयन के साथ, महिलाएं पंचायत राज निकायों की बैठकों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं और उनके विचारों को उनके गांवों के विकास के लिए नीति निर्माण प्रक्रिया में उचित महत्व दिया जा रहा है। महिलाएं अपने घरों से बाहर आ रही हैं, चुनावों के लिए प्रचार कर रही हैं, और अपने पक्ष में वोट मांग रही हैं। आरक्षण ने निश्चित रूप से समाज में दलितों और महिलाओं की स्थिति और स्थान में सुधार करने में मदद की है।

परिणाम

पंचायती राज प्रणाली को सबसे पहले 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में अपनाया गया। दूसरा राज्य आंध्र प्रदेश था, जबकि महाराष्ट्र नौवां राज्य था। यह प्रणाली 1950 और 60 के दशक में राज्य सरकारों द्वारा अपनाई गई, जब विभिन्न राज्यों में पंचायतों की स्थापना के लिए कानून पारित किए गए। इसे भारतीय संविधान में भी समर्थन मिला, 1992 में 73वें संशोधन के साथ इस विचार को समायोजित करने के लिए। 1992 का संशोधन अधिनियम पंचायतों को शक्तियों और जिम्मेदारियों के हस्तांतरण के लिए प्रावधानों को शामिल करता है, आर्थिक विकास योजनाओं की तैयारी, सामाजिक न्याय और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध 29 विषयों के संबंध में कार्यान्वयन के लिए। बालवंत राय मेहता समिति एक समिति थी जिसे भारत सरकार द्वारा जनवरी 1957 में नियुक्त किया गया था ताकि सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) के कार्यान्वयन की जांच की जा सके। इस अधिनियम का उद्देश्य उन सभी राज्यों के लिए तीन स्तरीय पंचायत राज प्रणाली प्रदान करना है जिनकी जनसंख्या दो मिलियन से अधिक है, हर पांच साल में नियमित रूप से पंचायत चुनाव आयोजित करना, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण प्रदान करना; पंचायतों के वित्तीय अधिकारों के संबंध में सिफारिशें करने के लिए एक राज्य वित्त आयोग की नियुक्ति करना और जिले के विकास योजना मसौदे को तैयार करने के लिए एक जिला योजना समिति का गठन करना।

एक ब्लॉक पंचायत (पंचायत समिति) भारत में तहसील या तालुका स्तर पर एक स्थानीय सरकारी निकाय है। यह निकाय उन गांवों के लिए कार्य करता है जो मिलकर एक विकास ब्लॉक कहलाते हैं। पंचायत समिति ग्राम पंचायत और जिला प्रशासन के बीच का लिंक है। विभिन्न राज्यों में इस संस्था के कई रूप हैं। इसे आंध्र प्रदेश में मंडल प्रजा परिषद, गुजरात में तालुका पंचायत, कर्नाटक में मंडल पंचायत, महाराष्ट्र में पंचायत समिति आदि के नाम से जाना जाता है। सामान्यत:, ब्लॉक पंचायत पंचायती राज का एक रूप है लेकिन उच्च स्तर पर। निर्वाचन क्षेत्र में पूर्व-आधिकारिक सदस्य शामिल होते हैं (पंचायत समिति क्षेत्र के सभी सरपंच, क्षेत्र के सांसद और विधायक तथा उपखंड के एसडीओ), सह-चयनित सदस्य (एससी/एसटी और महिलाओं के प्रतिनिधि), सहयोगी सदस्य (क्षेत्र का एक किसान, सहकारी समितियों का एक प्रतिनिधि और विपणन सेवाओं में से एक), और कुछ निर्वाचित सदस्य। समिति का चुनाव पांच वर्षों के लिए होता है और इसका नेतृत्व अध्यक्ष और उपाध्यक्ष करते हैं।

पंचायती राज संस्थाएँ (पीआरआई), जिनके माध्यम से गाँवों की आत्म-शासन की व्यवस्था को साकार किया जाता है, को ष्आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय को सुदृढ़ करना और केंद्रीय तथा राज्य सरकार की योजनाओं को जमीनी स्तर पर लागू करनेष् का कार्य सौंपा गया है।

आधुनिक पंचायत राज प्रणाली को औपचारिक रूप से स्थापित किया गया और भारत में अप्रैल 1999 में संविधान के 73वें संशोधन के रूप में पेश किया गया।[5]

इस प्रणाली के तहत, 'सशक्त स्थानीय सरकार' का एक संस्थान स्थापित किया जाता है जिसमें कार्यों, निधियों और कार्यकर्ताओं (3Fs) का विकेंद्रीकरण किया जाता है ताकि लोगों को केवल आवाज ही नहीं, बल्कि चुनाव की शक्ति भी मिल सके। पंचायती राज का सार्थकता भागीदारी आधारित स्थानीय शासन है जिसमें विकास प्रक्रिया में नीचे से ऊपर की ओर इनपुट शामिल होते हैं। यह एक व्यापक रणनीति का हिस्सा है जो नए दृष्टिकोणों से भागीदारी विकास को देखने और लागू करने के लिए है, जिसमें शासन में 'समावेश' के नए मानदंड को ध्यान में रखा गया है।

पंचायती राज ने लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्णता ग्रहण की है ताकि लोगों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके, जो समान विकास और सामाजिक सशक्तिकरण को पारदर्शी और जवाबदेह तरीके से बढ़ावा देती है।

जबकि भारत भर के लोग स्थानीय प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार का आनंद ले रहे थे, वही स्वतंत्रता जम्मू और कश्मीर में नहीं दी गई। यह केवल अनुच्छेद 370 के निरसन के बाद हुआ, जब संघ मंत्रिमंडल ने 21 अक्टूबर 2020 को जम्मू और कश्मीर पंचायती राज अधिनियम 1989 को अपनाने की मंजूरी दी, जिससे संघ क्षेत्र में स्थानीय निकाय चुनावों का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसने स्वतंत्रता के बाद पहली बार जम्मू और कश्मीर के संघ क्षेत्र में जमीनी स्तर की लोकतंत्र के सभी तीन स्तरों की स्थापना सुनिश्चित की।[6]

जमीनी लोकतंत्र को मजबूत करने की दिशा में एक नई प्रेरणा के तहत, केंद्र शासित प्रदेश में स्वतंत्र, निष्पक्ष और शांतिपूर्ण पंचायत चुनाव आयोजित किए गए, जिससे यहाँ जीवंत पंचायत राज संस्थाओं का गठन हुआ। एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में, इन पंचायत चुनावों में 74.1 प्रतिशत मतदाता भागीदारी दर्ज की गई। कुल 3650 सरपंचों और 23660 पंचों का चुनाव किया गया, जिससे जम्मू और कश्मीर में पहली बार 3-स्तरीय पंचायत राज प्रणाली की नींव रखी गई।

पंचायत चुनावों के सफल आयोजन के बाद, ब्लॉक विकास परिषदों (बीडीसी) के चुनाव जम्मू और कश्मीर के इतिहास में पहली बार आयोजित किए गए। बीडीसी चुनावों में 98.3 प्रतिशत की असाधारण मतदाता भागीदारी देखी गई, जिसमें 276 अध्यक्षों का चुनाव पूरी पारदर्शिता के साथ किया गया।

अंतत:, जिला विकास परिषद के चुनाव 8 चरणों में आयोजित किए गए, जिसमें 51.7 प्रतिशत की शानदार मतदाता भागीदारी देखी गई। इस प्रक्रिया में 20 क्क्ब अध्यक्ष और 20 उपाध्यक्ष का चुनाव किया गया, इसके अलावा कुल 278 DDC सदस्यों का भी चुनाव किया गया, इस प्रकार 3-स्तरीय पंचायत राज प्रणाली के पूर्ण रूप में कार्यान्वयन को पूरा किया गया।

पंचायती राज अधिनियम 1989 में संशोधन के बाद, 73वें संशोधन के तहत संविधान के अंतर्गत 27 विषयों का हस्तांतरण किया गया।[7]

जम्मू और कश्मीर में तीन स्तरीय पंचायत राज प्रणाली की स्थापना के बाद, 1727.50 करोड़ रुपये MGNREGA, मध्याह्न भोजन योजना और ICDS के तहत वितरित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, 1889 पंचायत खाता सहायक और 317 पंचायत सचिवों की भर्ती की गई है, इसके अलावा पंचायतों को सामाजिक ऑडिट और शिकायत निवारण करने के लिए सशक्त किया गया है।[8]

PRI प्रतिनिधियों के कौशल और दक्षता को और बढ़ाने के प्रयास में, सरपंचों और पंचों के लिए IMPARD जैसे प्रतिष्ठित प्रशिक्षण संस्थानों और अन्य संस्थानों में कई क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। इसके अलावा, नए चुने गए BDC अध्यक्षों के लिए प्रारंभिक पाठ्यक्रम, डिजिटल साक्षरता प्रशिक्षण, ग्राम पंचायत विकास योजना प्रशिक्षण और प्रशिक्षण कार्यशालाएँ आयोजित की गई हैं। लगभग 750 चुने हुए प्रतिनिधियों को UT के बाहर प्रशिक्षण और अनुभव यात्रा प्रदान की गई है।[9]

आजादी के बाद पहली बार, निर्वाचित जमीनी प्रतिनिधियों को स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने के लिए औपचारिक प्रोटोकॉल दिया गया। निर्वाचित प्रतिनिधियों को मानदेय और वरीयता क्रम में औपचारिक स्थान दिया जा रहा है और जिला अधिकारियों और पंचायत प्रतिनिधियों के बीच नियमित संवाद की व्यवस्था को संस्थागत रूप दिया गया है।

प्रशासन ने उपराज्यपाल मनोज सिन्हा की अध्यक्षता में ऐतिहासिक शजिला स्तर की योजना प्रक्रियाश बैठक का आयोजन किया, जिसमें सभी DDC अध्यक्ष और सदस्य उपस्थित थे।

इसके अलावा, एक प्रोत्साहक कदम के रूप में, पंचायतों के लिए योजना आवंटन को 2020-21 में 5136 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2021-22 में 12600 करोड़ रुपये कर दिया गया है। योजना प्रक्रिया संविधान के अनुसार पूरी की गई है। इसके अलावा, सभी पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए 25 लाख रुपये का बीमा कवरेज भी प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय ग्राम स्वराज अभियान (RGSA) के तहत, लगभग 195 पंचायत घरों का निर्माण किया गया है, जिनमें से 36 का अब तक पूरा किया गया है। इसी तरह, लगभग 160 पंचायत घरों का नवीनीकरण किया गया है, जिनमें से 105 पूरे हो चुके हैं। इसके अलावा, 1131 पंचायतों में सौर प्रणाली की स्थापना की गई है और 3973 पंचायतों को कंप्यूटर और सहायक उपकरणों की खरीद के लिए धन प्रदान किया गया है।[10]

जम्मू और कश्मीर पंचायती राज अधिनियम का कार्यान्वयन लोगों को सशक्त बनाने का उद्देश्य रखता है, जिससे वे संघ शासित प्रदेश में अपने प्रतिनिधियों का चुनाव कर सकें, जो जिले के विकास की योजना बनाएंगे और कल्याणकारी उपायों को लागू करेंगे। यह बहुस्तरीय संस्थागत शासन मॉडल विभिन्न क्षेत्रों और उप-क्षेत्रों की आवश्यकताओं को भी पूरा करेगा और जनता को वंचना और अविकास की भावनाओं से बचाएगा।

निष्कर्ष

पंचायती राज अधिनियम की आवश्यकता थी ताकि पीआरआई के कार्यों को सुव्यवस्थित किया जा सके, जो पंचायत चुनावों के आयोजन में लंबे विलंब, पंचायत निकायों के बार-बार निलंबन / अधिस्थगन / विघटन, कार्यात्मक और वित्तीय स्वायत्तता की कमी, हाशिए पर और कमजोर वर्गों का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व और मामूली, अस्थायी और बंधित सरकारी अनुदानों से चिह्नित थे। इससे पंचायतों के कार्यों में बाधा आई और उन्हें संविधान में परिकल्पित स्थानीय स्वशासन के संस्थानों के रूप में कार्य करने की अनुमति नहीं मिली।

इस प्रकार, पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और अधिकार दिए गए हैं जो स्व-शासन और सामाजिक न्याय के संस्थानों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं। गाँव स्तर पर वास्तविक कार्यात्मक स्वायत्तता प्रदान करना संशोधन अधिनियम का मूल है।

संदर्भ

[1] मिश्रा, एस. एन. (1986). पंचायत राज, ब्यूरोक्रेसी और ग्रामीण विकास, नई दिल्ली: भारतीय लोक प्रशासन संस्थान प्रकाशन।

[2] डांगगेन, बी. (2012). स्वतंत्र परिषदों और अरुणाचल प्रदेश के पंचायत राज के प्रकाश में स्थानीय स्व-सरकार के लिए तार्किक दृष्टिकोण, ईटानगर: प्रीती प्रकाशक और वितरक।

[3] दुबे, एस. (2005). अरुणाचल प्रदेश में आदिवासी स्थानीय राजनीति और पंचायत राज का गतिशीलता, नई दिल्ली: प्रीमियर प्रकाशन।

[4] एलविन, वी. (1965). NEFA में लोकतंत्र। ईटानगर: अनुसंधान निदेशालय, अरुणाचल प्रदेश

[5] अरुणाचल प्रदेश पंचायत राज मैनुअल, 2002, पृष्ठ 3।

[6] डांगगेन, उपरोक्त, पृष्ठ 193।

[7] अरुणाचल प्रदेश पंचायत राज मैनुअल, उपरोक्त, पृष्ठ 30।

[8] असलम, ए. (2007). भारत में पंचायत राज, नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक ट्रस्ट प्रकाशन, पृष्ठ 55।

[9] अरुणाचल प्रदेश पंचायत राज मैनुअल, उपरोक्त, पृष्ठ 162।

[10] ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, मास्टर सर्कुलर (वित्तीय वर्ष 2016-2017) कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए मार्गदर्शन, पृष्ठ 9।

उत्तराखण्ड में स्वतंत्रता संग्राम : सविनय अवज्ञा से भारत छोड़ो आंदोलन तक (अल्मोड़ा के सौला-सिलोर के सम्बन्ध में)

ललित प्रसाद

शोधार्थी, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (अल्मोड़ा)

डॉ० पंकज प्रियदर्शी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (अल्मोड़ा)

स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास देश के असंख्य अमर सेनानियों की कुर्बानी से भरा पड़ा है। ब्रिटिश साम्राज्य के फौलादी पंजों से जकड़ी भारत माता की दासता की बेड़ियों को छुड़ाने के लिए कुमाऊँ के अनेक वीर सपूतों का भी इस संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1915 ई. के बाद गाँधी जी के नेतृत्व में आजादी के दीवानों ने उस दौर में चलाये गये हर आंदोलन के शंखनाद को बुलंद किया, चाहे वह कुली बेगार आंदोलन रहा हो, सविनय अवज्ञा अथवा नमक कानून भंग करने का आंदोलन हो या व्यक्तिगत सत्याग्रह का आंदोलन हो। उत्तराखण्ड के कई वीर सपूतों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। उत्तराखण्ड के कई युवा, राष्ट्रीय नेताओं के पदचिन्हों को अपनाकर देश की आजादी के संग्राम में शामिल हुए। प्रेम विद्यालय की स्थापना और गांधी व नेहरू जैसा स्वतंत्रता के अग्रणी नेताओं की अल्मोड़ा यात्रा ने स्वतंत्रता संग्राम में एक नई ऊर्जा का संचार किया। गाँधी जी के उत्तराखण्ड ताड़ीखेत में आगमन के बाद इस क्षेत्र में स्वतंत्रता संग्राम के प्रति एक नई लहर दौड़ गई।[1] रानीखेत से 32 किलोमीटर दूर स्थित सौला-सिलोर गाँव के प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी मथुरादत्त भट्ट, मनोहर भट्ट और कई अन्य ने भी स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रुप से प्रतिभाग किया।

सन् 1901 में सौला, रानीखेत में नंद राम भट्ट के यहाँ जन्मे मथुरादत्त भट्ट जी अहिंसात्मक सत्याग्रह के एक निर्भीक स्वतंत्रता सेनानी थे। वे गांधी जी के सत्याग्रह हेतु चुने जाने वाले कुछ विरले व्यक्तियों में से एक थे। सन् 1932 में इन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया और गिरफ्तार हुए। उन्हें दण्ड स्वरूप 4 माह कारावास की सजा तथा 200 रुपया अर्थदण्ड लिया गया।[2]

मथुरादत्त भट्ट एक बार पुनः व्यक्तिगत सत्याग्रह में योगदान दिया और वह फरार हो गए। अंग्रेज सरकार द्वारा इन्हें पकड़ने या इनकी सूचना देने वाले व्यक्ति को 500 रुपया ईनाम देने की घोषणा की। दिनांक 1 सितम्बर, 1941 को गुड़गाँव पंजाब से इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली सरकार के आदेशानुसार इन्हें 2 वर्ष की कठोर कारावास की सजा तथा 100 रुपया अर्थदण्ड न देने पर छः माह और कठोर कारावास की सजा हुई।[3] साथ ही सौला के मनोहर दत्त भट्ट ने भी व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया। मनोहर दत्त भट्ट सत्याग्रह के अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी थे तथा वह उन कुछ प्रारम्भिक व्यक्तियों में से एक थे जो कुमाऊँ में व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए चुने गए थे। इनके पिता का नाम भवानीदत्त भट्ट था। सन् 1941 में सत्याग्रह करते हुए इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तथा इन पर मुकदमा दर्ज किया गया। मुकदमे के फैसले में इन्हें दण्ड स्वरूप आठ माह कठोर कारावास की सजा व 15 रुपया अर्थदण्ड देने को कहा गया। अर्थदण्ड न देने पर दो माह और कठोर कारावास की सजा हुई।[4]

सौला के अम्बादत्त भट्ट अहिंसात्मक सत्याग्रह के अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी थे। इनके पिता का नाम कृष्णानन्द भट्ट था। इन्होंने सन् 1941 में गांधी जी द्वारा चलाए गए अहिंसात्मक सत्याग्रह में योगदान दिया। सत्याग्रह करते हुए इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तथा इन पर मुकदमा दर्ज किया गया। मुकदमे का फैसला करते हुए इन्हें दण्ड स्वरूप दस माह के कारावास की सजा तथा 30 रुपया अर्थदण्ड ने देने पर दस सप्ताह और कठोर कारावास की सजा हुई।[5]

सौला के चंद्रमणि भट्ट भी अहिंसात्मक सत्याग्रह के अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी थे। इनके पिता का नाम शिवदत्त भट्ट था। इन्होंने सन् 1941 में गांधी जी द्वारा चलाए गए अहिंसात्मक सत्याग्रह में योगदान दिया। सत्याग्रह करते हुए इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तथा इन पर मुकदमा दर्ज किया गया। मुकदमे का फैसला करते हुए इन्हें दण्ड स्वरूप दस माह कठोर कारावास की सजा तथा 30 रुपया अर्थदण्ड ने देने पर ढाई माह और कठोर कारावास की सजा हुई।[6]

व्यक्तिगत सत्याग्रह में अत्यधिक लोगों की गिरफ्तारी के कारण कई सत्याग्रहियों को अन्य जेलों में स्थानांतरित किया गया था। अल्मोड़ा से कुछ सत्याग्रहियों को बदायूँ जेल में भेजा गया। अल्मोड़ा के कैदियों को बदायूँ जेल के बैरक नङ्क छः में रखा गया था, जहाँ अन्य राजनैतिक कैदियों को भी रखा गया था। बदायूँ जेल में इस समय अल्मोड़ा जिले के 'सर्वश्री जीतसिंह पाल, जनार्दन सिंह पाल, छत्रसिंह आजाद, प्रयागदत्त पंत, कुशलसिंह खरकवाल, देवीदत्त जोशी, देवीसिंह, मथुरादत्त भट्ट, परमानन्द, प्रतापसिंह, मथुरादत्त, लक्ष्मीदत्त, नरपतसिंह, आनन्दसिंह, देवीदत कांडपाल कैदी थे'।[7] रानीखेत में मथुरादत्त भट्ट की गिरफ्तारी

हुई।[8] बदायूँ जेल सभी जेलों से अधिक शक्तियाँ बरती जा रही थी। अन्य जेलों से 'सी क्लास' के सत्याग्रहियों को धीरे-धीरे बदायूँ जेल भेजा जा रहा था। बदायूँ जेल में सत्याग्रहियों को भाजी में घास, चावल कच्चे, दाल में मिर्च कभी कम और कभी अधिक, भोजन सम्बन्धित समस्या व अन्य काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता था। अंग्रेजों ने दमन आरम्भ किया, सत्याग्रहियों को बेड़ी-दण्ड दिये गये, इतने से सन्तोष न होने पर एक सत्याग्रही को पीटने का हुक्म हुआ। मुकद्दमे चले, सत्याग्रहियों को सजाएं हुई। सत्याग्रही टिकट को उठाकर खोलने में अपमान समझाते थे लेकिन जेल अधिकारी इस बात पर जोर देते थे। सुपरिटेंडेंट ने देवीदत्त काण्डपाल, पण्डित मथुरादत्त भट्ट, जयदत्त वैला व अन्य को टिकट उठाकर खोलने को कहा। टिकट न खोलने पर जयदत्त वैला, पण्डित मथुरादत्त भट्ट व अन्य 4 सत्याग्रहियों आपको एक माह की तनाही व बेडियों की सजा दी गई। जयदत्त वैला, देवीदत्त काण्डपाल व पण्डित मथुरादत्त भट्ट को बेड़ियों के साथ अलग-अलग तनहाइयों में रखा गया'।[9]

भारत छोड़ो आंदोलन के आरंभ में ही 9 अगस्त को मनोहर भट्ट जी को गिरफ्तार कर लिया गया और रानीखेत पुलिस स्टेशन ले जाया गया। कुछ समय बाद जयदत्त वैला व भूपाल सिंह खाती को गिरफ्तार कर पुलिस स्टेशन लाया गया।[10] कुछ समय बाद इन तीनों सेनानियों को जिला जेल अल्मोड़ा को भेजा गया। गिरफ्तारी के समय अपार भीड़ रानीखेत बाजार में हो चुकी थी। अतः स्वतन्त्रता सेनानियों को खास बाजार से बचा कर छोटी बाजार के रास्ते ले जाया गया। अल्मोड़ा पहुँचते ही वहाँ की अपार भीड़, मोटर स्टैण्ड पर जमा हो गयी थी। अल्मोड़ा शहर स्वतन्त्रता के नारों से गुँजने लगा और मनोहर भट्ट, जयदत्त वैला व अन्य को अल्मोड़ा जेल को ले जाया गया। जेल के फाटक पर पहुँचते ही इन स्वतन्त्रता सेनानियों को 5-5 मिनट बात करने देने के बाद लोगों से विदाई लेकर इन्हें अनिश्चित काल के लिए नजर बन्द कर दिया गया।[11] मनोहर दत्त को दण्ड स्वरूप इन्हें डेढ़ वर्ष तक नजरबंद करने की सजा सुनाई गई।[12]

30 अगस्त को सेग जेल के फाटक पर भेजी गयी 6 सेग गाड़ियाँ दो मोटर कार आयी थी। जिसमें वैला व उनके 30 अन्य क्रान्तिकारी साथियों को दो-दो के समूह में जेल से बाहर निकालते समय, सेग के गोरे अधिकारी (सैनिक), इनके दोनों तरफ खड़े थे। क्रान्तिकारी मार्च करते हुए 'आओ क्रान्तिकारियों आओ प्यारे भाइयों' इस गीत को गाते हुए क्रान्तिकारी मोटर गाड़ी के सामने पहुँचे थे। अल्मोड़ा शहर के घरों की छतें औरतों व बच्चों के भीड़ से भरी पड़ी थी, गलियाँ नौजवानों से भरी पड़ी थी। ज्यों-ज्यों क्रान्तिकारी आगे बढ़ते जा रहे थे, महिलाओं व बच्चों द्वारा छतों से क्रान्तिकारियों पर फूल और अक्षतों की बारिश की जा रही थी। अल्मोड़ा शहर से अंग्रेजों भारत छोड़ो के नारे लगाते हुए क्रान्तिकारी बरेली को विदा हुए।[13]

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान अम्बादत्त भट्ट और मथुरादत्त भट्ट ने सल्ट के प्रसिद्ध खुमाड़ गोली काण्ड में भाग लिया और उन्हें कठोर सजा हुई। मथुरादत्त भट्ट को 2 वर्ष का कठोर कारावास और जुर्माना हुआ।[14] वहीं अम्बादत्त भट्ट 1942 को दण्ड स्वरूप दो वर्ष के कारावास की सजा तथा 50 रुपया अर्थदण्ड की सजा हुई।[15]

भारत छोड़ो आन्दोलन में सौला क्षेत्र के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के बड़-चढ़ कर भाग लेने के कारण सरकार ने बिना कारण सौला के औषधालय को वहाँ से स्थानान्तरित कर दिया। वर्ष 1944 ई० तक यह औषधालय सौला में चल रहा था परन्तु वर्ष 1945 ई० में इसे स्थानान्तरित कर दिया गया। 'कुमायूँ राजपूत अल्मोड़ा' अखबार ने लिखा कि औषधालय को स्थानान्तरित करने का कारण यहाँ की जनता का आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लेना था और जिस समय औषधालय स्थानान्तरित किया गया उस समय वहाँ के नेता जेल में बन्द थे।[16]

भारत की स्वतंत्रता में सौला के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के अमूल्य योगदान के लिए हम उनके सदा ऋणी रहेंगे। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के सम्मान के लिए भारत सरकार ने स्वतंत्रता के 25 वें वर्ष कई स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को ताम्रपत्र प्रदान किया। सौला के मथुरादत्त भट्ट जी को स्वतंत्रता के 25 वें वर्ष पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया गया।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, देवेन्द्र, कुमाऊँ की बारदोली, उत्तरा बुक्स, दिल्ली, 2012
2. पाण्डे, पुष्पेश, औपनिवेशिक उत्तराखण्ड और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015
3. बरेली जेल में लाठी चार्ज, शक्ति साप्ताहिक, 14 जून 1941
4. वैला, जयदत्त, स्वतंत्रता संग्राम के एक सिपाही की डायरी के कुछ पन्ने।
5. रावत, अजय सिंह, उत्तराखण्ड का संमग्र राजनैतिक इतिहास, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2021
6. सकलानी, शक्तिप्रसाद, उत्तराखण्ड की विभूतियाँ, उत्तरा प्रकाशन, रूद्रपुर, 2001
7. F.N. 1028/1948, B.N. 79, Medical Department, UP State Archive Lucknow
8. URl : Amrit Kaal, Ministry of Culture, Government of India

फुटनोट

1. रावत, अजय सिंह, उत्तराखण्ड का समग्र राजनीतिक इतिहास, पृ. 455
2. मथुरादत्त भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?13618
3. वही,
4. मनोहर दत्त भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?12012
5. अम्बादत्त भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?12015
6. चंद्रमणि भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?12016
7. बरेली जेल में लाठी चार्ज, शक्ति साप्ताहिक, 14 जून 1941, पृ.3

8. पाण्डे, पुष्पेश, औपनिवेशिक उत्तराखण्ड और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष, पृ. 208
9. वैला, जयदत्त, स्वतंत्रता संग्राम के एक सिपाही की डायरी के कुछ पन्ने, पृ. 172,173
10. उपाध्याय, देवेन्द्र, कुमाऊं की बारदोली, पृ. 20
11. वैला, जयदत्त, स्वतंत्रता संग्राम के एक सिपाही की डायरी के कुछ पन्ने, पृ. 238,139
12. मनोहर दत्त भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?12012
13. वैला, जयदत्त, स्वतंत्रता संग्राम के एक सिपाही की डायरी के कुछ पन्ने, पृ. 239,240
14. सकलानी, एस.पी., उत्तराखण्ड की विभूतियाँ, पृ. 144
15. अम्बादत्त भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?12015
16. कुमाऊँ राजपूत, अल्मोड़ा, F.N. - 1028/1948, B.N. - 79, Medical Department, UP State Archive Lucknow
17. मथुरादत्त भट्ट, Amritkaal, https://amritkaal.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?13618

नवजागरण और गांधीवाद

डॉ० चंद्रकांत बापूराव जोगदंड

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आर. वाय. पी. कला महाविद्यालय, विहामांडवा, ता. पैठण, जि. औरंगाबाद

गांधीजी न तो कोरे दार्शनिक थे, न राजनीतिज्ञ और न संत। क्योंकि उन्होंने न तो किसी आदर्श दर्शन की प्रस्तुति की, न कभी सत्ता का लोक उनके मन को विचलित कर सका और न उन्होंने संसार को असार सिद्ध कर परमब्रह्म में लीन हो जाने का उपदेश ही दिया। लेकिन बड़े आश्चर्य का विषय है कि प्रत्यक्ष तौर पर ये सब न होते हुये भी अप्रत्यक्ष अथक प्ररोक्ष रूप में वे इन सबके श्रेयस तत्वों का अद्‌भुत मिश्रण थे। उन्होंने जीवन और जगत के कमोवेश प्रत्येक क्षेत्र में अपने मौलिक एवं क्रांतिकारी विचार रखे हैं। वह क्षेत्र चाहे सामाजिक हो, राजनीतिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक हो, सांस्कृतिक हो, शैक्षिक हो अथवा वैश्विक। जीवन, मृत्यु, नीति-अनीति, ईश्वर, धर्म, दर्शन, आत्मा, कर्म, पुरुषार्थ, मानव मूल्य आदि शायद ही कोई ऐसा विषय अछूता हो, जिस पर उन्होंने अपने विचार न व्यक्त किये हों। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व में संपूर्णता परिलक्षित होती है। उनके बहुआयामी कार्यों एवं विचारों से सहमति-असहमति, समर्थन अथवा विरोध बिल्कुल अलग मुद्दा है लेकिन एक बात तक है कि वैश्विक स्तर पर जितना मान-सम्मान, प्रेम और श्रद्धा उन्हें प्राप्त हुयी है उतनी शायद किसी अन्य को नहीं। यह उनके बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रमाण है।

भारतीय राजनीति में जिसे गाँधी युग की संज्ञा दी जाती है वह प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद का वह दौर है जिसकी कालावधि सन् 1917 से 1947 तक है। इस दौरान भारतीय राजनीति की समग्र बागडोर निर्विकार रूप से उन्हीं के हाथों में रही। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सर्वमान्य नेतृत्वकर्ता रहे। आजादी की इस लड़ाई को उन्होंने सत्य, अहिंसा, असहयोग जैसे सर्वथा नवीन हथियारों से लेस किया और उसे एक सुचिंतित दार्शनिक आधार प्रदान किया। गांधीजी के भारतीय राजनीति में आने के पूर्व स्वतंत्रता आन्दोलन केवल शिक्षित मध्य वर्ग तक ही सीमित था, वह जन आन्दोलन का रूप नहीं ले पाया था किंतु भारतीय राजनीति में उनके पदार्पण के साथ ही इस आन्दोलन का स्वरूप पूर्णरूपेण बदल गया। उसका सीमा विस्तार हुआ और उनके करिश्माई नेतृत्व से देखते-देखते ही यह आन्दोलन जनआन्दोलन में परिवर्तित हो गया। उनके सत्य, अहिंसा और असहयोग के इस सर्वथा नवीन मार्ग ने भारत की आम जनता में गजब की उमंग, स्फूर्ति और उत्साह का संचार किया।

गांधीजी ने सामाजिक विषमता, अन्याय, अत्याचार, शोषण और दमन के विरुद्ध आजीवन संघर्ष किया। देश में ब्रिटिश शासन का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के बाद भारतीय समाज में एक विचित्र प्रकार की रुग्णता, पराभाव और ठहराव आ गया था। जिससे जनजीवन में स्वाभाविकता का अभाव और कृतिमता का विकास हुआ। उनमें हर तरह की बुराई को गहराई से समझने और उसका समूल विनाश करने की अद्‌भुत शक्ति थी। इसी समय देश में अनेको धार्मिक एवं सामाजिक सुधारवादी आन्दोलन भी हुये। अपने अंधविश्वासों और रूढ़िवादी कलेवर के कारण जैसे-जैसे हिन्दू धर्म अवनति की ओर बढ़ा वैसे-वैसे ही समाज पर ईसाईमत का प्रभाव बढ़ने लगा। इसी दौरान राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारक ने समाज में घर कर रही इन सब बुराईयों का विरोध किया और ब्रह्म समाज की स्थापना की। उस समय जाति प्रथा के बंधन अत्यन्त कठोर थे, सती प्रथा का प्रचलन था, विधवा विवाह पूरी तरह प्रतिबंधित था, बाल विवाह हो रहे थे, महिलाओं की स्थिति सोचनीय थी और उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। ब्रह्म समाज ने इन सब बुराईयों के विरुद्ध जबर्दस्त आन्दोलन चलाये।

पहली बार ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज ने ही ईसाईयत के भारतीय समाज पर बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न खतरों को भाँपा और समाज को उनके विरुद्ध सक्रिय और सचेत किया। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद जी ने पहली बार जोर देकर यह बात कही कि पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति इस देश की परिस्थितियों के अनुकूल कदापि नहीं है। आर्यसमाज ने जाति प्रथा पर कठोर प्रहार किया और स्त्री शिक्षा की महत्ता को समझ कर इस दिशा में अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य एवं प्रयास किये। आर्यसमाज ने ही पहली बार एक राष्ट्र और एक राष्ट्र भाषा की संकल्पना प्रस्तुत कर राष्ट्रीय एकीकरण हेतु राष्ट्रभाषा को अनिवार्य माना और उसकी आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया। तदनन्तर स्वामी रामकृष्ण परम हंस के वेदान्त दर्शन ने भारतीयों को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति सतत् रूप से निष्ठावान रहने का संदेश दिया। परमहंस जी के दर्शन का निचोड़ यही है कि सभी धर्मों का मूल प्रयोजन, सार अथवा हममें एक ही है, हाँ उस ध्येय तक पहुँचने के रास्ते भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इसलिये धर्म परिवर्तन नितान्त औचित्यहीन है। इस प्रकार उन्होंने तार्किक आधार पर धर्म-परिवर्तन का कड़ा प्रतिरोध किया। उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद जी ने भी पूरे भारत में भ्रमणकर सुसुप्तावस्था में पड़े भारतीय समाज को जाग्रत कर अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि स्वर्णिम अतीत वाला यह प्राचीन एवं मदान राष्ट्र अज्ञान के अंधकार में चला गया है, किंतु अभी भी उसका पतन नहीं हुआ है। ज्ञान के प्रकाश से उसे फेर अपना वही पूर्ववर्ती दिव्य स्वरूप प्राप्त करना है। उन्होंने समाज में काव्य निर्धनता, जाति प्रथा और अंधविश्वासों आदि बुराईयों के विरुद्ध उठ खड़े होने का आवाहन किया।

भारतीय समाज में समाजिक एवं धार्मिक चेतना लाने में थियोसोफिकल सोसाइटी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिससे जाति, धर्म एवं लिंग के आधार पर होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों का घोर विरोध किया। अपनी वैचारिक उदारता एवं व्यापकता के कारण इस संस्था का भारतीय समाज में गहरा प्रभाव पड़ा जिससे ईसाई धर्म प्रचारकों के मंसूबे धरे के धरे रह गये। इस संस्था ने हिन्दू संस्कृति को पश्चिमी सभ्यता से श्रेष्ठ घोषित किया और हिन्दू धर्म की वैज्ञानिकता को उद्‌घाटित कर उसकी प्रशंसा की।

19वीं सदी में भारत में पुनर्जागरण की जो उपरोक्त लहरें आयीं उनका प्रभाव भारतीय समाज, जनजीवन, राजनीति, शिक्षा और उद्योग आदि लगभग प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट देखा जा सकता है। गांधीजी का विशिष्ट एवं अन्यतम योगदान यह है कि उन्होंने इन सुधारों को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का साधन बनाया और उन्हें राष्ट्रवाद के साथ जोड़ दिया। जैसे-जैसे राजनैतिक उत्तर दायित्व और सुशासन की मांग बढ़ी, वैसे-वैसे ब्रिटिश शासकों ने भारतीय समाज की इन सामाजिक बुराईयों को अतिशयोक्तिपूर्ण रूप देकर प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। ईसाई मिशनरीज ने समाज के निम्न वर्गों को ईसाईयत अपनाने की प्रेरणा दी जिससे इन वर्गों ने अलग राजनैतिक अधिकारों की मांग का झंडा उठा लिया, जैसे-जैसे समाज में राजनैतिक चेतना जोर पकड़ती गयी, वैसे-वैसे समाज सुधार वाले आन्दोलन भी बढ़ते गये और धीरे-धीरे राजनैतिक एवं समाज सुधार वाले आन्दोलन आपस में मिलकर एक हो गये।

भारतीय समाज के नवनिर्माण हेतु गांधीजी ने मुख्यरूप से दो प्रयोग किये- अहिंसात्मक विरोध और सृजनात्मक कार्यक्रम। वस्तुतः ये दोनों तरकीबें एक दूसरे की पूरक थीं, अलग नहीं। उन्होंने अहिंसात्मक प्रतिरोध को 'सत्याग्रह' नाम दिया। वे रचनात्मक कार्यक्रम को सत्याग्रह से कहीं अधिक महत्व देते थे। क्योंकि सत्याग्रह तो कुछ विशिष्ट अवसरों पर ही क्रियान्वित हो सकता था किंतु रचनात्मक कार्य की परिधि असीमित थी, जिसके केन्द्र में संपूर्ण जीवन था।

गांधीजी के विचारों का गंभीर अध्ययन अनुशीलन करने पर यह तथ्य बड़ी स्पष्टता के साथ सामने आता है कि उनकी वैचारिकता के मूल में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों विचार-दर्शनों का सम्मिश्रण है। निःसंदेह उनकी आत्मा भारतीय है, उनके संस्कार भी नितान्त भारतीय हैं, उनका आचरण और कार्यव्यवहार भी खांटी भारतीय है किंतु वे पोषक तत्व जिन्हें ग्रहण कर वे मोहनदास कर्मचंद गांधी से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी बनते हैं, उनमें बड़ा हिरण पश्चिम का भी है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। पश्चिम के रस्किन और टॉल्सटाम जैसे विशुद्ध नीतिशास्त्रियों का गांधीजी की वैचारिकता के विनिर्माण में बहुत गहरा प्रभाव है।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे अनुप्रयोग' में खुद रस्किन की किताब 'अन टु दिस लास्ट' का अपने ऊपर पड़ा अत्यधिक प्रभाव स्वीकारा है। गांधीजी रस्किन की इस किताब से किस कदर प्रभावित थे इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि बाद में उन्होंने 'सर्वोदय' नाम से इस किताब का अपनी मातृभाषा गुजराती में अनुवाद भी किया। सर्वोदय का सीधा सा अर्थ हुआ सबका कल्याण। इस किताब ने उनकी आर्थिक विचारधारा में जबर्दस्त परिवर्तन किये।

रस्किन की तरह गांधीजी की भी हार्दिक इच्छा थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीतिक/भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं अपने शारीरिक श्रम से करें जिससे कोई किसी के आश्रित न रहे और कोई किसी का शोषण न कर पाये। किसी और की मेहनत पर कोई और मजे न मारे। उनकी इच्छा थी कि लोग खुद को ऐसे कार्यों और व्यवसायों में लगायें जिनकी बुनियाद शोषण, अन्याय, अत्याचार और हिंसा पर न रखी गयी हो। रस्किन और गांधीजी के विचारों में गजब का साम्य है। वे आत्मा को ही परमतत्व मानते हैं, मनुष्य के स्वभाव की अच्छाई में विश्वास करते हैं, राजनैतिक सुधार की अपेक्षा सामाजिक सुधार पर बल देते हैं, अंधाधुंध मशीनी एवं मंत्रीकरण का विरोध करते हैं और जोर देकर यह बात कहते है कि पूंजीपतियों को अपने कामगारों के साथ पितृतुल्य व्यवहार करना चाहिए।

गांधी पर टाल्सटाय का भी गहरा प्रभाव है। कुछ विचारक तो उन्हें टाल्सटाय का शिष्य तक बताते हैं। उन्होंने खुद अपने आपको टाल्सटाय का श्रद्धावान प्रशंसक कहा है और जीवन में बहुत सारी चीजों बातों के लिये अत्यन्त विनीत भाव से उनका आभार भी स्वीकारा है। अपनी आत्मकथा में उन्होंने कहा है कि टाल्सटाय उन तीन आधुनिक मनुष्यों में से एक हैं, जिनका उनके जीवन पर अत्यन्त गहन प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः 'अहिंसा' जिसके लिये वे जाने जाते हैं उसका प्रथम पाठ उन्होंने टाल्सटाय से ही सीखा है। उन्होंने अहिंसा को एक अमोघा अस्त्र की तरह इस्तेमाल किया और उसके व्यावहारिक प्रयोग से समूचे विश्व को चमत्कृत कर दिया। उनका व्यक्तिगत जीवन भी अहिंसा के सिद्धान्त से परिपूर्ण है। वे टाल्सटाय की तरह ही सभी प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, प्रथाओं, रूढ़ियों एवं राजनैतिक बुराईयों, न्यूनताओं, क्षुद्रताओं को दूर करने का तथा मानव कल्याण का एक बहुत महत्वपूर्ण साधन अहिंसा को मानते हैं। उन्हें प्रेम की असीम शक्ति पर गहरा विश्वास है, वे समाज की सभी प्रकार की बुराईयाँ और कुरीतियों को उनके जड़मूल के साथ समाप्त करने हेतु ड्रुत संकल्पित हैं।

'सत्य के साथ मेरे अनुप्रयोग' नामक उनकी आत्मकथा से पता चलता है कि टाल्सटाय के साथ उनका पत्राचार भी हुआ था। गांधीजी ने इस बात को बड़ी ही ईमानदारी के साथ स्वीकार किया है कि टाल्सटाय की किताबों को पढ़कर उनके मन का समूचा संदेह समाप्त होग या और अहिंसा के सार्वभौमिक सिद्धान्त में उनका विश्वास पूर्णरूपेण दृढ़ हो गया। जिस तरह टाल्सटाय ने आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता की निन्दा की है, उसी तरह गांधीजी भी इसे ठीक नहीं मानते हैं। क्योंकि इस सभ्यता का आधार हिंसा और शोषण है, जो व्यक्ति को वासनाओं हेतु प्रेरित प्रोत्साहित करके अनैतिक बनाती है। कहीं-कहीं तो गांधीजी टाल्सटाय से भी आगे बढ़ गये हैं, वे बहुत सारी बातें जिनकी तरफ शायद टाल्सटाय का ध्यान ही नहीं गया था उन पर भी उन्होंने गंभीरतापूर्वक विचार किया है।

अमेरिका का एक बड़ा प्रसिद्ध अराजकतावादी दार्शनिक हुआ है, जिसका नाम है- हेनरी डेविड थोरो। उसके विचारों और कार्यों का भी उन पर प्रभाव परिलक्षित होता है। थोरों ने ही सर्वप्रथम अपने एक भाषण में सविनय अवज्ञा शब्द का प्रयोग किया है। किंतु ऐसा कदापि नहीं है कि 'सविनय अवज्ञा' शब्द का प्रयोग किया है। किंतु ऐसा कदापि नहीं है कि 'सविनय अवज्ञा' सिद्धान्त के पीछे उनकी जो परिकल्पना है वह थोरो के भाषणों से उधार ली गयी है। थोरो के उक्त भाषण को पढ़ने से पहले ही वे दक्षिण अफ्रीका में शासन सत्ता का प्रतिरोध इसी सिद्धान्त के माध्यम से पूर्व में ही कर चुके थे। बाद में उन्होंने उसकी जगह सिविल रेसिस्टेंस यानि 'जन प्रतिरोध' शब्द को अपना लिया। थोरो की तरह उनका भी यही विचार है कि जिन संस्थाओं और मनुष्यों से समाज की भलाई हो, उनसे अधिक से अधिक सहयोग और जिनसे बुसर्ट को प्रोत्साहन मिले, उनसे अधिक से अधिक असहयोग करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी रस्किन, टाल्सटाय और थोरो जैसे अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन पाश्चात्य विचारकों और दार्शनिकों से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं और उनकी खुद की वैचारिकता के विनिर्माण में पश्चिम की विचार सरणियों की भी अहम भूमिका है, वे ग्रीन और रूसो से भी प्रभावित हुये हैं। जिसे आज गांधीवाद या गांधी विचार-दर्शन कहा जाता है, उसके मूल में पूर्व और पश्चिम के तमाम महापुरुषों, मनीषियों, दार्शनिकों और विचारकों

के क्रांतिकारी विचारों की अहम भूमिका रही है, जिनसे प्रेरित-प्रभावित होकर गांधीजी ने। उन्हें अपने जीवन में उताय बल्कि समूचे भारतीय समाज को भी अपने जादुई नेतृत्व के बल पर उन्हें अपनाकर अपना तथा समूची मानव जाति का सर्वता... कल्याण करने का अमर संदेश प्रदान किया।

संदर्भ

1. श्रीमन्नारामण अग्रवाल, गांधी योजना के सिद्धान्त, शिवलाल अग्रवाल प्रकाशन, आगरा 1944
2. काका कालेलकर, गांधीवाद और समाजवाद, सस्ता साहित्य मण्डल, इलाहाबाद, 1967
3. जे.बी. कृपलानी, महात्मा गांधी जीवन और चिंतन, प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1978
4. के.एल. कोचर, गांधी दर्शन, अनुपम प्रकाशन, जयपुर, 1970
5. ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद, गांधी और उनका वाद, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1960
6. रामजी सिंह, गांधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
7. रोमा रोलां, महात्मा गाँधी विश्व के अद्वितीय पुरुष, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1947
8. रामनाथ सुमन, गांधीवाद के रूपरेखा, साधना सदन, इलाहाबाद, 1955
9. हरिभाऊ उपाध्याय, गांधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1966
10. प्रतिका जैन, गांधी चिंतन, राजस्थान, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1949
11. प्रभात कुमार महाचार्य, गांधी दर्शन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1973

राम काव्यक विकासमे 'राम सुयश सागर'क उपादेयता

डॉ० अमिताभ चक्रवर्ती

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, मैथिली विभाग, टी. एन. बी. कॉलेज, भागलपुर, ति. मां. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

चरितं रघुनाथस्य शत कोटि प्रविस्तरम।
एकैक मक्षरं पुंसां महा पातक नाषनम्।।

अर्थात श्रीरामक चरितक विस्तार शत सहस्र धारा मे प्रवाहित अछि। एकहु अक्षर मानवक महापापक नाषक होइत अछि।

भारतीय वाङमयमे रामक गायन आ हुनक महळाक स्थापन कहिया आरम्भ भेल एकर कोनो प्रामाणिक जानकारी कोनो साहित्यमे उपलब्ध नहि अछि। एना मानल जाइछ जे राम काव्यक प्रथम लिपिकार महर्षि वाल्मिकी छथि। एहिसँ पूर्व सेहो रामक चरित्रक गायन होइत रहल होयत। डॉ० अमर नाथ झा एहि सम्बन्धमे कहने छथि "ई निष्चित रूप सँ कहब कठिन अछि जे कीर्तिगानक रूपमे राम कथाक प्रचार कहिआ आरम्भ भेल? वाल्मिकी रामायण द्वारा ई प्रमाणित होइत अछि जे रामक राजत्व कालेमे एहि रामायणक रचना भए गेल छल तथा अयोध्या नगरीक राजमार्गपर सीताक निर्वासन अवधिमे कुष ओ लव ओकर सस्वर गान कएने छलाह।"[1]

राम कथाक महत्ता आदिकालहिसँ प्रामाणिक अछि। कहबाक लेल वेदो-पुराणमे राम नामक चर्चा भेटैत अछि, किन्तु राम कथा जाहि सत्य, अहिंसा, त्याग, उदारता, धीरता, क्षमा वीरता, अनाशक्ति, सूचिता, पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, मातृ-भक्ति, वचनवद्धता, सेवा, सम्मान आदि कतिपय मानवीय आदर्श पर आधारित अछि ओ समस्त वैदिक सम्यता आ संस्कृतिक आधार अछि। वैदिक साहित्यमे राम नामक उल्लेख भेटैत अछि। एकर अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, वैष्णव संहिता, उपनिषद, पुराण आदि सभमे सेहो रामक चर्च आएल अछि।

किंवदन्तिक अनुसार कतेको युग धरि राम काव्यक प्रसंग कथा सदृष एक व्यक्तिसँ दोसर व्यक्ति धरि प्रवाहित होइत रहल। सभसँ पहिने शिव-पार्वती आ काग भुषुंडी-याज्ञवल्क्य कँ पुनः याज्ञवल्क्य-भारद्वाज, एकर बाद कुर्मज, गरूड़, लोमस, वाल्मिकी आदि क्रममे राम कथा प्रवाहित होइत रहल। एहि सम्बन्धमे डॉ० किशोर कुमार सिंह लिखने छथि-"वाल्मीकि कँ आदि कवि एवं आदि ऋषि कहि सकैत छी, जनिक रामायण आइ धरि सभसँ महत्वपूर्ण मानल जाइत अछि। वाल्मिकीक अतिरिक्त किछु अन्य रामायणक नाम लेल जा सकैत अछि जकर रचना मुनि लोकनि द्वारा भेल अछि जाहिमे प्रमुख अछि- शिव पार्वतीक महारामायण, नारद ऋषिक संवृत रामायण, अगस्तय मुनिक अगस्तय रामायण, लोमश मुनिक लोमश रामायण, सुतीक्ष्म मुनिक मंजुल रामायण, भुषुंडिक भुषुंडि रामायण आदि।"[2]

अद्यावधि सम्पूर्ण वाङमयमे शताधिक राम विषयक स्वतंत्र रचना भए चुकल अछि। एकर संगहि अनेक टीका आ मीमांसा सेहो भेल अछि। एतेक धरि जे बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी सेहो राम विषयक ग्रन्थक रचना कयलनि अछि। यथा- दषरथ जातक, स्वयंभूक रामायण, विमल सूरिक पउम चरिउ आदि। उर्दू धरिमे रामायणक रचना भेल अछि। एकर अतिरिक्त कतेको विदेशी भाषा सभमे सेहो रामक विभिन्न रूपमे चर्चा भेल अछि।

मैथिली साहित्यमे राम काव्यक प्रचलन नहिए जेना रहल। जनक नन्दिनी जानकीक जन्मस्थान मिथिला होइतहु एहि ठाम राम काव्यक प्रचलन नहि रहल। वैवाहिक गीत आदिमे षिव-पार्वती प्रचलित रहलाह तऽ साहित्यमे विद्यापति सदृष युगद्रष्टा कृष्णकँ अपन काव्यक आधार बनाओल। एकर एकहि गोट कारण छल जे मिथिलामे रामक देवत्व नहि अपितु पारिवारिक सम्बन्ध कार्य क रहल छल। दोसर मिथिलामे अदौसँ शिव-पार्वतीक भोला आ दानी स्वरूप प्रचलनमे आइयो अछि। तँ एखन सम्पूर्ण मिथिलाक प्रत्येक गाममे एकटा शिवमन्दिर अवष्य स्थापित अछि।

मध्यकालमे मानवक बीच प्रेमक आवष्यकताक अनुभव कयल गेल कारण मुगलक त्रासदीसँ बचबाक लेल व्यक्तिक बीच प्रेमक आवश्यकताक अनुभव कयल गेल। राम सदृष चरित्रक आवष्यकता सेहो छलैक। तँ तुलसीदास सदृष महाकवि रामक अनेक स्वरूपक चित्रण कयलनि। एहि समयमे भारतमे विद्वानक दू टा केन्द्र छल - मिथिला आ काषी जतय विद्वान सभक मुख्य आश्रय छल। किषोर कुमार झा लिखने छथि- "मिथिलाक सम्पर्क पूर्वांचल भारत यथा- बंगाल, उड़ीसा, आसाम आदि सँ बेसी छल जतय वैष्णव धर्मक बोलबाला अपन चरम स्थितिमे छल। एहि पारस्परिक संबंधसँ कृष्ण काव्यक परम्परा बेसी पल्लवित आ पुष्पित होइत रहल एवं रामकाव्य किछु कात भए गेल। विद्यापतिक पष्चातहु मैथिली साहित्यक अधिकांश रचनाकार राज्याश्रित रहैत छलाह जे ओहि परिवेषमे राम काव्य दिष आकर्षित नहि भेलथि।... मर्यादा पुरुषोतम राम चरित्रमे एहन शृंगारिकताक अभाव एवं युद्धक उद्देश्य किछु भिन्न अछि। तँ लेखक रचनाकार वर्ग अपन रचनाकँ साधारण लोक धरि पहुँचयबाक लेल चरित्रक अपेक्षा शृंगारक पक्षधर रहि गेलथि आ राम काव्यक परम्परा अवरूद्ध होइत रहल।"[3]

मिथिला आदिकालहिसँ वेद-वेदांग आ कर्मकाण्डसँ विशेष रूपसँ जुड़ल रहल। तँ एहि ठाम वैदिक देवता सभक विषेष प्रमुखता रहल। राम काव्यक लेल विद्वान लोकनिक लग वाल्मीकिक रामायण उपलब्ध छल मुदा ओहि दिस लोक आकर्षित भेलाह, से मात्र अध्ययन क संतोष क लैत छलाह। ओ उदाहरण रूपमे, रामक चर्चा मैथिली साहित्यमे होइत छल। ज्योतिरीष्वर चारित्रिक दृष्टान्त रूपमे रामक चरित्रक चर्चा कयल गेल अछि। गोविन्द दास मात्र एकटा 'रामवन्दना' लिखि सकलाह। मध्यकालमे नाटकक रचनाक क्रममे जगत प्रकाष मल्लक 'रामायण' नाटकक रचना कयने छथि। अंकिया नाटकमे सेहो राम

लीलाकेँ आधार बनाय 'राम विजय'क रचना भेल अछि। मिथिलामे राम काव्य तऽ नहि लिखल गेल मुदा रामलीला रासलीलासँ बेसी प्रचलित रहल। विष्णुकेँ ईष्वर मानितहु हुनक विषेष प्रभाव मिथिलामे नहि रहल। इएह कारण अछि जे आइयो मिथिलामे वैष्णवक संख्या नगन्ये अछि। मैथिली लोक गीतमे अनेक रूपमे राम विषयक चर्चा भेल अछि।

मैथिली साहित्यमे चन्दा झा पहिल महाकवि भेलाह जे 'मिथिला भाषा रामायण'क रचना क रामकाव्य परम्पराक आरम्भ कयलाह। एकर बाद रामकाव्य अनेक प्रकार एवं रामायणमे चित्रित पात्रक चरित्रक निरूपण करैत अनेक महाकाव्य एवं अन्य रचना भेल अछि। जेना- लालदासक 'रमेश्वर चरित रामायण', सीताराम झाक 'अम्वचरित', वैद्यनाथ मल्लिक 'विधु'क 'सीतायन', पं० जीवनाथ झाक 'रावण वध', काली कान्त झाक 'हनुमान चरित' आदि महाकाव्यक अतिरिक्त शिवदत्तक 'सीताराम विवाह' खण्डकाव्य, 'सीता स्वयंवर' पं० आनन्द झा नाटक एवं आन-आन विधामे अनेक रचना भेल अछि।

विष्वनाथ झा 'विषपायी' 'राम सुयश सागर' महाकाव्यक रचना क श्री रामक यष विस्तारकेँ देखयबाक प्रयास कयलनि अछि। जतय आन रामायणमे कथानकक आरम्भ शौनक-सूत संवादसँ आरम्भ भेल अछि ओतहि विषपायी जी एकरा आओरो पूर्वसँ लेलनि अछि। किषोर कुमार सिंह लिखने छथि- "चन्दा झाक रामायणक आरम्भ शौनक-सूत संवदिसँ होइछ। चन्दा झा आ लालदासक रामायणमे कथाक आरम्भ असुरक भारसँ धरती द्वारा ब्रह्मा एवं विष्णु लग जयबाक घटनासँ होइत अछि, जतए भगवान हुनका समयानुकूल मानव रूपमे अवतरित होयबाक सान्त्वना दैत छथि। 'राम सुयश सागर'मे कथाक आरम्भ नारदक मोह भंगसँ होइत अछि एवं हुनक श्रापसँ भगवानकेँ अवतार लेबा लेल बाध्य होबऽ पड़ैत छन्हि। विषपायी जीक कथाक आरम्भ-शेष दूनू रामायणसँ पूर्वहिसँ आरम्भ करैत छथि। विषपायी जीक रामायणमे मनुक तप एवं त्रिदेव द्वारा वरदान स्वरूप रामक पुत्र रूपमे जन्म लेबाक चर्चा अछि।"[4]

रामायणक कथा विस्तारमे सेहो तीनू रामायणमे किछु-किछु भिन्नता होयब स्वाभाविक प्रतीत होइत अछि। जेना गौतम पत्नी अहिल्याक प्रसंगमे चन्दा झा एवं लालदास सहस्रभगक श्राप दैत छथि तऽ विषपायी जी ओकरा बधिया करयबाक प्रसंगकेँ (अण्डकोष कटबयबाक) विश्लेषण कयलनि अछि। एहिना अनेक स्थल अछि जाहि ठाम विषपायी जी अपन स्वतंत्र विचार राखैत छथि।

विषपायी जी संस्कृत विद्वान होइतहु अपन रामायणमे ठेठ मैथिली शब्द सभक प्रयोग कयने छथि। ओना हिनक रचनापर संस्कृत भाषाक शब्दक अधिक प्रयोग स्वाभाविक अछि। आधुनिक युगक होयबाक कारण उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी शब्द सभक प्रयोग सेहो भेल अछि। द्रष्टव्य अछि मैथिलीक किछु ठेठ शब्द- घेटकट्ठ, छोटकिनमा, गीजथि, लेसल, अण्ड-वण्ड, कचर-बचर, ढ़ीप, चकचोनही, बुळ्ाा, कनफुसकी, हहैर, पिहकारी, डड़डोरी, हुदहुद्दी, चरफर, फुफरी आदि यथावसर मैथिलीक मोहबरा सभक प्रयोग सेहो अधिकतासँ कयलनि अछि। यथा-खाइल पात पर करथि छेद, आगू नाथ न पाछू पगहा, माथ छुछुन्नरि सुरभित तेल, दालि बीच अछि कारी, एक हाथ नहि बाजय थपरी, बूझय प्यास की चटने शीत, पिसा जैत सातुक संग घून, चुरुक पानि भरि मरितैं डूबी, भात-दालि बीच मूसर चन्द इत्यादि।

विषपायी जी स्थान आ अवसर देखि मिथिलाक सांस्कृतिक चित्रण करब नहि बिसरलाह अछि। किशोर कुमार झाक उक्ति द्रष्टव्य अछि-"धार्मिक ग्रन्थक निर्माणक एक उद्देश्य लोकक मिथ्या मोह तोड़ब सेहो होइत अछि। एहि दृष्टि सँ रामायणक आरम्भ नारदक मोहभंगसँ कए महाकवि सूक्ष्म... दशरथ द्वारा वन जयबाक इच्छाक मूलमे शंकरक सेवाक उद्देश्य सेहो विषपायी जी कएने छथि। द्रष्टव्य अछि अयोध्या काण्डक पहिल पृष्ठ विभिन्न कथाक क्रममे महाकवि अपन मिथिलाक संस्कृतिक पुट दए देने छथि। माथक लाल पाग जे मिथिलाक वा मैथिलक प्रमुख चिन्ह अछि से कवि नहि बिसरल छथि। मिथिलाक वा मैथिलक प्रमुख चिन्ह उल्लेख सेहो महाकवि कएने छथि। चौबद्धीपर स्नान करब मिथिलाक लोक-रीतिक चिन्ह अछि जकर विषपायी जी कथाक क्रममे चर्चा कएने छथि। मिथिलामे दही-चूड़ाक जलपान सभसँ बेसी विख्यात अछि जकर उल्लेख सेहो कएल गेल अछि। इन्द्र द्वारा गौतम मुनिक पत्नीक संग समागमक कथामे मुनि द्वारा इन्द्रकेँ सम्पूर्ण देहमे योनि (भग) होएबाक श्रापक उल्लेख आधार ग्रंथ वा प्रायः रामायणमे अछि। विषपायी जी अपन रामायणमे एहि घटनाक समावेष दोसर रीतिसँ कएने छथि। मिथिलामे सामान्यतः कोनो चीजक बधिया करब पुरूषार्थ लोकोक्तिक रूपमे अबैत अछि। एहन क्रममे जकर बधिया होइत अछि ओ कायरक प्रतीक मानल जाइत अछि। इन्द्रक अण्डकोष कटयबाक घटना एहने सन्दर्भमे कएल गेल अछि।"[5]

एकर अतिरिक्त सीताक विवाह प्रसंगमे मिथिलाक विधि-व्यवहारक बहुतायतसँ चित्रण भेल अछि। जेना परिछन करब, गीत गायब विधिक लेल कएल गेल सभ काजक चित्रण भेल अछि। सप्पत खयबाकाल हाथ उठा देब सेहो मिथिलाक संस्कृति अनुरूपेँ प्रयोग कयल गेल अछि। मिथिलाक वर्णन क्रममे कटहर, जामुन, लताम आदिक संग माछ आ मखानक चर्चा करैत कमहि शब्दमे सामाजिक, आर्थिक स्थितिक सेहो वर्णन कयने छथि। रामक वन गमनक क्रममे मिथिलाक ललनाक तार्किक होएबाक प्रमाण सेहो भेटैत अछि। राम सीताकेँ वन नहि जयबाक लेल अनेक तक-वितर्क करैत छथि मुदा अन्ततः सीताक तर्कक आगू हारि क संग लय जयबाक स्वीकृति द दैत छथि। सम्पूर्ण रामायणमे यथावसर मैथिल ललनाकेँ पतिव्रता, सौम्य, दयालु, परोपकारी, त्यागी आदि स्वरूप प्रदान कयल गेल अछि।

विषपायी जीक राम सुयश सागरमे सात काण्ड- बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर, काण्ड, लंका काण्डमे विभक्त कयने छथि। कथा प्रसंग एक होइत राम सुयश सागरमे अनेक स्थलपर वर्णन वैषिष्ट्क विलक्षणता सेहो देखयमे अबैत अछि। विषपायी जी अपन रामायणमे बाल काण्डक अन्तर्गत अपन अग्रजक एहि प्रकारक वर्णन शेष दूनू रामायणमे रचनाकार नहि कयने छथि। लाल दास वाल्मीकि एवं विषपायी जी वाल्मीकि संग तुलसीदासक प्रति आभार सेहो व्यक्त कयने छथि। जखन की चन्दा झाक रामायणमे एकर अभाव अछि।

विषपायी जी अपन रामायणमे महाकाव्यक अनुकूल नओ रसक परिपाक कयलनि अछि। हिनक रचना भक्तिपरक छन्हि तथापि काव्य शास्त्रक दृष्टिसँ विभिन्न रसक सभावेष क रामयणक शैली, गुण, अलंकार आ छन्दादिक प्रति हिनक प्रतिबद्धता हिनका साहित्यिक मर्यादाकेँ दीप्तमान करैत छन्हि।

शृंगार रसक वर्णन देखल जाय-

उपवन मध्यमे तड़ाग हंस चक्रवाक जल
खग सरस-सुरस कलगान

देखि सुनइत मुनिहुक चित्र
वित हर मानस समान
जल एहन न आन अमल कमल कमला निवास भासमान
गुंजित मधुप पुंज मत मधुपान।

हास्य रसक वर्णन देखल जाय-

रावण चरण धरय चललाह। अंगद देखितहि हँसि उठलाह।
कयलह रघुनन्दन सौ वैर। ककर-ककर ने धरबह पैर।

करूण रसक वर्णन देखल जाय-

दशरथ कथा कहल की जाय। कैकयिक पअर घयल लपटाय।
कहु की राम चन्द्र सौं भीति। कयल कसाइनि सनि की रीति।

रौद्रइ रसक वर्णन देखल जाय-

घर-घर कपि वाचाल बनि हिनका मारब।
के अछि त्रिभुवन शूर जतय हम रणमे हारब

भयानक रसक वर्णन देखल जाय-

हाँ हौ! हाँ हौ! विपत्ति बड़ छौ काल लंका समेलौ।
लंकाध्वंसी कपिक सदृषे दोसरो फेरि ऐलौ।

विभत्स रसक वर्णन देखल जाय-

रामचन्द्र तीर-विद्ध-मौलि-पात छट्ट-छट्ट। योगिनीक वृन्द रक्त-ओघ घेंट घट्ट-घट्ट। खाय की श्रंगाल मासु नोचि गट्ट-गट्ट। वस्ति-अस्थि दन्त घोर जोर तोड़ भट्ट-भट्ट।

अद्‌भुत रसक वर्णन देखल जाय-

योजन भरि विस्तार कर काय। सुरसा मुख दष कोस बनाया।
तकर द्विगुण हनुमानो कयल। बिष योजन मुख सुरसाघयला।

शान्त रसक वर्णन देखल जाय-

करथि प्रदक्षित करथि प्रणाम। कहथि अवधि दिन आयब गाम।

वात्सल्य रसक वर्णन देखल जाय-

राम ललाक पएरक नुपुर सम्पूर्ण वातावरण कँ संगीतमय एवं बनबैत छल। चारू दिस हर्षोल्लासक वातावरण व्याप्त भए गेल। गर्दामे लोढ़ाएल चारू नेना ठुमकि-ठुमकि चलब आरम्भ कएलक तऽ अलौकिक आनन्दक अनुभूति होइत छल।

वीर रसक वर्णन देखल जाय-

पटकि पीठ पर होथि सवार। कंठ दाबि कर प्राण बहार।।
पाथर मारि दाँत कँ तोर। करथि युद्ध सदिखन घनघोर।।

राम सुयश सागरमे वार्णिक आ मात्रिक छन्दक संगहि मुक्त वृत छन्दक प्रयोग सेहो कयने छथि। ओना छन्द रचनामे चन्दा झासँ विशेष प्रभावित छथि। दोहा आ चौपाइक रचनामे कविक विशेष दक्षता देखल जाइत अछि। आरम्भ अन्तमे आन-आन छन्द दोसर छन्दसँ कयल गेल अछि।

एहि प्रकारँ हम देखैत छी जे प्राचीन एवं शास्त्रीय नियमक पालन करितहुँ आधुनिक कालक छन्द-अलंकार विहीन रचना सदृष प्रवाह पूर्ण भाषामे रामायणक रचना कए विलक्षणताक परिचय देने छथि। राम सुयश सागर महाकाव्यक कोटिमे ओहिना सफल सिद्ध होइत अछि एवंविध देखैत छी जे मैथिलीमे अद्यावधि सीतारामक प्रसंग लय सात गोट महाकाव्यक रचना भेल अछि। तथापि सभक उद्देष्यमे भिन्नता ओकर नामहिक अनुरूप देखाओल गेल अछि। जेना मिथिला भाषा रामायणमे श्री रामक चारित्रिक विस्तारक संगहि आन, आन विषयक समायोजन भेल अछि। रामेष्वर चरित मिथिला रामायणमे सीताक महत्ता स्थापित करबाक प्रयास कय रामक रामत्वक आधार सेहो सीतेकँ बनाओल गेल अछि। राम सुयश सागरमे रामक मानवीय रूपक यष विस्तार देबाक प्रयास कयलनि अछि। एहिना जानकी रामायणमे सेहो सीतेक यशक विस्तार पर जोर देल गेल अछि। रावणवधमे राम एवं रावणक पराक्रमक आ सदगुणक चित्रणक विशिष्टता अछि परञ्च प्रसंगादि सभमे समरूपँ चलैत अछि। कथानकक आधार एकहि अछि। राम सुयश सागरक रचना कए कवि मैथिली साहित्यमे अपन यषक विस्तार सेहो क लेलाह अछि। एकरा मैथिलीक अनमोल निधि कही तऽ कोनो अतिषयोक्ति नहि कहा सकैत अछि।

रामकाव्य अधाविध शताविध लिखायल अछि। केवल 'रामायण' नामसँ अनेक रचना अछि मुदा सभ रामायणक मुख्य कथा वस्तुक समानता रहितहु प्रासंगिक घटनामे किछु-ने-किछु परिवर्तन आबि गेल अछि। विषपायी जी पूर्णत: तुलसीदासक 'रामचरित मानस'क अवलम्बन करितो अपन स्वतंत्र वर्णन कौषल देखौलनि अछि। अपन विषय वस्तुक चयनक सन्दर्भ मे ओ कहने छथि-

"संस्कृतिकेर आधार छथि, पुनिकल्याणक मूल।
नवयुग वसितो तँ चुनल, इष्ट देव अनुकूल।।"[6]

पुनः वर्तमान युगकेँ कवि लोकनिक वाद परम्परासँ किछु बेसिये खिन्न होइत बुझाइत छथि। वर्तमानमे महाकाव्यक प्रासंगिकता केँ नवकवि लोकनि पुरना वस्तु बूझि अवहेलना करैत छथि। यद्यपि ईहो बात सत्य छैक जे आजुक कवि लोकनि महाकाव्य लिखिये नहि सकैत छथि कारण ओ लोकनि छन्दषास्त्रक ओझरौटसँ दूरे रहय चाहैत छथि। ओ लोकनि अकर-बकर फकड़ा लिखि अपनाकेँ श्रेष्ठ कवि बूझय चाहैत छथि जकरापर आक्षेप करैत विषपायी जी अपन रामायणमे लिखने छथि-

"आजुक कवि खा धथुरक बीया।
काव्य रचथि घुर! छीया! छीया!
बात कहथि वा बनबथि फकड़ा
कवि प्रतिभा लए बनला लबड़ा।।"[7]

विषपायी जी अवसर देखि मिथिला रमणीयताक वर्णन करब नहि बिसरलाह। ओहि समय मिथिलामे साक्षात लक्ष्मी अवतरित भेल छलीह। तँ सब दिस सुख-समृद्धि दृष्टिगोचर होइत छल। कवीष्वर चन्दा झा एवं लालदास दूनू गोटे सेहो रामक मिथिला अयबाक क्रममे मिथिलाक सौन्दर्य एवं रमणीयताकेँ उद्घाटित एवं चित्रित करबासँ नहि चुकला अछि। तहिना विषपायी जी सेहो एहि प्रकारक चित्रण कयलनि अछि। दृष्टव्य अछि किछु पाँति-

"रम्यपुरी अति उच्च मकान। रचल रजत मनि फटिक पखान।।
मोती झालरि खिड़की सोन। गज मुक्ता छाड़ल सब कोन।।
सीत सौघ मान करय उचार। आँखि झकाझक कुलिष कपाट।।
वायु चलित नित उड़य पताका। नगर अकथ पड़िते विच राका।।"[8]

मनबोध सदृष मैथिल लक्षणक वा चलनक चित्रण सेहो विषपायी जी मनमोहक ढंगे कयने छथि। जखन राम गली-गली घूमि जनकपुरक सभ्यता देखय जाइत छथि तखनुक षोभाक वर्णन देखल जाय सकैत अछि-

"महिला मण्डल चौढ़ अटारी। रूप सिन्धुक करथि निहारी
आधा बान्हल फूजल केष। दौगथि नेने लटपट वेष।।"[9]

एतबहि नहि हुनक स्वरूप देखि महिला लोकनि अपनामे बात करैत छथि, तकरहु चित्रण आह्लादक अछि। रामक स्वरूप देखि लोक सब मुग्ध भ कहैत छथि जे राजा जनक ई केहन प्रण क लेलनि, नहि तऽ सीताक लेल एहिसँ सुन्दर वर आरो के भए सकैत अछि? एक टा मेघ होयतैक तऽ दोसर बिजुरी सन लगितथि। कविक पाँती दृष्टव्य अछि-

कियो कहथि नृप वचन हटाबथु। आनि जानकी हाथ घराबथु।।
सिय के वर सुन्दर जोड़ी। जलद राम बिजली सिय गोरी।।"[10]

कवीश्वर चन्दा झाक मिथिला भाषा रामायण, लाल दासक रमेश्वर चरित मिथिला रामायण एवं विषपायी जीक राम सुयश सागरमे अनेक कथा प्रसंगमे भिन्नता देखल जाइत अछि। यद्यपि मुख्य कथा विस्तार समानहि अछि। नामहिसँ अन्तर स्पष्ट अछि मिथिला भाषा रामायण अर्थात रामायणक प्रतिरूप मिथिला भाषामे। रमेष्वर चरित मिथिला रामायण अर्थात मिथिलाक रमा अर्थात सीता ईश्वरक चरित, तँ एहि रामायणमे रामसँ उत्कृष्ट सीताकेँ देखयबाक प्रयास करबाक क्रममे पुष्कर काण्ड आयोजन कयल गेल अछि आ तेसर अछि विषपायी जीक राम सुयश सागर अर्थात रामक सुन्दर यष सभक गायन। तँ तीनूक आरम्भि प्रसंगमे भिन्नता अछि।

रमेश्वर चरित मिथिला रामायणमे राम सामान्य बालक रूपेँ जन्म लैत छथि आ हुनक देवत्व सीताक कारणेँ होइत छनि। विषपायी जीक रामसुयश सागर मे हरिक नर तन रूपमे जन्म लेबाक चित्रण अछि। ओतहि चन्दाझाक रामायणमे राम अलौकिक रूपमे अवतरित होइत छथि एवं माता कौषल्याक निवेदन कयलापर बाल रूप ग्रहण करैत छथि जहिना तुलसी कृत रामायणमे दर्षाओल गेल अछि। तुलसीदास तऽ एहि सम्बन्धमे अलगसँ पद्यक रचना सेहो कयलनि अछि। द्रष्टव्य अछि पाँती-

"भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौषल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि-मनहारी अद्भुत रूप निहारी।
लोचन अभिरामा तनु धनष्याम। निज आयुध भुज चारी।
माता पुनि बोली सो मति डोली। तजहु तात यह रूपा
कीजै सिसुलीला अति प्रिया सीला। यह सुख परम अनूपा।"[11]

सन्दर्भ सूची

1. कवीश्वर चन्दा झा ओ हुनक मिथिला भाषा रामायण, डॉ० अमरनाथ झा, तृतीय अध्याय, पृ० सं० - 40
2. मैथिली राम काव्य आ राम सुयश सागर- डा० किशोर कुमार सिंह, पृ० सं० - 23

3. उपर्युक्त, पृ० सं० - 36
4. ऐजन, पृ० सं० - 48
5. ऐजन, पृ० सं० - 105
6. विषपायी, रामसुश सागर, बालकाण्ड, पृ० सं० - 7
7. ऐंजन, पृ० सं० - 8
8. ऐंजन, पृ० सं० - 45
9. ऐंजन, पृ० सं० - 49
10. ऐंजन, पृ० सं० - 50
11. रामवतार - तुलसी दास, पृ० सं० - 105

पूर्वोत्तर भारत का विकासः चुनौतियां एवं सम्भावनाएँ

सुशील कुमार

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, बी०एम०डी० कॉलेज दयालपुर वैशाली, बिहार

डॉ० शशि भूषण कुमार

प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, आ०एन० कॉलेज, हाजीपुर वैशाली, बिहार

सार- संक्षेप

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र, जो सात बहनों के नाम से जाना जाता रहा है,अब 'अष्टलक्ष्मी' के रूप में परिभाषित किया जा रहा है। यह क्षेत्र अपनी अद्वितीय भौगोलिक स्थिति,समृद्ध जैव-विविधता और बहुरंगी सांस्कृतिक विरासत को समेटे हुए है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण यह क्षेत्र दशकों तक भौगोलिक, राजनीतिक और भावनात्मक रूप से शेष भारत की मुख्यधारा से अलग-थलग महसूस करता आया है। परिणामस्वरूप यहाँ विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी रही है। वर्तमान समय में यहाँ के लोगों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना का विकास हो रहा है। इनकी आकांक्षाएं बढ़ती जा रही है, परंतु इनकी आकांक्षाओं के समक्ष अनेक जटिल चुनौतियां खड़ी है। विगत वर्षो में भारत सरकार द्वारा 'एक्ट ईस्ट नीति,' पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्रालय की स्थापना जैसी प्रभावकारी पहलों से इस क्षेत्र को विकास की मुख्यधारा में लाने का प्रयास तेज हुआ ताकि इसे दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रवेश द्वार बनाया जा सके।

यह शोध-आलेख पूर्वोत्तर भारत की महत्वाकांक्षाओं के समक्ष खड़ी जटिल एवं गहरी चुनौतियों की पड़ताल करता है। यह चुनौतियां केवल आधारभूत ढांचे या सरकारी आर्थिक आंकड़ों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वहाँ के नागरिकों के जीवन, उनकी पहचान और उनके भविष्य के सपनों से जुड़ी है। अंत में यह आलेख उन असीम संभावनाओं की खोज करता है जो सतत समावेशी विकास मॉडल अपनाकर साकार की जा सके, जिससे पूर्वोत्तर भारत का आर्थिक विकास भी हो और साथ ही वहाँ के लोगों की सांस्कृतिक संरक्षण एवं मानवीय गरिमा बनी रहे।

कूट शब्द - पूर्वोत्तर भारत, विकास, महत्वाकांक्षा, सांस्कृतिक विविधता, आर्थिक विकास, आधारभूत ढाँचा, स्वायत्तता, सांस्कृतिक विविधता, सुरक्षा

क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाएं

उत्तर-पूर्व के राज्यों में विभिन्न प्रकार की जनजातियां निवास करती हैं। इनकी अपनी समृद्ध संस्कृति, भाषा एवं परम्पराएं रही हैं। ये लोग अपनी संस्कृति एवं भाषा के संरक्षण को लेकर चिंतित रहते हैं। साथ ही वे अपनी भूमि एवं वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों पर अपना नियंत्रण बनाए रखना चाहते हैं। इस कारण इन क्षेत्रों से अधिक स्वायत्तता की मांग एवं अलग राज्य की मांग उठने लगी है। पूर्वोत्तर भारत के लोगों की एक और प्रमुख आकांक्षा आर्थिक प्रगति की रही है। स्वतंत्रता के पश्चात भी जहाँ भारत में उत्तरोत्तर आर्थिक विकास हो रहा है। वहीं पूर्वोत्तर भारत में अपेक्षाकृत कम विकास हुआ है। इस आर्थिक पिछड़ेपन के कारण वहाँ के युवाओं में असंतोष पनप रहा है। यहाँ के युवा वर्गो में भी रोजगार एवं आधुनिक जीवन शैली अपनाने की अभिलाषा जागृत हो रही है।

पूर्वोत्तर भारत की चुनौतियाँः-

पूर्वोत्तर भारत की महत्वाकांक्षओं के समक्ष जटिल एवं गहरी चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों को हम केवल सरकारी आंकड़ों एवं रिपोर्टो से नहीं समझ सकते हैं। हमें उन स्थानीय लोगों के दृष्टिकोण से इन्हें समझना होगा, जिनका जीवन इनसे सीधे तौर पर प्रभावित होता है।

I. विकास बनाम सांस्कृतिक पहचान-

पूर्वोत्तर भारत के विकास के लिए जो बड़ी-बड़ी परियोजनाएं लाई जाती हैं, अक्सर वे स्थानीय पारिस्थितिकी ओर परंपरागत सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा करती है।

- विस्थापन का दंश - बड़े-बड़े बांधों, राजमार्गो, जल-विद्युत परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण की जाती है, जो यहाँ के लोगों के विस्थापन एवं बेरोजगारी का कारण बनती है।
- सांस्कृतिक क्षरण का भय - लोगों के आगमन, बाजारू संस्कृति एवं मीडिया के प्रभाव से स्थानीय संस्कृति, भाषाएँ एवं जीवन- शैली पर खतरा उत्पन्न हो गया है।

पूर्वोत्तर भारत में ऐसा विकास चाहिए जो यहाँ की संस्कृति को संरक्षित करे न कि नष्ट करे। हम यहाँ का विकास लोगों को उनकी जड़ों को उखाड़ कर नहीं कर सकते।

II. लोगों में अविश्वास एवं असुरक्षा की भावना-

विगत कुछ वर्षों में यद्यपि सरकारी प्रयास द्वारा उग्रवादी गतिविधियों में कमी आई है। फिर भी यहाँ के लोगों के मन में असुरक्षा की भावना है।

- AFSPA जैसे कानूनों से नागरिकों एवं सुरक्षा-बलों के बीच अविश्वास की भावना आई है। अक्सर इन कानूनों से मानवाधिकार हनन का खतरा बना रहता है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में राष्ट्र सुरक्षा के साथ ही नागरिक स्वतंत्रता एवं गरिमा का भी ध्यान रखना आवश्यक है।
- राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (NRC) प्रक्रिया से लाखों लोगों के मन में भय और अनिश्चितता आई है। यह एक जटिल और संवेदनशील मुद्दा है और इसे पूरी संजीदगी एवं सावधानी से देखना होगा।
- असुरक्षा की भावना:- शांतिपूर्ण और सुरक्षित वातावरण ही निवेश को आकर्षित करता है जिससे उद्योग- धंधे का विकास होता है। परन्तु पूर्वोत्तर भारत में बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार की सुरक्षा की चिंता है।
- बाह्य-सुरक्षा- पूर्वोत्तर के सभी आठों राज्यों की सीमाएं बांग्लादेश, म्यांमार ,भूटान, नेपाल और चीन से लगती है। वहीं दूसरी तरफ अरुणाचल प्रदेश पर चीन दावा करता है।

इतनी बड़ी सीमा की निगरानी और सुरक्षा भारत के लिए गंभीर चुनौती रही है। इतनी विशाल सीमा होने के कारण अवैध घुसपैठ एवं वस्तुओं एवं हथियारों की तस्करी की हमेशा संभावना बनी रहती है।

- आंतिरिक असुरक्षा- पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न राज्यों में आपसी सीमा विवाद भी रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में असम से चार राज्य (मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम) अलग हुए हैं। अक्सर इन राज्यों में प्राकृतिक संसाधनों एवं अपनी सीमा को लेकर विवाद होते रहे हैं।

इन क्षेत्रों में चुकी विभिन्न प्रकार की जातियों एवं संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं इस कारण भी इनमें हमेशा हिंसक झड़पें होती रहती है। इन राज्यों में कई उग्रवादी संगठन हैं जो भारत की सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती उत्पन्न करते रहे हैं।

III. ब्रेन-ड्रेन की समस्या:-

एक आईआईटी, एक आईआईएम और कई प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के होने के बावजूद पूर्वोत्तर भारत के युवा देश के दूसरे राज्यों में जा रहे हैं।

इसका प्रमुख कारण पूर्वोत्तर में रोजगार के अवसरों में कमी और असुरक्षा की भावना है। फलस्वरूप यह क्षेत्र अपनी मूल्यवान संपत्ति मानव संसाधन से वंचित हो रही है।

IV. भौगोलिक अलगाव एवं आधारभूत सुविधाओं की कमी:-

पूर्वोत्तर भारत के राज्य शेष भारत से एक संकीर्ण 22 किलोमीटर चौड़े कॉरिडोर से जुड़े हैं जिसे सिलीगुड़ी कॉरिडोर कहते हैं। संपूर्ण उत्तर पूर्व राज्यों में दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र, घना वन क्षेत्र, नदियां एवं घाटियां विद्यमान हैं, जिसके कारण इन राज्यों में परिवहन और संचार सुविधा को बहाल करने में बड़ी बाधा आती है।

समुचित सड़क एवं रेल परिवहन के अभाव में पूर्वोत्तर के लोगों का शेष भारत से आवागमन और जुड़ाव नहीं हो पा रहा है।

V. प्राकृतिक संसाधनों का अपर्याप्त दोहन:-

पूर्वोत्तर भारत में भूमि,वन,वनस्पति और पशु धन जैसे प्राकृतिक संसाधनों का भंडार है। परन्तु इन संसाधनों का समुचित प्रयोग नहीं हो पा रहा है अर्थात उचित प्रबंधन का अभाव है। यदि इन प्राकृतिक संसाधनों का समुचित दोहन हो, तो ना सिर्फ वहाँ के निवासियों को रोजगार प्राप्त होगा अपितु सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) में भी वृद्धि होगी।

VI. राजनीतिक अस्थिरता एवं उग्रवाद:-

ब्रिटिश शासन काल से ही उत्तर-पूर्व क्षेत्रों के साथ ब्रिटिश भारत के अन्य क्षेत्रों से अलग व्यवहार किया गया है। स्वतंत्रता पश्चात भी यह अलगाव की भावना कायम रहीं।

इन क्षेत्रों में विभिन्न जातियों में संघर्ष और अंतर्राज्यीय विवादों के कारण राजनीतिक स्थिरता भंग होती रहती है। भारतीय राजनीति में इन क्षेत्रों का समुचित प्रतिनिधित्व भी प्राप्त नहीं है जो असंतोष को जन्म देता है।

VII. प्राकृतिक आपदा:-

उत्तर पूर्व भारत के राज्यों में भारी वर्षा होती है। परंतु जल निकासी की अपर्याप्त व्यवस्था एवं संकरी घाटियों के कारण यहाँ बाढ़, भू-स्खलन निरंतर होते रहते हैं। इसके कारण यहाँ अच्छी सड़कें एवं अन्य बुनियादी ढांचे के निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है।

पूर्वोत्तर भारत के विकास के लिए सरकार की पहल:-

1. भारत की 'एक्ट ईस्ट नीति':- भौगोलिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत दक्षिण पूर्व एशिया का प्रवेश द्वार है, क्योंकि इसकी 98% सीमा भूटान,चीन, म्यांमार और बांग्लादेश के साथ लगती है। सामरिक दृष्टिकोण से भी यह अति-महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसीलिए पूर्वोत्तर क्षेत्रों में संचार एवं आधारभूत संरचनाओं का विकास अति आवश्यक है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर नवंबर 2014 में 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' को लागू किया गया। जो 'लुक ईस्ट पॉलिसी' का अपग्रेड वर्जन है।

इस नीति के तहत कई योजनाएं चलाई गईः-

- बांग्लादेश, भारत के बीच अगरतला-अखौरा रेल संपर्क एवं बांग्लादेश के माध्यम से अंतर्देशीय जलमार्ग।
- भारत-म्यांमार,थाईलैंड त्रिपक्षीय राजमार्ग।
- अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध परिसंघ के माध्यम से विभिन्न देशों के साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संबंध मजबूत बनाना।
- कलादान ट्रांसपोर्ट परियोजना के तहत भारत के पूर्वी बंदरगाहों को म्यांमार के सित्रवे बंदरगाह से जोड़ना।

कंबोडिया, लाओस और वियतनाम जैसे देशों को 'आईटीईसी' कार्यक्रम के तहत सूचना एवं तकनीक में सहायता प्रदान करना।

2. पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्रालय (MDoNER) की स्थापनाः- पूर्वोत्तर भारत के सामाजिक और आर्थिक विकास के उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस मंत्रालय का गठन 2001 में किया गया एवं 2004 में इसे पूर्ण मंत्रालय का दर्जा प्रदान किया गया।

यह मंत्रालय अन्य मंत्रालयों एवं विभागों के साथ समन्वय स्थापित करता है ताकि पूर्वोत्तर क्षेत्रों के लिए लागू की गई योजनाएं क्रियान्वित की जा सके। इन विकास परियोजनाओं का 90% वित्तपोषण केंद्र सरकार द्वारा और शेष 10% वित्तपोषण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।

एमडीओएनईआर के अंतर्गत कई योजनाएं संचालित हैं, जिनमें प्रमुख हैं पीएम- देवाइन (PM Devine)- जिसके तहत विशेष रूप से युवाओं और महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर पैदा करना तथा उनमें उद्यमशीलता एवं कौशल का विकास करना शामिल है।

इसके साथ ही पूर्वोत्तर परिषद (NEC) और NESIDS) द्वारा भी कई योजनाएं क्रियान्वित की जा रही है।

3. डिजिटल नॉर्थ ईस्ट विजन 2022:- केंद्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा 'डिजिटल नॉर्थ ईस्ट विजन 2022' जारी किया गया है। इसके अंतर्गत पूर्वोत्तर भारत के लोगों के जीवन को आसान बनाने के लिए डिजिटल तकनीकों के प्रयोग पर बल दिया गया है। इसमें आठ डिजिटल इनफ्रास्ट्रक्चर क्षेत्रों की पहचान की गई है। इसके अंतर्गत डिजिटल सेवाएं, इलेक्ट्रॉनिक्स मैन्युफैक्चरिंग को बढ़ावा, बीपीओ, डिजिटल भुगतान, इनोवेशन, स्टार्टअप और साइबर सुरक्षा शामिल है।

4. भारत में सुरक्षा एवं शांति बहाल का प्रयासः- पूर्वोत्तर भारत की सुरक्षा एवं वहाँ शांति का वातावरण कायम करने के लिये भारत सरकार द्वारा कई कदम उठाए गए हैं। जैसे त्रिपुरा में ब्रू समझौता, असम में बोडो समूहों के साथ 2020 में समझौता, असम में आदिवासियों और चाय बगान के मजदूरों के वर्षों पुराने समस्या को दूर करने के लिए 'आदिवासी शांति समझौता 2022' इत्यादि।

अंतर्राज्यीय विवाद को दूर करने के लिए असम एवं मेघालय राज्यों के बीच समझौता हुआ जिससे दशकों पुराना असम मेघालय सीमा विवाद दूर करने में सफलता मिली।

इसी प्रकार असम एवं अरुणाचल प्रदेश की सरकारों के बीच समझौता कराने का प्रयास किया गया।

5. उत्तर-पूर्व की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एवं संवर्धनः- भारत सरकार द्वारा क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य उत्तर पूर्व भारत की संस्कृतियों का संरक्षण एवं संवर्धन है।

उत्तर-पूर्व के राज्यों में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए 'स्वदेश दर्शन योजना' एवं 'प्रसाद तीर्थ यात्रा' जैसी योजनाएं लागू की गई हैं। इससे उत्तर-पूर्व के लोगों को रोजगार भी मिलेगा एवं वहाँ की संस्कृतियों को संरक्षण भी मिलेगा।

सम्भावनाएंः एक सतत एवं समावेशी विकास

विकास योजनाओं के निर्माण में स्थानीय लोगों की सहभागिता-

अनेकों चुनौतियों के बावजूद पूर्वोत्तर भारत के विकास की अपार सम्भावनाएं हैं। परन्तु यहाँ केवल विकास नहीं बल्कि जन- केंद्रित, समावेशी एवं सतत विकास की आवश्यकता है।

यूँ तो भारत सरकार द्वारा इन क्षेत्रों के विकास के लिए कई कदम उठाए गए हैं। परंतु इन योजनाओं को बनाते समय स्थानीय लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए एवं यहाँ के लोगों के पारंपरिक ग्राम परिषदों एवं स्थानीय स्व-सरकारी संस्थानों की भूमिका भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

पूर्वोत्तर का पर्यटनःअन्वेषित स्वर्ग-

यह क्षेत्र अपनी समृद्ध जैव विविधता, प्राकृतिक सुंदरता एवं विविध संस्कृतियों के कारण 'अन्वेषित स्वर्ग' (unexplored paradis) कहलाता है।

- ईको-टूरिज्म- इन क्षेत्रों को सांस्कृतिक पर्यटन एवं पारिस्थितिकी पर्यटन (ईको-टूरिज्म) के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। इसके लिए 'समुदायिक होम स्टे' जैसे मॉडल को अपनाया जाना चाहिए। इसका सीधा आर्थिक लाभ यहाँ के स्थानीय परिवारों को होगा।
- त्योहारों का संरक्षण- पूर्वोत्तर भारत के त्योहारों को संरक्षित करके यहाँ के पर्यटन को बढ़ावा दिया जा सकता है। नागालैंड का 'हॉर्नबिल' त्यौहार एवं और अरुणाचल प्रदेश का 'जीरो म्यूजिक' फेस्टिवल दोनों पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख त्योहार हैं। ये त्योहार न केवल पर्यटन को बढ़ावा देते हैं बल्कि स्थानीय कला संस्कृति को संरक्षित एवं पुनर्जीवित करते हैं।

जैविक खेती की अपार सम्भावनाएं-

पूर्वोत्तर भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि आधारित है। सदियों से यहाँ पारंपरिक जैविक कृषि पद्धतियां अपनाई जाती रही है एवं वर्तमान में भी यहाँ उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग ना के बराबर होता है साथ ही इन क्षेत्रों में समृद्ध जैव- विविधता विद्यमान है।

इस प्रकार पूर्वोत्तर भारत, भारत का जैविक कटोरा (ओर्गेनिक बॉल ऑफ इंडिया) बनने की क्षमता रखता है। परंतु इसके लिए सरकार को इन क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे जैसे शीत भंडारण, परीक्षण प्रयोगशालाएं और आवागमन के साधनों का विकास करना होगा। साथ ही प्रसंस्करण' पैकेजिंग और विपणन में भी किसानों की सहायता करनी होगी ताकि उन्हें अपने उत्पादों का उचित मूल्य मिल सके।

मानव संसाधनों का विकास-

- इस क्षेत्र की औसत साक्षरता दर (78.5%) राष्ट्रीय औसत (74%) से अधिक है। यहाँ के निवासियों की अंग्रेजी बोलने और समझने की क्षमता का प्रयोग सेवा क्षेत्र में किया जा सकता है।
- पूर्वोत्तर राज्यों में यदि खेल संबंधि बुनियादी ढांचों का विकास हो, तो इन क्षेत्रों से खेल और एथलेटिक्स में कई प्रतिभाएं निकल सकती हैं जो खेल जगत में भारत का नाम रौशन कर सकती है।
- भारत के पूर्वोत्तर राज्यों की संस्कृतियां समृद्ध हैं एवं इन क्षेत्रों में संगीत एवं नृत्य में कई प्रतिभाएं मौजूद हैं। सरकार द्वारा इन्हें प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

निरंतर शांति प्रक्रिया-

पूर्वोत्तर भारत में शांति एवं विकास एक निरंतर एवं बहुआयामी प्रक्रिया है। विगत कुछ वर्षों में कई शांति-समझौते सम्पन्न किये गए एवं राज्यों के बीच सीमा विवादों का समाधान करने का प्रयास किया गया, जिससे इन क्षेत्रों में शांति एवं स्थिरता में वृद्धि हुई है।

सरकार को शेष विद्रोही संगठनों के साथ भी संवाद एवं समझौतों की प्रक्रिया को ईमानदारी से आगे बढ़ाना होगा।

परंतु इस प्रक्रिया में सिविल सोसाइटी, स्थानीय लोगों विशेषकर महिलाओं को शामिल करना आवश्यक है।

निष्कर्ष:-

दशकों की अशांति एवं अलगाव के बाद पूर्वोत्तर भारत आज विकास और समृद्धि के एक नए युग में प्रवेश कर रहा है। भारत सरकार की 'एक्ट ईस्ट नीति', 'डिजिटल नॉर्थ ईस्ट वीजन 2022', पीएम- देवाइन (PM Devine) जैसे कदमों से आशा की एक नई किरण जगी है।

परन्तु पूर्वोत्तर के विशाल महत्त्वाकांक्षाओं के समक्ष चुनौतियां भी विकट है। पूर्वोत्तर के विकास को केवल आर्थिक पैमाने पर नहीं, बल्कि इस क्षेत्र के लोगों के जीवन में आए सकारात्मक बदलाव और उनके सशक्तिकरण में मापा जाना चाहिए। पूर्वोत्तर भारत का सच्चा विकास तभी माना जाएगा जब इस क्षेत्र की विविध संस्कृतियों का संरक्षण एवं संवर्धन करते हुए यहाँ के लोगों की सहभागिता नीति निर्माण में सुनिश्चित की जाएगी।

संदर्भ सूची:

1. बरुआ, संजीव (1999) 'इंडिया अगेन्स्ट इटसेल्फ: असम एड द पॉलिटिक्स ऑफ नेशनलिटि' फिलाडेल्फिया: पेंसिल्वेनिया विश्वविद्यालय प्रेस
2. चौबे, एस के (1999) 'पूर्वोत्तर भारत में पहाड़ी राजनीतिश ओरिएंट लॉन्गमैन हैदराबाद
3. भूषण सी. (2004) 'पूर्वोत्तर भारत में आतंकवाद और अलगाववाद' कल्पाज प्रकाशन, दिल्ली
4. नंदा, एस के, नेशनलिज्म एंड रीजनलिज्म इन इंडिया, कल्पाज पब्लिकेशन, नई दिल्ली
5. पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्रालय रिर्पोट (2020-2024)
6. पूर्वोत्तर परिषद वार्षिक-रिपोर्ट
7. मुखर्जी, केपी, और सुहरिनी रामास्वामी, भारतीय राज्यों का पुनर्गठन, पॉपुलर बुकडिपो, बॉम्बे
8. घई, के के 'इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्सश (2012) कल्याणी पब्लिकेशन
9. www.timesofassam
10. www.thehindu.com.

स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं का योगदान

डॉ० राजेश कुमार कहार

सहायक प्राध्यापक इतिहास, शासकीय महाविद्यालय चौरई, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

सिंधु घाटी सभ्यता मातृ सतात्मक सभ्यता थी प्राचीन काल से ही नारी की पूजा की जाती है।
यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता

प्रस्तावना:-

किसी भी राष्ट्र में नारी का महत्व बहुत अधिक होता है कि क्योंकि नारी और पुरूष राष्ट्र शक्ति के दो पहियों के सदस्य हैं, हमारा इतिहास मातृभूमि के रक्षक लड़ने वाले पुरूषों के समान स्त्रियों के दृष्टांतों से भी भरा पड़ा है उसी प्रकार हमारे संग्राम का इतिहास भी नारी और पुरूष दोनों की मिले-जुले प्रयासों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह बहुत सी महिलाओं ने अपनी वीरता और त्याग से इतिहास में वीरांगना का स्थान प्राप्त किया है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय भारत माता के गौरव को उंचा किया। महारानी लक्ष्मीबाई महान महिला थी जिसने देश की आजादी के लिए हंसते-हंसते अपने प्राणों तक न्यौछावर कर दिया उनकी सहजता, वीरता और बलिदान आजादी के संघर्ष द्वारा महिलाओं को प्रेरणा देता रहा। भारत के गौरवशाली इतिहास में स्त्री शक्ति का विशेष योगदान रहा अनेक महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर देश के प्रति अपनी प्रेम भावना का परिचय दिया। 1857 का विद्रोह, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भूमिका हो या गांधीवादी आंदोलन क्रांतिकारी आजाद हिंद फौज, किसान या वामपंथी आंदोलन या महिला संगठन की भूमिका में भारी संख्या में भाग लिया अपनी आशाओं और आकांक्षाओ के बाद महिलाओं को सार्वजनिक रूप से पहली बार राजनीति में भाग लेने का मौका मिला। स्वतंत्रता आंदोलन को एक देश पूजा माना गया अर्थात् एक माता की स्वतंत्रता के लिए दूसरी माता का बलिदान है इस धार्मिक मिशन का उदेश्य था किसी कार्य की सिद्वि के लिए मां शक्ति आराधना की जाती है इस रूप में महिलाओं को शक्ति के रूप में मानकर एक नई धारा को जन्म देते हुए आंदोलन से जुड़ना। हिंदी की प्रसिद्व कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी रानी की वीरता के गुड़गान में निम्नांकित पक्तियां लिखी -

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी। बुढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी। गुमी हुई आजादी की कीमत सब ने पहचानी थी। दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी। चमक उठी सन् 57 मे वह तलवार पुरानी थी बुंदेलों हर बोलों के मुंह से हमने सुनी कहानी थी। खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

भारत की वीरांगनाएं:-

भारतीय कवियत्री महारानी के शत्रु ने उनकी वीरता की प्रशंसा करते हुए डायरी में रानी की प्रषंसा करते हुए लिखा है कि महारानी का उच्च कुल आश्रितों और सिपाहियों के प्रति उनकी असीम उदारता और कठिन समय में भी अधिक धीरज उनके इन गुणों ने रानी को हमारा एक अजेय प्रतिदंद्वी बना दिया था वह शत्रुन की सबसे बहादुर और सर्वश्रेष्ठ सी नेत्री थी महाराजा गंगाधर राव की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने झांसी के खजाने में राशि को भी सील कर दिया और झांसी पर अंग्रेजी सेना तैनात कर दी। झांसी मेरी है भले ही मुझे अपने प्राण देने पड़े पर मैं झांसी पर अंग्रेजों का अधिकार नहीं होने दूंगी।

सन 1857 का स्वतंत्रता संग्राम प्रथम संग्राम था जिस संग्राम की नायिका झांसी की रानी लक्ष्मीबाई थी अंग्रेज हुकूमत के विरूद्व बिगुल बजाने वाली महान वीरांगना थी। इस क्रांति में राजघराने की महिलाओं ने भी पूर्ण जोश के साथ एकजुटता दिखाई। जिसमें महारानी लक्ष्मी बाई अहिल्याबाई होल्कर और रानी चेन्नम्मा जैसी वीरांगनाएं शामिल थीं। जिन्होंने अंग्रेजों का डटकर सामना किया इस आंदोलन में बेगम हजरत महल का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा भारत की स्वतंत्रता संग्राम में आक्रमणकारियों के खिलाफ स्त्री शक्ति सदैव अग्रणी रही। राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास महिलाओं के त्याग, बलिदान व पराक्रम से भरा पड़ा है। सन 1857 में प्रथम स्वाधीनता संग्राम में पुरूष वर्ग के साथ इसमें महारानी लक्ष्मीबाई, झलकारी, बाई, बेगम हजरत महल, रानी चेन्नम्मा, रानी दुर्गावती आदि अनेक महिलाओं का विशिष्ट योगदान रहा। महारानी लक्ष्मी बाई झांसी के राजा गंगाधर राव की पत्नी थी उन्होंने सन 1857 की लड़ाई लडी जिन्होंने अंग्रेजों के विरूद्व युद्व किया और अंत में वीरगति को प्राप्त हुई महारानी लक्ष्मीबाई ने भारत की स्वतंत्रता हेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया रानी युद्व क्षेत्र में उतर पड़ी आगरा की फौजियों के साथ डटकर मुकाबला किया परंतु कुछ विश्वास घातियों ने शत्रु का साथ दिया पर लक्ष्मीबाई भगवती काली बन गई थी। रानी लक्ष्मी बाई के साथ सहयोगी के रूप में झलकारी बाई का भी इस क्रांति में अप्रत्यम योगदान रहा यह झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की निमित्त सेवा में महिला शाखा दुर्गा दल की सेनापति थी झलकारी बाई का जन्म बुंदेलखंड में हुआ था वह विवाह उपरांत झांसी आ गई थी लक्ष्मीबाई की हमसकल होने कारण शत्रु को चकमा देने के लिए वह रानी के भेस में युद्व करती थी। सत्र 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जब झांसी की रानी अंग्रेजी सेना से घिर गई तो झलकारी बाई ने बडी सूझबूझ से स्वामी भक्ति का परिचय दिया। रानी के बेस में वे युद्व करते हुए अपने अंतिम समय अंग्रेजों को हाथ पकड़ी गई परंतु उन्हें भागने का अवसर मिल गया अंत में जय भवानी कहती हुई धरती पर गिरी और वीरगति को प्राप्त हुई। रानी तपस्विनी जो की लक्ष्मी बाई की भतीजी थी

तथा बेंगलुरू की जमींदार नारायण नाम की बेटी थी उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अग्रेजों के विरूद्व युद्व किया, बेगम हजरत महल की भूमिका भी इस आंदोलन में महत्वपूर्ण रही वह अवध के नवाब की बेगम थी। रानी अवंतीबाई लोधी ने भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह रामगढ़ से थी वह रेवांचल से मुक्ति आंदोलन के सूत्र धार रही भारत के इतिहास में एक नई क्रांति बनकर आई उन्होंने अंग्रेजों से लंबे समय तक युद्व किया था उन्होंने देखा कि चारों तरफ से अंग्रेजी सेना ने घेर लिया है तो स्वयं तलवार से खुद पर प्रहार किया और देश के इसमें अपने प्राण न्यौछावर कर दिया। रानी दुर्गावती कालिंजर के राजा की इकलौती संतान थी दुर्गा अष्टमी पर जन्म होने के कारण उनका नाम दुर्गावती रखा गया वह अपने नाम के अनुसार ही तेज, साहसी और सूर्य की प्रतिमूर्ति थी वह भारत की एक प्रसिद्व वीरांगना थी। वीरांगना महारानी दुर्गावती ने अकबर के आगे झुकने से इंकार कर दिया और युद्व भूमि को चुना इस वीरांगना ने अंत समय आत्म बलिदान कर दिया।

राष्ट्रीय आंदोलन एवं महिलाएं:-

गांधी युग में राष्ट्रीय आंदोलन ने जन आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया जिसने महिलाओं में राष्ट्र चेतना विकसित की जिस कारण स्त्री ने विदेशी शासन से मुक्ति पाने हेतु राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को प्राथमिकता दी और घरों से बाहर निकाल कर राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में प्रमुख रूप से उषा मेहता, दुर्गा देवी देशमुख, अरूणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, विजय लक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू, सरोजिनी नायडू कस्तूरबा गांधी मैडम भीकाजी व एनिबेसेंट ने विशेष योगदान दिया। जिसके फलस्वरूप देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई आजादी की बुनियाद बलिदानों पर ही प्रारंभ हुई, यह अनमोल दौलत अत्यंत संघर्षो के फलस्वरूप प्राप्त हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के अनमोल सितारे देश के मानस पटल पर सदैव ज्योतिमान होते रहेंगे। प्रत्येक भारतीय को देश प्राणों से भी प्यारा है। इस संसार में ईष्वर ने स्त्री के समान कोई शक्ति उत्पन्न नहीं कि भारतीय इतिहास में स्वर्णिम अध्याय के निर्माण में नारी शक्ति का विषेष योगदान रहा। मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा देशभक्ति के जीवन का धर्म बन गया इसके लिए भारतीय इतिहास शौर्य और पराक्रम से भरा पड़ा है इसका कण-कण बलिदानी है साहस, त्याग और बलिदान के बल पर हमने स्वतंत्रता प्राप्त की है। जिसमें स्त्रियों-पुरूष दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। स्वतंत्रता आंदोलन में नारी शक्ति का विषिष्ट योगदान रहा उन्होंने इस क्रांति में बढ चढ़कर भागीदारी की इसने देश के प्रति प्रेम भावना का परिचय देते हुये उसे स्वतंत्र कराने हेतु पूर्ण उत्साह से भागीदारी की। महिला आंदोलन पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव रहा महिलाओं ने घरों से निकलकर देश के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का निर्णय लिया उनका यह भाव ही बलिदानी प्रवृत्ति को दर्षाता है महिलाओं ने देश हित के कार्यो मे भाग लिया उन्होंने राजनीतिक विरोधियों विदेशी वस्तुओ को बेचने वाली दुकानों की घेरेबंदी भी की और देशभक्ति पर गीतों को प्रभात फेरी के माध्यम से प्रस्तुत किया संपूर्ण देश की महिलाओं ने छुपे हुए राजनीतिक कार्यकर्ताओं की भोजन का भी प्रबंध किया। महिलाओं ने सिर्फ आंदोलन नहीं बल्कि क्रांतिकारी आंदोलन में भी भागीदारी की। कस्तुरबा बाई महात्मा गांधी जी की पत्नी थी उन्होंने भी स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, सुप्रसिद्व कवित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में चुनौतियों का सामना किया पर हार नहीं मानी सरोजिनी नायडू ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से जन जागरूकता की अलख जगाई ओर राष्ट्रीय चेतना विकसित की। विदेशी होते हुए सिस्टर निवेदिता ने भारत को आजाद करने में देशभक्ति की मदद की भीकाजी कामा ने जर्मनी में 22 अगस्त 1960 में अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस मे तिरंगा फहराया भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में प्रयास किए। दुर्गाबाई देशमुख ने भी महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया वह लोकसभा सदस्य होने के साथ उन्होंने भारत की आजादी में एक वकील सामाजिक कार्यकर्ता और एक राजनेता की सक्रिय भूमिका निभाई। पद्म भूषण से सम्मानित लक्ष्मी सहगल एक डॉक्टर थे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता भी थी उनका पूरा नाम लक्ष्मी स्वामीनाथन सहगल था वह नेता जी सुभाष चंद्र बोस की विषेष अगुवाई थी यही कारण रहा था कि इंडियन नेषनल आर्मी मे शामिल हुई।

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को बार-बार यह कहकर जोड़ा गए कि जब तक महिलाओं की भीतरी शक्ति बाहर नहीं आएगी बलिदान अधुरा ही रहेगा। गांधी जी ने इसका समाधान निकाला उसने आंदोलन को हिंसात्मक बनाया जिसमें धैर्य, त्याग और पीड़ा सर्वोपरि थे और जो मुक्त महिलाओं के ही गुण माने जाते थे महिलाओं को आंदोलन मे आगे करना कांग्रेस की रणनीति का हिस्सा था, क्योकि महिलाओं का राजनीति में प्रवेष उनके जीवन पर काफी असर पड़ा और उनकी स्थिति मे बदलाव आया महिला चाहे अपनी मर्जी से या परिवार की मर्जी से राजनीति में जाना प्रारंभ किया हो लेकिन स्वतंत्रता से काफी कुछ परिवर्तन देखने को मिलता है इससे सामाजिक दायरा बड़ा। महिला संगठनों का मताधिकार इस बात पर था की राजनीति में उनका कद बढ़ाया इसी कारण कांग्रेस को भी उनमें सभा में महिलाओं को शामिल करना संभव हो सके। प्रथम विष्व युद्व के समय भारत में एनी बेसेंट और सरोजिनी नायडू जैसी नेताओं के उभरने से कांग्रेस में महिलाओं की मौजूदगी तथा पहल करने का जो एहसास दिलाया इससे प्रेरित होकर महिलाओं ने राजनीति मे शामिल होना आरंभ किया। गांधी जी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। वह कहते हैं कि जब महिलाएं सत्याग्रह आंदोलन में शामिल होगी तभी पुरूष भी आंदोलन मे पूरा योगदान दे पाएंगे। इस प्रकार भारतीय महिला पुरूषों को आंदोलन मे लाने की प्रेरणा स्त्रोत बनी उन्होंने महिला नेताओं से यह कहा कि उन्हें सामाजिक सुधार महिला, षिक्षा एवं महिला अधिकारों के लिए कानून बनाने के लिए काम करना चाहिये ताकि उन्हें बुद्वि उनके बुनियादी अधिकारी मिल सके इस प्रकार गांधी जी के ऊपर विष्वास करके महिलाओं मे राजनीति मे प्रवेष लेना प्रारंभ किया समाज सुधार आंदोलन और महिलाए 1857 के विद्रोह में जिसे भारत का प्रथाम स्वतत्रंता संग्राम माना जाता है जिसने भारत में अंग्रेजी राज की जड़ों को हिला दिया था। 19वीं शताब्दी के अंतिम चरणों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही स्त्रियों की भूमिका में काफी कुछ परिवर्तन आए। 1890 में भारतीय महिला उपन्यासकार तथा ब्रिटिष साम्राज्य की पहली महिला स्नातक कादंबरी गांगुली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेषन मे प्रतिनिधि के तौर पर शामिल हुई थी उनमें आत्मविष्वास का बढ़ना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति सी हो गई थी। इसका प्रभाव यह हुआ कि सावित्रीबाई फुले और पंडिता रमाबाई जैसे कुछ एक महिलाओं ने खुलकर औपनिवेषिक सत्ता पर प्रहार किया। सावित्रीबाई फुले भारत की प्रथम स्त्री अध्यापिका बनी इस क्रांतिकारी का काफी विरोध हुआ उन पर गोबर तक फेंका गया लेकिन उनके आत्मविष्वास को कोई डिगा ना सका नारी उत्थान के लिए भारत में वह अपनी तरह का सर्वप्रथम प्रयास था। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के पदार्पण से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का नया चरण प्रारंभ होता है दक्षिण अफ्रीका में ही अपने संघर्षो के दौरान गांधी जी महिलाओं की शक्ति का अनुभव हो चुका था गांधी जी जानते थे कि राष्ट्रीय आंदोलन को सच्चे अर्थ में जन आंदोलन बनाने के लिए इसमें महिलाओं की व्यापक भागीदारी

बहुत आवष्यक है गांधी जी ने भारतीय आदर्ष भारतीय नारी की अवधारणा को प्रस्तुत किया और महिलाओं को राष्ट्र की सेवा में लग जाने और अपने देश के लिए बलिदान देने का आहवान किया उन्होंने स्त्री और पुरूष का भी स्वाभाविक श्रम विभाजन पर जोर दिया। आंदोलन से पहले स्वदेशी आंदोलन ने जिसकी प्रमुख विशेषता, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी प्रदर्शनी या स्वदेशी समर्थक नाटक खेले गए, चरके से सूत कातना आदि सभी कार्यक्रमों मे महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई बंगाल मे सरोजिनी बैस और कुमुदिनी मित्तल पंजाब में सुषीला देवी लाहौर में हरदेवी दिल्ली में आग्यवती और वेदकुमारी गुजराज और महाराष्ट्र में अवंतिका बाई यषोदा बाई अगरकर और सत्यभामा ने भाषण दिए तथा लाखों महिलाओं को आंदोलन में जोड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं को अपनी और आकर्षित किया जिससे असहयोग आंदोलन मे पहली बार महिलाएं भारी संख्या मे आंदोलन से जुडी सैकड़ो महिलाएं चरखा बेचने गली-गली गई उन्होंने, विदेशी कपड़ों की होली जलाई उन्होंने शराब की दुकानों पर धरना दिया शराब के लाइसेंस की सरकारी नीलामी को रोका एवं राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।

निष्कर्ष:-

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं ने देशभक्ति व विदेशी शासन से मुक्ति के भाव से फलीभूत होकर राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्माण किया और घरेलू सार्वजनिक जीवन की जिम्मेदारियों को एक साथ निभाया राष्ट्रवाद अंग्रेजो के विरूद्व केवल राजनीतिक जंग नही थी वरन वह दो राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक और वैचारिक जान भी थी। इसमें महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण थी। महिलाओं को स्वतंत्र समाज में नई स्मृति के साथ नया स्थान पर नेतृत्व की भावना धर्म परायणता, त्याग, आत्म बलिदान व अपनी राजनीतिक आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में स्त्री पुरूष एक दूसरे के पूरक बने इन आंदोलनो में महिलाओं के पदार्पण से मध्यकाल से चली आ रही पर्दा प्रथा की समाप्ति भी देखना प्रारंभ हो गई महिलाएं बगैर पर्दा के आंदोलन मे भाग ले रही है आंदोलन मे महिलाओं की आत्मरक्षा की विकास हुआ जिससे भी देश के स्वतंत्रता के महत्व के साथ अपने स्वाधीनता के महत्व को समझ सकी हम कह सकते हैं भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में नारी शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका ही उनके त्याग, बलिदान के कारण देश को आजादी प्राप्त हुई सन 1857 की क्रांति ने भारत की दास्तान की बेड़ियां तोडी एवं स्वतंत्रता भारतीय इतिहास में उनकी स्वर्णिम गाथा सदैव अमर रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. डॉ. उर्मिला प्रकाष मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2002
2. आर. के. गुप्ता, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, प्रयंक प्रकाशन गृह दिल्ली, 2006
3. दीप्ति प्रिया महरोत्रा, भारतीय महिला आंदोलन, सम्पूर्णा ट्रस्ट नई दिल्ली, 2001
4. पश्यंती शुक्ला, भारत मे महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति, कुरूक्षेत्र, 2016
5. चन्द्रबली त्रिपाठी, भारतीय समाज मे नारी आदर्शो का विकास, उत्तर प्रदेश, 1967
6. प्रीति प्रभा गोयल, भारतीय संस्कृति, राजस्थानी ग्रथांगार जोधपुर

"प्रेम की सार्वभौमिकता और हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य: एक आलोचनात्मक विवेचन"

डॉ० किरण वट्टी

सहायक प्राध्यापक हिंदी, राजा भोज शासकीय महाविद्यालय, मंडीदीप, जिला-रायसेन, मध्यप्रदेश

सारांश

मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों में से प्रेम सर्वाधिक शाश्वत और सार्वभौमिक तत्व है। यह केवल इतना ही नहीं सामाजिक संबंधों का आधार है, बल्कि साहित्यिक रचनाओं की प्रेरणा और जीवन-दर्शन का प्रमुख आयाम भी है। विश्व-साहित्य के समान ही हिन्दी साहित्य में भी प्रेम की अभिव्यक्ति निरन्तर और विविध रूपों में दिखाई देती है। हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य, जो युगीन चेतना और मानव अनुभवों का संवाहक है, प्रेम को केवल दैहिक या भावनात्मक स्थिति के रूप में न देखकर उसके दार्शनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को भी प्रतिपादित करता है। हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम कभी आत्मीयता और अपनत्व के रूप में, तो कभी त्याग और आत्मबलिदान की उच्चतर अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है।

प्रेम की सार्वभौमिकता इस तथ्य में निहित है कि यह समय, स्थान, संस्कृति और परिस्थितियों की सीमाओं को लांघकर मानव हृदय की गहनतम संवेदनाओं को जाग्रत करता है। हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम की अभिव्यक्ति बाल-सुलभ निश्छलता से लेकर परिपक्व वैचारिक गहराई तक, और दैहिक आकर्षण से लेकर आत्मिक एकता तक की यात्रा को प्रस्तुत करती है। प्रेमचन्द, अज्ञेय, जैनेन्द्र, राहुल सांकृत्यायन और अन्य कथाकारों की रचनाओं में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्रेम व्यक्ति और समाज दोनों के जीवन में नैतिकता, करुणा, त्याग और सहयोग की भावभूमि तैयार करता है। हिन्दी कथा-साहित्य इस प्रकार प्रेम को केवल निजी अनुभव न मानकर सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श का हिस्सा बना देता है।

यह शोध-विवेचन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि प्रेम की सार्वभौमिकता हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य में बहुआयामी स्वरूप में व्यक्त होती है। यह केवल इतना ही नहीं रचनाकार की आत्मानुभूति का दर्पण है, बल्कि मानवता के शाश्वत मूल्य-समुच्चय का भी सूचक है। हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम की अभिव्यक्ति अन्ततः जीवन और साहित्य दोनों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होती है, जो मानवता के सर्वांगीण विकास की आधारशिला का निर्माण करती है।

प्रमुख शब्द

- प्रेम की सार्वभौमिकता
- हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य
- संवेदनात्मक अभिव्यक्ति
- त्याग और करुणा
- सांस्कृतिक विमर्श
- दैहिकता और आत्मिकता
- साहित्यिक मूल्य
- मानवीय एकता
- सामाजिक चेतना
- रचनात्मकता

प्रस्तावना

प्रेम मानव जीवन की सबसे सहज, स्वाभाविक और शाश्वत प्रवृत्ति है। यह केवल भावनात्मक संबंधों का साधन नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव संस्कृति और साहित्य का मूलाधार है। साहित्य सृजन के आरंभिक बिन्दु से ही प्रेम की अभिव्यक्ति ने उसे भावनात्मक गहराई, सौन्दर्यात्मक ऊँचाई और दार्शनिक परिपक्वता प्रदान की है। हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम में भी प्रेम का स्वरूप निरन्तर बहुआयामी रूप में सामने आया है। हिन्दी कथा-साहित्य, जो जीवन-यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का सजीव दर्पण है, उसमें प्रेम की अभिव्यक्ति दैहिक आकर्षण से लेकर आत्मिक एकत्व और सार्वभौमिक बंधन तक दिखाई देती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम को मानव जीवन का सहजतम आधार माना है। उनके शब्दों में-"प्रेम प्रकृति की सहज प्रवृत्ति है, जिसमें मनुष्य को सम्पूर्ण जीवन का सार तत्व मिलता है।" शुक्लजी का यह कथन स्पष्ट करता है कि प्रेम मात्र भावनात्मक स्थिति नहीं, बल्कि जीवन की उस मूल प्रवृत्ति का प्रतीक है जो मनुष्य को सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक स्तर पर संगठित करती है।

इसी विचारधारा को स्वामी विवेकानन्द ने भी एक उच्च आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार-"प्रेम ही विश्व-शांति और मानवीय एकता का वास्तविक आधार है, क्योंकि प्रेम वह शक्ति है जो हृदयों को जोड़कर सम्पूर्ण विश्व को परिवार बना देती है।" विवेकानन्द के इस दृष्टिकोण से सुस्पष्ट होता है कि प्रेम मात्र निजी भावनात्मक अनुभव नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए शांति और समरसता का मूल सूत्र है।

हिन्दी आलोचक डॉ. कमल कुमार जौहरी ने हिन्दी उपन्यासों के विश्लेषण में यह रेखांकित किया है कि प्रेम साहित्य में केवल भावुकता या रोमानी आकर्षण के रूप में नहीं आता, बल्कि यह चरित्रों के मानसिक और नैतिक विकास की आधारशिला भी बनता है। उनके अनुसार, प्रेम पात्रों की आत्मा में वह ऊष्मा उत्पन्न करता है जिससे वे संघर्ष, त्याग और सामाजिक दायित्व का निर्वहन कर पाते हैं। इस प्रकार प्रेम साहित्य में जीवन की सक्रिय ऊर्जा के रूप में कार्य करता है।

व्यापक स्तर पर देखें तो प्रेम की सार्वभौमिकता उसकी उसी क्षमता में है जो वह मानवीय जीवन की विविध प्रवृत्तियों को एक सूत्र में बाँध देती है। प्रेम व्यक्तिगत जीवन में आत्मीयता और करुणा उत्पन्न करता है, तो सामाजिक स्तर पर सहयोग और समरसता का आधार बनता है। यही कारण है कि हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम का स्वरूप दार्शनिक गहराई और सांस्कृतिक चेतना दोनों के साथ प्रकट हुआ है। प्रेमचन्द, प्रसाद, अज्ञेय, जैनेन्द्र जैसे रचनाकारों ने प्रेम को केवल व्यक्तिगत अनुभव न मानकर सामाजिक यथार्थ और मानवीय विकास की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत किया।

स्पष्ट है कि प्रेम की संवेदनाओं ने हिन्दी व हिन्दी कथा-साहित्य को जीवन के विविध आयामों से जोड़ा और उसे शाश्वत मानवीय मूल्यों का वाहक बनाया। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम साहित्य की आत्मा है और उसकी सार्वभौमिकता ही उसे शाश्वत प्रासंगिकता प्रदान करती है।

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम : दार्शनिक और सांस्कृतिक आयाम

प्रेम भारतीय जीवन-दर्शन का अभिन्न अंग है। साहित्य, विशेषकर हिन्दी कथा-साहित्य, मानव-हृदय की उन गहन संवेदनाओं का दर्पण है जिनमें प्रेम की अनुभूति सबसे प्रमुख और सार्वभौमिक मानी जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि प्रेम जीवन को सबसे सरल, सहज और सौन्दर्यमय बना देता है; प्रेम प्रकृति के सौन्दर्य से लेकर मानव जीवन की आत्मीयता तक को आपस में जोड़ने का सूत्र है। इसी कारण से प्रेम मात्र भावनात्मक अनुभूति न रहकर सांस्कृतिक चेतना और दार्शनिक दृष्टिकोण का रूप ले लेता है।

स्वामी विवेकानन्द ने प्रेम को मानवीय आत्मा का सबसे शुद्ध और सार्वभौमिक अनुभव माना है। उनके अनुसार, "प्रेम वही है जो हमें ईश्वर के समीप ले जाए, जो हमें आत्मकेंद्रित न बनाकर विश्वकेंद्रित बनाए"। इस विचार से सुस्पष्ट होता है कि प्रेम का दायरा व्यक्तिगत सीमाओं से बहुत आगे जाकर आध्यात्मिक और सार्वभौमिक हो जाता है।

डॉ. कमल कुमार का मानना है कि प्रेम हिन्दी कथा-साहित्य में केवल व्यक्तिगत आकर्षण का विषय नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों में विकसित होता है। वह प्रेम को जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा और सामाजिक चेतना का वाहक मानते हैं। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम का स्वरूप एक ओर आत्मीय, भावुक और व्यक्तिगत है, वहीं दूसरी ओर यह सांस्कृतिक, सामाजिक और दार्शनिक मूल्यों का संवाहक भी है।

हिन्दी कथा-साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु का विशेष महत्व है। उनकी कहानियाँ ग्रामीण जीवन के यथार्थ और प्रेम की सहज अभिव्यक्ति को सामने लाती हैं। 'रसप्रिया' तथा 'मेरे गाँव' जैसी कहानियों में प्रेम मात्र निजी भाव नहीं, बल्कि लोकजीवन और लोकसंस्कृति का अविभाज्य हिस्सा बनकर सामने आता है। यहाँ प्रेम त्याग, संवेदना और सामूहिकता का प्रतीक है।

इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की कहानी 'एक कमजोर लड़की की कहानी' प्रेम की विफलता और सामाजिक यथार्थ के बीच की द्वंद्वात्मकता को उभारती है। इसमें प्रेम मात्र दो व्यक्तियों का निजी अनुभव न होकर, स्त्री-जीवन की सामाजिक विवशताओं और असमानताओं का आईना है।

शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' में प्रेम का रूप और भी गहरे मानवीय संबंधों से जुड़ता है। यह कहानी दिखाती है कि किस प्रकार प्रेम जीवन के श्रम, संघर्ष और सांस्कृतिक धरोहर से रचा-बसा होता है। यहाँ प्रेम त्याग और श्रमजीवी जीवन की संवेदनाओं के साथ गुँथा हुआ है, जिससे यह सुस्पष्ट होता है कि प्रेम मात्र व्यक्तिगत संबंध नहीं, बल्कि लोक-संस्कृति और सामूहिक जीवन-दर्शन का हिस्सा भी है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम का दार्शनिक और सांस्कृतिक आयाम बहुआयामी है। यह केवल रूमानी या व्यक्तिगत आकर्षण की अनुभूति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य और मानवीय संवेदनाओं का गहन प्रतीक है। प्रेम यहाँ जीवन को जोड़ने वाली शक्ति है-जो मनुष्य को मनुष्य से, और मनुष्य को व्यापक समाज और संस्कृति से एकात्म करती है।

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम का सामाजिक यथार्थ और मानवीय संघर्ष

प्रेम मात्र भावनाओं का शुद्ध और रूमानी रूप नहीं है, बल्कि यह जीवन की जटिलताओं और सामाजिक यथार्थ के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य विशेषत: उपन्यास और कहानियाँ, इस सत्य को उद्घाटित करती हैं कि प्रेम जब सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों और वर्गीय संरचनाओं से टकराता है, तब वह संघर्ष और विद्रोह का रूप धारण कर लेता है। डॉ. शांति भारद्वाज ने स्पष्ट किया है कि हिन्दी उपन्यासों में प्रेम जीवन की व्यावहारिक कठिनाइयों, पारिवारिक दबावों और सामाजिक विषमताओं के बीच संघर्षशील रूप में उभरता है, जिससे साहित्य में यथार्थ का गहन चित्रण संभव हो पाता है।

प्रेमचंद के उपन्यास इस यथार्थवादी परंपरा के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। 'गोदान' में होरी और धनिया का दांपत्य-प्रेम मात्र व्यक्तिगत आत्मीयता नहीं है, बल्कि किसान-जीवन के संघर्ष, गरीबी और शोषण की परिस्थितियों में परखा गया एक सामाजिक अनुभव है। प्रेम यहाँ आत्मसमर्पण, त्याग और जीवन-संघर्ष की

त्रिवेणी बनकर सामने आता है। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने उचित ही कहा है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में प्रेम का शिल्प केवल इतना ही नहीं कलात्मक सौंदर्य प्रस्तुत करता है, बल्कि यह सामाजिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति भी है।

इसी प्रकार प्रेमचंद की 'सेवासदन' में प्रेम स्त्री-जीवन की विडंबनाओं से जुड़ा हुआ है। इसमें सुमन का चरित्र यह दर्शाता है कि स्त्री जब सामाजिक रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक संरचनाओं से टकराती है, तब उसका प्रेम मात्र व्यक्तिगत नहीं रह जाता, बल्कि आत्मसम्मान और स्वतंत्रता के संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। यह प्रेम, समाज में व्याप्त अन्याय और असमानता को चुनौती देता है।

कहानी साहित्य में भी प्रेम का यह यथार्थपरक और संघर्षशील स्वर दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में प्रेम मनोवैज्ञानिक गहराई और सामाजिक बंधनों के बीच द्वंद्व की स्थिति में प्रस्तुत होता है। वहीं यशपाल के हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम, समाजवादी दृष्टिकोण से देखा गया है-जहाँ यह वर्गीय चेतना, स्वतंत्रता और समानता का वाहक बनता है।

सुस्पष्ट है कि हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम मात्र भावनात्मक अनुभव नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संघर्षों, विषमताओं और विद्रोही चेतना से गहराई से जुड़ा हुआ है। प्रेम यहाँ मानवीय अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा का माध्यम बनता है। इस प्रकार प्रेम की सार्वभौमिकता केवल हृदयगत अनुभूति तक सीमित न रहकर, सामाजिक चेतना और परिवर्तन का भी सशक्त उपकरण सिद्ध होती है।

प्रेम की सार्वभौमिकता : सौंदर्यबोध, करुणा और आध्यात्मिक उत्कर्ष का संगम

प्रेम का साहित्य में प्रस्तुत स्वरूप केवल एक व्यक्तिगत संवेदना या इन्द्रियात्मक अनुभूति तक सीमित नहीं रह जाता; वह साहित्य के माध्यम से सौंदर्यबोध, करुणा और आध्यात्मिक उन्नयन का समन्वय बनकर उभरता है। पारम्परिक धर्मग्रंथों से आधुनिक साहित्यिक आलोचना तक इस धारणा का सुस्पष्ट प्रमाण मिलता है-शिवपुराण के वर्णन में रचना-प्रकिया और सृष्टि के आद्य तत्वों के में 'काम/प्रेम' की भूमिका को रेखांकित किया गया है, जहाँ सृष्टि के उत्त्पादन में काम की उर्जा और इच्छाशक्ति का विशेष महत्व बताया गया है। यह सूक्त हमें बताती है कि प्रेम केवल इतना ही नहीं निजी आनन्द का स्रोत है, बल्कि सृष्टि-ऊर्जा का, सृजन-शक्ति का भी प्रतीक है; और इसी वजह से साहित्य में प्रेम का प्रयोग अक्सर रचनात्मक एवं आध्यात्मिक आंदोलनों का कारण बनता हैं।

साहित्यिक विमर्श में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम को उस सहज मानवीय प्रवृत्ति के रूप में देखा है जो व्यक्ति को प्रकृति और समाज से जोड़कर एक सौन्दर्यबोध तथा नैतिक आत्मचेतना पैदा करती है। शुक्लजी के तर्कानुसार प्रेम मानव जीवन को सौन्दर्यात्मक रूप से समृद्ध करने के साथ-साथ व्यक्ति के भीतर करुणा और समर्पण की भावनाएँ उत्पन्न करता है; यह सौन्दर्य ही अंततः करुणा और आध्यात्मिक चिंतन का आधार बनती है। साहित्य-अध्ययन के दृष्टिकोण से हडसन जैसा सिद्धान्तिक ढांचा यह समझने में मदद देता है कि किस प्रकार किसी कृति में सौन्दर्यबोध और भावगत अनुभव पाठक के आत्मिक परिवर्तन का मार्ग खोलते हैं-कला का प्रभाव केवल संवेदना तक सीमित नहीं रह जाता, वह चिन्तन और आचार में भी परिवर्तन ला सकता है।

हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य के सजीव उदाहरण इस दार्शनिक-सैद्धान्तिक आधार को पुष्टि करते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ जहाँ ग्राम्य जीवन की भाषा, प्रकृति का विवरण और मानवीय संवेदना की सूक्ष्मता को उभारती हैं, वहाँ प्रेम का रूप केवल इतना ही नहीं स्नेह-आकर्षण के रूप में मिलता है बल्कि एक प्रकार के लोक-सौन्दर्य और सहअस्तित्व की अनुभूति के रूप में विकसित होता है। रेणु की कहानियों में प्रकृति के वर्णन से उत्पन्न सौन्दर्यबोध पात्रों में करुणा और एक प्रकार का आध्यात्मिक शांति-अनुभव उत्पन्न करता है-प्रकृति और प्रेम का यह मेल रचनाओं को आध्यात्मिकतर बनाता है।

इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की 'एक कमजोर लड़की की कहानी' में प्रेम मात्र निजी सम्बन्ध या रोमांटिक आकांक्षा नहीं रहता; वह उस कमजोर नारी-अवस्था के प्रति सहानुभूति और संवेदनशीलता का रूप लेता है जो सामाजिक स्थितियों के कारण उपेक्षित रह जाती है। यहाँ प्रेम करुणा का एक माध्यम बनकर नारी के अस्तित्व को आध्यात्मिक गरिमा और मानवीय्ता प्रदान करता है-यादव की प्रस्तुति दिखाती है कि प्रेम और करुणा के योग से ही मनुष्य में आत्म-स्वाभिमान और मोक्ष के तत्व के समान परिवर्तन संभव होते हैं।

शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' जैसी कहानियाँ प्रेम को सामुदायिक श्रम, प्राकृतिक संकट और लोक-धर्म के साथ जोड़ती हैं; इन रचनाओं में प्रेम के करुणामय स्वर से समुदाय की आत्मा जच्चित होती है और कठिनाईयों के बीच भी एक आध्यात्मिक स्थिरता का अनुभव होता है। ऐसे सन्दर्भों में प्रेम मात्र व्यक्तिगत संबंध न रहकर एक सामूहिक सौन्दर्य-अनुभूति और परिष्कृत नैतिक चेतना का स्रोत बन जाता है-इस प्रकार प्रेम सामाजिक जीवन में ही नहीं, आन्तरिक आध्यात्मिकता में भी वृद्धि करता है।

प्रेम की यह यात्रा-निजता से सार्वजनीनता की ओर, इन्द्रियबोध से अध्यात्मबोध की ओर-उन्हीं साहित्यिक तन्त्रों में स्पष्ट दिखती है जहाँ रचना का शिल्प और रूप-सौन्दर्य पाठक को आन्तरिक सम्वेदना की ओर ले जाता है। साहित्य-आलोचना में दास तथा नारायण के विचार इस बात की पुष्टि करते हैं कि साहित्यिक भाषा और रूप-शिल्प प्रेम को सिर्फ विषय नहीं रहने देते; वे उसे चिन्तन-वर्ग के माध्यम से एक सार्वभौमिक मूल्य में रूपान्तरित करते हैं। गुलाब राष के कव्य-रूप विश्लेषण से भी यह सुस्पष्ट होता है कि कलात्मक आकृतिकरण-छन्द, रूपक, ध्वनि-लालित्य-प्रेम के अनुभूत स्वरूप को उस स्तर पर पहुँचाते हैं जहाँ वह पाठक के भीतर करुणा और आध्यात्मिक चिंतन को प्रेरित कर सके।

इस प्रकार स्पष्ट कहा जा सकता है कि हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम का सार्वभौमिक स्वरूप एक त्रयोदशात्मक समन्वय प्रस्तुत करता है-सौन्दर्यबोध जो अनुभव करने की क्षमता देता है, करुणा जो मानवीयता को जगाती है, और आध्यात्मिक उत्कर्ष जो मनुष्य को समग्रता की ओर अग्रसर करता है। इस समन्वय में प्रेम मात्र निजी अनुभूति नहीं रहकर साहित्य का वह तत्त्व बन जाता है जो समाजीकरण, सांस्कृतिक चेतना और आन्तरिक मोक्ष-इन तीनों को एक साथ प्रेरित करता है। यही कारण है कि प्रेम की सार्वभौमिकता हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य की शाश्वत प्रासंगिकता और उसकी मानवीय उन्नति में निर्णायक भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष

हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य की परम्परा का गहन अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि प्रेम उसका केवल विषय-वस्तु मात्र नहीं, बल्कि उसकी आत्मा और जीवन-ऊर्जा है। साहित्य की विविध धाराओं-प्रेमचन्द के यथार्थवादी चित्रण से लेकर रेणु की ग्राम्य चेतना, राजेन्द्र यादव की सामाजिक दृष्टि और शेखर जोशी की मानवीय करुणा तक-हर जगह प्रेम अपने बहुआयामी रूपों में उपस्थित मिलता है। यह कभी सौन्दर्य का अनुभव कराता है, कभी करुणा और सहानुभूति जगाता है, और कभी आत्मा को आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर प्रेरित करता है।

समीक्षित विमर्श से यह भी प्रमाणित हुआ कि 'प्रेम' मानव-जीवन का वह शाश्वत तत्त्व है जो समय, भाषा और समाज की सीमाओं से परे सार्वभौमिक सत्य के रूप में विद्यमान रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे मानव-प्रकृति की सहज प्रवृत्ति माना, विवेकानंद ने इसे ईश्वरत्व की ओर ले जाने वाली शक्ति कहा और आधुनिक आलोचकों ने इसे सौन्दर्य, करुणा तथा आध्यात्मिक एकत्व का संगम बताया। हिन्दी कथा-साहित्य ने इन समस्त दृष्टियों को समेटकर प्रेम को एक ऐसे सेतु के रूप में प्रस्तुत किया है जो व्यक्ति को समाज, प्रकृति और ईश्वरीय चेतना से जोड़ देता है।

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम की सार्वभौमिकता उसके आलोचनात्मक विवेचन का केन्द्रीय सूत्र है। यहाँ प्रेम न तो केवल इन्द्रिय-सुख का साधन है और न ही केवल व्यक्तिगत अनुभव का साधारण प्रसंग; वह मानवीय अस्तित्व का आधार, सामाजिक सहअस्तित्व का सूत्र और आध्यात्मिक उन्नयन का साधन है। यही कारण है कि हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेम का रूप एक ओर जीवन की वास्तविकताओं को संवेदनशील बनाता है और दूसरी ओर मनुष्य को उसकी आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचाने की क्षमता प्रदान करता है।

इस प्रकार प्रेम की सार्वभौमिकता हिन्दी हिन्दी कथा-साहित्य को केवल इतना ही नहीं मानवीय संवेदनाओं का यथार्थ दर्पण बनाती है, बल्कि उसे एक शाश्वत मूल्य-चेतना का वाहक भी सिद्ध करती है-जहाँ सौन्दर्य, करुणा और अध्यात्म एक सूत्र में गुँथकर मानवता के उत्कर्ष का संदेश देते हैं।

संदर्भ सूची :

1. प्रसाद, कालिका; सहाय, राजवल्लभ; श्रीवास्तव, मुकुंदी लाल. वृहत् हिन्दी कोश. ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2009.
2. दास, श्यामसुंदर. हिंदी शब्दसागर. काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1973.
3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. चिन्तामणि. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012.
4. विवेकानंद, स्वामी. विश्व शांति का संदेश. लक्ष्य प्रकाशन, जयपुर, 2017.
5. जौहरी, डॉ. कमल कुमार. हिन्दी के स्वच्छंदतावादी उपन्यास. ग्रन्थम, कानपुर, 1965.
6. नरसिंहाचारी, एस.टी. प्रसाद की कहानियाँ प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008.
7. रेणु, फणीश्वरनाथ. रसप्रिया: फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ (संपा. भारत यायावर). नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 2021.
8. यादव, राजेन्द्र. एक कमजोर लड़की की कहानी, लम्बी कहानियाँ (संपा. अर्चना वर्मा). वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014.
9. जोशी, शेखर. कोसी का घटवार, हिंदी की श्रेष्ठ प्रेम कहानियाँ (संपा. रवीन्द्र कालिया). भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2013.
10. भारद्वाज, डॉ. शांति. हिन्दी उपन्यास: प्रेम और जीवन. सुशील प्रकाशन, अजमेर, 1969.
11. गोयनका, डॉ. कमल किशोर. प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान. यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 1974.
12. शिवपुराण. धर्म-संहिता, अध्याय-8.
13. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पेपर बुक्स, 2068 वि.
14. Hudson, William Henry. An Introduction to the Study of Literature. Atlantic Publication, London, 2021.
15. दास, डॉ. श्यामसुंदर. साहित्यालोचने. विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, 2009.
16. नारायण, डॉ. प्रताप टंडन. हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास. कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, 1974.
17. राय, डॉ. गुलाब. काव्य के रूप. इण्डियन प्रेस, प्रयाग, 1963.

“वैश्विक संकट और गाँधी का सर्वोदयः 21वीं सदी में राजनीतिक प्रासंगिकता”

डॉ० रश्मि बुनकर

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य स्वशासी महाविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश

सारांश

21वीं सदी का वैश्विक परिदृश्य गहन संकटों से घिरा हुआ है-आर्थिक असमानता, नैतिक मूल्यों का विघटन, बढ़ती हिंसा और आतंकवाद, पर्यावरणीय असंतुलन तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं पर मंडराते खतरे। उपभोक्तावाद और बाजारवाद ने जहाँ समाज को विभाजित किया है, वहीं व्यक्तिवाद ने मानवीय मूल्यों को कमजोर कर दिया है। ऐसे समय में महात्मा गाँधी का सर्वोदय-दर्शन एक व्यावहारिक, दार्शनिक और राजनीतिक विकल्प के रूप में उभरता है। अद्वैत वेदान्त, रस्किन की न्दजव जेपे स्ेंज तथा भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से पोषित यह चिंतन न केवल सत्य, अहिंसा और ट्रस्टीशिप पर आधारित है, बल्कि सामूहिक कल्याण, नैतिक राजनीति और ग्रामस्वराज की पुनः प्रतिष्ठा का मार्ग भी प्रशस्त करता है। सर्वोदय का दर्शन मार्क्सवाद और उपयोगितावाद जैसी एकांगी धारणाओं से भिन्न, सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की संकल्पना को मूर्त रूप देता है।

यह शोध-पत्र वैश्विक संकटों के सापेक्ष गांधी के सर्वोदय-दर्शन की प्रासंगिकता का आकलन करने का प्रयास है। इसमें सर्वोदय के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं वैज्ञानिक आधारों की समीक्षा की जाएगी और यह बताया जाएगा कि किस प्रकार सर्वोदय वर्तमान समय में सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, पर्यावरण-संरक्षण और अंतर्राष्ट्रीय शांति-व्यवस्था का व्यावहारिक आधार बन सकता है। उपभोक्तावाद और हिंसात्मक प्रवृत्तियों के दौर में गांधी का सर्वोदय एक ऐसा मार्ग है जो हृदय-परिवर्तन, सहयोग और सतत् विकास पर बल देता है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि सर्वोदय कोई अतीत का आदर्श नहीं, बल्कि 21वीं सदी की राजनीति और समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक जीवन-दर्शन है, जो वैश्विक संकटों से उबरने की वास्तविक कुंजी प्रदान करता है।

Keywords: गांधी, सर्वोदय, वैश्विक संकट, राजनीति, सामाजिक न्याय, अहिंसा, ट्रस्टीशिप, ग्रामस्वराज, उपभोक्तावाद, शांति-व्यवस्था

भूमिका

महात्मा गाँधी का ‘सर्वोदय-दर्शन’ केवल एक दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन है, जिसने 20वीं शताब्दी में स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा दी और आज भी 21वीं सदी के संकटग्रस्त समय में आशा का आधार प्रदान करता है। ‘सर्वोदय’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है-सबका उदय, सबका कल्याण। यह विचार अद्वैत वेदान्त के एकत्ववाद से पोषित है, जॉन रस्किन की पुस्तक न्दजव जेपे स्ेंज से प्रेरणा प्राप्त करता है और गाँधी के चिंतन से व्यावहारिक रूप ग्रहण करता है। इस दर्शन का केंद्रीय भाव है-मानव मात्र की समग्र उन्नति, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक सभी आयामों का संतुलित विकास हो।

गाँधी ने राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं माना, बल्कि उसे धर्म और नैतिकता से जुड़े मानवीय मूल्यों की स्थापना का उपकरण समझा। उनका मानना था कि धर्मविहीन राजनीति न केवल अधूरी है बल्कि विनाशकारी भी। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों के लिए उनका संघर्ष इसी धारणा पर आधारित था कि राजनीति और धर्म का वास्तविक लक्ष्य मानव की गरिमा और स्वतंत्रता है। सत्य और अहिंसा उनके लिए केवल नैतिक आदर्श नहीं थे, बल्कि राजनीतिक आचरण की मूलभूत शर्तें थीं। इसी कारण वे सत्ता-संघर्ष से अधिक आत्म-संघर्ष और सहयोग पर बल देते थे।

सर्वोदय-दर्शन उपयोगितावाद की तरह केवल इन्द्रियसुख की प्राप्ति तक सीमित नहीं है और न ही यह मार्क्सवाद की भाँति वर्ग-संघर्ष पर आधारित है। यह एक समन्वयी दृष्टिकोण है जो व्यक्ति और समाज, आत्मा और पदार्थ, राजनीति और धर्म, तथा विज्ञान और नैतिकता-सभी में संतुलन स्थापित करता है। इसका ध्येय है-ऐसा समाज निर्माण जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, आत्मनिर्भरता, सम्मानजनक श्रम और सामाजिक न्याय मिल सके। यही कारण है कि गाँधी ने ग्रामस्वराज, ट्रस्टीशिप, स्वदेशी और विकेन्द्रीकरण जैसे सिद्धांतों को सर्वोदय की व्यवहारिक आधारशिला बनाया।

आज के वैश्विक परिदृश्य में जब उपभोक्तावाद, निजीकरण और बाजारवाद ने सामाजिक विषमताओं को बढ़ाया है, जब राजनीतिक व्यवस्था भ्रष्टाचार और सत्ता की होड़ में उलझी है, जब आतंकवाद और युद्ध की आशंकाएँ विश्व-शांति को खतरे में डाल रही हैं, तब सर्वोदय का विचार और भी प्रासंगिक हो उठता है। सर्वोदय केवल भारतीय संदर्भ का समाधान नहीं, बल्कि वैश्विक संकटों का एक व्यावहारिक विकल्प है। इसमें शक्ति की राजनीति के स्थान पर सहयोग की राजनीति, दलीय लोकतंत्र के स्थान पर दल-विहीन लोकतंत्र और केन्द्रीयकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकृत शासन का स्वरूप प्रस्तावित है।

रस्किन से प्रभावित होकर गाँधी ने यह स्पष्ट किया कि मजदूर, किसान और कारीगर का जीवन ही वास्तविक और सर्वोत्तम जीवन है। इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने तकनीकी शोषण और यंत्रीकरण का विरोध किया और मानवीय श्रम की गरिमा पर बल दिया। उनके लिए सर्वोदय का अर्थ था-गरीबी का अंत, आत्मनिर्भरता, न्यूनतम उपभोग और अधिकतम संतोष। यही भाव बाद में विनोबा भावे के भूदान आंदोलन और दादा धर्माधिकारी व जयप्रकाश नारायण जैसे चिंतकों के सामाजिक आंदोलनों में भी दिखाई देता है।

भारत के संविधान और लोकतांत्रिक ढाँचे में भी सर्वोदय की झलक मिलती है। पंचायती राज व्यवस्था, महिलाओं और वंचित वर्गों को आरक्षण, गरीबी उन्मूलन की योजनाएँ और मनरेगा जैसी पहलें उसी सर्वोदय-आदर्श का विस्तार हैं, जिनका उद्देश्य है अंतिम व्यक्ति तक विकास की धारा को पहुँचाना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सर्वोदय केवल आदर्शवादी स्वप्न नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक जीवन-दर्शन है जो सामाजिक असमानताओं को मिटाने, आर्थिक न्याय स्थापित करने और वैश्विक शांति सुनिश्चित करने में सक्षम है। यही कारण है कि 21वीं सदी के राजनीतिक विमर्श में सर्वोदय-दर्शन की प्रासंगिकता निर्विवाद रूप से बनी हुई है।

सर्वोदय दर्शन का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आधार

महात्मा गाँधी का सर्वोदय-दर्शन एक समन्वयी जीवन-दृष्टि है, जिसका आधार केवल आध्यात्मिक या नैतिक चिंतन नहीं बल्कि ठोस राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यावहारिकता है। यह दर्शन व्यक्ति और समाज के विकास को अलग-अलग न मानकर एक-दूसरे का पूरक समझता है। सर्वोदय का आदर्श यह प्रतिपादित करता है कि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक अधूरी है जब तक वह सामाजिक समानता और आर्थिक आत्मनिर्भरता से जुड़ी न हो। इसी कारण गाँधी ने अपने सर्वोदय-दर्शन को तीन मूल स्तंभों पर खड़ा किया-लोकतांत्रिक राजनीति, सामाजिक न्याय एवं समानता, और विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था।

गाँधीजी के अनुसार राजनीति का लक्ष्य केवल सत्ता-प्राप्ति नहीं, बल्कि "सत्य और अहिंसा" पर आधारित समाज-व्यवस्था का निर्माण है। सर्वोदय-दर्शन राजनीति को नैतिकता से जोड़ता है। इसके अंतर्गत तीन प्रमुख आयाम सामने आते हैं-

- लोकतंत्र और सर्वोदय: गाँधी के लिए लोकतंत्र केवल प्रतिनिधि-सत्ता का ढाँचा नहीं था, बल्कि यह प्रत्येक व्यक्ति के सम्मान और भागीदारी पर आधारित जीवन-पद्धति थी। वे दलीय राजनीति के विरोधी थे और इसे सत्ता-संघर्ष का माध्यम मानते थे। उनके लिए वास्तविक लोकतंत्र वही है जिसमें सत्ता विकेन्द्रित हो और प्रत्येक नागरिक निर्णय-प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाए। यही भाव आगे चलकर "दल-विहीन लोकतंत्र" की संकल्पना में दिखाई देता है।
- ट्रस्टीशिप का सिद्धांत: गाँधी ने पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों को एकांगी मानते हुए 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसके अनुसार, धन और संसाधनों पर किसी का निजी अधिकार नहीं, बल्कि उसका उपयोग समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए। अमीर व्यक्ति समाज के लिए ट्रस्टी (अभिभावक) के रूप में कार्य करे। यह विचार सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर करने का एक मानवीय विकल्प है।
- ग्रामस्वराज: गाँधी का मानना था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। सर्वोदय-दर्शन ग्रामस्वराज के माध्यम से ऐसी स्वशासी ग्राम-व्यवस्था की परिकल्पना करता है जहाँ प्रत्येक गाँव आत्मनिर्भर, स्वावलंबी और विकेन्द्रीकृत लोकतंत्र की इकाई बने। ग्रामसभा के माध्यम से प्रत्यक्ष लोकतंत्र और निर्णय-प्रक्रिया को स्थानीय स्तर तक पहुँचाने की उनकी अवधारणा आज भी ग्रामीण विकास और पंचायती राज की मूल प्रेरणा है।
- सामाजिक न्याय और समानता: सर्वोदय-दर्शन का दूसरा स्तंभ है-सामाजिक न्याय और समानता। गाँधी के लिए समाज का उत्थान तभी संभव है जब उसमें वंचित, शोषित और उपेक्षित वर्ग को सम्मान और अवसर प्राप्त हों। सर्वोदय का लक्ष्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि जाति, वर्ग और लिंग-आधारित असमानताओं का अंत भी है। गाँधी ने अस्पृश्यता को "अंधकार का पाप" कहा और हरिजन आंदोलन के माध्यम से दलितों को समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया। उनका सपना था-"ऐसा समाज जिसमें ऊँच-नीच, भेदभाव और अन्याय का कोई स्थान न हो।" यही दृष्टि आधुनिक भारत के लिए सामाजिक न्याय की आधारशिला बनी।
- महिला सशक्तिकरण: गाँधी ने महिला को केवल गृहिणी या उपभोग की वस्तु न मानकर उसे समाज की समान भागीदार माना। स्वतंत्रता-संग्राम में उनके सक्रिय योगदान ने यह प्रमाणित किया कि सर्वोदय-दर्शन महिलाओं को समान अधिकार और सामाजिक प्रतिष्ठा देता है। गाँधी का मानना था कि अहिंसा की सबसे बड़ी साधक स्त्री है और उसके बिना समाज में नैतिक क्रांति संभव नहीं।
- सामूहिक सहयोग और नैतिक एकता: सर्वोदय-दर्शन का सामाजिक आधार यह भी है कि समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं, बल्कि एक नैतिक परिवार है। इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा के बजाय सहयोग, भेदभाव के बजाय भाईचारा, और शोषण के बजाय सेवा को स्थापित करना है।

सर्वोदय-दर्शन का तीसरा और सबसे व्यावहारिक स्तंभ है-आर्थिक व्यवस्था। गाँधी ने पश्चिमी औद्योगीकरण और उपभोक्तावाद का विरोध करते हुए ऐसी अर्थव्यवस्था की परिकल्पना की जो श्रम की गरिमा, स्वदेशी और विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो।

- स्वदेशी का सिद्धांत: गाँधी ने 'स्वदेशी' को केवल वस्त्र या वस्तुओं के उत्पादन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे आत्मनिर्भरता और स्थानीय संसाधनों के सदुपयोग का प्रतीक बनाया। स्वदेशी का अर्थ है-अपने क्षेत्रीय संसाधनों से जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, जिससे आर्थिक शोषण और परनिर्भरता से बचा जा सके।
- श्रम की गरिमा: सर्वोदय-दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक आधार श्रम के सम्मान की स्थापना है। गाँधी का मानना था कि "श्रम ही पूँजी है" और किसी भी कार्य को छोटा-बड़ा नहीं माना जाना चाहिए। चरखा उनके लिए केवल वस्त्र उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि श्रम की गरिमा और आत्मनिर्भरता का प्रतीक था।

- विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था: गाँधी ने केंद्रीकृत औद्योगीकरण को अमानवीय और शोषणकारी बताया। उनके अनुसार, विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था ही ऐसा मार्ग है जिससे गाँव-गाँव में रोजगार, आत्मनिर्भरता और संतुलित विकास संभव हो सके। यह न केवल आर्थिक असमानताओं को कम करता है बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास की दिशा में भी सहायक है।

राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आधारों का यह त्रिवेणी-समन्वय ही सर्वोदय-दर्शन की शक्ति है। यह दर्शन लोकतांत्रिक राजनीति को नैतिकता से, सामाजिक न्याय को मानवता से और आर्थिक व्यवस्था को आत्मनिर्भरता से जोड़ता है। यही कारण है कि सर्वोदय आज भी राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक असमानताओं और आर्थिक विषमताओं के बीच एक व्यावहारिक और सार्वभौमिक विकल्प प्रस्तुत करता है।

सर्वोदय : प्रौद्योगिकीय युग में राजनीतिक दृष्टि

21वीं सदी को यदि "प्रौद्योगिकी का युग" कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव-प्रौद्योगिकी, सूचना क्रांति, और वैश्वीकरण की तीव्र गति ने न केवल सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र को परिवर्तित किया है, बल्कि राजनीति के स्वरूप को भी गहराई से प्रभावित किया है। ऐसे समय में गाँधी का सर्वोदय दर्शन प्रौद्योगिकी-प्रधान युग को मानवीय संवेदनाओं, नैतिक मूल्यों और सामाजिक न्याय के साथ जोड़ने का मार्ग प्रस्तुत करता है।

सर्वोदय का मूल संदेश है - "सबका उदय, सबका विकास।" यह विचार केवल आध्यात्मिक या नैतिक आधार पर ही नहीं टिका है, बल्कि इसका वैज्ञानिक और तर्कसंगत पक्ष भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। राजनीति जब अंधानुकरण या मात्र सत्ता-लोलुपता का साधन बन जाती है, तब सर्वोदय उसे तार्किक विवेक और मानवीय हित की कसौटी पर कसने का आग्रह करता है। गांधीजी ने कहा था कि राजनीति तभी सार्थक है जब वह नैतिकता और जनकल्याण से जुड़ी हो। इस दृष्टि से सर्वोदय एक "वैज्ञानिक नीति-दृष्टि" प्रदान करता है, जिसमें निर्णय डेटा और तथ्यों पर आधारित हों, परंतु उनका अंतिम लक्ष्य "मानवता का हित" ही रहे।

प्रौद्योगिकीय युग में सबसे बड़ी चुनौती है - असीमित उपभोगवाद और पर्यावरण का संकट। आज जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का क्षय और ऊर्जा संकट केवल वैज्ञानिक समस्या नहीं है, बल्कि राजनीतिक विमर्श का केंद्रीय मुद्दा बन चुका है। सर्वोदय यहाँ "ट्रस्टीशिप" और "ग्राम स्वराज" के सिद्धांतों के माध्यम से एक विकल्प प्रस्तुत करता है।

- ग्राम स्वराज स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाकर विकेंद्रीकृत विकास का मॉडल देता है, जिससे पर्यावरणीय और सामाजिक न्याय संभव हो सके।

इन विचारों का प्रयोग आज सतत विकास (Sustainable Development Goals) की राजनीतिक बहस में किया जा सकता है।

आधुनिक राजनीति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति-निर्माण का आधार बन चुके हैं, परंतु इनके दुरुपयोग से लोकतंत्र और मानवाधिकार पर संकट मंडराता है। उदाहरण के लिए, निगरानी तकनीक (Surveillance Technology), डिजिटल असमानता और साइबर युद्ध राजनीति में नए प्रकार के शोषण और असमानता को जन्म दे रहे हैं।

गाँधी का सर्वोदय यह चेतावनी देता है कि विज्ञान तभी सार्थक है जब वह "नैतिक विवेक" और "मानवता के हित" से जुड़ा हो। सर्वोदय राजनीति को यह सिखाता है कि प्रौद्योगिकी को केवल आर्थिक लाभ और सत्ता विस्तार का साधन न मानकर उसे मानव कल्याण और सामाजिक समरसता के लिए उपयोग किया जाए।

प्रौद्योगिकीय युग की राजनीति यदि केवल तकनीकी-नवाचार और शक्ति संतुलन तक सीमित हो जाए तो वह मानवीय मूल्यों से रिक्त हो जाएगी। सर्वोदय का दृष्टिकोण राजनीति को एक ऐसे मार्ग पर ले जाने का आग्रह करता है जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी साधन मात्र हों और उनका अंतिम लक्ष्य सामूहिक कल्याण, न्याय और समानता हो। इस प्रकार, 21वीं सदी के राजनीतिक संकटों - पर्यावरणीय असमानता, तकनीकी शोषण और सत्ता-केंद्रित राजनीति - का समाधान गाँधी के सर्वोदय में निहित है, जो राजनीति को फिर से मानवीय और लोककल्याणकारी बनाता है।

21वीं सदी में सर्वोदय की प्रासंगिकता : राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

सर्वोदय दर्शन केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समूचे विश्व के लिए मार्गदर्शन का कार्य करता है। सर्वोदय का मूल आधार "सर्वे भवन्तु सुखिनः" है, जो मानवता की एकता, समानता और सहयोग को केन्द्र में रखता है। 21वीं सदी में जब विश्व आतंकवाद, पर्यावरण संकट, असमानता, युद्ध की आशंका और नैतिक मूल्यों के विघटन से जूझ रहा है, तब सर्वोदय की प्रासंगिकता और भी अधिक उभरकर सामने आती है।

भारतीय लोकतंत्र की जड़ें गाँधीजी के ग्रामस्वराज और विकेन्द्रीकृत शक्ति-संरचना के विचारों में निहित हैं। संविधान में अनुच्छेद 40 के अंतर्गत पंचायतों को स्वशासन की इकाई के रूप में मान्यता प्रदान करना सर्वोदय की ही राजनीतिक विजय थी। इसके बाद पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए समय-समय पर समितियों की स्थापना हुई, जैसे बलवंत राय मेहता समिति (1957), अशोक मेहता समिति (1978) और लक्ष्मीमल सिंधवी समिति (1986)। इन प्रयासों का उद्देश्य लोकतंत्र को जड़ों तक पहुँचाना और आम नागरिक को निर्णय प्रक्रिया में सहभागी बनाना था।

आज जब लोकतंत्र पर अधिकारों के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार, अराजकता और राजनीति के अपराधीकरण का खतरा मंडरा रहा है, तब सर्वोदय का दर्शन राजनीति को शुद्ध करने का विकल्प प्रस्तुत करता है। यह लोकतंत्र को केवल बहुमत की राजनीति न मानकर, नैतिकता और सामाजिक न्याय से जुड़े लोककल्याणकारी तंत्र में बदलने का आह्वान करता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का अंत हुआ, परंतु शीत युद्ध की राजनीति ने विश्व को महाशक्तियों के संघर्ष में बाँट दिया। ऐसे समय में गाँधीजी का सर्वोदय "शक्ति की राजनीति" के स्थान पर "सहयोग की राजनीति" की स्थापना का मार्ग सुझाता है। सर्वोदय का दर्शन वर्ग-संघर्ष की धारणा को खारिज करता है और कमजोर, शोषित एवं अल्पसंख्यक समुदायों की रक्षा पर बल देता है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1950 में पारित "शांति के लिए एकता प्रस्ताव" (Uniting for Peace Resolution) सर्वोदय की ही अंतर्राष्ट्रीय स्वीकार्यता का प्रतीक है। आज वैश्विक स्तर पर शांति स्थापना, परमाणु हथियारों पर रोक, जलवायु न्याय और सतत विकास की बहस सर्वोदय के नैतिक आधारों से ही सामंजस्य रखती है। सर्वोदय का "विश्व बंधुत्व" का सिद्धांत इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

आज की वैश्विक व्यवस्था बाजारवाद और उपभोक्तावाद पर आधारित है, जिसने असमानता, शोषण और सांस्कृतिक विघटन को जन्म दिया है। सर्वोदय दर्शन इस व्यवस्था को एक मानवीय विकल्प प्रदान करता है।

- यह ट्रस्टीशिप के माध्यम से पूँजी और संपत्ति को समाज के लिए नैतिक ट्रस्ट मानने का आग्रह करता है।
- यह स्वदेशी और विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के आधार पर आत्मनिर्भरता और स्थानीय विकास की ओर लौटने का संदेश देता है।
- यह अध्यात्म और प्रेम के आधार पर उपयोगितावाद और स्वार्थवाद से भिन्न, वैश्विक मानवता की एकता को प्रतिष्ठित करता है।

विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण द्वारा भूदान, जीवनदान और सम्पत्ति दान जैसे आंदोलनों के माध्यम से सर्वोदय को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास इस बात का प्रमाण है कि सर्वोदय केवल दार्शनिक आदर्श नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार का एक ठोस मॉडल है।

21वीं सदी में सर्वोदय का राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व असंदिग्ध है। भारत में यह लोकतंत्र को जड़ों तक ले जाने और समाज को नैतिक आधार देने का कार्य करता है, वहीं विश्व स्तर पर यह शांति, सहयोग और मानवीय सह-अस्तित्व की राजनीति को जन्म देता है। वैश्वीकरण और तकनीकी उपभोक्तावाद के युग में सर्वोदय एक ऐसा वैकल्पिक जीवन-दर्शन है, जो न केवल राजनीति को नैतिकता से जोड़ता है, बल्कि मानवता को विनाश से बचाने का मार्ग भी प्रदान करता है।

निष्कर्ष

महात्मा गाँधी का सर्वोदय दर्शन केवल एक सामाजिक-आर्थिक सुधार का कार्यक्रम नहीं, बल्कि एक व्यापक राजनीतिक जीवन-दृष्टि है, जो आज की 21वीं सदी में वैश्विक संकटों के समाधान के रूप में अत्यधिक प्रासंगिक है। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, परमाणु युद्ध का भय, आर्थिक असमानता, आतंकवाद, उपभोक्तावाद और नैतिक मूल्यों के पतन जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है, तब गाँधी का यह विचार कि "सभी का उदय, किसी का भी पतन नहीं" एक वैकल्पिक राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत करता है।

सर्वोदय का राजनीतिक आधार ग्रामस्वराज, ट्रस्टीशिप और विकेंद्रीकरण पर टिका है, जो आज के लोकतांत्रिक ढाँचे को और अधिक सहभागी तथा जनोन्मुख बना सकता है। इसका सामाजिक आधार समानता, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय है, जो वर्तमान असमानताओं को दूर करने की दिशा दिखाता है। आर्थिक स्तर पर सर्वोदय स्वदेशी, श्रम की गरिमा और आत्मनिर्भरता का संदेश देता है, जो वैश्विक पूँजीवाद और शोषणकारी बाजारवाद का मानवीय विकल्प बन सकता है। वहीं वैज्ञानिक-प्रौद्योगिकीय युग में सर्वोदय का आग्रह यह है कि विज्ञान और नैतिकता का संतुलन बनाए रखा जाए, ताकि तकनीकी विकास मानव कल्याण के लिए हो, न कि विनाश के लिए।

राष्ट्रीय स्तर पर सर्वोदय का प्रभाव पंचायत राज, सामुदायिक विकास और विकेन्द्रीकृत लोकतंत्र में देखा जा सकता है। वहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह विचार विश्वबंधुत्व, सहयोग और अहिंसा पर आधारित एक नई राजनीति का मार्ग प्रशस्त करता है, जिसका प्रतिफल संयुक्त राष्ट्र की नीतियों और शांति प्रस्तावों में भी देखा गया है।

अंततः यह स्पष्ट होता है कि गाँधी का सर्वोदय केवल ऐतिहासिक या दार्शनिक विचार न होकर, आज की राजनीतिक चुनौतियों का व्यावहारिक समाधान भी है। यह न तो शक्ति-राजनीति की ओर झुकता है और न ही उपभोक्तावादी संस्कृति के पीछे भागता है, बल्कि यह नैतिकता, सहयोग और मानवीय मूल्यों पर आधारित राजनीति की नींव रखता है। इसलिए कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के वैश्विक संकटों से उबरने के लिए सर्वोदय दर्शन केवल प्रासंगिक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य राजनीतिक विकल्प बन चुका है।

संदर्भ सूची

अम्बेडकर, भीमराव, (1993). सम्पूर्ण वाङ्मय. भारत भारती प्रकाशन.

अवस्थी, अमरेश. (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन. सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन.

अय्यर, राघवन एस. (1973). महात्मा गांधी का नैतिक और राजनीतिक चिंतन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

भावे, विनोबा. (1954). सर्वोदय की ओर. अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

भावे, विनोबा. (1957). भूदान गंगा. सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

भावे, विनोबा. (1971). सर्वोदय विचार. सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

भावे, विनोबा. (1980). सर्वोदय और साम्यवाद. सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

गांधी, मोहनदास करमचन्द. (1955). अहिंसक समाज की ओर. नवजीवन प्रकाशन मन्दिर.

गांधी, मोहनदास करमचन्द. (1968). हिन्द स्वराज (कालिका प्रसाद, अनुवाद). सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन. (मूल कृति प्रकाशित 1909)

गांधी, मोहनदास करमचन्द. (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). ग्रामराज्य. अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

गांधी, मोहनदास करमचन्द. (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). राज्य व्यवस्था सर्वोदय दृष्टि से. अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन.

कुमार, अजीत. (2007). सर्वोदय का समकालीन संदर्भ. मुजफ्फरपुर.

कुमारी, अनुराधा. (2009). महात्मा गांधी का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन. जानकी प्रकाशन.

उपाध्याय, हरिभाऊ. (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). सर्वोदय की बुनियाद. सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन.

21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य एवं पर्यावरण चेतना: एक अध्ययन

डॉ० बबलू सिंह

एसो. प्रोफेसर हिन्दी विभाग, जे. एस. हिन्दू पी०जी० कालेज, अमरोहा, सम्बद्ध-एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश (Abstract):

वर्तमान हिन्दी कविता में उभरती पर्यावरणीय चिन्ताओं, संकटों और संरक्षण की चेतना आज प्रथम प्रासंगिकता हो गई है। अत: इक्कीसवीं सदी के कवियों की दृष्टि उन विषमताओं की ओर गई है, जो मनुष्य की स्वार्थपूर्ण गतिविधियों के कारण प्रकृति के मूल तत्त्वों-जल, वायु, आकाश, पृथ्वी आदि-के क्षरण से उत्पन्न हुई हैं। यह चेतना आधुनिक हिन्दी कविता को केवल प्रकृति-प्रेम तक सीमित नहीं रखती, बल्कि पर्यावरणीय संकट के विरुद्ध एक सशक्त नैतिक प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत करती है।

प्राचीन भारतीय परंपरा में जहाँ प्रकृति को दैवीयता और पूजनीयता के साथ देखा गया, वहीं 21वीं सदी की कविता में पर्यावरण के प्रति यह सम्बन्ध आस्था से अधिक जिम्मेदारी और चेतना के रूप में परिलक्षित होता है। आधुनिक कवि औद्योगिकीकरण, पूंजीवाद, शस्त्रीकरण और अनियंत्रित विकास की उस त्रासदी को उजागर करते हैं, जिसने प्रकृति को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है।

यह संचेतना हिन्दी काव्य में आए उन परिवर्तनों को रेखांकित करती है, जिनके माध्यम से कवि न केवल पर्यावरणीय संकट का चित्रण करते हैं, बल्कि मानव जाति को सचेत करते हुए भावी विनाश से बचने की दिशा भी दिखाते हैं। उदाहरणत:, समकालीन कविताओं में नरेश सक्सेना की सुनो चारूशीला से उद्धृत ये पंक्तियां 'हम तो होंगे नहीं, पता नहीं पृथ्वी पर जीवन भी होगा या नहीं' उस भयावह भविष्य की ओर संकेत करती हैं, जहाँ आणविक युद्ध और प्रदूषण के कारण पृथ्वी पर जीवन की संभावना ही क्षीण हो चुकी होगी।

यह अध्ययन हिन्दी कविता में प्रकृति के चित्रण की पारम्परिक भूमिका से उसकी समकालीन भूमिका के विकास को स्पष्ट करता है-जहाँ कविता केवल सौन्दर्याभास नहीं, अपितु संघर्ष और चेतना का माध्यम बन गई है।

मुख्य शब्द (Key Words): पर्यावरण चेतना, 21वीं सदी की कविता, हिन्दी काव्य, औद्योगीकरण, पूँजीवाद, प्रकृति संरक्षण, प्रदूषण, जैव विविधता, विनाश बोध, समकालीन कविता।

परिचय (Introduction):

इक्कीसवीं सदी का आरम्भ वैश्विक संकटों और असंतुलनों के साथ हुआ है। इनमें सबसे विकराल संकट पर्यावरणीय असंतुलन का है, जिसने सम्पूर्ण मानवीय सभ्यता को गम्भीर चुनौती दी है। हिन्दी काव्य साहित्य, जो सदैव समाज और प्रकृति के प्रति संवेदनशील रहा है, अब इस चुनौती को अत्यन्त गम्भीरता से ग्रहण कर रहा है।

यद्यपि प्रकृति और पर्यावरण के प्रति श्रद्धा, संवेदना और आत्मीयता का भाव भारतीय काव्य परंपरा में प्राचीन काल से ही विद्यमान है-ऋग्वेद से लेकर आदि कवि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भारवि , दण्डी से होते हुए हिन्दी साहित्य के कबीर, जायसी, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, और आधुनिक युग के कवियों तक प्रकृति के प्रति अति शुद्ध, शुभ चिंतन व्याप्त है। किन्तु 21वीं सदी में यह भाव मात्र सौंदर्य-चित्रण या अध्यात्म नहीं रह गया है, बल्कि यह गहन अध्ययन के उपरान्त संरक्षण, प्रतिरोध और चेतावनी के रूप में विकसित हुआ है।

वर्तमान कवि यह अनुभव कर रहे हैं कि औद्योगिक विस्तार, पूँजीवादी लालसा, अंधाधुंध शहरीकरण, और युद्धोन्मादी प्रवृत्तियों ने पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों का विनाश कर दिया है। नदियों का प्रवाह बाधित हुआ है, वनों की कटाई से जैव विविधता पर संकट आया है, वायु और जल में विषाक्तता बढ़ी है, और जलवायु परिवर्तन के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण तंत्र विकृत हो चुका है।

समकालीन हिन्दी कविता में यह चेतना अत्यन्त गहराई से प्रकट हुई है। कवि केवल पर्यावरणीय संकट को शब्दबद्ध नहीं करते, बल्कि मनुष्य की भूमिका, उसकी भूलों और उत्तरदायित्व की गूढ़ अभिव्यंजना भी करते हैं। नरेश सक्सेना की सुनो चारूशीला से उद्धृत ये पंक्तियां चेतावनी भी देती है और वैकल्पिक नैतिक मार्ग की खोज भी करती है-

"शायद आणविक राख से सनी
ईंट ही कहेगी कथा
और ईंटें ही सुनेंगी।"

वर्तमान साहित्य इसी चेतना के विविध आवरणों को प्रत्यक्ष करता है और यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार 21वीं सदी का हिन्दी कवि पर्यावरणीय प्रश्नों को साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बना रहा है। आज कवि की संचेतना मात्र मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है; प्राकृतिक सौन्दर्य के क्षरण के प्रति गहन चिंतन भी है क्योंकि यह तो अकाट्य सत्य है कि, यदि प्रकृति नहीं तो मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अत: यह लेखन विश्लेषित करता है कि, कैसे हिन्दी कविता आज के भयावह यथार्थ को सौन्दर्यबोध और नैतिक चेतना के साथ प्रस्तुत कर रही है।

कवि का चिंतन उन मानवों के प्रति है जो इस प्राकृतिक कोप के अनायास ही भागी हुए हैं। सत्य ही प्रदूषण की सबसे ज्यादा मार उन गरीबों पर पड़ी जो न तो औद्योगिक विकास का लाभ ले सके और न ही धनाभाव के कारण इनके कुप्रभाव से बच सके। अत: अनायास निर्दोष मानव सभ्यता को सचेत करते हुए कवि विजय राठौर, की 'इत्यादि के पहले', कविता की पंक्तियां उद्घोष करती हैं-

"अगर हमें नहीं बनना है पुरावशेष
तो बचाएँ जल को
वृक्षों को बढायें
आइये सृष्टि की सुरक्षा के लिए
जनसंख्या को घटाएँ"।

इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण की क्षति एक ऐसी वैश्विक समस्या बनकर उभरी है, जिसने मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। जिसका सबसे बड़ा कारण व्यापक स्तर पर प्रौद्योगिकी का विकास एवं नवीनीकरण है जो ई- कचरे को तेजी से बढ़ा रहा है। "नये उपकरण जल्दी ही पुराने पड़ जाते हैं तथा कई उपकर्ण खराब हो जाते हैं। इन सबका नतीजा है, ई वेस्ट, यानी ई कचरा। इससे न सिर्फ हमारा पर्यावरण खतरे में है बल्कि लोगों के स्वास्थ्य के लिए भी गम्भीर खतरा पैदा हो गया है।... ई-कचरे में मौजूद शीशा, पारा, आर्सेनिक, कैडमियम, सेलेनियम, होक्सावैलेंट, क्रोमियम और फ्लेम रिटार्डेट की सीमा से अधिक मात्रा उन्हें खतरनाक बनाती है।" हिन्दी काव्य साहित्य में इस संकट को गहराई से अनुभव किया गया है और कई समकालीन कवियों ने पर्यावरणीय क्षरण के विभिन्न पहलुओं को अपनी कविताओं में गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। डॉ. उमराव सिंह चौधरी, का 'वीणा', के माध्यम से स्पष्ट मत है कि, हमारे जीवन संस्कृति और सभ्यता के मूल में यदि कोई है तो वह प्रकृति है-

"प्रकृति- उतरती है मनुष्य में,
बनकर आत्मचेतना/और यही आत्मचेतना,
होती है मुखर/उसकी स्वाधीनता में,
विवरण है इतिहास
मनुष्य की स्वाधीनता के विकास का,
वह शुरु होता है तब/ जब जगती है,
आध्यात्मिक चेतना मनुष्य में"।

पर्यावरणीय प्रदूषण और सामाजिक विषमता

प्रकृति हमारी संस्कृति, सभ्यता और समाज का मूल है। प्राकृतिक पर्यावरण के विकृत स्वरूप में मनुष्य का जीवित रहना ही जब सन्देहास्पद है तब संस्कृति, सभ्यता और समाज किस प्रकार अपना अस्तित्त्व बनाए रख सकते हैं? मनुष्य ने अपनी शक्ति को बढ़ाने की लालसा में ऐसे अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया है. जो सम्पूर्ण प्राणी जगत को भस्म करने में सक्षम है। हिरोशिमा, नागासाकी व भोपाल की विभीषिका को भूला नहीं जा सकता। आज का हिन्दी कवि जन-जन से प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा का आहवान करता है।

यह सोच आम जन को भावात्मक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर प्रेरित करती है कि वे अपनी जीवनशैली में बदलाव लाकर प्रकृति की रक्षा करें।

औद्योगीकरण, जनसंख्या और संसाधनों का अति-दोहन

तेजी से बढ़ती जनसंख्या और औद्योगीकरण ने प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डाला है। कवियों ने इस त्रासदी को तीव्र सामाजिक चेतना के साथ रेखांकित किया है। कवि विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ अक्सर मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक संतुलन को जोड़ती हैं। समकालीन कविता में स्पष्ट संकेत मिलता है कि:

"पर्वत, समुद्र, नदियाँ, कुएँ, तालाब, वन, मैदान
सभी इलैक्ट्रॉनिक, प्लास्टिक व रासायनिक
कचरे से पट से गए।"

यह चित्रण केवल दृश्य गंदगी की नहीं, बल्कि मानवीय दृष्टिकोण के पतन की भी आलोचना करता है।

रासायनिक प्रदूषण और अन्न संकट

खेती में अत्यधिक रसायनों का प्रयोग, भूमिगत जल का दूषण और अन्न की गुणवत्ता में गिरावट जैसे संकटों को भी कवियों ने गम्भीरता से उठाया है। यह संकट न केवल शरीर को रोगग्रस्त कर रहा है, बल्कि भूमि की उर्वरता भी समाप्त कर रहा है। कविता के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया:

"जैसे-जैसे खेतों में रसायन बढ़े
वैसे-वैसे हमारे रक्त में जहर पनपा।
न भोजन शुद्ध रहा, न जल
और हम बस आंकड़ों में जीते रह गए।"

तकनीक, ई-कचरा और नवीन आपदाएँ

सूचना तकनीक के विकास से उत्पन्न 'ई-वेस्ट' की समस्या को भी समकालीन कवियों ने अपने लेखन का विषय बनाया है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का तीव्र उपभोग और उनका जल्द अनुपयोगी हो जाना एक नया संकट है। कवि उदय प्रकाश का लेखन उपभोक्तावादी समाज पर तीव्र प्रहार करता है। एक अन्य कविता से उदाहरण:

"नये उपकरण जल्दी ही पुराने पड़ जाते हैं,
जो ई-कचरे के रूप में
जमीन में जहर घोल देते हैं-
हमारी सभ्यता अब सिले हुए जहर का मुखौटा है।"

वैश्विक संकट, युद्ध और जैविक अस्त्र

पर्यावरणीय विनाश का सबसे भयावह स्वरूप युद्ध और जैविक हथियारों के माध्यम से दिखाई देता है। समकालीन कवियों ने भोपाल गैस त्रासदी, नागासाकी-हिरोशिमा की विभीषिकाओं को याद करते हुए चेतावनी दी है। एक प्रसिद्ध समकालीन राघवेन्द्र कवि, 'एक चिट्ठी की आस में', कविता के माध्यम से कहते है:

"बचा सको तो बचालो
यह सभ्यता उस नजर से
जिसमें जैविक हथियारों की मिसाइले हैं-
जो हजारों मील दूर राष्ट्र को कर देती है
नेस्तनाबूद।"

यहाँ कवि की वाणी में वेदना और आक्रोश एक साथ मुखर हैं, जो केवल भय नहीं उत्पन्न करती, बल्कि आत्म-जागरण की भी माँग करती है।

पर्वतीय पारिस्थितिकी और पूँजीवादी दोहन

विकास के नाम पर पर्वतों को बारूद से उड़ाकर कंक्रीट के जंगल बसाए जा रहे हैं। हिन्दी कवि इस पर्यावरणीय हिंसा को 'प्राकृतिक सौंदर्य की हत्या' के रूप में देखते हैं। नरेश सक्सेना, 'कवि ने कहा, कविता में इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति करते है:

"चट्टानें उड़ रही हैं
बारूद के धुएँ और धमाकों के साथ।
पहाड़ जो चुप थे,
अब बिखर रहे हैं अपने ही कणों में।"

यह बिम्ब पूँजीवादी अंधता और प्रकृति के दर्द की सीधी भिड़ंत कराता है।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा या विनाश : पर्यावरणीय त्रासदी का काव्यात्मक चित्रण

विकास और विनाश का यह द्वन्द्व 21वीं सदी के हिन्दी कवियों के लिए मात्र सामाजिक यथार्थ नहीं, बल्कि रचनात्मक चुनौती बनकर सामने आया है। असंतुलित विकास की वैश्विक प्रतिस्पर्धा, औद्योगीकरण और शहरीकरण के नाम पर पर्यावरण का जो विनाश हो रहा है, उसका मर्मस्पर्शी चित्रण आज के हिन्दी काव्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

कविता अब केवल प्रकृति की सौन्दर्यवत्ता का वर्णन करने तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह पर्यावरणीय दोहन और प्रकृति के विरुद्ध हो रहे षड्यंत्रों की आलोचना का माध्यम बन चुकी है। 21वीं सदी के कवि जंगलों के कटने, नदियों के सूखने, पक्षियों के विलुप्त होने, पहाड़ों के टूटने और समुद्रों के प्रदूषण को केवल तथ्य नहीं मानते, बल्कि उसे मानवीय संवेदना, स्मृति और उत्तरदायित्व के स्तर पर देखना चाहते हैं।

कवियों की दृष्टि में यह विकास दरअसल एक योजनाबद्ध विनाश है, जहाँ भावी पीढ़ियों के जीवन से खिलवाड़ हो रहा है। इस त्रासदी के विरुद्ध कवि की चेतावनी, कविता में प्रतिरोध के स्वर के रूप में उभरती है। शहंशाह आलम कहते हैं-

"पृथ्वी धीरे-धीरे नष्ट हो रही है
जैसे नष्ट हो रहा है घर
जैसे नष्ट हो रहा है जंगल"

इस काल की कविताएँ केवल आलोचना नहीं करतीं, बल्कि यह भी रेखांकित करती हैं कि आधुनिक मनुष्य किस प्रकार श्प्रकृति-विरोधी उपभोक्ताश बनता जा रहा है। उसकी दृष्टि में अब वृक्ष श्लकड़ीश, नदियाँ श्बोतलबंद पानीश, और पशु-पक्षी श्मनोरंजन की वस्तुश बन चुके हैं। कवि भट्ट, 'अक्षरों का पुल', में इस विघटन को भावात्मक गहराई से अनुभव करता है-

"बाढ़ आये बिना घटना नहीं बनता नदी का बहना
खड़े पेड़ को कोई नहीं पहचानता
टूटता पर्वत ही होता है मुख्य समाचार
इसलिए गिलहरी !
तू गिर, टूट, हो जा चकनाचूर
बहक और बहा खून
अन्यथा कभी नहीं बन पाएगा घटना
तेरा फुदकना।"

21वीं सदी के कवियों-जैसे विनोद कुमार शुक्ल, मंगलेश डबराल, कुमार अंबुज, ज्ञानेन्द्रपति, और कई नव्य रचनाकारों की कविताओं में यह पीड़ा बार-बार मुखर होती है। उनकी कविताएँ 'प्रकृति के पक्ष में' खड़ी हैं और श्विकास के नाम पर हो रहे विनाशश के विरुद्ध एक सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप बनती हैं।

इस प्रकार, हिन्दी कविता आज केवल सौंदर्य का रस नहीं रही, वह ष्पर्यावरणीय नैतिकता का घोषणापत्रष बन चुकी है। यह कविता प्रकृति के लिए, प्रकृति के साथ और प्रकृति के पक्ष में खड़ी सृजनात्मक चेतना का परिचायक है।

प्रकृति के ह्रास पर हिन्दी कविता में पर्यावरणीय चेतना

21वीं सदी का हिन्दी कवि असंतुलित विकास और अन्धाधुंध तकनीकी प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय संकट से अत्यंत चिन्तित है। उसकी कविता में केवल प्रकृति की सुंदरता नहीं, बल्कि उसका अव्यवस्थित दोहन और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न करुण स्थितियाँ उभर कर सामने आती हैं। कवि इस विनाश को केवल दृश्य रूप में नहीं देखता, वह उसमें भविष्य की पीड़ा और चेतावनी का बोध भी जोड़ता है।

उदाहरण के लिए, नरेश सक्सेना की सुनो चारूशीला से उद्धृत ये पंक्तियां भविष्य की भयावह स्थिति का कल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करती है:

"देखना जो ऐसा ही रहा तो, एक दिन
बस्तियाँ नहीं होंगी,
मनुष्य नहीं होंगे,
सिर्फ बाजार होंगे,
जहाँ होंगी कविताएँ
पेड़ों, नदियों, चिड़ियों, मछलियों और श्खरगोशोंश का
विज्ञापन करती हुई।"

यह दृश्य केवल भावी संकट की कल्पना नहीं, बल्कि बाजारवादी दृष्टिकोण की आलोचना है जो प्रकृति को केवल उत्पाद बनाकर देखती है। यहाँ कविता सीधे पर्यावरणीय चेतना को जनचेतना में बदलने का प्रयास कर रही है।

दूसरी ओर, प्रकृति के दोहन का व्यावहारिक दृश्य 'चीड लदे ट्रक' कविता में दिखता है:

"हैं डिंग सौंग औं चीड़ लदे ट्रक पर
कितनी चिडियों के नीड लदे ट्रक पर
पर्वत नदियां झरने हिरने
लद कर बाजार चले बिकने
है हत्यारों की भीड़ लदे ट्रक पर
कितनी चिडियों के नीड लदे ट्रक पर।"

यह कविता पेड़ों की कटाई, पक्षियों के घर उजाड़े जाने और पहाड़ों को बाजार में ले जाए जाने जैसी प्रक्रियाओं का यथार्थवादी चित्रण करती है। कवि इसे 'हत्या' की संज्ञा देकर स्पष्ट कर देता है कि यह केवल विकास नहीं, बल्कि जीवन के मूल तत्वों की निर्मम समाप्ति है।

राजेश मोहता की कविता 'बहुत जल्द', भावी पीढ़ियों की दुर्गति और वर्तमान पीढ़ी की मूर्खताओं की ओर संकेत करती है:

"हमारी सफलताओं का विशाल ढेर
भावी पीढ़ियों का नरक है।"

यह कविता मनुष्य की तथाकथित प्रगति पर व्यंग्य करती है, जहाँ वर्तमान की सुविधाओं की कीमत भविष्य के जीवन से चुकाई जा रही है। यह पर्यावरण चेतना का सबसे संवेदनशील बिंदु है- पीढ़ियों की उत्तरदायित्व भावना।

कवि नरेन्द्र इस भयावह स्थिति के प्रति सचेत करते हुए यह उद्घोष करते है:

"कह रहे हैं लोग हम आगे बढ़े हैं
ज्ञान औ विज्ञान के ऊँचे शिखर हमने चढ़े हैं
अग्नि, जल, वायु, धरित्री और यह विस्तृत गगन..."

यह पंक्तियाँ उस विडम्बना को रेखांकित करती हैं कि भले ही विज्ञान और तकनीक में हम ऊपर चढ़े हों, लेकिन धरती, जल, वायु और आकाश-इन पंचतत्वों का संतुलन बिगाड़कर हम एक खोखली उन्नति की ओर बढ़ रहे हैं।

नैसर्गिक तत्वों की पीड़ा और संरक्षण की पुकार

21वीं सदी का हिन्दी कवि केवल पर्यावरणीय संकट को तथ्यात्मक रूप में नहीं देखता, वह उसके भीतर छिपे सौंदर्य, कोमलता, और जीवंतता को भी अत्यंत संवेदनशील दृष्टि से महसूस करता है। उसकी कविता में पेड़-पौधे, नदियाँ, पक्षी, पर्वत और झरने केवल प्राकृतिक वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि जीवंत प्राणी हैं जिनका क्षरण कवि के हृदय में गहरी टीस उत्पन्न करता है। इस दृष्टिकोण से समकालीन कवि एक सजग साक्षी के रूप में पर्यावरणीय चेतना का वाहक बनता है।

कवि प्रमोद कुमार शर्मा, 'कोसों दूर', मार्मिक कविता में इस प्राकृतिक सौंदर्य की हत्या को बखूबी अभिव्यक्त करते है:

"जल रही है पृथ्वी / जल रहे हैं ज्वालामुखी
नहीं तुम ज्वालामुखियों के मुँह पर / हाथ मत रखो वे जरूर फटेंगे / और तब-
सब चिथड़े-चिथड़े हो जाएगा
आओ / मरने से पहले-
पृथ्वी पर थोड़ा-सा प्रेम तो कर लें!"

इन पंक्तियों में अभिव्यक्त वेदना प्रकृति के कोप से सबको न केवल अगाह कर रही है वरन् भावी दुर्दान्त की भयावहता को भी चित्रित करती है। यह केवल व्यापार नहीं, प्रकृति की आत्मा की नीलामी है। कवि यहाँ एक द्रष्टा के रूप में नहीं, अपितु एक सहभागी, पीड़ित की भाँति शब्दों के माध्यम से विलाप करता है।

इसी प्रकार कवि यह भी दर्शाता है कि मनुष्य अब ग्राहक बन चुका है, उसका प्रकृति से रिश्ता अब सृजनात्मक नहीं, बल्कि उपभोक्तावादी है। यह भाव 'देखना जो ऐसा ही रहा...' राजश्री की 'मैं जीतूंगी' कविता में व्यक्त होता है:

"आयेगा एक दिन
जब प्रकृति के कोप के आगे
हम नतमस्तक हो जायेंगे
लाख चाहकर भी अपने बचाव के लिए
हम कुछ नहीं कर पायेंगे...।"

यहाँ कवि इस बात की चेतावनी देता है कि यदि मानव का दृष्टिकोण न बदला गया, तो प्रकृति कुपित हो नरसंहार का विषय रह जाएगी ख़ अनुभूति का नहीं।

इस संवेदनशीलता की चरम सीमा तब देखी जा सकती है जब कवि भरत प्रसाद प्रकृति के सौंदर्य से आत्मविभोर होकर उसकी महानता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है:

"आत्मविभोर कर देने वाला यह विस्मय
मुझे प्रकृति के प्रति अथाह कृतज्ञता से भर देता है।"

यह वाक्य समकालीन हिन्दी कविता के पर्यावरणीय विमर्श में एक सकारात्मक स्वर जोड़ता है। यह केवल संकट और चेतावनी की भाषा नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा और उत्तरदायित्व की भावभूमि भी निर्मित करता है।

इस बिंदु से स्पष्ट होता है कि 21वीं सदी के कवि की पर्यावरणीय चेतना केवल विरोध या चेतावनी तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक सांस्कृतिक मूल्य के रूप में प्रकृति को स्वीकार करता है और उसकी रक्षा को मानवता का परम कर्तव्य मानता है। वह चाहता है कि मनुष्य केवल उपयोगकर्ता न रह जाए, बल्कि संवेदनशील संरक्षक बने।

निष्कर्ष

21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य पर्यावरणीय चेतना के व्यापक स्वर को लेकर अत्यंत सक्रिय, संवेदनशील और प्रतिबद्ध दिखाई देता है। वर्तमान युग में जहाँ एक ओर विज्ञान और तकनीक ने जीवन को सुविधाजनक बनाया है, वहीं दूसरी ओर इसी विकास ने प्रकृति को अप्राकृतिक रूप से दोहन और विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। हिन्दी का समकालीन कवि इस संकट से आँख नहीं चुराता, वह इसके विरुद्ध स्वर उठाता है ख़ कभी प्रतिरोध की शैली में, कभी करूणा और चेतावनी के स्वर में, तो कभी आत्मस्वीकृति और कृतज्ञता के भाव से।

कविता 'देखना जो ऐसा ही रहा तो...' जैसे उदाहरणों में कवि यह स्पष्ट करता है कि यदि पर्यावरण के प्रति मनुष्य का व्यवहार नहीं बदला, तो आने वाला समय केवल बाजार और विज्ञापन का होगा, जिसमें न प्रकृति बचेगी, न मनुष्यता। वहीं 'आयेगा एक दिन' कविता के माध्यम से वह सीधे-सीधे प्रकृति के व्यापारिक शोषण और उसके रक्तरंजित परिणामों की ओर संकेत करता है। प्रकृति के साथ खिलवाड़ का यह सिलसिला केवल पर्यावरण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की भी क्षति है।

इस युग का कवि प्रकृति को केवल दृश्य सौंदर्य के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसके जीवंत, संवेदनशील और समानाधिकार युक्त अस्तित्व को स्वीकार करता है। वह प्रकृति के प्रत्येक घटक – पेड़, नदियाँ, पर्वत, चिड़ियाँ, हिरन, मछलियाँ – को कविता में सजीव पात्र की तरह स्थान देता है। कवि यह भी जानता है कि आज का मानव अपनी भोगवादी दृष्टि में उलझकर आगामी पीढ़ियों के लिए केवल विषैली विरासत छोड़ रहा है – जहरीली हवा, बंजर धरती, गंदी नदियाँ और संवेदनशून्य सभ्यता।

लेकिन यह कविता केवल आक्रोश या विरोध का माध्यम नहीं है, यह प्रेम, संरक्षण और दायित्वबोध की प्रेरणा भी है। समकालीन हिन्दी कवि एक जागरूक नागरिक, एक संवेदनशील रचनाकार और एक सजग पर्यावरण प्रहरी के रूप में पर्यावरणीय चेतना का वाहक बनकर उभरता है। वह न केवल पर्यावरण की क्षति पर शोक व्यक्त करता है, बल्कि पाठक को यह सोचने पर भी विवश करता है कि विकास की यह अंधी दौड़ किस दिशा में जा रही है।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का हिन्दी काव्य साहित्य केवल साहित्यिक सौंदर्य का दर्पण नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक जागरूकता और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की चेतना से युक्त एक प्रभावी माध्यम बनकर सामने आया है। यह पंक्तियां हमें यह स्मरण कराती है कि –"प्रकृति हमारी धरोहर है, इसे बचाना केवल कर्तव्य नहीं, अस्तित्व की अनिवार्यता है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ

'कुसुम' नरेन्द्र : अन्तराल, बोधि प्रकाशन, जयपुर, जुलाई 2009.
गौड़ नरेन्द्र झोले से झांकती हरी पत्ती, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2013.
शर्मा प्रमोद कुमार कोसों दूर, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 20८7.
शिवराम, कुछ तो हाथ गहो !, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2009.
शुक्ल विनोद कुमार आकाश धरती को खदखटाता है, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2006.
सक्सेना नरेश सुनो चारुशीला, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012.
सक्सेना नरेश कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली.
कुमार अरुण (सं.) पर्यावरण चेतना, दिव्यांश पब्लिकेशन्स, लखनऊ, 2012.
खण्डेलवाल अनिरुद्ध सामाजिक पर्यावरण, कमल पुस्तक केन्द्र, दिल्ली, 2006.
खानकाही निश्तर, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल व डॉ० मीना, पर्यावरण दशा और दिशा, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2011.
गुप्त राकेश (सं.) निबंधायन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1996.
भट्ट दिवा : उत्तराखण्ड के हिन्दी कवि, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013.
वीणा, सं. राजेन्द्र मिश्र, इंदौर, अंक जनवरी 2009, जनवरी 2010, अक्टूबर 2012.

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का राजनीतिक संस्कृति पर प्रभाव

डॉ० ममता कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)

सार

इंटरनेट के उदय के बाद से, कई लोगों को आश्चर्य हुआ है कि क्या सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म राजनीति को किस हद तक प्रभावित करते हैं। तदनुसार, साहित्य का एक बड़ा संग्रह है जो विभिन्न कोणों से सोशल मीडिया और राजनीति के बीच अंतरसंबंध की जांच करता है। विषय की जांच के लिए कई अलग-अलग तरीके सामने रखे गए हैं, और जरूरी नहीं कि ये तरीके एक-दूसरे के साथ संवाद करें परिणामस्वरूप, विषय के कारणों और परिणामों की जांच में कई अलग-अलग मोड़ आते हैं, और परिणाम हमेशा सुसंगत नहीं होते हैं। ऐसा कहने के बाद, हर कोई इस बात से सहमत हो सकता है कि इंटरनेट ने संपर्क की नई लाइनें खोल दी हैं, जिसने मीडिया के अधिक पारंपरिक रूपों की तुलना में समाचारों के प्रचार में काफी बदलाव किया है। भौगोलिक सीमाओं और सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उपसमूहों से परे, सोशल मीडिया मल्टीमीडिया प्लेटफार्मों के माध्यम से समाचारों के वैश्विक प्रचार में एक आवश्यक भूमिका निभाता है यह परिस्थिति राजनीतिक समझ को कैसे बढ़ाती है, इसकी जांच इस अध्याय में की गई है यहां इस सवाल पर चर्चा की गई है कि सोशल मीडिया का राजनीति पर क्या और किस हद तक प्रभाव पड़ता है सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, हम चर्चा करते है कि कैसे इंटरनेट की परस्पर जुड़ी संरचना ने लोगों के लिए राजनीति में शामिल होना हमेशा आसान बना दिया है, और सोशल मीडिया के उदय के साथ यह प्रवृत्ति कैसे आगे बढ़ी है। हम इस चर्चा से शुरुआत करते है कि कैसे सूचना प्रसार से लोगों की राजनीतिक साक्षरता और, विस्तार से, राजनीतिक प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी का स्तर बढ़ सकता है हम इस बात पर चर्चा करते है कि सोशल मीडिया इस प्रभाव को कैसे बढ़ा सकता है, राजनीतिक प्रवचन को आकार देने के लिए ऑनलाइन समुदायों की शक्ति का और विस्तार कर सकता है।

मुख्यशब्द - आधुनिक राजनीति, सोशल मीडिया, मल्टीमीडिया, प्लेटफार्मों

परिचय

ब्रिटिश काल में सरकारी कर्मचारियों व राजनीतिक संस्थाओं की प्रक्रियाओं और जनसाधारण के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क न था और उनके संबंध शासक-षासित के समान थे। जनसाधारण उन्हें अपने मालिक के रूप में देखते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् की राजनीतिक संस्कृति में सैद्धांतिक रूप से यह संबंध नागरिक और जनसेवक के संबंधों में परवर्तित हो गया। हालांकि इस दौर में भी जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का अभाव था और राजनीति में सामंतवादी तत्व सर्वथा विद्यमान थी एवं लोकतंत्र के आचरण के नीचे भारत में सामंतवादी राजनीति संस्कृति बनी हुई थी। इसके लक्षण वर्तमान में भी दिखाई देते हैं। इसकी मुख्य वजह है जनजागरूकता की कमी व अशिक्षित समाज। 1947-67 के दौर में तो जनप्रतिनिधि अधिकांशतः समाज के प्रभुत्वशाली लोग ही थे, जो सामंतवादी सोच से कहीं-न-कहीं प्रभावित थे साथ ही समाज में शिक्षा का स्तर भी काफी निम्न था।

1947 के बाद की राजनीतिक संस्कृति स्थानीय स्तर से विकसित होकर जिला स्तर की राजनीति और जिले से राज्य की राजनीति में प्रवेश कर गई। ऐसा सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कारण हुआ। सत्ता का वितरण और नई प्रशासकीय इकाईयों के निर्माण के परिणामस्वरूप राजनीति के विविध स्तरों का निर्माण हुआ। इन नई प्रशासकीय संस्थाओं और निकायों की स्थापना ने जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित किया और जनसाधारण को सत्ता की राजनीति में प्रवेश करने के लिए आमंत्रित किया। सत्ता को ही देश के पुनर्निर्माण का एकमात्र साधन मानने की प्रथा चल पड़ी और कालांतर में राजनीतिक जीवन में सत्ता की राजनीति का वर्चस्व हो गया और किसी भी कीमत पर सत्ता तक पहुँचना एकमात्र लक्ष्य माना जाने लगा।[1]

उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के उपरांत की नव राजनीतिक संस्कृति में विभिन्न स्तर दिखाई देने लगते हैं। सत्ता का विकेन्द्रीकरण के कारण राजनीति के विभिन्न स्तरों की राजनीतिक संस्कृति एक दूसरे से बड़ी सीमा तक भिन्न दिखाई देने लगी। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि हर राजनीतिक स्तर पर कार्य करने वाले लोगों की राजनीतिक संस्कृति में कुछ भिन्नता अवश्य होती है। उदाहरण के लिए जो लोग ग्राम पंचायत के सदस्य हैं, उनके राजनीतिक ज्ञान, देश की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनके दृष्टिकोण, उनके राजनीतिक विश्वास और उनकी राजनीतिक धारणाएँ, उन लोगों से भिन्न होगी जो जिला स्तर पर राजनीतिक दलों या संगठनों में कार्य कर रहे होंगे। इसी प्रकार जिला स्तर की राज्य स्तर और राज्य स्तर की राष्ट्र के स्तर की राजनीतिक संस्कृति निःसंदेह भिन्न होगी। इसी को ध्यान में रखते हुए कहा गया है कि सभी राजनीति समाजों में शासकों अथवा सत्ताधारियों की संस्कृति तथा जनसाधारण की संस्कृति में रात-दिन का अंतर होता है।[2] कालांतर में इस स्तरीय राजनीतिक संस्कृति ने केन्द्र-राज्य संबंध आदि मामलों तथ राजनीतिक भ्रष्टाचार के संदर्भ में विभिन्न समस्याएँ पैदा की।

इस दौर में एक दलीय आधिपत्य की समस्या भी राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख अंग थी। साथ ही राजनीति में करिश्माई नेतृत्व या व्यक्ति केन्द्रित राजनीति की शुरूआत भी स्वतंत्रता के ठीक बाद की राजनीतिक संस्कृति में हुआ जो कालांतर में और विकसित हुई। सन् 1947-67 के काल को 'नेहरू काल' कहा जाने लगा है, जो व्यक्ति केन्द्रित राजनीति को दर्शाता है। हालांकि भारत की राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप ऐसा निर्मित हुआ है कि यहाँ बहुदलवाद की स्थिति बनी हुई है। परंतु गौर करने वाली बात यह है कि बहुदलवाद होते हुए भी राजनीतिक संस्कृति के विभिन्न परिवर्तित चरणों में एक दलीय आधिपत्य का स्वरूप स्पष्ट नजर आता है। ऐसा नही है कि विपक्षी दल नहीं होते थे। सन् 1951-52 के पहले आम चुनाव में विपक्षी दलों ने 26 प्रतिशत सीटें जीती थीं, लेकिन अधिक संख्या में होने तथा विपक्षी एकता में कमी के कारण ये ज्यादा से ज्यादा प्रभावी नहीं हो पाते थे।

गौरवतल है कि इस दौर की राजनीतिक संस्कृति में ही कांग्रेस के पतन के लक्षण दिखने लगे थे। स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख वाहक शक्ति होने के कारण इस दल का जनता में सम्मान व विशिष्ट प्रभाव था, परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक बाद से ही कांग्रेस का संबंध आम जनता से छूटने लगा और पार्टी संगठन का स्तर गिरने लगा था। वर्ष 1957 में कांग्रेस सांसदों को जवाहरलाल नेहरू ने कहा, ''कांग्रेस पार्टी कमजोर है और लगातार कमजोर ही होती जा रही है. ..... हमारी मजबूती हमारे अतीत में है। यदि हम वर्तमान संकट से नहीं निकले, तो कांग्रेस पार्टी का भविष्य अंधकारमय है।''[3] एक शासक पार्टी में इस तरह का थोड़ा सा पतन शायद अवश्यभावी ही होता है परंतु ऐसा पतन एक नियंत्रित सीमा के अंदर होना चाहिए।

विशेषतया, कांग्रेस के इस पतन के प्रारंभ ने भारतीय राजनीतिक संस्कृति के स्वरूप को परिवर्तित करना शुरू कर दिया। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में एक तरह की संरक्षणवादी प्रणाली की शुरूआत हो गई, जिसका नतीजा यह निकला कि वोर्ट बैंक और राजनीतिक दलाली का धंधा शुरू हो गया। गुटवाजी और गुटों का षड्यंत्र, जो अधिकांषत: व्यक्तिगत और सामूहिक हितों पर आधारित थे, जोर पकड़ने लगे और राजनीतिक संगठन के निचले स्तर पर हर प्रकार की गैर जनवादी गतिविधियों को प्रोत्साहित करने लगे। इन गतिविधियों ने पार्टी की छवि को धूमिल करना शुरू कर दिया। राज्यों के विभिन्न सांगठनिक व्यक्तियों और पद पर आसनी लोगों में आपसी संघर्ष बढ़ गया। इससे भी अधिक खतरनाक बात यह थी सामाजिक कल्याण और सामाजिक रूपांतरण संबंधी धरातल पर आदर्श और विचारधारात्मक तत्वों का पतन होने लगा। जहाँ पुराने नेता समाप्त होते जा रहे थे, वहीं उचित प्रकार के नए नेता सामने नहीं आ रहे थे, जो राजनीतिक संस्कृति को सुव्यवस्थित दिशा दे सके। इसी दौर में राजनीतिक संस्कृति में यह लक्षण पैदा होने लगा कि पार्टी के स्तर पर कार्यकर्त्ताओं की मनोवृत्ति नकारात्मक होने लगी।

वस्तुत: किसी राष्ट्र की राजनीतिक संस्कृति में राजनीतिक संस्थाओं एवं पार्टियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ ज्यादातर जनता अशिक्षित हैं, वहाँ विभिन्न पार्टी कार्यकर्त्ताओं की एक बहुत बड़ी भूमिका, सरकार तथा जनता के बीच संबंध स्थापित करने की होती है। पाटी कार्यकर्त्ता जनता की शिकायतें सरकार तक पहुँचाती है और साथ ही, सरकारी नीतियों व कार्यक्रमों की व्याख्या जनता के बीच करती है। पार्टी के स्तर पर संगठन का स्तर गिर रहा था। अब कार्यकर्त्ता सांगठनिक कार्यों को हेय दृष्टि से देखने लगे थे और वे अब अधिकाधिक पदों व प्रभाव तथा संरक्षण के लिए भूखी हो गई। सत्ता पदलोलुप्ता में वृद्धि हो गई। इसी संदर्भ में एक राजनीतिशास्त्री ने कांग्रेस पार्टी की स्थिति को देखते हुए कहा है, ''कांग्रेस के अंदर भ्रष्टाचार, मोहभंग और गरिमा का ह्रास बढ़ता ही जा रहा है।[4] यहपदलोलुप्ता का ही प्रभाव था कि डॉ० राममनोहर लोहिया ने 1950 के दशक में पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जनजाति व जनजातियों तथा महिलाओं को नौकरियों में 60 प्रतिशत से अधिक आरक्षण उपलब्ध करवाने जैसे मुद्दों को उठाया और उन्होंने सरकार पर जातिवादी राजनीति का आरोप लगाया। कई मायनों में, इन्हें 1990 के दशक में चलने वाली जातिवादी राजनीति का जनक माना जा सकता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि वर्ष 1947-67 का काल राजनीतिक संस्कृति के संदर्भ में भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए एक महत्वपूर्ण काल था। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश जहाँ कि अधिकतर जनसंख्या अशिक्षित थी, वहाँ राजनीतिक संस्कृति को विकसित करने तथा उसे पुष्ट करने में यह काल महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वस्तुत: भारत एकमात्र ऐसा उत्तर-उपनिवेशवादी राष्ट्र है, जिसने अपनी आजादी के बाद लगातार अपनी संसदीय प्रणाली की सरकार को अक्षुण्ण बनाए रखा है। यह भारत की मजबूत राजनीतिक संस्कृति को प्रदर्शित करता है। हालांकि इस दौर की राजनीतिक संस्कृति में ऐसे गुण यथा व्यक्ति केन्द्रित राजनीति, विपक्ष का अप्रभावी स्वरूप, राजनीति का सामंतवादी तत्व, पार्टी का विचारात्मक पतन, जातिवादी राजनीति, राजनीति में भ्रष्टाचार, राजनीति में साम्प्रदायिकता, सत्ता के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती राजनीति आदि भी दिखने शुरू होते हैं, जो कालांतर में एक चुनौती के रूप में भारतीय नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

जहाँ तक राजनीतिक संस्कृति में संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव है तो तत्कालीन भारत में तकनीक का उतना विकास नहीं हुआ था। प्रौद्योगिकी के नाम पर प्रेस, रेडियो और फिल्में हीं विद्यमान थी। शिक्षा का स्तर निम्न होने के कारण इनकी पहुँच भी उतनी व्यापक नहीं थीं। हालांकि वर्ष 1951-52 के प्रथम आम चुनाव में तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त सुकुमार सेन ने भारतीय नागरिकों में जागरूकता लाने और उन्हें चुनाव प्रक्रिया से जोड़ने के लिए, रेडियो पर चुनाव संबंधी विभिन्न विषयों पर परिचर्चाओं का प्रसारण करवाया, जिनमें 'दि जनरल इलेक्षन: डेमोक्रेसी बिगेस्ट एक्सपेरिमेंट', 'दि सिटिजन वोटर', 'नीड टू एडुकेट द वोटर: दि रोल ऑफ द प्रेस, रेडियो एंड फिल्म' आदि सम्मिलित हैं।[7] इसके अतिरिक्त जनजागरूकता के लिए आयोग ने डॉक्युमेंट्री फिल्मों का भी प्रयोग किया, जिसे पूरे देश में चलाया गया। प्रेस में तो चुनावी प्रक्रिया से जुड़ी न्यूज, जिसमें प्रक्रिया, दल, चुनावी घोषणा-पत्र आदि शामिल हैं, एक मुख्य विशेषता का रूप धारण कर लिया था। फिर भी राजनीतिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार व इसके प्रभाव में वृद्धि का मुख्य कार्य अब भी पारंपरिक तरीके यथा आंदोलन, सभा, भाषण आदि ही कर रहे थे।

वर्ष 1967-90 तक का काल भारतीय राजनीति संस्कृति के संदर्भ में काफी उथल-पुथल भरा रहा। यह दौर भारत के नागरिकों में विकसित राजनीतिक संस्कृति व इसके अवधारणाओं की परीक्षा का काल था। पंजाब और कश्मीर अशांत था, नागा एवं मिजो क्षेत्र बगावत कर रहे थे। आर्थिक स्थिति तो काफी जटिल थी। वर्ष 1962 के भारत-चीन युद्ध और 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के अतिरिक्त 1965-66 के अकाल ने अर्थव्यवस्था की स्थिति काफी गंभीर बना दी थी। इस समय व्यापक आर्थिक असंतोष, बढ़ती कीमतों से सुलगे हुए राजनीतिक आन्दोलन, खाद्य पदार्थों का अभाव, बढ़ती बेरोजगारी और एक सामान्य आर्थिक पतन की परिस्थितियाँ बन रही थी। इस बढ़ते हुए असंतोष में ऊपर से समाज के विभिन्न तबकों खासतौर पर निम्न मध्यवर्ग की अपूर्ण आकांक्षाएँ

आग में घी का कार्य कर रही थी। भ्रष्टाचार, काला बाजार एवं काल धन दिन-दोगुनी रात-चौगुनी बढ़ रहा था। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर असंतोष फैल रहा था। यही असंतोष मजदूर वर्ग और छात्रों में भी देखी जा सकती थी। इस समय जन आंदोलनों-प्रदर्षन, छात्र हड़ताल, दंगे, सरकारी कर्मचारियों द्वारा आंदोलन की एक लहर सी चल रही थी। ये आंदोलन अक्सर हिंसक हो उठते थे। बंद के आयोजनों के रूप में एक नई चीज सामने आई, जो शहरी, महानगरों या सम्पूर्ण राज्य के कामकाज ठप करने की कोशिष करती थी। इस समय घेराव नामक एक नए किस्म के औद्योगिक विरोध प्रदर्षन का तरीका उभरा। घेराव की यह नीति धीरे-धीरे जीवन के दूसरे आयामों में भी फेलती चली गई। इसके अतिरिक्त विकास की पूँजीवादी पद्धति विभिन्न सामाजिक वर्गों, समूहों और तबकों के बीच आर्थिक असमानता को लगातार बढ़ा रही थी। ऐसे असंतोषों के अंदर गैर-संसदीय या यहाँ तक की हिंसात्मक मार्गों की तरह झुकाव की प्रवृत्ति भी बढ़ रही थी, जैसा कि देश के विभिन्न भागों में नक्सलवादी आंदोलन के विकास से स्पष्ट होता है।

नक्सलवादी आंदोलन, जो कि आर्थिक असमानता विशेषकर भूमि सुधार के प्रति अधिक उग्र थी और सशस्त्र विद्रोह की पक्षधर थी। इस आंदोलन ने अनेक ऐसे युवकों, खासतौर से कॉलेज और विष्वविद्यालयों के छात्रों को आकर्षित किया, जो मौजूदा राजनीति से असंतुष्ट थे और वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों से नाराजगी महसूस करते थे, को अपनी ओर आकर्षित किया। हालांकि यह काफी अव्यवस्था का काल था परंतु एक बात गौर करने वाली है कि पूर्व में किये गये प्रयासों के कारण भारतीय नागरिकों की राजनीतिक संस्कृति अब काफी विकसित और दृढ़ हो चुकी थी और वे अब खुलकर अपनी मनोवृत्तियों को प्रदर्षित कर रहे थे। नक्सलवादी आंदोलन की असफलता में कहीं न कहीं भारतीय नागरिकों की वह राजनीतिक संस्कृति की अहिंसा रूपी मान्यता ही थी कि सरकार विद्रोह के स्थान पर संसदीय प्रक्रियाओं, हड़तालों, घेराव आदि को ज्यादा महत्व दिया।

यह काल भारत के राजनीतिक संस्कृति में प्रयोगों का काल था। इस दौर में जहाँ एक दलीय आधिपत्य का प्रभाव खत्म होता है और गठबंधन की अवधारणा का विकास होता है, वहीं क्षेत्रीय राजनीतिक संस्कृति के प्रभाव में और क्षेत्रीय पार्टियों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। उल्लेखनीय है कि कालांतर में पुनः एक दलीय आधिपत्य और व्यक्ति केन्द्रित राजनीतिक संस्कृति का उदय भी दिखता है परंतु एक अंतर यह होता है कि राज्य स्तर पर अब वैसी स्थिति नहीं रहती है। आपातकाल के दौरान जहाँ भारतीय राजनीतिक संस्कृति पर जहाँ ग्रहण लगाने की संभावना दिखाई देती है लेकिन एक स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव द्वारा इसका उदय भी भव्यता के साथ होता है। इस दौर की विविधतापूर्ण स्थिति को देखते हुए राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित करने वाले विभिन्न बिंदुओं का विष्लेषण आवष्यक है।

वर्ष 1967 के चुनाव के समय कांग्रेस अपनी छवि व जनता से दूर हो चुकी थी तथा सामाकि एवं संस्थागत परिवर्तन की पार्टी के रूप में उसका चरित्र व प्रेरणा चुक गई थी। बड़े पैमाने पर लोगों का इससे मोहभंग हो चुका था, जिसका कारण खासतौर से इसके बड़े नेताओं के बीच व्याप्त भ्रष्टाचार, पदलोलुप्ता व विलासितापूर्ण जीवनषैली और सामंतवादी सोच से ग्रसित राजनीति थी। हालांकि लोगों के अंदर अब राजनीतिक संस्कृति काफी दृढ़ हो गई थी और उनमें एक महान राजनीतिक जागृति भी आ चुकी थी, जिसकी अभिव्यक्ति 1967 के आम चुनाव में होती है, जब मतदाताओं का 61-6 प्रतिशत हिस्सा वोट डालने आया।[8] हालांकि चुनाव उपरान्त कांग्रेस ने लोकसभा पर नियंत्रण बनाए रखा, परन्तु इसका बहुमत काफी कम हो गया। साथ ही कांग्रेस ने उत्तर भारत के कई राज्यों यथा - बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, पश्चिम बंगाल आदि की विधानसभाओं में अपना बहुमत खो दिया।

इस चुनाव ने भारत में राजनीतिक संस्कृति के संदर्भ में अल्पजीवी गठबंधन सरकारों और दल-बदल की राजनीति के एक दोहरे युग की शुरूआत की। गठबंधन सरकारें चाहे वह कांग्रेस द्वारा बनाई गई हो या विपक्ष द्वारा बहुत ही अस्थिर साबित हुई। सभी गठबंधन सरकारें अपने सहयोगी दलों की विषमताओं के कारण निरंतर तनावों और आंतरिक दरारों से पीड़ित रही। इसमें गौर करने वाली बात यह है कि पार्टी विचारधारा का स्थान गौण हो गया, अलग-अलग विचारधाराओं वाली पार्टी ने भी आपस में सत्ता के लिए गठबंधन करना शुरू कर दिया। सहयोगियों के बीच नीतियों के बजाय मंत्रीपदों, संरक्षणों और विभिन्न समूहों के लिए सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए लगातार सौदेबाजी चलने लगी। परिणामतः मंत्रीमंडलों का आकार भी विषाल हो गया। ये सरकारें गठित होती, फिर विधायकों की बढ़ती हुई स्वामिभक्ति के कारण बदली जाती और फिर बार-बार गठित होती। 1967 के आम चुनावों से 1970 के अंत तक बिहार में सात सरकारें और उत्तर प्रदेष में चार सरकारें बदली।[9] नई सरकारों के गठन और पुरानी सरकारों को गिराने के खेल में छोटी पार्टियों और निर्दलियों की भूमिका बढ़ गई।

इस काल में गठबंधन सरकारों की एक अन्य महत्वपूर्ण विषेषता दलबदल राजनीति की शुरूआत भी थी। उत्तरी राज्यों में कई सरकारों में बदलाव इन्हीं दलबदल विधायकों द्वारा व्यक्तिगत रूप से खेमा बदलने का परिणाम था। भ्रष्ट विधायक खरीद-फरोख्त में लीन थे और अन्य विधायक पद अथवा पैसे के लोभ में निर्बाध होकर पाली बदला करते थे। 1967 से 1970 के बीच करीब-करीब 800 विधायकों ने दल बदला और उनमें से करीब 155 विधायकों को मंत्रीपद के रूप में इनाम प्राप्त हुआ। दल-बदल की समस्या एक चुनौती बन गई, क्योंकि दलबदलू लोगों, जो सिर्फ व्यक्तिगत और भ्रष्ट कारणों से दल बदला करते और सरकार को गिरा देते थे, उन्हें मतदाताओं ने दंड नहीं दिया तथा वे बार-बार चुनकर आते थे। इसमें अशिक्षित समाज, क्षेत्रीय स्तर पर सामंतवादी सोच के प्रतिनिधि का प्रबल, व्यापक प्रभाव होना, गरीबी आदि का योगदान हो सकता है। वर्ष 1986 में राजीव गाँधी सरकार द्वारा दल-बदल विरोध कानून पास किये जाने के बाद ही दल-बदल की परिघटना पर कुछ नियंत्रण लगाया जा सका।

कांग्रेस की गंभीर पराजय विषेषकर राज्य स्तर पर व केन्द्र स्तर पर घटता बहुमत देखकर राजनीति विशेषज्ञ यह कहने लगे कि भारतीय राजनीति में कांग्रेस के अंत की शुरूआत हो गई है। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं था। कांग्रेस न केवल देश की सबसे बड़ी पार्टी थी, वरन् एकमात्र राष्ट्रीय पार्टी थी, जिसके पास राष्ट्रव्यापी संगठन और समर्थक थे। हालांकि इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस के लिए जनता को आकर्षित करने का नए राजनीतिक तरीकों की खोज आवश्यक हो गया था। जनता अब राजनीतिक रूप से काफी जागरूक हो गई थी तथा सिर्फ वायदों से ऊब चुकी थी और ठोस परिणाम चाही थी। यह राजनीतिक संस्कृति का भारतीय नागरिकों में विकास का ही प्रभाव था कि कांग्रेस को अब स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिकाओं और नेहरू युग की उपलब्धियों के आधार पर समर्थन नहीं मिल सकता था।

इसी राजनीतिक उपाय के रूप में कांग्रेस ने एक उग्र सुधारवादी दस सूत्री कार्यक्रम स्वीकार कर लिया, जिसमें बैंकों के ऊपर नियंत्रण, बीमा का राष्ट्रीयकरण, व्यापार में सरकारी दखल, आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर नियंत्रण, खाद्यान्नों हेतु जन-वितरण प्रणाली, भूमि-सुधारों का शीघ्र कार्यान्वयन, रजवाड़ों की विषेष सुविधा का समापन आदि शामिल था। इसे जल्द से जल्द लागू करने का प्रयास किया जा रहा था, ताकि शहरी व ग्रामीण गरीबों तथा हरिजन, जनजातियाँ, अल्पसंख्यकों और महिलाओं जैसे सामाजिक रूप से पिछड़े हुए तबकों के बीच अपने समर्थन को उग्र सुधारवादी कार्यक्रमों के आधार पर व्यापक बना सके। हालांकि कांग्रेस में पतन की चरम परिणति के रूप में इसका विभाजन हो जाने के कारण और उच्चतम न्यायालय द्वारा बैंको का राष्ट्रीयकरण एवं राजवाड़ों की सुविधा समाप्त करने जैसे आदेषों पर रोक लगाने के कारण कार्यक्रम सफल नहीं हुआ।

इसके उपरांत 1971 के आम चुनाव में भारतीय राजनीतिक संस्कृति ने एक खास उपलब्धि हासिल की। इस चुनाव में विपक्षी दल 'इंदिरा हटाओ' नारे के साथ मैदान में उतरा। इससे बिल्कुल भिन्न इंदिरा गांधी, सामाजिक परिवर्तन, जनवाद, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद जैसे राष्ट्रीय मुद्दों के ऊपर आमतौर पर जोर डालकर अपना प्रचार करती रही। उन्होंने भूमिहीन मजदूरों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों, अल्पसंख्यकों, औरतों तथा बेरोजगार एवं असंतुष्ट नवयुवकों के वंचित और पीड़ित तबकों को संबोधित किया। 'इंदिरा हटाओ' नारे के खिलाफ उन्होंने कहीं अधिक असरदार नारा दिया 'गरीबी हटाओ'।

1971 के चुनाव परिणाम ने कांग्रेस पार्टी को भारतीय राजनीति में फिर से वर्चस्वकारी स्थिति में पहुँचा दिया। इस चुनाव में मतदाताओं ने एक ही साथ परिवर्तन व स्थायित्व के लिए अपना मत प्रदान किया। जनता के मतों ने धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय सीमाओं को तोड़ डाला था। इस चुनाव ने दिखा दिया था कि यदि एक बार राष्ट्रीय मुद्दे उठा दिये गये तो वोट बैंक और संरक्षणवादी अपेक्षाकृत बेमानी हो जाती है। यह चुनाव जनता के बीच राजनीतिक संस्कृति के वृहत फेलाव और अधिक राजनीतिकरण का प्रतिबिंब था।

राजनीतिक संस्कृति में अभी भी व्यक्ति केन्द्रित राजनीति विद्यमान थी। इसकी अभिव्यक्ति इससे होती है कि इसे 'इंदिरा युग' की संज्ञा दी गई। हालांकि बीच के गठबंधन सरकार के दौर में थोड़ा स्थिति परिवर्तन दिखता है, परंतु 1980 के आम चुनाव के बाद पुनः वही स्थिति वापस आ गई। यद्यपि एक दलीय आधिपत्य का प्रभाव बहुत अर्थों में अब सीमित हो गया। परंतु एक नई प्रवृत्ति दल-बदल का आगमन हो गया, जिसने पहले से विद्यमान राजनीतिक भ्रष्टाचार का और आगे बढ़ाया। पूँजीवादी आर्थिक विकास ने राजनीतिक सामंतवादी सोच को और पुष्ट किया तथा भ्रष्टाचार, दल-बदल प्रवृत्ति ने सत्ता के इर्द-गिर्द की राजनीति को एक विकसित रूप प्रदान किया। इस दौर में गठबंधन की राजनीति हाषिए पर जाती दिखी, हालांकि कालांतर में इसने एक प्रबल स्थिति को प्राप्त किया। विपक्ष अब भी अप्रभावी व विखंडित था। मंडल कमीषन की स्थापना के बावजूद जातिवादी राजनीति को ज्यादा प्राप्त नहीं हुआ। हालांकि राजनीति में सम्प्रदायवाद को इस दौर में काफी प्रश्रय मिला।

साम्प्रदायिक पार्टियों और समूहों के प्रति नरम रवैए का अत्यधिक नकारात्मक परिणाम साम्प्रदायिकता को वैद्य और आदरणीय बनाने के रूप में सामने आया। इस दौर में धर्मनिरपेक्ष पार्टियों ने भी कई तरह की छूट देकर साम्प्रदायिक भावनाओं को बल प्रदान किया। उदाहरण के तौर पर शाहबानों मुकदमें में सरकार ने जहाँ मुस्लिम तुष्टिकरण को प्रश्रय दिया, वहीं 1986 में विवादित अयोध्या मंदिर-मस्जिद के दरवाजे खोलकर हिन्दू तुष्टिकरण को पाँव फैलाने दिया। इन सबसे बढ़कर वी०पी० सिंह ने 1990 में पैगम्बर मोहम्मद के जन्मदिन को सार्वजनिक अवकाष के रूप में घोषित कर इस प्रक्रिया को और बल दिया।

वर्ष 1967-90 के दौर में संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास हुआ तो था, परंतु भारत में अभी यह प्रारंभिक चरणों में ही था। राजीव गाँधी ने 1980 के दषक में हालांकि टेलीविजन को सरकारी नियंत्रण से थोड़ी छूट प्रदान की। परंतु रेडियो की तरह ही इसका मुख्य ध्यान मनोरंजन के क्षेत्र में ही अधिक था। यद्यपि यह अपने विभिन्न कार्यक्रमों, सरकारी कार्यक्रमों एवं सूचनाओं के प्रसारण द्वारा जन जागरूकता के दिषा में काफी सराहनीय प्रयास किये। ध्यान देने वाली बात यह है कि अब भी इसकी पहुँच उतनी व्यापक नहीं थी, जितनी की प्रेस एवं अन्य पारंपरिक संचार साधनों यथा भाषण, सभा, रैली, नुक्कड़ नाटकों आदि का था। यहाँ तक कि आपातकाल के दौर में तो जनता रेडिया एवं टेलीविजन पर प्रसारित सूचनाओं को संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे। आम जनजीवन अभी भी राजनीतिक जागरूकता के लिए पारम्परिक साधनों के साथ-साथ प्रेस विज्ञप्ति, समाचार पत्रों, पम्पलेटों, पर्चा बैनरों, पोस्टरों आदि पर ज्यादा निर्भर थी। हालांकि 1990 के दषक में यह स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई, हालांकि ऐसा नहीं था कि अन्य साधन का प्रभाव नहीं था परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी विशेषकर टेलीविजन और कम्प्यूटर ने इसमें क्रांति ला दी, जिसकी नींव इसी दौर में पड़ गई थी।

1990 के दषक की राजनीतिक संस्कृति के एक प्रमुख अवयव के रूप में जाति आधारित सामाजिक न्याय की राजनीति के प्रभाव में वृद्धि हुई। वस्तुतः यह कमीशन जनता सरकार (1977-79) ने नियुक्त किया था। मंडल आयोग की सिफारिषों में सरकारी नौकरियों और सार्वजनिक क्षेत्रों में 27 फीसदी आरक्षण 'पिछड़ी जातियों' के लिए रखा गया। इस प्रकार आरक्षित श्रेणी 22.5 प्रतिशत से बढ़कर 49.5 हो गई। 1990 में वी०पी० सिंह सरकार ने इसे लागू करने का निर्णय लिया। मंडल आयोग के निर्णय का सबसे घातक पहलू इसका सामाजिक रूप से विभाजनकारी होना था। सामाजिक न्याय के नाम पर इसने जाति के विरूद्ध खड़ा कर दिया।

इस दौर की राजनीतिक संस्कृति में राजनीतिक भ्रष्टाचार, धन-बल का प्रयोग, राजनीतिक रूप से अपराधियों को प्रश्रय अर्थात् राजनीति का अपराधीकरण व अपराधियों का राजनीतिकरण बढ़ा। हालांकि इस दौर में राजनीतिक संस्कृति के विकास के मद्देनजर इस पर अंकश लगाने का भी प्रयास किया गया, परंतु भारतीय राजनीतिक संस्कृति में ये अब भी विद्यमान है।

जहाँ तक राजनीतिक संस्कृति के प्रभाव में संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका है तो इस दौर में प्रिंट मीडिया ने जहाँ यथावत स्थिति बरकरार रखी और राजनीतिक चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता रहा। यहाँ तक कि इसका और क्षेत्रीय स्तर पर विस्तार हुआ, विभिन्न शहरों से इसका क्षेत्रीय संस्करण का प्रकाषन शुरू हुआ। सबसे अधिक विकास रेडियो और टेलीविजन के क्षेत्र में आया। उदारीकरण के प्रभाव के कारण निजी क्षेत्र की सहभागिता रेडियो और टेलीविजन के क्षेत्र में तीव्र गति से बढ़ी। 15 अगस्त 1993 को दिल्ली और मुम्बई से निजी क्षेत्र के एफ.एम. रेडियो चौनल की शुरूआत हुई।[6] जिसमें शहरी श्रोताओं के एक बड़े वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया। सन् 2000 में देश के 40 नगरों में एम.एम. का जाल फैल गया। इन चौनलों से मनोरंजन के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक सूचनाओं के प्रसारण से भारतीय राजनीतिक संस्कृति को प्रसार मिला।

1990 के उदारीकरण का प्रभाव टेलीविजन पर भी पड़ा। इस क्षेत्र में अब निजी चौनलों का भी प्रवेश हुआ। 1992 में सबसे पहले जी-समूह, फिर 1993 में स्टार समूह आया। उसके बाद एन.डी.टी.वी., आज तक जैसे न्यूज चौनलों की भरमार हो गई। इसने विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा सूचनाओं के प्रसार के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक घटनाओं, प्रक्रियाओं का विष्लेषण का सीधा प्रसारण आम जनता के समक्ष किया, जिसमें आम जनता के समक्ष विभिन्न मुद्दों के पक्ष-विपक्ष भाग प्रस्तुत हुए जिनसे राजनीतिक चेतना का उत्तरोत्तर प्रसार हुआ और राजनीतिक संस्कृति जन-जन तक फैल गई। यद्यपि इंटरनेट का विकास हो चुका था परंतु अभी इसका प्रसार भारत में उतना व्यापक नहीं था कि वह भारतीय जनता के राजनीतिक संस्कृति के मनोवृत्ति को प्रभावित कर सकती।

स्वतंत्रता के बाद वयस्क मताधिकार दिये जाने के फलस्वरूप भारत में सहभागी राजनीतिक संस्कृति का उदय हुआ और विगत 55 वर्षों में जो राजनीतिक आधुनिकीकरण हुआ उसके फलस्वरूप देष की राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ। चुनावों में प्रत्याशियों, दलों, मतदाताओं की संख्या में वृद्धि होगी, विभिन्न प्रकार के गुटों, समूहों की स्थापना व इनके द्वारा चलाया जाने वाला आंदोलनों से पता चलता है कि भारत में जनता का एक बड़ा भाग अपने राजनीतिक तंत्र का ज्ञान रखता है और सरकारी सुविधाओं एवं अपने वैधानिक अधिकारों का उपभोग करने के लिए संघर्ष करता रहा है। यह भारत की राजनीतिक संस्कृति की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

संदर्भ-सूची

1. बाल, ए०आर०, मॉडर्न पॉलिटिक्स एंड गवर्नमेंट, मैकमिलन एडुकेशन पब्लिकेशन, 1971, पृ०-56
2. चंद्र, विपिन, मुखर्जी मृदुला और मुखर्जी आदित्य, आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002, पृ० 252
3. फाडिया, डॉ० बी०एल० और फाडिया डॉ० कुलदीप, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन प्रकाशन, चौदहवां संस्करण, पृ० 875
4. पाई, लूसियन, राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक विकास: राज्य शास्त्र समीक्षा, जुलाई 1975, पृ० 85
5. पामर, नॉरमन डी०, दी इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम, लंदन, 1961, पृ० 193
6. माइरन, वीनर, पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया, प्रिंस्टन प्रेस, 1957, पृ० 69

सरकारी एवं गैर सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालय के सामान्य एवं अपवादात्मक विद्यार्थियो के अधिगम शैली का तुलनात्मक विश्लेषण

रतनेश कुमार

शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत गणिनाथ राजकीय पी. जी. कॉलेज, मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ

डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय

शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत गणिनाथ राजकीय पी. जी. कॉलेज, मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ

सारांश

प्रस्तुत शोध लेख मे सर्वे शोध विधि का प्रयोग किया गया है। शोधकर्ता द्वारा मिर्जापुर जिले से उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत कक्षा दस X एवं कक्षा XI ग्यारह के विद्यार्थियो को शामिल किया गया है। जिसमें अपवादात्मक 200 एवं 200 सामान्य विद्यार्थियो का प्रतिनिधित्व उद्देश्यपरक विधि द्वारा किया गया है। आंकड़ों के संग्रह के लिए डॉ व करुणा शंकर मिश्रा द्वारा निर्मित अधिगम शैली मापनी का उपयोग किया गया है । दोनो समूहो के विद्यार्थियो के अधिगम शैली की तुलना करने के लिए मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया है। शोधकर्ता ने परिणाम में पाया कि सामान्य एवं अपवादात्मक बालको के अधिगम शैली में सार्थक अंतर है। अर्थात् निर्मित शून्य परिकल्पना HO.1 सामान्य एवं अपवादात्मक बालको के अधिगम शैली मे कोई सार्थक अंतर नही है को अस्वीकार किया गया है, तथा शोध परिकल्पना को स्वीकार किया गया है। दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शून्य परिकल्पना सामान्य एवं अपवादात्मक बालिकाओं के अधिगम शैली मे सार्थक अंतर नही है को अस्वीकृत किया गया है। निष्कर्ष के रूप मे शोधकर्ता ने पाया कि सामान्य बालको के अधिगम शैली की तुलना में अपवादात्मक बालको की अधिगम शैली का स्तर निम्न है। जबकि ऐसे बालको के लिए विषयगत अधिगम शैली के विधियों को अपवादात्मक बालको के अनुरूप होना चाहिए जिससे अधिगम की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है।

शब्द कुंजी:- सामान्य बालक, अपवादात्मक बालक, अस्थि बाधित, दिव्यांग छात्र एवं छात्रा, अधिगम शैली।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध लेख मात्रात्मक सर्वे शोध है जो कि मिर्जापुर जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत कक्षा दस एवं ग्यारह के सामान्य बालक एवं अपवादात्मक बालको के अधिगम शैली के अध्ययन से है।

प्राय: सामान्य बालको का शैक्षिक वातावरण अपेक्षाकृत सहजता से उपलब्ध कराया जा सकता है। जबकि अपवादात्मक बालक एवं बालिकाओं को वर्तमान समय मे भी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। आधुनिक शैक्षिक वातावरण मे अध्ययनरत अस्थि बाधित बालक जो हाथ एवं पैर की समस्या से जूझ रहे है। प्राय: ऐसे बालको मे कौशल की क्षमता विकसित करने के लिए अनेक प्रकार के शिक्षण कार्यक्रमो को शामिल किया जाता है। ऐसे बालको मे सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक रूप से कमिया अधिक पाई जाती है। अपवादात्मक बालको मे आत्म हीनता के भाव दिखलाई पड़ते है। जिसके कारण ऐसे बालको मे अधिगम शैली की कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। शोध लेख के केंद्र बिंदु मे शोधकर्ता द्वारा सामान्य एवं अपवादात्मक छात्र एवं छात्राओ को शोध अध्ययन मे उत्तरदाता के रूप मे शामिल किया गया है। और ऐसे बालको को अधिगम शैली कैसे प्रभावित करती का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

सामान्य बालक :

शैक्षिक वातावरण मे वह बालक जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ हो ऐसे बालको को सामान्य श्रेणी मे रखा गया है। जो अधिगम शैली के सामान्य गतिविधियो को सहजता से प्राप्त करते है और सीखते है।

अपवादात्मक बालक :

ऐसे बालक जो सामान्य से अलग होते है एवं जो मनोशारीरिक रूप से सामान्य बालको की तुलना मे कम या अधिक मात्रा मे शारीरिक गतिविधियो मे निम्न स्तर की प्रक्रियाओ को करते है। अर्थात ऐसे बालक जो दिव्यांग की श्रेणी मे आते है। जिनमे अस्थि बाधित जिनको हाथ की विकलांगता एवं पैर की विकलांगता की समस्या है, उन्हें ही शोध अध्ययन मे शामिल किया गया है।

अधिगम शैली:

अधिगम शैली से तात्पर्य सीखने के तरीको से है जिसमे शिक्षक द्वारा प्रयुक्त किए गए विधि से है। अर्थात छात्र जिस विधि से सीखता है उसी को अधिगम शैली कहा जाता है। व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर कक्षा मे शिक्षण कार्य की व्यवस्था किस प्रकार की जाए कि विद्यार्थी अधिक से अधिक अपने विषय को सीख सके। शिक्षक द्वारा यह तय किया जाता है कि विद्यार्थी किस अधिगम शैली से अधिक सीख सकता है। जबकि वैयक्तिक विभिन्नता के परिणाम स्वरूप प्रत्येक बालक मे अधिगम शैली की प्रक्रिया भिन्न होता है। शिक्षण कार्य बालक के व्यक्तित्व से जुड़ा है जिसमे अध्यापक को प्रत्येक पक्ष को ध्यान मे रखना चाहिए अर्थात छात्र के बारे मे जितनी भी जानकारियां सूचनाएं उपलब्ध हो सकती है। सभी पक्षों का ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थात विषय वस्तु के ज्ञान से बालक के अधिगम शैली का ज्ञान हो यह आवश्यक नही है। बालक के अधिगम शैली क्या है? क्या अधिगम शैली सार्थक ढंग से उस बालक को प्रभावित करता है? छात्र किस प्रकार के सीखने की शैली को अपनाता है? अनुसंधानकर्ता ने इन सभी तथ्यो को ध्यान मे रखकर शोध अध्ययन के अंतर्गत अधिगम शैली के क्षेत्र में कार्य के लिए अग्रसर हुआ है। जिससे यह ज्ञात होगा कि कोई विद्यार्थी अधिगम शैली के विभिन्न विधियों से किस तरह से प्रभावित होता है।

आशुबेल ने अधिगम शैली को ज्ञानात्मक शैली कहा है। अधिगम शैली में बोध एवं संकल्पना दोनो ही व्यक्तिगत पहचान रखते है। जैसे देखना सुनना याद करना समस्या का हल आदि को शामिल किया जाता है। अधिगम शैली ज्ञान के प्रसार से अधिक महत्वपूर्ण है।

सीगल एवं कुप ने अधिगम शैली को संज्ञानात्मक क्रिया बताया है, एवं स्पष्ट किया कि अधिगम शैली एक आकलित संकल्पना है। इसी संदर्भ मे हैमचौक ने परिभाषित किया है कि हमें छात्र के अधिगम शैली के निदान मे ही दक्ष नही होना चाहिए अपितु उसे आत्मसात करना चाहिए, दूसरे शब्दो मे यह जानना आवश्यक है कि बालक किस प्रकार की अधिगम शैली से अधिक प्रभावित है। इसकी जानकारी शिक्षक को होनी चाहिए।

पूर्व साहित्य

शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए पूर्व शोध साहित्य का अवलोकन किया जाना आवश्यक है। जिसके द्वारा शोध कार्य करने में मदद मिलती है। और सम्बन्धित विषय में जानकारी अधिक होती है। जिससे शोध कार्य की सीमाओं के साथ उनका सीमांकन भी किया जा सकता हैं। और स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर की जानकारी भी मिलती है। साथ ही साथ उद्देश्यों के लक्ष्यों की प्राप्ति होती हैं। इसी संदर्भ मे शोधकर्ता ने अपने शिक्षाशास्त्री शोध अध्ययन के लिए चयनित पूर्व साहित्य को प्रस्तुत किया है। फराह नकवी (2016) ने अपने शोध मे पाया की उच्च शिक्षा प्रबंधन के विषय सूची के अधिगम शैली एवं शैक्षिक कारको की तुलना करने पर ज्ञात होता है की छात्राओं मे छात्र की तुलना में अधिक अधिगम शैली को आत्मसात करने की क्षमता पायी गई। एलिस (2005) ने अपने शोध कार्य में पाया की पूर्व अधिगम शैली की तुलना में अनुभवात्मक शैली से अपेक्षाकृत अधिक सीखते है जिससे नए कंटेंट बनाए जाने में शिक्षक को सुविधा मिलती है। सहाना (2014) ने अपने अध्ययन में मेडिकल के विद्यार्थियों का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर पाया कि क्रियात्मक अधिगम शैली को अपनाने वाले बालक समूह में सीखने की क्षमता अधिक पाया गया है। सिंह निर्मल (2020) ने अपने अध्ययन में पाया कि की प्रत्येक छात्र अद्वितीय होते है एवं उनमें सीखने की शैली प्रत्येक बालकों में अलग होता है जिसके कारण उनके अनुरूप विषय अधिगम की प्रकिया को बदलना पड़ता हैं। खान अहमद (2015) ने शोध कार्य के लिए 300 विद्यार्थियों का चयन कर अध्ययन के अंतर्गत पाया कि बालक में बालिकाओं की तुलना में अधिक सीखने की क्षमता होती है।

शोध अध्ययन की प्रक्रिया

शोध समस्या के चुनाव व संबंधित साहित्य के सर्वेक्षण के बाद शोधार्थी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शोध कार्य के संपादन के लिए एक निश्चित व्यापक प्रक्रिया का अनुसरण कर शोध के उद्देश्यों एवं लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। शोध लक्ष्य तक पहुचने के लिए शोधार्थी को शोध अभिकल्पन अथवा योजना बनानी होती है और उपयुक्त शोध विधि का चयन करना होता है, जिससे शोधकर्ता अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल होता है। और शोधार्थी द्वारा अध्ययन के उद्देश्यो को ध्यान में रखकर प्रक्रिया को अपनाया गया है।

अध्ययन विधि

शोधार्थी ने अध्ययन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शोध समस्या की प्रकृति एवं उद्देश्यो के परीक्षण के पश्चात मात्रात्मक सर्वे शोध एवं वर्णनात्मक शोध विधि का उपयोग किया है। जॉन डब्लू बेस्ट (1963) ने वर्णनात्मक अनुसंधान क्या है? का वर्णन एवं विश्लेषण करते हुए कहा है कि परिस्थिति अथवा सम्बन्ध जो वास्तव मे वर्तमान मे घटित होती है। सर्वेक्षण अनुसंधान या विवरणात्मक अनुसंधान किसी परिस्थिति की उस दशा व प्रकृति के अनुसंधान की ओर संकेत करता है जैसा वह अध्ययन के समय मौजूद है। इस प्रकार के अनुसंधान मे चरों के मध्य अथवा समूहो के बीच अंतरो को ज्ञात करते है। इसमें परिकल्पना का परीक्षण किया जाता है जिससे सामान्यीकरण किया जा सकता है। सर्वे शोध मे स्थानीय, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर के मुद्दों पर उपलब्ध समस्याओ को समझने एवं उनका समाधान करने का प्रयास किया जाता है जिससे इसमें शामिल वर्तमान सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण की समस्याओ को भी विश्लेषित किया जाता है।

सर्वेक्षण विधि: सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग प्राय: ऐसे शोध में किया जाता है जो एक निश्चित क्षेत्र से तथ्यों के आंकड़ों के द्वारा विश्लेषण किया जाता है। इसमें प्रतिदर्श से लिए गए आंकड़ों का उपयोग किया जा सकता हैं। सर्वेक्षण शब्द अंग्रेजी शब्द के Survey का हिंदी पर्याय है। अंग्रेजी शब्द lookover या अमतेमम से है। अत: सर्वेक्षण से तात्पर्य परिस्थिति या घटना की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए किसी क्षेत्र का समालोचनात्मक निरीक्षण करने से है, शोधार्थी ने इस शोध लेख के अध्ययन में विवरणात्मक और सर्वेक्षण शोध का प्रयोग किया है

चर:-

चर का आशय जिनके अनेकों गुण होते है। अथवा यह कहा जा सकता है की जिनके एक से अधिक मूल्य हो। अध्ययन के अंतर्गत शोधकर्ता द्वारा स्वतंत्रत चर तथा आश्रित चर का प्रयोग कर शोध समस्याओ एवं निर्मित परिकल्पना द्वारा शोध लक्ष्य तक पहुंचने की कोशिश किया है। कर्लिंगर 1964) के अनुसार चर एक ऐसा गुण होता है कि जिसके अनेक मात्राएं हो सकती है। प्रस्तुत अध्ययन में निम्न प्रकार के चरों का अध्ययन किया गया है।

स्वतंत्र चर : शोधकर्ता जिस कारक के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है और प्रयोग में जिस पर उसका नियंत्रण रहता है उसे स्वतंत्र चर कहते है।

स्वतंत्र चर : सरकारी एवं गैर सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालय।

सामान्य एवं अपवादात्मक विद्यार्थी (बालक, बालिका)

प्रस्तुत शोध के प्रमुख आश्रित चर है:-अधिगम शैली को शामिल किया गया है।

शोध उद्देश्य (Objective):-

प्रस्तुत शोध लेख के अंतर्गत शोधार्थी ने निम्न उद्देश्यों का चयन किया है। सामान्य एवं अपवादात्मक बालकों के अधिगम शैली का तुलनात्मक अध्ययन करना।

1 सामान्य एवं अपवादात्मक छात्र के अधिगम शैली का तुलनात्मक अध्ययन।

2 सामान्य एवं अपवादात्मक छात्राओ के अधिगम शैली का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना :-

1. सामान्य एवं अपवादात्मक छात्र के अधिगम शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. सामान्य एवं अपवादात्मक छात्राओं के अधिगम शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

प्रतिदर्श :-

जनसंख्या से चयनित उत्तरदाता न्यायदर्श होते है जिन्हें शोध की आधारशिला के रूप मे जाना जाता है। यह आधारशिला जितनी मजबूत होगी शोध कार्य के परिणाम उतने ही विश्वसनीय एवं वैद्य कहे जाएगे। जनसंख्या में से न्यायदर्श का चयन किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत मिर्जापुर जिले से उच्चमाध्यमिक विद्यालय का चयन किया गया है। शोधार्थी ने शोध के लिए सर्व प्रथम जनसंख्या का निर्धारण किया और उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत बालक बालिकाओं का चयन किया है जिसमे 200 सामान्य विद्यार्थियो एवं 200 अस्थि बाधित दिव्यांग बालक तथा बालिका का चयन उद्देश्य परक प्रतिदर्शन विधि से किया गया है। जिनकी आयु सीमा 16 से 18 वर्ष है। इनका शैक्षिक स्तर कक्षा दस एवं ग्यारह है। न्यायदर्श का औचित्य जनसंख्या जिसे समष्टि के रूप में जाना जाता है। जबकि कोई शोध कार्य सम्पूर्ण जनसंख्या पर नही किया जा सकता है इसलिए समष्टि से चुने हुए सुविधाजनक व्यक्तियों पर अध्ययन किया जाता है जिससे शोध कार्य में प्रतिदर्श का चयन महत्वपूर्ण होता है।

उपकरण (Tool):-

मापनीं एवं उपकरण का चयन किसी भी अध्ययन की सफलता के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार किसी मिस्त्री को एक इंजन को ठीक करने के लिए अपने यंत्र बॉक्स में उपयुक्त यंत्र की खोज करनी होती है, ठीक उसी प्रकार अनुसंधान के अंतर्गत एक समस्या के अध्ययन हेतु शोधार्थी को एक ऐसे ही उपकरण का चयन करना होता है। ऐसे उपकरण जिसे किसी शोधार्थी द्वारा किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु बहुत बड़े पैमाने पर उत्तरदाता पर लागू किया जाता है। प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी द्वारा अधिगम शैली मापन के लिए डॉ व करुणा शंकर मिश्र द्वारा निर्मित मापनी से उत्तरदाता से प्रदत्त संकलन किया गया है। जिसके लिए अनुक्रियात्मक प्रश्न पदों के अंकन का उपयोग किया गया है। यह स्केल आम तौर पर 5-पॉइंट अनुक्रिया पर आधारित है।

प्रयुक्त सांख्यिकी :-

आंकड़ों के संग्रह के बाद प्रस्तुत आंकड़ों का विश्लेषण मध्यमान , प्रामाणिक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात एवं SPSS कंप्यूटर सहायक सांख्यिकी का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए सामूहिक रूप में आंकड़ो का संग्रह किया गया है। प्रयुक्त सांख्यिकी द्वारा प्रदत्त का वर्गीकरण, संकलन एवं विश्लेषण किया गया है तथा सार्थकता के लिए 0.05 सार्थक स्तर का उपयोग किया गया है जिसमें डिग्री ऑफ फ्रीडम के मान (198) D.f. उपयोग किया गया है।

उद्देश्य 1 सामान्य बालक एवं अपवादात्मक बालक के अधिगम शैली की तुलनात्मक अध्ययन करना।

HO1 सामान्य एवं अपवादात्मक बालको के अधिगम शैली मे कोई सार्थक अंतर नही है।

तालिका संख्या 1

अधिगम शैली	संख्या N	माध्य M	प्रामाणिक विचलन SD	मानक त्रुटि SEM	SED	C.R. क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर Significant level 0.05
सामान्य बालक	100	23.50	7.99	0.51		2.64	Df 198
अपवादात्मक बालक	100	21.88	5.37	0.34	0.60		सार्थक अंतर हैं। S*

ग्राफ संख्या 1

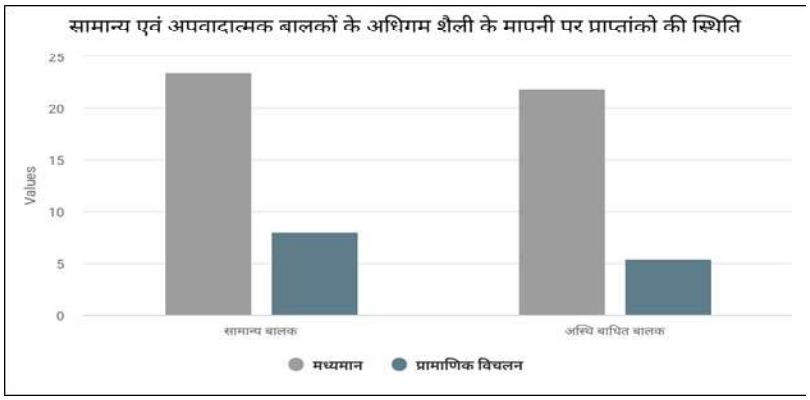

तालिका संख्या 4.1 एवं ग्राफ में प्रस्तुत आंकड़ो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि बालको के अधिगम शैली मापनी पर प्राप्तांको की तुलना के लिए क्रान्तिक अनुपात का उपयोग किया गया है। सामान्य तथा अपवादात्मक बालको के अधिगम शैली मापनी पर प्राप्तांको का मध्यमान क्रमशः सामान्य बालक 23.50 एवं अपवादात्मक बालको का मध्यमान 21.88 प्राप्त हुआ है। और प्रामाणिक विचलन का मान 7.99 तथा 5.37 है। अर्थात प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान 2.64 जो सार्थकता स्तर 0.05 एवं स्वतंत्रता अंश 198 DF के मान से अधिक है। अर्थात निर्मित शून्य परिकल्पना Ho 1 सामान्य एवं अपवादात्मक बालको के अधिगम शैलीं में कोई सार्थक अंतर नहीं है, को अस्वीकार किया है, एवं शोध परिकल्पना को स्वीकार किया गया है।

अतः सामान्य बालकों एवं अपवादात्मक बालकों के अधिगम शैली में सार्थक अंतर है। परिणाम में मध्यमान मूल्य के अवलोकन से ज्ञात होता हैं कि अपवादात्मक बालकों में सीखने का स्तर सामान्य बालको की तुलना में निम्न स्तर का पाया गया।

उद्देश्य 2

1. सामान्य एवं अपवादात्मक बालिकाओं के अधिगम शैली की तुलना करना।

Ho2 सामान्य एवं अपवादात्मक बालिकाओं के अधिगम शैली मे सार्थक अंतर नहीं हैं।

तालिका संख्या 2

अधिगम शैली	संख्या N	माध्य M	प्रामाणिक विचलन SD	मानक त्रुटि SEM	SED	CR क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर Significant level 0.05
सामान्य बालिका	100	23.79	6.29	0.62		4.28	Df 198
अपवादात्मक बालिका	100	20.38	4.80	0.48	00.79		सार्थक अंतर है। S*

ग्राफ संख्या 2

सामान्य एवं अपवादात्मक बालिकाओं के अधिगम शैली मापनी पर प्राप्त प्राप्तांको की तुलना।

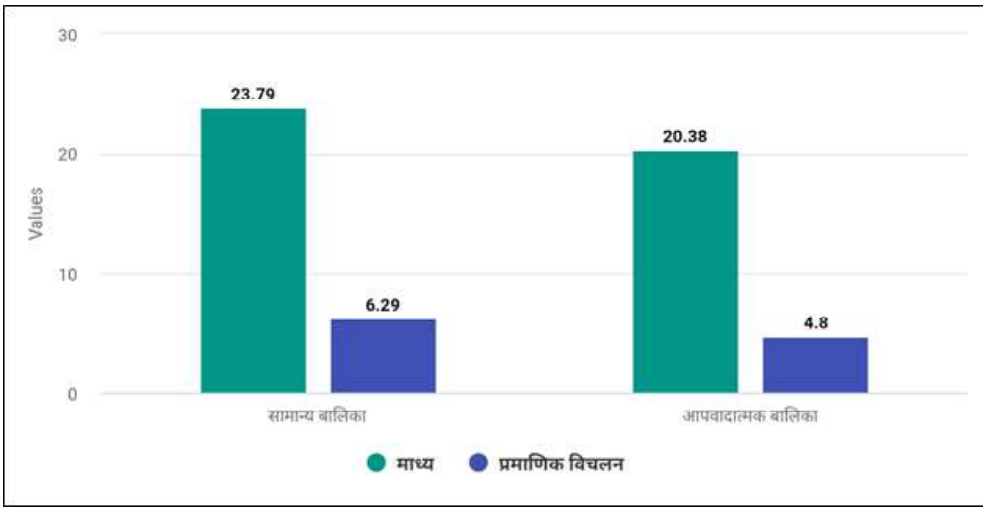

तालिका संख्या 4.2 में प्रस्तुत आंकड़ो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि बालिकाओं के अधिगम शैली मापनी पर प्राप्तांको की तुलना के लिए शोधार्थी ने क्रान्तिक अनुपात का उपयोग किया गया है। सामान्य बालिकाओं के अधिगम शैली मापनी पर प्राप्तांको का मध्यमान 23.79 एवं अपवादात्मक बालिकाओं का मध्यमान 20.38 प्राप्त हुआ है। प्रामाणिक विचलन का मान 6.299 तथा 4.80 है और क्रान्तिक अनुपात का मान 4.28 है जो सार्थकता स्तर 0.05 एवं 198 Df के मान से अधिक है। अर्थात निर्मित शून्य परिकल्पना Ho2 सामान्य एवं अपवादात्मक बालिकाओं के अधिगम शैली में कोई सार्थक अंतर नहीं है को अस्वीकार किया गया और शोध परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है। अत: सामान्य बालिकाओं एवं अपवादात्मक बालिकाओं के अधिगम शैली मे सार्थक अंतर है। निष्कर्ष में मध्यमान मूल्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अपवादात्मक बालिकाओं मे सीखने का स्तर सामान्य बालिकाओं की तुलना मे निम्न ग्रेड स्तर का पाया गया है।

निष्कर्ष

शोधकर्ता ने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि सामान्य एवं अपवादात्मक बालको एवं बालिकाओं के अधिगम शैली मे सार्थक अंतर है। जो कि प्रासंगिक कारण एवं आंकड़ों की प्रकृति और आकस्मिक प्रभाव एवं प्रतिदर्श के चरो का प्रभाव है के रूप में स्पष्ट किया जाता है कि अपवादात्मक बालक एवं बालिकाओं मे अधिगम शैली की जटिलता को निष्कर्ष के रूप में देखा जा सकता है।

Reference

- Dunn, R., DE Bello, T., Brennan, P., Krimsky, J. and Murrain, P. 1981. "Learning Style Researchers Define Differences
- Differently, "Educational Leadership, 38 (5): 372-375.
- Friedman, P. and Alley, R. 1984. "Learning/Teaching Styles: Applying the Principles," Theory into Practice 23(1): 77-81.
- Biermann, G. and Buchanan, J. 1986. "Learning Style and Study Skills Differences Across Business and other Academic.
- Majors," Journal of Education for Business 61: 303-307.
- Curry, L. 1990. "Learning Styles in Secondary Schools: A Review of Instruments and Implications for their Use," ERIC
- Document Reproduction Service No. D 317283.
- Verma, B.P. 1995. "Creativity Styles of Woman Students in Relation to their Rural Urban Background," Progress in
- Education 29: 196-198.
- Lakshmi, K. 1996. Impact of School Readiness Programme on Primary School Children. In Studies on Classroom
- Processes and School Effectiveness at Primary Stage: International Perspective. NCERT, New Delhi.
- Verma, B.P. and Gupta, M. 1996. "Modes and Styles of Learning as Functions of Personality and Motivations,"
- Psycholinguists 26: 37-42.
- Kumar, S. and Susumu, H. 1996. "Metacognition and achievement through Cooperative Learning," Progress of Education
- 30: 230-235.
- Sangeeta 1997. "A Study of Learning Styles of Gifted High School Students Across Gender, School Location, Locus of
- Control and Self-esteem," Doctoral Dissertations in Education, Himachal Pradesh University, Shimla.
- Kumari, Balesh 1997. "A Study of Learning Styles of Socio-economically Advantaged and Disadvantaged Adolescent
- Students in Relation to their Intelligence, Locus of Control and Personality Types," Doctoral Dissertations in
- Education, Ch. Charon Singh University.

- Chin-Chun, Shih and Julia, Gammon, 2001 "Web-Based Learning: Relationships among Student Motivation, Attitude,
- Learning Styles, and Achievement" Journal of Agricultural Education 42(4): 2001.
- Dunn, R., DeBello, T., Brennan, P., Krimsky, J. and Murrain, P. 1981. "Learning Style Researchers Define Differences
- Differently, "Educational Leadership, 38 (5): 372-375.
- Friedman, P. and Alley, R. 1984. "Learning/Teaching Styles: Applying the Principles," Theory into Practice 23(1): 77-81.
- Biermann, G. and Buchanan, J. 1986. "Learning Style and Study Skills Differences Across Business and other Academic
- Majors," Journal of Education for Business 61: 303-307.
- Curry, L. 1990. "Learning Styles in Secondary Schools: A Review of Instruments and Implications for their Use," ERIC
- Document Reproduction Service No. D 317283.
- Verma, B.P. 1995. "Creativity Styles of Woman Students in Relation to their Rural Urban Background," Progress in
- Education 29: 196-198.
- Lakshmi, K. 1996. Impact of School Readiness Programme on Primary School Children. In Studies on Classroom
- Processes and School Effectiveness at Primary Stage: International Perspective. NCERT, New Delhi.
- Verma, B.P. and Gupta, M. 1996. "Modes and Styles of Learning as Functions of Personality and Motivations,"
- Psycholinguists 26: 37-42.
- Kumar, S. and Susumu, H. 1996. "Metacognition and achievement through Cooperative Learning," Progress of Education
- 30: 230-235.
- Sangeeta 1997. "A Study of Learning Styles of Gifted High School Students Across Gender, School Location, Locus of
- Control and Self-esteem," Doctoral Disseration in Education, Himachal Pradesh University, Shimla.
- Kumari, Balesh 1997. "A Study of Learning Styles of Socio-economically Advantaged and Disadvantaged Adolescent
- Students in Relation to their Intelligence, Locus of Control and Personality Types," Doctoral Dissertations in
- Education, Ch. Charon Singh University.
- Ching-Chun, Shih and Julia, Gambon, 2001 "Web-Based Learning: Relationships among Student Motivation, Attitude,

"भारतीय परिप्रेक्ष्य में समानता, न्याय और लोकतांत्रिक पुनरुत्थानः डॉ. भीमराव अंबेडकर के विशेष संदर्भ में"

डॉ० अजीत सिंह

असि० प्रो०, राजनीति विज्ञान, डॉ0 पी0 द0 ब0 हि0 रा0 स्ना0 महाविद्यालय, कोटद्वार (पौड़ी गढ़वाल) उत्तराखंड

सार संक्षेप :

भारतीय लोकतंत्र की वैचारिक यात्रा मूलतः मानव गरिमा, समानता और न्याय की निरंतर खोज से प्रेरित रही है। औपनिवेशिक शोषण, जाति-आधारित सामाजिक स्तरीकरण, धार्मिक-सांस्कृतिक असमानता और आर्थिक विभाजन जैसी ऐतिहासिक चुनौतियों के बीच स्वतंत्र भारत की संवैधानिक संरचना ने उस नैतिक आधार को अपनाया जिसने राजनीतिक अधिकारों को सामाजिक न्याय और मानव-स्वातंत्र्य के साथ एकीकृत किया। इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में डॉ. भीमराव अंबेडकर का चिंतन विशेष रूप से उभरता है, जो सामाजिक समानता, विधिक-समानता, तर्कप्रधानता, आर्थिक लोकतंत्र और व्यक्ति-केन्द्रिक मानवाधिकारों की बुनियाद पर आधारित है। अंबेडकर के विचार भारतीय राज्य को केवल राजनीतिक शासन के ढाँचे तक सीमित नहीं रखते, बल्कि समाज के नैतिक पुनर्गठन, सामाजिक-धार्मिक चेतना के वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन और संरचनागत न्याय की दिशा में अग्रसर करते हैं।

भारतीय लोकतांत्रिक मूल्यों के पुनर्परिभाषण में अंबेडकर की दृष्टि स्पष्ट करती है कि, लोकतंत्र का सार केवल चुनावी व्यवस्थाओं, सत्ता-संक्रमण या संवैधानिक औपचारिकताओं में निहित नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों की नैतिकता, अवसरों की उपलब्धता, प्रतिनिधित्व की न्यायसंगत व्यवस्था और मानवीय सह-अस्तित्व की संस्कृति में स्थित है। संविधान प्रदत्त अधिकारों, आरक्षण और सकारात्मक हस्तक्षेप नीतियों, संस्थागत गारंटियों, बहुलतावादी संरचना, तथा समान नागरिकता के सिद्धांतों के माध्यम से अंबेडकरवादी आदर्शों ने भारत को समावेशी और उत्तरदायी लोकतंत्र की दिशा में अग्रसर किया।

वर्तमान संदर्भ में जब जातिगत विभाजन, आर्थिक असमानता, सामाजिक बहिष्करण, राजनीतिक ध्रुवीकरण, डिजिटल-समानता की चुनौती, तथा सांस्कृतिक वर्चस्व जैसे तत्व लोकतांत्रिक जीवन-व्यूह को प्रभावित करते हैं, तब अंबेडकर की मानव-केन्द्रित विचारधारा न केवल मार्गदर्शन प्रदान करती है, बल्कि लोकतंत्र की आत्मा-समानता, बंधुता, न्याय और स्वतंत्रता-को पुनर्स्थापित करने का दार्शनिक आधार भी प्रस्तुत करती है। इस विमर्श के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतंत्र की स्थायी शक्ति सत्ता-संस्थाओं की दृढ़ता में ही नहीं, बल्कि संवैधानिक नैतिकता, सामाजिक सहभागिता, सांस्कृतिक समरसता और न्यायपूर्ण अवसर-सृजन की सतत प्रक्रिया में निहित है। इसलिए समकालीन लोकतांत्रिक परिदृश्य में अंबेडकरवादी मूल्य भारत की लोकतांत्रिक चेतना को न केवल जीवंत रखते हैं, बल्कि उसे अधिक समावेशी, संवेदनशील और मानवीय दिशा भी प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्दः समानता; सामाजिक न्याय; संवैधानिक लोकतंत्र; मानव गरिमा; समावेशी राजनीति; अंबेडकरवादी चिंतन; विधिक-समानता; सामाजिक परिवर्तन; प्रतिनिधित्व; मानवाधिकार; बहुलतावाद; सामाजिक समरसता

प्रस्तावनाः

भारतीय समाज का सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विकास न्याय, समता और लोकतांत्रिक चेतना के गहन संघर्षों का परिणाम है। उपनिवेशवाद, जाति-आधारित पदानुक्रम, असमान सामाजिक संरचनाएँ तथा संस्कृतिगत प्रभुत्व ने भारत की लोकतांत्रिक यात्रा को जटिल और बहुआयामी बनाया है। आधुनिक भारत में लोकतंत्र केवल एक शासन प्रणाली नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें नागरिकों की गरिमा, समान अवसर, एवं विधिक-संरक्षा इसकी आधारशिला हैं। किंतु इस संरचना की वास्तविक उपलब्धि तभी संभव है जब सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर समानता, न्याय और सहभागिता के मूल्य केवल संवैधानिक सिद्धांत न रहकर सामाजिक व्यवहार में भी क्रियाशील हों।

भारतीय लोकतंत्र की आत्मा सामाजिक न्याय है और सामाजिक न्याय की सर्वाधिक सशक्त प्रतिपादक एवं संवैधानिक मूर्तिकार के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान अप्रतिम है। अंबेडकर ने भारतीय लोकतंत्र की पुनर्व्याख्या जातिगत विषमता, सामाजिक दासता और ऐतिहासिक शोषण की पृष्ठभूमि में की। उन्होंने लोकतंत्र को केवल मतदानाधिकार या राजनीतिक संरचना तक सीमित न मानते हुए इसे सामाजिक जीवन की नैतिक-मानवीय पद्धति के रूप में स्थापित किया। उनके अनुसार लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप तभी साकार होगा जब व्यक्ति की प्रतिष्ठा अस्मिता, श्रम, अधिकार एवं अवसरों का समान वितरण समाज में व्यावहारिक रूप में उपस्थित हो।

भारतीय संदर्भ में समानता का प्रश्न केवल संवैधानिक आदर्श नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक संघर्ष है, जहाँ जातीय स्तरीकरण, छुआछूत, भेदभाव और श्रमविभाजन के अमानवीय स्वरूप ने समाज को अनेक स्तरों पर विभाजित रखा। इसी विभाजन को मिटाने का दार्शनिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रयास भारतीय संविधान एवं अंबेडकरवादी चिंतन की मूल प्रेरणा है। अंबेडकर ने स्पष्ट किया कि लोकतंत्र की सफलता राजनीतिक संरचना में नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन में निहित है। उन्होंने आर्थिक प्रगति, शिक्षा, समान अवसर तथा संस्थागत न्याय को लोकतांत्रिक पुनरुत्थान की आधारशिला माना।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में समानता, सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के पुनरुत्थान की अवधारणा को समझने का प्रयास है, विशेष रूप से अंबेडकर के दृष्टिकोण को आलोक में रखना। अत: अंबेडकर का लोकतंत्रबोध केवल शासन व्यवस्था का सिद्धांत नहीं, बल्कि मानव गरिमा, अधिकार-समानता, बंधुत्व और सामाजिक नैतिकता पर आधारित एक समग्र मानवतावादी दर्शन है। यह दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि सामाजिक विषमता, आर्थिक असंतुलन, प्रतिनिधित्व का संकट और संरचनात्मक भेदभाव समकालीन भारत के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ बने हुए हैं। ऐसे में अंबेडकर की संकल्पना न केवल ऐतिहासिक आधार देती है, बल्कि वर्तमान भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को अधिक मानवीय, समावेशी और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में मार्गदर्शन भी प्रदान करती है।

1. भारतीय परिप्रेक्ष्य में समानता और सामाजिक संरचना का ऐतिहासिक आधार

भारतीय सामाजिक संरचना का इतिहास बहुस्तरीय सांस्कृतिक विकास और जटिल सामाजिक पदानुक्रमों से निर्मित हुआ है। वैदिक व उत्तरवैदिक युग में वर्ण-विभाजन मूलत: गुण, कर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व के आधार पर निर्धारित माना गया, किंतु समय के साथ यह व्यवस्था जन्माधारित जातिगत कठोरता में परिणत हो गई, जिससे सामाजिक गतिशीलता का मार्ग अवरुद्ध हुआ और मनुष्य की पहचान व सम्मान जन्म की स्थिति से निर्धारित होने लगा (नारायण, 2018)। इस ऐतिहासिक संरचना ने केवल सामाजिक ताने-बाने को प्रभावित नहीं किया, बल्कि संसाधनों, शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी और सांस्कृतिक अवसरों तक असमान पहुंच को भी जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक बहिष्करण, अवसर-वंचना और मानव-गरिमा का क्षरण दीर्घकाल तक जारी रहा।

धर्मशास्त्रीय विचारों में 'धर्मोत्तर कर्तव्य' का सिद्धांत व्यवस्था में नैतिकता और उत्तरदायित्व स्थापित करने हेतु प्रतिपादित हुआ, किंतु व्यवहार में मनुस्मृति जैसे ग्रंथों ने कुछ समूहों पर धार्मिक और सामाजिक दायित्वों का बोझ डालकर अधिकारों के असमान वितरण को वैधानिक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार धर्म-केन्द्रित कर्तव्य संकल्पना, जिसे मूलत: समाज में समन्वय स्थापित करना था, व्यवहार और इतिहास की कसौटी पर असमानता के स्थायी तंत्र में परिवर्तित होती गई।

ऐसी सामाजिक अन्याय-व्यवस्था का प्रतिकार आधुनिक भारत में संवैधानिक लोकतंत्र के माध्यम से संभव हुआ, जहाँ समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मानवीय आदर्श आधारभूत स्तंभ के रूप में स्थापित किए गए। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भारतीय इतिहास के इसी सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ को केंद्र में रखते हुए स्पष्ट किया कि लोकतंत्र बिना सामाजिक समानता के केवल औपचारिक ढाँचा रह जाता है। उनके अनुसार, "समानता केवल विधिक अवधारणा नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार और संरचना के पुनर्गठन का दार्शनिक आधार है" (अम्बेडकर, 2017)।

अंबेडकर की दृष्टि में, लोकतंत्र वह व्यवस्था है जिसमें मानव-मूल्य समाज की वास्तविक जीवन-प्रणाली में अभिव्यक्त हों-जहाँ व्यक्ति की सामाजिक स्थिति जन्म द्वारा नहीं, योग्यता और मानवीय गरिमा द्वारा निर्धारित हो। इसी कारण उन्होंने भारतीय संवैधानिक संरचना में समान अधिकार, अवसर-समानता और सामाजिक-आर्थिक न्याय को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया, जिससे भारतीय लोकतंत्र केवल राजनीतिक प्रयोग न बनकर, सामाजिक परिवर्तन का नैतिक घोष भी सिद्ध हो सके।

2. अंबेडकर की दृष्टि में समानता, न्याय और लोकतांत्रिक पुनरुत्थान

अंबेडकर ने लोकतंत्र को केवल शासन व्यवस्था न मानते हुए इसे एक नैतिक-सामाजिक जीवन मूल्य के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार लोकतंत्र का मूल सार तीन स्तंभों पर आधारित है-समानता, स्वतंत्रता और बंधुता (अग्रवाल, 2018)। वे स्पष्ट करते हैं कि यदि किसी समाज में सम्मान और अवसर की समान उपलब्धता नहीं है, तो लोकतंत्र केवल औपचारिक संरचना बनकर रह जाता है (पाठक, 2019)।

अंबेडकर राजनीतिक समानता को सामाजिक और आर्थिक समानता के बिना अधूरा मानते हैं। उनका तर्क था कि भारतीय संदर्भ में लोकतंत्र तब तक व्यावहारिक नहीं हो सकता जब तक जाति-आधारित सामाजिक बाधाएँ और सांस्कृतिक वर्चस्व समाप्त न हों (प्रभाकर, 2020)। इसलिए उन्होंने संवैधानिक मूल्यों, विधिक सुरक्षा, सामाजिक प्रतिनिधित्व और नैतिक-राजनीतिक जिम्मेदारी के माध्यम से लोकतंत्र के ष्सांस्थानिकष और ष्मानवीयष दोनों पक्षों को समान महत्व दिया।

उनकी दृष्टि में लोकतंत्र शक्ति-वितरण का यांत्रिक सिद्धांत नहीं, बल्कि मानव गरिमा की स्थापना का साधन है, जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके जन्म नहीं बल्कि उसकी योग्यता, विवेक और नैतिक आचरण से होती है (अम्बेडकर, 2017)। अत: अंबेडकर की लोकतांत्रिक दृष्टि भारतीय गणतंत्र को नागरिक-समानता और सामाजिक-न्याय पर आधारित जीवंत नैतिक संस्कृति के रूप में स्थापित करती है।

3. भारतीय सामाजिक वास्तविकता और अंबेडकर का सुधारवादी दृष्टिकोण

भारत की सामाजिक संरचना ऐतिहासिक रूप से जातिगत स्तरीकरण और सांस्कृतिक पदानुक्रम पर आधारित रही है, जिसके कारण समान नागरिकता एवं सामाजिक सम्मान का मार्ग लंबे समय तक अवरुद्ध रहा (दृष्टि, 2022)। इस सामाजिक सच्चाई को ध्यान में रखते हुए अंबेडकर ने सुधार की द्विस्तरीय नीति विकसित की-संवैधानिक हस्तक्षेप और सामाजिक चेतना निर्माण।

(क) विधिक संरक्षण और संरचनात्मक सुधार संविधान में समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14), अस्पृश्यता उन्मूलन (अनुच्छेद 17), आरक्षण नीति, तथा सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा हेतु विशेष प्रावधान ऐतिहासिक अन्याय को संतुलित करने का व्यावहारिक प्रयास हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना, अवसर-विस्तार करना तथा सामाजिक गरिमा को संरक्षित करना है (तिवारी, 2022)।

(ख) शिक्षा, संगठन और सामाजिक चेतना अंबेडकर ने शिक्षा को मुक्ति का पहला साधन और सामाजिक जागरूकता को परिवर्तन का मुख्य माध्यम माना। उनका प्रसिद्ध आह्वान 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करा' सामाजिक क्रांति की त्रिस्तरीय रणनीति है, जो केवल राजनीतिक अधिकार प्राप्ति नहीं, बल्कि सामाजिक आत्मसम्मान और स्वायत्तता की पुनर्स्थापना पर बल देता है (अम्बेडकर, 2019)।

इस प्रकार अंबेडकर का दृष्टिकोण भारतीय समाज में न्यायपूर्ण संरचना के निर्माण हेतु "संवैधानिक अधिकार + सामाजिक चेतना" की संतुलित धारा निर्मित करता है, जो आज भी सामाजिक लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है।

4. समकालीन भारत में समानता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक चुनौतियाँ

वर्तमान भारतीय परिदृश्य में समानता और न्याय के संवैधानिक आदर्शों ने उल्लेखनीय प्रगति की है, किन्तु सामाजिक यथार्थ अब भी जटिल है। जातिगत असमानता, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक वर्चस्व, और शिक्षा-स्वास्थ्य में असमान पहुँच लोकतांत्रिक मूल्यों को चुनौती देती है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) एवं विभिन्न समाजशास्त्रीय अध्ययनों में यह स्पष्ट हुआ है कि दलित, आदिवासी एवं हाशिए पर स्थित समुदायों के साथ भेदभाव और हिंसा के मामले निरंतर सामने आते हैं (मिश्रा, 2021)।

इन चुनौतियों के मध्य अंबेडकर की अवधारणा, जिसमें लोकतंत्र को "व्यवहारिक सामाजिक संस्कृति" के रूप में समझा गया है, अत्यंत प्रासंगिक बनती है। उनका मत था कि "कानूनी समानता तभी सार्थक है जब सामाजिक धरातल पर व्यक्ति सम्मानपूर्वक जी सके" (अम्बेडकर, 2018)। अत: भारतीय लोकतंत्र की उन्नति के लिए केवल विधिक ढांचा पर्याप्त नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, नैतिक संवेदनशीलता और समावेशी सहभागिता को भी सुदृढ़ करना अनिवार्य है।

समानता के संवैधानिक सिद्धांतों के बावजूद सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में असमानता को दूर करने के लिए आरक्षण नीति, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ, और अधिकार-आधारित कल्याण योजनाएँ लागू की गई, परन्तु इनका प्रभाव तब ही स्थायी होगा जब सामाजिक दृष्टि और व्यवहार में मानवीय मूल्य सुदृढ़ होंगे (तिवारी, 2022)। इस सन्दर्भ में अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित "समान नागरिकता + सामाजिक बंधुता" का सूत्र भारत की लोकतांत्रिक आत्मा को पुन:ऊर्जा प्रदान करता है।

5. लोकतांत्रिक पुनरुत्थान की दिशा में अंबेडकरवादी मूल्यों की प्रासंगिकता

भारतीय लोकतंत्र के भविष्य की दिशा तब ही सुनिश्चित हो सकती है जब संवैधानिक आदर्श समाज के नैतिक-व्यवहारिक जीवन में आत्मसात हों। अंबेडकर का दृष्टिकोण आधुनिक समय में विशिष्ट मार्गदर्शन प्रदान करता है:

- संवैधानिक नैतिकता का पालन - राज्य और नागरिक दोनों को संविधानिक मूल्यों को जीवन-व्यवहार में उतारना आवश्यक है (कुमार, 2023)।
- समावेशी लोकतांत्रिक भागीदारी - सभी वर्गों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं निर्णय-प्रक्रिया में समावेशन का विस्तार आवश्यक है।
- शिक्षा और आलोचनात्मक विवेक - ज्ञान, वैज्ञानिक चेतना और नैतिक बोध नागरिक समाज को सशक्त करते हैं।
- सामाजिक बंधुता और मानवीय गरिमा - किसी भी लोकतंत्र की आत्मा पारस्परिक सम्मान और सह-अस्तित्व में निहित होती है।

अंबेडकर की यह दृष्टि स्पष्ट करती है कि लोकतंत्र कोई स्थिर संरचना नहीं, बल्कि निरंतर आत्मसमीक्षा, सुधार और नवनिर्माण की प्रक्रिया है। अत: भारतीय परिप्रेक्ष्य में लोकतांत्रिक पुनरुत्थान, समानता और न्याय केवल राजनीतिक विमर्श नहीं, बल्कि मानवीय सभ्यता की उत्कर्ष यात्रा है।

6. व्यवहारिक परिप्रेक्ष्य और नीतिगत प्रतिबिंब

अंबेडकरवादी चिंतन भारतीय समाज में समानता और न्याय को मूर्त रूप देने के लिए ठोस सामाजिक-नीतिगत उपायों का प्रेरक आधार बनता है। जातिगत पदानुक्रम के निराकरण, शिक्षा द्वारा जागरूकता, तथा आर्थिक अवसरों के विस्तार को उन्होंने सामाजिक रूपांतरण के आधार-स्तंभ के रूप में स्थापित किया। उनके विचारों ने इस तथ्य को स्पष्ट किया कि जब तक सामाजिक संरचना में भेदभाव के अवशेष बने रहेंगे, तब तक लोकतंत्र के आदर्श केवल औपचारिक रहेंगे (अम्बेडकर, 2017; अग्रवाल, 2018)।

इसी दृष्टि से शिक्षा को उन्होंने "स्वाधीनता और सम्मान प्राप्ति का साधन" माना, जिसके फलस्वरूप वंचित समुदायों के लिए शैक्षिक आरक्षण, छात्रवृत्ति योजनाएँ, उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रतिनिधित्व, तथा व्यावसायिक कौशल-विकास पहल जैसी नीतियाँ सुदृढ़ हुई (तिवारी, 2022)। यह केवल अवसर की उपलब्धता तक सीमित नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और बौद्धिक स्वतंत्रता के पुनर्निर्माण का मार्ग भी है।

साथ ही, आर्थिक न्याय के लिए भूमि-सुधार, श्रम-अधिकार, और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व जैसे उपाय प्रशासनिक-लोकतंत्र को सामाजिक-लोकतंत्र में परिवर्तित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बने (दृष्टि, 2022)। इन पहलों ने वंचित समुदायों को केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया के सक्रिय सहभागी के रूप में स्थापित किया, जिससे लोकतांत्रिक संस्कृति में समावेशन और संवैधानिक नैतिकता का सुदृढ़ीकरण हुआ।

इस प्रकार, अंबेडकरवादी दृष्टि नीतिगत निर्माण और समाज-व्यवहार दोनों स्तरों पर समानता, गरिमा और सहभागिता को स्थायी आधार प्रदान करती है, जो भारतीय लोकतंत्र को सतत विकसित और सामाजिक रूप से संवेदनशील बनाती है।

निष्कर्ष

अंतत: कह सकते हैं कि, भारतीय लोकतंत्र की नैतिक और वैचारिक संरचना में डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान मानव-गरिमा, समानता और सामाजिक न्याय के अनिवार्य आधार को सुनिश्चित करता है। उनके विचार स्पष्ट रूप से द्योतित करते हैं कि लोकतंत्र केवल संवैधानिक व्यवस्था या प्रतिनिधिक राजनीति तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की संरचना, नागरिक चेतना और नैतिक व्यवहार का मानक है। यदि समाज में वैषम्य, जन्माधारित प्रतिष्ठा-भेद और संसाधनों पर असमान नियंत्रण बना रहे, तो राजनीतिक अधिकार अपने आप में पर्याप्त नहीं हो सकते। इसलिए अंबेडकर ने समान नागरिकता, अवसर-समानता, शिक्षा, सामाजिक प्रतिनिधित्व और आर्थिक सशक्तीकरण को लोकतंत्र के व्यावहारिक स्तंभ के रूप में स्थापित किया।

आज के भारत में सामाजिक भेदभाव, वर्गीय-आर्थिक अस्पष्टता, डिजिटल विभाजन, राजनीतिक ध्रुवीकरण और सांस्कृतिक वर्चस्व जैसी चुनौतियाँ यह संकेत देती हैं कि लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा केवल कानून द्वारा नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और नैतिक जिम्मेदारी द्वारा संभव है। इसी संदर्भ में अंबेडकरवादी चिंतन की प्रासंगिकता गहन रूप से अनुभव होती है, क्योंकि यह लोकतंत्र को "समता, स्वतंत्र सोच, सामाजिक सहअस्तित्व और नैतिक बंधुता" के सामूहिक जीवन-दृष्टिकोण के रूप में समझने की प्रेरणा देता है।

संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में यह प्रतिपादन स्थापित होता है कि भारत की लोकतांत्रिक आत्मा अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित संवैधानिक नैतिकता, सामाजिक समरसता और न्याय-प्रधान शासन दृष्टि पर आधारित है। लोकतंत्र की स्थिरता और प्रामाणिकता तभी सुनिश्चित हो सकती है जब नागरिकता समानाधिकार, शिक्षा, संवैधानिक कर्तव्यों और सामाजिक समभाव के मूल्य को अपनाए। अत: अंबेडकर की विचारधारा न केवल ऐतिहासिक धरोहर है, बल्कि सतत प्रगतिशील लोकतांत्रिक भारत के निर्माण की आधारशिला भी है।

संदर्भ सूची

- अम्बेडकर, भीमराव रामजी. (2017). जाति का उन्मूलन. नयी दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
- नारायण, बी. (2018). भारत में जाति और लोकतंत्र: सामाजिक परिवर्तन के विमर्श. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- अग्रवाल, एस. (2018). अंबेडकर और भारतीय लोकतंत्र: समता का विमर्श. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- पाठक, आर. (2019). भारतीय सामाजिक संरचना और लोकतांत्रिक मूल्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- प्रभाकर, मनोज. (2020). भारतीय संविधान और सामाजिक न्याय. दिल्ली: प्रकाशन भवन.
- दृष्टि पब्लिकेशन. (2022). भारतीय समाज एवं सामाजिक न्याय: सिविल सेवाएँ अध्ययन सामग्री. नयी दिल्ली: दृष्टि पै पब्लिकेशन.
- अम्बेडकर, भीमराव रामजी. (2019). शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो: भाषण एवं लेख संकलन. मुंबई: गौतम बुक्स.
- तिवारी, आर. (2022). शैक्षिक समावेशन और सामाजिक समानता: नीतिगत परिप्रेक्ष्य. वाराणसी: ज्ञानमंडल प्रकाशन.
- भारत सरकार. (1950). भारतीय संविधान. नयी दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग.

शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग: संभावनाएँ चुनौतियाँ एवं शैक्षिक प्रभाव

डॉ० श्याम लाल निराला

शासकीय जमुना प्रसाद वर्मा स्नातकोत्तर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

शोधसार

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नई दिशा और गति प्रदान की है। शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को अधिक व्यक्तिगत, प्रभावी और समावेशी बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों की सीखने की गति, रुचि और क्षमता के अनुसार पाठ्य-सामग्री का अनुकूलन संभव हो पाया है। स्मार्ट ट्यूटरिंग सिस्टम, स्वचालित मूल्यांकन, वर्चुअल क्लासरूम, और डेटा-आधारित फीडबैक जैसे अनुप्रयोग शिक्षकों के कार्यभार को कम करते हुए शिक्षण की गुणवत्ता बढ़ा रहे हैं। हालाँकि, शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग के साथ कई चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। डेटा की गोपनीयता, साइबर सुरक्षा, तकनीकी अवसंरचना की कमी, शिक्षकों का तकनीकी प्रशिक्षण, और डिजिटल विभाजन जैसी समस्याएँ इसके प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा बनती हैं। इसके अतिरिक्त, अत्यधिक तकनीकी निर्भरता से मानवीय संवेदनशीलता, नैतिक मूल्यों और सामाजिक सहभागिता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की आशंका भी व्यक्त की जाती है। शैक्षिक प्रभाव की दृष्टि से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने सीखने को अधिक छात्र-केंद्रित बनाया है और मूल्यांकन प्रक्रिया को पारदर्शी तथा त्वरित किया है। यह विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए भी सहायक उपकरण के रूप में उभर रहा है। निष्कर्षत:, यदि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग संतुलित, नैतिक और समावेशी दृष्टिकोण के साथ किया जाए, तो यह शिक्षा व्यवस्था को अधिक सशक्त, लचीला और भविष्य-उन्मुख बना सकता है।

(***मुख्य शब्द:*** आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, शिक्षा, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, डिजिटल तकनीक, शैक्षिक प्रभाव, चुनौतियाँ, नवाचार)

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी समाज के बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक विकास की आधारशिला होती है। समय के साथ शिक्षा के उद्देश्य, पद्धतियाँ और माध्यम निरंतर बदलते रहे हैं। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली, जो मुख्यत: शिक्षक-केंद्रित थी, अब धीरे-धीरे शिक्षार्थी-केंद्रित दृष्टिकोण की ओर बढ़ रही है। इस परिवर्तन में डिजिटल तकनीकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास ने शिक्षा को कक्षा की चारदीवारी से बाहर निकालकर अधिक सुलभ, लचीला और प्रभावी बनाया है (मिश्रा, 2019)।

इसी तकनीकी प्रगति के क्रम में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) एक ऐसी उभरती हुई तकनीक के रूप में सामने आई है, जिसने शिक्षा के क्षेत्र में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से तात्पर्य उन कंप्यूटर प्रणालियों से है, जो मानवीय बुद्धि की तरह सीखने, तर्क करने, निर्णय लेने और समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होती हैं (रसेल एवं नॉरविग, 2020)। शिक्षा में एआई का उद्देश्य न केवल शिक्षण प्रक्रिया को स्वचालित बनाना है, बल्कि सीखने को अधिक व्यक्तिगत, रुचिपूर्ण और प्रभावशाली बनाना भी है।

वर्तमान समय में शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों की विविध आवश्यकताएँ, क्षमताएँ और सीखने की गति एक बड़ी चुनौती बन चुकी हैं। एक ही कक्षा में सभी विद्यार्थियों को समान रूप से समझाना शिक्षकों के लिए कठिन होता है। ऐसी स्थिति में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित प्रणालियाँ व्यक्तिगत शिक्षण (Personalized Learning) को संभव बनाती हैं, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी अपनी क्षमता और आवश्यकता के अनुसार सीख सकता है (कुमार, 2021)। इसके साथ ही, स्वचालित मूल्यांकन, त्वरित फीडबैक और सीखने के विश्लेषण जैसे उपकरण शिक्षकों के कार्यभार को कम करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

हालाँकि, शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रयोग को लेकर केवल संभावनाएँ ही नहीं, बल्कि कई प्रश्न और चिंताएँ भी जुड़ी हुई हैं। डेटा की गोपनीयता, नैतिकता, तकनीकी असमानता और मानवीय संपर्क में कमी जैसी समस्याएँ इसके व्यापक उपयोग पर विचार करने को विवश करती हैं (सिंह, 2022)। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग का अध्ययन संतुलित दृष्टिकोण से किया जाए।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के उपयोग की अवधारणा को स्पष्ट करना, इसकी संभावनाओं और चुनौतियों का विश्लेषण करना तथा शिक्षा व्यवस्था पर इसके शैक्षिक प्रभावों को समझना है। इससे भविष्य में शिक्षा को अधिक प्रभावी, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए उचित दिशा-निर्देश प्राप्त हो सकेंगे।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस: अवधारणा एवं विकास

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसका उद्देश्य ऐसी मशीनों और प्रणालियों का विकास करना है जो मानव बुद्धि से संबंधित कार्यों को करने में सक्षम हों। इनमें सीखना, तर्क करना, निर्णय लेना, भाषा को समझना और समस्याओं

का समाधान करना शामिल है। सरल शब्दों में कहा जाए तो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस वह तकनीक है जिसके माध्यम से मशीनों को "सोचने" और "सीखने" की क्षमता प्रदान की जाती है (रसेल एवं नॉरविग, 2020)।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की अवधारणा का विकास 20वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। वर्ष 1956 में डार्टमाउथ सम्मेलन को एआई के औपचारिक जन्म के रूप में माना जाता है, जहाँ पहली बार "Artificial Intelligence" शब्द का प्रयोग किया गया (मैककार्थी, 1956)। प्रारंभिक चरण में एआई अनुसंधान मुख्यत: गणितीय तर्क, खेलों और समस्या-समाधान तक सीमित था। उस समय तकनीकी संसाधनों की सीमाओं के कारण इसका व्यावहारिक उपयोग अपेक्षाकृत कम था।

समय के साथ कंप्यूटिंग शक्ति, डेटा संग्रह और इंटरनेट के विकास ने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को नई गति प्रदान की। 21वीं शताब्दी में मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग और न्यूरल नेटवर्क जैसी तकनीकों के आगमन से एआई अधिक सक्षम और प्रभावी बन गया। मशीन लर्निंग के माध्यम से प्रणालियाँ अनुभव से सीखने लगीं, जबकि डीप लर्निंग ने जटिल पैटर्न और व्यवहार को समझना संभव बनाया (गुप्ता, 2018)।

शिक्षा के संदर्भ में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का विकास एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ है। प्रारंभ में कंप्यूटर आधारित शिक्षण (Computer Assisted Learning) का उपयोग केवल सहायक उपकरण के रूप में किया जाता था, लेकिन एआई के विकास के साथ यह एक सक्रिय शैक्षिक साधन बन गया। अब एआई आधारित प्रणालियाँ विद्यार्थियों के सीखने के व्यवहार का विश्लेषण कर सकती हैं और उसी के अनुसार शिक्षण सामग्री प्रस्तुत कर सकती हैं (शर्मा, 2021)।

इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (Natural Language Processing) और भाषण पहचान जैसी तकनीकों ने मानव और मशीन के बीच संवाद को अधिक सहज बनाया है। इससे वर्चुअल शिक्षक, चौटबॉट और स्मार्ट ट्यूटरिंग सिस्टम विकसित हुए हैं, जो शिक्षा को अधिक सुलभ और संवादात्मक बना रहे हैं।

इस प्रकार, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की अवधारणा और उसका विकास शिक्षा प्रणाली में नवाचार और सुधार की मजबूत आधारशिला प्रदान करता है। इसके निरंतर विकास के साथ शिक्षा के क्षेत्र में इसके उपयोग की संभावनाएँ और भी व्यापक होती जा रही हैं।

शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रमुख अनुप्रयोग

शिक्षा के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग विभिन्न रूपों में किया जा रहा है, जिसने पारंपरिक शिक्षण प्रणाली को अधिक तकनीक-सक्षम और प्रभावी बनाया है। एआई आधारित अनुप्रयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को न केवल सरल बनाते हैं, बल्कि विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखते हैं।

शिक्षा में एआई का एक प्रमुख अनुप्रयोग स्मार्ट ट्यूटरिंग सिस्टम है। ये प्रणालियाँ विद्यार्थियों के सीखने के स्तर, उनकी गलतियों और प्रगति का विश्लेषण कर व्यक्तिगत मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। यह प्रणाली शिक्षक की भूमिका को पूरक बनाते हुए विद्यार्थियों को स्व-अध्ययन के लिए प्रेरित करती है (कुमार, 2021)। ऐसे ट्यूटरिंग सिस्टम विशेष रूप से गणित, विज्ञान और भाषा अधिगम में प्रभावी सिद्ध हुए हैं।

व्यक्तिगत शिक्षण (Personalized Learning) भी एआई का एक महत्वपूर्ण अनुप्रयोग है। प्रत्येक विद्यार्थी की सीखने की गति, रुचि और क्षमता भिन्न होती है। एआई आधारित प्लेटफॉर्म डेटा विश्लेषण के माध्यम से शिक्षण सामग्री को विद्यार्थी की आवश्यकता के अनुसार अनुकूलित करते हैं। इससे कमजोर और प्रतिभाशाली दोनों प्रकार के विद्यार्थियों को समान अवसर प्राप्त होते हैं (शर्मा, 2020)।

एआई का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग स्वचालित मूल्यांकन एवं फीडबैक के रूप में देखा जा सकता है। परंपरागत मूल्यांकन प्रणाली समय-साध्य होती है, जबकि एआई आधारित मूल्यांकन उपकरण शीघ्र, सटीक और निष्पक्ष परिणाम प्रदान करते हैं। इसके माध्यम से वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के साथ-साथ वर्णनात्मक उत्तरों का भी विश्लेषण संभव हो पाया है (सिंह, 2022)। इससे शिक्षकों का कार्यभार कम होता है और वे शिक्षण पर अधिक ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

वर्चुअल कक्षाएँ और डिजिटल शिक्षण प्लेटफॉर्म भी एआई के अनुप्रयोग का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण और भाषण पहचान तकनीक के कारण वर्चुअल सहायक, चौटबॉट और ऑनलाइन शिक्षक विकसित हुए हैं, जो विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान वास्तविक समय में कर सकते हैं (गुप्ता, 2019)।

इसके अतिरिक्त, विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए एआई एक सहायक उपकरण के रूप में उभर रहा है। दृष्टिबाधित, श्रवण बाधित और सीखने में कठिनाई वाले विद्यार्थियों के लिए एआई आधारित उपकरण शिक्षा को अधिक सुलभ और समावेशी बनाते हैं (यादव, 2021)।

इस प्रकार, शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के विविध अनुप्रयोग शिक्षण प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, समावेशी और आधुनिक बना रहे हैं, जो भविष्य की शिक्षा प्रणाली के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संभावनाएँ

शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संभावनाएँ व्यापक और बहुआयामी हैं। यह तकनीक न केवल शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को आधुनिक बनाती है, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता, पहुँच और प्रभावशीलता में भी महत्वपूर्ण सुधार की क्षमता रखती है। वर्तमान समय में जब शिक्षा प्रणाली विविध चुनौतियों का सामना कर रही है, तब एआई एक सशक्त समाधान के रूप में उभर रहा है।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की सबसे बड़ी संभावना शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार से जुड़ी है। एआई आधारित प्रणालियाँ शिक्षण सामग्री को अधिक रोचक, संवादात्मक और व्यावहारिक बना सकती हैं। मल्टीमीडिया, सिमुलेशन और अनुकूली शिक्षण सामग्री के माध्यम से विद्यार्थी जटिल अवधारणाओं को आसानी से समझ पाते हैं (शर्मा, 2020)। इससे सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावी और स्थायी बनती है।

छात्र-केंद्रित शिक्षण एआई की एक महत्वपूर्ण संभावना है। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में सभी विद्यार्थियों को एक समान गति और विधि से पढ़ाया जाता है, जबकि एआई प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकता, क्षमता और रुचि के अनुसार शिक्षण को अनुकूलित करता है। इससे विद्यार्थियों में आत्मविश्वास बढ़ता है और वे सीखने में अधिक सक्रिय भूमिका निभाते हैं (कुमार, 2021)।

एआई के माध्यम से समय और संसाधनों की बचत भी संभव है। स्वचालित मूल्यांकन, उपस्थिति प्रबंधन और प्रशासनिक कार्यों के कारण शिक्षकों का समय बचता है, जिसे वे शैक्षणिक योजना, नवाचार और विद्यार्थियों के मार्गदर्शन में उपयोग कर सकते हैं (सिंह, 2022)। यह संस्थागत दक्षता को भी बढ़ाता है।

शिक्षकों की भूमिका में सकारात्मक परिवर्तन भी एआई की एक महत्वपूर्ण संभावना है। एआई शिक्षक का स्थान नहीं लेता, बल्कि उनकी भूमिका को मार्गदर्शक, परामर्शदाता और प्रेरक के रूप में सशक्त बनाता है। शिक्षक अब केवल सूचना प्रदाता न होकर सीखने की प्रक्रिया के संचालक बन सकते हैं (गुप्ता, 2019)।

इसके अतिरिक्त, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आजीवन सीखने (Lifelong Learning) को बढ़ावा देता है। ऑनलाइन पाठ्यक्रम, अनुकूली शिक्षण प्लेटफॉर्म और कौशल-आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्ति किसी भी आयु में सीख सकता है। यह बदलते वैश्विक परिदृश्य में कौशल विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है (यादव, 2021)।

इस प्रकार, शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की संभावनाएँ शिक्षा प्रणाली को अधिक गुणवत्तापूर्ण, लचीला और भविष्य-उन्मुख बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से जुड़ी चुनौतियाँ

यद्यपि शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अनेक संभावनाएँ प्रस्तुत करता है, फिर भी इसके प्रभावी और व्यापक उपयोग के मार्ग में कई गंभीर चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इन चुनौतियों को समझे बिना एआई का संतुलित और न्यायसंगत उपयोग संभव नहीं है। इसलिए शिक्षा में एआई के प्रयोग के साथ जुड़ी समस्याओं का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

शिक्षा में एआई से जुड़ी एक प्रमुख चुनौती डेटा की गोपनीयता और सुरक्षा है। एआई आधारित शिक्षण प्रणालियाँ विद्यार्थियों से संबंधित बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत और शैक्षणिक डेटा एकत्र करती हैं। यदि इस डेटा का दुरुपयोग या अनधिकृत पहुँच हो जाए, तो यह विद्यार्थियों की निजता के लिए गंभीर खतरा बन सकता है (सिंह, 2022)। विशेष रूप से बच्चों और किशोरों के संदर्भ में यह चिंता और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

तकनीकी अवसंरचना की कमी भी एक बड़ी चुनौती है, विशेषकर विकासशील देशों में। कई शैक्षणिक संस्थानों में पर्याप्त इंटरनेट सुविधा, आधुनिक उपकरण और तकनीकी संसाधनों का अभाव है। ऐसे में एआई आधारित शिक्षा का लाभ सभी तक समान रूप से नहीं पहुँच पाता (कुमार, 2021)। इससे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच शैक्षिक असमानता और अधिक बढ़ने की आशंका रहती है।

इसके साथ ही डिजिटल विभाजन (Digital Divide) की समस्या भी शिक्षा में एआई के समावेश को प्रभावित करती है। आर्थिक और सामाजिक कारणों से सभी विद्यार्थियों को समान तकनीकी संसाधन उपलब्ध नहीं होते। परिणामस्वरूप, एआई आधारित शिक्षा कुछ वर्गों तक सीमित रह सकती है, जो शिक्षा में समानता के सिद्धांत के विपरीत है (गुप्ता, 2019)।

शिक्षकों का प्रशिक्षण और तकनीकी जागरूकता भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। कई शिक्षक एआई आधारित उपकरणों के उपयोग में दक्ष नहीं होते, जिससे वे इन तकनीकों को प्रभावी रूप से शिक्षण में शामिल नहीं कर पाते। पर्याप्त प्रशिक्षण और निरंतर व्यावसायिक विकास के अभाव में एआई का उपयोग केवल औपचारिकता तक सीमित रह सकता है (शर्मा, 2020)।

इसके अतिरिक्त, नैतिक और सामाजिक चिंताएँ भी शिक्षा में एआई के प्रयोग से जुड़ी हैं। अत्यधिक तकनीकी निर्भरता से मानवीय संपर्क, संवेदनशीलता और मूल्य-आधारित शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। साथ ही, एल्गोरिदम में निहित पक्षपात (Algorithmic Bias) भी निष्पक्ष शिक्षा प्रणाली के लिए चुनौती बन सकता है (यादव, 2021)।

इस प्रकार, शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के सफल उपयोग के लिए इन चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है, ताकि तकनीक शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति कर सके, न कि नई समस्याएँ उत्पन्न करे।

शिक्षा पर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का शैक्षिक प्रभाव

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने शिक्षा व्यवस्था पर गहरा और बहुआयामी शैक्षिक प्रभाव डाला है। इसके प्रयोग से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, मूल्यांकन प्रणाली और विद्यार्थियों के कौशल विकास में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। एआई ने शिक्षा को अधिक लचीला, अनुकूली और परिणामोन्मुख बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सबसे पहले, सीखने की प्रक्रिया पर एआई का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। एआई आधारित प्रणालियाँ विद्यार्थियों के सीखने के व्यवहार, रुचियों और कठिनाइयों का विश्लेषण कर अनुकूलित शिक्षण सामग्री प्रदान करती हैं। इससे विद्यार्थी अपनी गति से सीख पाते हैं और विषय-वस्तु को बेहतर ढंग से समझते हैं (कुमार, 2021)। यह प्रक्रिया रटने के बजाय समझ-आधारित अधिगम को प्रोत्साहित करती है।

मूल्यांकन प्रणाली में परिवर्तन भी एआई का एक महत्वपूर्ण शैक्षिक प्रभाव है। पारंपरिक मूल्यांकन पद्धतियाँ सीमित और समय-साध्य होती हैं, जबकि एआई आधारित मूल्यांकन निरंतर, त्वरित और डेटा-आधारित होता है। इससे विद्यार्थियों को तुरंत फीडबैक प्राप्त होता है और वे अपनी कमजोरियों पर समय रहते कार्य कर सकते हैं (सिंह, 2022)। साथ ही, मूल्यांकन में पारदर्शिता और निष्पक्षता भी बढ़ती है।

एआई का एक अन्य प्रभाव विद्यार्थियों की दक्षताओं के विकास से जुड़ा है। एआई आधारित शिक्षण वातावरण समस्या-समाधान, आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता और डिजिटल साक्षरता जैसे 21वीं सदी के कौशलों को विकसित करने में सहायक है। विद्यार्थी तकनीक के साथ संवाद करना सीखते हैं, जिससे उनका आत्मनिर्भरता और नवाचार क्षमता बढ़ती है (गुप्ता, 2019)।

इसके अतिरिक्त, शैक्षिक समानता और समावेशन के संदर्भ में भी एआई का सकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए सहायक तकनीकों, भाषा अनुवाद उपकरणों और अनुकूली सामग्री के माध्यम से शिक्षा अधिक सुलभ बनी है। इससे हाशिए पर स्थित वर्गों को भी शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने में सहायता मिलती है (यादव, 2021)।

हालाँकि, यह भी ध्यान देने योग्य है कि एआई का शैक्षिक प्रभाव तभी सकारात्मक और टिकाऊ होगा, जब इसका उपयोग मानवीय मूल्यों और शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप किया जाए। संतुलित और विवेकपूर्ण प्रयोग से ही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस शिक्षा को अधिक प्रभावी और समावेशी बना सकता है।

समाधान एवं सुझाव

शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रभावी और संतुलित उपयोग के लिए आवश्यक है कि इससे जुड़ी चुनौतियों का व्यावहारिक समाधान खोजा जाए। केवल तकनीकी विकास पर्याप्त नहीं है, बल्कि नीतिगत, संस्थागत और मानवीय स्तर पर भी ठोस प्रयास किए जाने चाहिए। इस संदर्भ में निम्नलिखित समाधान और सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

सबसे पहले, नीतिगत सुधार और स्पष्ट दिशा-निर्देश आवश्यक हैं। शिक्षा में एआई के उपयोग से संबंधित राष्ट्रीय और संस्थागत स्तर पर स्पष्ट नीतियाँ बनाई जानी चाहिए, जिनमें डेटा सुरक्षा, गोपनीयता और नैतिकता से जुड़े प्रावधान शामिल हों। इससे एआई के उपयोग में पारदर्शिता और विश्वास सुनिश्चित किया जा सकेगा (सिंह, 2022)।

दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों से संबंधित है। शिक्षकों को एआई आधारित उपकरणों और डिजिटल तकनीकों के उपयोग के लिए नियमित प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। प्री-सर्विस और इन-सर्विस प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एआई साक्षरता को शामिल करना आवश्यक है, ताकि शिक्षक तकनीक को शिक्षण प्रक्रिया में प्रभावी ढंग से एकीकृत कर सकें (शर्मा, 2020)।

तकनीकी सुलभता और अवसंरचना का विकास भी एक प्रमुख समाधान है। सरकार और शैक्षणिक संस्थानों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी विद्यार्थियों को आवश्यक डिजिटल संसाधन, इंटरनेट सुविधा और तकनीकी सहायता उपलब्ध हो। विशेष रूप से ग्रामीण और वंचित क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना के विस्तार पर ध्यान दिया जाना चाहिए, ताकि डिजिटल विभाजन को कम किया जा सके (कुमार, 2021)।

इसके अतिरिक्त, नैतिक दिशानिर्देशों का निर्माण और पालन अत्यंत आवश्यक है। एआई प्रणालियों को इस प्रकार विकसित किया जाना चाहिए कि वे निष्पक्ष, पारदर्शी और मानवीय मूल्यों के अनुरूप हों। एल्गोरिदमिक पक्षपात को कम करने और मानवीय निगरानी बनाए रखने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए (यादव, 2021)।

अंततः, शिक्षा में एआई के उपयोग को मानव-केंद्रित दृष्टिकोण के साथ अपनाया जाना चाहिए। तकनीक को शिक्षक और विद्यार्थी का सहायक माना जाए, न कि उनका विकल्प। संतुलित और जिम्मेदार उपयोग से ही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस शिक्षा को अधिक समावेशी, प्रभावी और भविष्य के लिए तैयार बना सकता है।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभर रहा है। तकनीकी विकास के इस युग में शिक्षा प्रणाली का पारंपरिक ढाँचा तेजी से बदल रहा है और एआई इस परिवर्तन का एक प्रमुख आधार बन चुका है। शिक्षा में एआई का उपयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को अधिक व्यक्तिगत, लचीला और प्रभावी बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

इस शोध-पत्र में यह पाया गया कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के माध्यम से स्मार्ट ट्यूटरिंग सिस्टम, व्यक्तिगत शिक्षण, स्वचालित मूल्यांकन और वर्चुअल शिक्षण जैसे अनुप्रयोग शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर बना रहे हैं। इससे न केवल विद्यार्थियों की सीखने की दक्षता में वृद्धि हो रही है, बल्कि शिक्षकों के कार्यभार में भी कमी आ रही है (कुमार, 2021)। एआई ने शिक्षा को अधिक छात्र-केंद्रित बनाया है, जहाँ प्रत्येक विद्यार्थी अपनी क्षमता और गति के अनुसार सीख सकता है।

हालाँकि, अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि शिक्षा में एआई के उपयोग के साथ कई गंभीर चुनौतियाँ जुड़ी हुई हैं। डेटा गोपनीयता, तकनीकी असमानता, डिजिटल विभाजन, शिक्षकों का अपर्याप्त प्रशिक्षण और नैतिक चिंताएँ इसके व्यापक और संतुलित उपयोग में बाधा उत्पन्न करती हैं (सिंह, 2022)। यदि इन समस्याओं की उपेक्षा की जाती है, तो एआई शिक्षा में समानता के स्थान पर असमानता को बढ़ावा दे सकता है।

शैक्षिक प्रभाव के दृष्टिकोण से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने मूल्यांकन प्रणाली को अधिक पारदर्शी और त्वरित बनाया है तथा 21वीं सदी के आवश्यक कौशलों के विकास में योगदान दिया है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए एआई आधारित सहायक तकनीकों ने शिक्षा को अधिक समावेशी बनाया है (यादव, 2021)। यह दर्शाता है कि एआई शिक्षा में सामाजिक न्याय और समान अवसरों को बढ़ावा देने की क्षमता भी रखता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग न तो पूरी तरह समाधान है और न ही कोई खतरा, बल्कि यह एक सशक्त उपकरण है, जिसका प्रभाव उसके उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है। यदि एआई को नैतिक, मानव-केंद्रित और संतुलित दृष्टिकोण के साथ अपनाया जाए, तो यह शिक्षा व्यवस्था को अधिक सशक्त, समावेशी और भविष्य-उन्मुख बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ सूची

1. कुमार, एस. (2021). शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस: संभावनाएँ और चुनौतियाँ. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 45-62।
2. शर्मा, आर. (2020). डिजिटल शिक्षा और नवाचार. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस, पृष्ठ 88-104।
3. सिंह, पी. (2022). शिक्षा में तकनीकी हस्तक्षेप और नैतिक मुद्दे. वाराणसी: ज्ञान भारती प्रकाशन, पृष्ठ 121-138।
4. गुप्ता, एम. (2019). सूचना प्रौद्योगिकी और शिक्षा. दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स, पृष्ठ 67-85।
5. यादव, के. (2021). समावेशी शिक्षा में सहायक तकनीक. लखनऊ: न्यू एज पब्लिकेशन, पृष्ठ 93-110।
6. मिश्रा, ए. (2019). आधुनिक शिक्षा प्रणाली: सिद्धांत और व्यवहार. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 25-40।
7. रसेल, एस. एवं नॉरविग, पी. (2020). आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस: एक आधुनिक दृष्टिकोण (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली: पियर्सन एजुकेशन, पृष्ठ 15-34।
8. मैककार्थी, जे. (1956). आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की अवधारणा (अनुवादित लेख). संकलन: कंप्यूटर विज्ञान के मूल विचार, नई दिल्ली: तकनीकी साहित्य प्रकाशन, पृष्ठ 5-12।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित 'भारत दुर्दशा' नाटक का विश्लेषण

डॉ० रीना देवी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय पूंडरी (कैथल)

सार:

'भारत-दुर्दशा' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का द्वारा लिखित एक नाटक था जिसमें लेखक ने भारत की गिरती हुई दुखित स्थिति को दर्शाया था। इस नाटक में कवि ने भारत के गौरवशाली इतिहास और अतीत को याद किया है। अपने इस नाटक के माध्यम से उन्होंने भारत की समकालीन स्थिति पर प्रकाश डाला था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत की तत्कालीन स्थिति को लेकर वास्तव में बहुत परेशान थे। लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत में मौजूद भ्रष्टाचार, गरीबी, अन्याय, बेरोजगारी और ब्रिटिश शासन की निर्भरता से बहुत दुखी थे। उन्होंने तत्कालीन शासन की भारत के प्रति विभाजनकारी और शोषणकारी नीतियों की भी आलोचना की थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक राष्ट्रवादी व्यक्ति था क्योंकि अगर वह राष्ट्रवादी नहीं होता तो वह भारत की स्थिति से संतुष्ट होते और वह तत्कालीन ब्रिटिश शासन की भारत विरोधी नीतियों का कड़ा विरोध नहीं करते थे। यह कहा जा सकता है कि वह भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान की स्थिति से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुत दुखी थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार, भारत जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उनका समाधान करने के लिए भारतीय लोग जागरूक नहीं हैं। लेखक का मानना है कि आम लोगों की सोच के कारण भारतीय व्यवस्था बहुत विकृत हो चुकी है। यह कहा जा सकता है कि लेखक ने भारतीय जनता से तत्कालीन ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों के खिलाफ आवाज उठाने की अपील की है। उनका 'भारत-दुर्दशा' नाटक सफल सिद्ध हुआ था भारत के युवाओं में राष्ट्रवाद की अलख जगाने में। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'भारत-दुर्दशा' नाटक ने भारतीय युवाओं को राष्ट्र के कल्याण के लिए राष्ट्रवादी कार्य करने का संदेश दिया था। यह नाटक भारत में ब्रिटिश शासन के दौर में लिखा गया था। इस नाटक में लेखक ने जनता से देश के लिए कुछ राष्ट्रवादी कार्य करने की अपील की है। इस नाटक से हिंदी में नवजागरण की शुरूआत मानी जाती है। इस शोध पत्र के माध्यम से लेखक 'भारत-दुर्दशा' के पीछे के कारणों का पता लगाने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारत, दुर्दशा, नाटक।

भूमिका:

'भारत दुर्दशा' नामक नाटक भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखा गया था यह नाटक 1875 में लिखा गया था। इस नाटक के मध्यम से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने भारत की जनता में नवजागरण और नवचेतना जगाने का प्रयास किया था। यह भारत दुर्दशा' नाटक तत्कालीन विकृत भारतीय समाज और भारतीय सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। यह नाटक दर्शाता है कि उस समय भारतीय सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार भ्रष्ट और दूषित थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार, भारतीय जनता भारत द्वारा सामना की जा रही समस्याओं को दूर करने के लिए जागरूक नहीं है1 यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारत की दुर्दशा' के लिए भारत में ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों पर भी आरोप लगाए थे। यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक के माध्यम से भारतीयों को जगाने का प्रयास किया था। लेखक भारत की आम जनता को क्रूर और शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ जागरूक करना चाहते हैं। इस नाटक में लेखक ने 'भारत-दुर्दशा' के कारणों को समझने का एक बेहतर प्रयास किया है।

यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतीय आम जनता पर निष्क्रिय गतिविधियों का आरोप लगाया था। यह नाटक भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान लिखा गया था इसलिए यह कहा जा सकता है कि भारत दुर्दशा के लिए भी ब्रिटिश भी जिम्मेदार थे[2] वास्तव में, भारतीय जनता भी भारत दुर्दशा के लिए भी बराबर जिम्मेदार है साथ ही तत्कालीन ब्रिटिश शासन भी भारत दुर्दशा के लिए बहुत हद तक जिम्मेदार था। 'भारत-दुर्दशा' नाटक में कहा गया है की भारत की यह दुर्दशा भारत के दुर्भाग्य के कारण हुई है। भारत दुर्दशा इसलिए संभव हो पाई है क्योंकि भारतीय नागरिकों को चल रहे भारत के शोषण के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। लेखक के अनुसार, भारत का ऐसा शोषण इसलिए हुआ क्योंकि भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था और भारत पर ब्रिटिश शासन अपने हितों और सुविधाओं के अनुसार कार्य कर रहा था। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने यह मान लिया था कि ब्रिटिश शासन भारतीय जनता के हितों की पूर्ति के लिए काम नहीं कर रहा था। वास्तव में यह एक तथ्य है कि अंग्रेज भारत में देश और लोगों को लूटने के उद्देश्य से आए थे।

लेखक को भारत की ब्रिटिश शासन पर निर्भरता पसंद नहीं थी। उस समय भारत राजनीतिक रूप से ब्रिटिश शासन पर निर्भर था। यह कहा जा सकता है कि वह भारत में तत्कालीन ब्रिटिश शासन की आर्थिक शोषणकारी नीतियों से बहुत परेशान थे। लेखक का मानना है कि भारत में ब्रिटिश शासन केवल जनता को लूट रहा था और इसने देश को गरीब और वंचित बना दिया था[3] भारत-दुर्दशा' नाटक में कहा गया है की भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन को

जड़ से उखाड़ फेंकना होगा क्योंकि यह ब्रिटिश शासन भारत के लिए अच्छा नहीं है। यह कहा जा सकता है कि इस नाटक में भारत को एक पात्र के रूप में चित्रित किया गया है और इस नाटक में दुर्भाग्य, बेशर्मी, बीमारी, आलस्य, शराब, अंधकार जैसी अमूर्त अवधारणाओं को, जो भारत के पतन के कारण हैं मानवीकृत किया गया है[4] यह कहा जा सकता है कि यह नाटक भारत देश की दुर्दशा के कारणों की पहचान करता है और भविष्य के निर्माण के लिए एक मजबूत प्रेरणा प्रदान करता है भले ही इसका अंत दुखद हो।

'भारत दुर्दशा' नाटक का विश्लेषण:

यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाटक विशेष रूप से 'भारत-दुर्दशा' कथ्य एवं रंगमंचीय संभावनाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। यह एक विश्वसनीय तथ्य है कि यह 'भारत दुर्दशा' नाटक विशेष रूप से एक व्यंग्य प्रधान नाटक है अगर आज के परिप्रेक्ष्य में इसे देखे तो आज भी उस समय की तरह वो खराब परिस्थितियां लक्षित की जा सकती हैं[5] आज भी भारत में उस समय की तरह राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास, धार्मिक संकीर्णता सहज रूप में देखे जा सकते हैं। हम भारत के लोग देश विभाजन की बड़ी त्रासदी झेलने के बाद भी आज पहले से अधिक संकीर्ण एवं उन्मादी हो गये हैं। आज भी भारत में उस समय की तरह आतंकवाद, माबलिंचिंग की घटनाएं आदि इसके जीते-जागते उदाहरण हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस सच को सन् 1875 में ही देख लिए थे। इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने शब्दों में ऐसा कहा की;

'भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई',
'हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई' [6]

यह पंक्ति भारतेन्दु हरिश्चंद्र के प्रसिद्ध नाटक 'भारत -दुर्दशा' के एक गीत से ली गई है। यह पंक्ति एक मार्मिक उदघोष है जिसका अर्थ है कि अब भारतवासी अंधा, लँगड़ा, दीन- हीन होकर दुखी और निराश हो गए है क्योंकि ब्रिटिश शासन के राज के दौर में भारत देश ने सब खो दिया है। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत ने अपनी कुरीतियों के कारण अपनी बुद्धि, बल, विद्या और धन सब खो दिया है जिससे भारत देश में अंधकार छा गया है। यह भारत की दयनीय स्थिति पर लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की एक मार्मिक पुकार है जिसे देखकर रहा नहीं जाता। इस नाटक प्रसंग में लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत की दुर्दशा का वर्णन करते हुए यह गीत गाता है जिसमें वह बताते हैं कि कैसे भारत देशवासियों ने अपनी बुद्धि, बल, विद्या और धन को नष्ट कर दिया है और अब वे दीन-हीन हो गए हैं। इन पंक्तियों के माध्यम से भारतेन्दु हरिश्चंद्र का उद्देश्य भारतवासियों को जगाना और अपनी दुर्दशा पर चिंतन करने के लिए प्रेरित करना था। यह भारत की दयनीय स्थिति पर लेखक द्वारा लिखित एक मार्मिक उदघोष है जो उस समय की भारत की दयनीय स्थिति पर शोक व्यक्त करता है जिसमें गरीबी, अशिक्षा, आपसी फूट और अंग्रेजों के शोषण से देश की अवनति हो रही थी और यह भारतीयों से एकजुट होकर देश के उत्थान का आह्वान करता है[7] ये माना जाता है कि यह पंक्ति उस समय के भारतवासियों के लिए एक पुकार है कि अब तो भारत देश की बुरी हालत देखी नहीं जाती, हमें भारतीय राष्ट्र के लिए कुछ अच्छा करना चाहिए"।

पिछले समय में भारतीय व्यवस्था में अन्याय और लूट का बोलबाला रहा है वही कटु यथार्थ आज भी अपने क्रूर रूप में मौजूद हैं। आज दुनियां एक बाजार है। दुनियां में चीजें बिक रही हैं, मूल्य बिक रहे हैं, विचार बिक रहे हैं, अस्मिताएं बिक रही हैं। बेचने-खरीदने की होड़ लगी हैं। अंग्रेज राज नहीं है पर अंगरेजी और अंगरेजियत का प्रभुत्व तौर-तरीकों में, व्यवहार में,व्यापार में आज भी दिखाई दे रहा हैं। आज भी भोगवृत्ति का विपुल विस्तार हैं। वस्तुओं की उत्तरोत्तर गुलामी है। भयंकर मंहगाई है, अन्याय है, असमानता है, शोषण है। यह नाटक 'भारत दुर्दशा' ही जैसे पूरे देश और समय पर एक तीखी व्यंग्यात्मक टिप्पणी है। ये माना जाता है कि इस अर्थ में 'भारत दुर्दशा' (भारतीय के लिए) हमारे लिए एक नया पाठ है।

ये माना जाता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक बहुत मशहूर हुआ था। इसमें वे कहते हैं कि;

रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई [8] ।।

ये माना जाता है कि यह पंक्तियाँ भारतेन्दु हरिश्चंद्र के प्रसिद्ध नाटक 'भारत दुर्दशा' से ली गई हैं जिसमें कवि हरिश्चंद्र देशवासियों से भारत के लिए एकजुट होने और भारत की दुर्दशा और दयनीय स्थिति पर रोने की अपील करते हैं क्योंकि आपसी फूट, अज्ञानता और अंग्रेजों के शोषण से भारत देश की यह दुर्दशा' हो गई है जिसे देखा नहीं जा सकता है भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है इस नाटक का यह एक तरह से वैचारिक विस्तार है। ये माना जाता है कि इस नाटक ने भारतीय नागरिकों को राष्ट्र के बारे में एक प्रासंगिक संदेश दिया है। अपने इस नाटक के माध्यम से उन्होंने जो देशवासियों से एकजुट होने, अपनी दुर्दशा पर शोक करने और देश के उत्थान के लिए मिलकर प्रयास करने का आह्वान किया है ताकि भारत की गरीबी और अज्ञानता दूर हो सके और उसे (पुनः भारत को) गौरवशाली अतीत की तरह फिर से महान बनाया जा सके। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की यह पंक्ति भारतीयों के बीच एकता, राष्ट्रवाद और सामाजिक सुधार की भावना जगाने के लिए लिखी गई थी जिसमें भारत देश की समस्याओं (जैसे गरीबी, अज्ञानता, आपसी कलह) पर ध्यान केंद्रित कर उन्हें दूर करने का संदेश दिया गया है। यह कहा जा सकता है कि इस यथार्थवादी नाटक के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवादी कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र का उद्देश्य उस समय के भारत की दुर्दशा को चित्रित करना और समस्या के कारणों को उजागर करके उस दुर्दशा में योगदान देने वालों का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करना था।

यह कहा जा सकता है कि लेखक ने भारतीय जनता को अंधकार में सोए रहने से जगाने का बहुत अच्छा काम किया है। इस नाटक को पढ़ने के बाद यह समझा जा सकता है कि लेखक एक राष्ट्रवादी देशभक्त व्यक्ति थे और वे भारत की स्थिति से बहुत निराश थे और वे भारत में तत्कालीन ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों के खिलाफ भारत की जनता को जगाना चाहते थे। लेखक का प्रयास सफल सिद्ध हुआ क्योंकि इसके बाद भारतीय जनता ने तत्कालीन ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया था। यह नाटक सफल रहा था क्योंकि इसके लेखक ने भारतीय जनता को अत्याचारी शासन के विरुद्ध जागृत

किया था। यह कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र की नाट्य कला की विशेषता इस नाटक की सामाजिक प्रासंगिकता को साबित करती हैं। ये माना जाता है कि उनकी राष्ट्रवादी भावना, नैतिक संदेश, पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों का मिश्रण उनके व्यक्तित्व को मजबूत बनाता है ये माना जाता है कि उनके नाटक ने भारतीय मूल्यों की भूमिका को बढ़ाया है और उनके विचारों ने भारत के हितों को बढ़ावा दिया है। यह कहा जा सकता है कि उनकी राष्ट्रवादी भावना ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की वकालत की थी[9]

इस नाटक में भारतेंदु ने भारत के गौरवशाली अतीत की तुलना उस समय की भारत की दयनीय स्थिति से की थी और भारतेंदु ने भारत की वर्तमान की दुर्दशा को स्वीकार करते हुए भविष्य के लिए आशा जगाने का प्रयास किया था। इस 'भारत-दुर्दशा' नाटक के निराशाजनक अंत (भरत-भाग्य की आत्महत्या) के बावजूद इस नाटक ने भारतीय दर्शकों को आत्मचिंतन और सुधार के लिए प्रेरित किया था। ये माना जाता है कि उनके इस नाटक में भारत की प्राचीन पारंपरिक महिमा और वर्तमान दुर्दशा को ध्यान में रखते हुए और भारत के उत्थान की हार्दिक इच्छा रखते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने दासता-प्रेमी भारतीयों के दिलों पर अमिट राष्ट्रवादी प्रभाव छोड़ने के लिए इस दुखद रूपक नाटक 'भारत दुर्दशा' की रचना की थी।

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र को अगर लंबा जीवन मिला होता तो वे और कीर्तिमान रचते। लेकिन ये माना जाता है कि हिंदी भाषा और हिंदी भाषी समाज की नवचेतना पर जब भी विचार होगा तो भारतेंदु हरिश्चंद्र के बिना वह पूरा नहीं होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक के माध्यम से भारत की दुर्दशा के पीछे के कारणों को समझप्ने का प्रयास किया है। ये माना जाता है कि यह नाटक भारतीय जनता तक संदेश पहुंचाने में सफल साबित हुआ। लेखक का मानना है कि अतीत में भारत एक महान देश था, लेकिन ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण अब भारत को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे राष्ट्रवादी कवि से ऐसी ही अपने देश के पक्ष में आवाज उठाने की सबको उम्मीद थी। यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी में भारत और भारतीय जनता की दयनीय स्थिति को लेकर बहुत निराश थी। ये माना जाता है कि इस यथार्थवादी नाटक के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवादी कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने तत्कालीन ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीतियों की आलोचना भी की थी। यह कहा जा सकता है कि इस नाटक में लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारत की उस समय की दयनीय स्थिति को दर्शाने का एक बेहतर प्रयास किया है। ये माना जाता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र का यह आह्वान भारतीयों को नींद से जागकर, एकजुट होकर और अपनी भाषाओं व संस्कृति का विकास करके देश को उन्नति के पथ पर लाने का संदेश देता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि यह नाटक भारतेंदु की राष्ट्रीय चेतना, पीड़ा और भारत के भविष्य के प्रति लेखक की चिंता को दर्शाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देश की भलाई के लिए भारतीय जनता को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

संदर्भग्रंथ सूची:

1.कन्हैया लाल सगीत्रा, ष्नवजागरण के पुरोधा: भारतेंदु हरिश्चंद्रष्, आईजेएलआरपी इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लीडिंग रिसर्च पब्लिकेशन,6.1 ,2020.22-23.
2.शैलेन्द्र कुमार ठाकुर, ष्हिन्दी साहित्य के सिद्धांतों की राष्ट्रीय भावनाष्, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसेज इन सोशल साइंसेज, 13.3, 2025,119-124.
3.जोनटि दुवरा, ष्नवजागरण के अग्र-दूत और भारतेन्दु हरिश्चन्द्रष्, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 9.2, 2021,1-4.
4.प्रिय रानी,ष्भारतेन्दु के नाटकों में राष्ट्रीयता एवं नवीनताष्,डीलिस्टिक जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम,3.8 ,2024,1-4.
5.शिवदयाल पटेल, ष्हिन्दी नाटक का रंगमंच, विकास और समसामयिक हिन्दी नाटक की दशा और दिशाष्, जर्नल ऑफ लैंग्वेज एंड लिटरेचर,7.1, 2017,34-39.
6. मधुभाई हिरपारा, ष्हिंदी नाटक में भारतेंदु कालष्, विद्यायन: एक अंतर्राष्ट्रीय बहुविषयक सहकर्मी-समीक्षित ई-जर्नल,1.5 ,2016.2-6.
7.सुरेंद्र कुमार गुप्ता, ष्भारतेन्दु हरिश्चंद्र: औपनिवेशिक भारत में आधुनिक हिंदी के जनकष्, जर्नल ऑफ लैंग्वेज एंड लिंग्विस्टिक स्टडीज, 18.3, 2023, 907-916.
8.मदन गोपाल, ष्भारतेंदु हरिश्चंद्र को याद करते हुएष्, भारतीय साहित्य पत्रिका, 28.2,1985, 101-109.
9. रामबिलास शर्मा, ष्हिंदी नाटकष्, भारतीय साहित्य पत्रिका, 1.2, 1958, 90-94.

भारतीय संस्कृति एवं विरासत

डॉ० पी०एम० भुमरे

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस.एम.बी.पी.के. महाविद्यालय, शंकरनगर, तह-बिलोली, जि.- नांदेड़

भारतवर्ष और उसकी सांस्कृतिक महिमा विश्वविख्यात रही है। भारतीय संस्कृति का आशय है-सहानुभूति, विशालता, बिना स्थिर रहे ज्ञान का मार्ग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आगे बढ़ना तथा संसार में जो कुछ सत्यं शिवं और सुन्दरं दिखाई दे, उसे प्राप्त करके बढ़ती जाने वाली संस्कृति आदि। भारतीय संस्कृति संग्रह करने वाली है, सबको पास लाने वाली है तथा संकुचितता से दूरी बनाये रखने वाली है। भारतीय संस्कृति में त्याग, संयम, वैराग्य, सेवा, प्रेम, ज्ञान तथा विवेक आदि समाहित हैं।

आज हमारी संस्कृति रूपी परम्पराओं की गठरी में कुछ छोटे तथा बड़े छेद हो गये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे परम्परागत भारतीय मानव जीवन मूल्य इन छेदों से होकर मुट्ठी में बन्द रेत की भाँति सरकते चले जा रहे हैं। ''पश्चिमी भौतिकता का भूत, हमारे सत्यं, शिवं सुन्दरं के बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय में चुड़ैल बनकर बास कर चुका है। इसके कारण ही हम अपनी पहचान शनैः शनैः खोते चले जा रहे हैं। क्योंकि राजनीति ने धर्म को सम्प्रदाय में परिवर्तित कर दिया है। प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय, धार्मिक स्थलों, सांस्कृतिक स्थलों तथा प्रत्येक वर्ण जाति में साम्प्रदायिकता रूपी जहरीला रंग घोल दिया है।''[1]

इस भारतभूमि में प्राचीन काल से ही भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का संघर्ष शुरू हो गया था। संस्कृति क्या है? संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के सम उपसर्ग तथा कृ धातु के संयोग से निर्मित है। '''सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में सुट् का आगमन करके 'सिन' प्रत्यय करने से संस्कृति शब्द की निर्मिति होती है।''[2] संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है- ''संस्कार युक्त होना, उन्नति करना, बढ़ना, विकसित होना, शुद्ध होना, शिष्ट होना आदि।''[3]

संस्कृति किसी भी देश की, किसी विशिष्ट काल की जीवन पद्धति, उसके आदर्श तथा उसको प्राप्त करने की विधियाँ एवं इस प्रक्रिया में होने वाले बाह्य एवं आंतरिक परिवर्तनों का लेखा-जोखा है। वास्तव में जीवन और जगत् के सभी आयामों के साथ-साथ विभिन्न कलाओं, ज्ञान-विज्ञानों-विद्याओं, जाति-वंश प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों, मनोरंजन के साधनों, माप-विधियों, लोक-संस्कृति, शिक्षा-नौकरी, व्यवसाय आदि विभिन्न संस्थाओं यथा-कृषि-संस्था, गृह-उद्योग-संस्था, विवाह-संस्था तथा प्रसिद्ध तीर्थ एवं पर्यटन स्थलों आदि से सम्बद्ध विविध प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष आयामों की समग्रता को ही संस्कृति कहा जा सकता है।

इसी को हम भारतीय संस्कृति एवं विरासत के संदर्भ में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-भारतीय संस्कृति और विरासत रीति-रिवाजों, नैतिक सिद्धान्तों, कलाओं, धार्मिक मान्यताओं और ज्ञान की एक विशाल और विविध परम्परा है। यह परम्परा अति प्राचीन काल से समाज में प्रचलित है तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी गति कर रही है। यह मूर्त (स्थिर) स्वरूप में यथा स्मारक, शिला-लेख, मंदिर, झील, झरने, गुफाओं, कन्दराओं, पर्वत शिखरों, जल-प्रपातों तथा अमूर्त (अस्थिर) स्वरूपों, भाषाओं, लोक कथाओं, लोक-कलाओं, संगीत, त्यौहारों, पर्वों, उत्सवों, मेलों, बाजारों तथा पोशाक (वेशभूषा) खान-पान (भोजन) के स्वरूप में उपस्थित है। यह हमारे भारत महान की परिचायक हैं।

''भारतीय संस्कृति को कुछ वाक्यों में प्रकट करना उतना ही कठिन कार्य है, जितना कि हवा को बाँधने का प्रयास करना।''[4] इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इसका कोई वर्णन नहीं हो सकता है यह तथ्य बिना किसी विवाद के प्रस्तुत किया जा सकता है कि संस्कृति सरीखे शब्द की परिभाषा, विशेषकर भारत के संदर्भ में कठिन है, उसका वर्णन तो सरलता से किया जा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति वह समग्र संकुल है जिसमें समाज के सदस्य की हैसियत से मनुष्य द्वारा ग्रहण किये गये ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, रिवाज और अन्य योग्यताओं एवं अभ्यास का समावेश है। इसके अतिरिक्त संस्कृति समस्त सीखे हुए अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। संस्कृति का एक अर्थ यह भी है सभ्य। सभ्य का अर्थ यह है कि जो समाज में उचित एवं संस्कारित ढंग से व्यवहार करता है उसे सभ्य कहा जाता है ठीक इसके विपरीत जो काम करता है उसे असभ्य की संज्ञा प्रदान की जाती है।

भारतीय संस्कृति एवं विरासत में इतिहास (अतीत) एवं मूल्य को समझने में मदद करती है तथा समुदायों को एकजुटता प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति में विभिन्न धर्मों, जातियों एवं भाषाओं का सम्मिश्रण है इतना ही नहीं इसमें आँचलिकता एवं भू-गर्भीय दृष्टि से प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्ट परम्पराएँ, वेशभूषा, रहन-सहन, भोजन विधि, लोक कलाएँ तथा भाषा-शैली आदि भी सम्मिलित हैं। नृत्य, दर्शन, आध्यात्मिकता, ज्ञान-विज्ञान, विभिन्न जीवन प्रणालियाँ, अभिवादन पद्धति, पर्व, त्यौहार, मेले, उत्सव, बाजार तथा लोक संस्कृति आदि में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

विरासत के अन्तर्गत अतीत काल अर्थात् अति प्राचीन काल के ऐतिहासिक स्मारक, गुफाएँ, प्रस्तर-शिलाएँ, पर्यटन स्थल, मठ आदि के साथ-ही-साथ अनेक स्थान ऐसे हैं जो विरासत के अन्तर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति एवं विरासत, भारत की प्राचीन सभ्यता की समृद्ध विविधता है, जिसमें अनेकानेक अनूठी और आश्चर्यजनक परम्पराएँ सम्मिलित हैं। वैश्विक धरोहर स्थलों के अतिरिक्त योग तथा आयर्वेद जैसे अमूल्य मूल्य भी हैं जो भारत की

पहचान एवं गौरव को दर्शाते हैं। भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं-साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, शिल्पकला, चित्रकला, संगीत तथा नृत्य आदि विरासत में बहुमूल्य हैं। इसमें प्राचीन सभ्यताएँ जैसे सिन्धु घाटी सभ्यता (हड़प्पा सभ्यता) और अन्य ऐतिहासिक स्थल शामिल हैं। ये भारत की गौरव गाथा के प्रतीक हैं।

भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में आरम्भ से ही 'वसुधौव कुटुम्बकम्' की धारणा में गहन आस्था व्यक्त करती आई है। यथा- ''राष्ट्रीय एकता की भावना का समुचित विकास हमें अन्य राष्ट्रों के प्रति सम्मान तथा आदर की भावना से पूरित करता है। एक सच्चा राष्ट्र-प्रेमी अन्य राष्ट्रों को भी सम्मान देते हुए उनसे भी भावनामूलक रूप में जुड़ जाता है और धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय एकता की भावना का उदय होने लगता है जिसके लिए प्रत्येक महान व्यक्ति इसकी आकांक्षा करता है, यह मानव का अन्तिम सत्य है।''[5]

हमारी प्राचीन सभ्यता से तथा विचारधारा से जब यूरोपीय सभ्यता का सम्पर्क हुआ तब उसका सर्वाधिक कल्याणकारी प्रभाव प्रवृत्ति की दिशा में पड़ा। ''अब प्रवृत्ति क्या है? इसे ज्ञान करना हमारा प्रथम कर्तव्य बनता है। प्रवृत्ति शब्द का अर्थ है सन्यास न लेकर मरणोपर्यन्त (मृत्य पर्यन्त) चातुर्वर्ण्यविहित निष्काम कर्म करते जाना।''[6]

प्रवृत्तिवाद व्यवस्था संसार को निस्सार नहीं मानती है और न ही उसका यह भाव होता है कि मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य धयान और समाधि है। इसके ठीक विपरीत निवृत्ति का मार्ग सन्यास का मार्ग है। कर्म त्याग का मार्ग है। इसके साथ-ही-साथ निवृत्तिवाद का समर्थन करने वाला यह भी मानता है कि विश्व माया है एवं सारहीन है, कुछ नहीं में कुछ का भ्रम है। अतएव मनुष्य का चरम लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह सन्यास की ओर जाकर या सन्यास ग्रहण कर मोक्ष की निरन्तर खोज करे। इसके अलावा वह इस लोक को त्याग कर परलोक को सुधारने की चेष्टा में वल्लीन हो जाये। इसी भावना में आसक्ति का मार्ग ग्रहण कर हमारे देश के निवासी ने लोक की उपेक्षा कर दी। इसीलिए एक सिद्धान्त स्थापित हो गया कि-

''पश्चिमी (पाश्चात्य) देशों के निवासी जीवन के व्यूह में प्रविष्ट होकर रस तथा आनन्द की अनुभूति करने लगे और भोगवादी बन गये, परन्तु भारतवासी यह जानते हुए भी कि यह संसार मायिक है माया से निकलना अत्यंत कठिन काम है फिर भी अँधेरे में भटकते हुए जीवन के अर्थ की खोज करने लगे और आज भी उनकी यह खोज पूर्ण नहीं हुई है।''[7]

इस प्रकार यह भटकाव अभी भी समाप्त नहीं हुआ है। यहाँ पर एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हम यथार्थ से भटक गये हैं। भौतिकता ने मनुष्य को अंधा बना दिया है तथा वह इसी प्रवृत्ति के कारण असली मार्ग 'प्रेम' से दूरी बना बैठा है। जब तक मानवता में प्रेम का अभाव रहेगा तब मानव आदिम मानव ही रहेगा।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में अनेक तथ्यों का समावेश है जो कि परम्परागत हैं। इतना अवश्य है कि इसमें धार्मिकता और नैतिक विचारों तथा सिद्धान्तों की अधिकता है। इसमें अध्यात्म भावना प्रबल मात्र में समावेशित है। अति प्राचीन काल से धर्म ग्रंथों (वेदों आदि।) वर्णित धार्मिक भावना, पूज्य भाव, आस्था, श्रद्धा एवं भय आदि का भी समावेश है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने आर्य एवं अनार्य संस्कृति में सन्धि कराने का अथक एवं सराहनीय प्रयास किया जो एक संस्कृति का उत्कृष्ट नमूना है। यही प्रयास परम्परा के स्वरूप में आज भी विद्यमान है। भारतवर्ष सदैव भौतिक एवं आधयात्मिक नियमों तथा शक्तियों की महत्ता की ओर सचेष्ट रहकर भौतिक विज्ञानों के विकास की ओर उत्कृष्ट दृष्टिकोण अपनाकर जीवन की समुचित व्यवस्था की कला से भली-भाँति परिचित रहा है। भारतीय संस्कृति की विरासत एक ऐसा विशाल क्षीर-सागर है, जिसमें न जाने कितनी ही रंग-बिरंगी संस्कृतियों का जल और जातियों का दुग्ध एवं नवनीत (मक्खन) इसकी उपादेयता, सुस्वादता तथा स्वास्थ्यवर्धाकता में असंख्य गुना वृद्धि करती आयी है।

संदर्भ

1. मंदिर संस्कृति-डॉ. राजबहादुर सिंह, पृ. (निवेदन) संस्करण 2001, राज पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।
2. भारतीय संस्कृति का स्वरूप-डॉ. इबतवार दशरथ तुकाराम, पृ. 15, संस्करण 2015, समता प्रकाशन कानपुर।
3. भारतीय संस्कृति की महिमा विविध आयाम-डॉ. कृष्ण भावुक, पृ. 9, संस्करण 2012, जीवन ज्योति प्रकाशन दिल्ली।
4. वही, पृ. 15
5. वही, पृ. 33
6. संस्कृति के चार अध्याय-दिनकर, पृ. 558, संस्करण 2016, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।
7. वही, पृ. 558

प्रवासी लेखिकाओं के कथा साहित्य में ब्रिटेन का सामाजिक परिदृश्य

डॉ० गायत्री

हिन्दी विभाग, अतिथि सहायक प्राध्यापक, श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध सारांश

जिस देश में प्रवासी भारतीय लेखिकाऐं जीवनयापन करती हैं उस देश के समाज की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उनकी रचनाओं में प्रस्तुत हो जाती है। यही कारण है कि ब्रिटेन में निवास कर रहीं भारतीय मूल की प्रवासी लेखिकाओं के कथा साहित्य में भी ब्रिटेन का समाज सहज रूप में अभिव्यक्त हो गया है। लेखिकाओं ने ब्रिटेन के समाज में प्रवासी जीवन की समस्याओं तथा विषमताओं को अभिव्यक्त किया है और उस देश की सामाजिक व्यवस्था के प्रवासी जीवन में पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को भी कथा साहित्य का विषय बनाया है। अत: इस प्रकार अपने अनुभवों और उस समाज की यथार्थ रचना अभिव्यक्ति से इन प्रवासी लेखिकाओं ने ब्रिटेन के सामाजिक परिदृश्य को चित्रित करने का प्रयास अपने कथा साहित्य में किया हैं।

साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध है क्योंकि वास्तव में मनुष्य जीवन के विकास का दूसरा नाम साहित्य माना जाता है। साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होने का कारण यह भी है कि साहित्य एक सामाजिक चेतना है। इस बात की सत्यता को भी नकारा नहीं जा सकता है कि समाज को बदलने में साहित्य का एक बड़ा योगदान रहा है। साहित्य सामाजिक,राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ-साथ मनुष्य जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

साहित्य दो शब्दों से मिलकर बना है 'स' + 'हित'। इस प्रकार साहित्य का शाब्दिक अर्थ है,जो हित सहित हो। सोद्देश्य और भाषा के द्वारा ही साहित्य हितकारी रूप में प्रकट होता है तथा भाषा मनुष्य की सामाजिकता को विशेष रूप से पुष्ट करती है। भाषा के द्वारा ही मानव समाज में एक-दूसरे के सुख-दु:ख में भाग लेने से सहकारिता का भाव उत्पन्न होता है। साहित्य में मानव जाति का हित सम्मिलित होने के कारण यह मानव के पारस्परिक सम्बन्धों को ओर भी अधिक सुदृढ़ बनाता है। साहित्य को रचने वाला साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने भावों को साहित्य के द्वारा समाज में प्रसारित करता है जिससे समाज का सामाजिक जीवन स्वयं मुखरित होने लगता है। इस आधार पर प्रवासी साहित्यकार भी अपने समाज की सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं को अपनी रचना में दर्शाने का प्रयास करता है।

ब्रिटेन के प्रवासी स्त्री रचनाकारों में कथा-साहित्य की सामाजिक स्थिति की बात करे तो यह स्त्री लेखिकाएं अपने कथा साहित्य में प्रवास की दयनीय स्थिति, नारी पीड़ा, रंगभेद आदि जैसी समस्याओं के साथ-साथ पुरुष पीड़ा, समलैंगिकता और लिव-इन-रिलेशनशिप आदि जैसे नवीन विषयों पर भी हमारा ध्यान आकर्षित करती है। ब्रिटेन की प्रवासी स्त्री लेखिकाओं के कथा साहित्य की विशेष बात यह भी है कि वह उस समाज में भारतीय पुरुष और स्त्रियों के प्रवास की समस्याओं के साथ-साथ वृद्ध जीवन को भी दर्शाती हैं। साथ ही ब्रिटेन में जन्मी प्रवासी भारतीयों की नवीन पीढ़ी की समस्याओं की ओर इशारा करती नजर आती है। प्रवास की सकारात्मक और नकारात्मक परिस्थितियों को ब्रिटेन की महिला साहित्यकारोंने अपने कथा साहित्य में प्रदर्शित किया है जैसे साहित्यकार उषाराजे सक्सेना की कहानी 'प्रवास में' का शशांक अपनी मेहनत के बल पर लंदन के ब्रिटिश सर्विस कमिशन में ऊँचा औहदा प्राप्त करता है।वह केवल भारतीयों में ही नहीं बल्कि वहां के सभी प्रकार के नागरिकों में अपना विशेष स्थान बना लेता है, जिससे उसके अंग्रेज भी मित्र बन जाते हैं। उसका विश्वास नस्लवाद पर न होने के कारण उसे महसूस होता है कि लंदन में निवास करने वाले भारतीय हीन ग्रंथि और गुलाम मानसिकता के शिकार हैं तथा वे वहाँ के विभिन्न रीति-रिवाजों में जकड़े हुए हैं। परन्तु एक दिन शंशाक नस्लवाद के जाल में फँस जायेगा है और अविश्वसनीयता के आरोप में निलंबित कर दिया जाता है।

कुछ एन.आर.आई जब भारत में आते हैं तब उनकी ऐसी दशा हो जाती है कि भारतीय समाज उन्हें अपने से अलग मानता है और अपनाने में झिझकता है।जैसे अचला शर्मा की कहानी 'बेघर' में दिखाता हैं जहाँ विदेश के उन्मुक्त वातावरण में पले बच्चों के बिगड़ने के पूर्वाग्रह से ग्रसित भारतीय समाज उन्हें अपनाने से झिझकता है। साथ ही उक्त कहानी दो देशों के बीच में मानसिक द्वंद्व में फंसे व्यक्ति की स्थिति को दर्शाती है।

"वर्दी वाले ने उलट-पुलटकर ड्राइविंग लाइसेंस देखा चिल्लाया " ये कहाँ का है? इंडिया का तो नहीं है? देखो भाई, मैं लंदन में निवासरत हूँ। कुछ समय के लिए यहाँ आया हूँ। ये गाड़ी मेरे बड़े भाई साहब की है। आप चाहे तो अपना वीजा और पासपोर्ट दिखा सकता हूँ। उसे लगा, नरमी के साथ ही इस स्थिति से उबारा जा सकता है। "साले विलायत में रहता है तो अकड़ता क्यों है? यह लाइसेंस यहाँ नहीं चलता समझा?"[1]

ब्रिटेन की प्रवासी स्त्री रचनाकारों का कथा साहित्य प्रवासी जीवन का यथार्थपूर्ण दस्तावेज है। जिनमें प्रवासी भारतीयों की संघर्ष-कथा है। इस कथा साहित्य में ब्रिटेन के प्रवासी जीवन के अंतद्वद्वों और अंतर्विरोधों से प्रभावित अनुभवजगत को वाणी देने वाली स्त्री कथाकारों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वह

नियति और मानवीय संवेदना के छुए-अनछुए पक्षों को उजागर करने में सिद्धहस्त है। जैसे दिव्या माथुर की 'ब्लैकमेल' कहानी उल्लेखनीय है। इसमें अप्रवासी किशोरों द्वारा भारतीय लड़कियों से उनकी लाचारी तथा गरीबी के कारण शादी करने का मौका मिल जाता है। जिसमें एक बिचौलिया पक्ष ऐसा करने के लिए सहायक होता है। जिसका वर्णन उक्त कहानी में किया गया है। कहानी में शशिबाला नामक पात्र के पिता को पांच लाख देकर शादी कर लेता है, लेकिन बाला अनपढ़ और गंवार निकली जिसका परिचय लेखिका ने इस प्रकार किया है- "कई दफा समझाने के बावजूद, बाला बिना पाईलैट दबाए गैस का चूल्हा ऑन कर देती और पूरे घर में गैस की गंध व्याप्त हो जाती, स्क्रेच फ्री बर्तनों को वह साफ डालती; हूवर तो कार्पेट पर झाड़ू देता उसका दुपट्टा हूवर में घुस जाता, गुस्से से भरी शशी ने एक दिन उसे अपनी गैर-मौजूदगी में किसी भी वस्तु को छूने तक के लिए मना कर दिया। वह पूरा दिन यूँ ही खघली बैठे निठ्ठले की तरह समय व्यतीत करती और आवाजाही करने वाले लोगों को निहारती रहती थी कई लोग हाथ उठाकर उसका अभिवादन करते तो वह पर्दे के पीछे छिप जाती, टीवी देखती तो उसके समझ के परे जाता क्योंकि उससे न डेनिश आती थी और न अंग्रेजी, सुबह के नाश्ते के बाद जब तक शशी घर न आ जाए। कोई दुर्घटना न हो जाए इस वजह से वह डर के मारे फ्रिज तक नहीं खोलती थी"[2] विदेश में अपनी जिंदगी को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रवासी भारतीयों को काफी संघर्ष करना पड़ता है। ब्रिटेन में बसे प्रवासियों के जीवन-संघर्ष को उषा वर्मा ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया हैं।उनकी कहानी 'रिश्ते' में केंद्रीय पात्र माइकल एड्स की बीमारी से ग्रसित है। जिस कारण उसके पिता और बहन उससे कोई रिश्ता नहीं रखना चाहते हैं परंतु माँ अपने बेटे का साथ देना चाहती है किंतु वह मजबूर है। क्योंकि वह पति की मर्जी के खिलाफ नहीं जाना चाहती। इस कारण माइकल को अपनी बीमारी के साथ अकेला ही जूझता पड़ता है। उसके जीवन-संघर्ष को एक उदाहरण से समझा जा सकता है- "माइकल ने अपने कमरे पर एक निगाह डाली, अब मैं क्या करूं ? यदि मैं बता दूं तो मेरी नौकरी भी जाएगी। मकान मालिक से कहने पर कमरा भी छोड़ना पड़ेगा, तब मैं इस बीमार शरीर को लेकर कहाँ जाऊँगा, वह जिस म्यूजिक ग्रुप से जुड़ा हूँ, वह भी छोड़ना ही होगा।"[3]

प्रवासी साहित्यकार दिव्या माथुर के कहानी संग्रहों के साथ 'शाम भर बातें' नामक एक उपन्यास भी पाठकों के समक्ष है। इस घटनापरक उपन्यास लेखिका की एक अतिमहत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धि है। अब तक कहानियों के माध्यम से प्रवासी व्यक्तियों के यथार्थ और उसकी विपरीत परिस्थिति को बताने वाली दिव्या माथुर कहानी परम्परा को छोड़कर पूरा उपन्यास रच दिया। अंतर्दृष्टि और गहराई से भरा यह उपन्यास प्रवासी भारतीयों की जिन्दगी का एक सच्चा आईना प्रस्तुत करता है जो हंसाता, बेचौन ही नहीं करता, गुदगुदाता और ढेरों सवाल भी छोड़ जाता है। बदलते समाज का उदाहरण उक्त उपन्यास इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

"भगवान का बहुत बहुत शुक्र है कि इंडिया में कोरोनेशन स्ट्रीट और ईस्ट एंडर्स जैसे धारावाहिक नहीं है। जिसको पूरा परिवार एक साथइकट्ठा बैठ कर रात्रि में देखता है। बाप का बेटी से और बहू का ससुर से इश्क, पीडोफाइल्स लेस्बियन और गे लोगों के सेक्स सीन्ज, क्या नहीं दिखाया जाता यहां के चौनल्स पर?"

हाय राम।

'आ पूरै जमानो आव्यो छे

लाहौल बिलाकुवत् कयामत का दिन अब दूर नहीं, जिया।

"मेरे इंडिया के सीरियल्स कौन से अच्छे हैं, वहां भी अब मरा यही सब हो रहा है, पत्नी ने पति को गरा जहर दे दिया, सास ने बहू को मार डाला।"[4]

पारिवारिक खींचतान को उषाराजे सक्सेना ने भी अपनी कथानकों का कथ्य बनाया है। उदाहरणस्वरूप इनकी 'शन्नो' कहानी को लिया जा सकता है। इस कहानी की पात्र नायिका शन्नों की उसके पति (सुभाष) से नहीं बनती, परिणामस्वरुप पति-पत्नी में हर रोज कलह होता रहता है। इसका प्रभाव उनके पुत्रों मोनू और सोनू पर भी परिलक्षित है चूँकि दोनों वयस्क हो चुके हैं इसलिए वे उन बातों से अनजान नहीं हैं। उन्हें अपने आभिभावकों के दाम्पत्य जीवन से खीझ होने लगती है, जिसके कारण उन्हें शादी के नाम से चिढ़ होने लगती है। इसे कहानी में सोनू और उसकी माँ के बीच एक संवाद में देखा जा सकता है-"रोज-रोज की खिच खिच से तंग आकर एक दिन सोनू ने मां को आड़े हाथ लिया मम्मी, तुम पिताजी के घर आने के तुरंत बाद ही चिल्लाने क्यों लगती हो? यदि आप दोनों का आपस में समन्वय नहीं है तो आप दोनों अलग हो जाओ?

"क्या कहते हो अलग हो जाऊ? अरे अलग हो जाऊँगी तो तुम लोगों के शादी ब्याह का क्या होगा"[5]

ब्रिटेन के कथा-साहित्य की एक और विशेष बात यह है कि संख्या की दृष्टि से स्त्री रचनाकारों की संख्या पुरुष रचनाकारों से अधिक नजर आती है। ब्रिटेन की प्रवासी स्त्री कथाकारों में उषाराजे सक्सेना, दिव्या माथुर, जय वर्मा, उषा वर्मा, कादम्बरी मेहरा, अरुणा सब्बरवाल, नीना पॉल, जकिया जुबैरी, अचला शर्मा, शैल अग्रवाल आदि शामिल हैं। ब्रिटेन की प्रवासी भारतीय लेखिकाएं विदेश में बसने वाली भारतीय स्त्रियों के सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक और वैचारिक संघर्ष को विश्लेषणात्मक ढंग से प्रदर्शित करती हैं। इस कारण उनके कथा साहित्य में मध्यगत एवं विषयगत वैविध्य मुख्यधारा में दिखाई पड़ता है। ब्रिटेन की स्त्री कथाकारों द्वारा रचित कथा साहित्य भारतीय स्त्रीवादी लेखिकाओं के साहित्य की भांति देह की सीमा में बंधा हुआ न होकर, देह से इतर वैश्विक विषयों पर अपने विचार प्रकट कर रहा है। ब्रिटेन के प्रवासी कथा साहित्य में जिस प्रकार स्त्री का चित्रण हुआ है वह भारतीय परिवेश से एकदम अलग है। वह दोहरे दायित्व बोध से ग्रस्त है। इन्हीं दोहरे दायित्व में वह सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती नजर आई है। ब्रिटेन की प्रवासी कथाओं में स्त्री के विभिन्न रूप सामने आते हैं। जिसमें ये लेखिकाएं ब्रिटेन के समाज में भारतीय स्त्रियों की स्थिति का तीन रूपों में उल्लेख करती हैं।

जिसमें पहली स्त्री, जो पाश्चात्य परिवेश में इस प्रकार ढल चुकी हैं कि एक स्त्री का विकृत रूप दृष्टिगत होता है, जो अपने मूल्यहीन स्वच्छंद जीवन को ही मूल्यवान मानने लगती है; जैसे कहानी 'तान्या दीवान' की पात्र तान्या।

दूसरी वह प्रवासी स्त्री हैं, जो भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश में सामंजस्य स्थापित कर आगे बढ़ने को प्रयासरत है; जैसे 'मेरे हिस्से की धूप' की शम्मो।

तीसरे रूप में प्रवासी स्त्री कभी निराशाजन्य स्थिति में नजर आती है तो कभी अवसादग्रस्त स्थिति में। इसके साथ उसका विद्रोहिणी रूप भी प्रदर्शित हुआ है; जैसे कहानी 'सांकल' की सीमा।

इस संदर्भ में डॉ. श्रीमती शरद सिंह के विचार महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। वे कहती हैं "प्रवासी महिला कथाकारों की कहानियों में जो स्त्री उभर कर सामने आती है, यह एक अलग जीवन कथा कहती है। यह जीवन कथा स्त्री के अंतर्द्वन्द्व की है यह जीवन कथा दो भिन्न संस्कृतियों के बीच तालमेल बिठाते रहने की है, यह जीवन कथा स्त्री के उस पक्ष की है जिसमें वह स्वतंत्र दिखती है किन्तु अपने जातीय (भारतीय) संस्कारों के कारण स्वयं को पाश्चात्य शैली में स्वतंत्र कर नहीं पाती है। इस प्रकार वह दोहरे दायित्व को वहन करती रहती है।"[6] दिव्या माथुर की 'आक्रोश' भारतीय समाज की उन हजारों स्त्रियों की कहानी है जिन्हें प्रसव के दौरान और उसके बाद पति की संवेदनहीनता और गैर जिम्मेदारी का सामना करना पड़ता है। यह कहानी प्रेमचंद की 'कफन' कहानी की भांति रात भर प्रसव पीड़ा से तड़पने वाली बुधिया की याद दिला देती है, जिसका पति संवेदनहीन होकर बाहर बैठकर आलू भूनकर खाता है परन्तु एक बार भी अपनी पत्नी को देखने अंदर नहीं जाता। दिव्या माथुर की 'आक्रोश' कहानी में भी विवेका को भी जब प्रसव पीड़ा उठती है तो माँ कहती है "यहाँ मरदों का क्या काम?" ऐसा कहकर अपने बेटे को अस्पताल जाने से रोक लेती और खुद विवेका के साथ अस्पताल चली जाती। बेटा अशोक भी छुट्टी लेकर घर बैठकर क्रिकेट मैच देखा करता। जबकि उस समय विवेका को सबसे अधिक आवश्यकता अपने पति के प्रेम और सौहार्द की होती है। दो बच्चियों के जन्म के बाद जब विवेका को गर्भ ठहरता है और उसके पालन पोषण का खर्च उठाने की सामर्थ्य अशोक में नहीं होती है, तब सारा दोष विवेका का ही बताया जाता है कि तुम्हें सावधानी बरतनी चाहिए। सब कुछ सहें औरत, दिन-भर काम में जुटी रहें, बच्चियों की परवरिश करें फिर भी ध्यान और सावधानी औरतों को ही क्यों बरतनी पड़ती है? क्या पति की कोई जिम्मेदारी नहीं होती? विवेका ने नसबंदी के लिए अशोक को कहा था, पर ये बात उसने नहीं मानी। अंतत: विवेका को गर्भपात का दर्द झेलना पड़ा। ऊपर से उसे एक जीव जो उसका अपना ही शरीर है उसे न चाहते हुए भी अपने शरीर से अलग करना पड़ा। इस दर्द को एक माँ ही समझ सकती है।

ढजकिया जुबैरी की 'मन की सांकल' के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों पर हिंसा और क्रूरता का उदाहरण देखने को मिलता है; जैसा कान्फ्रेंस से जल्दी लौटी माँ घर में सैंतीस वर्षीय बेटे के साथ एक नई स्त्री नीरा को देखकर विरोध करती है और बेटा कैंसर से जूझ चुकी माँ की बाजू दरवाजे में दे अपना पौरुष दिखाता है। भयभीत माँ रात में हत्या के भय से अंदर से सिटकनी लगा कर रखती है।

नीना पॉल का पहला उपन्यास 'रिहाई' है। रिहाई नामक यह रचना पाठकों के समक्ष एक आदर्शवादी दृष्टिकोण रखता है। नीना पाल के प्रथम उपन्यास की भाषा शैली पाठकों को अनायास ही आकर्षित करती है। परिवार के मध्य का वातावरण और उसमें पात्रों के उमंग, उत्साह, आशा, ऊहापोह और निराशा के साथ जीवन के अनेक रंग इस उपन्यास की विशेषता बन गए हैं। साहित्यिक और वैचारिक उलझनों से कोसों दूर इस उपन्यास की लगाव भरी सोच पाठक को बांधने पर मजबूर करती है। वर्तमान में युवा वर्ग का अपने बुजुर्गों के लिए जो आदर और सोच है, वह इस उपन्यास में देखने को मिलती है। जब अपनी बेटी ज्योति से निधि दादी माँ के बारे में प्रश्न करती है और उन्हें बुरा-भला कहती है तो निधि जवाब में कहती है कि-

"माफ करिएगा ममा, वह आपकी नजरों में नौकर होगी मेरी नजरों में दाई मां की क्या अहमियत है, क्या इज्जत है, यह आप नहीं समझ पाएंगी। उन्होंने ऐसे समय में मेरा पालन- पोषण किया है जब मुझे आप जैसी माँ की सखत जरूरत थी। इसलिय मेरे मन में उनका सम्मान है क्योंकि उन्होंने रात-रात जागकर मेरा खय्याल रखा है।" फिर थोड़ा रुककर। "आपको तो अभी होश आया है कि आपकी कोई बेटी भी है, वह मैं जानती हूं क्यों"[7]

दिव्या माथुर की 'ठुल्ला क्लब' कहानी का केंद्रीय विषय प्रवास में वृद्ध जीवन की स्थिति को दर्शाता है। कहानी विदेश में अपने बेटे के पास जाने वाले भारतीय माता-पिता के वृद्धावस्था में अकेलेपन को बयाँ करती है। विदेश में सब कार्य से निवृत होने के बाद भी, ना तो बेटे और बहू को उनके साथ बैठकर बातें करने का समय मिलता है, और ना ही उनके पोते-पोतियों को। दिनभर काम खत्म होने के बाद वे लोग क्लबों में व्यस्त रहते है परंतु उनके पास वृद्ध माता-पिता के लिए समय नहीं है। जिस पर कहानी के एक वृद्ध पात्र का कहना है- "दादा-दादी की तो बात दूर, बच्चों के पास अब माँ-बाप के लिए समय नहीं है। हम जैसे रिटायर्ड लोग कभी एक बच्चे के पास तो कभी दूसरे के पास, मेहमान होकर रह गए हैं बस्स।'

''तुम ठीक कै रए हो, रघु। हम तो मरे मेमानों से बी बत्तर हैं हियाँ। हमारे पड़ौसी बी मरी हाय-डू-डू कर लेवें हैं, पन पोता-पोती, बेटा-बऊ हमसे कबी जै राम जी बी नईं करते। मैं तोसे कऊँ, हमें तो कबी ये बी पता नाय लगे है कि कब्ब तो ये आए और कब्ब गए।"[8]

जय वर्मा की 'गुलमोहर' कहानी एक कोठी के नाम पर आधारित है। यह कहानी मकान और घर के भेद को स्पष्ट करती है। कहानी में एकल परिवार की त्रासदी है जो केवल अपने परिवार के बारे में सोचने की संकीर्ण मानसिकता को दर्शाती है।जिसके कारण युवा अपने वृद्ध माँ-बाप को ही भूल जाते है। कहानी में मानवीय संबंधों पर भौतिकवादी सोच के प्रभाव को दर्शाया गया है। कहानी की केंद्रीय पात्र कमला पति के देहान्त उपरान्त पति और बच्चे ध्रुव की यादों को संजोए जीवन व्यतीत कर रही है। उन्नीस वर्ष बाद बेटा ध्रुव कनाडा से भौतिक इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से भारत वापस आता है। उसे अब पता चल गया है कि गुलमोहर कोठी की कीमत चार करोड़ से ऊपर हो गई है। जिसे बेचकर वह बच्चे और अपनी सुख सुविधाओं पूरा करना चाहता है। ध्रुव माँ कमला को कनाडा ले जाने की जिद्द करता है लेकिन कनाडा जाते समय वह माँ कमला को एयरपोर्ट पर ही छोड़कर चला जाता है। कमला की इस व्यथा को इस उदाहरण से समझा जा सकता है-

"कमला पर तो पहाड़ ही टूट पड़ा। कमला का अर्धचेतन क्रम टूटा। उसकी जुबान तालू से चिपकी रही। वह चीखना चाहती थी लेकिन गले से आवाज नहीं निकल रही थी। "कोई भी लक्षण ऐसे प्रतीत नहीं हो रहे थे कि मैं संदेह करती।" वह छटपटा कर सिक्योरिटी ऑफिसर से बोली। "क्या बेटे ने इस बारे में कुछ कहा था?" "नहीं, किसी की क्या गलती है इसमें ?.... दुख देने वाला कोई और नहीं अपना ही बेटा निकला। अपने भाग्य को ही दोष दूँगी। बेटे के प्यार ने मुझे अंधा बना दिया।"[9] जय वर्मा की गुलमोहर कहानी समाज में शुष्क होती संवेदनाओं की तस्वीर है। कहानी की केंद्रीय पात्र कमला का दर्द और व्यथा आज के उस बुजुर्ग कहानी है, जो एकाकी जीवन जीने के लिए विवश है।

प्रवासी साहित्यकार दिव्या माथुर की कहानी 'फिक्र' में भारत और ब्रिटेन के समाज का प्रतिबिंब दिखाया गया है। मनमोहन अपनी प्रथम पत्नी और शशि की माँ के देहांत के पश्चात् शैफील्ड में रहने लगता है। पारिवारिक दबाव के बाद वह भारत में निम्न आय वर्ग की महिला प्रिय के साथ विवाह करता है। लेकिन शशि उसे माँ के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं कर पाती है। वह ऐसी परिस्थितियों पैदा कराती है जिसके कारण मनमोहन इस बात से परेशान हो जाता है कि प्रिया ग्रभवती है। वह उसका गर्भपात कराना चाहता है लेकिन प्रिय और उसके समाज से उसको भय है। इस प्रकार एक निम्न स्तरीय सोच को इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने प्रस्तुत किया है। जब वाशिंग मशीन से कपड़े खराब हो जाते हैं तब मनमोहन के कहने पर काइली गुस्से में मनमोहन से पूछती है, "सो यू नो देवर शी कॉल्स सामान अंकल फ्रोम प्रीयाज फोन? यू नो देयर शी इंटेशनली स्पिल्ट व रेड वाइन ऑन द कार्पेट एड ब्लेम्ड प्रिया, यू नो देयर शी पुट्स हर पिंक स्कार्फ इन दी वाशिंग मशीन"[10] विदेशी भूमि में संकुचित मानसिकता रखने वाले पति के साथ एक स्त्री का जीवन किस प्रकार और भी संघर्षशील हो जाता है। इसे उषाराजे सक्सेना की कहानी 'दायरे' में देखा गया है, जिसमें औरत के नारीत्व को भी परखा गया है। पाश्चात्य देश में भी रहकर स्त्रियाँ मर्यादित हो सकती हैं, यह उस स्त्री पर निर्भर करता है। इस कहानी में स्त्री के प्रवासी जीवन में भारतीय आदर्शवादी स्वरूप को दिखाया गया है। इस बात की प्रामाणिकता 'दायरे' कहानी के इस उद्धरण से मिलती है-

"मर्द को आश्चर्य हुआ कि आज के जमाने में और वो भी बरतानिया में ऐसी भी औरतें हैं जो इस कदर काबिल होने के बावजूद दायरों में जकड़ी हुई और बहुत सहमी हुई है, जिसको भौतिकवादी बाहरी दुनिया की भागमभाग और अमानवीय मूल्यों से कोई सरोकार नहीं है। वो अभी भी बाबा आदम के जमाने में सकून से रहती हैं। उसने औरत को ढाढ़स देते हुए कहा, तुम परेशान क्यों होती हो। तुम्हारे शिदतेवया ने इस छोटे से शहर में हड़कंप मचा रखी है। मेरा मतलब तो सिर्फ यह था कि किताब प्रकाशित होने से पूर्व हमें एक-दूसरे को जानना-पहचानना होगा, यानी कि मुझे तुम्हारे अन्दर बैठी शायरा को समझना होगा।"[11]

कढ़ाकर उषाराजे सक्सेना की एक अन्य कहानी 'वजूद' में पति-पत्नी के बीच छल से टूटते रिश्ते के बीच सुलह होते रिश्तों को देखा जा सकता है। इसके बावजूद भी रिश्तों को सँभाले रखने की भार पत्नियों पर छोड़ दिया जाता है। अक्सर देखा जाता है कि अकसर देखा गया है कि पत्नी अपने पति पर बेवजह संदेह करके अपने घर को उझाड़ देती है लेकिन इस कहानी में पत्नी को अपने किए पर पश्चाताप और ऊहापोह को दिखाना कहानी का एक अहम पहलू है। कहानी की पात्र वैजन्ती के संदेहास्पद सोच को रचनाकार ने किस प्रकार उभारा है, उसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया जाता है-

"कुमार उसके साथ नाटक कर रहा है क्या? इतनी बड़ी बात हो गई और वह उसे अनदेखा करने और एक घटना मात्र प्रस्तुत करके उसे टालने को कह रहा है। अवश्य ही यह सब उसे षड्यंत्र करके और दुर्बल करने का एक कुटिल सुची दर्शन है। जरूर से कुमार मानसिक रूप से संवेदनशील और रूग्ण होकर कुटिल हो गया है। यह कुटित हरे रुष्ट और मर्राए स्वर में बोली, हद है कुमार तुमने उसे महसूस किया होगा, बाँहों में लिया होगा, उन पलों में तुम्हें मेरी याद अपनी पत्नी की याद नहीं आई। यह जीवनसंगिनी जिसके साथ तुमने अग्नि को ईश्वर मानकर पूरे परिवार बांधव के सामने फेरे लिए थे कुछ भी याद नहीं आया क्या तुम्हें एक बार भी अपराध बोध नहीं हुआ।"[12]

ब्रिटेन की प्रवासी महिला कथाकारों ने एक औरत के मन में उठ रहे ज्वलंत प्रश्नों को भी अपनी कहानियों के माध्यम से दर्शाया है। लेखिका ने कहानी 'वॉकिंग पार्टनर' में औरत के साथ होने वाले अपकृत्यों को बताकर उनकी यथास्थिति को भी प्रस्तुत किया है। कहानी की पात्र रिफत को जब शाहीन कुछ लड़कियों के शोषित जीवन के बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन करती है तो वह अपने मन ही मन में विचार करती है कि औरत को किस-किस प्रकार से समझौते करने पड़ते हैं। रिफत अपने अंतर्मन से बात करते हुए कहती है, "या खुदा। क्या यह सच है? अल्ला उनके दिलो-दिमाग पर क्या गुजरती होगी। ये जिन्दगी ये कुछ एक खुशनुमा जीवन जीने के लिए इंसान को न जाने कैसे-कैसे समझौते करने पड़ते हैं।"[13] वैश्विक समाज मुख्यत: पितृसत्तात्मक है। भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' और अरस्तू का 'पोएटिक्स' नेता और चरित्र-चित्रण की बात खुलकर करते हैं। इन विद्वानों के अनुसार नायिका भेद तो मनोरंजन का विषय रहा है। प्रवासी महिला कहानीकारों ने पुरुषीय दुख-दर्द, उत्पीड़न, बेचारगी, उदारत्व, गरिमा, निष्कपटता, संयम का ऐसा चित्रण किया गया है कि सारी की सारी पाठकीय संवेदना उनके हिस्से में आ गई है। पुरुष मनोविज्ञान की यहाँ अनेकानेक परते भी खुलती दिखाई देती है और स्त्री खलनायिका बनी अपने दोगले, विकराल रूप से उनका जीवन दूभर कर रही है।

उषा राजे सक्सेना की 'डैडी' बेइन्तिहा प्यार करने वाले हैफ फादर की कहानी है। इस कहानी में हैफ डैडी और बेटी फ्रेक का स्नेहिल रूप, मानवीय संवेदना और रिश्तों के आदर्शवादी रूप को चित्रित किया गया है। जब वह तीन साल की थी, तब उसकी माँ ने यह शादी की थी। पूरा प्यार-दुलार मिलने के बावजूद नायिका फ्रैक डैडी की नीली आँखों एवं भूरे बालों तथा अपनी काली आँखों और काले वालों के अंतर के कारण उद्वेलित रहती है। यह बाईस वर्षीय फ्रैक माँ की मृत्यु के बाद अपने वायलोजिकल पिता की खोज में स्पेन के लिए चल देती है। स्पेन में सप्ताह भर रूकती है। लेकिन जल्दी ही जान जाती है कि हैफ डैडी का प्यार, विश्वास और सहृदयता ही उसकी पूँजी है। उन्होंने ही आज तक उसकी हर सुरक्षा और सुविधा की चिंता की है। डैडी' कहानी के हैफ को सस्नेह एवं ईमानदार व्यक्तित्व के रूप में उषाराजे सक्सेना ने चित्रित किया हैं, जो पति, पिता और मनुष्य धर्म की आचार संहिता को रचते हुए अपनी अस्वस्थ पत्नी की सेवा हेतु वह अपने सभी आवश्यक कार्यालयी कमकाज को घर पर निपटाता है। डैडी कहानी में एक पिता अपने पत्नी की बेटी अर्थात् अपनी सौतेली पुत्री को एक जिम्मेदार पिता की पालता है उसकी हर जरूरत को ध्यान में रखकर उसे पलकों पर बिठाए रखता है लेकिन उस पुत्री को अपने बायलॉजिकल पिता से मिलने की उत्कंठा होती है। वह अपने पिता का अनादर कभी नहीं चाहती, परन्तु फिर भी वह चाहती है कि उसके जन्म दाता पिता से मिलाकात हो जाए।

"मुझमें एलियेंद्रा के तमाम वंशानुगत गुण विद्यमान हैं। मैं एलियंद्रा की प्रतिबिंब हूं। मुझमें ब्रिटिश नहीं, स्पेनिश रक्त दौड़ रहा है। निश्चय ही मुझे अपने उस पिता से मिलना है जिसने मुझे यह रंग, रूप, मन और शारीरिक बनावट दी है।

पर... उसने तो मुझे देखा भी नहीं है। वह कैसे पहचानेगा मुझे? और यदि उसने मुझसे मिलने से स्पष्ट मना कर दिया तो?' मेरे मन में प्रश्न उठा।

मुझे मां की वर्षों पूर्व की बात फिर स्मरण हुई ... मेरे जन्म-पिता ने मेरा ही नहीं मेरी ममतामयी मां का भी तिरस्कार किया है।

मेरे मन ने मुझसे फिर सवाल किया- क्या मैं अपने उस पिता से मिलने जा रही हूं जो मुझे पहले ही नकार चुका है ?"

'हां हां, मैं ऐसे पिता से मिलने जा रही हूं जिसने मुझे तिरस्कार किया है मुझे नकार दिया है,... मुझे उससे कोई अपेक्षा नहीं है। मुझे उसकी स्वीकृति-अस्वीकृति से कोई मतलब नहीं है।

अब मैं अपने मन में स्पष्ट हो चली थी। एक बार उन्हें देखना मेरा कर्तव्य है... वह मेरे जन्म के कारण है। मेरे जन्मपिता हैं बस इतना ही ..."[14]

कादबरी मेहरा की कहानी 'टैटू' अपराधबोध से ग्रसित पुरुष पीड़ा की कहानी है। जिसमें क्रूर जल्लाद यानि खलनायक को नायकत्व दिया है। लेखिका कहती हैं कि क्रूर धंधा करने वाले सब लोग क्रूर नहीं होते। पैट्रिक मैक्स का पैतृक धंधा जल्लाद का था, लेकिन बॉक्सर पैट्रिक इससे भी आगे बढ़ा। उसने गलत मंशाओं से मारे गए लोगों के शवों को क्रूर एवं अमानवीय ढंग से अंग-भंग करके ठिकाने लगाने का धंधा अपनाया। एक शव के उसे पाँच से दस हजार पाउंड तक मिल जाते थे। उसने अपने शरीर पर भी साँपों, चमगादड़ों, मांस खाते लकड़बग्घों तथा गिद्धों के टैटू बनवा रखे थे। छब्बीस की उम्र में एक बार उसे एक क्रूरता और बलात्कार की शिकार सोलह-अठारह वर्षीय युवती का भी शव ठिकाने लगाना गया। उस शव को देखकर उसका मन चीत्कार उठा क्योंकि यह शव उसकी अपनी बहन का था। इस घटना से प्रभावित होकर उसने यह धंधा छोड़ दिया और सामान्य जीवन जीने लगा। अपने जीवन-यापन के लिए दूर कहीं जाकर घरों का सामान ढोने वाली कंपनी में मजदूरी करने लगा। किंतु एक दिन अपराध जगत के पुराने लोगों ने उसे घेर लिया और अपना बचाव करते-करते उससे हत्या हो गई। पैट्रिक ने स्वयं पुलिस को सूचित किया और सात वर्ष जेल में भी बिताया।

"मैं ऊब चुका था। प्यार एक शक्ति होता है। मुझे बहुत से काम मिल सकते थे। पर जब मैंने इस काम को लात मार दी तो मेरे बॉस को मुझपर यकीन नहीं रहा। मेरी खुशी देखकर वह चौकन्ना हो गया, उसने मुझे मार डालने की धमकी दी। मैं अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर छुप गया। घरों का सामान ढोनेवाली एक कंपनी में मजदूरी मिल गई, मैं सात-आठ साल आराम से रहा। मगर मेरे दुश्मनों ने मुझे ढूँढ़ लिया। एक रात काम पर से घर वापस जा रहा था कि मुझे दो कारों ने कार जैक कर लिया। मैंने कार लॉक कर ली३३उसका साथी छुरा लेकर मुझपर लपका, मगर मैंने वह लोहे की छड़, जो उसके साथी के हाथ में थी, लेकर उसके पेट में घुसेड़ दी। इसके बाद मैंने खुद पुलिस को फोन कर दिया। आत्मरक्षा के कारण मैंने उसे मारा था, अत: मुझे सिर्फ सात साल की कैद हुई।"[15]

जकिया जुबैरी की कहानी संग्रह 'सांकल' की कहानी 'मन की सांकल' अंतर्द्वन्द्व की परिणति संघर्ष में तब्दील होते हुए भयावह परिणामों का वाहक बनती है। माँ और पुत्र की बदलते संबंधों की विषय-वस्तु पर आधारित कहानी प्रवासी माँ सीमा और प्रवास काल के दौरान जन्मे पुत्र समीर के परिवर्तित होते संबंधों को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति प्रदान करती है। निश्चित ही इसके पीछे पाश्चात्य देशों में भोग-विलास पर आधारित संस्कृति है। सीमा अपने पुत्र समीर को बचपन से लेकर युवा होने तक हर माँ की तरह ही पलकों की छाँव में रखकर पालती है। पिता के रौद्र रूप से सदैव ही उसकी रक्षा करती हुई उसके जीवन को सुखमय बनाने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देती है; परंतु पुत्र एक लड़की के लिए उसी माँ की पिटाई कर देता है। निश्चित ही उसका एक कृत्य पाश्चात्य जीवन शैली में व्याप्त भोग और विलास की प्रवृत्ति का ही परिणाम है। इसे वैश्विक धरातल पर पुरुष की वर्चस्वादी मानसिकता के परिणाम के रूप में भी रेखांकित किया जा सकता है।

ब्रिटेन में नस्लभेद एक बहुत बड़ी समस्या है, जिससे पार पाना आज भी बहुत बड़ी चुनौती है। नस्लभेद के चलते वहां रहने वाले भारतीयों को कई बार संकटों का सामना करना पड़ता है। ब्रिटेन की प्रवासी स्त्री कथाकारों के कथा साहित्य के माध्यम से ब्रिटेन में रहने वाले भारतीय के साथ हो रहे अन्याय के विरोध में आवाज उठनी शुरू हो गयी। उषाराजे सक्सेना ने भी इस बात की प्रतिक्रिया दी है। उनकी कहानियाँ 'मेरा अपराध क्या है', 'प्रवास में', 'जल गया सर्वस्व' आदि इस बात का प्रमाण हैं। इन हिन्दी लेखिकाओं ने भारत के प्रति अपनी नोस्टेल्जिक भावनाएँ अभिव्यक्त की हैं साथ ही ब्रिटेन में हो रहे रंग-भेद को भी आड़े हाथों लिया है। उषा वर्मा की 'रौनी' कहानी इस बात का पुख्ता प्रमाण है। उषा वर्मा की 'रौनी' में अनाथ नीग्रो बच्चे की दुरावस्था और ब्रिटेन का नसलवाद दिखाता है। सात वर्षीय नीग्रो रोनी की माँ जेल में थी और पिता का कुछ पता नहीं था। उसका जीवन सोशल वर्कर और फॉस्टर पेरेंटस के बीच भटक रहा था। उसे 'ब्लडी नीग्रो' और 'सारे काले चोर होते हैं' आदि अभद्र शब्दों से संबोधित किया जाता था। विद्यार्थी और अध्यापक दोनों उसे अपमानित करते, पीटते तथा अमानवीय व्यवहार करते थे। जब मासूम रौनी ब्रिटेन में इस भेदभाव का शिकार होता है तो पाठक भी यह महसूस कर भीतर तक दहल जाता है। रौनी के मानस पटल पर यह प्रश्न कई दिनों तक घिरा रहता है। और वह सोचता कि आखिर उसका दोष क्या था, जिसकी सजा वह और उसकी मां भोग रहे हैं। रौनी अपनी माता से अपने साथ होने वाले अन्याय के बारे में बताता है, जो नस्लभेद का उदाहरण है:

"ममा ये सभी लड़के मुझे चारों तरफ से घेरकर खड़े हो जाते हैं। बहुत डर लगता है। ममा, मेरे पैर कापने लगते हैं मुझे। मैं तो भाग भी नहीं पाता, ममा! रहीम कभी मेरे बालों को खींचता है, मेरी बाजू को दबाकर नाखून से खरोंच लगा देता है। क्यों ममा, मैं तुम्हारे पास रहूंगा तो कोई मुझे नहीं सताएगा? मैं काला हूँ तो क्या, मैं इन सबसे तेज दौड़ता हूं ये मेरे साथ रेस करें, मैं आगे निकलकर दिखा न दूं तो कहें। मेरा रंग काला है न। गॉड मुझे नहीं-नहीं, मैं कल मिसेज विल्सन का पाउडर लगाकर आऊंगा। सूब सफेद, तब मि. ह्यूबर्ट शायद गुस्सा न हों। मि. ह्यूबर्ट तो पेंसिल छीनकर मेरी उँगलियों को मरोड़ देते हैं चोट लगती है, ममा। तुमको कैसे बताऊँ? मैं जो भी लिखता हूं मि. ह्यूबर्ट उसे फाड़कर पैरों से फेंक देते हैं। कल मैंने धीरे से कहा था, 'फूला' मि. ह्यूबर्ट ने गुस्से में मेरे बाल खींच लिये मैंने भी अपने बाल नोच लिए थे। ममा यहाँ, मेरा मन नहीं लगता। मैं क्या करू?"[16]

लिव-इन-रिलेशनशिप को महानगर के बदलते मूल्य के रूप में देखा जा सकता है। कहा जाता हैं कि शादियाँ स्वर्ग में तय होती हैं और पृथ्वी पर निभाई जाती हैं, जबकि आज माना जाता है कि तलाक होने से अच्छा लिव-इन में रहना कहीं बेहतर है। 'लिव-इन संबंध' आज का ज्वलंत विषय है। जिसे

आधुनिकता, कंपनीकरण, उन्मुक्त वातावरण, पाश्चात्य जीवन शैली, प्रवास, उत्तरदायित्वहीनता और बंधन-विद्रोह ने जन्म दिया है। 'लिव-इन' यानि बिना परिणय के प्रणय, आपसी सहमति से युवक-युवती का पति-पत्नी की तरह रहना, परिवार जैसी सामाजिक संस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। बच्चों की सुरक्षा और संरक्षण के रास्ते में आड़े आता है। लिव-इन क्यों, मात्र यौनाकांक्षाओं के लिए, शादी से पहले एक-दूसरे को परखने के लिए या टाइम पास के लिए? 'लिव-इन' का मैत्री भाव, उन्मुक्ति भाव, यौन क्षुधा शमन आज के युगल को काफी उपयोगी और आरामदेह लगता है। 'लिव-इन संबंध' पिछले कुछ दशकों से उभरा अत्याधुनिक लाइफ-स्टाइल से जुड़ा एक विवादास्पद, आयातित और मुख्यत: महानगरीय मुद्दा है, जिसके मूल में बदलते सामाजिक मूल्य, सुरक्षा, अर्थ, सहवास, जीवन-साथी के लिए जांच-परख उपयोगिता आदि देखे जा सकते हैं। अंग्रेजी में इसके लिए बवींइपजंजपवद शब्द प्रयुक्त होता है। विक्टोरियन समय में जब कोई भी वयस्क लड़का-लड़की यदि लंबे समय तक साथ रहते थे तो इसे भले ही अपराध या पाप माना जाता रहा हो, लेकिन आज अमेरिका, ब्रिटेन, डेनमार्क, ऑस्ट्रेलिया, नॉर्वे, स्वीडन, स्कॉटलैंड जैसे देशों में यह आम बात है। इस प्रकार अधिकांश देशों में विभिन्न शर्तों पर लिव-इन संस्कृति से प्रभावित होकर प्रवासी कहानियाँ भी जन्म ले रही हैं।

ब्रिटेन में उषाराजे सक्सेना की 'क्लिक' और 'तान्या दीवान' बदलती सोच और बदलते जमाने की कहानियाँ है। यहाँ पुरानी और नई पीढ़ी दोनों लिव-इन की समर्थक है। इस लाइफ स्टाइल में शादी जैसी संस्था के लिए कोई जगह नहीं है। कहानी 'तान्या दीवान' में गायनेकोलोजिस्ट माँ कैरियर सजग बेटी चाहती है। बेटी के अस्थाई सम्बन्धों से उसे कोई परेशानी नहीं है। वह ऐड्रियन और पीटर के साथ होली डे मना सकती है, ऐशली के साथ 'लिव-इन' में रह सकती है, देश-विदेश में यात्राएं कर सकती है, किंतु बस इतना ही कहा जाता है कि इन लोगों के साथ सिरियस मत होना। वह लोगों को राय दे सकती है, ले नहीं सकती। पति या बच्चों की मुसीबत उसे नहीं चाहिए। अपनी स्वतन्त्रता उसे बहुत प्रिय है। अत्याधुनिक पीढ़ी के जीवन शैली में 'लिव-इन' उसकी सुविधा और जरूरत दोनों है। लिव-इन ने पूरे विश्व के मूल्यों को एक नया नजरिया दिया है। कहानी 'मि. कमिटमेंट' की नायिका लिव-इन की समर्थक है, लेकिन यह उसका गंतव्य नहीं है। ईरान, इराक युद्ध के कारण पितृविहीन सोलह वर्षीय मुनीरा को लंदन में आकर विस्थापित के रूप में रहना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर चौदह वर्षीय बुरहान को लीबिया में फतवे के कारण पलायन करना पड़ता है। मुनीरा इक्कीसवीं सदी की स्वतंत्र, मुखर विचार की एवं साहसी लड़की है। वह अपने बूते पर शहर की प्रतिष्ठित कंपनी की मैनेजिंग डायरेक्टर बन कर मोटी रकम कमा रही है। मुनीरा और बुरहान का पिछले पाँच सालों से प्रेम प्रसंग चल रहा है। समाज और मित्र में लोग उन्हें कपल की तरह ही जानते हैं। दोनों के इस लगाव के मूल में दुख, सहज विश्वास, स्नेह और अपनापन है। मुनीरा हर दिन को सेलिब्रेट करने का बहाना ढूंढ लिया करती है। बुरहान के विवाह से इंकार करने पर उसे अपने जीवन के पाँच वर्ष उस पर इन्वेस्ट करने का दुख होता है और वह नया जीवन साथी ढूँढने के लिए भी तैयार है। वह प्रतीक्षा नहीं कर सकती है। लेकिन अलगाव के दर से बुरहान उसे तुरंत बीयर केन का छल्ला पहनाकर अपनी लिव-इन रिश्ते को एक नया अंजाम देता है।

कुछ कहानियों में लिव-इन के मूल में अर्थतंत्र ओए जिजीविषा को भी पाया गया है, जिसे उषा राजे सक्सेना की कहानी 'वॉकिंग पार्टनर' में देखा जा सकता है। इस कहानी की पात्र रिफ्त अर्से से लिव-इन में रह रही है। "घर के सारे खर्च फिफ्टी-फिफ्टी, आना जाना साथ-साथ फिर भी दोनों आश्वस्त हैं कि जब मन होगा बिना कड़वाहट के अलग-अलग रास्ता बना लेंगे।" शादी यहाँ ओल्ड ऐज कान्सैप्ट है। किन्तु स्त्री जानती है कि लिव इन में वह सुरक्षा नहीं, जो शादी में है।

ब्रिटेन से अचला शर्मा की कहानी 'दिल में एक कसबा है'। इस कहानी में लिव-इन और परिवार की ध्वस्त होती स्थिति को दर्शाया गया है। कहानी की पात्र नेहा के पिता शोमोन बंगाली ब्राह्मण हैं और माँ प्रभा मेरठ के बनिया परिवार से ताल्लुक रखती हैं, जबकि नेहा ब्रिटिश इंडियन है। उसका जन्म ब्रिटेन में हुआ है, ऑक्सफोर्ड से पढ़ाई पूरी होने के बाद वह एक बड़े बैंक में काम कर रही है। नेहा अपने बॉयफ्रेंड मार्टिन के साथ में लिव-इन में रहती है। पश्चिमी परिवेश में ढली बेटी नेहा की चिंता उसे हमेशा रहती है। जिसे इस उद्धरण से देखा जा सकता है- "जब वह पढ़ती थी तो माँ को चिंता थी कि कहीं बॉयफ्रेंड न बनाने ले और आज चिंता है कि वह मार्टिन के साथ लिव-इन में क्यों रह रही है। गर्भ ठहर जाने पर भी वे लोग शादी क्यों नहीं करते" परंतु पश्चिमी परिवेश में पली नेहा का मानना है कि उसकी माँ की स्मॉल टाउन मानसिकता को देखकर उससे कोई लड़का शादी करने के लिए तैयार नहीं होगा।"[17] दिव्या माथुर की कहानी 'तमन्ना' में पश्चिमी परिवेश में रहने वाले युगल के संबंध को लेकर चिंता व्यक्त की गई है। भारत में शादी से पहले गर्भ ठहरना शर्म का विषय है, जो आत्महत्या का भी कारण बनता है जबकि पश्चिम के युवा गर्भावस्था के साथ ही शादी कर लेते हैं। तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए दिव्या माथुर कहती हैं कि इस अवस्था में भी ब्रिटेन में दाम्पत्य की मूल्यवत्ता को सम्मान से देखा जाता है। ब्रिटेन की प्रवासी लेखिकाओं ने समलैंगिकता को अपनी कहानी का केंद्रीय विषय बनाया हैं। लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में समलैंगिकों के साथ असामान्य और आपराधिक व्यवहार का भी अंकन किया है। उषा वर्मा की कहानी 'रौनी' में ब्रिटेन के अनाथ बच्चे रौनी की कहानी है। सात वर्षीय नीग्रो रौनी की माँ जेल में थी और पिता का कुछ पता नहीं है। जिस कारण अध्यापक हयूबर्ट उसे अपनी वासना का शिकार बना लेता है। स्कूल में उसे विद्यार्थी और अध्यापक दोनों अपमानित करते है। उसे 'ब्लडी निगर' और 'सारे काले चोर होते हैं' की संज्ञा से पुकारा जाता है। स्कूल में प्रोवेशन पर आई रीमा यह सब देखकर रौनी की सहायता करती है तथा रौनी के प्रति मिस्टर हयूबर्ट के अमानवीय व्यवहार का भी विरोध करती है। अत: ब्रिटेन की प्रवासी स्त्री कथाकारों द्वारा प्रवासी जीवन के सामाजिक यथार्थ और अनुभवों का लेखन प्रवासी कथा साहित्य में किया हैं जिससे ब्रिटेन का सामाजिक परिदृश्य स्पष्ट होता है। वर्तमान समय में ब्रिटेन के समाज में व्याप्त समलैंगिगता, लिव-इन- रिलेशनशिप, वैश्या जीवन तथा जीवन के शारीरिक जीवन संघर्षों आदि नवीन विषयों का अध्ययन ब्रिटेन की प्रवासी स्त्री के कथा साहित्य के माध्यम से किया गया। ब्रिटेन के समाज में प्रवासी जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियों की ही नहीं अपितु पुरुषों के जीवन में पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावो की चर्चा भी इनके कथा साहित्य में प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत हुई है।

संदर्भ

1. अचला शर्मा,बेघर,प्रतिनिधि आप्रवासी हिन्दी कहानियाँ, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2009,पृ.सं. 370
2. दिव्या माथुर, ब्लैक मेल, मेड इन इंडिया, हिन्दी बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण 2014,पृ.सं. 184
3. उषा वर्मा, कारावास, विद्या विहार नई दिल्ली, संस्करण 2007,पृ.सं. 110
4. दिव्या माथुर, शाम भर बातें,वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015,पृं 94

5. उषाराजे सक्सेना, प्रवास में, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली , संस्करण 2004,पृ.सं. 128
6. शरद सिंह, प्रवासी हिंदी साहित्य विविध आयाम (रेनू यादव का आलेख: प्रवासी कथाओं में स्त्री विमर्श) साहित्य संचय, दिल्ली संस्करण 2017,पृ.सं. 37
7. नीना पॉल, रिहाई (उपन्यास), सुनील साहित्य सदन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018,पृ.सं. 91
8. दिव्या माथुर, हिंदी /स्वर्ग.इन,सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, संस्करण 2013,पृष्ठ सं. 361
9. जय वर्मा, सात कदम, अयन प्रकाशन , दिल्ली, संस्करण 2017,पृ.सं. 51-52
10. संपा.तेजेन्द्र शर्मा देशांतर प्रवासी भारतीयों की कहानियां, हिन्दी अकादमी, दिल्ली संस्करण 2013
11. उषा राजे सक्सेना, दायरे, प्रवास में, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2004, पृ.सं.84
12. उषा राजे सक्सेना, वजूद, वॉकिंग पार्टनर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2003, पृ.सं 20
13. उषा राजे सक्सेना, वाकिंग पार्टनर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2003, पृ.सं. 52-53
14. उषा राजे सक्सेना, डैडी, वह रात और अन्य कहानियां, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2007,पृ.सं. 49-50
15. कादम्बरी मेहरा, टैटू, चिर पराई, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2017, पृ.सं. 31
16. उषा वर्मा, रौनी, सांझी कथा यात्रा, प्रतिभा प्रतिष्ठान, संस्करण 2003, पृ.सं.23
17. डॉ.मधुसंधु, वैश्विक संवेदना संसार और प्रवासी महिला कहानीकार एक अध्ययन, अमन प्रकाशन, कानपुर उत्तर प्रदेश, संस्करण 2019, पृ. सं.-28

पंचायतीराज व्यवस्था का आर्थिक विकास में मूल्यांकन

डॉ० प्रमोद कुमार यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी, मध्यप्रदेश

शोध सार

पंचायतीराज व्यवस्था का मूलभूत लक्ष्य ग्रामीण विकास को गति प्रदान कर एक सुखद भारत का निर्माण करना है। पंचायतीराज को विकास का संवाहक बनाने के बजाय विकास को पंचायतीराज का अभिकर्ता (एजेंट) मान लिया है।

ब्रिटिश शासन की विरासत के रूप में मिली भारतीय प्रशासन मूलतः एक नियामकीय प्रशासन था जो कि राजस्व एकत्रण, शांति, कानून एवं व्यवस्था के निर्धारण सहित स्वतंत्रता सेनानियों एवं क्रांतिकारियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने का कार्य करता था। स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक रूप से संतुलित विकास करने, आम व्यक्ति का जीवन सुधारने तथा समता, न्याय एवं भाई-चारे के लक्ष्य पाने हेतु ऐसे लोक प्रशासन की जरूरत थी जो कि संवेदनशील, विशेषज्ञतायुक्त तथा जनोन्मुख हो। इसी संदर्भ में भारतीय प्रशासन को विकास प्रशासन के रूप स्वरूप में ढाला गया।[2] अक्टूबर 1952 से शुरू हुआ सामुदायिक विकास कार्यक्रम, विकास खण्डों का निर्माण तथा विकास अधिकारी पद का सृजन इसी दिशा में ठोस कदम थे। कालांतर में योजना आयोग द्वारा समग्र राष्ट्रीय विकास के अनेक कार्यक्रम योजनाएँ तथा परियोजनाएँ निर्मित एवं क्रियान्वित की गई तथा उसी के अनुरूप प्रशासनिक संरचनाएँ (जैसे- जिला ग्रामीण विकास अभिकरण) निर्मित करनी पड़ी। स्वभाविक रूप से सभी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, ऊर्जा, गरीबी, उन्मूलन, ग्राम विकास, संचार तथा भारी उद्योग को प्राथमिकता दी गई तथा पुलिस प्रशासन विषय गौण बना रहा। चीन तथा पाकिस्तान से हुए युद्धों के कारण रक्षा क्षेत्र में पर्याप्त राशि व्यय की गई क्योंकि सुदृढ़ एवं सुरक्षित सीमाओं के बिना राष्ट्रीय विकास अधूरा है। आज स्थिति यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में समग्र विकास हेतु लगभग 250 राष्ट्रीय कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं जिनका मुख्य उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, सामाजिक कल्याण तथा आधारभूत संरचना का विकास करना है।

मुख्य बिन्दु- आर्थिक विकास, सुप्रसिद्ध, अर्थषास्त्र, गतिविधि, कानूनी।

प्रस्तावना

समस्त प्रकार की शासन व्यवस्थाओं तथा प्रशासनिक प्रणालियों में मानव विकास को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है। आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों का दर्शन, चिंतन तथा प्रयास, पूर्णतः मानव संसाधन विकास को समर्पित है क्योंकि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के बिना राज्य के विकास या सरकार के अस्तित्व की कल्पना करना व्यर्थ है।

जहाँ सामुदायिक स्तर पर मानव संसाधन को विकसित करने का प्रश्न है. उसमें चिकित्सा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, शिक्षा, आवास, रोजगार, शुद्ध-पेयजल, परिवहन, समता, न्याय, मानवाधिकार, सुरक्षा सहित जीवन की सभी मूलभूत आवश्यकताओं की सुनिश्चितता सम्मिलित है।

आधुनिक लोक प्रशासन जो कि प्रशासकीय राज्य के रूप में कार्य कर रहा है, का मूल उद्देश्य मानव संसाधन विकास ही है। समाज कल्याण के रूप में दी जाने वाली सेवाएं जो कि वृद्धों, महिलाओं, बच्चों, असहायों, निःशक्तजनों, निर्धन, श्रमिकों, पिछड़े वर्गों तथा अन्य भेदभावग्रस्त व्यक्तियों से संबंधित है, का प्रत्यक्ष प्रभाव किसी भी समाज के समग्र मानव संसाधन सूचकांक पर पड़ता है। हाल ही के वर्षों में लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करने के लिए किए गए लैंगिक संवेदनशीलता प्रयासों को भी मानव संसाधन विकास के मूलभूत आधारों में गिना जाता है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट की तर्ज पर भारत की प्रथम मानव विकास रिपोर्ट, योजना आयोग द्वारा 23 अप्रैल 2002 को जारी की गयी, जिसे भारतीय लोकतंत्र का महत्वपूर्ण दस्तावेज बताते हुए कहा जा रहा है कि इसके आधार पर राज्यों की योजना का आकार निश्चित किया जा सकता है। रिपोर्ट के अनुसार देश में उदारीकरण के दस वर्षों (1991-2001) में समग्र मानव विकास सूचकांक में बेहतर सुधार हुआ है। सन् 1983-93 के दौरान मानव विकास सूचकांक में 2.6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर बनी हुई थी जबकि सन् 1993-94 से सन् 2000-01 की अवधि में यह दर 3 प्रतिशत से भी अधिक रही। मानव संसाधन के विकास के लक्ष्य जिन्हें संयुक्त राष्ट्र ने सन् 2000 में सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य (मिलेनियम डिवेलपमेंट गोल्स) के नाम से परिभाषित किया है- के अनुसार सन् 2015 तक विष्व से निर्धनता, भुखमरी, निरक्षरता तथा स्वास्थ्य मानकों में उल्लेखनीय सुधार लाना है। इस हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतीराज संस्थाएँ निर्णायक भूमिका निर्वाहित करेगी।

सामुदायिक विकास कार्यों को गति एवं सफलता प्रदान करने के लिए स्थानीय जनसमूह का समर्थन तथा सहयोग नितान्त आवश्यक है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर अद्यतन निर्मित सभी कार्यक्रमों में जनसहभागिता बढ़ाने की ओर ध्यान देने का आग्रह किया जा रहा है। किन्तु वास्तविकता यह है कि शासन के कार्यों में जनता की भागीदारी लगभग नगण्य रहती है और परिणामस्वरूप वह कार्यक्रम पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर पाता है। परिवार नियोजन की अवधारणा

का प्रसार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के प्रति चेतना, बाल-विवाह की रोकथाम, दहेज पर प्रतिबंध, भ्रष्टाचार नियंत्रण तथा अन्य बहुत से सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में जनता की सहभागिता व्यापक रूप से सुनिश्चित न होने के कारण ही इन कार्यक्रमों को वांछित सफलता प्राप्त नहीं हुई है, राजनीतिक तथा प्रशासनिक कारणों से जनता तथा शासन के मध्य एक खाई जुड़ी रहती है एक ओर शासन अपने कार्यों में गोपनीयता, कठोरता तथा संकीर्णता की प्रवृत्तियाँ अपनाता है वहीं दूसरी ओर जन साधारण अपने को स्वतंत्र देश का नागरिक समझते हुए प्रत्येक कल्याणकारी कार्य का दायित्व केवल सरकार के कंधों पर रखना चाहता है। शासन सत्ता में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना पंचायतीराज संस्थाओं का एक उद्देश्य है।

ग्रामीण विकास के अधिसंख्य कार्यक्रमों में सहभागिता पर बल दिया जाता है। यह जनसहभागिता श्रम, सामग्री या धन के रूप में हो सकती है। आज यह प्रश्न प्रासंगिक हो गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यों हेतु जन सहभागिता की शर्त लगाई जाती है, जबकि शहरी क्षेत्रों में सड़क, पार्क, पेयजल, बिजली, परिवहन, शिक्षा तथा स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी मूलभूत सेवाओं का विस्तार बिना किसी नागरिक सहभागिता के सरकार द्वारा स्वत: ही कर दिया जाता है। सरकारी स्तर पर भेदभाव ग्रामीण जनों के गले नहीं उतर रहा है। बहुत से विश्लेषकों का यह मानना है कि गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों के लिए सैकड़ों रियायती योजनाएँ देश में प्रवर्तित है। बहुत से परिश्रमी निर्धन व्यक्तियों ने इनका लाभ उठाकर जीवन सवारा भी है लेकिन बहुत से गरीब व्यक्ति ऐसे भी है, जिन्होंने बहुत बार सरकारी अनुदान एवं रियायतों का लाभ तो उठाया है किन्तु ऋणों की अदायगी नहीं की है।

जनसंख्या वृद्धि एवं गरीबी विकास में अवरोधक है। तथा सरकार गरीबी के निवारण हेतु किस सीमा तक सहयोग करें- भारत गाँवों का देश है आजादी के इतने वर्षों के बाद भी गाँव एवं गाँव के लोगों में कोई खास बदलाव नहीं आया है। ग्रामीण क्षेत्रों की कई विकट समस्याएँ हैं। इनमें प्रमुख समस्या है लोगों की गरीबी। लोगों के पास पर्याप्त रोजगार नहीं है। अधिकांश जनता भूमिहीन है अथवा बहुत ही कम भूमि का मलिकाना हक है। खेत की उपज से दोनों समय पेट भरना भी मुश्किल है। लोगों को दैनिक रोजगार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। आजादी के बाद प्रजातांत्रिक सरकारों का प्रमुख लक्ष्य आर्थिक समानता एवं सामाजिक न्याय दिलाना रहा है। इसके लिए गाँवों में कल्याणकारी योजनाएँ व परियोजनाएँ लागू की गई।

वास्तव में तो गरीब आज भी गरीब ही है, उनके लिए दो जून की रोजी-रोटी का जुगाड़ करना भी कठिन है। गाँवों में साधन एवं पूंजी दोनों का अभाव है, जिससे प्रति व्यक्ति आय-बचत एवं विनियोग नाम मात्र का ही है। अत: गरीबी का दुष्चक्र उनके जीवन में सदा ही चलता रहता है। आज भी हमारे देश की एक तिहाई आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। अब तक विकास के लिए लागू की गई तमाम परियोजनाएँ अनेक खामियों के कारण प्रभावहीन रही है जिससे आज भी अशिक्षा, असमानता व आधारभूत सुविधाओं का अभाव बना हुआ है। पूर्वांचल में पंचायतीराज व्यवस्था द्वारा गरीबी दूर करने निम्न व्यवस्था की गयी।

पंचायत में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों की सूची का निरीक्षण-परीक्षण किया जाए, सूची के बारे में लोगों की राय पूछी जाए तो अधिकांश मामलों में अप्राप्त लोगों के नाम ही मिलेंगे। व्यक्तिगत लाभ की अधिकांश योजनाएँ बी.पी.एल. परिवारों के लिए ही होती है, परन्तु जब उस सूची में पात्र लोगों के नाम ही नहीं होगें तो सही व्यक्ति लाभान्वित कैसे हो पाएंगे? ऐसे में प्रत्येक पंचायत का यह दायित्व है कि बी.पी.एल. की सूची बनाने में पूरी सावधानी रखें। सूची में गरीबी के क्रम से नाम लिखें। सबसे अधिक गरीब व्यक्ति का नाम पहले लिखें। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए सूची तैयार की जाए। जब सूची में से किसी व्यक्ति की पात्रता समाप्त हो जाए तो तुरन्त उसका नाम हटा दिया जाए। बी.पी.एल. सूची पंचायत में हर समय उपलब्ध रहे। जिसके लिए जो योजना उपर्युक्त हो उस योजना के लिए उसी व्यक्ति के नाम पर विचार किया जाए।

स्थानीय स्तर पर सभी विकास कार्यों को किसी समिति के माध्यम से ही किया जाए। ऐसी समितियों में जानकार एवं रूचि रखने वाले लोगों को ही स्थान दिया जाए। कार्य पूरा हो जाने के बाद समस्त लेखा-जोखा ग्राम सभा में रखा जाए। कार्य का भौतिक सत्यापन किया जाए। पूरी जांच-पड़ताल के बाद ही पैसा चुकाया जाए। जहाँ तक सम्भव हो लोगों के सामने ही चुकता किया जाए। कार्य पूरा होने पर ही यू.सी. जारी किया जाए। योजना में स्वीकृत राशि का पूरा एवं सही उपयोग हो। भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण करने के लिए समस्त कार्यों में पारदर्शिता रखना आवश्यक है। सामाजिक अंकेक्षण से सभी कार्यों का सत्यापन होगा। पैसे का सदुपयोग होगा जिससे गरीबी दूर करने में मदद मिलेगी।

हर गाँव में बहुत से व्यक्ति कार्य करने में सक्षम हैं। वे कार्य करना भी चाहते हैं, लेकिन फिर भी उन्हें काम नहीं मिल पाता है। वे बेरोजगार हैं और इसी वजह से गरीब हैं। पंचायतें गरीबी उन्मूलन की दिशा में ऐसे स्वरोजगारों का विकास करें जो स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अब तक करोड़ों रुपये रोजगार सृजन पर व्यय हो जाने के बाद भी रोजगार की समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

गाँवों के विकास की गति तेज करने के लिए आधारभूत सुविधाओं का पहले विकास किया जाए। गाँवों में पक्की सड़क, विद्युत, संचार, यातायात, पेयजल, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुविधाएँ आदि को प्राथमिकता के अनुसार दीर्घकालीन योजना तैयार की जानी चाहिए। चुनावों के कारण जनप्रतिनिधि तो बदलते रहते हैं परन्तु ग्राम सभा तो वही होती है। इसलिए विकास के कार्य मूल योजना के अनुरूप होने चाहिए। प्राथमिकता निर्धारण का काम ग्रामसभा द्वारा किया जाए जिससे गाँव का आधारभूत ढाँचा सही तरह से विकसित होगा। सही ढाँचे के आधार पर ही लोगों की गरीबी दूर करने के कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाए जा सकेंगे।

योजना के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार बेईमानी से जन-सामान्य के दिल और दिमाग में योजनाओं के प्रति अनास्था और अविश्वास पैदा हो जाता है। पंचायत के जनप्रतिनिधि भेदभाव, परिवारवाद, पार्टीबाजी से ऊपर उठकर ही काम को अंजाम दें। ग्रामीण विकास के समस्त कार्यक्रमों को उत्तरदायित्व एवं जन सहभागिता द्वारा सम्पन्न किया जाए। योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन में महिलाओं की सहभागिता को भूलना नहीं चाहिए। जात-पात, ऊँच-नीच, भेद-भाव रखने से कोई भी योजना सफलतापूर्वक पूरी नहीं की जा सकती है।

वार्डसभा, ग्रामसभा, पंचायत एवं उसकी विभिन्न समितियाँ अपनी पूरी क्षमता से तभी काम कर सकेगी जब पंचायत के समस्त लोगों की क्षमताओं का विकास किया जाए। प्रत्येक संस्था में कार्य करने के लिए आवश्यक नेतृत्व क्षमता का विकास करना जरूरी है। लोगों को हर सम्भव तरीकों से स्वयं की जानकारियों को बढ़ाना चाहिए, तभी सामाजिक, आर्थिक विकास सम्भव होगा और लोगों की गरीबी दूर हो सकेगी। हर उम्र के व्यक्तियों के लिए उचित शिक्षा

व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाना जरूरी है। किसी भी प्रकार के रोजगार, उद्योग, खेती-बाड़ी के लिए तकनीकि प्रशिक्षण आवश्यक है, तभी मानव क्षमताओं का विकास होगा।

हम कह सकते हैं कि हमें इस बात पर चिन्तन करना चाहिए यदि स्वार्थ में पड़ कर कार्य किया जाये तो हमें उसका डटकर विरोध करना चाहिए। यदि पंचायतीराज व्यवस्था के अनुसार आर्थिक विकास करना है तो भ्रष्टाचार तथा बेईमानी हटाकर हम प्रत्येक ग्रामवासियों को शिक्षित करके उसके अधिकारों के प्रति जागरूक कर दें। ग्रामों में आर्थिक सहायता बिना विलम्ब के अड़चन के प्रदान की जाये। ताकि लघुकुटीर उद्योग संचालित हो सकें। हमें तन, मन, धन से शिक्षित लोगों को ही ऐसा कदम उठाना चाहिए ताकि हमारे ग्रामीण भी अमन चौन की जिन्दगी बिता सके, पूर्वांचल का भी विकास हो जाए।

पंचायतीराज व्यवस्था द्वारा आर्थिक विकास की गति में वृद्धि तो हुई है किन्तु जितनी वृद्धि होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई, किन्तु कुछ हद तक सफल रही है जैसे- भारत निर्माण योजना का सफल कार्यान्वयन, मनरेगा, गांवों में आधारभूत संरचना का विकास, स्वास्थ्य सुविधा, गरीबी में कमी, शिक्षा के स्तर में वृद्धि इत्यादि योजना के कार्यान्वयन में पंचायती राज व्यवस्था पूर्वांचल में कुछ हद तक सफल रही है। गांवों में सड़क, खड़ंजा, आवास, शौचालय, हाट, मेले इत्यादि के मामले में पंचायती व्यवस्था सफल रही है।

कुछ क्षेत्रों में असफल भी रही जैसे- ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त रोजगार न दिला पाना, सही व्यक्ति को योजनाओं का लाभ न मिल पाना, भ्रष्ट अफसरों एवं प्रधानों पर अंकुश न लगा पाना इत्यादि पंचायतीराज व्यवस्था की कमियों को दर्शाता है।

इस प्रकार अगर हम पंचायतीराज व्यवस्था का समग्र मूल्यांकन करने पर यह अपने उद्देश्य में सफल रही है और आगे और सफल होगी। इस प्रकार यह व्यक्त किया जा सकता है कि शोधकर्ता द्वारा आर्थिक विकास एवं पंचायतीराज के बीच सम्बन्धों के कार्यान्वयन में आने वाली जिन कमियों की जानकारी प्राप्त की गयी है उनको दूर करने का प्रयास विभिन्न स्तरों पर किया जायेगा एवं आने वाले समय में इन बाधाओं को दूर करने सम्बन्धी शोधकर्ता के सुझावों पर ध्यान दिया जायेगा जिससे योजना का सफल कार्यान्वयन सुनिश्चित हो सकेगा और देश के आर्थिक विकास में वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को मिल सकेगा।

सन्दर्भ सूची

1. यादव, धर्मेन्द्र सिंह- पंचायतीराज एवं ग्रामीण विकास, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006
2. मिश्रा, अनिल दत्त पंचायतीराज (गांधीयन प्रासपेक्टिव), मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002
3. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार वित्त मंत्रालय, आर्थिक प्रभाग, नई दिल्ली, 2006-2007
4. पंचायतीराज एक झलक, भारत में पंचायतीराज संस्थाओं का स्तर, भारत सरकार, कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग प्रशासनिक आसूचना अनुभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली, 1990
5. गौर, पी.पी. मराठा, आर.के. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और ग्रामीण विकास, आदित्य पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 2002
6. शर्मा, शकुन्तला- ग्रासरुट पॉलिटिक्स एण्ड पंचायती राज दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
7. राठौर, मधु- पंचायतीराज और महिला विकास, अविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर, 1996
8. परमार, संदीप- ग्राम्य विकास एवं ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमान, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996
9. सिंह, बामेष्वर- भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001

गांधी का पर्यावरणीय नैतिक दर्शनः जलवायु संकट के संदर्भ में एक अध्ययन

एन राजेन्द्र सिंह

शोधार्थी, सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय अलवर

डॉ. सुचित्रा डागर

शोध निदेशक, सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग लॉर्ड्स विश्वविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

21वीं सदी में मानव सभ्यता जिस सबसे बड़े वैश्विक संकट का सामना कर रही है, वह है जलवायु परिवर्तन। वर्तमान जलवायु संकट केवल वैज्ञानिक या तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि यह गहरे नैतिक, आर्थिक और सभ्यतागत संकट का परिणाम है। बढ़ता तापमान, ग्लेशियरों का पिघलना, असामान्य वर्षा, जैव विविधता का ह्रास और पर्यावरणीय असंतुलन मानव अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा बन चुके हैं। इस संकट के समाधान के लिए केवल तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं अपितु इसके लिए नैतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण की भी आवश्यकता है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी का पर्यावरणीय नैतिक दर्शन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। गांधीजी ने अपने जीवन और विचारों में प्रकृति के साथ संतुलित संबन्धों पर बल दिया। गांधीजी के सादगी, संयम, अपरिग्रह, अस्तेय, न्यासिता, अहिंसा, ग्राम स्वराज आदि से संबन्धित विचारों में पर्यावरणीय नैतिकता के बीज भी निहित हैं। गांधी के विचारों में पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदनशीलता और चिंता निहित है जो आधुनिक पर्यावरणीय संकट के समाधान के लिए एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्दः गांधी, पर्यावरणीय नैतिकता, जलवायु संकट, अहिंसा, अपरिग्रह, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप, ग्राम स्वराज।

प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा संकट जलवायु परिवर्तन है। यह संकट तापमान वृद्धि, समुद्र स्तर बढ़ने, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, जैव विविधता के क्षरण, खाद्य असुरक्षा और जल संकट के रूप में सामने आ रहा है। IPCC की छठी आकलन रिपोर्ट का निष्कर्ष है कि मानव गतिविधियों से उत्पन्न ग्रीनहाउस गैसों ने वैश्विक तापवृद्धि को जन्म दिया है और इसके प्रभाव व्यापक तथा गहरे हैं। जलवायु संकट का मूल कारण केवल कार्बन उत्सर्जन नहीं है; उसके पीछे एक व्यापक सभ्यतागत मानसिकता काम करती है असीमित उपभोग, प्रकृति को संसाधन भंडार मानना, आर्थिक वृद्धि को अंतिम मूल्य समझना और मनुष्य को पृथ्वी का केंद्र मानना। गांधी का पर्यावरणीय दर्शन इसी मानसिकता को चुनौती देता है। गांधीजी ने आधुनिक पश्चिमी सभ्यता को ऐसी व्यवस्था माना जो मनुष्य की इच्छाओं को अनंत बनाती है और जीवन को नैतिक अनुशासन से अलग कर देती है। गांधी का उद्देश्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था; वे मनुष्य, समाज, प्रकृति और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन स्थापित करना चाहते थे। अतः जलवायु संकट के संदर्भ में गांधी की प्रासंगिकता केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि भविष्य दर्शी है।

शोध का उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य गांधी के पर्यावरणीय नैतिक दर्शन का जलवायु संकट के संदर्भ में अध्ययन करना है। इसमें गांधी के अहिंसा, अपरिग्रह, अपरिग्रह, अस्तेय, स्वदेशी, ग्राम स्वराज और ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धांतों की पर्यावरणीय प्रासंगिकता को स्पष्ट किया जाएगा। शोध यह समझने का प्रयास करेगा कि आधुनिक उपभोक्तावादी और औद्योगिक विकास मॉडल ने जलवायु संकट को कैसे बढ़ाया है तथा गांधीवादी जीवन दृष्टि इसके वैकल्पिक समाधान कैसे प्रस्तुत करती है। साथ ही, यह अध्ययन जलवायु न्याय, सतत विकास और नैतिक उपभोग के संदर्भ में गांधी के विचारों की समकालीन उपयोगिता का मूल्यांकन करेगा।

शोध पद्धति

इस शोध में मुख्यतः गुणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया जाएगा। गांधी के मूल ग्रंथों जैसे हिंद स्वराज, पत्रों, भाषणों तथा द्वितीयक स्रोतों पुस्तकों, शोध लेखों और रिपोर्टों का विश्लेषण किया जाएगा। पर्यावरणीय नैतिकता और जलवायु परिवर्तन संबंधी समकालीन साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाएगा। शोध में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाकर गांधी के सिद्धांतों की वर्तमान जलवायु संकट में प्रासंगिकता को समझा जाएगा।

साहित्यावलोकन

हिन्द स्वराज (1909) में गांधी ने आधुनिक औद्योगिक सभ्यता, मशीनवाद और उपभोगवादी संस्कृति की आलोचना करते हुए सादगी, आत्मसंयम और नैतिक जीवन का समर्थन किया है।

गांधी जी की The Story of My Experiments with Truth में उनके जीवन प्रयोगों के माध्यम से संयम, अहिंसा और अपरिग्रह के व्यावहारिक रूप देखने को मिलते हैं।

गांधीवादी अर्थशास्त्र और पर्यावरणीय दृष्टि को विस्तार देने में जे. सी. कुमारप्पा की पुस्तक Economy of Permanence विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें उन्होंने स्थायी अर्थव्यवस्था और प्रकृति के साथ संतुलित विकास की अवधारणा प्रस्तुत की।

इसी संदर्भ में रामचंद्र गुहा की पुस्तक Environmentalism: A Global History गांधीवादी विचारों को वैश्विक पर्यावरण आंदोलनों से जोड़ती है।

विनोबा भावे की The Essence of Bhoodan तथा सुन्दरलाल बहुगुणा के लेखन और भाषणों में गांधीवादी सिद्धांतों विशेषकर अहिंसा, स्वदेशी और ग्राम स्वराज को पर्यावरण संरक्षण के साथ जोड़ा गया है।

समकालीन संदर्भ में Joan Martinez - Alier dh The Environmentalism of the Poor rFkk Herman E. Daly की Steady & State Economics जैसे ग्रंथ भी महत्वपूर्ण हैं, जो सीमित संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग और सतत विकास की आवश्यकता पर बल देते हैं।

परिचर्चा और परिणाम

गांधी ने आधुनिक अर्थ में "पर्यावरणवाद" शब्द का प्रयोग भले ही न किया हो, परंतु उनका समग्र दर्शन गहरे पर्यावरणीय अर्थ रखता है। उनके चिंतन में प्रकृति, मनुष्य और समाज अलग अलग इकाइयाँ नहीं हैं। वे जीवन को एक नैतिक एकता के रूप में देखते हैं। गांधी का पर्यावरणीय दर्शन तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। पहला, व्यक्तिगत नैतिकता का स्तर है। गांधी व्यक्ति से अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी इच्छाओं को सीमित करे, सादगी अपनाए, श्रम करे और उपभोग में संयम रखे। जलवायु संकट के संदर्भ में यह जीवन-शैली अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि आज का कार्बन संकट अत्यधिक उपभोग और ऊर्जा गहन जीवन पद्धति से जुड़ा हुआ है। दूसरा, सामाजिक आर्थिक संरचना का स्तर है। गांधी केंद्रीकृत औद्योगिक अर्थव्यवस्था के स्थान पर विकेंद्रित ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था, स्थानीय उत्पादन, स्वदेशी और श्रम सम्मान पर बल देते हैं। यह मॉडल लंबी आपूर्ति श्रृंखलाओं, अंधाधुंध उत्पादन और संसाधन शोषण को कम करने की दिशा देता है। तीसरा, सभ्यतागत आलोचना का स्तर है। गांधी आधुनिक सभ्यता की उस प्रवृत्ति को अस्वीकार करते हैं जो मनुष्य के सुख को वस्तुओं की अधिकता से जोड़ती है। उनके अनुसार सभ्यता का वास्तविक अर्थ नैतिक उन्नति है, न कि भौतिक सुविधाओं की अनंत वृद्धि। हिंद स्वराज में गांधी ने मशीन प्रधान सभ्यता की तीखी आलोचना की और चेतावनी दी है कि मशीन का उन्माद मनुष्य को श्रम, समुदाय और नैतिकता से अलग कर सकता है। गांधी के दर्शन का मूल आधार अहिंसा है। सामान्यतः अहिंसा को मनुष्य मनुष्य संबंधों तक सीमित समझा जाता है, किंतु गांधी के यहाँ इसका अर्थ व्यापक है। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं, बल्कि किसी भी जीव, समाज या प्रकृति पर अनावश्यक आक्रमण न करना है। जलवायु संकट को इस दृष्टि से देखें तो यह प्रकृति पर संरचनात्मक हिंसा का परिणाम है। वनों की अंधाधुंध कटाई, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग, नदियों का प्रदूषण, खनन, भूमि अधिग्रहण और जैव विविधता का विनाश ये सब प्रकृति पर हिंसा के रूप हैं। अहिंसा का गांधीवादी अर्थ यह है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करे कि अन्य जीवों, भावी पीढ़ियों और पृथ्वी तंत्र को क्षति न पहुँचे। आज जलवायु न्याय की धारणा भी इसी नैतिक बिंदु से जुड़ती है। जिन समुदायों ने सबसे कम उत्सर्जन किया है गरीब, आदिवासी, किसान, तटीय समुदाय वे जलवायु परिवर्तन के सबसे बड़े दुष्प्रभाव झेल रहे हैं। गांधीवादी अहिंसा ऐसे अन्याय को स्वीकार नहीं करती। वह मनुष्य को केवल वर्तमान समाज के प्रति नहीं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों और समस्त जीव जगत के प्रति भी उत्तरदायी बनाती है।

गांधी के पर्यावरणीय दर्शन में अपरिग्रह अर्थात् अनावश्यक संचय का त्याग केंद्रीय सिद्धांत है। आधुनिक उपभोक्तावादी समाज का आधार है अधिक उत्पादन, अधिक उपभोग और अधिक संचय। विज्ञापन, बाजार और तकनीकी पूँजीवाद मनुष्य की इच्छाओं को लगातार बढ़ाते हैं। इसके विपरीत गांधी कहते हैं कि आवश्यकताएँ सीमित हैं, पर लोभ असीमित है। गांधी से संबद्ध प्रसिद्ध विचार "पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है, पर किसी एक के लोभ की नहीं" उनके नैतिक अर्थशास्त्र का सार प्रस्तुत करता है। जलवायु संकट मूलतः असीमित उपभोग की समस्या है। विश्व की समृद्ध आबादी ऊर्जा, परिवहन, आवास, मांसाहार, फैशन, इलेक्ट्रॉनिक्स और विलासिता प्रधान जीवन में अत्यधिक संसाधन उपयोग करती है, जबकि उसका पर्यावरणीय भार गरीब देशों और समुदायों पर भी पड़ता है। गांधी का संयम सिद्धांत इस असमानता को चुनौती देता है। वे गरीबी को आदर्श नहीं मानते, लेकिन विलासिता को भी सभ्यता का लक्ष्य नहीं मानते। उनका आग्रह है कि मनुष्य गरिमापूर्ण जीवन जिए, पर ऐसा जीवन दूसरों और प्रकृति की कीमत पर न हो। संयम का अर्थ तकनीक विरोध नहीं है; इसका अर्थ है तकनीक और उपभोग पर नैतिक नियंत्रण। आज ऊर्जा कुशल उपकरण, नवीकरणीय ऊर्जा और हरित परिवहन आवश्यक हैं, परंतु यदि उपभोग की कुल मात्रा लगातार बढ़ती रहे तो तकनीकी सुधार भी पर्याप्त नहीं होंगे। गांधी इसीलिए जीवन शैली परिवर्तन को जलवायु समाधान का नैतिक आधार बनाते हैं। महात्मा गांधी का पर्यावरणीय नैतिक दर्शन मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलित, नैतिक और सह अस्तित्वकारी संबंध पर आधारित है। गांधी के अनुसार मनुष्य प्रकृति का मालिक नहीं, बल्कि उसका संरक्षक है। उन्होंने जीवन में सादगी, संयम और नैतिकता को सर्वोपरि माना। उनके विचार में सभ्यता का वास्तविक अर्थ इच्छाओं की असीमित वृद्धि नहीं, बल्कि आत्मसंयम और संतुलित जीवन है। यही दृष्टिकोण आज के जलवायु संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है।

गांधी के प्रमुख नैतिक सिद्धांतों में से एक है अस्तेय। अस्तेय का सामान्य अर्थ है चोरी न करना, किंतु गांधी ने इसे व्यापक अर्थ में समझाया। उनके अनुसार आवश्यकता से अधिक संसाधनों का उपयोग या संचय करना भी चोरी के समान है, क्योंकि इससे दूसरों के हिस्से के संसाधन छिन जाते हैं। इस दृष्टि से

देखें तो प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, वन, भूमि और खनिज का असीमित दोहन भी अस्तेय का उल्लंघन है। आज का जलवायु संकट अत्यधिक उपभोग, औद्योगिक विस्तार और संसाधनों के असमान वितरण का परिणाम है। विकसित और संपन्न समाजों द्वारा अत्यधिक ऊर्जा उपयोग और प्रदूषण, गरीब समुदायों और भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों का हनन करता है। गांधी का अस्तेय सिद्धांत इस अन्याय को चुनौती देता है और हमें नैतिक चेतावनी देता है कि प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना आवश्यक हो। इस प्रकार गांधी का पर्यावरणीय दर्शन और अस्तेय का सिद्धांत मिलकर सतत विकास, पर्यावरणीय संतुलन और जलवायु न्याय की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यह हमें जिम्मेदार उपभोग, संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का संदेश देता है, जो वर्तमान वैश्विक संकट के समाधान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

गांधी का स्वदेशी सिद्धांत केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक सीमित नहीं था। इसका मूल अर्थ था अपने निकटतम समुदाय, स्थानीय उत्पादन, स्थानीय श्रम और स्थानीय आवश्यकताओं को प्राथमिकता देना। स्वदेशी मनुष्य को अनाम वैश्विक बाजार का उपभोक्ता नहीं, बल्कि स्थानीय समाज का उत्तरदायी सदस्य बनाता है। जलवायु संकट के संदर्भ में स्वदेशी की प्रासंगिकता स्पष्ट है। वैश्वीकरण ने उत्पादन और उपभोग को लंबी आपूर्ति श्रृंखलाओं से जोड़ दिया है। वस्तुएँ हजारों किलोमीटर दूर बनती हैं, उनका परिवहन भारी ऊर्जा खर्च करता है, और उपभोक्ता उत्पादन की पारिस्थितिक व सामाजिक कीमतों से कट जाता है। गांधीवादी स्वदेशी इस दूरी को घटाता है। स्थानीय खाद्य प्रणाली, स्थानीय शिल्प, स्थानीय ऊर्जा, सामुदायिक जल प्रबंधन और छोटे उद्योग कार्बन पदचिह्न को कम कर सकते हैं। स्वदेशी का एक नैतिक पक्ष भी है। यह उत्पादन को मनुष्य के चेहरे से जोड़ता है। जब वस्तु स्थानीय श्रमिक बनाता है, तब उपभोक्ता श्रम, प्रकृति और समुदाय की कीमत को समझता है। इसके विपरीत वैश्विक उपभोक्तावाद वस्तु को सस्ता बनाता है, पर उसका वास्तविक खर्च प्रदूषण, श्रमिक शोषण, कार्बन उत्सर्जनकृअदृश्य कर देता है। गांधी का स्वदेशी इस अदृश्य हिंसा को उजागर करता है।

गांधी ग्राम स्वराज के समर्थक थे। उनके लिए गाँव पिछड़ेपन का प्रतीक नहीं, बल्कि स्वशासन, आत्मनिर्भरता और सामुदायिक जीवन का आधार था। उन्होंने छोटे समुदायों पर आधारित ऐसी व्यवस्था की कल्पना की जिसमें उत्पादन स्थानीय हो, निर्णय विकेंद्रीकृत हों, श्रम का सम्मान हो और जीवन प्रकृति के साथ संतुलित रहे। आज जलवायु अनुकूलन के संदर्भ में विकेंद्रीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जल संरक्षण, स्थानीय कृषि, बीज संरक्षण, सामुदायिक वन प्रबंधन, स्थानीय आपदा तैयारी और नवीकरणीय ऊर्जा की छोटी प्रणालियाँ ग्राम स्वराज की आधुनिक अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं। केंद्रीकृत विकास मॉडल बड़े बाँधों, महानगरों, विशाल उद्योगों और लंबी आपूर्ति श्रृंखलाओं पर निर्भर करता है। यह मॉडल न केवल ऊर्जा गहन है, बल्कि स्थानीय समुदायों को निर्णय प्रक्रिया से दूर भी करता है। गांधीवादी ग्राम स्वराज जलवायु न्याय की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समुदायों को केवल "पीड़ित" नहीं मानता, बल्कि उन्हें समाधान का सक्रिय भागीदार बनाता है। जलवायु नीतियों में जब स्थानीय ज्ञान, पारंपरिक जल संरचना, जैविक खेती और सामुदायिक संस्थाओं को महत्व दिया जाता है, तब गांधीवादी दृष्टि जीवित होती है।

गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता में अत्यंत उपयोगी है। इस सिद्धांत के अनुसार संपत्ति का स्वामी व्यक्ति पूर्ण स्वामी नहीं, बल्कि समाज का ट्रस्टी है। उसे अपनी संपत्ति और संसाधनों का उपयोग समाज हित में करना चाहिए। गांधी समाज को आवश्यकता पर आधारित बनाना चाहते थे, लोभ पर नहीं; वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करे और आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करे। जलवायु संकट में ट्रस्टीशिप का विस्तार पृथ्वी ट्रस्टीशिप तक किया जा सकता है। पृथ्वी, जल, वन, खनिज, वायु और जैव विविधता किसी एक पीढ़ी या वर्ग की निजी संपत्ति नहीं हैं। वे भावी पीढ़ियों और समस्त जीव जगत की साझी धरोहर हैं। अतः राष्ट्रों, कंपनियों और व्यक्तियों को इन संसाधनों का उपयोग ट्रस्टी की तरह करना चाहिए, मालिक की तरह नहीं। कॉर्पोरेट जलवायु उत्तरदायित्व, कार्बन उत्सर्जन में कटौती, न्यायपूर्ण ऊर्जा संक्रमण, प्रदूषण क्षतिपूर्ति और सामुदायिक अधिकारों की रक्षा ये सब ट्रस्टीशिप की समकालीन व्याख्याएँ हैं। गांधी का दृष्टिकोण राज्य नियंत्रित जबरदस्ती से अधिक नैतिक आत्म परिवर्तन पर आधारित था, पर आज के जटिल पूँजीवादी ढाँचे में ट्रस्टीशिप को कानूनी, नीतिगत और लोकतांत्रिक संस्थाओं से भी जोड़ना होगा।

गांधी की आधुनिक सभ्यता पर आलोचना जलवायु संकट को समझने में अत्यंत उपयोगी है। हिंद स्वराज में उन्होंने आधुनिक सभ्यता को ऐसी व्यवस्था कहा जो मनुष्य को बाहरी सुख सुविधाओं का दास बनाती है और नैतिक आत्मनियंत्रण को कमजोर करती है। उन्होंने मशीनों की अंध भक्ति को खतरनाक माना, विशेषकर तब जब मशीन मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के बजाय लाभ, बेरोजगारी, शोषण और लालसा को बढ़ाए। गांधी मशीन के पूर्ण विरोधी नहीं थे; वे ऐसी मशीन का विरोध करते थे जो मनुष्य को श्रम से काट दे, सामुदायिक जीवन को नष्ट करे और केंद्रीकृत पूँजी संचय को बढ़ाए। जलवायु संकट भी इसी अनियंत्रित औद्योगिकता का परिणाम है। जीवाश्म ईंधन आधारित उद्योग, कार केंद्रित शहरीकरण, ऊर्जा गहन उपभोग और वैश्विक बाजार ने पृथ्वी की वहन क्षमता पर भारी दबाव डाला है। यहाँ गांधी का महत्व इसलिए है कि वे समाधान को केवल "कम प्रदूषण वाली मशीन" तक सीमित नहीं करते। वे पूछते हैं हमें कितनी वस्तुएँ चाहिए? किसके लिए उत्पादन हो रहा है? क्या विकास मनुष्य को अधिक स्वतंत्र, नैतिक और सामुदायिक बना रहा है, या उसे बाजार का दास बना रहा है? जलवायु बहस में ये प्रश्न अक्सर पीछे छूट जाते हैं।

गांधी का जीवन स्वयं उनके दर्शन का प्रयोग था। खादी, साधारण भोजन, पैदल चलना, न्यूनतम वस्त्र, सामुदायिक श्रम, आश्रम जीवन और स्वच्छता ये सब प्रतीकात्मक नहीं थे; वे जीवन को नैतिक प्रयोग बनाते थे। आज जब जलवायु नीतियाँ "सस्टेनेबल लाइफस्टाइल" की बात करती हैं, गांधी का जीवन एक व्यावहारिक मॉडल प्रस्तुत करता है। गांधीवादी जीवन शैली के कुछ आधुनिक रूप इस प्रकार हो सकते हैंरू आवश्यकता आधारित उपभोग, सार्वजनिक परिवहन और पैदल/साइकिल संस्कृति, स्थानीय और मौसमी भोजन, अपशिष्ट न्यूनता, वस्तुओं का पुनः उपयोग, जल संरक्षण, ऊर्जा संयम, सामुदायिक उत्पादन और जैविक खेती। ये उपाय व्यक्तिगत स्तर पर छोटे दिख सकते हैं, किंतु जब वे सामाजिक संस्कृति बनते हैं तो व्यापक परिवर्तन ला सकते हैं। हालाँकि केवल व्यक्तिगत नैतिकता पर्याप्त नहीं है। जलवायु संकट संरचनात्मक है; इसलिए गांधीवादी जीवन शैली को नीति, शिक्षा, अर्थव्यवस्था और संस्थागत सुधार से जोड़ना होगा। उदाहरण के लिए, यदि शहरों में सार्वजनिक परिवहन उपलब्ध नहीं है तो केवल व्यक्ति को कार छोड़ने की नैतिक शिक्षा देना पर्याप्त नहीं होगा। गांधीवादी दृष्टि व्यक्ति और व्यवस्था दोनों में परिवर्तन की मांग करती है।

जलवायु परिवर्तन का प्रश्न न्याय से गहराई से जुड़ा है। विकसित देशों ने ऐतिहासिक रूप से अधिक उत्सर्जन किया है, जबकि विकासशील देशों और गरीब समुदायों पर उसके दुष्प्रभाव अधिक पड़ते हैं। गांधी का सर्वोदय सबका उदय और अंत्योदय सबसे अंतिम व्यक्ति का कल्याण जलवायु न्याय की नैतिक

भूमि प्रदान करते हैं। गांधी के अनुसार किसी नीति की कसौटी यह होनी चाहिए कि वह सबसे कमजोर व्यक्ति के जीवन को कैसे प्रभावित करती है। जलवायु नीति की भी यही कसौटी होनी चाहिए। ऊर्जा संक्रमण ऐसा न हो कि गरीबों पर ऊर्जा की कीमतें बढ़ जाएँ; वन संरक्षण ऐसा न हो कि आदिवासी समुदाय बेदखल हो जाएँ; हरित विकास ऐसा न हो कि खनिज समृद्ध गरीब क्षेत्रों में नया शोषण शुरू हो जाए। गांधीवादी जलवायु न्याय कहता है कि समाधान भी न्यायपूर्ण होने चाहिए।

गांधी का पर्यावरणीय दर्शन अत्यंत प्रेरक है, पर उसकी कुछ सीमाएँ भी हैं। पहली सीमा यह है कि आज की वैश्विक आबादी, जटिल अर्थव्यवस्था और तकनीकी निर्भरता को देखते हुए पूर्ण ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था संभव नहीं दिखती। आधुनिक स्वास्थ्य, संचार, शिक्षा, परिवहन और ऊर्जा प्रणालियाँ तकनीक पर आधारित हैं। इसलिए गांधी को शाब्दिक रूप से लागू करने के बजाय उनके नैतिक सिद्धांतों को समकालीन संदर्भ में पुनर्परिभाषित करना होगा।

दूसरी सीमा यह है कि गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत नैतिक आत्म परिवर्तन पर बहुत भरोसा करता है। आज की कॉर्पोरेट पूँजी और वैश्विक बाजार व्यवस्था में केवल नैतिक अपील पर्याप्त नहीं है। इसके लिए कठोर पर्यावरणीय कानून, कार्बन नियमन, पारदर्शिता, लोकतांत्रिक निगरानी और अंतरराष्ट्रीय समझौते आवश्यक हैं।

तीसरी सीमा यह है कि गांधी का सादगी मूलक जीवन दर्शन कभी कभी गरीबों से भी संयम की अपेक्षा करने के रूप में गलत ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है। जलवायु न्याय की दृष्टि से यह स्पष्ट होना चाहिए कि संयम की प्राथमिक जिम्मेदारी उन वर्गों पर है जिनका उपभोग और उत्सर्जन अत्यधिक है। गरीबों को गरिमापूर्ण जीवन, ऊर्जा, स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास का अधिकार मिलना चाहिए।

इन सीमाओं के बावजूद गांधी का मूल संदेश अत्यंत सार्थक है। वे हमें बताते हैं कि जलवायु संकट केवल उत्सर्जन की गणना से हल नहीं होगा; इसके लिए लोभ, असमानता और विकास की गलत अवधारणा पर प्रश्न उठाना होगा।

गांधीवादी पर्यावरणीय नैतिकता से कुछ नीतिगत संकेत प्रदान करती है। विकास की परिभाषा को जीडीपी केंद्रित दृष्टि से हटाकर स्वास्थ्य, समानता, पारिस्थितिक संतुलन और सामुदायिक कल्याण से जोड़ना होगा। ऊर्जा संक्रमण केवल तकनीकी परियोजना न होकर न्यायपूर्ण सामाजिक परिवर्तन होना चाहिए। स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं, छोटे किसानों, कुटीर उद्योगों और विकेंद्रीकृत नवीकरणीय ऊर्जा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। शिक्षा में पर्यावरणीय नैतिकता, संयम, श्रम सम्मान और सामुदायिक उत्तरदायित्व को शामिल करना होगा। उपभोग प्रधान संस्कृति के स्थान पर मरम्मत, पुनः उपयोग, साझा उपयोग और सादगी को सामाजिक प्रतिष्ठा देनी होगी। कंपनियों और संपन्न वर्गों के लिए ट्रस्टीशिप को स्वैच्छिक नैतिकता से आगे बढ़ाकर कानूनी उत्तरदायित्व, पारदर्शिता और उत्सर्जन नियंत्रण से जोड़ा जाना चाहिए।

निष्कर्ष

गांधी का पर्यावरणीय नैतिक दर्शन जलवायु संकट के युग में असाधारण प्रासंगिकता रखता है। उन्होंने बहुत पहले समझ लिया था कि असीमित भौतिक विकास, मशीन केंद्रित सभ्यता और लोभ आधारित अर्थव्यवस्था अंततः मनुष्य और प्रकृति दोनों को संकट में डाल देगी। आज जलवायु परिवर्तन उसी चेतावनी की ऐतिहासिक पुष्टि जैसा प्रतीत होता है।

गांधी हमें तीन बुनियादी बातें सिखाते हैं। पहली, प्रकृति के साथ संबंध प्रभुत्व का नहीं, सह अस्तित्व का होना चाहिए। दूसरी, वास्तविक सभ्यता इच्छाओं के विस्तार में नहीं, आत्मसंयम और नैतिक उन्नति में है। तीसरी, न्यायपूर्ण समाज वही है जिसमें संसाधन कुछ लोगों के लोभ के लिए नहीं, सबकी आवश्यकता और गरिमा के लिए उपयोग हों।

जलवायु संकट का समाधान विज्ञान, तकनीक और नीति से अवश्य जुड़ा है, लेकिन उसकी आत्मा नैतिक परिवर्तन में है। गांधी इस नैतिक परिवर्तन के सबसे सशक्त मार्गदर्शकों में से एक हैं। उनका दर्शन हमें यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि हम कैसी पृथ्वी, कैसी अर्थव्यवस्था और कैसी सभ्यता भावी पीढ़ियों को सौंपना चाहते हैं। यदि मानवता जलवायु संकट से न्यायपूर्ण और टिकाऊ ढंग से निकलना चाहती है, तो गांधी का संदेश अहिंसा, संयम, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप और सर्वोदय केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि भविष्य की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. महात्मा गांधी, Hind Swaraj- अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन, 1909.
2. महात्मा गांधी, The Story of My Experiments with Truth, अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन, 1927.
3. महात्मा गांधी. Constructive Programme: Its Meaning and Place, अहमदाबादः नवजीवन, 1941.
4. Mahatma Gandhi (1958)- The Collected Works of Mahatma Gandhi, New Delhi: Publications Division Government of India
5. जे. सी. कुमारप्पा, Economy of Permanence. वाराणसीः सर्व सेवा संघ, 1945.
6. रामचंद्र गुहा, Environmentalism: A Global History. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000.
7. विनोबा भावे, The Essence of Bhoodan, वाराणसीः सर्व सेवा संघ, 1958.
8. सुन्दरलाल बहुगुणा, Chipko Movement: A People"s Movement. नई दिल्लीः पर्यावरण प्रकाशन, 1980.
9. Herman E. Daly, Steady - State Economics, okWf'kaxVu: Island Press, 1991.
10. Joan Martinez & Alier- The Environmentalism of the Poor. लंदनः Edward Elgar 2002.

हिंदी उपन्यास और मार्क्सवादी आलोचना

अंशु कुमारी

शोधार्थी, बी.एड., स्पेशल एजुकेशन, (दृष्टिबाधित), एन.आई.वी.एच. देहरादून, श्री देव सुमन उत्तराखंड विश्वविद्यालय, बादशाहीथौल, टेहरी गढ़वाल, उत्तराखंड

सारांश

हिंदी उपन्यास का विकास केवल साहित्यिक रूप-विधान की यात्रा नहीं है, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज की वर्गीय, जातीय, लैंगिक, औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक संरचनाओं के क्रमिक उद्घाटन की प्रक्रिया भी है। मार्क्सवादी आलोचना हिंदी उपन्यास को सामाजिक यथार्थ, उत्पादन-संबंधों, श्रम, पूँजी, वर्ग-संघर्ष, विचारधारा, सामंती अवशेष, औपनिवेशिक सत्ता, मध्यवर्गीय चेतना और जनवादी संभावनाओं के आधार पर पढ़ने की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति प्रदान करती है। प्रेमचंद से लेकर रेणु, यशपाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, भीष्म साहनी, अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा और समकालीन दलित-स्त्री-आदिवासी लेखन तक हिंदी उपन्यास में समाज की अंतर्विरोधी संरचना निरंतर प्रकट होती रही है।

यह आलेख हिंदी उपन्यास और मार्क्सवादी आलोचना के संबंध को एकांगी वैचारिक आरोपण के रूप में नहीं, बल्कि रचना और समाज के द्वंद्वात्मक संबंध के रूप में देखने का प्रयास करता है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि हिंदी उपन्यास में मार्क्सवादी आलोचना की उपयोगिता तभी सार्थक है, जब वह वर्गीय विश्लेषण को जाति, पितृसत्ता, धर्म, क्षेत्र, भाषा, संस्कृति और व्यक्ति-मानस के साथ जोड़कर पढ़े। प्रेमचंद का गोदान भारतीय कृषक-जीवन की शोषण-व्यवस्था का महाकाव्यात्मक चित्र उपस्थित करता है; यशपाल का झूठा सच विभाजन और आधुनिक राष्ट्र-राज्य की वर्गीय-राजनीतिक विडंबनाओं को खोलता है; रेणु का मैला आँचल आंचलिक समाज में विकास, राजनीति और जन-संस्कृति के अंतर्विरोधों को सामने लाता है; श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी स्वतंत्रता-उत्तर भारत में सत्ता, प्रशासन, शिक्षा और ग्रामीण प्रभुत्व-तंत्र की संरचनात्मक आलोचना करता है।

लेख का निष्कर्ष है कि हिंदी उपन्यास की मार्क्सवादी आलोचना को आज अधिक व्यापक, बहुस्तरीय और आत्मालोचनात्मक रूप में विकसित करने की आवश्यकता है, ताकि वह वर्ग-संघर्ष के साथ-साथ जाति-वर्चस्व, लैंगिक असमानता, सांस्कृतिक वर्चस्व, उपभोक्तावाद और नवउदारवादी पूँजीवाद की नई संरचनाओं को भी समझ सके।

बीज-शब्द: हिंदी उपन्यास, मार्क्सवादी आलोचना, वर्ग-संघर्ष, यथार्थवाद, प्रेमचंद, जनवादी साहित्य, विचारधारा, सामाजिक यथार्थ, पूँजीवाद, जाति-वर्ग द्वंद्व

प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास आधुनिक भारतीय समाज की सबसे व्यापक साहित्यिक अभिव्यक्तियों में से एक है। कविता जहाँ अनेक बार भाव, प्रतीक और वैयक्तिक संवेदना के माध्यम से समाज को ग्रहण करती है, वहीं उपन्यास समाज की विस्तृत संरचनाओं, संस्थाओं, संबंधों, वर्गों और जीवन-स्थितियों को अधिक विस्तार से चित्रित करने में सक्षम विधा है। इसलिए हिंदी उपन्यास का इतिहास वस्तुत: आधुनिक भारत के सामाजिक रूपांतरणों का भी इतिहास है। औपनिवेशिक शासन, राष्ट्रीय आंदोलन, किसान-जीवन, सामंती संबंध, मध्यवर्गीय आकांक्षाएँ, स्त्री-जीवन, जाति-व्यवस्था, विभाजन, लोकतंत्र, नौकरशाही, विकास, बाजार और वैश्वीकरण-इन सबका बहुआयामी चित्र हिंदी उपन्यास में मिलता है।

मार्क्सवादी आलोचना इसी उपन्यास-परंपरा को समाज की भौतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक संबंधों के भीतर समझने की पद्धति देती है। मार्क्सवाद साहित्य को केवल सौंदर्य की स्वायत्त वस्तु नहीं मानता, बल्कि उसे सामाजिक उत्पादन, ऐतिहासिक चेतना और वैचारिक संघर्ष की प्रक्रिया से जोड़कर देखता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि साहित्य केवल आर्थिक आधार का यांत्रिक प्रतिबिंब है। श्रेष्ठ मार्क्सवादी आलोचना साहित्य को समाज का सरल दर्पण नहीं, बल्कि समाज के अंतर्विरोधों की रचनात्मक पुनर्रचना मानती है।

हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना के विकास में रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, मुक्तिबोध, रविभूषण, वीर भारत तलवार आदि आलोचकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विशेषकर रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को भारतीय जनवादी चेतना और सामाजिक यथार्थवाद के केंद्र में रखकर पढ़ा। उनकी पुस्तक प्रेमचंद और उनका युग प्रेमचंद के साहित्य को ऐतिहासिक संदर्भ और सामाजिक परिवेश की पृष्ठभूमि में समझने वाली महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक कृति मानी जाती है; उपलब्ध पुस्तक-विवरणों में भी इसे प्रेमचंद के कृतित्व का तथ्यपूर्ण और विस्तृत मूल्यांकन बताया गया है।

हिंदी उपन्यास और मार्क्सवादी आलोचना का संबंध इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय समाज में वर्ग-संबंध अकेले नहीं चलते; वे जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र और संस्कृति से घुल-मिलकर काम करते हैं। भारतीय किसान केवल आर्थिक अर्थ में किसान नहीं होता; वह किसी जाति, बिरादरी, धर्म, भाषा और

स्थानीय सत्ता-संबंध से भी जुड़ा होता है। इसी तरह मजदूर केवल श्रम-बाजार की इकाई नहीं, बल्कि परिवार, जाति, लैंगिक संबंध और सांस्कृतिक पहचान से निर्मित सामाजिक व्यक्ति होता है। इसलिए हिंदी उपन्यास की मार्क्सवादी आलोचना को भारतीय समाज की विशिष्ट संरचना के अनुरूप विकसित होना पड़ा।

मार्क्सवादी आलोचना का सैद्धांतिक आधार

मार्क्सवादी आलोचना का मूल आधार यह है कि साहित्य समाज की ऐतिहासिक-भौतिक परिस्थितियों से अलग नहीं होता। मनुष्य का चेतन जीवन उसकी सामाजिक जीवन-प्रक्रिया से जुड़ा होता है। उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण, श्रम-विभाजन, संपत्ति-संबंध, वर्ग-संबंध और राज्य-सत्ता समाज की संरचना को प्रभावित करते हैं। साहित्य इन संरचनाओं से उत्पन्न अनुभवों, संघर्षों और वैचारिक रूपों को कलात्मक रूप देता है।

मार्क्सवादी आलोचना के लिए कुछ केंद्रीय अवधारणाएँ महत्त्वपूर्ण हैं-वर्ग, वर्ग-संघर्ष, विचारधारा, आधार और अधिरचना, वस्तुकरण, अलगाव, यथार्थवाद, जनवादी चेतना और ऐतिहासिकता। साहित्यिक कृति में ये अवधारणाएँ प्रत्यक्ष नारे के रूप में नहीं, बल्कि चरित्रों, कथानक, भाषा, संरचना, प्रतीक और दृष्टिकोण के माध्यम से व्यक्त होती हैं। उदाहरण के लिए, गोदान में किसान होरी का शोषण केवल साहूकार या जमींदार की क्रूरता से नहीं समझा जा सकता; वह ऋण, धर्म, जाति, सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक जिम्मेदारी और सामंती-औपनिवेशिक राजस्व-व्यवस्था के संयुक्त दबाव से निर्मित है।

मार्क्सवादी आलोचना का एक बड़ा योगदान यह है कि उसने साहित्यिक कृति में छिपे हुए शक्ति-संबंधों को पढ़ने की क्षमता विकसित की। वह पूछती है कि किसी उपन्यास में कौन बोल रहा है, किसकी आवाज दबाई गई है, किन वर्गों को नैतिक वैधता दी गई है, किन्हें हास्यास्पद या असभ्य दिखाया गया है, किस जीवन को 'सामान्य' और किसे 'असामान्य' कहा गया है। इस अर्थ में मार्क्सवादी आलोचना केवल आर्थिक आलोचना नहीं, बल्कि विचारधारा की आलोचना भी है।

हालाँकि मार्क्सवादी आलोचना का एक खतरा यह भी रहा है कि कुछ आलोचक साहित्य को केवल वर्गीय दस्तावेज में सीमित कर देते हैं। इससे रचना की कलात्मकता, भाषा, बहुस्तरीयता और मानवीय जटिलता कम हो सकती है। हिंदी आलोचना में नामवर सिंह और मुक्तिबोध जैसे आलोचकों ने इस खतरे से सावधान किया। मुक्तिबोध ने रचना में अनुभव, दृष्टि और अभिव्यक्ति के त्रिविध संघर्ष पर बल दिया; उनकी नयी कविता का आत्मसंघर्ष जैसी कृतियों के विवरणों में भी यह रेखांकित है कि वे साहित्य को सांस्कृतिक प्रक्रिया और कलाकार को सांस्कृतिक कर्मी के रूप में देखते हैं।

इस प्रकार हिंदी में विकसित मार्क्सवादी आलोचना की श्रेष्ठ परंपरा यांत्रिक समाजशास्त्र नहीं है; वह रचना, इतिहास और सौंदर्य के द्वंद्वात्मक संबंध को समझने का प्रयास है।

हिंदी उपन्यास का सामाजिक उद्‌भव और मार्क्सवादी दृष्टि

हिंदी उपन्यास का उदय आधुनिकता, मुद्रण-संस्कृति, शिक्षा, औपनिवेशिक प्रशासन, नए मध्यवर्ग और सामाजिक सुधार आंदोलनों के साथ जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक हिंदी उपन्यासों में नैतिक शिक्षा, सामाजिक सुधार, स्त्री-शिक्षा, परिवार और समाज की समस्याएँ प्रमुख रहीं। किंतु धीरे-धीरे उपन्यास केवल उपदेशात्मक या मनोरंजनपरक विधा न रहकर सामाजिक यथार्थ की प्रमुख विधा बन गया।

रामदरश मिश्र की पुस्तक हिंदी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा के विवरण में हिंदी उपन्यास को आधुनिक जीवन का दर्पण कहा गया है, क्योंकि उसने जीवन-यथार्थ के अनेक मोड़ों और विषम धरातलों को ग्रहण किया। यह विवरण इस बात की पुष्टि करता है कि हिंदी उपन्यास का विकास बाहरी घटनाओं की श्रृंखला मात्र नहीं, बल्कि सामाजिक और मानसिक सत्यों की भीतरी यात्रा है।

मार्क्सवादी दृष्टि से देखें तो हिंदी उपन्यास का आरंभिक विकास भारतीय समाज में बदलती हुई वर्गीय संरचना से जुड़ा है। औपनिवेशिक शासन ने एक ओर पारंपरिक सामंती संबंधों को तोड़ा, दूसरी ओर नए प्रकार की आर्थिक निर्भरता, नौकरशाही और मध्यवर्ग पैदा किया। यह मध्यवर्ग अंग्रेजी शिक्षा, नौकरी, सुधारवाद, नैतिकता और राष्ट्रवाद के बीच झूलता रहा। प्रारंभिक हिंदी उपन्यासों में यह मध्यवर्गीय द्वंद्व दिखाई देता है।

प्रेमचंद के आगमन के साथ हिंदी उपन्यास पहली बार भारतीय समाज के व्यापक जन-जीवन से गहरे स्तर पर जुड़ता है। प्रेमचंद ने किसान, स्त्री, दलित, मजदूर, निम्न-मध्यवर्ग, छोटे कर्मचारी और ग्रामीण समाज को उपन्यास का केंद्र बनाया। यह हिंदी उपन्यास की दिशा में ऐतिहासिक परिवर्तन था। रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना का प्रतिनिधि माना है; उपलब्ध पुस्तक-विवरणों में भी प्रेमचंद के युग और समाज के यथार्थ-चित्रण को अद्वितीय कहा गया है।

मार्क्सवादी आलोचना के लिए प्रेमचंद इसलिए केंद्रीय हैं कि उनके यहाँ सामाजिक अन्याय केवल नैतिक समस्या नहीं है; वह आर्थिक और संस्थागत समस्या भी है। प्रेमचंद के पात्र केवल 'अच्छे' या 'बुरे' मनुष्य नहीं हैं; वे इतिहास और समाज की शक्तियों से निर्मित चरित्र हैं।

प्रेमचंद: कृषक-जीवन, वर्ग-संबंध और जनवादी यथार्थवाद

हिंदी उपन्यास की मार्क्सवादी आलोचना में प्रेमचंद का स्थान आधारभूत है। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कर्मभूमि और गोदान जैसे उपन्यास भारतीय समाज की विविध संरचनाओं को खोलते हैं। इनमें किसान-जीवन, स्त्री की पराधीनता, औपनिवेशिक सत्ता, पूँजी, सामंतवाद, जाति-व्यवस्था और नैतिक संकट का चित्र मिलता है।

गोदान प्रेमचंद की सबसे महत्त्वपूर्ण कृति मानी जाती है। यह केवल होरी की कथा नहीं, बल्कि भारतीय किसान की सामाजिक नियति की कथा है। होरी का सपना गाय पाने का है, पर यह सपना आर्थिक रूप से विनाशकारी सिद्ध होता है। वह ऋण-जाल, जाति-नियम, पंडितवादी नैतिकता, जमींदारी दबाव और पारिवारिक उत्तरदायित्वों में फँसता चला जाता है। उसके पास श्रम है, पर उत्पादन के साधनों और सामाजिक शक्ति पर उसका नियंत्रण नहीं है। यही वर्गीय शोषण की मूल स्थिति है।

मार्क्सवादी दृष्टि से गोदान में किसान का शोषण बहुस्तरीय है। पहला, आर्थिक शोषण-कर्ज, लगान, साहूकारी और उत्पादन पर नियंत्रण। दूसरा, सामाजिक शोषण-जाति, बिरादरी और पंचायत का दबाव। तीसरा, धार्मिक-वैचारिक शोषण-पाप-पुण्य, गोदान, ब्राह्मणवादी भय और कर्मकांड। चौथा, पारिवारिक शोषण-स्त्री और पुरुष दोनों अपने-अपने ढंग से सामाजिक दबाव झेलते हैं।

धनिया का चरित्र इस उपन्यास में विशेष महत्त्व रखता है। वह होरी की तुलना में अधिक व्यावहारिक, प्रतिरोधशील और जीवन-बोध से संपन्न है। वह अन्याय को पहचानती है और कई बार प्रतिरोध भी करती है। इस दृष्टि से गोदान केवल किसान-पीड़ा का उपन्यास नहीं, बल्कि स्त्री-शक्ति और जन-नैतिकता का भी उपन्यास है। हाल के शोध-लेखों में भी ळवकंद को श्रम, पूँजी और भावनात्मक प्रतिक्रिया की दृष्टि से पढ़ने का प्रयास मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद का पाठ आज भी सामाजिक-वैचारिक विश्लेषण के लिए सक्रिय बना हुआ है।

रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को भारतीय समाज की वास्तविक शक्तियों के भीतर रखकर पढ़ा। उनके लिए प्रेमचंद केवल करुणा के लेखक नहीं, बल्कि इतिहास-बोध से संपन्न जनवादी लेखक हैं। प्रेमचंद और उनका युग का परिवर्धित संस्करण प्रेमचंद के उपन्यासों, विशेषकर प्रेमाश्रम और गोदान, पर विस्तृत सामग्री जोड़ता है; इससे यह स्पष्ट है कि हिंदी आलोचना में प्रेमचंद का मूल्यांकन निरंतर विकसित होता रहा है।

फिर भी मार्क्सवादी आलोचना को प्रेमचंद को पढ़ते समय कुछ सावधानियाँ रखनी चाहिए। प्रेमचंद के यहाँ वर्गीय यथार्थ मजबूत है, लेकिन जाति का प्रश्न अनेक बार अप्रत्यक्ष रूप में आता है। गोदान में दलित जीवन की उपस्थिति है, पर वह आज के दलित विमर्श की तरह स्वायत्त स्वर में नहीं बोलती। इसलिए प्रेमचंद की मार्क्सवादी आलोचना को उनके ऐतिहासिक योगदान और ऐतिहासिक सीमाओं-दोनों को साथ लेकर चलना होगा।

प्रगतिशील आंदोलन और हिंदी उपन्यास

1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के गठन के बाद हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ, जनवाद, साम्राज्यवाद-विरोध, फासीवाद-विरोध, किसान-मजदूर जीवन और वर्गीय शोषण के प्रश्न अधिक स्पष्ट रूप से सामने आए। प्रेमचंद ने इस आंदोलन की उद्घाटन-भूमिका में साहित्य को जीवन की आलोचना कहा था। प्रगतिशील आंदोलन ने साहित्य को अभिजनवादी संवेदनाओं से निकालकर जनता के संघर्षों से जोड़ने का प्रयास किया।

यशपाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, राहुल सांकृत्यायन, उपेंद्रनाथ अश्क आदि लेखकों ने समाजवादी, जनवादी और यथार्थवादी दृष्टि से हिंदी उपन्यास को नई दिशा दी। यशपाल का दादा कामरेड क्रांतिकारी राजनीति और वैचारिक संघर्ष का उपन्यास है। झूठा सच विभाजन की त्रासदी, राष्ट्र-निर्माण, मध्यवर्गीय विघटन, सांप्रदायिकता, सत्ता और अवसरवाद का महत्त्वपूर्ण आख्यान है।

मार्क्सवादी आलोचना के लिए झूठा सच विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह विभाजन को केवल धार्मिक उन्माद का परिणाम नहीं मानता; वह सत्ता-हस्तांतरण, वर्गीय हितों, राजनीतिक नेतृत्व, नौकरशाही और नए मध्यवर्गीय अवसरवाद की भी जाँच करता है। उपन्यास दिखाता है कि इतिहास की बड़ी घटनाएँ सामान्य मनुष्यों के जीवन में किस तरह विस्थापन, हिंसा, नैतिक संकट और पहचान-संकट के रूप में उतरती हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में किसान, मजदूर, निम्नवर्गीय जीवन और राजनीतिक व्यंग्य का तीखा रूप मिलता है। बलचनमा जैसे उपन्यास ग्रामीण समाज की निम्नवर्गीय चेतना को सामने लाते हैं। रांगेय राघव ने इतिहास, समाज और मनुष्य के संघर्षों को विविध स्तरों पर चित्रित किया। अमृतलाल नागर के उपन्यासों में नगर-जीवन, लोक-संस्कृति, इतिहास और सामाजिक विषमता का गहरा संबंध मिलता है।

प्रगतिशील उपन्यासों की एक सीमा यह रही कि कभी-कभी वैचारिक आग्रह कलात्मक जटिलता पर भारी पड़ता है। कुछ कृतियों में पात्र विचारों के प्रतिनिधि बन जाते हैं। पर श्रेष्ठ प्रगतिशील उपन्यासों में विचार और कला का ऐसा संतुलन मिलता है जहाँ सामाजिक यथार्थ रचना की आंतरिक ऊर्जा बन जाता है।

रेणु और आंचलिक यथार्थ की मार्क्सवादी व्याख्या

फणीश्वरनाथ रेणु का मैला आँचल हिंदी उपन्यास में आंचलिकता का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। यह उपन्यास किसी गाँव या क्षेत्र का केवल लोक-चित्र नहीं है; यह स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण भारत में सत्ता, विकास, स्वास्थ्य, राजनीति, जाति, किसान-जीवन, प्रेम, लोक-संस्कृति और सामाजिक विघटन का जटिल आख्यान है।

मार्क्सवादी आलोचना के सामने मैला आँचल एक चुनौती भी रखता है। यदि आलोचक केवल वर्ग-संघर्ष की सीधी रेखा खोजेगा, तो वह इस उपन्यास की बहुध्वन्यात्मक संरचना को नहीं समझ पाएगा। यहाँ वर्ग है, पर वह जाति, आंचलिक संस्कृति, भाषा, लोक-विश्वास, चुनावी राजनीति और विकास-योजनाओं से जुड़ा हुआ है। रेणु का समाज बहुस्तरीय है; उसमें शोषण भी है, उत्सव भी है; गरीबी भी है, लोक-सौंदर्य भी है; राजनीतिक पाखंड भी है, जन-जीवन की जीवटता भी है।

मार्क्सवादी दृष्टि से मैला आँचल का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि यह स्वतंत्रता के बाद भारत के ग्रामीण समाज में 'विकास' की वैचारिकता को प्रश्नांकित करता है। डॉक्टर प्रशांत जैसे पात्र परिवर्तन की आशा लेकर आते हैं, लेकिन सामाजिक संरचना इतनी जटिल है कि परिवर्तन केवल प्रशासनिक या नैतिक इच्छा से संभव नहीं होता।

रेणु की भाषा भी मार्क्सवादी आलोचना के लिए महत्त्वपूर्ण है। भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति-संबंधों की वाहक है। रेणु ने लोक-भाषा, बोलियों, मुहावरों और क्षेत्रीय संवेदना को उपन्यास की केंद्रीय शक्ति बनाया। इससे हिंदी उपन्यास में 'जन' केवल विषय नहीं, भाषा का स्वामी भी बनता है।

स्वतंत्रता-उत्तर हिंदी उपन्यासः लोकतंत्र, सत्ता और मध्यवर्ग

स्वतंत्रता के बाद हिंदी उपन्यास का सामाजिक परिदृश्य बदलता है। औपनिवेशिक सत्ता समाप्त होती है, पर शोषण समाप्त नहीं होता। लोकतंत्र आता है, पर सत्ता-संरचनाएँ नए रूपों में पुनर्गठित होती हैं। जमींदारी उन्मूलन, पंचायती राजनीति, नौकरशाही, शिक्षा-संस्थाएँ, सहकारी समितियाँ, चुनाव और विकास-योजनाएँ ग्रामीण और कस्बाई जीवन का हिस्सा बनती हैं।

श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी इस संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास स्वतंत्रता-उत्तर भारत के ग्रामीण सत्ता-तंत्र की तीखी आलोचना करता है। शिवपालगंज केवल एक गाँव नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की विकृत संस्थागत संरचना का प्रतीक बन जाता है। शिक्षा, राजनीति, प्रशासन, न्याय, सहकारिता-सभी संस्थाएँ जनहित के बजाय स्थानीय प्रभुत्व, भ्रष्टाचार और अवसरवाद के उपकरण बनती दिखाई देती हैं।

मार्क्सवादी आलोचना राग दरबारी को केवल व्यंग्य-उपन्यास मानकर नहीं छोड़ सकती। इसमें सत्ता और वर्ग का नया संबंध दिखाई देता है। सामंती प्रभुत्व लोकतांत्रिक भाषा में स्वयं को पुनर्गठित करता है। वैद्यजी जैसे पात्र परंपरा और आधुनिकता दोनों का उपयोग सत्ता-संचय के लिए करते हैं। यह वह समाज है जहाँ विचारधारा खुली दमन-व्यवस्था से अधिक चालाकी से काम करती है।

इसी काल में मध्यवर्गीय उपन्यासों में व्यक्ति की अकेलापन, अस्तित्व-संकट, संबंधों का विघटन, शहरी जीवन और नैतिक अनिश्चितता जैसे प्रश्न उठते हैं। मार्क्सवादी आलोचना के लिए यह आवश्यक है कि वह मध्यवर्गीय संकट को केवल 'वैयक्तिक' न माने, बल्कि उसे पूँजीवादी आधुनिकता, उपभोक्तावाद, रोजगार-संकट, पारिवारिक विघटन और सामाजिक गतिशीलता से जोड़े।

निर्मल वर्मा जैसे लेखक प्रत्यक्ष रूप से मार्क्सवादी यथार्थवाद की परंपरा में नहीं आते, लेकिन उनके उपन्यासों और कहानियों में आधुनिक व्यक्ति का अलगाव, स्मृति, निर्वासन और संबंधहीनता जैसे प्रश्न हैं। मार्क्सवादी आलोचना यदि व्यापक और लचीली हो, तो वह इन अनुभवों को भी पूँजीवादी आधुनिकता की सांस्कृतिक मनःस्थिति के रूप में समझ सकती है।

स्त्री-प्रश्न, पितृसत्ता और मार्क्सवादी आलोचना

हिंदी उपन्यास की मार्क्सवादी आलोचना का एक महत्त्वपूर्ण विस्तार स्त्री-विमर्श से जुड़ता है। पारंपरिक मार्क्सवादी आलोचना ने कई बार स्त्री-प्रश्न को वर्ग-प्रश्न के भीतर समाहित कर दिया, जबकि स्त्री का शोषण केवल आर्थिक नहीं, बल्कि लैंगिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक और वैचारिक भी है।

प्रेमचंद की निर्मला दहेज, विवाह-संस्था और स्त्री की असुरक्षा का उपन्यास है। सेवासदन स्त्री-जीवन, नैतिकता, विवाह और वेश्यावृत्ति की सामाजिक संरचना को खोलता है। इन उपन्यासों को मार्क्सवादी दृष्टि से पढ़ते हुए यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की स्थिति संपत्ति-संबंध, विवाह-बाजार, परिवार और नैतिक विचारधारा से गहरे जुड़ी है।

मन्नू भंडारी का आपका बंटी मध्यवर्गीय परिवार के विघटन और बच्चे के मानस की कथा है, पर इसके भीतर पितृसत्ता, स्त्री की स्वतंत्रता और पारिवारिक सत्ता-संबंधों का प्रश्न भी है। कृष्णा सोबती के उपन्यास स्त्री-अनुभव, भाषा, देह और सामाजिक मर्यादाओं को नए ढंग से सामने लाते हैं।

मार्क्सवादी-नारीवादी आलोचना यह पूछती है कि घर के भीतर किया जाने वाला श्रम किसका है, उसका मूल्य क्यों नहीं है, स्त्री की देह पर नियंत्रण किसका है, विवाह-संस्था संपत्ति और वंश-परंपरा से कैसे जुड़ी है, और परिवार किस प्रकार समाज की वैचारिक पुनरुत्पत्ति करता है। हिंदी उपन्यासों को इस दृष्टि से पढ़ना आज अत्यंत आवश्यक है।

जाति, वर्ग और हिंदी उपन्यास

भारतीय समाज में वर्ग और जाति का संबंध अत्यंत जटिल है। यूरोपीय पूँजीवादी समाजों में वर्ग-संबंधों की जो संरचना थी, भारतीय समाज में वह जाति-संबंधों से गहराई से जुड़ जाती है। भूमिहीनता, श्रम, पेशा, सामाजिक सम्मान, शिक्षा, हिंसा और संसाधनों पर अधिकार-इन सब पर जाति का प्रभाव रहा है।

आरंभिक मार्क्सवादी आलोचना की एक सीमा यह थी कि उसने कई बार जाति को वर्ग में विलीन कर दिया। पर हिंदी उपन्यास की संवेदनशील आलोचना के लिए यह दृष्टि पर्याप्त नहीं है। दलित और पिछड़े वर्गों का अनुभव केवल आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि अपमान, बहिष्कार, अस्पृश्यता, सांस्कृतिक अवमानना और सामाजिक हिंसा का अनुभव भी है।

प्रेमचंद के यहाँ जाति का प्रश्न मौजूद है, लेकिन दलित स्वानुभव की तरह नहीं। बाद के हिंदी उपन्यासों और आत्मकथात्मक साहित्य में दलित अनुभव अधिक स्वायत्त रूप से सामने आता है। मार्क्सवादी आलोचना को यहाँ अपनी पद्धति का विस्तार करना पड़ता है। उसे यह मानना होगा कि वर्ग-संघर्ष जाति-विरोधी संघर्ष से अलग नहीं चल सकता।

आज हिंदी उपन्यास में दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक और स्त्री-अनुभव की नई आवाजें उभर रही हैं। ये आवाजें मार्क्सवादी आलोचना को चुनौती देती हैं कि वह 'जन' की एकरूप अवधारणा छोड़कर जनता की बहुवचन संरचना को समझे।

हिंदी मार्क्सवादी आलोचना की उपलब्धियाँ

हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना की पहली बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने साहित्य को जीवन और समाज से जोड़ा। उसने यह स्थापित किया कि साहित्य केवल रस, अलंकार या वैयक्तिक भावुकता का क्षेत्र नहीं है; वह सामाजिक इतिहास का सक्रिय अंग है।

दूसरी उपलब्धि यह है कि उसने प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, यशपाल, मुक्तिबोध आदि लेखकों को नए ढंग से पढ़ा। रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को राष्ट्रीय-जनवादी चेतना, किसान-जीवन और सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में स्थापित किया। नामवर सिंह ने आलोचना को वैचारिक कठोरता से बचाते हुए रचना की विशिष्टता पर बल दिया। मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष, मध्यवर्गीय चेतना और रचना की वैचारिक जटिलता को समझने की नई भाषा दी।

तीसरी उपलब्धि यह है कि मार्क्सवादी आलोचना ने हिंदी उपन्यास में किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, निम्न-मध्यवर्ग और हाशिए के जीवन को आलोचना के केंद्र में लाया। इससे साहित्यिक मूल्यांकन के मानदंड बदले। पहले जिन जीवन-स्थितियों को 'साधारण' या 'असाहित्यिक' माना जाता था, वे साहित्य के केंद्रीय विषय बने।

चौथी उपलब्धि यह है कि इसने यथार्थवाद की अवधारणा को समृद्ध किया। यथार्थवाद का अर्थ केवल बाहरी विवरण नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों की आंतरिक संरचना को पकड़ना है। प्रेमचंद का यथार्थवाद इसी अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि वह दृश्य जीवन के भीतर छिपे शोषण-संबंधों को उद्घाटित करता है।

सीमाएँ और आलोचनात्मक पुनर्विचार

हिंदी मार्क्सवादी आलोचना की उपलब्धियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन उसकी कुछ सीमाएँ भी रही हैं। पहली सीमा यांत्रिक वर्गीय व्याख्या की रही है। कई बार आलोचक रचना को पहले से तय वैचारिक निष्कर्षों में फिट करने लगते हैं। इससे रचना की कलात्मक जटिलता, भाषा, मनोविज्ञान और बहुअर्थता की उपेक्षा होती है।

दूसरी सीमा जाति-प्रश्न की अपर्याप्त समझ है। भारतीय समाज में जाति केवल अधिरचना नहीं, बल्कि श्रम-विभाजन, संपत्ति-संबंध, सामाजिक सम्मान और राजनीतिक सत्ता से जुड़ी हुई संरचना है। इसलिए जाति को केवल वर्ग का 'सांस्कृतिक रूप' कहना पर्याप्त नहीं है।

तीसरी सीमा स्त्री-प्रश्न को गौण मानने की रही है। पितृसत्ता परिवार, श्रम, संपत्ति, देह और संस्कृति के माध्यम से काम करती है। यदि मार्क्सवादी आलोचना स्त्री के घरेलू श्रम, भावनात्मक श्रम और लैंगिक हिंसा को नहीं पढ़ती, तो उसका समाज-विश्लेषण अधूरा रह जाता है।

चौथी सीमा सौंदर्यशास्त्र की उपेक्षा है। साहित्य केवल विचार नहीं है; वह भाषा, संरचना, लय, प्रतीक, कथन-भंगिमा और चरित्र-निर्माण की कला भी है। श्रेष्ठ मार्क्सवादी आलोचना को यह समझना चाहिए कि कलात्मक रूप स्वयं वैचारिक अर्थ पैदा करता है। उपन्यास का कथावाचक, भाषा, समय-संरचना, संवाद, मौन और व्यंग्य-ये सब सामाजिक अर्थों से भरे होते हैं।

नवउदारवादी दौर और हिंदी उपन्यास की नई चुनौतियाँ

1990 के बाद भारतीय समाज में उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, बाजार, मीडिया, उपभोक्तावाद और पहचान-राजनीति ने नई परिस्थितियाँ पैदा कीं। गाँव-शहर संबंध बदले, कृषि संकट गहरा हुआ, रोजगार की संरचना बदली, शिक्षा और स्वास्थ्य का निजीकरण बढ़ा, उपभोक्ता-संस्कृति ने मध्यवर्गीय इच्छाओं को नया रूप दिया।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में प्रवास, बेरोजगारी, महानगरीय जीवन, बाजार, सांप्रदायिकता, जाति-राजनीति, स्त्री-स्वायत्तता, दलित अस्मिता, आदिवासी विस्थापन और पर्यावरण-संकट जैसे प्रश्न उभरते हैं। मार्क्सवादी आलोचना के लिए यह नया क्षेत्र है।

आज पूँजीवाद केवल कारखाने या खेत तक सीमित नहीं है; वह मीडिया, शिक्षा, भाषा, देह, इच्छा, स्मृति और डिजिटल जीवन तक फैल चुका है। इसलिए मार्क्सवादी आलोचना को भी अपने उपकरणों का विस्तार करना होगा। वस्तुकरण अब केवल श्रम का नहीं, बल्कि संस्कृति, ज्ञान, प्रेम, पहचान और समय का भी हो रहा है।

हिंदी उपन्यास यदि इस नए समाज को पकड़ रहा है, तो आलोचना को भी नए पूँजीवाद की संरचनाओं को समझना होगा। वर्ग-संघर्ष अब भी केंद्रीय है, लेकिन वह जाति, धर्म, राष्ट्रवाद, मीडिया-वैचारिकी, उपभोक्तावाद और डिजिटल निगरानी के साथ संयुक्त रूप में काम करता है।

निष्कर्ष

हिंदी उपन्यास और मार्क्सवादी आलोचना का संबंध हिंदी साहित्य के आधुनिक विकास को समझने की एक केंद्रीय कुंजी है। हिंदी उपन्यास ने भारतीय समाज के जिन अंतर्विरोधों को कथा का रूप दिया-किसान-शोषण, सामंती अवशेष, औपनिवेशिक सत्ता, मध्यवर्गीय द्वंद्व, स्त्री की पराधीनता, जाति-वर्चस्व, विभाजन, लोकतांत्रिक विडंबना और बाजारवादी जीवन-उन्हें समझने में मार्क्सवादी आलोचना ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रेमचंद से आरंभ हुई जनवादी यथार्थवादी परंपरा ने हिंदी उपन्यास को सामाजिक गहराई दी। गोदान में भारतीय किसान की त्रासदी केवल व्यक्तिगत दुख नहीं, बल्कि शोषण-संरचना का साहित्यिक उद्घाटन है। यशपाल, नागार्जुन, रेणु, श्रीलाल शुक्ल, अमृतलाल नागर और अन्य लेखकों ने समाज की बदलती संरचनाओं को अलग-अलग रूपों में सामने रखा।

फिर भी आज आवश्यकता है कि हिंदी उपन्यास की मार्क्सवादी आलोचना अधिक व्यापक और आत्मालोचनात्मक बने। उसे वर्ग के साथ जाति, स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्यक, भाषा, क्षेत्र, पर्यावरण और नवउदारवादी बाजार को जोड़कर पढ़ना होगा। उसे साहित्य को न तो केवल वैचारिक दस्तावेज मानना चाहिए, न केवल सौंदर्य की स्वायत्त वस्तु। साहित्य समाज का रचनात्मक पुनर्संयोजन है, जिसमें इतिहास, विचार, संवेदना और रूप-सभी सक्रिय रहते हैं।

इस दृष्टि से हिंदी उपन्यास की मार्क्सवादी आलोचना का भविष्य तभी सार्थक होगा, जब वह रचना की कलात्मकता और समाज की ऐतिहासिकता को साथ लेकर चले। हिंदी उपन्यास भारतीय समाज के संघर्षशील यथार्थ का विशाल अभिलेख है, और मार्क्सवादी आलोचना उस अभिलेख को पढ़ने की एक शक्तिशाली, किंतु निरंतर विकसित होने वाली पद्धति है।

संदर्भ-सूची

1. Marx, Karl. A Contribution to the Critique of Political Economy. Moscow: Progress Publishers, 1977.
2. Marx, Karl and Friedrich Engels. The German Ideology. Moscow: Progress Publishers, 1976.
3. Engels, Friedrich. The Origin of the Family, Private Property and the State. Moscow: Progress Publishers, 1972.
4. Lukács, Georg. The Historical Novel. London: Merlin Press, 1962.
5. Eagleton, Terry. Marxism and Literary Criticism. London: Routledge, 1976.
6. Williams, Raymond. Marxism and Literature. Oxford: Oxford University Press, 1977.
7. Althusser, Louis. Lenin and Philosophy and Other Essays. New York: Monthly Review Press, 1971.
8. Gramsci, Antonio. Selections from the Prison Notebooks. New York: International Publishers, 1971.
9. शर्मा, रामविलास. प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, विभिन्न संस्करण.
10. शर्मा, रामविलास. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
11. सिंह, नामवर. इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
12. सिंह, नामवर. दूसरी परंपरा की खोज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
13. मुक्तिबोध, गजानन माधव. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
14. पांडेय, मैनेजर. साहित्य और इतिहास-दृष्टि. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
15. त्रिपाठी, विश्वनाथ. हिंदी आलोचना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
16. मिश्र, रामदरश. हिंदी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
17. प्रेमचंद. गोदान. वाराणसी/नई दिल्ली: विभिन्न संस्करण.
18. प्रेमचंद. रंगभूमि. वाराणसी/नई दिल्ली: विभिन्न संस्करण.
19. प्रेमचंद. कर्मभूमि. वाराणसी/नई दिल्ली: विभिन्न संस्करण.
20. यशपाल. झूठा सच. नई दिल्ली: लोकभारती/राजकमल प्रकाशन.
21. रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
22. शुक्ल, श्रीलाल. राग दरबारी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
23. नागार्जुन. बलचनमा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
24. नागर, अमृतलाल. बूँद और समुद्र. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
25. भंडारी, मन्नू. आपका बंटी. नई दिल्ली: राधाकृष्ण/राजकमल प्रकाशन.
26. सोबती, कृष्णा. मित्रो मरजानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
27. वर्मा, निर्मल. वे दिन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
28. रवीन्द्रनाथ एन. मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास. दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1979.
29. Sharma, Ramvilas. Premchand Aur Unka Yug. Google Books / Rajkamal Prakashan listing.
30. Mishra, Ramdarash. Hindi Upanyas: Ek Antaryatra. Rajkamal Prakashan listing.